खुले रहस्य

भारतीय गुप्तचर विभाग का पर्दाफाश

By the same author --

Fulcrum of Evil: ISI-CIA-Al Qaeda Nexus (ISBN: 81-7049-278-5)

Operation Triple X: An Indian Spy-Run in Pakistan (ISBN: 81-7049-301-3)

Open Secrets: India's Intelligence Unveiled (ISBN: 81-7049-216-5)

खुले रहस्य

भारतीय गुप्तचर विभाग का पर्दाफाश

एम. के. धर

पूर्व ज्वाइट डायरेक्टर

इटेलिजेस ब्यूरो
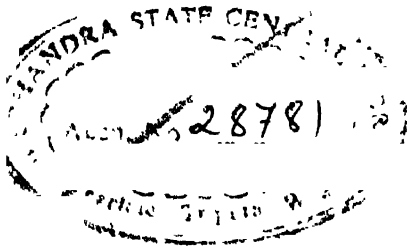
मानस पब्लिकेशन्स

नई दिल्ली—110 002 (भारत)

प्रस्तावना

'खुले रहस्य' कोई आत्मकथा नहीं। एक साधारण आदमी, जिस ने रोजमर्रा की जिंदगी के फर्ज अदा किए; एक स्त्री से प्यार किया, परिवार पाला, रोजी के लिए खुफिया (इटेलिजेंस) की सेवा की, वह भला अपने समय के इतिहास का एक हिस्सा होने का दावा कैसे कर सकता है! उसे दुनिया पर अपनी कहानी लादने का कोई हक नहीं, क्योंकि उसकी कहानी यह इतिहास नहीं। पर मैं अपने जैसी स्थिति के कई दूसरे लोगों की तरह वह वाहक तरंग रहा हूँ जिसके जरिए इतिहास की कई घटनाएँ मशहूर लोगों से आम लोगों तक पहुँचीं, शासको से उन तक पहुँचीं जिन पर वे हुकूमत करते थे।

हम यह कह सकते हैं कि इस तरह की माध्यम तरंगे भी इतिहास का ही एक हिस्सा हैं। इस लिहाज से ऐसा व्यक्ति भी अमर घटनाओ का हिस्सा होने का दावा कर सकता है।

'खुले रहस्य' वेदों की सोऽहम् (मैं उस अनंत का हिस्सा हूँ) वाली अनुभूति का परिणाम है। मुझे आशा है कि इस किताब को पढने का समय निकालने वाले एक महत्वाकांक्षी को क्षमा करने की उदारता दिखाएँगे। यह पुस्तक न तो उस का इतिहास है, न ही आत्मकथा। यह इतिहास का अंग है, अनंत का हिस्सा है।

इस अव्यावहारिक दावे के बावजूद मैं पाठकों को बताना चाहूँगा कि मैं भारतीय खुफिया समुदाय का इतिहास लिखने का दुस्साहस नहीं कर सकता। वह तो बहुत विशाल और जटिल विषय है। उस के लिए कोई बहुत बडा विद्वान चाहिए।

'खुले रहस्य' को ज्यादा से ज्यादा एक खुफिया काम करने वाले का पहला खुला खुफिया काम कहा जा सकता है।

* * * *

गुप्तचरी सरकारी तंत्र और शासन का एक अभिन्न अंग है। यह एक बहुत पुराना साधन है। यह आदिम इन्सान की जिंदा बचे रहने की प्रवृत्ति से जुडा है। इस के जरिए वह अपने सभी दुश्मनों–जानवरों, प्राकृतिक आपदाओं या दूसरी मुसीबतों का सामना करते हुए अपनी महत्ता कायम रख सका है। मोटे लफ्जों में कहें तो यह वही लालसा है जिस के चलते एक गृहिणी जानना चाहती है कि पड़ोसियों की पतीली में क्या पका है या फिर उन की रजाई के अंदर क्या हुआ है।

दरअसल गुप्तचरी मानव-विकास के साथ-साथ उस की ज्ञान और सूचना पाने की इच्छा का पर्याय बन गई है। गुप्तचरी का ढांचा सामाजिक विकास और शासन तंत्र का एक हिस्सा है। इसका कूटनीति, कानून- व्यवस्था, शासकों और शासित जनता के कल्याण व स्थायित्व से अटूट संबंध है। यह युद्ध और शांति के बीच एक सेतु है।

घरेलू संदर्भ में यह दमन और कल्याण का एक आदर्श साधन है। यह कानून-व्यवस्था बनाए रखने और जनता की आवाज को दबाने का भी एक बेहतरीन हथियार है। विदेशों के संदर्भ में यह शासन तंत्र और कूटनीति के साथ पूरक भूमिका निभाता है। जब कभी शासन तंत्र , कूटनीति और युद्ध के बिना कोई उद्देश्य सिद्ध करना हो तब इसका स्थान सब से आगे होता है। गुप्तचर समूह शांतिपूर्ण तरीकों से युद्ध जारी रख सकता है। यह मद्धम घिसाई के साथ लडाई जारी रख सकता है और तोडफोड व विघटन के जरिए कहर ढा सकता है। यह दुश्मन की कमजोरियों का पता चला सकता है और उस के ऐन पैरों तले जबरदस्त विस्फोट कर सकता है। यह किसी फ्यूजन बम जैसा शक्तिशाली हथियार है। यह सब इस बात पर निर्भर करता है कि शासक खुफिया तंत्र का प्रयोग किस तरीके से करता हैं। उस का इस्तेमाल किस दुश्मन के खिलाफ और किस राष्ट्र के राजनैतिक विकास की किस स्थिति में किया जा रहा है। यह सुरक्षा का सब से कारगर हथियार है। यह शत्रु द्वारा की जा रही गुप्तचरी को रोक कर उस की गैरकानूनी व अराजनयिक हरकतों का पता लगा कर आतरिक सुरक्षा प्रदान करता है। प्रतिकारात्मक गुप्तचरी के लिए यह उस से बेहतर के साधनों का इस्तेमाल करता है।

* * * *

एक आधुनिक राष्ट्र के रूप में भारत को अंग्रेजो से एक सुसगठित खुफिया तत्र मिला है। यह सूचना एकत्र करने की बहुत अच्छी पद्धति से निकला है। इसमें सेंट्रल इटेलिजेस ब्यूरो, सेना की गुप्तचर इकाइयो, बार्डर स्काउट्स, स्पेशल रेंजर्स तथा प्रशिक्षित एंजेटों से प्राप्त सूचनाओं का योगदान रहता है। इसके अलावा प्रशिक्षित राजस्व अधिकारी, ग्रामीण स्तर के अधिकारी व सरकारी कर्मचारी भी इसमें सहयोग देते हैं। अंग्रेजो के जमाने मे सेंट्रल इंटेलिजेंस ब्यूरो और अंग्रेज शासित प्रातों के अपराधों की छानबीन करने वाले व खुफिया विभागो के बीच तालमेल से यह काम बखूबी चलता था। जहाँ तक ब्रिटिश हुकूमत की सुरक्षा का सवाल था, उस के लिए देशी रियासतों की तरफ से भी सहयोग में कोई कमी न थी। ब्रिटिश हुकूमत की दिलचस्पी भारतीय सुराजियों की गतिविधियों, कुछ हद तक सांप्रदायिक स्थिति, कम्यूनिस्टों की घुसपैठ, तथा उन के उपनिवेश की स्थिरता को खतरा पहुॅचाने वाले गुटों या व्यक्तियों तक ही सीमित थी। उस के गुप्तचर तंत्र को गृह कार्यालय के अलावा दूसरी ब्रिटिश कालोनियों के तंत्र से भी तार जोड कर रखने होते थे। अंग्रेज सख्ती से हुकूमत करते थे और जब सवाल सुराजियों की कथित विघटनकारी हरकतों को दबाने का हो तो वे कानून की शालीनता का पालन करने का दिखावा भी नहीं करते थे। ब्रिटिश साम्राज्य को अपनी भारतीय गुप्तचर शाखा को 'ब्यूरो' कहना रास आता था, जिसका मतलब था एक मातहत प्रशासकीय यूनिट।

कोई यह उम्मीद नहीं करता था कि साम्राज्य सुराजी उपद्रवियों को दबाने में अपनी सरकारी मशीनरी पर लगाम लगाएगा। केंद्र और प्रांतों के खुफिया विभागों का इस्तेमाल उतनी ही बेरहमी से किया जाता था जितनी बेरहमी सें सेना और पुलिस का। साम्राज्य के एजेंट हर इन्सानी गतिविधि पर नजर रखते थे। इसमें शिक्षण संस्थान, मजदूर वर्ग, अखबार, संगीत व नाटक आदि कलाएँ, सरकारी व निजी कार्यालय और यहाँ तक कि संदिग्ध लोगों के शयन-कक्ष तक शामिल थे। गुप्त सूचना एकत्र करने के तकनीकी उपकरंणों का इस्तेमाल एक सीमित रूप में डाक व संदेशों और क्रांतिकारी विचारों के प्रचार को जाँचने-पकडने के लिए

किया जाता था। थोड़े में कहें तो गुप्तचर विभाग देश में हर गतिविधि पर नजर रखता था। पास के देशों और प्रभाव वाले क्षेत्रों के बारे में खुफिया जानकारी राजनयिक व व्यापारिक मिशनों, संपर्क कार्यालयों और गुप्तचरों के माध्यम से हासिल की जाती थी। ये सब वायसराय और गृह कार्यालय को रिपोर्ट करते थे।

भारत तथा अन्य मुख्य उपनिवेशों में ब्रिटिश खुफिया तंत्र का विकास इंगलैंड के गृह व विदेशी खुफिया विभागों एम.आई 5 और एम.आई 6 से अलग स्वतंत्र रूप से हुआ है। उपनिवेशों के गुप्तचरों और मुख्यालय स्थित कर्मियों की अदला-बदली भी अक्सर होती रहती थी। साम्राज्य के खुफिया विभाग–सेंट्रल इंटेलिजेंस ब्यूरो का विकास भारत और उस के आसपास के देशों की आवश्यकता की दृष्टि से हुआ। इसमे चीन, रूस, अफगानिस्तान, मध्यपूर्व के देश तथा दक्षिण-पूर्व के कुछ देश विशेष रूप से शामिल थे।

* * * *

अमेरिका, इंगलैंड, फ्रांस और जर्मनी के इंटेलिजेंस ढाँचे का इतिहास यह दर्शाता है कि इनमे से हर राष्ट्र ने अपने तंत्र का प्रारूप अपनी चुनौतियों के अनुसार तैयार किया है। उन सबका इसी प्रकार विकास हुआ। सोवियत संघ ने भी साम्यवाद के नाम पर एक बंदी समाज बनाने की अपनी आवश्यकता को देखते हुए अपने खुफिया तंत्र की रूपरेखा बनाई। चीन ने भी ऐसा ही किया।

अमेरिका, इंगलैंड और फ्रांस जैसे 'स्वतत्र' देशों में युद्ध के बाद खुफिया तंत्र का जो आधुनिक स्वरूप सामने आया उस पर उन देशों की आशंकाओं और महत्वाकांक्षाओं की छाप स्पष्ट दिखाई पडती है। बहरहाल जनतांत्रिक परंपराओं का पालन करते हुए अमेरिका और इंगलैंड ने अपने खुफिया संगठनों के संचालन को सुचारु रूप देने के लिए पर्याप्त कानून भी बनाए हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि इन दोनों ही जनतांत्रिक देशों में आधुनिक इतिहास के दौरान किसी न किसी शासक वर्ग ने अपनी ही जनता और संस्थानों के विरुद्ध खुफिया तत्र का प्रयोग किया। 9/11 के कानून से पहले एफ बी आई, होमलैंड सिक्योरिटी और सीआईए की गतिविधियों पर ये सवाल उठाए गए कि क्या अमेरिका अपनी जनता को सुरक्षा प्रदान करने के नाम पर उस की स्वाधीनता नहीं छीन रहा है? अन्य देशो मे भी ऐसे ही सवाल उठाए जा रहे हैं।

ऐसे सवाल इसलिए उठते हैं क्योकि ये देश अपनी परंपराओं और संविधानों में प्रदत्त स्वाधीनता और लोकतंत्र की कद्र करते हैं। हालांकि व्यक्तिगत स्वतंत्रता हमेशा सामूहिक सुरक्षा की जरूरतों के सापेक्ष होती है। पर साथ ही साथ वे अपनी लोकतांत्रिक पद्धति और स्वाधीनता के प्रति भी सचेत रहते हैं। उन की पद्धति में ऐसा प्रावधान है जिसके तहत शासकों से टेढे सवाल पूछे जा सकते हैं या फिर उन की कारगुजारियों की छानबीन की जा सकती है। इसमें अंदरूनी और विदेशी मामलों में एकत्र की गई गुप्त सूचनाएँ भी शामिल है। सी आई ए और एफ बी आई कांग्रेस और दूसरे वैधानिक संस्थानों के प्रति जवाबदेह हैं। एम आई 5 और एम आई 6 गुप्तचरी के नाम पर बच कर नहीं निकल सकतीं। उन की हर हरकत की छानबीन पार्लियामेंट की कमेटी करती है। वैसे यह बात वहाँ भी स्वीकार की जाती है कि इन 'स्वतंत्र देशों ' के गुप्तचर संगठन भी अपने नागरिकों के जीवन के हर पहलू पर व्यापक नजर रखते हैं। वे जन्म से मृत्यु तक उन का अता-पता रखते हैं। इन के अलावा पूर्व सोवियत संघ के अलावा और कोई भी देश अपने नागरिकों का इतना विस्तृत चिट्ठा तैयार नहीं करता।

भारत अपने नागरिकों की हरकतों पर इस तरह नजर नहीं रख सका। इसके तंत्र की खामियों की वजह से पड़ोसी देशों से विदेशी भी यहाँ घुस आते हैं। यदा-कदा कुछ राजनीतिज्ञ सोते से जाग कर देश के नागरिकों का ब्योरा तैयार करने की माँग करते रहते हैं। पर वोट बैंक के भिखारी उन का विरोध करते रहे हैं क्योंकि उन्हें विदेशी घुसपैठियों के गैरकानूनी वोटों का आसरा रहता है। वे धर्मनिरपेक्षता के नाम पर भी घडियाली आँसू बहाते हैं। कभी-कभार ही गुप्तचर और पुलिस संगठनों को घुसपैठियों का पता लगाने को कहा जाता है।

अमेरिका और इंगलैंड के खुफिया संगठन अपने नागरिकों के अधिकारों का खुल्लमखुल्ला हनन करने वाले भौंडे तरीके इस्तेमाल करने से बचने की कोशिश करते हैं।

भारतीय लोकतंत्र और वैधानिक स्वतंत्रता के विकास ने अपनी पुलिस और गुप्तचर समुदाय की जवाबदेही के विकास को पीछे छोड़ दिया है। या फिर यह कहें कि इन विभागो ने लोकतंत्र, स्वाधीनता, मानव अधिकार जैसे जनतांत्रिक समाज के मूल्यों के अनुरूप होने वाले समानांतर विकास को सोचे-समझे तरीके से विफल किया है।

ये अत्यंत महत्वपूर्ण राष्ट्रीय संस्थान साम्राज्यवादी और सामंती अभिशाप से ग्रस्त हैं। इसके अलावा जनता के शासन के नाम पर पंचायत से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक भारतीय प्रशासन के हर संस्थान को तोड़-मरोड कर मातहत बनाया गया है। देश के अनेक संस्थानों को, जिन में न्यायपालिका भी शामिल है, राजनीतिज्ञों की जरूरत के मुताबिक तोडा-मरोडा गया है।

मेरा इरादा भारतीय प्रशासन पर एक और शोधग्रंथ लिखने का नहीं है। इस तरह के शोध समय-समय पर गठित कमीशन करते रहे हैं जिन्हें पद्धति की खराबियों का पता लगाने का काम सौंपा जाता रहा है। उन की रिपोर्टें, जिन में पुलिस और खुफिया काम में सुधार करने के बारे में रिपोर्टें भी शामिल हैं, धूल फांक रही हैं। शायद वे अब तक शासन प्रणाली के दीमको का भोजन भी बन चुकी हों।

* * * *

'खुले रहस्य' में मैंने अपने गुप्तचर जीवन के अनुभवों के अलावा राजनीतिक तंत्र से मेरे सतही संसर्ग तथा उस डरावने घर के कुछ अनुभव प्रस्तुत किए हैं जिसे हम भारतीय लोकतंत्र कहते हैं।

भारतीय खुफिया संस्थान के कई स्तर हैं। इस का मुख्य संगठन इंटेलिजेंस ब्यूरो (आई. बी.) इंपीरियल इंटेलिजेंस ब्यूरो की विरासत है जिसे आमतौर पर सेंट्रल इंटेलिजेंस ब्यूरो कहा जाता है। स्वाधीनता बाद की राजनीतिक पद्धति ने आई. बी. के ढांचे को लगभग बरकरार रखा है। इसमें शीर्ष संगठन केंद्र में है। इसकी सहायक इकाइयाँ विभिन्न राज्यों (पहले के और अब पुनर्गठित प्रांतों) में हैं। यह संघीय एकीकृत प्रणाली देश के संविधान और केंद्र-राज्य संबंधों में अनेक अंतर्विरोध पैदा करती है। सरकारिया आयोग सहित कुछ आयोगों ने इस पहलू पर गौर किया लेकिन जन-आकांक्षाओं के अनुरूप इनका समाधान होना अभी बाकी है।

इंटेलिजेंस ब्यूरो का एक सीढ़ीनुमा प्रशासनिक ढांचा है। इस पिरामिड के शीर्ष पर एक डाइरेक्टर होता है। यह भारत सरकार के किसी भी दूसरे मंत्रालय जैसा ही है। फर्क सिर्फ इतना है कि इसे ब्यूरो समझा जाता है, यानि केंद्रीय गृह मंत्रालय के अधीन एक प्रशासनिक यूनिट। ब्यूरो की परिभाषा है, " कार्य निष्पादन के लिए दफ्तर। यह नाम सरकार की

प्रशासनिक या अधिशासी शाखाओं के विभागों को दिया जाता है।" {ब्लैक्स ला डिक्शनरी, छठा संस्करण}।

जैसा कि इस परिभाषा से स्पष्ट है, इंटेलिजेंस ब्यूरो भारत सरकार का एक प्रशासनिक संगठन है जो उसे अंग्रेजों से विरासत में मिला। सरकार को अपनी प्रशासनिक आवश्यकताओं के लिए संगठन, ब्यूरो आदि बनाने का विशेषाधिकार है। आई.बी. भी ऐसा ही एक विभाग है। इस पर भी सेवा के वही सामान्य नियम लागू होते हैं जो आई पी.एस अधिकारियों या अन्य रारकारी कर्मचारियों पर लागू होते हैं।

लेकिन खुफिया विभाग को मंत्रालय के किसी भी अन्य विभाग की तरह नहीं माना जा सकता। रिसर्च एंड एनालिसिस विंग (आर. एंड ए. डब्लू.) के प्रमुख को भारत सरकार के सचिव के अधिकार प्राप्त हैं। जबकि आई.बी का प्रमुख अब भी गृह सचिव के अधीन है। उसकी जवाबदेही प्रधानमंत्री और केंद्रीय गृहमंत्री के प्रति भी है। आई.बी. की जवाबदेही उसके प्रमुख उपभोक्ता के दरवाजे पर जा कर खत्म हो जाती है।

आई.बी. के केंद्रीय ढांचे की मदद के लिए उस की सहायक इकाइयाँ हैं। इन्हें आमतौर पर सहायक इटेलिजेंस ब्यूरो (एस आई.बी) कहा जाता है। इन में से कुछ इकाइयों को आज भी सेट्रल इंटेलिजेंस आफिस के मातहत माना जाता है। ये इकाइयाँ मूलतः पुरानी रियासतों के क्षेत्र में थीं। किन्ही कारणों से यह असंगति अभी भी बरकरार है। हालांकि रियासतों का विलय पुनर्गठित राज्यों मे किया जा चुका है। सोपानात्मक ढांचा जिला और सब डिवीजन के स्तर (राजस्व इकाई) तक जाता है। अपवाद स्वरूप कुछ मामलों मे इन इकाइयों का पुलिस स्टेशन के स्तर तक भी विस्तार किया गया है।

एक दशक पहले तक राज्य की भाषा बोलने वाले लोगों (वहाँ के बाशिंदों) को ही क्षेत्रीय एस आई.बी. मे भर्ती किया जाता था। उदाहरण के लिए दक्षिण भारतीय राज्यों में कनिष्ठ और वरिष्ठ अधिकारियों के पद पर केवल उस राज्य के लोगों को ही या फिर हद से हद पडोस के राज्य वालों को रखा जाता था; जैसे एस.आई.बी. मद्रास के लिए 95 प्रतिशत स्टाफ मद्रास (तमिलनाडु) से ही लिया जाता था, केरल और आंध्र प्रदेश के कुछेक अधिकारी ही घर के पास होने के नाम पर वहां भेजे जा सकते थे, पश्चिम बंगाल और महाराष्ट्र में भी ऐसा ही होता था। 1990 के बाद तक भाषा के आधार पर निर्णय करने का यह तरीका ऑख मूँद कर जारी रखा गया। इस बहुत ही गलत परंपरा में अब कुछ परिवर्तन किए जा रहे हैं जिसने एस.आई. बी. को बहुत संकीर्ण परिपेक्ष्य दे दिया था।

राज्य पुलिस व गुप्तचर तंत्र के साथ सार्थक संपर्क बनाए रखने के नाम पर राज्य पुलिस बल से बड़ी संख्या में पुलिस अधिकारियों को 'प्रतिनियुक्ति' पर नियुक्त किया जाता था (आज भी ऐसा हो रहा है)। स्वाधीनता बाद की सरकारो ने ब्रिटिश राज्य की इस परंपरा का अंधानुकरण किया है। इस पद्धति के कुछ फायदे हैं तो बहुत से नुकसान भी हैं। भारतीय राजनीति जातपात और सिद्धांतों के नाम पर बँटी हुई है। किसी एक राज्य से प्रतिनियुक्ति पर आने वाले अधिकारी जहाँ से केंद्रीय गुप्तचर विभाग में आते है, उसके वातावरण के प्रभाव से मुक्त नहीं हो सकते। इस ने कई बार परिप्रेक्ष्य-जन्य गंभीर विकृतियाँ पैदा की हैं। संगठन के चिरस्थायी चिंतकों, भारतीय पुलिस सेवा (आई.पी.एस.) के निहित स्वार्थों और राजनीतिक नस्ल ने इंटेलिजेंस ब्यूरो की इस पुलिस संस्कृति को बरकरार रखा है, लगभग उसी रूप में

जैसे कि वह अग्रेजो के जमाने मे थी। इदिरा गाधी से पहले के दिनो मे आई बी चिन्हित करने के तरीके पर चलती थी। इसके तहत आई बी ट्रेनिग के दौरान ही कुछ आई पी एस अधिकारियो को चिन्हित कर लेती थी। इस का आधार अखिल भारतीय सेवा परीक्षा तथा अकादमी मे उन के प्रदर्शन तथा उन के निखरने के बारे मे गुप्त प्रतिवेदन होते थे। बहुत से प्रतिभाशाली अधिकारी इसी योजना के तहत सेवा में शामिल किए गए। हरि आनद बरारी एम के नारायणन और वी जी वैद्य जैसे निदेशक इन्ही मे से थे। इस पुस्तक का विनम्र लेखक भी इसी तरह चिन्हित किया गया था।

राज्यो के काडर से भी कुछ अधिकारियो को प्रतिनियुक्ति ' पर सेवा मे लिया जाता था। बाद मे उन्हे इसमे शामिल कर लिया जाता था। 1970 के बाद वफादार और प्रतिबद्ध अधिकारियो को शामिल करने के लिए और आई बी को सी आर पी एफ बी एस एफ सरीखे दूसरे केद्रीय पुलिस सगठनो के बराबर बनाने के इरादे से इस परपरा का अत कर दिया गया। मणिपुर, त्रिपुरा असम और पश्चिम बगाल जैसे कम महत्व के समझे जाने वाले राज्यो के भारतीय पुलिस सेवा के उन अधिकारियो के लिए भी आई बी को प्रतीक्षालय की तरह खोल दिया गया जिन्हे वहा का तत्कालीन राजनीतिक तौर-तरीका रास नही आता था। वे वहॉ आ कर दम लेते और किसी बेहतर मौके की ताक मे रहते। इस तरह की नियुक्तियॉ मूलत राजनीतिक दबाव के तहत ही होती। आई बी से अपने लिए प्रतिबद्ध अधिकारियो का काडर बनाने का अधिकार छिन चुका था। उसे तो उन अधिकारियो ""र निर्भर रहना था जो या तो अपने प्रति निष्ठावान थे या फिर किसी खास विचारधारा के राजनीतिज्ञो के प्रति। इस नीतिगत परिवर्तन ने सगठन को सब से ज्यादा नुक्सान पहुचाया। इस से तो वह किसी भी दूसरे वर्दीधारी पुलिस बल की तरह केद्रीय गृह मत्रालय के मातहत हो गया। इदिरा गॉधी के समय से ही आई बी प्रधानमत्री के कार्यालय और गृह मत्रालय की सहायिका बन गई।

भारतीय पुलिस सेवा के उच्च अधिकारियो और राजनीतिक आकाओ की मनाही की वजह से शिक्षा सस्थानो, मीडिया और अन्य विशेषज्ञता वाले क्षेत्रो से प्रतिभाशाली लोगो को आई बी मे शामिल करना सभव नही हो पाया। इस से आई बी के कार्यकलाप की क्षमताएँ सीमित रह गई, जबकि आर्थिक, वैज्ञानिक, सूचना व तकनीक के क्षेत्रो से इस के लिए दबाव बढ रहा था। कप्यूट्रॉनिक्स, सैटफोन सैटकॉम जैसे उपकरणो की प्रौद्योगिकी के जमाने मे आई बी का तकनीकी विभाग व्यर्थ हो चुका था। अकर्मण्यता के चलते आई बी अभी भी इस बोझ को ढो रहा है। जरूरत तो इस बात की है कि खुले बाजार से प्रतिभाओ को ला कर अविलब इस का पुनर्गठन किया जाए। इस से आई बी के कार्य करने का क्षितिज व्यापक होगा और उसकी क्षमता बढेगी। आर एड ए डब्लू ने खुली भर्ती के लिए कुछ कोशिश की थी लेकिन भाई-भतीजावाद ने उसे नाकाम कर दिया। पेशेवर प्रतिभाओ को शामिल कर के कमिया दूर करने का उसका इरादा धरा का धरा रह गया।

मझले और कनिष्ठ स्तर के अधिकारियो को भी नए साज-सामान की जरूरत है। उन्हे उच्च शिक्षा और ट्रेनिग की भी जरूरत है, खासतौर पर सूचना प्रौद्योगिकी, नागरिक एव सैन्य उड्डयन,जटिल हथियारो और उन सब धधो के बारे मे पर्याप्त ज्ञान की, जिन का वास्ता सुरक्षा से है। अतर्राष्ट्रीय आतकवाद ने उसके सरगनाओ के ज्ञान का पूरा नक्शा ही बदल डाला है। इनका मुकाबला करने के लिए इस स्तर के अधिकारियो के लिए नए जटिल विषयो का

अध्ययन करना बहुत जरूरी है। यह नहीं कि हर छोटे से छोटे मामले के लिए उन्हें बाहर विशेषज्ञों के पास दौडना पडे। जिन मामलों मे अंतर्राष्ट्रीय आतंकियों ने महारत हासिल कर रखी है, उनका मूलभूत ज्ञान तो इन्हे होना ही चाहिए। एक आम आई.बी. ऑफिसर तो बहुत-सी विस्फोटक युक्तियों और उन के दागने वाले उपकरणों के भेद तक नहीं जानता। आतंकी, मुजाहिदीन और फिदायीन लडाई की जो तकनीक इस्तेमाल करते हैं, ये उस से अनभिज्ञ हैं।

हम उम्मीद करते हैं कि जल्दी ही योजना बनाने वाले राजनीतिज्ञ और गुप्तचर समुदाय के सदस्य राष्ट्रीय गुप्तचरी के आधार को व्यापक बनाने की जरूरत को समझेंगे और उसे काम करने के पुलिसिया तौर-तरीके व सोच के शिकंजे से छुटकारा दिलाएँगे।

* * * *

भारतीय संविधान ने राज्यों को पुलिस ढाँचे के अंतर्गत पुलिस बल और अपराध संबंधी एवं अन्य गुप्तचर सेवाएं संगठित करने का अधिकार दिया है। भारत में , विशेष रूप से अंग्रेजों के जमाने में पुलिस की परंपराएँ व नियम-कानून बंगाल, अवध, पंजाब, बंबई और मद्रास के प्रतिरूप पर विकसित हुए। कुछ प्रांतीय पुलिस बलों में स्थानीय परापराएँ भी घुस आईं। थोडे से दिखावटी अतर के साथ आमतौर पर उसी ब्रिटिश ढांचे को बरकरार रखा गया है। भारतीय पुलिस के संवर्धन और आजादी के बाद इस के विकास का विस्तृत अध्ययन तो कोई समाज-शास्त्री ही कर सकता है। लेकिन दुर्भाग्य से अब तक ये अध्ययन प्रशासनिक सेवा अधिकारियों की देखरेख में खुद पुलिसवालों ने या फिर कुछेक आयोगों ने ही किए हैं। पुलिस का गठन सिर्फ कानून-व्यवस्था की समस्या ही नहीं है, न ही यह वर्दी वाले लोगों की समस्या है। यह एक सामाजिक मसला है और इस का अध्ययन भी किसी समाज-शास्त्री को ही करना चाहिए।

पुलिस के अनेक नियमन, पुलिस अधिनियम और राज्य सरकारों के बनाए कुछ विशेष नियमो आदि के बावजूद पुलिस बल पर राजनीतिक तंत्र का ही नियंत्रण है। यह नियत्रण गृह विभाग या फिर प्रशासन के लिए गठित किसी विभाग के जरिए होता है। केंद्रीय सरकार की तरह राज्य सरकारे भी अपने पुलिस बल के खुफिया विभागों पर कडा राजनीतिक शिकंजा रखती हैं। राज्यों की गुप्तचर शाखाओं/सी.आई.डी. और विशेष शाखाओं का काम गुप्त सूचनाएँ एकत्र करना होता है ताकि नागरिकों के जान-माल की रक्षा की जा सके। उन्हें लुटेरों, कानून तोडने वालों और कथित आतंकियों से बचाया जा सके। इन्हें राज्य के डाइरेक्टर जनरल पुलिस/इंस्पेक्टर जनरल पुलिस और राज्य के गष्ह सचिव को रिपोर्ट करना होता है। लेकिन गृहमंत्री या मुख्यमंत्री (अक्सर मुख्यमंत्री ही गृहमत्री भी होता है) ही इन गुप्तचर शाखाओं का असली बॉस होता है। वह इनका इरतेमाल अपने राजनीतिक आधार को सुरक्षित रखने, अपने विरोधियों की जासूसी करने और गुप्तचरी की घुडी अपने हाथ में रखने के लिए करता है।

राज्य पुलिस के पास ग्रामीण पुलिस, ग्राम स्तरीय प्रशासनिक तंत्र तथा सरकारी कर्मचारियों के माध्यम से मूलभूत सूचनाएँ एकत्र करने के अनेक साधन हैं। उन के पास स्थानीय निकाय भी हैं। केंद्रीय इंटेलिजेंस विभाग व अन्य एजेंसियों को ये सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं।

उम्मीद की जाती थी कि केंद्र और राज्य की इंटेलिजेंस इकाइयां एक ऐसी पद्धति बनाएँगी जिसके तहत उन में निचले और शीर्ष स्तर पर तालमेल रहे। वास्तविकता इससे भिन्न है। हालांकि आई.बी. कुछ पुलिस का स्वरूप बनाए हुए है फिर भी केंद्र और राज्यों की एजेंसियों में वास्तविक सहयोग न के बराबर ही है। जब तक केंद्र और राज्य में एक ही राजनीतिक दल का शासन था, सब कुछ हमवार रहता था, लेकिन अब हालात बदल गए हैं। अलग-अलग पार्टियाँ या गठजोड राज्यों और केंद्र मे शासन कर रहे हैं। इनमें अपने-अपने राजनीतिक, सैद्धांतिक, व गुटों के हित हैं जिनकी उन्हें हिफाजत करनी है और बढावा देना है। लिहाजा बहुत सीमित रूप में ही गुप्त सूचनाओं का आदान-प्रदान होता है–ज्यादातर विद्रोह, आतंकवाद और राष्ट्रीय ठिकानों पर हमले के मामलों में।

बंबई बम कांड के बाद से सहयोग में कुछ सुधार नजर आया है। लेकिन उत्तरपूर्व, पंजाब, कश्मीर में तथा अन्यत्र पाकिस्तान के छद्मयुद्ध ने आई.बी तथा राज्यों की पुलिस के बीच अनौपचारिक तालमेल की अक्षमता की पोल खोल दी है। हाल ही में केंद्रीय आई.बी. और कुछ राज्यों की पुलिस इकाइयों के बीच कुछ कमजोर से अनौपचारिक तालमेल का बंदोबस्त हुआ है। महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, आंध्र प्रदेश और कर्नाटक की पुलिस यूनिटों ने अधिक सार्थक सहयोग दिखाया है।

बहरहाल जरूरत तो है राष्ट्रीय स्तर पर सगठनात्मक व्यवस्था की। संयुक्त गुप्तचर समिति के फिर से वजूद में आने और राष्ट्रीय सुरक्षा समिति के पुनर्गठन के बावजूद यह संभव नहीं हो पाया। आई.बी. ने बहुएंजेंसी सहयोग के लिए नई गतिविधियाँ शुरू की है। लेकिन ये बड़ी बातें भी बातों तक ही सीमित रह जाती हैं। दरअसल राज्यों और केंद्र के सगठनो द्वारा सूचनाएँ एकत्र करने के सारे तौर-तरीके को फिर से जॉचने-परखने की जरूरत है ताकि सहयोग के तरीके ढूँढे जा सकें।

* * * *

केंद्रीय गुप्तचर विभाग और अन्वेषण अभिकरणों के बीच भी समन्वय और सहयोग की बडी जरूरत है। करगिल की बदनाम घटना सहित देश के सामने आई अनेक बाहरी चुनौतियों ने यह साबित कर दिया है कि प्रमुख खुफिया संगठन और अन्वेषण अभिकरण महत्वपूर्ण गुप्त सूचनाओं के निरंतर आदान-प्रदान, संयोजन और उन के मूल्यांकन में असफल रहे हैं। शीर्ष संयोजन समितियों (जे.आई.सी.,एन.एस.सी. आदि) और प्रधानमंत्री, गृहमंत्री, विदेशमंत्री व रक्षामंत्री की उपस्थिति वाली केंद्रीय कैबिनेट जैसे निर्णय लेने वाले शीर्ष निकायों के होते हुए भी गंभीर संकट से बचाव के लिए समय रहते कदम नहीं उठाए जा सके।

पंजाब, कश्मीर, असम में और पाकिस्तान समर्थित जिहादी तत्वों के खिलाफ सुरक्षा कार्रवाइयों के दौरान एक तरफ आई.बी. और राज्य पुलिस के बीच तथा दूसरी ओर आई. बी., रॉ. तथा सी.बी.आई. के बीच संचार में गंभीर अंतर स्पष्ट दिखाई पड़े। गुप्तचरी की पूर्ण असफलता का सब से बड़ा उदाहरण पाकिस्तानी सेना का करगिल अभियान था। रॉ. सेना का गुप्तचर विभाग और कुछ हद तक आई.बी. भी पाकिस्तानी साजिश का पता लगाने और नीति निर्धारकों को सचेत करने में बुरी तरह असफल रहे। जो कुछ गुप्त सूचना मिली भी उस का विधिवत समन्वय नहीं हो सका। बाकी तो इतिहास है ही।

हमारा इरादा करगिल बाद की घटनाओं की शल्य-क्रिया करना नहीं है, हालांकि इस की बहुत गुंजाइश है। कोई भी राष्ट्र अपनी गलतियों से ही सीखता है। हम उम्मीद करते हैं कि हम ने भी अच्छी तरह सीखा होगा। फिर भी हाल ही में कश्मीर की सूरनकोट (काका पहाडी) की घटना ने निस्संदेह यह साबित कर दिया है कि भारत को अभी भी अपने गुप्तचर तंत्र को और चुस्त बनाने की जरूरत है और उसे एक ऐसी समन्वय पद्धति भी बनानी चाहिए जो लगभग अचूक हो। सैनिक व नागरिक ठिकानों पर लगातार होने वाले फिदायीन हमले भी यही साबित करते हैं कि हमारे खुफिया समुदाय को अभी और बडे क्षेत्र तक अपना विस्तार करना है। हमारे राजनीतिक नेताओं और संस्थानों को भी अपने काम करने के तरीके को और चुस्त बनाना है।

जहॉ तक कार्यप्रणाली को चुस्त बनाने का सवाल है, इस बारे में हम केंद्रीय गुप्तचर और अन्वेषण संगठनों की कमान और नियत्रण का विशेष रूप से उल्लेख करना चाहेंगे। इस बात का बडे गर्व से बखान किया जाता है कि आई.बी. का भारतीय संविधान के किसी फुटनोट में उल्लेख किया गया है। आई बी. ब्रिटिश भारत का हस्तांतरित विभाग है। यह गृह मत्रालय के किसी भी अन्य विभाग की तरह नियमित किया गया है। इसे एक मातहत ब्यूरो की तरह ही माना जाता है। इस बात के भी ढेरों उदाहरण दिए जा सकते हैं कि राजनीतिक आका इसे अपनी बांदी की तरह समझते हैं। यह लोकतांत्रिक रीति और संवैधानिक गारंटी के लिहाज से कोई अच्छी बात तो नहीं।

आप को यह जानकर विचित्र-सा लगेगा कि 1985 में भारतीय संविधान के अनुच्छेद 33 में सशोधन किया गया(1985 का अधिनियम नं 58 {दी}इंटेलिजेंस ऑर्गनाइजेशन्स (रेस्ट्रिक्शन आफ राइट्स) एक्ट 1985। इस के द्वारा आई.बी. और दूसरे गुप्तचर संगठनों को संवैधानिक अधिकारो और संगठित मजदूर संघ गतिविधियों के मामले में सेना के वर्ग में रख दिया गया। ऐसा इसलिए करना पडा कि रॉ. और आई.बी. में एकत्रित शिकायतों को ले कर अभूतपूर्व असंतोष भडक उठा था। मजे की बात यह है कि देश के कानून बनाने वालों को गुप्तचर संगठनों की गतिविधियों को नियमित करने की जरूरत महसूस नहीं हुई, न ही उन्हें देश की सर्वोच्च प्रतिनिधि संस्था के प्रति उत्तरदायी बनाने की सूझी। जबकि हर विचारधारा के राजनीतिज्ञ अपने विरोधियों के हाथों बदले का कडवा स्वाद चख चुके थे। भारत ने आपात्काल के जमाने में और उस के बाद भी गुप्तचर संगठनों का ध्वंसकारी नाच खूब देखा था। भारतीय लोकतंत्र उतना ही दमनकारी हो सकता है जितना कि युगांडा के इद्दी अमीन का शासन। इस बात को साबित करने के लिए उदाहरणों की कोई कमी नहीं है। सामान्य स्थितियों में भी नागरिकों के अधिकारों का हनन आम बात है। अगर कोई शासक बौखला जाए तो वह देश की बुनियादें हिला सकता है।

वर्तमान पद्धति स्वाधीन लोकतंत्र और संवैधानिक स्वतंत्रता सुनिश्चित करने के लिए काफी नहीं। प्रमुख गुप्तचर संगठनों को कानूनी रुतबा देने के लिए कुछ सरकारी अधिसूचनाएँ निकालना काफी नहीं होता। इनका विकास देश की राजनीतिक प्रणाली और जनता की आकांक्षाओं के साथ-साथ हुआ है। अगर इस विकास के जरिये प्रशासनिक सेवाओं और राष्ट्रीय गतिविधि के दूसरे क्षेत्रों को जन-प्रतिनिधियों के प्रति जवाबदेह बनाया जा सकता है तो देश के सब से शक्तिशाली तंत्र के साधनों को खुफिया परदे में छिपा कर क्यों रखा जाए। इस तरह तो थोडे से राजनीतिज्ञ इनका दुरुपयोग कर सकते हैं।

लोकतंत्र तो स्पष्ट रूप से परिभाषित है। संवैधानिक स्वाधीनता एक ऐसी अवधारणा है जो किसी लोकतांत्रिक राष्ट्र में जनता की आकांक्षाओं के अनुरूप खुद को परिभाषित करती रहती है। ये दोनों ही अवधारणाएँ एक उभयनिष्ठ विशिष्टता से संबद्ध हैं। यह है कानून का शासन, संसद द्वारा पारित अधिनियम और हमारे नागरिकों की समानता व स्वाधीनता की गारंटी करने वाला हमारा संविधान।

भारतीय पद्धतियाँ बनाने वालों, राजनीतिक चिंतकों, उस में सक्रिय रहने वालों और मीडिया जगत या बुद्धिजीवी आदि राय बनाने वालों, यहाँ तक कि न्यायपालिका ने भी ऐसे कोई ठोस सुझाव नहीं दिए कि कानून बना कर गुप्तचर एवं अन्वेषण संगठनों को शासकों के शिकंजे से आजादी दिलाई जा सके।

इस राष्ट्रीय त्रुटि ने राजनीतिक वर्ग को केंद्र तथा राज्यों की गुप्तचर व अन्वेषण एजेंसियों का दुरुपयोग करने और उन्हें भ्रष्ट करने की खुली छूट दे डाली है। इस बात के तो हजारों उदाहरण दिए जा सकते हैं कि जनता के वोट से चुने जाने वाले हमारे बहुत से शासक जनता की स्वाधीनता ,समानता और स्वतंत्रता में विश्वास रखने वाले सच्चे जनतांत्रिक नहीं हैं। शासक वर्ग ने आई.बी., कैबिनेट सचिवालय की रॉ शाखा और सी बी.आई जैसे सगठनों का जम कर दुरुपयोग किया है।

राजनीतिक आकाओं के निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए ये संगठन जिस तरह संविधान और कानून के अन्य प्रावधानों का उल्लंघन करते हैं, मैं यहाँ उस के उदाहरण पेश नहीं करना चाहता। यह सब राष्ट्रीय हितों की रक्षा के नाम पर होता है जो कि बिलकुल झूठा दावा हुआ करता है।

मैंने इस पुस्तक में ऐसी कुछ गैरकानूनी हरकतों का जिक्र जरूर किया है जो मैंने खुद कीं। ऐसा मैंने तत्कालीन शासकों की हितरक्षा और अपनी रोटी कमाने के लिए किया। मुझे इस बात का पूरा एहसास था कि मैं कुछ ऐसा कर रहा हूँ जो किसी सवैधानिक लोकतंत्र में विश्वास रखने वाले को नहीं करना चाहिए। कोई भी अपने शरीर या आत्मा के साथ बलात्कार पसंद नहीं कर सकता। कुछ हालात ऐसे होते हैं जो पीडित को यह सब सहने को मजबूर कर देते हैं। तब कोई रास्ता नहीं बचता जो उसे मजबूरी की अंधेरी सुरंग से बाहर निकाल सके। किसी गुप्तचर या अन्वेषण संगठन का अधिकारी एक सगठित माफिया का सदस्य भी बन जाता है। उस से बाहर निकलने की कीमत सीने में कुछ जानलेवा गोलियाँ खा कर या फिर किसी सुनसान जगह पर ट्रक से कुचले जा कर चुकाई जा सकती है। उसकी हालत उस वेश्या सरीखी होती है जो बलात्कार के जरिये किये जाने वाले मानवाधिकार हनन को चुपचाप सहन करती है। लेकिन उस बदकिस्मत औरत के मुकाबले वह कुछ निजी फायदा उठा सकता है, जैसे कुछ काला धन कमा लेना या फिर अपनी राजनीतिक वरीयता अथवा प्रतिबद्धता को बढावा देना। उसका बॉस तो काम के ठीक से पूरा हो जाने से संतुष्ट हो जाता है। अगर वह बहुत बड़बोला न हो तो बौस को उस के किसी निजी स्वार्थ के बारे में पता भी नहीं चलता।

जहाँ तक व्यक्तिगत राजनीतिक वरीयताओं का या स्वभाव का प्रश्न है, मेरी गिनती गुमराह अधिकारियों में की जा सकती है। दरअसल कोई भी काम सरकारी आदेश के बिना नहीं किया जाना चाहिए। मेरी राय में कोई ऐसी पद्धति होनी चाहिए जिस से ऊँचे अधिकारियों

सहित सभी पर सेवा के दौरान भी नजर रखी जा सके। आई.बी. की एक इकाई सेवा के दौरान अधिकारियों की पड़ताल करने के लिए है पर यह काम सरसरी तौर पर ही किया जाता है। मै यह बता देना चाहता हूँ कि इस तरह का मैं अकेला अफसर नहीं था। उस समय भी और आज भी ऐसे बहुत से अफसर हैं जो अपना मतलब देखते हैं। इनमें से कुछ सरकारी खजाने से पैसा बनाते हैं, कुछ अपना कैरियर बनातें है और कुछेक अपने आदर्शों को आगे बढाने की कोशिश करते हैं। यह तो लोकतंत्र के पिछवाड़े में गोरिंग और हिमलर पैदा करने जैसा है।

संगठन के अदर अपना साम्राज्य खडा करना किसी महत्वाकांक्षी अधिकारी के लिए असंभव नहीं। कुछ वरिष्ठ अधिकारी अपने प्रभावक्षेत्र को बढा लेते हैं और अपनी इजारेदारी कायम कर लेते हैं। इस तरह के गलत काम उत्तरपूर्व, पंजाब और कश्मीर की कार्रवाइयो के दौरान हुए और आज भी भारत के विरुद्ध पाकिस्तान द्वारा चलाए छद्मयुद्ध के क्षेत्र में जारी हैं। यह सब विशेषज्ञता के नाम पर होता है और इसने ही आई.बी. में इजारेदारी वाली अफसरशाही को जन्म दिया है।

समझा जाता है कि आई.बी. के डाइरेक्टर को सब से ज्यादा अख्तियार हैं। लेकिन वह अपने ही अफसरों के हाथों बंधा भी होता है। खासतौर पर उन अफसरों के हाथों में जो महत्वाकांक्षी और कुशल हों। ये उन जाने-माने रसोइयो की तरह होते हैं जिन के हाथ की पकाई डाइरेक्टर को निगलनी ही पडती है। आखिर उसे भी गृहमंत्री और प्रधानमंत्री की जरूरतों को पूरा कर के अपनी रोटी कमानी होती है और उस बेचारे के नीचे के स्तर पर अपने खुद के संपर्क नहीं होते।

ऐसा भी अक्सर होता है जब किसी कमजोर प्रधानमंत्री या डावांडोल गृहमत्री को आई. बी. डाइरेक्टर के हाथ का चुग्गा खाना पडे। वे अपने राजनीतिक ताम-झाम के सहायक के रूप में आई.बी. तथा अन्य सगठनों का इस्तेमाल करते है। वे आई.बी. के जिम्मे चुनाव की सभावनाओ का अध्ययन करने , सत्तारूढ दल के उम्मीदवारों की उपयुक्तता और ब्योरे की पडताल करने और विरोधी दल के उम्मीदवारों की कमजोरियो का पता लगाने के काम सौंपते हैं। विरोधी दल के सभी नेताओं और सभी पार्टी विरोधियों के संचार माध्यमों पर कान लगाने का काम भी आई.बी. को सौंपा जाता है। आजकल तो राजनीतिज्ञों ने इस काम के लिए रॉ का इस्तेमाल करना भी शुरू कर दिया है।

हैरत की बात है कि गृह मंत्रालय और कई बार प्रधानमंत्री कार्यालय, सीमा सुरक्षा बल व केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल जैसे अर्द्धसैनिक बलों को भी किसी अभियान क्षेत्र में कार्रवाई संबंधी जुटाई जाने वाली गुप्तसूचना के साथ अदरूनी गुप्तचरी जुटाने का काम भी सौंप देते हैं। इन बलो के मुखिया अपने राजनीतिक आकाओं को इस तरह की जानकारी मुहैया कराने में होड लगाए रहते हैं। यह दोरंगी चाल आई.बी. को दिए गए गुप्त सूचनाओं को एकत्र करने के निर्देशों का खुला उल्लंघन है।

जमाने से हमारी राजनीतिक प्रणाली गुप्तचर संगठनों का दुरुपयोग करती आई है। रॉ और बी.एस.एफ. की संपत्ति के दुरुपयोग का एक जीता जागता उदाहरण तो ए.आर.सी. और बी.एस.एफ. के विमानों का राजनीतिज्ञों, उन के संबंधियों और उच्च सरकारी अधिकारियों द्वारा निजी यात्रा के लिए दुरुपयोग करना है। इस तरह संपत्ति का दुरुपयोग सामंती प्रथा का हिस्सा है। इस से कहीं अधिक घातक और कपटपूर्ण है निर्वाचित सरकारों के कामकाज में दखलंदाजी

के लिए, सरकारें गिराने की साजिशों के लिए और हर व्यक्ति या व्यक्ति-समूहों पर जासूसी करने के लिए इन संगठनों का दुरुपयोग करना। इनमें प्रशासन, अदालतें, विधिक परिषदों के सदस्य, विश्वविद्यालयों के प्रोफेसर और मीडियाकर्मी शामिल हैं।

मोबाइल टेलीफोन, फैक्स और इंटरनेट सभी तरह के आम संचार को सुनते रहना नागरिकों की स्वाधीनता के विरुद्ध है। जिन अधिकारियों या संस्थाओं को ये काम सौंपे जाते हैं, उनके बडे अधिकारी इस की निगरानी नहीं करते। ऐसे बहुत से कार्य आतंकवादियों का पता लगाने के नाम पर किये जाते हैं। फिर बहुत से मामलों में आई.बी.,रॉ या सी.बी.आई. के अनैतिक अफसर बेगुनाह नागरिकों को ब्लैकमेल करते हैं।

इस से भी ज्यादा भयानक है तहकीकात का गलत इस्तेमाल। जिस की जाच-पडताल हो रही हो ,आई.बी., रॉ. या सी.बी.आई. के अफसर पैसे के लिए उसे अक्सर निचोडते हैं। केंद्र और राज्य स्तर के कई आई.बी. अफसर तो संदिग्ध छवि वाले लोगों के साथ मिल कर निजी काम-धंधा भी करते हैं। दिल्ली में इन में से एक गैरकानूनी तरीके से लोगों को बाहर भेजने के काम में लिप्त था। आला अफसरों तक शिकायत बहुत कम पहुँचती है क्योकि हमारे देश में आम धारणा है कि घूस का पैसा नीचे से ऊपर तक बंटता है। यह आरोप ज्यादातर पुलिस पर लगाया जाता है। केंद्रीय इंटेलिजेंस और रिसर्च ऐजेंसियों में भी ऐसा होता है, इस पर विश्वास नहीं किया जा सकता।

देश की सुरक्षा और एकता को खतरे से बचाने के लिए और कानून-व्यवस्था सुनिश्चित करने के लिए सरकार को कुछ सुरक्षात्मक कार्रवाइयां करनी पडती हैं। पर बहुत से मामलों में बेगुनाह और शक से परे लोग सताए जाते हैं। इस गदे काम में अकेले आई बी ही लिप्त नहीं। इस तरह की हरकतों में रॉ., सी.बी.आई., डी.आर.आई ,राजस्व इटेलिजेस, राज्य पुलिस बल तथा कुछ अन्य एजेंसियां भी लगी रहती हैं। उदाहरण अनगिनत हैं और इन की कार्रवाइयों का दायरा उतनी ही तैज़ी से बढता जा रहा है जितनी तेजी से यह दुनिया।

यह खेल सिर्फ भारत में ही नहीं खेला जाता। यह सारी दुनिया में होता है। लेकिन सच्चे स्वाधीन लोकतांत्रिक देशों में इन पर लगाम लगाने और संतुलन की व्यवस्था है। वहां गलती करने वाले किसी निक्सन, बुश या ब्लेयर को अपने देश की सर्वोच्च संस्था के सामने अपनी करतूत की सफाई पेश करने के लिए बुलाने की व्यवस्था है। युद्ध और शांति की कार्रवाइयों तक की पडताल ये संस्थाएं करती हैं।

भारत में न तो राजनीतिज्ञ और न ही सामान्य प्रशासन या गुप्तचर संस्थाओं के अफसरशाह किसी के प्रति जवाबदेह हैं। यहां अगर कोई भाडे का टट्टू पुरूलिया में हथियार गिराता है या देश के साथ करगिल जैसा कांड हो जाता है तो भी गुप्तचर संगठनों को कुछ नहीं होता। उल्टे ऐसी संस्थाओं के मुखिया राज्यपाल तक बना दिए जाते हैं। वजह यह कि सारा मामला गृहमंत्री या प्रधानमंत्री तक आ कर खत्म हो जाता है।

कार्यप्रणाली के नियम-कायदे से बच कर प्रधानमंत्री, गृहमंत्री या उन के कुछ सलाहकारों को खुश कर देना कोई बड़ी बात नहीं। आई.बी. जैसा संगठन देश के किसी भी निर्वाचित संस्थान के प्रति उत्तरदायी नहीं है। अगर वे दो मुख्य उपभोक्ताओं, प्रधानमंत्री और गृहमंत्री, को खुश रख सकें और कुछ खास अफसरों की मुट्ठी गरम कर सकें, तो उन की चांदी ही

चांदी समझो। मुट्ठी गरम करने का काम कोई मुश्किल नहीं, क्योंकि गुप्तचर संस्थाओं के पास भूखों को खुश रखने के लिए काफी ऐसे साधन होते हैं जिन का कोई हिसाब किताब नहीं होता।

क्या स्वाधीन भारत को नहीं चाहिए कि वह अपने गुप्तचर सस्थानों को विधिवत चलाने के लिए कानून बनाए ? क्या देश को इंदिरा और संजय जैसे पथभ्रष्ट नेताओं से अपने भविष्य को सुरक्षित नहीं करना चाहिए जिन्होंने आपातकाल लागू करने के लिए गुप्तचर व अन्य आदेश लागू करने वाले संगठनों का निर्मम इस्तेमाल किया ? अगर कल कट्टरपंथी राजनीतिक दल देश पर अपनी पसंद का राष्ट्रवाद थोपने के लिए इन संस्थाओं, संगठनों का इस्तेमाल करना चाहें तो उन्हें कौन रोकेगा? केवल संवैधानिक व्यवस्था ही ऐसा कर सकती है।

मैं लगभग एक दशक से इस बात की वकालत करता आ रहा हूँ। मैं सभी विवेकशील राय बनाने वालों, न्यायपालिका, मीडिया, शिक्षण संस्थाओं व बुद्धिजीवियों का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि वे इस बारे मे खुले तौर पर विचार करे और ससद में तथा इस के बाहर इस पर चर्चा आरंभ करवाएँ। इस तरह के कानून खुद राजनीतिज्ञों के लिए भी जरूरी हैं। किसी दिन अगर लोकतंत्र कमजोर हो जाए तो गुप्तचर विभाग के कुछ धोखेबाज लोग सेना के महत्वाकाक्षी उच्च अधिकारियों के साथ मिल कर देश के राजनीतिक स्वरूप को बदल सकते हैं। फिर वह आई.बी. को भी पाकिस्तान की इंटर सर्विसेस इंटेलिजेंस की शक्ल दे सकते है। वह दिन भारतीय लोकतत्र के लिए बडा दुर्भाग्यपूर्ण होगा। भारत उस तरह की तौहीन गवारा नहीं कर सकता जो उपनिवेशवाद के बाद के अफ्रीका व एशिया के देश भुगत रहे है। राजनीतिज्ञों और अदरूनी कर्मियो के दुरुपयोग को अगर रोकना है तो ऐसे कानून बनाने होगे जो इंटेलिजेस समुदाय को संवैधानिक प्रणाली का जवाबदेह बनाएँ। लोकतांत्रिक पद्धति की सुरक्षा के लिए यह जरूरी है। आखिर उसने हमें किसी हद तक स्वाधीनता, समानता और स्वतंत्रता तो दी है।

मैं कोई शैतान से संत बना आदमी नहीं। ऐसा नहीं कि मैं एक रात अचानक उठा और तभी मेरी अंतरात्मा ने मुझे कचोटा। मैंने पहले भी स्पष्ट करने की कोशिश की है कि मेरे अंदर दो गिलहरियां लडती रही हैं। सपनो की सौदागर पर जीत ज्यादातर रोटी कमाने वाली की ही होती है। हुक्म बजा लाने के अपमान से मुझे हमेशा पीडा हुई। आज भी मैं उससे पीडित हूँ। अगर मैं अपने पढाने या पत्रकारिता के व्यवसाय से जुडा रहता तो ऐसा कभी न करता।

'खुले रहस्य' कोई आत्मकथा नही। यह तो इंटेलिजेंस प्रणाली के एक दांवबाज और क्षति पहुँचाने वाले का अपना आक्रोश अपने देशवासियों के साथ बॉटने का प्रयास है; एक अंदरूनी पाप करने वाला ईमानदारी से अपना दर्द बांटना चाहता है। अगर जनता का विवेकशील वर्ग राष्ट्र के इन महत्वपूर्ण संगठनों के जनतांत्रीकरण के प्रति जागरूक होकर जनता की संवैधानिक स्वाधीनता की सुरक्षा का प्रयास करे तो मुझे बहुत खुशी होगी।

वाहक तरंग के माध्यम से कचरा भेजने के बहुत से उदाहरण हैं। अगर 'खुले रहस्य' में मैंने ऐसा कोई काम किया तो उस का जिम्मेदार मैं हूँ।

मैं जानता हूँ कि बहुत से अतीत और वर्तमान के निर्वाचित कानून बनाने वाले और नौकरशाह मुझ पर सेवा नियमों को तोडने का आरोप लगाएँगे। उनकी ऐसी प्रतिक्रिया को मैं समझ सकता हूँ। मैं भी उन में से एक रहा हूँ। मैं जानता हूं कि मुझ-जैसे प्रशासकों या कर्ताओं में प्रणाली किस तरह मनोवैज्ञानिक परिवर्तन ला कर उनमें पराधीनता, परवशता और असीम

सहनशक्ति का माद्दा भर देती है। वे सत्ताधारियों के स्पष्टतः गलत कामों को महिमामंडित करना सीख जाते हैं। वे प्रणाली के साथ जीना सीख जाते हैं। हमारे-जैसे लोग भाग्यवादी बन जाते हैं। वे इस बात पर विश्वास करने लगते है कि घोटाले, कलक, राजनीतिक दुराचार, कानूनी लूट-खसोट और राजनीति व समाज का अपराधीकरण किसी देश की जनता या किसी राष्ट्र के विकास की विशिष्टताएँ हैं।

मैंने सुनहरे सपने को अपनाया। मैं उस माहौल में रहा पर उन मंत्रों के वशीभूत नहीं हुआ। अगर मेरे दोस्त मुझे बाद में बदला बहुरूपिया कहें तो मैं बुरा नहीं मानूँगा। मुझे उस प्रणाली के मुकाबले अपने देशवासियों और देश की अधिक चिंता है। वह तो जनता की आकांक्षाओं के साथ-साथ विकसित हो ही जाएगी। ऐसा नहीं हो सकता कि प्रणाली जनता को डकार जाए। भारत की जनता एक सच्चा सवैधानिक जनतंत्र चाहती है जिसमें राजनीतिज्ञ, प्रशासक तथा दूसरी प्रणालियाँ चलाने वाले व सेवकगण, यानि वे सब जिनको वह देश चलाने का मुआवजा देती है, पूरी तरह जवाबदेह हों।

मेरा हिन्दी बयान पाठकों की अपेक्षा के अनुरुप नहीं है। यदि मूल अंग्रेजी की कुछ अभिव्यक्तियों के हिन्दी रुपातंरण में थोडा अंतर आ गया हो तो उन्हे दोनों भाषाओं की अभिव्यजंना का भेद मानना चाहिए। यदि इस कारण से कोई भाषायी असंगति प्रतीत हो या किसी की निजी भावनाओं को भूलवश ठेस पहुंचे तो वे मुझे क्षमा करेगें।

विषय सूची

<1>

कार्रवाई की शुरुआत

हम अपनी तकदीर का सामना कर रहे हैं। हमें उसका सामना उच्च और दृढ संकल्प वाले साहस के साथ करना चाहिए। हमारे लिए जिंदगी काम और कठिन परिश्रम के साथ कर्त्तव्य का पालन ही है। हमें पूरी ताकत के साथ काम में जुटे रहना चाहिए। जग खाकर मिटने से मेहनत करते-करते मिटना कहीं बेहतर है।

थियोडोर रूजवेल्ट

1 सितंबर, 1965

रात भर किसी थके फौजी की तरह हाफने और खीजने के बाद दार्जीलिग मेल पांसीदेवा के प्लेटफॉर्म में धीमी रफ्तार से सुबह के ठीक 7 बज कर 40 मिनट पर दाखिल हुई। यहाँ गाडी रुकने की उम्मीद नहीं थी। उस नरक के बिल से बाहर निकलने के खयाल से ही राहत मिली। वह डब्बा खचाखच भरा था। सिर्फ इन्सानों से ही नहीं, मुरगियों से भरे बॉस के दडबों, दूध के 20 डोल और सब्जी की अनगिनत टोकरियों से भी। मैं भी किसी मोर्चे में बैठे थके फौजी-सा महसूस कर रहा था।

भारतीय पुलिस सेवा के किसी उदीयमान पुलिस अधिकारी के लिए यह कोई बहुत अच्छी यात्रा तो नहीं थी। 1965 में गंगा पर फरक्का में बॉध अभी दूर का सपना था। दालखोडा आकर रेल यात्रा खत्म हो गई। यहाँ से हमें गगा/पद्मा नदी स्टीमर से पार करनी थी। उसके बाद जगन्नाथपुर से फिर रेल पर सवार होना था।

हमारी मुसीबतों की शुरुआत वहीं से हुई। बाज़ार में ताज़ा चीजों की सप्लाई करने वालों ने हमें धक्के मार कर जबरदस्ती तकरीबन आधी जगह घेर ली। हालांकि यह रात के मुसाफिरों के लिए रिजर्व थी। मैं ताजा-ताजा बैरकपुर और माउंट आबू से पुलिस की ट्रेनिंग ले कर आया था। सोचा कुछ कायदा-कानून बहाल कर दूँ। मुझे अपने नेतृत्व के गुणों पर बड़ा भरोसा था। उसी के दम पर मैंने अपने साथी मुसाफिरों को उकसाया कि वे हिम्मत से काम लें और घुसपैठियों को डब्बे से निकाल बाहर करें।

"क्या तुम पहली बार इस गाडी में बैठे हो ?"

एक बुजुर्गवार ने, जो बडी लगन से बंगाली अखबार पढ रहे थे, मुझे तकरीबन झिडका।

"जी हां, मैं नया हूँ। पर यह तो सफर करने का तौर-तरीका नहीं। हम सब ने किराया दिया है और हमारी सीटें रिजर्व हैं।"

"बिलकुल ठीक। असलियत तो यही है। पर असलियत नाम की कोई चीज नहीं होती। सब से महत्वपूर्ण चीज होती है वह, जो प्रत्यक्ष हो।"

"मैं कुछ समझा नहीं?"

मैं उन महाशय के दार्शनिक जवाब से कुछ अचकचा गया था, इसलिए बेवकूफों के-से अंदाज में पूछ बैठा।

"जरा देखो, क्या तुम्हें वह टिकट चैकर और पुलिस के सिपाही नजर नहीं आ रहे?"

"हां, मैं खुद पुलिसवाला हूँ, आई.पी.एस. आफिसर।"

मैंने गर्व से अपना परिचय दिया।

"जरूर होगे। पर तुम अभी रंगरूट हो। अभी तुम्हारी जडें नहीं जमी हैं। ये बेचने वाले इस गाड़ी के रोजाना मुसाफिर हैं। टिकट चैकर और पुलिस वाले अपनी तनख्वाह के अलावा इनसे अपना चाय-पानी वसूलते हैं। अपनी आंखें खुली रखो और देखो।"

बुजुर्गवार इस के बाद फिर अपने अखबार में डूब गए।

बात उनकी सच निकली।

पहले टिकट चैकर प्रकट हुए। सलवटों वाला तेल से चिकना काला कोट और वैसी ही मैली सफेद पैंट। मुरगीवाले, दूधवाले और सब्जीवाले सभी एक लाइन में खडे हो गए। फिर वे भारतीय रेल के इस नुमाइंदे को एक-एक रुपया देने लगे। टिकट बाबू ने पैसे गिने। फिर सब से मोटी मुरगी उठा ली।

"गरीब को क्यों लूटते हो सा'ब।"

मुरगीवाला गिड़गिड़ाया।

"यह तो मेरी ऊपरी आमदनी है।" टिकट बाबू ने मुरगी को लटका कर उस का वजन अंदाजा। फिर जाते-जाते बोला, "तुझे इस गाडी में सफर करना है कि नहीं।"

"साला," मुरगीवाले ने नाक-भौं चढाई।

रेलवे के लुटेरे के बाद एक तोंदवाला पुलिसिया आया। उसकी वर्दी फटेहाल थी। मुंह पान से भरा था। होठों के एक कोने में सिगरेट दबी थी।

"अरे रमजान अली," वह मुरगीवाले से चिल्ला कर बोला, "चीजों की कीमतें बढती जा रही हैं। है ना?"

"जी जनाब,पाकिस्तान ने मुरगी, मछली, दूध जैसे कच्चे माल का आना बंद जो कर दिया है।"

"बेवकूफ, गधे हैं पाकिस्तानी। आखिर उन्हें परेशानी क्या है? वे अपना माल हमारी तरफ क्यों नहीं आने देते?"

"जनाब यह तो सियासी मामला है। और मैं ठहरा गरीब मुरगीवाला।"

रमजान अली ने हाथ मटका कर यकीन दिलाया कि अब पूर्वी पाकिस्तान बन चुके पडोसी बंगाल की मूर्खतापूर्ण आर्थिक नीतियों के लिए वह जिम्मेदार नहीं।

"सियासत की तो मुझे भी कोई खास समझ नहीं। लेकिन अब से तुम लोगों को टैक्स की रकम में चार आने बढ़ाने होंगे।"

पुलिसवाले ने बड़ी संजीदगी से कहा।

"जनाब, हम गरीब लोग हैं।"

एक दूधिए ने हल्का सा विरोध किया।

"फिकर मत करो। एक किलो दूध में चार सौ ग्राम पानी मिलाओ। कैसा भी पानी, उस से मुझे सरोकार नहीं। पर बढ़ा हुआ टैक्स तो तुम्हें देना ही होगा।"

"जनाब" रमजान अली ने कुछ कहना चाहा।

"बसबस, अब जल्दी से मेरी टोपी में पैसे डालो।"

उस ने टोपी उतार कर उन के सामने कर दी। उन बेचारों ने बडबडाते हुए उस में पैसे डालने शुरू कर दिए। कानून के रखवाले ने पैसे अपनी जेब के हवाले किए। फिर वह शाही शान से डब्बे से बाहर निकल गया।

"तो श्रीमान, आप नए-नए पुलिसवाले हैं। पर आप का पुलिसवाला होने का क्या फायदा अगर आप दारोगा नहीं हैं,"बुजुर्गवार मुझ से मुखातिब हुए।

"क्या बात करते हैं आप, वह तो छोटा ओहदा है।"

"पिछले 55 साल में मैंने जो पुलिस के ओहदे देखे, वह उन सब में ज्यादा अख्तियार वाला है। 1945 में जब मैं पढ़ता था तब उस ने मेरी अच्छी धुनाई की थी। तब मैंने तिरंगा ले कर सब रजिस्ट्रार के दफ्तर में घुसने की कोशिश की थी। हम स्वतंत्र भारत का ऐलान करना चाहते थे। उस ने मेरी हड्डियॉ तोड डालीं। तब से अब तक वह जरा नहीं बदला। तनख्वाह उसे सरकारी खजाने से मिलती है और वह मोटी ऊपरी कमाता है।"

"वह क्या होती है ?"

"कानून की आड़ में लूटने-खसोटने को बंगाली में ऊपरी कहते हैं। वह खौफ फैलाए रखता है और लोग उसे पैसा देते हैं। ठीक उसी तरह जैसे अनिष्टकारी देवताओं से बचने के लिए लोग उन्हें चढ़ावा चढ़ाते हैं।"

"वाह, क्या मजेदार बात कही है।"

"बेटा," वह आगे बोले,"किसी जमाने में मैंने ऊपरी का विरोध करने का इरादा किया था। मैंने सोचा था यह अंग्रेजों के जमाने की बुराई है। पर ऐसा नहीं है।हम हिंदुस्तानी बेहद भ्रष्ट हैं। हमारा तो धर्म ही भ्रष्टाचार से भरा है। हम अपने देवताओं को भ्रष्ट कर के अपनी चमडी बचाने की कोशिश करते हैं। यह हमारे दर्शन में है। हमारे आर्य पुरखों, मुस्लिम हमलावरों और अंग्रेज साम्राज्यवादियों ने हमें यह सीख दी है। "

उन्होंने अपना सामान उठाया और उतरने की तैयारी करने लगे।

"क्या मैं आप का नाम जान सकता हूँ।"

"मेरा नाम जगदानंद है। मै एक स्कूल में हेडमास्टर हूँ।"

"कौन सा स्कूल?"

"नक्सलबाड़ी। यहाँ से बहुत दूर नेपाल की सीमा पर है।"

सफर तो थकाने वाला था पर जो ज्ञान मिल रहा था वह ऑखें खोलने वाला था। खासतौर पर हेडमास्टर जगदानंद से मिला सबक। मैंने उन की बातों से पीछा छुडाने की सोची। आखिर एक सठियाए और निराश आदमी की बातें अंतिम सत्य थोड़ा ही होती हैं। बहुत बाद में जब मैं नक्सलबाडी में फिर जगदानंद से मिला तो मुझे लगा कि दोबारा सबक लेना चाहिए। मैं तो एकदम अनाडी था। यूनिवर्सिटी से निकला हुआ। आधा-अधूरा पत्रकार और एक डिगरी कालेज का लेक्चरर। मैं सपनों से लबरेज था। भारतीय पुलिस में नौकरी पा कर मैं खुश था कि मेरे हाथ में समाज की गंदगी साफ करने वाला झाड़ू आ गया है। अब मैं अन्याय से भी लड़ सकता हूँ।

तभी मेरे उच्च विचारों को झटका लगा। कोयले से चलने वाला रेल इंजन चीखता हुआ न्यू जलपाईगुड़ी स्टेशन में दाखिल हो गया था। आखिरकार वह भाप के बादल छोड़ता रुक

ही गया। इस के बाद के झटके सहयात्रियों ने दिए। वे इस लोहे के पिंजरे से बाहर निकलने के लिए हमें धकियाने लगे। दो मिनट के अंदर-अंदर मुरगीवाला, मछलीवाला और दूधिया, सब बाहर थे। हम भी किसी तरह तंग गलियारे से बाहर निकले।

सब से पहले मैं वेटिंगरूम की तरफ दौड़ा ताकि कपडे बदल सकूँ और अपना हुलिया सुधार सकूं। मैं सवारी पकडने से पहले जरा ठीक-ठाक दिखना चाहता था, जो मुझे दार्जीलिंग ले जाने वाली थी। वह मेरे पुलिस सुपरिंटेंडेंट (एस.पी.) का मुख्यालय था। उन्हें ही मुझे वरिष्ठ पुलिस सेवा में शामिल होने के अनुकूल बनाना था।

मुझे अपनी वर्दी पर बड़ा गर्व था। मैंने उस पर हाथ फेरा। अपने जूतों से धूल साफ की और फिर वेटिंगरूम से बाहर आ कर देखने लगा कि पुलिस की जीप किधर है। मेरी कलफ लगी वर्दी और अक्तूबर के शुरू की ठंडी बयार ने मेरे पस्त होते हौसले को कुछ बुलंद किया। यह मेरा पहाडों की रानी पर आने का पहला मौका था।

मैं खुली जगह पर खड़ा था। मेरी आँखों के ठीक सामने ही खूब हरियाली थी। इस दृश्य को अगर कुछ बिगाड़ रहा था तो वे थे इधर-उधर बैठे कुछ लोग। वे खुले में फारिग हो रहे थे। मैंने उस गंदी सच्चाई से आँखें फेर लीं और गरदन उचका कर ड्राइवर और जीप को ढूँढ़ने लगा जो मुझे दार्जलिंग तक का सब से खूबसूरत नजारों वाला सफर कराने वाला था। पर ड्राइवर तो कहीं नजर नहीं आया।

जब मैं ड्राइवर को खोज रहा था तभी मेरी नजर उस अत्यंत मनोरम दृश्य पर पडी। कोहरे से ढकी पहाडियों के बीच के अंतराल से कंचनजंगा की चोटी और माउंट एवरेस्ट का एक हिस्सा नजर आ रहा था। वह हिम धवल सुंदरता काली रेखाओं से घिरी थी। यह कालिमा बर्फीली चोटियों के उन किनारों पर थी जहाँ सूर्य की रोशनी नहीं पहुँच सकती थी। प्रकाश का यह नर्तन दूर उन पहाड़ियों को किसी परी देश की सी सुंदरता प्रदान कर रहा था। उन भव्य पहाड़ियों ने तत्काल मेरा मन मोह लिया। ऐसा लगा कि मुझे जिंदगी का सच्चा प्यार मिल गया है।

तभी एक कड़क सैल्यूट ने मेरा सपना भंग कर दिया।

"दार्जीलिंग में आप का स्वागत है, सर।"

मैंने सैल्यूट का जवाब देते हुए उस नाटे गोरखे की तरफ देखा।

"तुम्हारा नाम क्या है?" मैंने नेपाली में पूछा।

हक्काबक्का गोरखा धीमे से मुस्कराया।

"मैं अंगबहादुर हूँ सर, आप का ड्राइवर। हुजूर बहुत अच्छी नेपाली बोलते हैं।"

"अब चला जाए?"

इस बार मैंने हिंदी में कहा। साथ ही उसे यह भी बता दिया कि मैं गुजारे लायक ही नेपाली बोल सकता हूँ। मैंने सीट से कमर टिका कर एक सिगरेट सुलगाई। उस के बाद मैं एस. पी.साहब से होने वाली पहली मुलाकात के बारे में सोचने लगा।

* * * *

18 सितंबर 1965

दार्जीलिंग में मेरे पहले कुछ दिनों ने ही मेरे अहम् के गुब्बारे की सारी हवा निकाल दी। एस.पी.साहब एक अधेड़ उम्र के बड़े अच्छे आदमी थे। उन्होंने साफ तौर पर समझा दिया

कि मैं रंगरूट हूँ। कोई भी अफसर सिर्फ ट्रेनिंग कालेज से पास हो जाने से ही अपनी फीतियों के काबिल नहीं बन जाता। ट्रेनिंग कालेज तो सिर्फ कच्चे माल को सॉचे में ढालने के लिए होता है। असली निहाई जिस पर ठोक-पीट कर रगरूटों को काबिल बनाया जाता है, वह है फील्ड स्टेशन। उन्होंने एक सिगरेट सुलगाई और एक मेरी तरफ बढाने की भी मेहरबानी की। मैंने पुराने जमाने की तहजीब दिखाते हुए उसे लेने से मना कर दिया। फिर सब्र से इतजार करने लगा। वह धीरे-धीरे बोलते थे। जरा धीमी आवाज में। उन की बडी-बडी ऑखें उनके होठों से ज्यादा बोलती थीं। मेरी समझ में यह आया कि मैं अपनी कानून की ऊँची डिग्री, घुडसवारी और खेलो का शानदार रिकार्ड बट्टे खाते में डाल दूँ तो बेहतर होगा। पुलिस अफसर की हैसियत से मुझे तो यह समझना था कि सिपाही और दारोगा कैसे काम करते हैं। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि भारतीय पुलिस तंत्र दारोगा पर निर्भर करता है। यह मुसलमानों के जमाने के कोतवाल का अग्रेजी रूप है। इसे उन्होंने जुर्म के बंदोबस्त और सजा देने के हथियार के तौर पर अपने तरीके से ढाला। एक कामयाब पुलिस चीफ का काम थाने को सही ढग से चलाना और आधारभूत राजरव प्रशासन को सभालना होता है।

उन के भाषण तीन दिन तक जारी रहे। उस के बाद मुझे थाने के बडे बाबू और मुख्यालय के डी एस.पी के हवाले कर दिया गया। पहले का काम मुझे रिकार्ड रखना और हिसाब-किताब की बारीकियॉ सिखाना था। दूसरे का आदमियो से काग लेने, भडार, संभारतत्र की महारत, हथियारघर का रख-रखाव ओर निरीक्षण सिखाना था।

बडे बाबू सुबोध तरफदार थे। सब उन से डरते थे और नफरत भी करते थे। वह एस. पी साहब के द्वारपाल थे। मामला चाहे संभारतंत्र का हो,कोई सामान मंगाने का हो या फिर तबादले, तैनाती, तरक्की, छुट्टी का हो, उन के मातहत सभी आदमियों को उन से साबका पडता था। सुबोध की दिलचस्पी मुझे अपने खेल की चाले सिखाने में हरगिज नहीं थी। मुझे शक है कि उन्हे किसी पुलिस बल को मुस्तैद और चुस्त-दुरुस्त तरीके से चलाने के गुर सीखने की मेरी उतावली पसद नहीं आई। पहली नजर में ही कोई जान सकता था कि सुबोध घूसखोर हैं। मातहतों से रिश्वत लेने और चोरी-चकारी में माहिर। एस पी. के मुख्यालय में तैनात सबइस्पेक्टर दिलमन सुब्बा ने घुमा-फिरा कर जो सलाहें दीं उन से मेरी राय और पुख्ता हो गई। कुछ और स्पष्ट सुबूत इकट्ठे कर लेने के बाद मैंने मुखर्जी के साथ सिगरेट पीने का मौका तलाशा। उन्हें मैंने वह सब बता दिया जो दिलमन ने मुझे बताया था। मुझे एस पी. के घर पर रात के खाने का एक और निमत्रण मिला। उस के अत में उन्होंने मेरा शुक्रिया अदा किया और मुख्यालय के डी.एस.पी मैती दीवान से मिलने की सलाह दी।

मैती दीवान बहुत प्रतिभाशाली अफसर तो नही थे, पर वह निष्कपट और अच्छे इन्सान थे। उन्होंने मुझे बताया कि पश्चिम बगाल के पहाडी जिलों में ठीक से काम करने के लिए मुझे नेपाली जरूर सीखनी चाहिए। उन्होंने मुझे हेडकास्टेबल पदम सिंह से मिलवाया जो मुझे नेपाली बोलना और लिखना सिखा सकता था। मैं दिलमन, मैती और पदम का बहुत आभारी हूँ। उन्होंने नेपाली भाषा की जादुई दुनिया से मेरा परिचय कराया। तब मुझे पता चला कि नेपाली मेरी अपनी मातृभाषा बंगाली से कम मधुर नहीं।

मैती दशहरा (दुर्गा पूजा) के आयोजनों में व्यस्त हो गए, जैसा कि ज्यादातर नेपाली होते हैं। अक्तूबर नेपालियों और बंगालियों के लिए बडे त्योहार का समय होता है। दुर्गा पूजा उनकी संस्कृति का एक अभिन्न अंग जो है।

दार्जीलिंग पुलिस लाइन ने दशहरा बड़ी भव्यता और धूमधाम से मनाया। नेपाली विधि-विधान के मुताबिक माँ की पूजा का त्योहार बड़े रंगारंग तरीके से मनाया गया।

पुलिस बल ने बड़ा शानदार प्रदर्शन करते हुए भव्य मास्टर परेड निकाली। सभी अफसर और सिपाही अपनी बेहतरीन कुर्तियों और वर्दी में दिखाई दिए। चारों ओर चांदी और पीतल की दमक थी। गोरखाली टोपियाँ माउंट एवरेस्ट की धवलता की पृष्ठभूमि में चमक रही थीं।

वह 25 अक्तूबर का दिन था। मैती दीवान की सलाह पर मैंने अपनी सब से अच्छी कुर्ती पहनी। मेरे अर्दली सिपाही धनबीर मागर ने घंटे भर मेहनत कर के मेरे जूते चमाचम कर दिए थे।

सब से कम उम्र के ए.एस.पी.(असिस्टेन्ट सुपरिंटेंडेंट पुलिस) की हैसियत से मुझे परेड का नेतृत्व करना था और डिप्टी इंस्पेक्टर जनरल पुलिस को सलामी देनी थी। वह अपने परिवार के चार सदस्यों के साथ समारोह की शोभा बढाने पधारे थे। माउट आबू में अपने उस्ताद गोपाल राम से मास्टर परेड के बेहतरीन गुर सीखने के बावजूद मै घबराहट महसूस कर रहा था।

परेड के संचालन में कोई कमी न थी। उसमे हिस्सा लेने वालों का प्रदर्शन बहुत शानदार रहा। अब वह वक्त आया जब मुझे डी.आई.जी. के पास जा कर तलवार से सलामी देनी थी और परेड का निरीक्षण करने का अनुरोध करना था।

मेरी ट्रेनिंग काम आई। मैं सधे हुए कदमों से मार्च करता वहॉ पहुॅचा। मैंने तलवार ऊपर उठा कर नीचे झुकाई और कडक सैल्यूट बजाई। साथ ही मैंने कहा, "श्रीमान, परेड निरीक्षण के लिए तैयार है!" पल भर के लिए मेरी नजरे डी.आई.जी. से हटीं। वे दूसरी ऑखो से जा मिलीं। उतनी प्यारी आंखें मैंने पहले कभी नहीं देखी थीं। किसी को मुझे बताने की जरूरत न थी कि उन ऑखों के पीछे आत्मा और दिल डी.आई.जी. की सब से बडी बेटी के थे।

हमेशा सतर्क और सावधान रहने वाले मेरे एस.पी. ने मुझ से धीरे से फुसफुसा कर कहा "डी.आई.जी. को ले कर वापस परेड में जाओ।"

मैंने जबरन अपनी आँखें वापस घुमाईं। जरा देर के लिए एस.पी. पर और फिर डी.आई जी. पर।

उनकी आगवानी करता हुआ मैं उन्हें परेड ग्राउंड ले गया। वह बहुत अच्छे निरीक्षक न थे। उन के कदम ढोल की ताल पर नहीं उठ रहे थे। वह किसी ढीले-ढाले दफ्तरी बाबू की तरह चल रहे थे। मैं उन्हें सलामी मंच तक वापस ले कर आया और परेड को विश्राम की मुद्रा में खड़े होने का आदेश दिया।

फिर मैं परेड को विसर्जित कर के मंच पर आ गया। वहाँ मैं एक पीछे की सीट पर जा बैठा। अब मैं त्योहार के सब से वहशियाना और बीभत्स हिस्से को देखने के लिए तैयार हो गया। कुछ बंगाली उपासकों की तरह उन्होंने भी जानवरों की बलि देनी शुरू की। इस में ज्यादातर भैंसे और बकरे थे। पुलिस लाइन के कसाइयों के चमकते खांडों ने पचास से ज्यादा जानवरों के सिर काट डाले। कुछ बकरों की टांगें एक बड़े थाल मे रख कर देवी माँ को भेंट चढाने के लिए लाई गईं। उन में से अभी भी खून बह रहा था।

यह कोई नया तमाशा न था। दुर्गा पूजा पर इस तरह का बडे पैमाने पर पशु वध बंगाल के कई हिंदू सामंत परिवारों में और त्रिपुरा व कूच बिहार के दरबार में आम बात थी। मैं इस

बलि के विधान से या जानवरों की हालत से ज्यादा परेशान नहीं हुआ। मैंने उधर से ध्यान हटा कर फिर उन ऑखों की तलाश शुरू कर दी जो कुछ देर पहले मुझ से चार हुई थीं।

मैं रूपनारायण दहल रोड पर अपने क्वार्टर पर लौट आया। मेरा दिल अतीत की भूल-भुलैया में भटक रहा था। शाम आई और गुजर गई। रात के अंधेरे ने मुझे उसी तरह ढांप लिया जैसे दूर एवरेस्ट को बादलों ने ढंक लिया था।

मैं सो न सका। मेरी बेचैनी धनबीर से छिपी न रह सकी।

"साहब, आप क्या सोच रहे हैं?"

मेरे अर्दली सिपाही धनबीर ने पूछा। वह मेरे लिए रात के खाने में चावल और मुरगा बना रहा था।

"ऐसे ही कुछ।"

"साहब, आप थोडी-सी रम लेंगे? हम नेपाली तो रोजाना रौक्सी (देशी दारू) के कई-कई टोक (एक पैमाना) के बिना रह ही नहीं सकते। लेकिन मेरे पास आप के लिए थोडी रम है।"

"ठीक है, दे दो।"

मैंने रम की चुस्की लगाई और यादों के गलियारे में भूली-बिसरी कडी को खोजने लगा।

हां, ये वही आँखें हैं। इन्हीं से मेरा सामना 1963 में पास के कसबे में बाली जूट मिल के मैदान में हुआ था। उसकी ऑखें हूबहू वही थी, हालांकि वह पहले से कुछ भारी हो गई थी। मैंने आंखें बंद कर के अपने दिमाग के परदे पर दोनों चित्रों को उभारा। मैं एकाएक चिल्ला कर बिस्तर से उठ बैठा।

"की भया सा"ब?"

धनबीर भी चिल्ला पडा।

"मैंने पा लिया, धनबीर, मैंने पा लिया।"

"क्या पा लिया जी, क्या खो गया था?"

"नहीं धनबीर, खोया कुछ नहीं था। मैंने अभी-अभी हीरा खोज लिया है।"

"कहॉ पाया, हुजूर ?"

"तुम चिंता न करो, धनबीर। बस मेरा खाना लगा दो। फिर मुझे अकेला छोड दो। मैं आराम करना चाहता हूँ।"

मैंने बडे मजे से गरमा-गरम खाना खाया और बिस्तर पर लेट गया। बहुत दिनों के बाद मैं किसी सूअर की नींद सोया।

परेड के मैदान में अपने प्यार को फिर से पा जाने से मानो मेरा सारा युवा इद्रिय बोध ही बदल गया। मेरे विचार में यह एक अलग किस्म का प्यार था। अंततः 1968 में मुझे उस असाधारण महिला का हाथ नसीब हुआ, जिसे मैंने पहले 1963 में देखा था। फिर 1965 में दोबारा खोज लिया था। फरवरी 1968 में हमारी शादी हो गई। यह एस.पी. साहब और कलिंगपोंग के कुछ खास दोस्तों की कोशिश का नतीजा था।

मैती दीवान अच्छे उस्ताद तो न थे। पर वह एक सहृदय पहाडी आदमी जरूर थे। दीवाली की रात के बाद, जबकि दीयों की लौ बुझ चुकी थी और पटाखों का शोर रोजाना के काम में मद्धम पड़ गया था, उन्होंने मुझे अपने कमरे में बुलाया।

"तुम्हारे लिए एक बड़ा काम है।"

उन्होंने मुझे एक कप चाय और सिगरेट पेश की।

"क्या काम है ?"

"पंखाबाड़ी चाय बागान में हडताल हो गई है। तुम एक पुलिस की टुकड़ी ले कर डी. एस.पी. हारेन बनर्जी के साथ वहाँ जा कर कानून-व्यवस्था बनाए रखो।"

"क्या वहाँ शांति भंग होने का खतरा है?"

"कई तरह के खतरे हैं। मजदूरों को त्योहार पर बोनस नहीं दिया गया। उस कंजूस मारवाडी ने तालाबंदी का ऐलान कर दिया है। क्या तुमने गोरखा नेता देव प्रकाश राय का नाम सुना है ?"

"जी हॉ।"

"वह पंखाबाडी में डेरा डाले हुए है। काफी गडबडी का अंदेशा है। तुम्हारी अग्निपरीक्षा आज से शुरू समझो। जाओ।"

लिहाजा मैं, प्रोबेशनर असिस्टेंट सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस, अनुभवी डी.एस.पी हारेन बनर्जी के साथ जीप में सवार हो गया। हारेन बडा प्यारा इन्सान था। फुसफुसाहट में बात करना उस की खासियत थी। यह खासियत उसने डी.आई.बी. (जिला खुफिया ब्रांच) में स्थानिक कर्मी रहने के दिनों में विकसित की थी। जिला पुलिस के सभी गंदे और संदिग्ध काम उसे ही करने पडते थे।

बहुत बाद दिल्ली में आनंद पर्वत ट्रेनिंग सेंटर में मेरे आई.बी. के प्रशिक्षकों ने मुझे सिखाया कि अच्छा और धारा प्रवाह बोलना किसी गुप्तचर अधिकारी की विशेषता नहीं कहलाती। तीस साल तक प्रमुख गुप्तचर संगठन की सेवा करने पर मुझे पता चल चुका है कि वे गलत थे। किसी भी गुप्तचर या महान गुप्तचर के लिए कोई ऐसा नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता। खूब बोलना और कम बोलना दोनों गुण इस के लिए जरूरी हैं। दरअसल एक सफल गुप्तचर एक अच्छा अभिनेता और संभाषण कुशल व्यक्ति होता है। आवाज को बदल कर पेश करने का नाटकीय अंदाज भी उसे सीखना होता है।

"आप को बहुत सावधान रहना होगा, सर। देवप्रकाश खतरनाक आदमी है।"

हारेन ने मुझे आने वाले जोखिम के बारे में आगाह किया।

"क्या वह हत्यारा है?"

"नहीं तो। लेकिन वह पियक्कड है और मजदूरों को हिंसा पर उकसा सकता है।"

"हमें क्या करना है? क्या हमें हडताल तुडवा कर प्रबंधकों की मदद करनी है?"

"सर, आप नए हैं," हारेन ऐसे बोला मानो हितोपदेश का कोई श्लोक सुना रहा हो, "पंखाबाडी चाय बागान का मालिक मोतीराम बागडिया डिप्टी कमिश्नर का खास दोस्त है।"

"ठीक है। पर तुम्हें क्या आदेश दिए गए हैं?"

"देवप्रकाश को गिरफ्तार कर के सिलीगुडी जेल ले जाना।"

"क्यों ?"

"वह उपद्रवी है और यही आदेश है।"

"हम रात को कहाँ ठहर रहे हैं?"

मैंने हारेन से पूछा। इस उम्मीद के साथ कि हमें हिमालय की ठंडी रात खुले में तो नहीं गुजारनी होगी।

"कोई चिता न करो, साहब। मैनेजर रत बसु ने हमारे ठहरने का बदोबस्त पखाबाडी चाय बागान के गेस्ट हाउस मे कर दिया है।"

"मैं तो बाहर रहना पसद करूँगा। मुझे सर्किट हाउस उतार दो।"

"क्या बात है, साहब?" हारेन ने मेरी ओर देखा। उस की निगाहो से उलझन झलक रही थी। "सब से पास का सरकारी गेस्ट हाउस भी चाय बागान से पाच मील दूर कुर्सियाग मे है। आस-पास कोई अच्छा होटल भी नही।"

"अगर मै कुर्सियाग के सर्किट हाउस मे ठहरूँ और सुबह तुम से मिलू तो ?"

"जैसी आपकी इच्छा।"

मै अपनी जीप मे लौट आया। फिर वापस चढाई चढ कर सरकारी रेस्ट हाउस पहुँचा। वहॉ से सेवेथ डे एडवेटिस्ट चर्च का स्कूल दिखाई पडता था। देर रात मेरी नीद मे खलल पडा। धनबीर ने मुझे झकझोर कर जगा दिया था।

"साब, उठिए। एस पी साहब का फोन है।"

"हैलो मलय,"एस पी साहब ने अपनी सौम्य आवाज में कहा,"मेरे खयाल से तुम डी एस पी के साथ नही गए।"

"ऐसा नही है सर, मैं उस के साथ ही था। पर मै रात कुर्सियाग रेस्ट हाउस मे गुजार रहा हूँ।"

"वहॉ रहने की कोई खास वजह ?"

"सर, मैने जरा बेतकल्लुफी से कहा,"मैन सोचा कही मजदूर यह न समझे कि मै मैनेजमेट के साथ हूँ।"

"मै समझ गया। गुड नाइट।"

ए पी मुखर्जी ने मुझे उन की गुडनाइट का जवाब देने का मौका दिए बिना ही लाइन काट दी। मै उनके बात करने के अदाज के बारे मे सोचने लगा। मै उस में छिपे अर्थ खोज रहा था। मैं अचभे मे था। बहरहाल मैने अपने फैसले पर टिके रहने की सोची। मैंने धनबीर को सुबह सात बजे नाश्ता तैयार रखने को कहा।

आखिरकार मै उस रात फिर सो ही गया। धनबीर ने सुबह फिर मुझे झकझोर कर जगाया। बाहर भी एक जलजला-सा था। मैंने बहुत सी आवाजें सुनी जो आपस में बहस कर रही थी।

उन मे से कुछ नशे मे जोर-जोर से मेरा नाम ले रहे थे।

"क्या हुआ धनबीर?"

उस ने मुझे नेपाली मे बताया कि गोरखा नेता देवप्रकाश राय दो और लोगों के साथ ड्राइंगरूम मे मेरा इंतजार कर रहा है। वे सब नशे गें हैं और खुखरियो से लैस हैं।

"आप के पास पिस्तौल है ना ?" धनबीर ने घबरा कर पूछा।

मैंने उस की घबराहट पर कोई ध्यान नहीं दिया। मुझे बताया गया था कि एक सभ्य नेपाली की पहचान यह होती है कि वह दावडा-सुरुअल (नेपाली कमीज-पाजामा) पहने हो। उस के कमरबद मे खुखरी लटक रही हो और पेट में कुछ आउस दारू हो।

मैंने उसे ऊनी गाउन पहनने मे मदद करने और एक सिगरेट देने को कहा। इस तरह तैयार हो कर और धनबीर की मर्जी के खिलाफ बिना पिस्तौल के मैं उस कमरे में दाखिल हुआ जहॉ गोरखा आंदोलन के तीन मुखिया बैठे थे।

"क्या आप नए सब डिवीजनल पुलिस आफिसर हैं?"

देवप्रकाश ने मुझ से रूखी आवाज में सवाल किया।

"नहीं मैं नया प्रोबेशनर ए.एस.पी. हूँ। क्या मैं आप की कोई मदद कर सकता हूँ ?"

मैंने यह वाक्य सही नेपाली में बोला पर मेरी आवाज में अक्खडपन साफ झलकता था।

"होहोहो"देवप्रकाश ने ठहाका लगाया,"यह लडका जरूर तरक्की करेगा।"

उस ने यह बात अपने एक साथी से कही थी। बाद में मुझे पता चला वह साथी उस का दायॉं हाथ सांगे प्रधान था।

"मुझे खुशी है कि आप ने पंखाबाड़ी प्रबंधकों की मेजबानी कबूल नहीं की। आप इस जगह नए आए हैं। मैं जानता हूँ कि जमी हुई बर्फ के मुकाबले नर्म बर्फ पर चलना आसान होता है।" उस ने अपनी बात इसी लफ्फाजी वाले अंदाज में जारी रखी। इस में वह नेपाली, अंग्रेजी, हिंदी और बंगाली की खिचडी मिला रहा था। "पखाबाडी के मजदूरों को पिछले छः महीनो से तनख्वाह नहीं मिली है। मैनेजर रत बसु डिप्टी कमिश्नर का दोस्त है। जलपाईगुडी स्थित कमिश्नर, मालिक मोतीराम बागडिया का।"

"मुझे मालूम है," मैंने सिर हिला कर रुखाई से कहा।

"दशहरा आया और चला गया। अब बडा दिन और नया साल आने वाले हैं। मजदूरों के पास खाने को अनाज नहीं। उनके पास पहनने को कपडा और जाडे से बचने के लिए ईंधन तक नहीं है।"

"मैं समझता हूँ।"

"मैं जानता हूँ आप मुझे गिरफ्तार करना चाहते हैं। शौक से कीजिए। पर हथकडी लगाने से पहले आप को कुछ मजदूरों को जान से मारना पडेगा। मैं आप को यह भी बता दूँ कि इस के साथ ही दार्जीलिंग और पहाड की तलहटी के सभी चाय बागानो में अनिश्चितकालीन हडताल हो जाएगी। आप क्या चाहते हैं ?"

"मैं फैसला करने वालों में से नहीं। पर मैं आप को विश्वास दिलाता हूँ कि मै एस.पी. से बात करूँगा। तब तक जरा रुकिए।"

"क्या रुकें?"

"जो स्थिति है, उसे बनाए रखें।"

"क्या आप इस से बेहतर पेशकश कर सकते हैं?"

"इस वक्त तो नहीं। अच्छा होगा कि आप भी कोई सब से अच्छा विकल्प सोचें। मेरे खयाल में आप भी त्योहार के दिनों और नए साल से कुछ पहले ही अनिश्चित काल की हड़ताल का ऐलान करना पसंद नहीं करेंगे।"

"तो आप कब मुझे बताएंगे?"

"मेरे खयाल में सुबह 10 बजे तक का समय एकदम वाजिब होगा।"

"रामरो (सुंदर)। पर कोई हल निकालें।"

"एक बात और," मैंने गोरखा नेता से पूछा,"आप को किस ने बताया कि मैं यहाँ हूँ ?"

"आपके अपने तरीके हैं और हमारे अपने खबरची हैं।"

देवप्रकाश और उस के साथी बाहर निकल गए। उन की लैंड रोवर के इंजिन की आवाज से मैं समझ गया कि वे उतराई पर पंखाबाड़ी को जा रहे थे।

रतिकातो उर्फ रत बाबू एक नबर का चट और मौकाशनास था। बडी मुश्किल से मै उस की मेजबानी को एक कप चाय पर रोक पाया। फिर भी उसके साथ दार्जीलिग के फ्लरीज से मंगाए केक और पेस्ट्रियो का उस ने पहाड लगा दिया।

हारेन मेरे पास आ कर फुसफुसाया।

"देवप्रकाश सताईबाडी मे ठहरा है। मेरे आदमी उसका पीछा कर रहे हैं। मैने उन से रेडियो संपर्क बना रखा है। चल कर उसे उठा लाते हैं।"

"बेहतर होगा कि तुम एस पी से बात कर लो। मेरे खयाल मे अब यह आदेश नही।"

"पर मेरी तो दस मिनट पहले कमिश्नर से बात हुई है।"

"तुम एस पी के मातहत हो। बेहतर होगा कि उन से आदेश लो।"

मैने फिर रत बसु पर ध्यान दिया। उस ने नेताजी सुभाष बोस से अपना रिश्ता बताते हुए अपने खानदान का बखान करना शुरू कर दिया था।

मुझे यह कहने का हौसला नही हुआ कि नेताजी चाहे जिदा हों या नही, वह गोरे साहबो और अब मोटी तोद वाले मारवाडियो से उस की निकटता के लिए उसे जरूर अपने वश से निकाल बाहर करते। आखिर इन मारवाडियो ने देश का कुछ भला करने के बजाय हमेशा अपनी जेबे ही भरी है। इन्ही के एक नामी पुरखे ने क्लर्क से जनरल और लुटेरा बन बैठे अग्रेज राबर्ट क्लाइव को बगाल और हमारा देश बेच डाला था। गोरे साहब ने जी भर कर पैसा लूटा और उसे इगलैंड ले गया। मोटे मारवाडी ने ज्यादातर अपना पैसा दिल्ली और मुबई जैसे नए औद्योगिक केद्रों मे पहुचा दिया और राजस्थान के रेगिस्तानो मे सगमरमर की हवेलियॉ बनवा ली।

फोन पर बात करने के बाद हारेन बनर्जी का चेहरा पीला पड गया। उसने शक की नजर से मेरी तरफ देखा।

"हम लोग बाहर चल के पुलिस बदोबस्त करे ?"

मैने उस से पूछा।

"जी,सर।" हारेन चुपचाप मेरे पीछे चल पडा।

"आप देवप्रकाश को नही पकडेगे ? वह सताईबाडी मे है," बसु ने कहा।

"मिस्टर बसु, मुझे ऐसा आदेश नही मिला" मैने जरा सभल कर जवाब दिया। "मुझे बागान की सपत्ति और प्रबधक कर्मचारियो की जान की हिफाजत का बदोबस्त करने को कहा गया है। यही मै करने जा रहा हूँ।"

"पर मुझे तो एस पी ने और ही कुछ कहा था।"

"मुझे जो आदेश मिले हैं, मै उनका पालन करने जा रहा हूँ।"

"मैं डिप्टी कमिश्नर और डिवीजनल कमिश्नर को फोन करूँगा।"

"बड़ी खुशी से, मिस्टर बसु।"

पंखाबाडी चाय बागान जाने वाली मुख्य सडक कुर्सियाग-मोतीघरा-सिलीगुडी की बजरी वाली सडक से निकलती थी। इससे दार्जीलिग और सिलीगुडी का रास्ता करीब नौ किलोमीटर छोटा हो जाता था।

मैंने फैक्टरी के गेट पर एक जे सी ओ और तीन सिपाही तैनात कर दिए। इसके अलावा प्रबंधक कर्मचारियों की सुरक्षा के लिए चार लाठी वाले सिपाही कुर्सियांग थाने के एक अफसर के मातहत तैनात कर दिए। मोटे और चापलूस नेपाली सब-इस्पेक्टर ऐता बहादुर राना ने

कस के खीसें निपोरीं। उसने मुझे टूटीफूटी बंगाली में कहा कि मैंने बिलकुल सही कार्रवाई की है। सोनाडा, बिजनबाड़ी, लैपचू, मोकाइबाडी, सिमाना, पानीघाट और हैप्पी वैली सहित लगभग सभी पहाडी चाय बागानों में तनाव बढ़ रहा था । आदिवासी संथाल, ओरांव और मुंडा मजदूर भी नेपाली मजदूरों के साथ मिल गए थे। उसने एक और खुफिया जानकारी दी। गोरखा लीग और अलग गोरखा प्रांत के समर्थकों ने अपने हथियार तेज करने शुरू कर दिए थे। चाय बागान में आम हडताल होने से उन के आंदोलन को बल मिलता। इसलिए वे इसके हक में थे। सिर्फ स्थानीय मामला तो सियासी बन कर रह जाता।

मैंने राना का शुक्रिया अदा किया। फिर कई तरह की आशकाओं के साथ दार्जीलिंग के लिए रवाना हुआ। मैंने शक्तिसम्पन्न डिप्टी कमिश्नर और डिवीजनल कमिश्नर के खिलाफ काम किया था। मिस्टर इवान सुरिता एक इज्जतदार एंग्लो-इंडियन थे। वह रायल इंडियन आर्मी के शार्ट सर्विस कमीशन से भारतीय प्रशासनिक सेवा मे चले आए थे। डिप्टी कमिश्नर भी भारतीय प्रशासनिक सेवा से थे। पर वह मेरे लिए बिलकुल अनजान थे।

उस शाम मुझे एस.पी. के नियंत्रण कक्ष में बुलाया गया। मैती ने मुझे सब से अच्छी कलफ लगी वर्दी और पालिश किए जूते पहनने की सलाह दी।

"कुछ गडबड है, मैती?"

"क्यों चिंता करते हो,क्या तुम पहले कभी आर्डर्लीरूम में पेश नहीं हुए ?"

उस ने मुझे सारा तौर-तरीका याद दिलाया जिस के तहत किसी उद्दंड अफसर को अपने वरिष्ठ अधिकारी के सामने सजा के लिए पेश होना होता है।

"ऊं हूँ, मैती। पर मामला क्या है?"

"हिम्मत न हारो। यह लो सिगरेट पीयो और अपने भगवान पर भरोसा रखो।"

मैती ने मुझे चलता किया। मैं भागा-भागा अपने क्वार्टर में गया ताकि कपडे व जूते बदल सकूं।

यह आर्डर्ली रूम न था। वहॉ मुझे बॉस के सामने पेश करने वाला कोई अफसर मौजूद न था। मुझे बडी शालीनता से अंदर भेजा गया। वहॉ जलपाईगुडी के नामी कमिश्नर इवान सुरिता ने खुद बैठने को कहा।

"अच्छा तो तुम हो, धर ?"

"जी, सर।"

"मेरा हुक्म न मानने के पीछे तुम्हारा क्या तर्क था? तुम ने राय को गिरफ्तार क्यों नहीं किया ?"

"सर," मैंने कुछ घबरा कर बोलना शुरू किया, "मुझे अपने कमांडर एस.पी. साहब से हुक्म लेना सिखाया गया है। मैंने वैसा ही किया। अगर आप के पास समय हो तो मैं अपना तर्क भी बता देता हूँ। "

इवान ने एक सिगरेट सुलगाई। उन के चेहरे पर मुस्कराहट झलकी।

उन्होंने मेरी बात ध्यान से सुनी। उस में ऐता बहादुर राना से मिली गुप्त सूचना भी शामिल थी। अंततः मैंने कहा कि देवप्रकाश की गिरफ्तारी राज्य सरकार को बहुत महंगी पड़ती। गोरखा आंदोलन लगभग अपने चरम पर था। कलकत्ता में राज्य सरकार भी बहुत स्थिर नहीं थी। इस के अलावा अभी-अभी कश्मीर में खत्म हुई लडाई ने देश को निरंतर बदलते हालात

मे ला खडा वि या है। ऐसे मे क्या रत बसु को सतुष्ट करने के लिए गोरखाओ को एक और मोर्चा दना ठीक रहता ?

बहुत अच्छे। तुमने दुनिया के बारे मे यह नजरिया कहॉ से सीखा ? मै बहुत प्रभावित हुआ हूँ। मेरे साथ एक जाम लो।

सुरिता ने अपने लिए एक तेज व्हिस्की बनाई। मुझे एक छोटा पेग दिया। अपने खास राभात लहजे मे वह जरा जोर से बोले।

धन्यवाद। यह जारी रखो।

हम ने राथ-राथ ड्रिक लिए। उस दिन शाम को एस पी ने मुझे अपने कमरे मे बुलाया। उन्हाने बताया कि मुझे व्यावहारिक प्रशिक्षण के लिए सिलीगुडी के सब डिवीजनल पुलिस आफिसर के कार्यालय मे भेजा जाएगा। पुलिस स्टेशन ट्रेनिग के लिए मुझे नक्सलबाडी मे आठ हफ्ते गुजारने होगे। मैने चुप-चाप आदेश मान लिए। मै समझ गया था कि यह सजा नही है। नक्सलबाडी के जगलो म जा इतिहास बन रहा था एस पी के आदेश ने मुझे उसका हिस्सा बनन का मौका दिया। इसन मुझ उन प्यारी आखो की स्वामिनी से भी मुलाकात का मौका दिया जिसन मेरे मन म हमेशा के लिए जगह बना ली थी।

मै खुशनसीब था जो उस एतिहासिक दौर का हिस्सा बना। वह शायद निरीह दौर के आखिरी दिन और उस क्रूरतम समय की शुरुआत थी जिस ने 1965 के कश्मीर युद्ध के तुरत बाद और दिल्ली व कलकत्ता मे नेतृत्व परिवर्तन के बाद भारत को अपनी गिरफ्त मे ले लिया था। कांग्रेस सरकार की साख बहुत गिर गई थी और पार्टी के सूत्रधारो का वास्तविकता से सपर्क टूट चुका था। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी अब दो फाड हो चुकी थी। पर उस ने अपनी चुनावी रणनीति की धार पैनी कर ली थी।

उस ने औद्योगिक ओर सेवा क्षेत्र म हडताले करवा के राज्य सरकार का चक्का जाम कर दिया। समाज के शात और सम्य माहौल की जगह अपराध ने ले ली। दरअसल बगाल मे राजनीतिक दलो ने सवैधानिक पद्धति के अपराधी वर्ग की हिसा और बदूक की नाल के सामने सिर झुकाने का सिलसिला शुरू कर दिया था।

हिदुत्व आदोलन और उस के राजनीतिक स्वरूप जनसघ को अभी बगालियो मे अपनी जडे जमानी थी। पूर्वी पाकिस्तान से आए बगाली कांग्रेस और हिदुत्व वाली राजनीतिक पार्टी दोनो का शक की नजर से देखते थे क्योकि ये दोनो ही उन के हितो की रक्षा करने मे असफल रहे थे। कम्यूनिस्टो ने उनकी इस बेबसी का फायदा उठाना शुरू किया। समाज खुल्ल-मखुल्ला बॅट गया। कांग्रेस की कमजोर पडती राजनीतिक पकड और दिल्ली मे नेतृत्व परिवर्तन के चलते अब तक उपेक्षित सामाजिक और आर्थिक सुधार की रफ्तार तत्कालीन सामाजिक मूल्यो की तुलना म बहुत तेज हो गई। परिवर्तन और भिडत का माहौल बन गया। घरेलू परिवर्तनो का अतर्राष्ट्रीय स्तर पर होने वाले परिवर्तनो से बडा पेचीदा-सा सबध था।

<2>

पानी की पहली जाँच

मूर्ख अपनी अन्य गलतियो के साथ-साथ एक यह गलती भी करता है—वह हमेशा जीने की तैयारी मे रहता है।

एपीकोरस

6 दिसबर,1965

एस डी पी ओ सिलीगुडी मे मेरी तैनाती बडा उत्साहवर्द्धक अनुभव रहा। युवा सब-डिवीजनल पुलिस ऑफिसर दीपक घोष पुलिस के कार्यकलाप अपराध की छान-बीन और रोक-थाम मे कत्तई माहिर न था। बहुत करीब से न सही पर जैसा मैने पुलिस बल को देखा वह अपराध से लडने के लिए लैस न था। पुलिस स्टेशन या तो किराए की इमारतो मे थ या फिर बदहाल सरकारी इमारतो म। अपराधो के ग्राफ क हिसाब से जितन पुलिस अफसर और जवान चाहिएँ थ उस से बहुत कम थ। उन के पास परिवहन क साधनो की भी कमी थी। कुछ पुलिस स्टेशनो के पास तो जीप तक नही थी। अपराध वाले इलाके मे पुलिस की गश्त की धारणा भी बमानी हो चुकी थी। '

1965 तक सिलीगुडी राजनीतिक और आपराधिक गतिविधियो का केद्र बन चुका था। यह मुख्य भारत-भूमि को उत्तरपूर्व राज्यो से जोडने वाली प्रधान धारा तो थी ही पडासी बिहार नेपाल भूटान और पूर्वी पाकिस्तान के अपराधी गिरोह प्यार से चिकन नेक पुकारे जान वाले इस सकरे इलाके मे बेखौफ अपना धधा करत थे। वे खुल्लम-खुल्ला चाय बागानो मे वारदाते करते। वे चाय बागान के अमीर मैनेजरो या लकडी के व्यापारियो को लूटते क्षत-विक्षत करत या उन की हत्या ही कर डालते। कुछ गैरकानूनी लकडी व्यापारियो की अतार्राज्यीय अपराधियो से साझदारी भी थी। इतना ही नही भ्रष्ट राजनीतिज्ञो पुलिस और राजस्व अधिकारियो की कृपा से भारत और नेपाल का तस्करी रूट खूब फल-फूल रहा था।

1962 के चीन के साथ युद्ध के बाद सिलीगुडी और उसके आसपास के इलाक का सामरिक महत्व हो गया था। पाकिस्तान के साथ हाल ही मे खत्म हुई लडाई ने वहा सेना की उपस्थिति बढा दी थी। बागडोगरा की हवाई पट्टी बाकायदा वायुसेना के हवाई अड्डे के तौर पर काम करने लगी थी। बीनागुडी के आसपास के छोटे पुरवो मे भी हलचल काफी बढ गई थी। वहाँ सेना और सीमा सडक के इजीनियर कोर मुख्यालय के लिए बुनियादी ढाँचा बनाने मे जुटे थे।

इस सामरिक उद्विग्नता के अलावा एक सशक्त चीन-परस्त वामपथी कम्यूनिस्ट आदोलन भी भूमिहीनो और चाय बागान के अभावग्रस्त मजदूरो मे सिर उठा रहा था। चारु मजूमदार

और उसके काबिल सहायक कनु सान्याल इस आदोलन के मुखिया थे। उन्हे एक और काबिल साथी जगल सथाल मिल गया था। वह चाय बागान मजदूर था। 1964 मे मास्को ओर चीन कैप के विभाजन के बाद चारु धडा अपनी मूल कम्यूनिस्ट पार्टी से अलग हो गया था। दरअसल विभाजन के बाद अखडित कम्यूनिस्ट पार्टी सी पी आई और सी पी आई (एम) मे बॅट गई थी। एम का मतलब था मार्क्सवादी। बेचारे मार्क्स क सैद्धातिक अनुयायियो के मुकाबल कही ज्यादा मार्क्सवादी।

सिलीगुडी पुलिस के प्रमुख दीपक ने इन उथल-पुथल वाली लहरो पर तैरना सीख लिया था। मेरे राजनीतिक आपराधिक और सुरक्षा सबधी मसलो पर चर्चा करने क प्रस्ताव को उस न कभी ज्यादा तवज्जो नही दी। वह एक ठेठ और अच्छा पुलिस वाला था। वह आदश का बखूबी पालन करता। लेकिन जा भयानक घटाएँ सिर पर घिरनी शुरू हो चुकी थी उनको लेकर वह अपनी नीद हराम नही करता था। वह और उसकी पत्नी दोनो मेरे साथ बहुत अच्छे थे। अक्सर मै उन का मेहमान रहता। मे उस दपती का शुक्रगुजार हूँ। उन्होन ही शादी स पहले बडे अधिकारी डी आई जी की बेटी सुनदा से मेरी मुलाकाते करवाई जा अब मेरे सपना की सहभागिनी बन चुकी थी।

मै दीपक क साथ सभी जघन्य अपराधो क घटनास्थल पर जाता। उससे मैन विधिक तकनीक की बुनियादी बात और केस डायरी लिखने की तफसील सीखी। आम डायरियो का भरने और छानबीन करने की प्रक्रिया सीखी। एक और गुर जो उस ने मुझे सिखाया वह था पुलिस थाने का निरीक्षण करना। दीपक बहुत प्रतिभाशाली ता न था लेकिन उसम बारीकी के साथ छान-बीन करने क गुण मोजूद थे। उसने मुझ सब्र करने और एक सुराग पर बार-बार सोचने के लाभ समझाए। वह इस बात पर जार देता था कि बार-बार निरीक्षण करने ओर विश्लेषण करने से किसी स्थिति को बेहतर समझा जा सकता है।

पर किसी भी समस्या या विषय पर मेरे दोहरे नजरिए का वह पसद नही करता था। वह इस बात स कभी सहमत नही हुआ कि किसी भी स्थिति विशेष का परस्पर विरोधी विचारा क घालमेल के साथ देखना चाहिए। तभी सही हल तक पहुँचा जा सकता हे। उसके दिमाग म लडने वाली गिलहरियॉ नही थी। बगाल पुलिस विनियम का वह पूरी मुस्तैदी स पालन करता था जो बगाली पुलिस अफसरो के लिए वेद से कम नही। उसन भारतीय दड सहिता दड प्रक्रिया सहिता भारतीय साक्ष्य अधिनियम और बगाल पुलिस विनियम के दायरे से बाहर कभी कुछ नही किया। एक बार उसन तभी किताब के आदेश से बाहर काम किया जब उसके आला अफसर ने ऐसा करने की हिदायत दी। मै इस बात की तारीफ करता था कि वह एक अनुशासित पुलिसवाला है। पर उस मे मानवीयता और आत्मा क स्पर्श का बिलकुल न होना मुझे पसद न था।

नक्सलबाडी बिहार ओर बगाल की सीमा पर एक ऊँघतासा कस्बा था। उसके विस्तृत चाय बागान थे। उसकी जमीन जरखेज थी। वह वन सपदा से समृद्ध था। उसका सामरिक महत्व भी था। पूर्वी पाकिस्तान का तिनतुलिया नक्सलबाडी बाजार के केद्र से बहुत दूर न था। नेपाल से सटी सीमा ने उसे और असुरक्षित बना दिया था।

उस के बाशिदो मे विचित्र मिश्रण था। चाय बागान के मजदूरो मे ज्यादातर सथाल ओराव मुडा और हो थे। साथ ही अच्छी तादाद मे नेपाली भी। ऊची जाति के बगाली जोतदार जगल के ठेकेदार या व्यापारी थे। छोटी जाति क बगाली जोतदारो के खेत जोतते या उन

के चाय बागानो मे काम करते। यह 'बारगा' (बटाई) के आधार पर होता। पूर्वी पाकिस्तान से आने वाले बंगाली यहाँ के मूल निवासियो कूछ, मेच्छ बोडो, टोटो और राजबगशी पर हावी हो गए। आर्थिक दृष्टि से उन्हे सब से बुरी मार पडी। राजनीतिक और आर्थिक उपेक्षा के शिकार इन मूल निवासी धरतीपुत्रो का कोई ठौर-ठिकाना न था। बहुत बाद मे ये लोग असम आदोलन के माहौल से प्रभावित हुए और इन्होने क्षेत्र के मूल-वासियो के लिए पृथक गृहराज्य की माँग करनी शुरू की। 1995 के आते-आते कामतापुरी आदोलन की ओर पाकिस्तान की इटर सर्विस इटेलिजेस और बागलादेश की डाइरेक्टर जनरल आफ फोर्स इटेलिजेंस (डीजीएफआई) का ध्यान गया।

1965 मे भी बिहार उत्तर प्रदेश, पजाब और राजस्थान की बहुत बडी अस्थिर जनसख्या ने कलकत्ता के बगाली भद्रलोक राजनीतिज्ञो की राजनीतिक व आर्थिक उपेक्षा का फायदा उठा कर इस क्षेत्र मे अपने आर्थिक चगुल फैलाने शुरू कर दिए। अब स्पष्टत बगाल का एक बडा हिस्सा तेजी से अपना मूल और बगाली स्वरूप खो रहा था।

पूर्वी पाकिस्तान से आए बगाली शरणार्थियो के पास कोई स्थायी रोजगार नही था। उन्हे जो मिलता कर लेते। बिहारी ज्यादातर वन सपदा के कानूनी और गैरकानूनी दोहन तथा भारत-नेपाल के बीच तस्करी मे लगे हुए थे। इनमे से कुछ ने बागडोगरा सिलीगुडी और बीनागुडी मे सेना के ठेके लेने भी शुरू कर दिए थे। पजाबी परिवहन के धधे तक सीमित थे।

इस धरती के मूल निवासियो का क्षेत्र के आर्थिक और राजनीतिक नक्शे मे कही नामोनिशान न था। वे ज्यादातर बेजमीन बेरोजगार थे। कुछ परिवार गाय बकरी भेड पाल कर गुजारा करते थे। पर उन्हे हमेशा पाकिस्तानी और भारतीय अपराधियो से इनकी चोरी का डर बना रहता। नक्सलबाडी कुछ के लिए सोने की खान थी तो ज्यादातर के लिए तगहाली और विपत्ति का घर थी। बगाल का बाकी हिस्सा -भारतीय बगाल का दक्षिणी और पश्चिमी भाग-इत्तिफाक से विकसित हुए कलकत्ता (कोलकाता) व उस के आसपास के औद्योगिक केंद्रो के साथ फल-फूल रहा था। वह अपने उत्तरी भाग के बारे मे सिर खपाना नही चाहता था। दरअसल कलकत्ता ने कभी भी ग्रामीण और शहरी क्षेत्र की परिधि पर बसे बगाल की ज्यादा परवा नही की, जिसे न तो शहरी अमीरी नसीब हुई न ही साम्राज्य व शासको के पिछलग्गुओ की सस्कृति।

नए उत्तराधिकारी इस सकेत को पकडने मे असफल रहे कि 'सोनार बागला' विलुप्त होना आरभ हो गया है। उसका उद्योग व वाणिज्य बेहतर क्षेत्रो की ओर आकर्षित होता जा रहा था। उसका कृषि क्षेत्र बुनियादी ढाँचे के अभाव से त्रस्त था। 1965 तक उसकी राजनीतिक चमक भी धीमी पड गई थी। दिल्ली के नए राजनीतिक आकाओ का ध्यान अन्य वरीयताओ की तरफ था।

थोडे में कहें तो भारतीय बगाल का उत्तरी भाग गभीर राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक संकटों में फंस गया था। सिलीगुडी बढ़ी तेजी से अवसरवादी शिकारी कुत्तों का शहर बनता जा रहा था जो इस कुआरी धरती पर अपने उपनिवेश बनाने की भूखी नीयत से पैर पसार रहे थे। चाय के क्षेत्र मे मारवाड़ी व्यापारियो के अतिक्रमण से अपने आप को कुछ अग्रेज कंपनियाँ ही बचा पाईं। असम की तरह ही दार्जीलिग-सिलीगुडी-जलपाईगुडी दुआर चाय उत्पादन के बडे जरखेज केंद्र थे। लेकिन चाय और वन संपदा से मिलने वाले राजस्व का लाभ इस क्षेत्र तक कभी नहीं पहुँचता था।

इस आर्थिक संकट ने एक नए सैद्धांतिक संघर्ष को जन्म देना शुरू किया। लेकिन दिल्ली और कलकत्ता की सोच यह थी कि प्रशासनिक अग्निशमन हर तरह की आग बुझा सकता है। इसमें सिद्धांतों की आग के साथ भूख से बेहाल लोगो के पेट की आग भी शामिल थी।

नक्सलबाडी थाने के इंचार्ज शैलेन मुखर्जी ने मुझे जो समझाया उसका सार भी यही था। वह एक परवाह न करने वाला पुलिस अफसर था। दूसरे पुलिस अफसरों की तरह वह समझता था कि कम से कम मामले दर्ज करने और ज्यादा से ज्यादा गंदगी को नक्सलबाडी के जंगलो की हरी घास के नीचे छिपा देने से उस के कर्त्तव्य की पूर्ति हो जाएगी।

मैं उसकी हिदायतों पर नहीं चला। पर इतना कहना चाहूँगा कि मुखर्जी और उसके डिप्टी निताई पाल ने मुझे पुलिस स्टेशन का बंदोबस्त चलाने, अपराध रोकने और बुनियादी स्तर पर सूचना एकत्र करने के बडे अच्छे गुर सिखाए।

बहुत बाद में आई.बी. में दस साल बिताने के बाद मुझे यह एहसास हुआ कि पुलिस थाने गुप्त सूचनाओं के सब से बडे स्रोत होते हैं। जिला मुख्यालय में बैठे किसी चौकन्ने गुप्तचर अधिकारी के लिए गॉव के चौकीदार, दफादार, मुखिया, मास्टर, डाकिया, स्वास्थ्यकर्मी, उपदेशक आदि का विस्तृत तत्र चमत्कारिक सूचनाएँ एकत्र कर सकता है।

एक समझदार पुलिस अधिकारी हमेशा उन के साथ दूरदराज गॉवो के बारे में जानकारी पाने के लिए कुछ समय बिताता है। इसके अलावा ये लोग भी हमेशा एस.एच.ओ को अपने यहां चलने वाली महत्वपूर्ण गतिविधियों और बदलते हालात की सूचना देते रहते थे। थाना इंचार्ज साप्ताहिक बाजार का इस्तेमाल अंदरूनी इलाको का हाल जानने के लिए करते रहते थे।

यह जानकारी नियमित रूप से सब डिवीजनल अधिकारी और एस.पी. को भेजी जाती थी। जिला इंटेलिजेंस अधिकारी इस जानकारी को खुफिया सूचनाओं की शक्ल दे देता था। एस पी. की इंसपेक्टर जनरल पुलिस को मासिक रिपोर्ट और समय-समय पर भेजी गई विशेष रिपोर्ट से राज्य सरकार का राज्य के छोटे से छोटे और दूरदराज गॉवो से भी संपर्क बना रहता था।

भारत सरकार के एजेंट और आई.बी. के अधिकारी कभी भी थाने वालों की पैठ का मुकाबला नहीं कर सकते। दुर्भाग्यवश आजादी के बाद के भारत मे महत्त्व देने में परिवर्तन आ गया है। थानों का पतन हो गया है। वे अब प्रशासनिक सजावट बन गए हैं। अब वहॉ कम संख्या में अपराधों का पता लगाया जाता है। उससे भी कम संख्या में रोक-थाम की जाती है। अब वे ज्यादातर राजनीतिज्ञों तथा पुलिस और प्रशासन के अधिकारियों की इच्छापूर्ति के केंद्र बन चुके हैं। मेरे विचार में स्वाधीनता आंदोलन के दिनों में थाने का जितना खौफ था, आज उससे कहीं ज्यादा है। पुलिस के संबंध आज राजनीतिज्ञों के निहित स्वार्थ और माफिया के साथ उससे कहीं अधिक हैं जितने उपनिवेशी शासन में थे।

नक्सलबाडी में मेरे छोटे प्रवास में मुझे जगदानंद राय से दोबारा मिलने का मौका मिला। यह वही क्रांतिकारी से अध्यापक बने सज्जन थे जो मुझे रेल के खचाखच भरे डब्बे में मिले थे। मैं मानता हूँ कि नक्सलबाड़ी स्कूल के हेडमास्टर जगदानंद राय ने इस क्षेत्र की सामाजिक व आर्थिक समस्याओं के बारे मे राय कायम करने में मेरी बहुत सहायता की। वह पुराने क्रांतिकारी थे, जिन्होंने मिदनापुर, बीरभूम और बांकुड़ा जिलों के दूरदराज भागों में अंग्रेजों के खिलाफ कई संघर्षों का नेतृत्व किया। जगदानंद ने अपने शुभचिंतकों के विरोध के बावजूद

नक्सलबाडी में नौकरी को तरजीह दी। वह चिरकुमार थे और नक्सलबाडी के एकमात्र सिनेमाहाल नीलम के पीछे सुदर-से झोंपडे में रहते थे।

मैं अपना कुछ खाली समय उन के पास बिताता। ग्रामीण आर्थिक परिवेश पर उन के विचार सुनता। वह बताते कि किस तरह नए राजनीतिक शासक बिना सोचे-समझे बडे शहरों को और समृद्ध बना रहे हैं। भारत की आत्मा गाँवों में रहती है। उन का विचार था कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था की उपेक्षा से अमीर और गरीब के बीच की खाई और चौडी हो जाएगी। इससे देश में जल्दी ही बडा सामाजिक विस्फोट होगा।

मै उनकी चिंता को समझता था। मेरे कान जमीन के पास थे। मैं मजदूरो के झोपडो और उपेक्षित गावों मे होने वाली सुगबुगाहट को सुन सकता था। छोटे भूमि-राजस्व कार्यालय के कुछ कर्मचारियो जैसे चौकीदारों व दफादारों से मैने कुछ ब्योरा इकट्ठा करना भी शुरू कर दिया था। ये लोग यूनियन बोर्ड के अधीन थे, जो एक प्रकार का स्थानीय निकाय होता है। जो तस्वीर उभर कर आई वह उत्साहवर्धक न थी। मैंने कुछ ब्यौरे अपने एस पी को भी दिए। उन्होंने मेरा उत्साह बढाने के लिए अपने गुप्त सेवा कोष से 25 रुपए की अनुमति दी। इतनी बडी राजसी रकम की अनुमति तो वह सिर्फ अपनी खुफिया शाखा के अधिकारियों को ही देते थे। किसी रगरूट को तो यह जानने का भी हक हासिल नही था कि एस पी के पास कोई इस तरह का गुप्त कोष होता भी है।

मैं चाय बागान के मैनेजरो और जगल के ठेकेदारो से मेल-जोल से जरा दूर ही रहा। उनमें से कुछ उभरते नौजवान ए एस.पी को आमत्रित करने के लिए पुलिस स्टेशन मे लाइन लगा कर खडे रहते। पर मैं पुलिस स्टेशन पर ही रहता और अक्सर मुखर्जी या पाल के साथ मौका-ए-वरदात पर जाता। मुझे अपनी स्वतत्र छानबीन का कोटा भी पूरा करना होता था। बहरहाल मैं एक तेजी से आते तूफान के बीचो-बीच था। यह था विख्यात या कुख्यात नक्सलबाडी आंदोलन।

* * * *

दिसबर के आखिरी दिन थे। दोपहर बाद का समय था। मै भारत-चीन युद्ध के पन्नो मे खोया था। तभी असिस्टेंट सब इस्पेक्टर निताई पाल बडी शान से थाने मे दाखिल हुआ। दो सिपाही उसके अगल-बगल थे। उस के बाएँ हाथ में एक नाटी सी काली बकरी की रस्सी थी। दाएँ हाथ में एक और रस्सी थी जो घुघराले बालो वाले एक आदमी की कलाई से बधी थी। वह आदमी गुस्से मे लग रहा था। उस के चौकोर चेहरे, बडी व चपटी नाक, छोटी लाल आँखों और माथे की एक गहरी दरार ने मुझे बता दिया कि निताई ने एक खतरनाक मुजरिम पकडा है।

निताई ने मुझे मुस्तैदी से सैल्यूट किया। तभी मेरा ध्यान उस गंदे कपडों वाले गुस्सैल आदमी की तरफ गया और मैंने उसका घाव भी देखा।

"मामला क्या है, निताई?" मैंने पूछा।

"सर, यह आदमी जंगल संथाल है। मैंने इसे चोरी के मामले में पकडा है। चोरी का माल भी मैंने बरामद कर लिया है।" मैं उठ खड़ा हुआ।

हारेन बनर्जी ने मुझे बताया था कि जंगल संथाल वाम चरमपंथियों की तिकडी का तीसरा चेहरा है। पहले दो चारु मजूमदार और कनु सान्याल थे। मेरे लिए इस बात पर विश्वास करना

मुश्किल था कि जंगल संथाल ऐसी छोटी चोरी कर सकता है। बहरहाल उसे सींखचों के पीछे पहुँचा दिया गया।

मैंने निताई पाल के आरोप की सच्चाई के बारे में पूछना ठीक नहीं समझा।

मैं लॉकअप तक गया और जिस पिंजरे में जंगल संथाल बद था, उस के पास जा कर बैठ गया।

"मैं एम.के. धर हूँ,"मैंने बेतकल्लुफी से अपना परिचय दिया ,"तुम शायद जगल संथाल हो?"

"मै जगल संथाल हूँ। तुम ए एस.पी हो या डी.एस.पी मुझे इस की परवाह नहीं। दफा हो जाओ।"

"तुम्हें निताई ने किस इल्जाम में पकडा है? क्या तुम मुझे सच्चाई बता सकते हो?"

"तुम क्या कर लोगे? तुम भी निताई की तरह किसी जोतदार के टहलुए जैसे ही हो।"

" शायद मैं कुछ मदद कर सकूँ।"

"तुम मदद नहीं कर सकते। चारु गुरू और कनु भूमिगत हो गए है। पुलिस के पास मेरे खिलाफ कुछ नही है। इसलिए उस ने मुझे चोरी के इल्जाम में पकडा है।"

"पर इस मामले की तो जमानत हो सकती है। तुम जरा देर में बाहर आ सकते हो।"

"मेरी गारंटी कौन देगा?"

"तुम्हारी पार्टी वाले।"

"पुलिस उन्हें अदालत के पास भी फटकने नही देगी।"

"मैं हेडमास्टर से बात करूं ?"

"नहीं। उन्हे मुसीबत में मत घसीटो। जा कर लडाई के मैदान में मेरा सामना करने की तैयारी करो।"

जंगल ने चीन के चेयरमैन माओ और गरीबों के लिए अपने संघर्ष के बारे मे कुछ नारे लगाए। पर इससे मैं उसे एक कप चाय और सिगरेट पेश करने से झिझका नहीं। हेड कास्टेबल ने मुझे कहा कि मैं किसी मुजरिम के साथ खा-पी नहीं सकता। यह बंगाल पुलिस विनियम के विरुद्ध होगा जो कोई 70 साल पहले बना था। मैंने उस के एतराज पर ध्यान नहीं दिया और जंगल को एक-दो चुटकुले सुना डाले।

रात को खाने की मेज पर शैलेन मुखर्जी ने इस मामले पर कुछ और प्रकाश डाला।

जंगल को गिरफ्तार करने का आदेश ऊपर से आया था। वे नहीं चाहते थे कि वह भी भूमिगत हो जाए और अनगढ हथियारों से लैस आदिवासी किसानों का नेतृत्व करे। चारु आंदोलन का दिमाग था, कनु योजनाकार था तो जंगल उन का लडने वाला बाजू था।

जगदानंद ने इस बात की बेहतर व्याख्या की। राइटर्स बिल्डिंग (राज्य सचिवालय) में बैठे राजनीतिज्ञ हर हाल में कानून-व्यवस्था बनाए रखना चाहते थे। वे चाय बागान के मालिकों और जंगल के ठेकेदारों को आश्वस्त करना चाहते थे कि किसी भी हाल में वाम चरमपंथियों को अपने विषदंत दिखाने का मौका नहीं दिया जाएगा।

भारत की कश्मीर में पाकिस्तान से दूसरी सशस्त्र झडप तो बिना कोई नतीजा खत्म हो गई थी, लेकिन चीन अभी भी सिक्किम सीमा से भारत की गर्दन पर फुफकार रहा था। चुंबी घाटी में चीनी सेना और वायुसेना का जमावडा 1962 की अपमानजनक हार की याद ताजा कराता था। भारतीय कम्यूनिस्टों में चीन के सैद्धांतिक समर्थक काफी थे। वे भारत में हिंसात्मक

सांस्कृतिक क्रांति का अनुकरण करने और उस पर अमल करने के लिए व्यग्र थे। भटकते हुए चारु मजूमदार और कनु सान्याल की अगुआई वाले अलग हुए कम्यूनिस्ट धडे को जगल के रूप में एक इनसानी तूफान मिल गया था। वह नक्सलबाडी क्षेत्र मे उन का अगला पजा था। जंगल को निष्प्रभावित करने को तरजीह देना लाजमी था।

तर्क तो अच्छा था। लेकिन मुझे शर्म इस बात पर आ रही थी कि पुलिस बल को एक किस्म के क्रातिकारी को थोडा गतिहीन बनाने के लिए इतना नीचे गिरना पडे। व्यवस्था का एक सदस्य होने के नाते मैं चीन-समर्थक नारों का हिमायती न था। मुझे देश को एक और अनिश्चित परिणाम के हिंसात्मक आंदोलन में झोंकने से भी नफरत थी। पर मै जगदानद स सहमत था किं यह सामाजिक विकृति नक्सलबाडी पर खत्म होने वाली न थी। सारा देश मेहनतकशों और व्यवस्था के संघर्ष की चपेट मे आ सकता था। विपन्न और भी तेजी से प्रहार कर सकते थे। किसी भी तरह का राजनीतिक सिद्धात उन पर लगाम नही लगा सकता था। जो तूफान घुमड रहा था वह सिर्फ जमींदारो और बटाईदारों या भूमिहीन किसानो के बीच का सघर्ष न था। इससे कहीं गहरे आर्थिक मसले इस के पीछे थे। लेकिन दिल्ली और कलकत्ता की सरकारो के पास ग्रामीणों की आर्थिक मुसीबतों पर गौर करने का समय नही था। उनका उत्तर बंगाल के दूर-दराज कोने के लिए बजट खाते मे से कोई राशि निकालने का भी इरादा नहीं था। कोई भी चीन या पाकिस्तान को इस बात के लिए दोष नही दे सकता था कि वे बदलती स्थिति का फायदा उठा कर आदोलन की मदद कर रहे थे। कौन सा बैरी पडोसी अपने दुश्मन के घर मे लगी आग देख कर खुश न होगा। वह पानी की बालटी ले कर आग बुझाने क्यो दौडेगा जबकि इस से उस का घर और सुरक्षित होता हो ? अभिजात पडोसियो में से ज्यादातर ने ईसा मसीह के उपदेश को बहुत गभीरता से ग्रहण नही किया है। तर्क तो अकाट्य था। लेकिन बडी व्यवस्था ने सुलगती आग, या बैरी पडोसियो की खिली बाछो को देखने से इनकार कर दिया। वे समझते थे कि जगल सथाल को टुच्चे चोरी के इल्जाम मे बद कर के उन्होने बडा तीर मारा है।

यह मेरा जगल सथाल से आखिरी साबका न था। 1967 मे मेरा उस से नक्सलबाडी के पास के एक राजस्व इकाई झोरू जोत मे फिर सामना हुआ। पर मै इससे पहले की घटनाओ की चर्चा करना चाहूँगा।

❮3❯

कार्रवाई में जुटना

मै अपने निर्माता से मिलने को तैयार हूँ। मेरा निर्माता मुझसे मिलने की कठिन परीक्षा के लिए तैयार है या नही, यह अलग मसला है।

विंस्टन चर्चिल

8 जनवरी, 1966.

दीपक घोष के दफ्तर मे मेरे लिए दो चकित कर देने वाली सूचनाए इतजार कर रही थी। पहली चिट्ठी पश्चिम बगाल के गृह सचिव की थी। उसके द्वारा मुझे कालिपोग का सब डिवीजनल पुलिस आफिसर नियुक्त किया गया था। मुझे श्री गोसाई की जगह लेनी थी। वह तरक्की पर जलपाईगुडी जा रहे थे।

यह वाकई अच्छी खबर थी। कालिपोग तो बहुत ही खुशनुमा हिल स्टेशन था। मेरे बैच के साथी दीपक घोष का भी अभी-अभी वहाँ तबादला हुआ था। उसे नागरिक पक्ष मे सब डिवीजनल आफिसर (राजस्व व न्याय) नियुक्त किया गया था। हम बहुत गहरे दोस्त तो न थे फिर भी इस बात की तसल्ली तो थी कि किसी परेशानी मे मै अकेला नही रहूँगा।

दूसरी चिट्ठी बैरकपुर के मुख्य पुलिस ट्रेनिग कॉलेज से आई थी। उसमे कहा गया था कि मै तलवार की कवायद मे अतिम परीक्षा देने के लिए डी आई जी उत्तरी रेज के सामने पेश होऊँ। मै समझता था कि मैने यह समारोह की कवायद माउट आबू मे पूरी कर ली है। पर मुझे बताया गया कि उस का कोई रिकार्ड उपलब्ध नही है। इसलिए दोबारा इम्तहान देने के सिवा कोई चारा नही।

दीपक ने फिर मेरी मदद की। वह पुलिस मालखाने से एक उत्सव वाली तलवार ले आया। फिर उस ने राज्य सशस्त्र कास्टेबलरी के एक जे सी ओ को भी मेरी सेवा मे लगा दिया। मेरा टेस्ट 12 जनवरी को होना था। मुझे महोत्सवो पर तलवार को खास तरह से चलाने या इस्तेमाल करना दोहराने के लिए सिर्फ दो दिन थे।

तलवार की कवायद का सारा तामझाम डी आई जी के अस्थायी कार्यालय और आवास के ऑगन मे सजा दिया गया। मुझे एक सफेद मार्कर पर खडा कर दिया गया। मुझे खड्ग सचालन की पेचीदगियाँ याद दिलाने के लिए एक सूबेदार ने कुछ कमाड चिल्ला कर बोली।

डी आई जी बिगुल की ताल के साथ कदम मिलाते हुए ठीक 10 बजे पधारे।

मै मार्कर पर खडा हो गया। फिर मैने तलवार को ऊपर उठाने, झुकाने और चूमने की क्रिया पूरी की। सारी कवायद मे मुझे ठीक सात मिनट लगे। डी आई जी प्रसन्न होकर इमारत के अदर चले गए। हम लोग भी चलने को तैयार हो गए।

"कृपया जाइए नहीं। आइए, एक कप चाय पीजिए।"

पॉच साल की एक प्यारी-सी बच्ची घर के अंदर से भाग कर आई और हमें आमंत्रित किया। हम हैरान थे। हम इतने आला अफसर के यहाँ चाय की उम्मीद नहीं रखते थे। फिर इस नन्ही-सी लडकी के निमंत्रण ने मेरी उद्विग्नता और बढा दी।

मैं बेकार ही परेशान हो रहा था। बाद मे मुझे पता चला कि यह निमंत्रण तो डी.आई जी. की पत्नी और उन की सब से बडी बेटी की तरफ से था। वही लडकी जिस को ले कर मैंने इंद्रधनुषी सपने सजाए थे। दार्जीलिग की बेहतरीन चाय थी। पेस्ट्री बहुत मुलायम और उम्दा। परदे के पीछे वही ऑखें, सम्मोहित कर देने वाली। तलवारबाजी की मारक कवायद का अंत नजरों के सुखद मिलन में हुआ था।

आगे बढने से पहले मैं एक बात कबूल करना चाहूँगा। मै भारतीय पुलिस सेवा मे एक अच्छे ओहदे पर भी बेदिली से शामिल हुआ था। मैं बचपन से ही अपने आसपास के जीवन और गतिविधियों में बहुत रुचि लेता रहा हूँ। मैं बहुत सक्रिय रहा। चाहे वह क्रिकेट या फुटबाल का मैदान हो, या फिर किसी उत्सव में ढोल पर थाप ही देनी हो। मुझे कभी भी अनुशासित बच्चा नहीं माना गया। पुलिस बल के बारे मे मेरी स्मृतियॉ भी बहुत सुखद न थीं।

ब्रिटिश पुलिस ने मेरे पिता को बार-बार यातनाए दीं और उन्हें गैर-गांधी तरीके के स्वाधीनता संग्राम में भाग लेने के लिए जेल में बद कर दिया। मैंने सोचा कि अध्यापकी या पत्रकारिता मेरे लिए ठीक रहेगी। बचपन से मैं कविताएँ और कहानियां लिखने लगा था। 1954 में स्कूली पढाई पूरी करने के समय तक मैने एक बंगाली उपन्यास बेजन्मा (जारज) भी पूरा कर लिया था। उत्तरी बंगाल के चाय बागानो की वह कथा प्रकाशक की मेज तक न पहुँच सकी। मेरे बडे भाई ने एक दिन उसे लेकर मेरी अच्छी धुनाई की। कुसूर यह था कि मै इसी उम्र में बडों के अनैतिक क्रिया-कलाप मे लिप्त होने लगा था। वह पांडुलिपि का कुछ हिस्सा नष्ट करने में सफल रहे। बाकी का अभी भी मेरे पास है।

सरकारी नौकरी के लिए मेरे मन में आकर्षण नही था। मैं तब तक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के एक वरिष्ठ नेता गुरुचरण चटर्जी के संपर्क में आ चुका था। मै जनसघ के सक्रिय लोगों के संपर्क में भी था, विशेष रूप से तुषार कांति चट्टोपाध्याय के। इसके साथ ही साथ मैं संत-से भले सज्जन बीरेंद्रनाथ साधुक्कन से भी प्रभावित हुआ। वह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थानीय शाखा के मुखिया थे। मेरा आर.एस.एस. से लगाव इसलिए था कि मुझे मुसलमानो से नफरत थी। उन्होंने पूर्वी पाकिस्तान में मेरा जन्मस्थान मुझ से छीन लिया था। मेरा आकर्षण साधुक्कन के लिए उनके ससार के प्रति समतावादी दृष्टिकोण की वजह से था। मैं भावनाओ के चक्रवात में फंस गया था। मैंने सोचा कि कुछ समय के बाद मुझे सही रास्ता समझ में आ जाएगा और मैं अपने राजनीतिक लक्ष्य की ओर बढ सकूँगा।

इसलिए मैंने ऑडिट और अकाउंट सेवा को चुना। मसूरी की ट्रेनिंग पूरा करने के बाद मैं शिमला प्रशिक्षण केंद्र में जाना चाहता था।

20 अगस्त 1964 को मेरी माँ का देहांत हो गया। इससे मुझे एक और जबरदस्त धक्का लगा। मैंने उन के अंतिम संस्कार के समय ही तय किया कि मैं गृह मंत्रालय के सामने प्रस्ताव रखूँगा कि मुझे पुलिस सेवा में ले लिया जाए। मुझे पूरी उम्मीद थी कि मुझे पश्चिम बंगाल के गृह काडर में ले लिया जाएगा। मैं आई.पी.एस. में दूसरे स्थान पर और केंद्रीय सेवाओं में प्रथम आया था। मेरे दूर के रिश्तेदार श्री एस. सी. दत्त वरिष्ठ आई.सी.एस. और मसूरी

अकादमी के निदेशक थे। पहले तो उन्होंने मेरे पुलिस में शामिल होने पर अनिच्छा जाहिर की। बाद में उन्होंने मेरा अनुरोध स्वीकार कर लिया। नवंबर 1964 में मुझे दिल्ली ने भी हरी झंडी दिखा दी।

जैसा कि मैंने कहा, मैं अनिच्छापूर्वक पुलिसवाला बना था। पर मैं अवज्ञा करने वाला न था। मैं सदा की तरह सक्रिय रहा। जो प्रशिक्षण मुझे पुलिस ट्रेनिंग कॉलेज में मिला, उसने संभवतः मेरे इस गुण में और वृद्धि कर दी थी। मैं सडक के अगले मोड पर अत्यंत अंधेरे साए से मिलने को भी हमेशा तैयार रहता। मैं सदा अपने निर्माता से मिलने को तैयार रहता। मैं चर्चिल के उस दार्शनिक कथन पर विश्वास करता था।

बचपन से ही मेरी धारणा थी कि हर जिंदगी का कोई मिशन होता है जिसे अक्सर प्रेरक शक्ति कहा जाता है। मैं फुटबाल का एक अच्छा गोल रक्षक रहा हूँ। मैं समझता हूँ कि गोल की रक्षा करना जीवन संघर्ष का एक अहम हिस्सा है।

मैं इस तथ्य को जानता था कि मैं अपने दिमाग में दो लडने वाली गिलहरियां लेकर पैदा हुआ हूँ। एक का सबंध जिंदा बचे रहने की पाशव प्रवृत्ति से था, दूसरी का मानवीय संवेदनाओं से। मैं अक्सर इन दो गिलहरियो के सघर्ष व सतुलन का शिकार रहा हूँ। मैं सीधा-सादा सामाजिक प्राणी कभी न था, पर मैं धूर्त भी न था।

अपनी सरकार, पुलिस और इंटेलिजेंस सेवा के दौरान मैंने दो दृष्टिकोण अपनाए। मैं अपना पद सुरक्षित रखने के लिए कृतसंकल्प था। पर साथ ही मैंने अपने हर काम को मानव मूल्यो से युक्त मिशन के तौर पर लिया। मैं जानता था कि पुस्तकों के सिद्धांत इस नजरिए का समर्थन नही करते। पर मैं तो शुरू से ही एक स्वतत्र विचार वाले बच्चे की तरह बडा हुआ था, जो अपना बचाव अपनी तरह से करता है। कुछ कर गुजरने और सक्रियता के बीज मुझ मे शुरू से ही थे।

वर्दीधारी पुलिस में मेरी यह थोडे समय की नौकरी काफी घटना प्रधान रही। मेरे बचपन के निषेध मेरे निष्ठापूर्वक कर्तव्यपालन करने में कभी बाधा नहीं बने। न ही वे कभी मेरे पुलिसकर्म मे आडे आए।

* * * *

कालिंपोंग भारत और तिब्बत के बीच सीमावर्ती चौकी है। जब मैंने वहाँ कार्यभार संभाला तब उसका बुरा वक्त था। चीनी व्यापार केंद्र बडी खस्ता हालत में था। किसी समय बहुत मोहक रहे इस पर्वतीय स्थल के पुराने आकर्षण को भूटान की रानी माँ, अफगान शाही परिवार के कुछ निर्वासित सदस्य और थोडे से ऐंग्लो-इडियन ही बरकरार रखे हुए थे। मुझे दो अत्यंत संभ्रांत लोगों के संसर्ग का सौभाग्य प्राप्त हुआ। एक थे भारत के सेवानिवृत्त मुख्य न्यायाधीश सुधी रंजन दास। वह तीस्ता रोड के तीसरे मील पर मेरे साधारण क्वार्टर से एक चोटी ऊपर रहते थे। दूसरे, सिक्किम के जनतंत्र समर्थक नेता काजी लेंधुप दोरजी खंगसारपा और उन की यूरोपियन पत्नी काजिनी एलिजा मारिया खंगसारपा जो सिर्फ दो किलोमीटर ऊपर थे।

एक पुलिस ऑफिसर के तौर पर मेरा रिकार्ड कोई बहुत बढ़िया नहीं, क्योंकि मुझे अपनी काबिलियत साबित करने का मौका ही नहीं मिला। कालिंपोंग के शहरी इलाके में मुझ-जैसे सक्रिय आदमी के लिए करने को कुछ खास था नहीं। पर वहाँ डाकुओं ने मुझे बहुत व्यस्त रखा। वे चाय बागानों और नेपाल, भूटान व तिब्बत सीमा के पास वाले छोटे कारोबारी पुरवों

में निर्मम डकैतियाँ डालते थे। अधिकतर डाकू बिहार, पाकिस्तान, नेपाल और भूटान से आ कर छापा मारते थे। मैं चाय बागानों और भारत-भूटान सीमा पर की वारदातों में व्यस्त रहता। हरकतें करने वालों का एक और गिरोह भी मेरा समय खाता था। ये थे हिमालय के जगली हाथी, चीते और रॉयल बंगाल टाइगर। ये अक्सर चाय बागानो में, उन के आस-पास और पहाडी तलहटी के जंगलों में लोगों के जानमाल को नुकसान पहुँचाते। तीसरी किस्म के प्राणी जो मुझे व्यस्त रखते, वे थे विशिष्ट व्यक्ति और उन के परिवार के सदस्य। उनके लिए कालिपोंग एक प्रिय पर्वतीय स्थल था।

मुझे डाकुओं, जंगली जानवरों और शहरी विशिष्ट व्यक्तियों के बीच अपना समय बॉटनें में कोई कठिनाई नहीं थी। यह बहुत कशमकश वाला मामला न था। लेकिन मेरी अल्पकालिक पुलिस सेवा में तीन घटनाओं ने मुझ पर गहरी छाप छोडी। सौभाग्य से ये तीनों ही घटनाएँ मेरी शादी से पहले घटीं।

भूटान और जलपाईगुडी सीमा पर क्रूर सशस्त्र डकैतियों का सिलसिला जारी था। चाय बागानों में होने वाली इन वारदातों मे हत्याएँ भी शामिल थीं। इसने राज्य प्रशासन को झकझोर दिया। शक्तिशाली चाय गुट ने राइटर्स बिल्डिंग (राज्य सचिवालय) पर दबाव डाला कि वह उद्योग को मंदी से बचाने के लिए कुछ असाधारण कदम उठाए।

मुझे दार्जीलिंग बुलाया गया। एस पी और पुलिस कमिश्नर ने मेरा हौराला बढाया और कहा कि डाकुओं के साथ सख्ती से निबटने की बहुत जरूरत है।

मैं हमेशा की तरह उत्साह के साथ इस काम में जुट गया।

लेकिन तिब्बती मूल के मेरे सर्किल इंस्पेक्टर दावा नोरबू ने गोम्पूज रेस्टॉरेंट में मुझे आ घेरा, जहाइ मै मजेदार चीनी खाना खाने गया था।

"सर, जरा होशियार। इस राह में बहुत कॉटे हैं।"

नोरबू को टूटी-फूटी लेकिन लच्छेदार अंग्रेजी मे बात करने की आदत थी।

"क्या समस्या है, नोरबू ?"

हम खाना खाते हुए बात करते रहे।

"कलकत्ते मे सरकार डावाडोल है। कांग्रेस की हार निश्चित है। संभवत बंगाल कांग्रेस और कम्यूनिस्टों का गठजोड सत्ता में आएगा।"

" हॉं, मुझे मालूम है।"

" तो यह भी समझ लीजिए सर, कि ज्यादातर मजदूर संघ वामपंथियों के साथ जुडे हैं। चीन समर्थक कम्यूनिस्टों ने भी भारत-भूटान सीमा पर अपना चंगुल फैलाना शुरू कर दिया है। जलधारा पन-परियोजना का मजदूर संघ चारु मजूमदार के अनुयायियों का केंद्र है। "

"ये सारे तथ्य तो जानकारी में आ चुके हैं, नोरबू , तुम कहना क्या चाहते हो?"

" धीमे चलो। यह परिवर्तन का समय है। आप चैन से बैठने वालों में से नहीं। आप मुश्किल में पड़ सकते हैं। ये राजनीतिज्ञ गंदे लोग हैं।"

"धन्यवाद, नोरबू।" मैंने अपने अनुभवी सर्किल इंस्पेक्टर का शुक्रिया अदा किया।

मेरे सब-डिवीजन का कार्यभार संभालने के साथ ही चाय बागानों में डकैतियों और हत्याओं का सिलसिला शुरू हो गया। ये वारदातें पड़ोस के जिले जलपाईगुडी की सीमा पर और सिक्किम व भूटान के साथ लगी अंतर्राष्ट्रीय सीमा पर हो रही थीं। मेरे मातहत दो पुलिस स्टेशन थे। कालिंगपोंग और गोरू बथान। इनके अलावा अंतर्राष्ट्रीय सीमा की कुछ चौकियाँ

भी थी। मेरे पास मामूली सख्या में पुलिस बल था। सभारतत्र का सहारा तो था ही नही। सिपाही और ऑफिसर कानून-व्यवस्था बनाए रखने की अपनी जिम्मेदारी निभाने की बहुत कम ही तकलीफ करते। सचमुच बडी विचित्र स्थिति थी। पर मैने नोरबू की सलाह न मानने का फैसला किया। सरकारी जीप मेरा अस्थायी घर बन गई। उस मे धनबीर मागर ने अपनी चलती-फिरती रसोई रख ली। दो हथियारबद रक्षक मेरे साथ रहते ताकि जगली हाथी मुझ पर हमला न करे और मैं डाकुओ की गोली का निशाना न बनूँ। ड्राइवर नीमा तो जैसे दिखावे के लिए था। वह अनिच्छा से मेरी सीट पर बैठता और जोखिम वाली ड्राइविग मै करता।

ज्यादातर रातो को मैं बाहर रहता। मैं पुलिस चौकियो पर जाता। वहॉ मैं पुलिसवालो और ग्रामरक्षको का तैनात करता। मै चाय बागान मे तबाही लाने वाले गिरोहो के बारे मे निश्चित जानकारी देने वाले मुखबिर भी तैयार करता।

सौभाग्य से एक मौका हाथ लगा। मै गोरू बथान रेस्ट हाउस मे अपने ठडे बिस्तर पर सोया था। रात के दो बजे के बाद का समय होगा। तभी अपनी छग की नीद से जाग कर धनबीर आया। उस ने फुसफुसा कर कहा।

साहब उठिए।

क्या मसला है?

मसला कुछ नही सर उस ने खीसे निपोरी 'मेरा दोस्त जिबराज पोरेल आया है। उसके पास बहुत जरूरी खबर है।

इस वक्त क्यो ? उसे सुबह सात बजे आने को कहो।

समझने की कोशिश करे हुजूर। यह आदमी आप से बात करने के लिए सिगीदारा गॉव से चार मील पैदल चल कर आया है। वह दिन मे किसी पुलिसवाले से नही मिल सकता। वह डकैतो के बारे मे जानता है।

मैं बिस्तर से उठ खडा हुआ। मैने धनबीर से थोडी चाय बनाने के लिए कहा और जिबराज पोरेल से गुप-चुप बात चीत मे लग गया। धनबीर मेहमान के लिए एक गिलास रम और मेरे लिए चाय लेकर लौटा।

उसने बताया कि सिगीदारा भूटान की सीमा पर पहाड की चोटी पर बसा गॉव था। गॉव से सब से पास का चाय बागान सैमसिग उससे तीन किलोमीटर उतराई पर है। राते मागर सैमसग बागान मे फैक्टरी मजदूर है। वह मजदूर सघ वाला है। उसका सबध कम्यूनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) से है। वह डाकुओ के गिरोहो का स्थानीय सरगना है। ये लोग भूटान के और पास के जिले जलपाईगुडी के गिरोहो से मिल कर वारदात करते है।

राते मागर पहाड की चोटी पर बसे एक पडोस के गॉव फुलबाडी मे रहता था। चाय बागान के कारखाने से उसे पकडना असभव था। वह लडाकू मजदूर सघ वालो से घिरा रहता था। उसका दफ्तर कम्यूनिस्ट पार्टी के झडो से भी सुरक्षित था। घने जगल से घिरे उसके फुलबाडी वाले घर के सकरे रास्ते पर जाना भी उतना ही मुश्किल काम था।

हमने सूचना पर काम करना शुरू किया। एक रात के साहसपूर्ण छापे मे हम राते मागर को पकडने मे कामयाब रहे। पर इसके लिए गोली चलानी पडी जो उस के नितब मे लगी।

कहने को तो कार्रवाई सफल रही। लेकिन पेचीदगिया उस के बाद शुरू हुई। बाद मे हम यह जान कर परेशान हुए कि फुलबाडी मेरे हलके से बाहर था। वह पास के जिले जलपाईगुडी के ओदलाबाडी थाने मे आता था। प्राथमिकी वहीं दर्ज होनी चाहिए थी। कानूनी तौर से उस थाने के एक अफसर की मौजूदगी लाजमी थी।

मैं घबराया नही। पर मैं राते मागर की माद पर हमला करने के दुस्साहस से पैदा हुई पेचीदगियो को भी समझ रहा था। मैं अपनी अधिकार सीमा से एक किलोमीटर आगे निकल गया था। अब मैं ओदलाबाडी के थानाध्यक्ष के रहमोकरम पर था। वही एक ऐसा पुख्ता मामला बना सकता था जो इस तरह छापा मारने, गोली चलाने और बाद की इस्तगासा की कार्रवाई को उचित ठहराए।

मैंने सुबह पाँच बजे के करीब एस पी को फोन किया। उनसे अनुरोध किया कि वह पडोसी जिले के एस पी से बात करे। मुझे मालूम नही कि उन्होने क्या किया। शायद उन्होने मेरी बात पर ध्यान नही दिया और मुझे मेरे हाल पर छोड दिया।

निराश हो कर मैंने छ बजे जलपाईगुडी में डी आई जी के घर पर फोन किया। मैने उन्हे सारी बात तफ्सील से बताई। मैंने अनुरोध किया कि मुझे पुख्ता प्राथमिकी लिखने के लिए एक अनुभवी डी एस पी की जरूरत है। मैने यह भी कहा कि छानबीन के लिए मामला गोरूबथान के थानाध्यक्ष के जिम्मे किया जाए। मेरे डी आई जी अपनी बदमिजाजी और बेसब्री के लिए मशहूर थे। मुझे उनसे ज्यादा उम्मीद न थी। पर मेरे पास उन पर निर्भर होने के सिवा चारा ही क्या था।

यह मामला कुछ दिनो तक मुझे परेशान करता रहा। इस बीच राते मागर ने गोली के घाव के कारण दम तोड दिया था। उसके राजनीतिक आका 1967 के चुनाव के दौरान बहुत सक्रिय हो गए थे। कम्यूनिस्ट पार्टी एक विद्रोही काग्रेसी के नेतृत्व वाली गठजोड की सरकार मे शामिल हो गई थी। नई सरकार ने एक काग्रेस समर्थक पुलिसवाले द्वारा एक कम्यूनिस्ट नेता की हत्या करने की जॉच मजिस्ट्रेट से करवाने का आदेश जारी किया। लेकिन युवा मजिस्ट्रेट ने मुझे और छापा मारने वाले पुलिस दल को दोष-मुक्त करार दिया।

मजिस्ट्रेट के फैसले से कम्यूंनिस्ट पार्टी की तसल्ली नही हुई। इस बीच अत्यत सज्जन कमिश्नर इवान सुरिता का निधन हो गया था। उनकी जगह एस सी बनर्जी आए थे। राइटर्स बिल्डिग ने अब जॉच का काम उन्हे सौपा। श्री बनर्जी एक सख्त आदमी के रूप मे मशहूर थे। एक सुबह वह कालिपोग तशरीफ लाए। उन्होने राते मागर केस मे मुझसे पूछताछ की। यह आश्चर्यजनक था और मुझे इस से झटका भी लगा। मेरे किसी भी उच्च अधिकारी ने मुझे इस बारे में आगाह नही किया था।

वह रिकार्ड की जाँच करने और स्टाफ से पूछ-ताछ के लिए गोरू बथान थाने पर भी गए। मेरी समझ मे नहीं आ रहा था कि स्थिति का सामना कैसे करू। पर मै थानाध्यक्ष को फोन कर के उसे कमिश्नर का ठीक से स्वागत करने और उन्हे सारे रिकार्ड दिखाने की हिदायत देने से चूका नही। मुझे याद है मैंने स्टाफ से कुछ उत्साह बढाने वाले शब्द भी कहे। मैंने कहा कि हम मिल-जुल कर इस से पार पा लेगे।

हम कामयाब रहे। मेरी शादी के कुछ दिनो बाद, शायद 16 फरवरी 1968 के आसपास, मुझे डाक से एक भारी लिफाफा मिला। इस में जलपाईगुडी के कंमिश्नर एस सी बनर्जी की जाँच रिपोर्ट थी। उन्होंने न केवल मुझे और मेरे अफसरो को दोष-मुक्त करार दिया था बल्कि उस में एक लबा पैरा और जोडा था। इसमें मैंने जिस कुशलता और बहादुरी से कुख्यात डाकू को पकड़ा था, उसका जिक्र किया गया था। अपनी जाँच मे उन्होंने यह टिप्पणी भी की थी

कि मेरे अथक प्रयास के कारण ही चाय बागानों में डकैतियों में 70 प्रतिशत की कमी आई। यह रिपोर्ट मुख्य सचिव को दी गई थी। इस की प्रतियाँ आई.जी.पी., डी.आई.जी. जलपाईगुडी रेंज और एस.पी. दार्जीलिंग को भेजी गई थीं।

* * * *

भूटान और सिक्किम के सीमावर्ती कालिंपोंग के हिमालयी जंगलों में कई तरह के आश्चर्य थे। बहुत से तसल्लीबख्श कामों का पुलिसिया जिम्मेदारी से सीधा संबंध नहीं होता था। फिर भी बहुत सी घटनाओं ने मेरी कल्पना को रौशन किया और मेरी उपलब्धि की परिभाषा को विस्तृत किया।

कालिंपोंग और जलपाईगुड़ी के पर्वतों की तलहटी पेड-पौधों व जीव-जंतुओं की विलक्षण संपदा से भरपूर थी। चित्तीदार चीते, धारियों वाले शेर, चित्तीदार हिरन, और विशाल हाथियों की इन जंगलों में भरमार थी। ये सुंदर प्राणी अपने क्षेत्र में इन्सानों का आना नापसंद करते थे। कई बार ये भोजन की तलाश में चाय बागानों या अन्य मानव बस्तियों में भी भटक कर आ जाते थे। मैं पाठकों को भव्य हिमालय की सैर तो नहीं कराना चाहता, लेकिन कुमाई चाय बागान में जंगली हाथियों के एक झुंड के आश्चर्यजनक व्यवहार ने मेरी क्षमताओं को चुनौती दे डाली। यह एक तरह से आदमी और जानवर के व्यक्तित्व का संघर्ष था।

मैं न्यायमूर्ति एस. आर. दास के यहाँ रात का भोजन कर रहा था। तभी मुझे तुरंत कुमाई के चाय बागान की तरफ जाने का आदेश मिला। वहाँ चाय बागान की बस्ती में जंगली हाथियों का एक झुंड भटक कर आ गया था और मुझे उन से निबटना था। जंगली हाथी चाय की फसल को जबरदस्त नुकसान पहुंचाते थे और हर साल भारी संख्या में बागान के मजदूरों को मार डालते थे।

1967 में कुमाई के लिए कोई सीधी कोलतार की सड़क न थी। चालसा और कुमाई चाय बागान के बीच के नाले पर कोई पुल भी नहीं था। मैंने बहुत बार वह नाला पार किया था। पर आज रात ड्राइवर नीमा को आपात्कालीन ब्रेक लगा कर अचानक जीप रोकनी पडी।

"यहाँ क्यों रुके ?"

मैं ड्राइवर के सहमे हुए चेहरे को देख कर चिल्लाया।

उस ने नाले की रेत और बजरी में इकट्ठे हुए हाथियों की तरफ उंगली से इशारा किया। इन में से कुछ तो पानी पी रहे थे और कुछ प्यास बुझाने आए चितकबरे हिरनों पर पानी उछाल कर खिलवाड़ कर रहे थे।

"मुझे क्या करना चाहिए ?"

मैं ने अनुभवी धनबीर और नीमा से राय माँगी।

"हमें लौट चलना चाहिए,"नीमा ने सीधे-सीधे राय दी," यह वही बिगड़ैल झुंड है। हम चालसा डाक बंगले पर चलते हैं। कल सुबह नाला पार करने की कोशिश करेंगे।"

"यही ठीक रहेगा , सा 'ब।"

धनबीर ने भी अपनी राय दी।

पर मुझे स्पष्ट आदेश मिले थे। मुझे इस झुंड को डरा कर दूर भगाना था और भयभीत मजदूरों को सुरक्षित स्थान पर पहुँचाना था। हाथियों का यह झुंड भूटान से भटक कर आया था। वह कुलियों की झोंपड़ियों को रौंदता हुआ चला आया था, इसमें दो लोग मारे गए थे।

मुझ पर तो झुंड को डरा कर भगाने की धुन सवार थी। मैं उन्हें जलधारा नदी के पार वापस भूटान के जंगलों में खदेडना चाहता था।

मैंने जीप को पीछे हटाया। फिर उसे मुसीबत आने पर चालसा की ओर भगाने के लिए तैयार रखा। यह काम पूरा कर लेने के बाद मैं नीचे उतरा। मैंने एक सिपाही से 303 राइफल ले कर हवाई फायर किया। चितकबरे हिरनों का झुंड हवा मे उछला और घने जगल में गायब हो गया। हाथियों ने यह जाहिर करने की भी तकलीफ न की कि उन्होंने कोई धॉय की आवाज सुनी है। मैंने एक और गोली चलाई।

एक विशाल हाथी बेदिली से उथले पानी से बाहर निकला। उसने आवाज की संभावित दिशा में अपनी सूँड उठाई। धनबीर के मुताबिक वह झुंड का राजा था। उसने कई बार अपना सिर हिलाया और अपनी नजर जीप की पिछली लाल बत्तियों पर गडा दी। उसकी एक जोरदार चिंघाड ने झुंड के बाकी सदस्यों को चेतावनी दे दी। वे सब भी रेत और बजरी से बाहर निकल आए। इन में दो छोटे बच्चे भी थे। ये एक लाइन में मजबूत जत्था बना कर खडे हो गए।

"जीप में बैठिए, सर।"

धनबीर ने मुझे अगली सीट की तरफ खीचा। पर मैंने उस स्थिर काले धब्बे से डरने से इनकार कर दिया जो हरकत में आने ही वाला था। मैंने झुड के मुखिया के ठीक सिर के ऊपर एक और हवाई फायर किया। गुस्से से भरी सामूहिक चिंघाडों से वातावरण गूँज उठा। धनबीर कूद कर पिछली सीट पर जा बैठा। नीमा ने मेरी बॉह पकड कर मुझे अगली सीट की ओर धकेला। उसने जीप को ऐसे स्टार्ट किया मानो वह कोई रेस कार हो। मैंने गुस्से से मुड कर देखा। शायद मेरे आहत अभिमान् ने मुझे प्रेरित किया। मैंने सर्विस रिवाल्वर निकाल कर उस काले बादल के टुकडे की तरफ दो गोलियां दागीं जिस ने जीप की पिछली लाल बत्तियों की तरफ दौडना शुरू कर दिया था। हमारे नीचे की धरती डोलने लगी थी। जैसे उस जगह पर कोई छोटा सा भूचाल आ गया हो। हम तेजी से चालसा चाय बागान वाली पहाडी की तरफ चढे और जरा देर को दम लेने के लिए रुक गए।

गुस्साए हाथी विध्वंस पर उतर आए। उन्होंने चाय की झाडियॉं उखाड फेंकीं और आराम करने के लिए बनाई गई कुछ झोंपडियाँ गिरा दीं। इस सारे शोर और गोलियो की आवाज से चाय बागान के कर्मचारी सावधान हो गए थे। उन में से कुछ के पास 12 बोर की बंदूकें थी। काफी संख्या में मजदूर भी मशालें, भाले और तीरकमान ले कर आ गए थे। मैने टार्च की रोशनी में अनुमान किया कि करीब 70 लोग मेरे पीछे थे। इससे मुझे एक उपाय सूझा। मैंने कुमाई की पुलिस और वनरक्षकों को वायरलेस किया कि वे झुंड पर पीछे से हमला करें। वे भाग कर आए।

मैंने चालसा के जंगल रेजर और चाय बागान के मैनेजर से जल्दी जल्दी सलाह कर के एक रणनीति बना डाली। हमने चालसा दल को तीन खदेडने वाली टोलियों में बॉट दिया। कुमाई दल के जिम्मे बाएँ जत्थे की चौकसी करना था। इस तरह घिर जाने पर झुंड अचानक ठहर गया। मेरे संकेत पर करीब एक दर्जन बंदूकों से झुंड के सिर के ऊपर एक साथ गोलियाँ चलाई गईं। आदिवासी मजदूरों ने सीधे झुंड के ऊपर अपने अग्निबाण छोडे। कुछ और उत्साही लोग ढोल पीटने और तुरही बजाने लगे। इनसानों की इस जोरदार चुनौती से झुंड का नेता घबराया। उस ने सूँड़ उठा कर तीन छोटी चिंघाड़ें लगाईं। झुंड के सदस्यों ने भी उन का उसी

तरह की चिंघाडों से जवाब दिया। फिर उन्होंने अपनी सूंड जलधारा नदी की तरफ कर लीं जो भूटान के जंगलों में गुम हो जाती थी।

हमें जीत की गंध मिल गई थी। हम आगे बढे। मैं अपने रिवाल्वर से हवा में गोलियाँ चला रहा था। चालसा और कुमाई टोलियॉ मेरे पीछे चल पडीं। शुरू में सब कुछ जरा धीमी रफ्तार से चल रहा था। अचानक झुंड तेज हो गया। हम भी तीर और भाले छोडते, ढोल बजाते हुए पीछे दौडे। बंदूकें शांत थीं। क्योंकि मैंने मना कर दिया था। जीत अब करीब थी। हमें झुड को एक किलोमीटर और अंतर्राष्ट्रीय सीमा के पार भूटान के जंगलों में खदेडना था। मैं जानता था कि भूटान के वनरक्षक उन्हें फिर मौका मिलते ही भारत की सीमा में वापस हॉकेंगे। भूटानियो को भी तो इनसे खतरा था। एक महीना पहले ही समची में एक उपद्रवी झुंड ने रॉयल भूटान ब्रूअरी के स्टाफ क्वार्टरों को तोडफोड डाला था। लिहाजा यह जीत थोडे समय की थी। फिर भी यह बडी उपलब्धि थी, बिना किसी राजनयिक लफडे के।

मैंने बाकी की रात रोंगो जडी-बूटी बाग के गेस्ट हाउस में गुजारी। यहॉ मलेरिया के इलाज के लिए सिन्कोना उगाई जाती थी।

अगली सुबह मैं गोरू बथान थाने में बैठा था। वहाँ कुछ फोन आए जिनकी कि मुझे उम्मीद नहीं थी। पहला फोन जलपाईगुडी डिवीजन के कमिश्नर इवान सुरिता का था। उन्होंने अपनी चुंनिंदा भाषा में बडे प्यार भरे शब्दों का प्रयोग किया और बातचीत के अंत में उपद्रवी झुंड को भूटान खदेडने के लिए मुझे धन्यवाद दिया। एस.पी. ने भी मुझे मुबारकबाद देने के लिए फोन किया। उप मुख्य वनसंरक्षक ने यह जानने के लिए फोन किया कि कितनी गोलियॉ दागी गईं और उन से लौटते पशुओं को किस तरह के घाव लगे। मैं उन्हें संतुष्ट नहीं कर सका। बाद में एक लिखित रिपोर्ट में यह आश्वासन दिया कि सरकारी हथियारों से सिर्फ पांच गोलियां चलाई गई थीं और जानवरों को यथासंभव आदरमान के साथ विदा किया गया था।

सब से उत्साहजनक फोन तो सुबह 10 बजे के करीब आया।

"सर, डी.आई.जी. साहब लाइन पर आ रहे हैं। आप फोन ले लें।"

एक घबराए हुए सबइंस्पेक्टर ने मुझे आ कर कहा। उस समय मैं पास के गांवों से आए प्रतिनिधियों से बात करने में व्यस्त था।

मैं भागा-भागा फोन के पास गया। मैंने आदतन फोन करने वाले को "सर" कहा। जवाब में मुझे एक मंद हंसी और बहुत सी शुभकामनाएँ मिलीं। फोन पर मेरी मंगेतर थी। यह मेरे लिए सब से बडा उपहार था। मुझे इस की उम्मीद न थी। मैंने उसे यकीन दिलाया कि मैं कोई अजगर सरीखे भयंकर जीवो का संहार करने वाला नहीं। मैं खुद को बिना मतलब के जोखिम में भी नहीं डालूँगा। वह जानती थी कि इस वादे में कोई दम नहीं। जोखिम से मेरी गहरी छनती थी।

* * *

चंदन सान्याल (बदला हुआ नाम) मेरा कलकत्ता यूनिवर्सिटी का दोस्त व कलकत्ता के एक अखबार का सहकर्मी था। एक आदर्श की गली में भटक कर वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि राजनीतिक और सामाजिक परिवर्तन केवल बंदूक की नली से ही लाए जा सकते हैं। वह चारु मजूमदार, कनु सान्याल और जंगल संथाल के गुट में शामिल हो गया। कम्यूनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) के एक प्रमुख सदस्य के रूप में वह संयुक्त शहरी और ग्रामीण विद्रोह

में विश्वास रखता था। मेरी उस से आखिरी मुलाकात 1966 में हुई थी। हम मशहूर कॉलेज स्ट्रीट कॉफी हाउस में मिले थे। यह कलकत्ता के वास्तविक और उभरते बुद्धिजीवियों का खास मिलन स्थल था।

राज्य गुप्तचर शाखा के डी.आई.जी ने एक सुबह फोन कर के मुझ से पूछताछ की।

"मेरे खयाल से तुम चदन सान्याल को जानते हो?"

"जी सर, हम साथ पढे थे। साथ-साथ काम भी किया।"

"मैं चाहता हूँ तुम उसे सिलीगुडी में खोज कर गिरफ्तार करो।"

"सर, वह मेरा हलका नही।"

"तुम्हारे पास आई.जी पुलिस के आदेश है।"

"मैं उसे कहाँ खोजूँ ?"

डी आई जी ने मुझे बिधान नगर का कोई पता बताया। वह नया-नया रिहायशी इलाका था।

चंदन कम्यूनिस्ट आदर्शों से प्रभावित हुआ था। वह चीनी किस्म की हिसात्मक क्राति मे विश्वास रखता था। पर हमारा यह आदर्शों का मतभेद कभी भी हमारी दोस्ती के आडे नहीं आया।

मैं एक किराए की निजी कार मे अकेला सिलीगुडी गया। मैंने पुलिस की जीप नही ली। 1967 के शुरू मे बिधान नगर कोई बडी जगह न थी। पता सही था। पर चंदन वहॉ नही मिला। मुझ से कहा गया कि कुछ दिन बाद आऊॅ। मुझे बहुत निराशा हुई। इस के बाद मैं भारत के चरमपंथी वाम आदोलन के जनक चारु मजूमदार के टूटे-फूटे घर पर गया। 1966 मे मैं उससे तीन बार मिल चुका था। ये मुलाकाते दार्जीलिग के एक पत्रकार मित्र के साथ हुई थी जो बी.बी.सी. के लिए काम करता था। चारु के साथ मेरी शुरू की मुलाकातों में से सिर्फ एक की जानकारी ही मैने एस.पी. को दी थी। मुझे मालूम था कि हारेन बनर्जी कनु सान्याल के करीबी रिश्तेदार थे। मैं नहीं चाहता था कि वह मेरे चारु के साथ सबधों के बारे मे बारीकी से जानें। मै तो उससे वर्तमान इतिहास के एक छात्र की तरह मिलता था। मै उन लोगों की सोच के बारे में समझना चाहता था जो सिर्फ हत्या के लिए हत्या करते हैं। चारु जैसे लोग आखिर चे ग्वेवारा तो न थे। वह जानता था कि भारतीय सामाजिक पद्धति को बदलने के लिए यह उपयुक्त समय नही है। उसके पास कोई बदूक भी नही थी। अगर कोई हथियार था तो वह था उन दिनों का चीनी कम्यूनिस्ट सिद्धांत। पर मै उस की प्रतिबद्धता की शक्ति और दूसरों को आकर्षित करने की क्षमता के लिए चारु का आदर करता था।

दरवाजा उस की बेटी ने खोला। उस विनम्र लडकी ने थोडा एतराज तो किया पर मुझे अंदर आने दिया। चारु तब तक भूमिगत नहीं हुआ था। वह अपने राजनीतिक धडे का संचालन घर से ही करता था। वह बातचीत करने में बहुत कुशल न था। वह वर्ग संघर्ष के बारे में ऊँची आवाज में चीख कर भाषण देता। वह सर्वहारा की अवश्यंभावी जीत की बात करता। वह शोषितों के उद्धार के लिए हिंसा को एकमात्र साधन मानता था।

चारु एक लकड़ी की कुर्सी पर बैठा था। उसका चेहरा चिडचिडा और उदास लग रहा था। मैं जानता था कि इस घर में मेरा स्वागत नहीं होगा।

"तुम यहाँ क्यों आए हो?"

"ऐसे ही। मैने सोचा जान-पहचान ताजा कर लूँ।'

"मेरे और तुम्हारे वर्ग के मिलने की जगह युद्ध का मैदान है। अपनी बदूको के साथ तैयार हो जाओ।"

' क्या तुम शातिपूर्ण तरीके से अपना लक्ष्य हासिल नही कर सकते? क्राति के लिए युद्ध और खून-खराबा जरूरी तो नही।'

"बेवकूफी की बात मत करो। भारत मे परिवर्तन सिर्फ हिसा से ही आ सकता है।"

"हम ने आजादी अहिसा से हासिल की थी।"

"तुम बेवकूफ हो। अगर अग्रेजो का दिवाला न पिट जाता तो वह उपनिवेश को और दो सौ साल तक नही छोडते यह तो हिटलर के कारण हुआ। उसने साम्राज्यवादियो के खजाने खाली करवा के उपनिवेशवाद के अत का सिलसिला शुरू किया। अग्रेज तो भारत से सिर्फ दुम दबा कर भागा था।"

चारु ऐसा ही था। उसकी राजनीतिक शोध मुझे गवारा न थी। पर वह मेरे साथ खुला हुआ था जगदानद राय की तरह। वे भारत के मेहनतकशो के लिए नए स्वप्नद्रष्टा थे। मै मन ही मन सोचता था कि उनकी तरह क्रातिकारी बनूँ। उस दिन की बात-चीत से मुझे यकीन हो गया कि हिसात्मक किसान आदोलन का गर्जन-तर्जन अब बहुत दिनो की बात नही है। वह हमे बगाल डेल्टा के तूफान से भी ज्यादा जबरदस्त तरीके से झकझोरने वाला था।

कालिपोग लौटते समय मैं एस पी को सौपने वाली रिपोर्ट के बारे मे सोचने लगा। चारु की भविष्यवाणी से मुझे हैरानी नही हुई थी। मै जानता था कि इस दुर्बल काया के अदर एक जबरदस्त तूफान छिपा है। वह भारतीय राजनीति मे एक नए युग की शुरुआत जरूर करेगा। वह असगत न था। वह एक विफल पैगबर था जो अपने जीवनकाल मे भारतीय सामाजिक व राजनीतिक परिवेश को बदलते हुए नही देख सका। पर उसने चिगारी तो जरूर छोडी थी। मुझे यकीन था कि यह एक दिन अग्रेजो से विरासत मे मिली और सामती अदाज मे चल रही खोखली सामाजिक व आर्थिक सच्चाइयो को जरूर बदलेगी।

कालिगपोग मे एक और भी बडे आश्चर्य से मेरा सामना होने वाला था। जैसे ही मै तीस्ता रोड के अपने धर के अहाते मे घुसा धनबीर भागा-भागा आया और बोला कि कलकत्ते से आप के रिश्ते के भाई आए है। आप के सिलीगुडी जाते ही वह आ गए थे।

मै हैरान हो गया। चदन टॉग पर टॉग रख कर बरामदे मे बैठा था। ऐश ट्रे मे ढेरों सिगरेटे थी। एक उस के हाथ मे सुलग रही थी।

"तुम यहाँ क्या कर रहे हो?

"यह मेरे लिए सब से सुरक्षित जगह है। तुम्हारा सिलीगुडी मे मछली पकडने का अभियान कैसा रहा?"

"मै मछली पकडने सिलीगुडी नही जाता। मेरे पास मे तीस्ता मे ही ट्राउट मछलियो की भरमार है।"

"फालतू बात मत करो। मैं यहाँ एक दिन के लिए आया हू। तुम मेरा क्या करना चाहते हो?"

धनबीर चाय की कुछ प्यालियाँ बना कर दे गया। हम कलकत्ते के सुनहरे दिनो की बातें करते रहे।

"तुम क्या सोचते हो कि तुम ने सही रास्ता चुना है?"

मैंने चंदन से पूछा। वह कलकत्ते के अमीर डाक्टर का इकलौता बेटा था। हम लोग उस समय रात का भोजन कर रहे थे।

"क्या पता। यह तो इतिहास ही तय करेगा कि मैं सही हूँ या गलत। लेकिन संघर्ष सच्चा है। जिस क्रांति का मैं सपना देख रहा हूँ वह इस देश के विकृत इतिहास को जरूर ठीक करेगी।"

"पर पुलिस तुम्हारी तलाश में है। वे तुम्हे गोली मारना पसंद करेगे।"

"मुझे पता है। मुझे सिलीगुड़ी के पास के किसी छोटे स्टेशन से रेल मे बैठा दो। मै कुछ देर के लिए बिहार में गुम हो जाना चाहता हूँ।"

"बिहार क्यों?"

"मुझे वहाँ कुछ कार्यकर्ताओं को फिर से संगठित करना है।"

"तुम चाहते हो मैं तुम्हें सिलीगुडी तक छोडने जाऊं?"

"क्यों नहीं? मैं जानता हूँ तुम मुझे प्यार करते हो।"

उस रात मैंने अपने जीवन की सब से कठिन लडाई का सामना किया। वह मेरे अदर की लडाई थी। चंदन घोड़े बेच कर सोया था। उसे अपनी सुरक्षा की जरा चिंता न थी। मैं बिस्तर पर करवटे बदल रहा था, इस कोशिश मे कि मेरा प्यार मेरी अतर्रात्मा पर हावी रहे।

मैंने चदन को सुबह चार बजे जगाया। उसे पिछली सीट पर बैठने को कहा। मैं ने पुलिस की जीप सीधे बागडोगरा रेलवे स्टेशन को दौडाई। उसे मैने एक स्थानीय शटल पर बैठा दिया जो बिहार में किशनगंज जाती थी।

हम ने कुल्हड में चाय बॉट कर पी। फिर एक ही सिगरेट पी, जैसा कि हम पत्रकारिता के संघर्ष के दिनों में करते थे।

कोयले से चलने वाली शटल धूल भरे प्लेटफार्म से बाहर निकली तो मैं कालिगपोग के लिए वापस चल पडा ताकि धनबीर के नाश्ता बनाने से पहले पहुँच जाऊं।

"एस.पी साहब ने फोन किया था।"

यह सुनते ही मैने अधजला आमलेट खाते हुए एस पी. को फोन किया।

"सर, आप ने मुझे फोन किया था?"

"तुम सुबह-सुबह कहाँ गए थे?"

"मैं एक मुखबिर से मिलने माल और ओदलाबाडी गया था।"

"तुम लायक अफसर की तरह काम कर रहे हो।"

मैं समझ न सका कि यह तारीफ थी या चाय बागान के डकैतों के बारे में मुखबिरों का इस्तेमाल करने के मेरे अनोखे तरीके के बारे में जानने की कोशिश थी।

"दरअसल मैं चंदन के बारे में बताना चाहता था। कुछ लोगों ने उसे टैक्सी में कालिंपोंग की तरफ जाते देखा है।"

"यह तो दिलचस्प खबर है, सर," मैंने कहा," पर वह कालिंपोंग आना तो पसंद नहीं करेगा। मेरे खयाल से वह मोगपू के आसपास किसी चाय बागान में छिपा होगा।"

"हो सकता है। तुम अपनी आँखें खुली रखो। सब चौकियों को सावधान कर दो और दूसरे आदमी से मुलाकात की रिपोर्ट मुझे भेजो।"

जी सर।

नाश्ता खत्म कर के मै अपने सिलीगुडी जाने के बारे मे रैमिगटन टाइपराइटर पर रिपोर्ट तैयार करने बैठ गया।

मैने चदन वाले मामले का कोई जिक्र नही किया। मै कोई भुलक्कड नही था। बात यह थी कि चदन बड़ा प्रतिभाशाली छात्र रहा था। मेरे विचार से वह इस सच्चे आदर्श से प्रेरित हुआ था कि सर्वहारा वर्ग के हाथ मे सत्ता खूनी क्राति से ही आ सकती है। अपने पेश के प्रति ईमानदार न होने की पीडा मुझे हो रही थी। पर मैंने अपने प्यार और अतरात्मा को अपनी ट्रेनिग पर हावी होने दिया।

यह हमारी आखिरी मुलाकात न थी। चदन कलकत्ता बराहनगर और दूसरे शहरो व कसबो मे 1970-71 मे तत्कालीन मुख्यमत्री सिद्धार्थ शकर रे की पुलिस द्वारा नक्सलियो के कत्लेआम से बच निकला था। उसने बिहार और पश्चिम बगाल के कुछ शहरी हिस्सो मे नक्सली गुटो को फिर से सगठित कर लिया था।

1974 मे हमारी मुलाकात कलकत्ते की नीमतल्ला श्मशान भूमि मे हुई। चदन वहा भेष बदल कर अपनी मॉ की चिता जलाने आया था। चदन की बदकिस्मती ने उसे बीरभूम के एक गुप्त जगली अड्डे पर दबोचा। वहॉ एक पुलिस दल ने उसे उस की टोली के साथ घेर लिया और चटाई के बिस्तर पर मौत की नीद सुला दिया।

<4>

नक्सलबाड़ी से वास्ता

मानवीय घटनाओ में एक रहस्यमय चक्र होता है। कुछ पीढियों को बहुत मिलता है। कुछ से बहुत अपेक्षा की जाती है।

-एफ. डी. रूजवेल्ट

आने वाला समय गर्जना और तूफान से भरा था। नक्सलबाडी मे आग लगी थी। चारु मजूमदार, कनु सान्याल और जंगल संथाल के संगठन ने जोतदारों की जमीन कब्जाने और चाय बागान के अफसरों का घेराव करने का सिलसिला शुरू कर दिया था। कलकत्ता के औद्योगिक क्षेत्र में कम्यूनिस्टों के नियंत्रण वाले मजदूर संघों द्वारा अराजकता का माहौल बनाने से उनका हौसला और भी बढ गया था।

1960 में अनाज की भारी कमी, उद्योगों के बंद होने और गंभीर आर्थिक मदी ने लडखडाती काग्रेस सरकार की चूलें हिला दी थीं। कम्यूनिस्ट, उनके वामपथी साथी और इदिरा काग्रेस विरोधी शक्तियां जनता के गुस्से और मोहभग का फायदा उठाने से चूकी नही। बौने काग्रेसी नेताओं के पास विचारों का अकाल पड गया था। भारतीय बंगाल की जनता जखीरेबाजो, कालाबाजारियों और आर्थिक लूटखसोट करने वालो के रहमोकरम पर थी। जनता मे गुस्सा था। जवाहरलाल के बाद का दिल्ली नेतृत्व बंगालियों के दुखदर्द से उदासीन था। 1964 के सांप्रदायिक उन्माद, कच्छ के युद्ध और पश्चिमी सीमा की लडाई के चलते अर्थव्यवस्था बहुत कमजोर पड गई थी। लाल बहादुर शास्त्री के बाद गद्दी सभालने वाली इदिरा गॉधी राजनीतिक व्यवस्था, सूखे के प्रभाव और अनाज की कमी से जूझने में व्यस्त थी।

उनकी प्राथमिकता सूची में कलकते को तरजीह पूर्वी बगाल की स्थिति के जटिल हो जाने के बाद ही मिली। बंगाल की मुख्य काग्रेसी ताकतें उनके अनुकरण पर आ गईं। दिल्ली के लिए नक्सलबाडी की उथल-पुथल महत्वहीन चिंगारियां मात्र थी। सत्ताधारी कम्यूनिस्ट और बंगाल कांग्रेस के नेताओं ने उन संवैधानिक, राजनीतिक और प्रशासनिक ढांचों को ढहाने की आत्मघाती नीति अख्तियार कर ली जिन की रक्षा करना उनका कर्त्तव्य था।

नक्सलबाडी में संघर्ष जोरों पर था। चारु-कनु-जगल की तिकडी ने आतंक का साम्राज्य फैला दिया था। इसके लिए संगठन के प्रतिबद्ध सदस्यों के अलावा उनके साथ भूखे और गुस्साए भूमिहीन किसानों तथा मजदूरों का हुजूम था। हथियारों के नाम पर उन के पास कुछ बंदूकें, भाले और तीर-कमान थे। वे अस्सी के दशक के ए.के.47 वाले आतंकवादी न थे। अलबत्ता वे कुछ पुलिस चौकियों से •303 राइफलें और बंदूकें लूटने में कामयाब हो गए थे।

जंगल संथाल के गुट ने पहली पुलिस-हत्या खेरू जोत के पास की। वहाँ नक्सलों ने इंस्पेक्टर सोनम वांगदी के पुलिस दल पर घात लगा कर हमला किया। उस बहादुर लेकिन

अकुशल पुलिस ऑफिसर की एक बाण ने जान ले ली। वांगदी एक लायक छानबीन करने वाला ऑफिसर था। लेकिन उसे दुश्मनी पर आमादा हथियारबंद भीड का मुकाबला करने की ट्रेनिंग नही मिली थी। आदर्श से उन्मत्त संगठन द्वारा सामूहिक हथियारबंद हिंसा पश्चिम बगाल की पुलिस के लिए नई बात थी। हथियारबंद भीड और गलियारों में चुपके से घात लगा कर हत्या करने वालों के गोरिल्ला युद्ध का सामना करने का प्रशिक्षण अभी तक आतरिक सुरक्षा ट्रेनिंग का अनिवार्य अंग नहीं बना था। अपराध और अपराधियो के विरुद्ध कार्रवाई ही अब तक पुलिस प्रशासन का मुख्य आधार था। कानून-व्यवस्था बनाए रखने का मतलब अब तक कानून का पालन करवाना और शातिपूर्ण सामाजिक व्यवहार बनाए रखना भर था।

वांगदी की मौत ने निस्सदेह यह साबित कर दिया था कि जिला पुलिस इस आक्रोश का सामना करने के लिए अपर्याप्त है। लिहाजा पूर्वी सीमा राइफल्स और राज्य सशस्त्र पुलिस की कुछ बटालियनें स्थानीय पुलिस की मदद के लिए लगाई गई।

लेकिन एक और बहुत प्रखर व असामान्य बल भी नक्सबाडी में पुलिस कार्रवाई के पर्यवेक्षण के लिए आ पहुँचा। ये थे हरेकृष्ण कोनार और सुशील धारा जैसे वरिष्ठ मंत्री। उन्होंने पुलिस थानों में अड्डा जमाया और निर्देश देने शुरू कर दिए। मत्रियो के आने से ऊँचे पुलिस अधिकारी भी इस छोटे से कस्बे मे आ गए। मत्रियो ने नए पुलिस मानक बनाए- देखो, इतजार करो। वह इस बात की निगरानी कर रहे थे कि निर्बाध सपत्ति लूटने और लोगो पर जानलेवा हमले करने वाले नक्सलियो के खिलाफ कानूनी हिंसा का इस्तेमाल न हो। अगर जिला प्रशासन पर छोड दिया जाता तो आदोलन की कानून-व्यवस्था की समस्या को कुछ हफ्तो में सुलझा लिया जाता। लेकिन आदर्शों से प्रेरित मत्री जनता के लोकतंत्र की स्थापना करना चाहते थे। वे सवैधानिक व्यवस्था को भीतरघात से नष्ट करने की धारणा को नए आयाम देना चाहते थे। वे अराजकता और वर्गनाश के हथियार से सामाजिक क्राति नाम की मिथ्या कल्पना को बढावा देना चाहते थे।

नक्सलबाडी मे मेरी तैनाती की असल वजह यह थी कि मै जिला पुलिस की मदद करूँ। मैं राज्य सशस्त्र पुलिस की एक टुकडी का नेतृत्व करूँ ताकि उनकी कार्रवाई को जिला पुलिस की कानूनी आड हासिल हो। शायद इस इलाके और यहाँ के लोगों से मेरे परिचय ने भी जिला अधिकारियों को मुझे इस काम में लगाने के लिए प्रेरित किया। मैने मौके को हाथ से जाने नहीं दिया। मैं कुछ सक्रिय होना चाहता था। कालिंपोग में कार्रवाई पैदा करने से तो कार्रवाई मे कूद पडना कही बेहतर था।

मुझे सब से पहले एस.पी. के पास हाजिर होना था। उन्होने बडी बहादुरी के साथ दोहरी जिम्मेदारी उठाई थी। एक तो उस बल का प्रबधन जिससे उम्मीद की जाती थी कि वह बल का प्रयोग न करे। दूसरा मत्रियों से निबटना जो अपने वर्ग के दुश्मनों की जानमाल की रक्षा के लिए कार्रवाई का नया फलसफा गढ रहे थे। मंत्री भी एक ही आदर्श की नाव पर सवार न थे। हरेकृष्ण कोनार पुराने मार्क्सवादी थे। उनकी नीतियॉं अपने सहयोगी पुराने कांग्रेसी और अब बंगाल कांग्रेस के सुशील धारा से अलग थीं। धारा कडी कार्रवाई के हक में थे। पर अपनी बात पर जोर देने का राजनीतिक हौसला उन में नहीं था।

यह बात एकदम स्पष्ट कर दी गई थी कि मैं थाने में अड्डा जमाए मंत्रियों की स्पष्ट अनुमति के बिना हिंसा का प्रयोग नहीं करूँगा।

तो फिर मैं बेगुनाह लोगों के जानमाल की रक्षा कैसे करूँगा?

'देखो और रिपोर्ट करो,' जवाब में यह स्पष्ट निर्देश मिला।

मेरी मुलाकात का दूसरा पडाव स्थानीय स्कूल के हेडमास्टर जगदानंद राय के यहाँ था। इस पुराने क्रांतिकारी से मिल कर पहले जैसी खुशी नहीं हुई। हिंसा में उनका विश्वास किसी दूसरे कारण से था। चारु मजूमदार के सगठन की माओवादी हिंसा के वह समर्थक न थे। उन्होंने अपने तरीके से स्थानीय भूमिहीनों और बटाईदारों को प्रभावित करने की कोशिश की। लेकिन स्थानीय कम्यूनिस्टो और नक्सलियों ने हिंसा के बल पर उन्हें खामोश कर दिया।

वह अब बहुत हताश हो चुके थे। जगदानंद महसूस करते थे कि लोगों की शिकायतें और परेशानियाँ सच्ची हैं, लेकिन उन्हें दूर करने के लिए अपनाए जा रहे साधन गलत। माओ और स्तालिन का फलसफा भारत-भूमि पर भी आजमाया जा सकता है, इस में उन्हें सदेह था। उन्होंने चारु के पीछे कोई विदेशी हाथ होने की सभावना भी व्यक्त की। इससे मुझे हैरानी हुई। वह जमीनी आदमी थे और उन के कान वहाँ की धरती के बहुत पास थे। पर जगदानंद ने अपनी इस टिप्पणी पर विस्तार से चर्चा करने से इनकार कर दिया।

मैंने उनसे अनुरोध किया कि जंगल संथाल से मेरी एक भेंट करा दें। पर उन्होने मना कर दिया। उनकी राय में उस जैसे लोगों में बहुत कम मानव-मूल्य शेष थे। उनके सिर पर चीन की तथाकथित सांस्कृतिक क्राति का भूत सवार था। उनकी नजर में इन्सान की जिदगी एक तिनके से भी कम महत्व रखती थी। जगदानद ने मुझे सलाह दी कि इस नाजुक वक्त में मैं जंगल या चारु से मुलाकात कर के बदनामी मोल न लूँ। उनसे तो मुलाकात लडाई के मैदान में ही हो सकती थी जहाँ राजनीतिज्ञों ने अपनी नई सामाजिक व राजनीतिक व्यवस्था की विकृत धारणा के चलते पुलिस के हाथ बाँध रखे थे।

यह मेरी जगदानंद राय से आखिरी मुलाकात थी। इसके बाद नक्सलियों ने उनकी हत्या कर दी। क्योंकि वह किसी ऐसे निमित्त के लिए हिसा करने का खुला विरोध कर रहे थे जो संवैधानिक तरीके से प्राप्त हो सकता था। वह स्थानीय मछली बाजार गए थे। वहाँ उनके एक पूर्व विद्यार्थी ने उन पर बहुत पास से गोली चलाई। उसने घोडा दबाने से पहले अपने हेडमास्टर का अभिवादन भी नहीं किया।

राज्य सशस्त्र पुलिस की एक टुकड़ी के साथ, मंत्री का भाषण सुनने के पश्चात् मै झोरू जोत गांव को चल दिया। इस गाँव में जमींदार और चाय बागान के मजदूर बसते थे। यह धान के खेतों और लहलहाते चाय बागानों के बीच इन्सानी बस्ती का एक द्वीप-सा था। ड्राइवर नीमा ने अचानक ब्रेक लगाए और मुझ से कहा कि मैं दाईं तरफ देखूँ।

वे वहाँ थे। 150 के करीब नक्सली। वे बंदूकों और परंपरागत भालों व तीर-कमान से लैस थे। वे जंगल संथाल और उसके डिप्टी थराग ओरांव की अगुआई में थे। उन्होंने जोतदारों के दोमंजिले मकानों को घेर लिया था और उन्हें मार डालने की धमकी दे रहे थे। मैं अपनी दूरबीन से मिट्टी और फूस से बने मकानों के दूसरे तले पर छज्जों में जमे रोते-चीखते बच्चों और औरतों को देख सकता था। कोई बहरा भी उनकी हृदय विदारक चीखों को सुन सकता था।

मैंने राज्य सशस्त्र पुलिस की एक प्लाटून और चार पुलिस के सिपाहियों को फौरन वहाँ जाने का आदेश दिया। मैंने उन्हें कहा कि उन घरों और बढती नक्सली भीड के बीच मोर्चा जमा लें। मैं खुद दो थाम्सन कारबाइन वाले एस.ए.पी. के सिपाहियों के साथ एक कच्ची दीवार के पीछे जा डटा। यह जानवरों के तबेले और उन घरों के बीच थी।

जंगल संथाल को पुलिस दल के आने की उम्मीद न थी। उसने अपने उन्मत्त क्रांतिकारियों को पेड़ों की आड लेने को कहा।

"सरकार के गुलामों, दफा हो जाओ। हमारे और खून चूसने वाले जोतदारों के बीच मत आओ,"जंगल संथाल चिल्लाया।

मैं जीप के बोनट पर खडा हो कर जवाब में चिल्लाया।

"मैं यहाँ बेगुनाहों की जान बचाने आया हूँ। लौट जाओ और मुझे बल प्रयोग करने पर मजबूर न करो।"

जंगल मुझे देख कर हैरान हो गया। वह कुछ देर रुका। उसने एक सिगरेट सुलगाई। फिर जवाब में चिल्लाया।

"लौट जाओ, साहब। यह लडाई का मैदान है। आप यहॉ क्या कर रहे हैं?"

"मैंने बताया ना, मैं यहॉ उनकी रक्षा करने आया हूँ जिन्हें तुम मारना चाहते हो।"

जंगल ने कोई जवाब नहीं दिया। वह एक कटहल के पेड के पीछे चला गया। उसके दो 'स्वतंत्रता सेनानी' चुपके से बाहर निकले। उन्होंने गाय के तबेले की तरफ जलते हुए तीर छोडे। फूस की गोठ ने फौरन आग पकड ली। निस्सहाय गाएँ जोर से रंभाती हुई बाहर भागीं। कुछ पशु बांसों से बंधे थे। वे भाग नहीं पाए और जिंदा भुन गए।

बेबस पशुओं पर घिनौने हमले के बाद घर के बाशिंदों की तरफ गोलियों की बौछार हुई। मुझे यकीन हो गया कि जंगल बाज नहीं आएगा। जंगल पजों के बल किसी सियार की तरह आगे आया। उसने अपनी 'सेना ' को घरों पर धावा बोलने और आग लगाने का इशारा किया। मै ने अपने अधिकार का प्रयोग करने का निर्णय लिया। मैंने एस.ए.पी. के सिपाहियों से कहा कि अपनी बंदूकें तान लें और मेरे आदेश का इंतजार करें।

मैं फिर से जीप पर चढा। मैंने चिल्ला कर जंगल से कहा कि अपने आदमियों के साथ तितर-बितर हो जाए। घरों के बेगुनाह लोगों पर हमला न करे। उसने जलती हुई लाल आंखों से मेरी तरफ देखा। फिर अपनी 'सेना ' को घरों पर जलते तीर छोडने का आदेश दिया। सूखे फूस में आग लगने में देर न लगी। घरों के बाशिंदे चिल्लाते हुए नीचे अहाते में आ गए। वे अब हमारी पंक्ति से सिर्फ एक मीटर पीछे थे।

मैंने देर नहीं की। मैंने तीन एस ए पी. के सिपाहियों को भीड की टांगों का निशाना साध कर तीन गोलियॉ दागने का आदेश दिया। उन में से दो गोलियाँ निशाने पर लगीं। इन से जंगल के दो अगली पंक्ति के सहायक गिर पडे। भीड पीछे हट कर पेड़ों की ओट में हो गई। वहाँ से उसने बंदूकों और •303 राइफलों से गोलियॉ चलाईं। मेरे सिपाही इस हमले से बच गए। वे रेंग कर आगे बढे। उन्होंने फिर कमर से नीचे गोलियॉ दागीं। इस से जंगल का एक डिप्टी धराशायी हो गया। वह एक खाई की तरफ दौडा जो पास के नाले से जा मिलती थी। उसकी 'सेना ' देखते-देखते गायब हो गई। मेरे जवान आगे बढ़े। उन्होंने घायलों को संभाला। उन्होंने हथियार भी बरामद किए। इन में एक तो पुराने जमाने की अजीब-सी बंदूक थी।

मैंने एस.पी. को सारी बात बताई और उनसे कहा कि आपराधिक मामला दर्ज करने और घरों के बाशिंदों की देखरेख के लिए थानाध्यक्ष को भेज दें। मैंने संघर्ष वाले स्थान की सुरक्षा के लिए 10 जवानों को तैनात कर दिया। फिर मैं जंगल संथाल की 'क्रांति सेना ' के घायल सदस्यों को ले कर फौरन थाने की तरफ भागा।

सब डिवीजनल पुलिस ऑफिसर दीपक घोष ने वहाँ मेरा नाटकीय अंदाज मे स्वागत किया।

"बहुत बडी समस्या है।"

"मेरे खयाल में मत्री लोग बहुत ज्यादा नाराज हैं।"

"हां। वे एस पी. पर चिल्ला रहे हैं। कोनार आदेश न मानने के लिए तुम्हारी बरखास्तगी चाहते हैं।"

"देखते है।"

मुझे अपनी रीढ मे सनसनी-सी महसूस हुई। पर मैंने बहादुरो वाला चेहरा बनाए रखा। घायलो को उपचार के लिए थाने के हवाले कर दिया गया था। मैं एक सिगरेट सुलगा कर बरगद के नीचे बैठ गया और रिपोर्ट लिखने लगा। मैने देखा एस.पी छोटे-से बरामदे मे बेचैनी से टहल रहे थे। पर मैं उनसे लिखित रिपोर्ट के साथ ही मिलना चाहता था।

मुझे पता नही कि एस पी. उस जघन्य घटना पर मेरी रिपोर्ट से सतुष्ट हुए या नही। पर मैंने दो पृष्ठो की रिपोर्ट में सारे तथ्य बयान कर दिए थे। जनरल डायरी भी मेरी निगरानी में भरी गई। मै ने इस बात की तसल्ली कर ली कि मंत्रियों को तथ्यों और रिकार्ड को तोडने-मरोडने का मौका न मिले।

हरेकृष्ण कोनार का सामना मैने पूरे हौसले और हिम्मत से किया। मत्री इस बात से बहुत चिढे हुए थे कि मैंने गोली चलाने और पॉच लोगो को गभीर रूप से घायल करने से पहले उनकी इजाजत क्यों नही ली। मैंने उनका पूरा सम्मान करते हुए वह सारी बात दोहराई जो एस पी को बताई थी।

"मै तुम्हे नौकरी से निकाल सकंता हूँ," वह चिल्लाए।

"नहीं, सर। आप ऐसा नही कर सकते। मैं एक प्रतिश्रुत अधिकारी हूँ और भारत के राष्ट्रपति की इच्छा से सेवा करता हूँ। मैंने कानून के मुताबिक अपने कर्त्तव्य का पालन किया है। आप जो भी फैसला लेंगे उसे अदालत में चुनौती दी जाएगी।"

किसी तीन सितारो वाले अफसर से ऐसा जवाब सुन कर वह बहुत भिन्नाए। मैने उन्हे अपनी ट्रेनिग के दौरान सिखाई गई एक और बेहतरीन सैल्यूट मारी और परेड के अदाज मे उलटे मुड कर चला आया।

उसी रात मुझे वापस अपने स्टेशन कालिपोंग जाने का आदेश मिला।

मैंने मीडिया से इस बारे में बात नहीं की। पर मुझे यकीन था कि मार्क्सवादी मंत्री को मेरा कानूनी जवाब हजम नही हुआ होगा और वह जरूर मुझे आग पर सेंकने की कोशिश करेंगे। यह आग राते मागर वाले मामले से कहीं तेज होगी।

नक्सलबाडी से मेरा वास्ता खत्म हुआ। डकैती के खिलाफ मेरे अभियान की उच्च स्तर पर जाँच पहले ही हो चुकी थी। लिहाजा अब मुझे इस से भी ऊँचे स्तर की जाँच का अदेशा था। शायद उच्च न्यायालय के किसी वर्तमान जज द्वारा।

पर ऐसा कुछ नहीं हुआ।

नक्सलबाडी के साधारण से किसान आंदोलन ने सैद्धांतिक सशस्त्र क्रांति की शक्ल अख्तियार कर ली थी। इसके लिए कुछ तो सामाजिक, आर्थिक व प्रशासनिक पद्धति की तंगनजरी जिम्मेदार थी तो कुछ भारतीय बंगाल के अति उत्साहित मार्क्सवादी। सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन की गति की नासमझी ने समस्या को और भी जटिल बना दिया था। 1962

में चीन के साथ युद्ध की शर्मनाक हार और 1965 मे पाकिस्तान के साथ अनिर्णीत युद्ध के बाद के नए निर्माणात्मक परिवर्तन से उठा गुबार भी इसके लिए जिम्मेदार था।

1967 में मैंने नक्सलबाडी मे एक छोटी-सी चिंगारी देखी थी। उसका बहुत बडे बवडर वाला रूप सामने आने में अब ज्यादा देर नहीं थी। उसमें 21वीं सदी के वैश्विकवाद के भारत का इतिहास दोबारा लिखने की ताकत थी। यह देश का दुर्भाग्य ही है कि आज के शासक भी महान आर्थिक व सामाजिक गलतियो से निबटने के लिए आग बुझाने के सिद्धांत पर चल रहे है। वे भी सही सुधार लाने में असफल रहे हैं। अगर कुछ सुधार किए जाते तो अमीरी-गरीबी की खाई का अतर कुछ तो कम होता। उनकी वैश्वीकरण की नीति आज भी ग्रामीण अर्थव्यवस्था, कृषि क्षेत्र को सबल बनाने और ग्रामीण रोजगार की उपेक्षा कर रही है।

माओवादी क्राति के छुरे के लबे होते साए ने अब नेपाल और भारत के कई अन्य राज्यो को भी अपने प्रभाव में ले लिया है। भारतीय शासक वर्ग अब भी इसे एक कानून-व्यवस्था की समस्या समझे बैठा है। समाजशास्त्री और बुद्धिजीवी शासको को यह समझाने में कामयाब नही हुए कि नक्सलवाद कोई आपराधिक फलसफा नही। यह एक विचारधारा है जो सर्वहारा वर्ग को अपने अधिकारो की लडाई लडने के लिए साधन और हौसला देती है। नक्सलवाद हिंसा के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन लाने का एक साधन है। क्योंकि इसके लिए सवैधानिक तरीके असफल हो चुके हैं।

विचार कभी मरते नही। खासतौर पर तब जबकि सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक उपचारों की आपराधिक उपेक्षा हो रही हो। धार्मिक कट्टरपन का पुनरुत्थान भी एक प्रकार का विद्रोह ही है जिसके अनुसार एकांतिकता मे ही सुरक्षा है। सभ्यताओं का कथित संघर्ष भी नव-साम्राज्यवादी शक्तियो और उन शक्तियों के बीच संघर्ष ही है जो सभ्यता के लाभ हस्तगत करने में पिछड गईं। एकध्रुवीय विश्व, आर्थिक वैश्वीकरण और 'बुराइयों की धुरी ' पर अमेरिका की स्पष्ट जीत चिंतनरत आत्माओ और भूखे पेटों की आग नही बुझा सकती। दुर्बल चारु मजूमदार और हताश जगदानंद ने मुझे मानव इतिहास की यात्रा के मूल सिद्धात सिखा दिए थे।

हम विचारों की उसी तरह परिक्रमा करते है जैसे कि पृथ्वी उस आग के गोले के चारों ओर घूमती है, जिसे सूर्य कहते है।

* * * *

वर्दीधारी पुलिस में मेरी थोडे समय की नौकरी कडवी यादों से अछूती नहीं रही। एक घटना जिस ने मुझे हिला कर रख दिया, वह थी जयनाथ (बदला हुआ नाम) की हत्या। वह एक अमीर मारवाडी व्यवसायी का घरेलू नौकर था।

यह वारदात फरवरी 1968 में मेरी शादी के तुरंत बाद ही हुई। हम दार्जीलिंग के एक हरे भरे पर्वतीय स्थल मोंगपू गए हुए थे। वापसी में मैं थाने में रिकार्ड की ज़ॉच करने और थानाध्यक्ष से वहाँ का हालचाल जानने गया। मुझे बताया गया कि मेरी गैरमौजूदगी में केवल एक अस्वाभाविक मृत्यु का मामला दर्ज हुआ है। थाने के स्टाफ ने शव परीक्षण करवा लिया था। रिकार्ड उतने ही सीधे और सही थे जितना कि अभागे जयनाथ द्वारा असमय चुना गया अंधेरे लोक में जाने का रास्ता।

अगली सुबह सुनंदा और मैं बालकनी में बैठे चाय की चुस्कियाँ ले रहे थे। साथ ही हम घाटी की गुनगुनी गोद से आहिस्ता आहिस्ता उठते श्वेतपंखी बादलों को भी गिन रहे थे। दूर कंचनजगा की चोटी उगते सूर्य के इंद्रधनुषी रंगों से चमक रही थी।

तभी धनबीर शयनकक्ष से बाहर निकला और तेजी से गेट पर जा कर एक फटेहाल अजनबी पर चिल्लाया। उस आदमी के बदन पर शायद ही कोई गरम कपडा था। पर उसके कंधे पर पड़े अंगोछे से मैं समझ गया कि वह बिहारी है।

मैंने धनबीर से चिल्ला कर कहा कि उसे आने दो। धनबीर मेरी इस सदाशयता से खुश नहीं हुआ।

"हुजूर, ऐसा न करें। आप बडे ऑफिसर हैं।"

मैंने आने वाले को इशारा किया। वह जोर-जोर से सुबकने लगा और मेरे पैरो पर लोट गया। उस आदमी को तसल्ली देना और शात करना आसान न था। मेरा अंदाजा सही निकला। वह बिहारी था। उस का नाम रामनाथ (बदला हुआ नाम) था। उस का भाई जयनाथ हर्षद झुनझुनवाला (बदला हुआ नाम) के घर का नौकर था। हर्षद की कस्बे के मुख्य बाजार में कुछ दुकानें थीं। रामनाथ ने कहा कि हर्षद और उसके बेटे ने उसके भाई की हत्या की है। उन्होंने पुलिस ऑफिसर और मेडिकल ऑफिसर को घूस दे कर इस जघन्य अपराध को दबा दिया है। पर रामनाथ के पास अपने आरोप को सिद्ध करने के लिए कोई सुबूत नहीं था।

मैं फिर थाने पर गया। वहाँ मैंने केस की डायरी और शव परीक्षा की रिपोर्ट का फिर से मुआयना किया। शव परीक्षा रिपोर्ट में लिखा था कि मृतक की गरदन की बाईं ओर तीन इंच लंबा और दो इंच गहरा घाव था। काट स्पर्शरेखा की तरह था। वह गरदन की शिरा के निचले हिस्से में सब से गहरा था। जबडे की हड्डी के नीचे वह सब से कम गहरा था।

कई दिनों की कोशिश के बाद मैं एक बूढी औरत से मिला। वह हर्षद के घर से एक तला नीचे रहती थी। उसने बडी दिलचस्प कहानी सुनाई। जयनाथ बडा सुंदर युवक था। वह हर्षद की एक दुकान पर काम करता था और घर के काम में भी हाथ बटाता था। वह इतना बेवकूफ न था कि अपने मालिक की बेटी का शील भंग करता। पर हर्षद की कोई 20 साल की बेटी सोनमती (बदला हुआ नाम) बिहारी नौकर पर फिदा हो गई। वह उस बेचारे से लिपट गई। दोनों प्रेमियों का इश्क पीगें मारने लगा। छंग पीने वाली महिला ने उन्हें आपत्तिजनक स्थितियों मे देखा था।

"उसकी हत्या किस ने की?" मैंने पूछा।

"हर्षद ने। हर्षद को इस का पता चल गया था। वह जयनाथ को घसीट कर पिछले बरामदे में ले गया। उसने खुखरी से उसकी गरदन पर वार किया। उस लड़के की जान लेने के लिए एक ही वार काफी था।"

"उस लड़की का क्या हुआ?"

"वह कुछ दिन बहुत रोई। फिर उसे वापस राजस्थान रवाना कर दिया गया।"

"किसी ने उस से बात की क्या?"

"पता नहीं। पर मैंने हर्षद को लड़के की हत्या करते देखा था।"

"तुमने पुलिस को क्यों नहीं बताया?"

"मैं ऐसा क्यों करती? मुझे अहमद दारोगा से कौन बचाता?"

"अगर मैं तुम्हारी हिफाजत करूँ और अच्छा इनाम दूँ तो क्या इस मामले में बयान दोगी?"

"इनाम की कोई जरूरत नहीं। मैं उस लडकी के खोए प्यार की खातिर बयान दूँगी। आखिर मैंने भी कभी प्यार किया था। तुम्हें मुझे समझाने की जरूरत नहीं कि प्यार क्या होता है।"

उसने एक फीकी मुस्कान के साथ आंख मारी।

बाद में उस हिम्मतवाली महिला को एक मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया। वहाँ भारतीय दंड संहिता की धारा 164 के अंतर्गत उस का बयान दर्ज किया गया। मैंने एस.पी से उस मामले की चर्चा की। मैंने अनुरोध किया कि थानाध्यक्ष अहमद का कहीं बाहर तबादला कर दिया जाए और केंद्रीय अपराध विज्ञान प्रयोगशाला से शव परीक्षा रिपोर्ट की दोबारा जाँच करवाई जाए। उन्होंने मुझे पूर्ण सहयोग का आश्वासन दिया। लौट कर मैंने दावा नोरबू को आदेश दिया कि वह भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अंतर्गत हर्षद झुनझुनवाला पर आपराधिक मानव हत्या का आरोप लगाते हुए मामला दर्ज करे। हर्षद को तुरंत गिरफ्तार कर लिया गया और पूछताछ के लिए पुलिस रिमांड पर ले लिया गया।

कालिपोंग जैसे छोटे और शांत कस्बे में उत्तेजना का माहौल बन गया। मैंने सेवानिवृत्त मुख्य न्यायाधीश सुधीररंजन दास से इस मामले की चर्चा की तो उन्होंने मेरी कार्रवाई का समर्थन किया। कस्बे के सभी संभ्रांतजनों ने मेरी प्रशसा की। पर कुछ ऐसे भी थे जो रुष्ट थे।

एक और सुहानी सुबह मैं और सुनंदा बालकनी में आ गए थे। बडा ही खुशनुमा नजारा था। सूरज ने अपने सारे रंग कंचनजंगा की बर्फ पर बिखरा दिए थे। उन इंद्रधनुषी रंगों के विकीर्ण होने से ऐसा लगता था मानो दूर क्षितिज के परदे पर स्वर्ग से उतरी परियाँ नृत्य कर रही हों। इससे पहले हम ने कभी छाया और प्रकाश का ऐसा नर्तन नही देखा था। हम पर जैसे जादू-सा छा गया। सुनंदा ने सूर्य देवता की स्तुति मे संस्कृत में एक श्लोक पढा।

धनबीर एकाएक चिल्लाया तो हमारा ध्यान भग हुआ। वह बाहर भागा और फिर एक गिलहरी की सी फुर्ती से लौट कर आया।

"कुछ बडे लोग आए हैं।"

सुनंदा अंदर चली गई। मैं बाहर आया। मेरा सामना कस्बे के दो बड़े लोगों के मुस्कराते चेहरों से हुआ। एक तो चायबागान का मालिक था। दूसरा बडी लंबी-चौडी पहुंच वाला ट्रांस्पोर्टर।

"सर, हम अंदर आ सकते हैं?"

"जी, जरूर तशरीफ लाइए।"

मैं उन बड़े लोगों की धृष्टता हजम कर गया लेकिन उन्हें बरामदे में ही बैठाया। धनबीर खास मेहमानों के लिए चाय बनाने दौडा।

"सर, इस हर्षद वाले मामले से कस्बे की बदनामी हो रही है। कृपया इसे ठप्प कर दें," चायबागान वाले ने बातचीत की शुरुआत की।

"पर इस मामले में तो ठोस सुबूत मौजूद हैं। उसे तो फाँसी होनी चाहिए।"

"मेहरबानी कर के हमारी विनती सुनें", ट्रांस्पोर्टर बोला, "हम आप के लिए एक छोटा सा तोहफा भी लाए हैं।"

उसने ब्रीफकेस खोला ' उसमें नोटों की गड्डियाँ थीं।

"ये एक लाख रुपए हैं। मेहरबानी कर के इन्हें कबूल कर लें और केस को भूल जाएँ।"

चायबागान वाला मुझे बाकायदा ब्रीफकेस भेंट करने के लिए उठ खडा हुआ।

अब उठने की मेरी बारी थी। यह सोच कर मेरे तो रोंगटे खडे हो गए कि कालिपोंग का एस.डी.पी.ओ., जिसे 490 रुपए तनख्वाह मिलती थी और जिसके बैंक खाते में 1500 रुपए जमा थे, उसकी औकात एक लाख रुपए की थी। मुझे दोबारा सोचने की जरूरत नही पडी कि मै इतनी बडी रकम के लायक नही।

"आप का बहुत बहुत शुक्रिया। " मैने उन्हे धनबीर की लाई चाय पेश की। "आप मेरे साथ चाय पीजिए और यह रुपयो वाला बैग हटा लीजिए। हर्षद को कानूनी कार्रवाई का सामना करना ही होगा। इस में मै कुछ नही कर सकता।"

कालिपोग के बडे लोगो की बोलती बद हो गई। वह फैसला नही कर पा रहे थे कि चाय पिएँ या वहॉ से भाग खडे हो।

वे शालीनता से चले गए। पर मेरी स्मृति पर एक गहरा निशान छोड गए।अगर मे वह भेंट कबूल कर लेता तो मेरी लडखडाती आर्थिक हैसियत सुधर जाती। मुझे एहसास था कि मैं अब एक नए सामाजिक स्तर मे शामिल हो चुका हूँ। यहाँ लोग एक दूसरे को भ्रष्ट कर के तरक्की करते हैं।

मेरे मेहमानों के दिल्ली और कलकत्ते में तगडे रसूख थे। ट्रास्पोर्टर के ससुर ने आई.बी. में अच्छा नाम कमाया था और वह अभी-अभी सहायक निदेशक के पद से रिटायर हुए थे। वह और चायबागान वाला काग्रेस पार्टी के फंड मे खुले हाथ से चदा देते थे। राइटर्स बिल्डिग के कई अफसरशाह भी उनकी उदारता के बोझ तले थे। मै जानता था कि वे मुझे कालर से पकड कर तीस्ता की लहरों मे फेक सकते थे।

मुझे कालिंपोंग से बाहर तबादला हो जाने की चिंता न थी। मेरी तरक्की होने वाली थी। मैं एडीशनल एस पी. बनने वाला था। मुझे दार्जीलिग भेजे जाने की सभावना थी। उसी एस पी. के अधीन जिन्होंने मुझे प्रशिक्षण दिया था। कस्बे के लोग मेरे साथ थे। मेरे बॉस मुझ से बहुत खुश थे। लेकिन उन्होने मेरे कान मे कहा कि मुझे तरकीब से काम लेना सीखना चाहिए। प्रशासन के इस कीचड मे अपनी चमडी बचाने के लिए यह जरूरी है।

उनकी बात एकदम सही थी। पर मैं उन के मार्गदर्शन मे भी यह सुनहरा उसूल न सीख पाया। शायद मुझे सरकार की सेवा करने का सुनहरा नियम कभी भी नही आया।

सिक्किम सीमा पर रोंगपो में एक भारतीय चौकी पर तैनात एक जूनियर अफसर के कानून लागू करने से एक और घटना घटी। इसने तो अप्रिय घटनाओं का सिलसिला ही छेड दिया।

रोंगपो मूलतः सिक्किम सीमा पर एक आव्रजन चौकी थी। इसका काम विदेशी आवाजाही को नियमित करना और उसका रिकार्ड रखना था। यह भारत-सिक्किम की ढिलाई वाली सीमा से चीनी माल की तस्करी की भी रोकथाम करती थी। पर यह वहाँ तैनात अफसर की भूख और प्यास पर निर्भर करता था।

दुर्भाग्य से उस रात को सबइंस्पेक्टर चंद्रकांत प्रधान ड्यूटी पर था। वह न भूख से पीडित था न प्यास से। वह एक ईमानदार अफसर था। उसे खारीबाडी पुलिस थाने से निकाल बाहर किया गया था। बात यह थी कि वह नेपाल से एडीशनल एस.पी के लिए एक सोने का हार

लाया था। उसने इस हार के पैसे माँगने की धृष्टता कर डाली थी। इस एस.पी. ने पहले कालिंपोंग के हिमालयन होटल में फिल्मी सितारों की मेजबानी भी की थी।

शाम के पाँच बजे थे। तभी फोन पर उसकी कुछ खुरदरी सी आवाज सुनाई दी। उसने गर्व से बताया कि उसने तस्करी से भारत लाई जा रही सिक्किमी शराब से भरा एक ट्रक पकड़ने का कारनामा किया है। सात टन का वह ट्रक कालिंपोंग स्थित सेना के डिवीजन की एक यूनिट का था।

"वह जरूर डिवीजन हेडक्वार्टर का होगा। उसे छोड दो।"

मैंने प्रधान को आदेश दिया।

"होई ना, हुजूर (जी नहीं, हुजूर)", उसने मेरे आदेश पर सख्त एतराज किया। "ड्राइवर के पास न तो रवानगी आदेश हैं न आयात परमिट। उसके पास एक भी कागज नहीं है। मैं उसे कैसे छोड़ दूं?" उसने आगे कहा।

उसकी बात मैं खूब समझता था। कुछ गलत किस्म के सेना के अधिकारी सिक्किम और भूटान से सस्ती शराब की तस्करी करते थे। फिर वे उसे दिल्ली तक के काला बाजार में बेचते थे। यह चोखे मुनाफे का धंधा था। पर मैं सेना के अफसरों से लट्ठमलट्ठा नहीं होना चाहता था। सीमा पर एक्साइज और सीमा शुल्क लागू करना मेरे काम के दायरे में भी नहीं आता था।

प्रधान ने पहले ही मामला दर्ज कर लिया था। अब मैं जनरल ऑफिसर कमांडिंग की मनमर्जी के मुताबिक उसे रफा-दफा भी नहीं कर सकता था।

मैं उस अति उत्साही ऑफिसर से खुश तो नहीं था। मैं जी.ओ.सी. से अच्छी तरह वाकिफ था। वह अपनी कमान करने के अलावा दूसरे धंधे कर के ऊपरी आमदनी करने में लगे रहते थे। उन्होंने मिजोरम और बांग्लादेश के मुक्ति युद्ध में अच्छा खासा नाम कमाया था। लेकिन उनकी सैनिक क्षमताओं पर उन के लोभ का घना साया भी था।

मैंने प्रधान की कार्रवाई को त्यागने का फैसला किया। मैंने तय किया कि क्वार्टर मास्टर जनरल को फोन कर के सारी स्थिति समझा दूँ और कहूँ कि वह किसी जिम्मेदार अधिकारी को भेज कर ट्रक की सुपुर्दारी ले लें। मैंने दावा नोरबू को वहाँ जा कर सारी स्थित संभालने को कहा।

रोंगपो से नोरबू का फोन आया तो उसने मेरे समझौते वाले रवैए को जबरदस्त झटका दिया। सेना के 10 जवानों की एक टोली एक जे.सी.ओ. के साथ पुलिस चौकी पर आ धमकी थी। उसने प्रधान को पकड लिया था और अपना ट्रक जबरदस्ती छुड़ा लिया था। मेरा सब्र जवाब दे गया। मुझे अपने पद और अपने आदमियों के प्रति वफादारी का एहसास हुआ।

मैंने तीस्ता बाजार की पुलिस चौकी को आदेश दिया कि वह ट्रक को पकड ले और मेरे आने का इंतजार करे। मैंने क्वार्टर मास्टर जनरल को फोन कर के सारी स्थिति की जानकारी दी। फिर कुछ सिपाहियों के साथ तीस्ता के पुलिस बल से जा मिला। मैं ट्रक को जबरन वापस रोंगपो ले गया। मैंने दावा नोरबू को आदेश दिया कि वह सेना के अनिधिकृत जवानों द्वारा पुलिस चौकी पर धावा बोलने और ड्यूटी पर तैनात पुलिस अधिकारी पर हमला करने का नया मामला दर्ज करे। इस प्राथमिकी में जे.सी.ओ. और जवानों के नाम भी लिखे गए।

उसके तुरंत बाद घटनाओं का ताबड़तोड़ सिलसिला शुरू हो गया। मैंने शुरुआत में ट्रक के रोके जाने से ले कर अब तक की सारी बातों की जानकारी एस.पी. को दे दी थी। उन्होंने

सिर्फ मेरी बात सुन ली। इसके बाद डिवीजनल कमिश्नर, जी.ओ.सी. और कलकत्ते से असिस्टेंट इंसपेक्टर जनरल के फोन आए। मैंने तब तक पक्का इरादा कर लिया था और उससे टलने से साफ इनकार कर दिया।

जी.ओ.सी. अपने पहाड़ की चोटी पर के घर से मेरे मामूली से दफ्तर तक आए। पहले तो उन्होंने बडे-बडे नाम लेकर मुझ पर रोब झाडने की कोशिश की। जब यह न चला तो उन्होंने प्रस्ताव रखा कि जे.सी.ओ अपनी गलती के लिए माफी मांग लेगा। इसके एवज में मैं ट्रक छोड दूँ और रिपोर्ट को खारिज कर दूँ।

मैं राजी नहीं हुआ। मैंने कहा कि समझौता सिर्फ एक ही शर्त पर हो सकता है। गलती करने वाले सेना के अफसरों का कोर्ट मार्शल हो। मैने जनरल से कहा कि मुझे उनके अधिकारियों की तस्करी की हरकतों से कोई एतराज नहीं। पर मै अपने ऑफिसर पर हमले या अपनी चौकी पर धावे को कभी सहन नहीं कर सकता। दार्जीलिंग के डिप्टी कमिश्नर के हस्तक्षेप के बाद मेरे प्रस्ताव को मान लिया गया।

मैं फिर तरकीब से काम लेने के अहम मामले में चूक गया था। इस चिढाने वाली घटना ने मुझे सेना की स्थानीय यूनिट में अवांछित व्यक्ति बना दिया था। पर इससे मुझे कोई घाटा नहीं हुआ। न तो मैं पार्टियों में जाता था और न ही मुझे अंगूर की बेटी से लगाव था। सेना की यूनिट द्वारा सिक्किमी शराब की तस्करी रुक गई थी। जब तक मै वहाँ रहा, मेने नियम-कानून को सख्ती से लागू करा दिया था।

मेरे मणिपुर प्रवास के दौरान मेरी जनरल से एक बार फिर मुलाकात हुई। 57 पर्वतीय ब्रिगेड के कमांडिग ऑफिसर ब्रिगेडयर क्विन ने उनके सम्मान मे रात्रि भोज दिया था। वह मुझ से कतराए नहीं। हमने बडे दोस्ताना अदाज में गपशप की और कालिपोग के सुनहरे दिनों की मीठी यादों को दोहराया।

लेकिन भाग्य ने मेरे लिए कुछ और ही रच रखा था जिसका मुझे कुछ आभास न था। मेरी दार्जीलिंग में एडीशनल एस पी. बन कर जाने की उम्मीदों पर अचानक पानी फिर गया। दरअसल उस घटना ने मेरे पुलिसवाले कैरियर को ही एकाएक खत्म कर दिया।

वह एक और सुहानी सुबह थी। मैं और सुनंदा तीस्ता से आहिस्ता आहिस्ता उठते बादलो को देखने में व्यस्त थे। हम कंचनजंगा पर रगो का नर्तन देख कर भाव विभोर हो रहे थे और दार्जीलिंग चाय का मजा ले रहे थे।

तभी धनबीर ने पीछे से आ कर मुस्तैदी से सैल्यूट मारी।

"जरूरी संदेश आया है।"

उसने मेरे हाथ में पश्चिम बंगाल के इंसपेक्टर जनरल पुलिस के कार्यालय से आया हाथ का लिखा वायरलेस संदेश थमा दिया।

उसमें लिखा था : "चिन्हित करने की योजना के अंतर्गत मलय कृष्ण धर. आई.पी.एस 1964 (आर.आर.) की सेवाएँ इंटेलिजेंस ब्यूरो, गृह मंत्रालय नई दिल्ली को सौंपी जाती हैं। जिस दिन वह नई दिल्ली में अपना यह कार्यभार संभालंगे, तब से उन्हें अगली तरक्की मिलेगी।"

यह तो अचानक आई मुसीबत जैसा था।

मैंने इंटेलिजेंस ब्यूरो के बारे में पढ रखा था। कालिंपोग में मुझे आई बी. के प्रतिनिधि से मिलने का मौका भी मिला था। मेरे ससुर के साथ कानून पढे और आई.बी. के एक वरिष्ठ अधिकारी पी. एन. बनर्जी से भी मेरी जान पहचान थी। पर मेरा अपना राज्य छोड कर कहीं

और जाने का इरादा न था। मैंने भारतीय इंडियन ऑडिट एंड अकाउंट्स सर्विस की सेवा छोड़ दी थी। मैं खुद से जबरदस्ती कर के आई.पी.एस.में आया था। इसके पीछे मेरा उद्देश्य यह था कि मैं अपने बिखरे पारिवारिक ढांचे को फिर से समेट कर खडा कर सकूं जो कि विभाजन और हमारे माता पिता के देहांत के कारण नष्ट हो गया था। मैं यह सोच कर बहुत परेशान हो गया कि जो घर मैंने जादू की छडी के चमत्कार से अपनी पत्नी और उसके प्यार के दम पर संवारना शुरू किया था, वह बिखर जाएगा।

लेकिन आई.जी.पी. से मेरी अनुनय-विनय किसी काम न आई। आई.जी.पी. श्री उपेंद्र मुखर्जी और उनकी पत्नी ने मेरी पत्नी के प्रति विशेष स्नेह दिखाया। उनकी अपनी कोई औलाद न थी और एक समय में उन्होंने उसे गोद लेने का प्रस्ताव भी रखा था।

श्री मुखर्जी मितभाषी थे। उन्होंने समझाया कि मुझे तुरंत इंटेलिजेंस ब्यूरो में चले जाना चाहिए। उन्होंने बडे प्रेम से समझाया कि राज्य में वातावरण बहुत बदल चुका है। नक्सलबाडी थाने में मैंने वरिष्ठ मार्क्सवादी मंत्री के साथ जो धृष्टता की थी उसे वह भूले नहीं हैं। मैं पुलिसवाला बनने के लिहाज से बहुत सीधा हूँ और मैं उनके निशाने पर भी हूँ।

दिल्ली मेरे लिए एक अनजान जगह थी। वहाँ मैं सिर्फ दो लोगों को जानता था। एक केंद्रीय मंत्री श्री त्रिगुण सेन और एक पश्चिम बंगाल के पुराने साथी। फिर भी मैंने जाने का इरादा कर लिया। और चारा भी क्या था। मार्क्सवादी मंत्री के आक्रोश से तो दिल्ली एक बेहतर नरक था। उसने तो अपनी विकृत मार्क्सवादी सोच के अनुरूप कानून भी खोज निकाले थे।

<5>

नई साहसी दुनिया

यह विचार-शक्ति ही है जो मुझे मानसिक रूप से स्वस्थ बनाए रखती है।
शायद यही मेरा भावनाओं की तुलना में अधिमूल्यन करती है।

बर्ट्रेन्ड रसेल

यह सचमुच एक नई दुनिया में कदम रखना था, जब मैंने 1 जुलाई 1968 को इंटेलिजेंस ब्यूरो के साउथ ब्लॉक कार्यालय में आकर अपनी हाजिरी लगाई। यह नाम ही एक नई करिश्माई दुनिया की तरह था। मैंने विश्वस्त और अविश्वस्त सूत्रों से जो कुछ कारनामे सुन रखे थे उनके कारण मैं कुछ सहमा हुआ था और उत्सुक भी। यह थर्रा देने वाले करनामे करने वाले अलौकिक प्राणियों की एजेंसी का केंद्र समझा जाता था। बहुत कम फर्नीचर वाले लेकिन खुले-खुले कमरे, तंग केबिन और गलियारों में बनी झोपड़ियों ने मुझे बहुत प्रभावित किया। इससे भी ज्यादा प्रभावित करने वाले थे अधिकांश वरिष्ठ अधिकारियों के शांत व गंभीर चेहरे और उनकी निर्लिप्त नजरें। निदेशक बंगाल काडर के एक आई.पी.एस. अधिकारी थे। उन्होंने मेरी तरफ उकताई सी नजर से देखा और डेढ़ वाक्य में मेरा स्वागत किया। मेरे व्यक्तित्व में या मुझमें उनकी कोई दिलचस्पी नहीं थी। उनकी दिलचस्पी अपराध और गुप्तचरी की दुनिया के प्रति मेरी प्रवृत्ति या विचारों में भी नहीं थी। वह यह भी जानने के इच्छुक न थे कि मैं ब्यूरो के इस विशेष दक्षता वाले काम के लायक भी हूँ या नहीं। उनके लिए मैं इस बाडे का एक और जीव था। मैं विचारों और प्रवृत्तियों की चर्चा के लायक कहाँ था। मैं तो अभी बहुत अधकचरा था। मैं एक और चिन्हित अधिकारी था जिसे अभी लबादे और खंजर वाली इस दुनिया के जंतर-मंतर व विधि-विधान सीखने थे।

इंडियन इंटेलिजेंस ब्यूरो शायद एकमात्र ऐसा गुप्तचर संगठन है जो भारतीय पुलिस सेवा में भर्ती हो कर आए वरिष्ठ अधिकारियों को पवित्र गाय की तरह महान समझता है। उनके मुताबिक वे सब कुछ जानने वाले और सब कुछ कर सकने वाले प्राणी होते हैं। अँदरूनी तहखाने उन पर खोलने से पहले जिन्हें किसी तरह से आँकने या कुछ समझाने की जरूरत नहीं होती। के.जीबी., सी.आई.ए. और मोसाद की मेरी किताबी जानकारी की वजह से मेरा अनुमान था कि मुझे पहले अंगारों पर चलाया जाएगा और अगर मैं सही सलामत बच निकला तभी स्वीकार किया जाएगा। मैं तो यहाँ लाया गया एक अधकचरा था, जो गुप्तचरी के धंधे और उसके उपभोक्ताओं से लगभग अनजान था। इस पहले-पहल के वास्ते से मैं बिलकुल प्रभावित न था। मैं किसी वरिष्ठ पुलिस अफसर से न तो बेहतर था न बदतर। मैं अपने मन में कुछ ऐसी तस्वीर ले कर आया था कि संकरी आंखों, घनी भौंहों और डरावने चेहरों वाले लोग कोंचने वाले सवालों से मुझे चीरफाड़ डालेंगे। ऐसा कुछ नहीं हुआ। पहली मुलाकात के

बारे में मेरी कल्पना बेकार गई। सचमुच बडी निराशा हुई। यहाँ एक मालिक था जो अपने नए रखे कारिंदे के बारे में कुछ भी जानना नहीं चाहता था। हालाकि वह उसके हाथ में अपने गुप्त खजाने की कुछ महत्वपूर्ण चाबियाँ देने वाला था। मैं कुछ निराश-सा हो कर दुम दबाए उनके कमरे से बाहर निकल आया। वह उदासीन और सताए हुए इन्सान लग रहे थे। उनका नाम मदन मोहन लाल हूजा था और वह गुप्तचरी के पूजनीय संचालक बी. एन. मलिक के पट्टशिष्य थे।

दो और वरिष्ठ अधिकारी थे। एक उडीसा से थे। उनकी नजर हमेशा दूर छत के किसी अनजान कोने पर टिकी रहती थी। दूसरे कान में सुनने की मशीन लगाए पंजाबी थे। इन्होंने भी मुझे प्रभावित नहीं किया। वे मुझे साउथ ब्लॉक के गलियारों और सीढियों में पाए जाने वाले लालमुहें बंदरों से भी ज्यादा खुद से बेजार नजर आए। इन वरिष्ठ अधिकारियों के उदासीन चेहरों और उबाऊ नजरों में उत्साह बढाने वाली कोई बात न थी। बाद में मुझे पता चला कि नए आने वाले के साथ रूखा व ठंडा व्यवहार करना संगठन की संस्कृति का एक हिस्सा था।

यह अंग्रेजों की परंपरा का हिस्सा न था। अग्रेज आमतौर पर किसी भी नवागंतुक से गर्मजोशी से मिलते थे। नव प्रवेश की प्रक्रिया कठिन लेकिन हास्य-विनोद से भरपूर होती थी। लेकिन भारतीय इंटेलिजेंस के टैक्नोक्रैट्स ने अपने आप को लोहे के चने की तरह ढाल लिया था। देखने में तो वे प्रभावशाली लगते थे पर थे अति निरीह प्राणी। इस तरह की उदासीनता से भरा वातावरण कई बार मुझे सोचने पर मजबूर कर देता कि कलकत्ता के मार्क्सवादी बाजों का सामना करना क्या साउथ ब्लॉक की इन उदासीन चेहरों वाली चलती-फिरती लाशों से बेहतर न होता।

बहरहाल दो अधिकारी ऐसे भी थे जिन्होंने मुझे काफी प्रभावित किया। एक थे बिहार के अधेड उम्र के के. एन. प्रसाद। दूसरे सदा सफेद कपडे पहनने वाले एम. के. नारायणन थे। वह केरल के थे । वह हमेशा उत्साह से भरे रहते। उनसे मिल कर आत्मविश्वास बढता था।

प्रसाद कसकर काम लेने वालों में से थे। उनकी जबान भी कुछ ज्यादा ही तेज थी। पर वे मुझ से मेरी पढाई, सेवा के अनुभव व गुप्तचरी की दुनिया के बारे में मेरे किताबी खयालात के बारे में बातचीत करने की मेहरबानी दिखाते। बैल को सीधे सींगों से ही पकडने की मेरी प्रवृत्ति से उन का मनोरंजन ही होता। वह मुझे प्यार से समझाते कि आई.बी. के व्यापक परिप्रेक्ष्य में मुझे अपने लक्ष्य पर डॉन क्विक्सोट की तरह धावा नहीं बोलना चाहिए। वह गुप्तचरी के खेल के दावं-पेंच में महारत हासिल करने की जरूरत पर जोर देते। वह समझाते कि लक्ष्य की ओर रणनीति की योजना बनाकर और युक्तिपूर्ण तैयारी कर के ही बढना चाहिए। मैं उन कठोर लेकिन कुशल ऑफिसर का कृतज्ञ हूँ। वह मेरे गुरुओं में से एक थे। उन्होंने मुझे आग पर चलने और बच निकलने की तरकीबें सिखाईं। उनके खुरदरे हुलिए की वजह से बहुत से लोग निरुत्साहित हो जाते थे और उन में छिपे इस पेशे के हीरे को नहीं पहचान पाते थे।

एम. के. नारायणन सदा सफेद पैंट और आधी बाजू की सफेद कमीज पहनते थे। साउथ ब्लॉक के गलियारे की एक झोंपडी में बैठ कर उन्होंने मुझे समझाया कि मेरे-जैसे पुलिस वाले को अच्छा गुप्तचर अधिकारी कर्मी और विश्लेषक बनने के लिए किन तत्वों की जरूरत पड़ती है। उन्होंने गुप्तचर अधिकारी की विश्लेषण क्षमता पर अधिक बल दिया। वह त्रुटिहीन काम करने वालों में थे। वह अंतिम रूप से दिए गए उत्पाद में विश्वास रखते थे न कि बाहर काम

करने वालों के कच्चे ढेलों में। वह कार्रवाई करने वालों में न थे। पर उनकी विश्लेषण करने की क्षमता से मैं बहुत प्रभावित हुआ। शुरू में जिन अधिकारियों से मेरा वास्ता पडा, वह बुद्धिमत्ता के लिहाज से उनसे कहीं बढ कर थे।

मुझ पर शुरू-शुरू में यह प्रभाव पडा कि मैं एक बेहतर पुलिस संगठन में आ गया हूँ जो राज्य की पुलिस से कम अनुशासित नहीं। यहाँ अनुशासन वर्दी पहनने और आदेश का पालन करने तक सीमित नहीं था। आई.बी. का अनुशासन अपने अधिकारियों के व्यक्तित्व के कण-कण को पूरी तरह बदल डालने वाला था। इससे अक्सर यह भ्रम होता कि वे अपने काम और कमांडरों के प्रति शत-प्रतिशत वफादार हैं। इस तरह की वफादारी खौफ से पैदा होती है। यह कुछ ऐसी स्थिति थी जैसे कोई हिंदू मनचाहा वरदान पाने के लिए अपने इष्ट की पूजा करता है। अक्सर इस तरह का अनुशासन और वफादारी किसी व्यक्ति को तंगनजरी दे कर उसे अधोगति को पहुंचा देती थी।

कुछ छोटे ओहदेदार, जिनसे मेरा दिल्ली में वास्ता पडा, बिलकुल बंधुआ मजदूरो का-सा व्यवहार करते थे। इनमें से बहुतेरे तो बंदोबस्त करने वाले थे जिन का काम अपने वरिष्ठ अधिकारियों की जरूरतें पूरी करना भर था। कुछ को डाक्टरों से दोस्ती बढाने में महारत थी। कुछ दूसरे सरकारी विभागों के छोटे ओहदेदारों से दोस्ती गांठ कर वाहवाही पाते थे। वे किसी पुलिस के सिपाही और संकरी गली में गुपचुप कार्रवाई करने वाले का मिलाजुला रूप थे।

इंटेलिजेंस ब्यूरो एक पुलिस संगठन था। आज भी उस की ही स्थिति है। इसके निदेशक को देश का शीर्ष सिपाही माना जाता है। वहाँ के गलियारें में मेरे शुरु के दिनों में यह आभास हुआ कि पुलिसवालों से गुप्तचर अधिकारी बनने वालो मे अभी भी वर्दी की गध आती है। यहाँ सिद्धांतपरकता को नहीं, अनुशासन को अधिक महत्व दिया जाता था। जापानियों की तर्ज पर झुक कर अभिवादन करने, एडियॉ बजाने और "यस सर" कहने का रिवाज यह स्पष्ट करता था कि उन में पुलिस संस्कृति किस कदर कूट-कूट कर भरी है।

मेरे मन में आई.बी जैसे विषद संगठन के लिए कुछ और ही खयाल थे। मैं और अधिक अनौपचारिक, खुले तथा और अधिक स्वतंत्र माहौल की अपेक्षा करता था जहां सहजता से विचारों का आदान प्रदान किया जा सके। यहाँ मैंने देखा कि राय देने या अपने विचार रखने का मतलब राज खोलना समझा जाता है। एम. के. नारायणन, के. पी मेधेकर और आर के. खंडेलवाल आदि को छोड कर मुझे सामान्यतः और अधिकारीगण विचार-विमर्श के समर्थक नहीं लगे। वे मिल कर किसी मसले पर विचार करने के महत्व को नहीं समझते थे। बहुत बाद में 1987-88 में नारायणन ने आई.बी. में इसकी शुरुआत की।

मैंने के. एन. प्रसाद की सलाह मान कर अपने विचारों को अपनी खोपडी के किसी सुरक्षित कोने में जमा रखने का फैसला कर लिया। मैं इस डर से चुप ही रहता कि कहीं मेरे राय जाहिर करने को आधिकारिक गोपनीयता कानून का उल्लंघन न मान लिया जाए।

सातवें दिन मुझे एक वरिष्ठ क्लर्क ने बताया कि मुझे ट्रेनिंग के लिए आई.बी. के आनंद पर्वत केंद्र पर जाना होगा जो करोलबाग के पास था। किसी ने मुझे यह बताने की तकलीफ नहीं की कि आई.बी. का संगठनात्मक ढाँचा क्या था। मुझे क्या करना था और मैं क्या अपेक्षा रख सकता था। मेरे स्तर के नए ऑफिसर को मूलभूत सूचना सामग्री मुहैया करना या वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा जानकारी देने की कोई सोच भी वहाँ न थी। मुझसे उम्मीद की जाती थी कि एक इमारत से दूसरी इमारत तक जाता रहूँ और वहाँ वरिष्ठ अधिकारियों से मिलूं। फिर

वे अपने काम के बारे में जो कुछ बताना चाहें या जितना उन को बताने की अनुमति हो उसे सुनूं। सौभाग्य से मेरे राज्य के एक अधिकारी ने मेरी बहुत सहायता की।

आई.बी. की अंधेरी गलियों में मेरी सहायता करने वाले यह अधिकारी थे गोपाल दत्ता। 1946 में वह पूर्वी बंगाल के मैमनसिंह जिले में एस.पी. हुआकरते थे। तब वह मेरे अविभाजित परिवार से परिचित थे। दत्ता मेरे चाचा के सहकर्मी थे जो 1949 में पश्चिम बंगाल में आई. पी. एस. ऑफिसर थे। मैं और सुनंदा उन्हें बहुत भा गए। उन्होंने हाथ के हाथ मुझे आई.बी. के काम करने का आधार और कुछ वरिष्ठ अधिकारियों के जटिल संघठन के बारे में बताया।

पी. एन. बनर्जी आई.बी. के एक जाने-माने अधिकारी थे। वह बाद में रिसर्च एंड एनालिसिस विंग (रॉ) में भी रहे। मेरे ससुर ने और उन्होंने साथ-साथ कोर्स किया था। वह बडे मितभाषी थे। लेकिन उनके समझाने के अंदाज और व्याख्या ने मुझ पर बडा गहरा असर छोडा। वह पहले अधिकारी थे जिन्होंने मुझे पुलिसिया पहचान को भूल जाने और ऑफिसर नहीं, गुप्तचरकर्मी की पहचान बनाने की सलाह दी। उनकी राय में एक पुलिसवाले के नाम के आगे ऑफिसर लगता है। पर इंटेलिजेंस बिरादरी में कर्मी या संचालक शब्द ज्यादा सम्मानजनक हैं। लेकिन भारत के सामंती माहौल में और गुप्तचरी की जडों में घुसी पुलिस की परंपराओं ने ऑफिसर के बिल्ले को पूरी तरह से धुलने नहीं दिया।

* * * *

करोलबाग, रोहतक रोड और नजफगढ रोड के त्रिकोण पर स्थित आनंद पर्वत शिवालिक की पहड़ियों के बचे-खुचे हिस्से की याद दिलाता था। इसे अभी भूखे कालोनी बसाने वालों और अनाधिकृत निर्माण करने वालों ने समतल नहीं किया था। जिस किसी ने इस चट्टानी पट्टी को यह नाम दिया वह जरूर बड़ा मजाकिया रहा होगा। आनंद पर्वत में आनंद नाम को भी न था।

इससे पहले कि मैं प्रशिक्षण सुविधा की सीमित जानकारी दूँ, मैं पाठकों को आई.बी. के बारे में कुछ बताना चाहूँगा।

1987 में एम. के. नारायणन को यह अद्‌भुत विचार सूझा कि क्यों न आई.बी. के जन्म की 100वीं सालगिरह मनाई जाए। उनके अधिकारियों ने जो सामग्री खोज निकाली थी उसके अनुसार 1887 में आई.बी. की शुरुआत हुई थी जब साम्राज्ञी विक्टोरिया की सरकार ने विधिवत एक गुप्तचर इकाई का गठन किया था। यह उपनिवेशी कारिंदों के ठगी विभाग से निकला था। कालांतर में इसे केंद्र सरकार का राजनीतिक व आपराधिक सूचनाएँ एकत्र करने वाला गुप्त विभाग बना दिया गया।

हम सब यह जान कर परम प्रसन्न हुए कि आई.बी. सब से पुरानी खुफिया इकाइयों में से एक था। इसने राष्ट्रीय आंदोलन को दबाने और हुकूमत की पकड़ मजबूत करने में साम्राज्य की बड़ी सेवा की थी। यह कोई मामूली कारनामा न था। यह जानकर और भी संतोष हुआ कि केंद्रीय इंटेलिजेंस ब्यूरो गृह कार्यालय के नवरत्नों और वायसराय की काउंसिल के आगे पीछे काम करता रहा है ताकि देश का दो राष्ट्रों में विभाजन हो जाए। इसने जातिगत विभाजन को बढ़ावा देने में भी अपनी भूमिका निभाई जिससे भारतीय समाज सदा के लिए विभाजित रहे। यह प्रशिक्षण उसे अंग्रेजों ने दिया था। उसी तरह जैसे उनके देश से पलायन करने के बाद गद्दी संभालने वाले राजनीतिज्ञों को उन्होंने शिक्षा दी थी कि किस तरह जनता में फूट डाल कर लोगों को हलाल किया जा सकता है।

स्वाधीनता बाद के भारत में भी आई.बी. को शासक वर्ग की पकने वाली खिचडी की कडाही से बाहर विकास करने की इजाजत नहीं दी गई। फिर भी इटेलिजेंस कर्मियों ने इस दौरान अपने काम के उपकरणों और साधनो को अधिक विकसित व धारदार बना लिया है ताकि वे जातीय उपद्रवों, सांप्रदायिक दगों, आतंकवाद और राष्ट्रीय सुरक्षा को पहुँचने वाले दूसरे खतरों का सामना कर सकें। स्वाधीनता बाद की आई.बी. के प्रणेताओं की इस बात के लिए प्रशंसा करनी चाहिए कि उन्होंने राष्ट्रीय सुरक्षा के एक सक्षम साधन के रूप में इसका विकास किया जब कि शासक वर्ग तो आमतौर पर इस का इस्तेमाल अपने धडे की सुरक्षा और उन्नति के लिए करने की कोशिश में ही रहा। उन्होंने कभी भी इस बात की जरूरत नहीं समझी कि आई. बी. और उसके समकक्ष संगठनों के संचालन के लिए कोई संवैधानिक अधिनियम बनाया जाए। आई.बी और रॉ आदि ही सरकार के एकमात्र ऐसे विभाग हैं जो भारत की किसी निर्वाचित संवैधानिक सस्था के प्रति जवाबदेह नही है और जो संसद के किसी कानून द्वारा शासित भी नहीं हैं। वे सिर्फ मातहत विभाग और ब्यूरो है।

खैर, मैं इस नितांत स्पष्ट मसले पर जिरह नहीं करना चाहता। देश के बुद्धिजीवियों, राय कायम करने वालों तथा सवैधानिक स्वाधीनता और लोकतत्र के हिमायतियो का ध्यान इस ओर अवश्य जाना चाहिए था।

केंद्रीय इंटेलिजेंस ब्यूरो कोई बहुत बडा संगठन नहीं। 1968 मे इसमे सब रैंक मिला कर कुल 8000 के करीब कर्मी थे। इनमें से भी गुप्त सूचना संकलन करने वालों की सख्या 4000 से कम ही थी। बाकी सहायक या बंदोबस्त स्टाफ के थे। मेरे खयाल मे बाद के वर्षो मे आई बी. में कुछ और लोग बढे है और इसके पास इंटेलिजेंस के कुछ अतिरिक्त तकनीकी उपकरण आए हैं। इसकी संख्या सी.आई.ए., पूर्व के.जी.बी. या फिर पाकिस्तान की इंटर सर्विसेज इंटेलीजेंस (आई.एस.आई.) की भारी तादाद के मुकाबले बहुत ही कम है।

दिल्ली के पिरामिड आकार के सोपान के अतिरिक्त इसमें संयोजन और विश्लेषण डेस्क तथा विशेष विषयों जैसे साम्यवाद या साम्प्रदायिकता के निमित्त डेस्क गठित किए गए। विभिन्न भौगोलिक मडलों के लिए अलग-अलग जोन और विभिन्न क्षेत्रों के लिए अलग डेस्क बनाए गए।

दिल्ली स्थित मुख्य सगठन मे प्रति-गुप्तचरी (काउटर-इंटेलिजेंस) इकाई बनाई गई। इसका काम भारत-भूमि पर अन्य देशों की गुप्त कार्रवाइयों का पता लगाना, उन को पहचानना और निरस्त करना है। तकनीकी, सांकेतिक तथा इलेक्ट्रॉनिक इंटेलिजेंस की आवश्यता को विशेष इकाइयों की सहायता से पूरा किया जाता है जिन्होंने कि इतने बरसों में इस क्षेत्र के उपकरणों में कुछ स्तरीय महारत हासिल कर ली है। पर अभी भी वे विकसित देशों के प्रमुख गुप्तचर संगठनों से इस मामले में बहुत पीछे हैं। वे पाकिस्तान, कोरिया और इजरायल जैसे देशों से भी इस मामले में पीछे हैं।

जब तक कि पंजाब में आतंकवाद, उसके जन्मदाताओं के सामने विकराल रूप ले कर नहीं आ खड़ा हुआ, प्रति-आतंकवाद यूनिट पर कुछ खास ध्यान नहीं दिया गया। देशी आतंकवाद का मुकाबला करने वाले विशेष कार्रवाई कक्षों का संचलन 1986 के आसपास एम. के. नारायणन ने आरंभ करवाया। यह आपरेशन ब्लू स्टार और इंदिरा गाँधी की हत्या के बाद की बात है। 1993 के बंबई बम कांड के उपरांत भारत में आई.एस.आई. की हरकतों और पाक समर्थित आतंकवादी गतिविधियों का स्वरूप स्पष्ट हो जाने के बाद ही उनका मुकाबला करने

के लिए कक्ष स्थापित किए गए। मूलभूत राजनीतिक ढॉचे और उसके गुप्तचरी के घटकों ने उभरती भू-राजनीतिक आवश्यकताओं के मुकाबले बडी सुस्त रफ्तार से कदम उठाए।

इंटेजिलेंस ब्यूरो की राज्यों में इकाइयॉं थीं। इन इकाइयों को सहायक इंटेलिजेंस ब्यूरो (एस.आई.बी.) और केंद्रीय इंटेलिजेंस ब्यूरो के कार्यालय (सी.आई.ओ.) कहते हैं। एस.आई.बी. इकाइयाँ जिला स्तर तक और कुछ मामलों में सब-डिवीजन स्तर तक जाती हैं। गुप्त सूचनाऍं एकत्र करने वाली सहायक इकाइयों की तैनाती स्थिति की गंभीरता पर निर्भर करती है। आई. बी.पचास के दशक की शुरुआत से ही चीन, पाकिस्तान और म्यांमार की अतर्राष्ट्रीय सीमाओं पर अपनी चौकियाँ कायम किए हुए है। बाद में इन में से कुछ चौकियों को केंद्रीय सचिवालय के रिसर्च एंड एनालिसिस विंग(रॉ) ने अपने अधीन कर लिया। लेकिन आई.बी.की अंतर्राष्ट्रीय सीमा पर यह शांत उपस्थिति प्रति-गुप्तचरी और आतंकवाद विरोधी कार्यक्रम के एक भाग के रूप में जारी है।

आई.बी.की भर्ती करने की नीति परपरा से ही दो आधारभूत स्तरों तक सीमित रही है। सहायक गुप्तचर अधिकारी ग्रेड–दो (पुलिस के सब इंस्पेक्टर के बराबर) और सिपाही, जिसे बाद में बदल कर सुरक्षा सहायक का नाम दे दिया गया। ए.सी.आई.ओ.–दो के रैंक को सामान्य और तकनीकी, इन दो शाखाओं में विभक्त किया गया। सामान्यजनों को गुप्तचर कर्मियों के रूप में प्रशिक्षित किया जाता है। तकनीकी जन सहायक तत्वों के रूप में काम करते हैं। सुरक्षा सहायकों को आमतौर पर गुप्त सूचनाऍं एकत्र करने के साधन के तौर पर इस्तेमाल किया जाता है। पर ज्यादातर इनको सेवा करने के कामों में लगाया जाता है। इनसे दफ्तर के चपरासी, निजी अर्दली, खानसामा या अनुचर का काम लिया जाता है। ए.सी.आई.ओ. के प्रशिक्षण का विषद् प्रबंध है। लेकिन सुरक्षा सहायकों को गुप्तचरी के कार्य का बहुत कम प्रशिक्षण मिलता है। शायद हेड कांस्टेबल और सुरक्षा सहायकों के पद को समाप्त करने पर विचार करने की जरूरत है। यह अनुपयोगी फौज है जिसकी सूचना-संकलन में कोई उपयोगी भूमिका नहीं है। इनके अलावा ऑफिसर स्तर पर सीधी भर्ती भी होती है। यह गृह मंत्रालय की आड में होता है। इसमें राज्य पुलिस से बडी सख्या मे अधिकारी प्रति-नियुक्ति पर लिए जाते हैं। अब केंद्रीय सहायक सेना से भी ऐसी भर्ती की जा रही है।

आई.बी.के उच्च पदों पर भारतीय पुलिस सेवा के ऑफिसर आसीन रहते हैं। कुछेक सीधी भर्ती वाले भी होते हैं जो ए.सी.आई.ओ.–दो के रैंक से तरक्की कर के यहाँ तक पहुंच जाते हैं। आई.बी.ने आरंभ से ही अपना पुलिसिया स्वरूप बना रखा है। इसने दूसरे विशेषज्ञता वाले क्षेत्रों से प्रतिभाओं को लिए जाने का सदा प्रतिरोध ही किया है। असल में यह एक अलग चेहरे वाला केंद्रीय पुलिस संगठन ही है। नितांत पुलिसिया स्वरूप बनाए रखने की यह धारणा दरअसल पुरानी पड़ चुकी है और किसी हद तक तंत्र-सम्मत है। राजनीतिज्ञों ने भी विभिन्न क्षेत्रों से विशेषज्ञों को लेने के तर्क को कभी प्रोत्साहित नहीं किया। उन्हें इसका पुलिसिया स्वरूप रास आता है। इसकी राजनीतिक आकाओं के प्रति जवाबदेही उन्हें इसका दुरुपयोग करने का भी मौका देती है।

1968 में इंदिरा गाँधी ने आई.बी.का विभाजन कर के अलग विदेशी इंटेलिजेंस यूनिट रिसर्च एंड एनालिसिस विंग (रॉ.) का गठन किया था। इससे पहले आई.बी.के जिम्मे विदेशी सूचना संकलन का नाजुक काम भी था। इसके लिए इसके कुछ अधिकारी विदेशों में हमारे विदेशी दूतावासों में भी भेजे जाते थे।

प्रति-गुप्तचरी इकाइयों का प्रारूप भारत स्थित विदेशी दूतावासों की गतिविधियों पर नजर रखने के उद्देश्य से बनाया गया था। सोवियत धडे, अमेरिका, चीन और पाकिस्तान पर नजर रखने वाली इकाइयों ने ऊंचे तबके के अफसरों को आकर्षित किया। ये विशेष यूनिट थे। इन के अधिकारियों के अधीन बहुत सी गाडियां रहती थीं। इन इकाइयों की सहायता के लिए डाक, टेलीफोन तथा अन्य इलेक्ट्रानिक संप्रेषणों की पडताल और अनुश्रवण करने वाली इकाइयाँ थीं।

1968 में आई बी.का कलेवर बहुत छोटा था। इसके पास देश के इतने बडे भूक्षेत्र और समुद्री सीमा पर नजर रखने का कोई विशेष तंत्र नहीं था। देश की सशस्त्र सेनाओं की अंदरूनी गतिविधियो तक उस की पैठ नहीं थी। हालांकि कुछेक उत्साही अधिकारियो ने कुछ प्रति-गुप्तचरी के कारनामे भी कर दिखाए थे। इसके पास ऐसी कुशल क्षेत्रीय इकाइयॉ भी नहीं थी जो औद्योगिक गतिविधियों, औद्योगिक सुरक्षा, विमानन सुरक्षा तथा राष्ट्रीय गतिविधियों के बहुत से दूसरे क्षेत्रों पर नजर रख सकें। हालाकि सलाहकार की हैसियत से कहने भर को कुछ औद्योगिक और विमानन यूनिटें थीं। ये शाखाएँ अक्सर संबद्ध इकाइयों को सलाहकार भेज दिया करती थीं। या फिर कुछ अधिकारी औद्योगिक इकाइयों में भाषण देने के लिए दौरे पर जाया करते थे। बहुत बाद में सगठन ने इन क्षेत्रों में विशेषज्ञों को लेना शुरू किया।

आई.बी.क्षेत्रीय एस.आई.बी के मार्फत राज्य पुलिस के खुफिया विभाग से संपर्क बनाए रखती थी। पर इस तरह का संपर्क काफी नहीं था। बहुत से राज्यो मे सूचना सकलन की वैज्ञानिक पद्धति थी ही नहीं। वे वर्तमान आवश्यकताओं के अनुरूप ढले न थे। न ही वे किसी बाहरी स्रोत से सूचना प्राप्त करने की उम्मीद रखते थे। जब तक राज्यों और केंद्र मे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का राज्य रहा, आई.बी बडे भैया की भूमिका में रही। राजनीतिक परिवेश बदल जाने के बाद, जैसा कि केरल और पश्चिम बंगाल में हुआ, बॉस वाली भूमिका काफी कम हो गई। राज्य सरकारे केंद्र से सूचनाओं के आदान-प्रदान से कतराने लगी क्योंकि उसको वे विरोधी धडा मानती थीं।

* * * *

अब हम आनद पर्वत और वहॉ पर आई.बी की प्रशिक्षण सुविधा की बात करते है, जहा मुझे इंटेलिजेस अधिकारी के रूप मे ढाले जाने के लिए भेजा गया था। मुझसे बुनियादी कोर्स करने की उम्मीद की जाती थी जिसमे इटेलिजेंस एकत्र करने या एकत्र न होने देने के लिए डिजाइन किए गए उपकरणों की जानकारी दी जाती थी।

यह कोर्स, जो कि शुरुआती था, उस में किसी तरह की कल्पना शक्ति की आवश्यकता न थी। मेरे कुछ साथी मुझ से वरिष्ठ थे। बाकी के मेरे साथ कोर्स करने वाले इंटेलिजेंस ब्यूरो के सामान्य कर्मी थे। इनमें सीधी भर्ती से आए सहायक केंद्रीय इंटेलिजेंस अधिकारी ग्रेड–दो थे या फिर कुछ मध्य स्तर के तरक्की पाए अधिकारी।

मुझे सब से ज्यादा हैरानी आई बी.के सीधी भर्ती से आए अधिकारियों के व्यवहार से हुई। इस महत्वपूर्ण कार्यबल की भर्ती केंद्रीय लोक सेवा आयोग के द्वारा गृह मंत्रालय के सब इंस्पेक्टर की आड में होती थी। इनका प्रशिक्षण सीधी भर्ती से आए आई.पी.एस. अधिकारियो के साथ माउंट आबू के पुलिस ट्रेनिंग कॉलेज में होता था। बहुत बाद में आई.बी.ने विंध्य के उत्तर में कहीं अपनी ट्रेनिंग की व्यवस्था की। पुलिसवाले की कड़ी ट्रेनिंग पा लेने के बाद सीधी

भर्ती वाले अधिकारियों को गुप्तचरी का बुनियादी कोर्स करना होता था । फिर उन्हें थानों में लगाया जाता था, उन्हें पर्वतारोहण का प्रशिक्षण तथा कुछ और ट्रेनिंग भी दी जाती थी। तब उन्हें सीमा की चौकियों पर तैनात किया जाता था। वे अपनी सेवा के पहले पाँच से आठ साल नेफा, नगालैंड, मणीपुर, मिजोरम, जम्मू-कश्मीर और भारत-चीन सीमा के साथ की अन्य सीमाओं के विभिन्न स्थानों पर बिताते थे।

ऑफिसरों का यह हृष्ट-पुष्ट और मेधावी दल अपनी ट्रेनिंग बहुत अच्छी तरह पूरी करता। लेकिन वे ऐसे दब्बूपने का प्रदर्शन करते जो वर्दी वाले पुलिसकर्मी ही करते हैं और जिनको कम पढे-लिखे तबके से भर्ती किया जाता है। इस ट्रेनिंग में कुछ गलती जरूर थी जिस ने मेरे विचार में इनसे वह पहल करने के गुण और नपी-तुली सलाह देने की खासियत छीन ली थी जिस की कि किसी इंटेलिजेंस कर्मी से अपेक्षा की जाती है। मुझे यह देख कर हैरानी हुई कि जिन लोगों से मानव व उपकरणीय गुप्तचरी में नवीनता की अपेक्षा होती है उन्हें पुलिस और इंटेलिजेंस अधिकारियों के अजीबोगरीब घालमेल की तरह प्रशिक्षित किया जा रहा था। उन्हें गुप्तचर और टेक्नोक्रैट्स के तौर पर प्रशिक्षित नहीं किया जा रहा था, बल्कि उन्हें आम कैरियर बनाने वाले सरकारी नौकरों की तरह तैयार किया जा रहा था जबकि उनके कंधों पर देश की इंटेलिजेंस व सुरक्षा मशीन की अति महत्वपूर्ण गरारियाँ टिकी थीं। शायद वरिष्ठ पुलिसवालों से संगठित इंटेलिजेंस ब्यूरो ने ऐसे अलग किस्म के अधिकारियों का दल गठित करने पर विचार ही नहीं किया जो सरकारी कर्मचारियों की तरह न हों, जो विशेष कर्मीदल की तरह पनपें और पुलिसिया संस्कारों से मुक्त हों। इस बारे में मैं आगे चल कर और टिप्पणी करना चाहूँगा।

आनंद पर्वत में तीन अलग-अलग किस्म के प्रशिक्षक थे। इनमें मुख्य थे डेस्क ऑफिसर और विश्लेषक। वे राजनीतिक आंदोलनों व दलों और स्वाधीनता के बाद से भारतीय राजनीतिक पद्धति के विकास पर व्याख्यान देते थे। इसमें भारतीय व अंतर्राष्ट्रीय कम्यूनिस्ट आंदोलन और भारतीय कम्यूनिस्ट दलों की कार्यपद्धति की चर्चा करना कोई नहीं भूलता था। इसके बाद वरीयता क्रम में हिंदू और मुस्लिम सांप्रदायिक दल आते थे, जैसे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, जन संघ, हिंदू महासभा, आनंद मार्ग, जमाते इस्लामी, मुस्लिम लीग तथा अन्य इस्लामी संगठन। अखिल-इस्लामवाद का अध्ययन कोर्स का महत्वपूर्ण अंग था। लेकिन शिक्षक अखिल-इस्लामी शक्तियों और ईसाई, यहूदी और हिंदुत्व आदि गैर इस्लामी सभ्यताओं के बीच उभरते संघर्ष पर जोर नहीं देते थे। इस्लाम तो एक अनूठे किस्म के सभ्यता मूल्यों पर टिका दर्शन था जो विस्तार पाने और समाहित करने के बजाए अपने अंदर ही ढहने की प्रवृत्ति रखता था। उन दिनों उसे सही परिप्रेक्ष्य में नहीं पढा जाता था।

मेरा ट्रेनिंग कोर्स स्वाधीनता के बाद के हिंदू और मुस्लिम सांप्रदायिक आघात के दुष्परिणामों से बहुत संबद्ध था। कुछ वार्ताएँ देश की सांप्रदायिक स्थिति और उपमहाद्वीप की मुस्लिम ताकतों के मध्यपूर्व व अफ्रीका की अखिल-इस्लामी ताकतों के साथ संबंधों पर भी होती थीं। पर ये वार्ताएँ छिछली और अमूर्त-सी थीं।

चीन और पाकिस्तान के साथ जटिल अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के बारे में कक्षा को जानकारी देने का दयनीय प्रयास भी कुछ विश्लेषकों ने किया। मुझे याद नहीं पड़ता कि इसमें कहीं भी पाकिस्तान द्वारा भारतीय उत्तर-पूर्व, कश्मीर व अन्यत्र चलाई जा रही तोड़फोड़ व विध्वंस की जटिल लड़ाई के बारे में किसी ने कुछ सिखाया हो। नगा और मिजो विद्रोहों को जातीय उपद्रव

बताया गया और ईसाई गिरजाघरों की लिप्तता पर जोर दिया गया। भारत ने अंग्रजों के जिस गलत रवैए का अनुकरण किया था उस का कहीं जिक्र भी नहीं किया गया। न ही सरकार के उस गलत रवैए को सुधारने के लिए जरूरी प्रशासनिक व राजनीतिक प्रयत्नों के बारे में कुछ चर्चा हुई। मुझे याद नहीं पडता कि उत्तर-पूर्व के उपद्रवियों के साथ आई.एस.आई. और चीन के स्टेट सिक्योरिटी ब्यूरो की लिप्तता के बारे में भी कुछ बताया गया हो। उन दिनों आई.एस.आई. के बारे में आई.बी. के पास बहुत कम सूचनाएँ थीं।

भारत में अन्यत्र दूसरी आदिम जातियो के असंतोष प्रकट करने और आंदोलन को भी ईसाई गिरजाघर या विदेशी मिशनरियों के साथ जोड़ा गया। आई.बी.में किसी ने भी आदिवासियों को निरंतर परेशान करने वाले आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक असंतुलन का अध्ययन करने का कष्ट नही किया। सुविधाओं से वंचित आदिवासियों का विकसित हिंदू समुदाय किस तरह शोषण कर रहा था , इस पर भी ध्यान नहीं दिया गया। अपने कैरियर के कुछ अरसे के बाद मैं यह देख कर हैरान हुआ कि आई बी. और राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ के विचार इस मामले में एक जैसे ही थे। मेरे खयाल में आदिवासियों की सारी समस्याओ के लिए गिरजाघर को दोष देने का तर्क कुछ ऐसा ही था जैसे पेड के नीचे सो रहे किसान के सिर पर पका नारियल गिरने के लिए कौए के इधर उधर उडने को जिम्मेदार ठहराना। इतनी बडी गलत नीति की अतर्राष्ट्रीय ईसाई भाईचारे की करतूत कह कर व्याख्या की जाती थी। मुझे तो यह अपने देश का खास देशी अदाज लगता था। एक कुत्ता खोजो. जिस पर दोष मढा जा सके। उसके बारे में शोर मचाओ। फिर इस तरह के गलत तर्क के समर्थन के लिए कोई फलसफा गढ लो। 1990 के बाद से हिंदुत्व का ढिंढोरा पीटने वाले कुछ धडो ने उस काल्पनिक दुष्ट कुत्ते पर गोलियॉं दागने को अपना राजनीतिक हथियार बना लिया।

सत्तारूढ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पर हमारे प्रशिक्षकों का बहुत ध्यान नहीं था। इस बारे में वार्ता प्राथमिक स्तर की होती थी। राष्ट्रीय इतिहास का एक अध्येता होने के नाते मै आसानी से समझ सकता था कि विश्लेषक सत्तारूढ दल के बारे मे खुल कर बात करने से कतराते थे। साम्यवादी और संप्रदायवादी, गुप्तचर समुदाय और उसके राजनीतिक आकाओ के लिए सब से डरावने भूत थे। सत्तारूढ दल को तो सम्राट की पत्नी की तरह समझा जाता था।

देश को चीन-प्रेरित चरमपंथी कम्यूनिस्ट आदोलन नक्सलबाडी का अनुभव होना अभी आरंभ ही हुआ था। लेकिन हमारे प्रशिक्षकों के पास इस बारे मे हमें बताने को कुछ खास नहीं था सिवाय तेलंगाना आंदोलन के थोड़े-से जिक्र के और साम्यवादियो द्वारा तोडफोड या विघटन की सामान्य हरकतों के। राजनीतिज्ञों को नक्सली आंदोलन या देश में हो रहे अन्य किसान आंदोलनों के मूल कारणों का अध्ययन करने की फुर्सत नहीं थी। इसे भी संगठित आदर्शवादियों के माध्यम से ताडफोड करवाने की चीन की एक और हरकत समझा जा रहा था। यह विलक्षण सामाजिक प्रयोग मूलाधार से आरंभ हुआ है इस तरफ आई.बी. के विश्लेषकों, राज्य पुलिस अधिकारियों और संघबद्ध राज्यों व केंद्र के राजनीतिज्ञों का ध्यान बिलकुल नहीं गया। इसलिए यह कोई हैरानी की बात न थी कि किसी ने भी कक्षा को चरमपंथी वाम आंदोलन की नवीनतम प्रवृत्तियों की जानकारी देने की कोशिश नहीं की। इसे कानून-व्यवस्था की समस्या माना जा रहा था जिससे निबटने का जिम्मा प्रशासन और पुलिस का था।.इतने महत्वपूर्ण आंदोलन के प्रति, जो देश के सामाजिक आर्थिक व राजनीतिक खाके को बदलने के उद्देश्य से चलाया जा रहा था, ऐसे ढिठाई वाले रवैए से मैं हक्का-बक्का रह गया। आज भी हमें सामाजिक व

आर्थिक न्याय के लिए चलाए जा रहे हिंसक चरमपंथी वाम आंदोलन के प्रति किसी ठोस राष्ट्रीय प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा है।

हमें अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद, आदर्शवादी विद्रोह तथा शहरी गुरिल्ला-युद्ध के बारे में बहुत कम बताया गया। 1968 में आई.बी.इन सब विषयों के लिए तैयार नहीं थी। भारत का फिलिस्तीनी आंदोलन के प्रति सम्मोहन और मध्यपूर्व के मुस्लिम शासनों के साथ मिलनसारी गुटनिरपेक्षता और तीसरी दुनिया की कूटनीति से अनुबद्ध थी। अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद को तब सोवियत यूनियन द्वारा निर्यातित वस्तु समझा जाता था। यूरोप में चल रहे शहरी गुरिल्ला आंदोलनों का केवल कुछ जिक्र किया जाता था लेकिन इस विचित्र घटनाक्रम की व्याख्या नहीं की जाती थी।

स्वाधीनता बाद के भारत में हिंसात्मक आंदोलन का संकलन बडा विशाल है। उत्तर-पूर्व में होने वाली जातीय हिंसा का कारण लोकतत्र से मोहभग नहीं था। दरअसल पहले दिन से ही सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक परिवर्तन के लिए हिसात्मक साधनों का प्रयोग देश में होने लगा था। राजनीतिक स्वाधीनता भाषाई, जातीय, आदिमजातीय तथा अन्य संकरी आकांक्षांओं व अपेक्षाओं के पैने किनारों को हमवार करने में असफल रही थी। आर्थिक उपलब्धियॉ जनता की अपेक्षाओं की कसौटी पर खरी नहीं उतरी थीं। आर्थिक विकास के असंतुलन ने देश के विभिन्न भागों में भूकंपीय खाइयाँ छोड दी थीं।

शासक वर्ग हिंदू समाज से प्राचीन वर्णव्यवस्था समाप्त करने में असफल रहा। उसने जातीय भेदभाव को बढावा ही नहीं दिया बल्कि उसने कुछ वोट बटोरने के लिए इसे और मजबूत करने वाले काम किए। इस तरह के सामाजिक परिवर्तन के ज्वलंत मसले हमारे पाठ्यक्रम का हिस्सा न थे। जो कुछ मुझे पढाया जा रहा था उससे मैं सहमत न था। पर मुझे मेरे वरिष्ठ सहयोगियों ने समझाया कि इसे सुनूँ और भूल जाऊं। विरोध करना आई.बी. में अक्षम्य अपराध था। विजय मंत्र एक ही था, "जी,सर।" मुझे इस विचार से नफरत थी। पर मैं अनजाने पानी में कूद पड़ा था और अब तैरने के सिवा चारा न था। एक और चीज ने भी मुझे हैरत में डाला। यह थी आर्थिक गुप्तचरी और गरीबी व अमीर-गरीब के संघर्ष के कारण चल रहे जन-आंदोलनों के लिए गुप्त सूचनाएँ एकत्र करने की नितांत उपेक्षा। भूमि सुधार के अभाव के अभिशाप और आर्थिक स्थिति के साथ सामाजिक असंतोष के संबंध की भी कोई चर्चा नहीं होती थी।

ट्रेनिंग में एक और चीज की कमी ने भी मुझे हैरान किया। मैं सी.आई.ए. के किसी कमांडो जैसी व्यक्तिगत ट्रनिंग की तो उम्मीद नहीं रखता था, पर मैं सिखाने वालों और सीखने वालों के बीच पारस्परिक आदान-प्रदान की आशा रखता था। ऐसा कुछ नहीं था। शिक्षक भाड़े के व्याख्याता की तरह सुलूक करते थे। वे बेलाग और उदासीन किस्म का तैयार भाषण देने को ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझते थे। व्यक्तिगत संपर्क करने की मेरी कोशिशों पर नाक-भौं चढ़ाई जाती थी। सिर्फ एक प्रशिक्षक चमन लाल ढींगरा ऐसे थे जो इच्छुक प्रशिक्षुओं में रुचि लेते थे। इंटेलिजेंस ब्यूरो में अपने सारे कैरियर के दौरान हम बड़े अच्छे दोस्त रहे।

बहरहाल अपने धंधे का शिल्प मुझे आकर्षक लगा। इसके प्रशिक्षक अधिकतर नीचे से तरक्की पाए लोग थे। वे औसत दर्जे के डेस्क विश्लेषकों से कहीं बेहतर थे। पैदल निगरानी, गुप्त लिखाई, छिपाने, याददाशत बढाने, एजेंट बहाल करने और उनसे काम लेने, सुरक्षित संचार आदि के बारे में उनके निबंध और प्रदर्शन से मैं प्रभावित हुआ। अब मैं जनता हूँ कि

हमें इस धंधे के जो गुर सिखाए गए थे, वे बहुत बारीक नहीं थे। आई.बी. ने अमेरिका, इंगलैंड, सोवियत संघ आदि के विकसित गुप्तचर समुदाय के समतुल्य आधुनिक व नवीन शिल्प का प्रबंध नहीं किया था। फिर भी मेरा परिचय एक नई सम्मोहक दुनिया से हुआ था। इसने मुझे गुप्तचरी के धंधे के लायक बनाया।

पैदल (फोसूर), वाहन द्वारा (मोसूर), तकनीक की मदद से (तेसूर), निगरानी की जानकारी ने मुझे इस भुतही दुनिया को गहराई से समझने में मदद की। मैंने ये पाठ पूरी गंभीरता से समझे और अपने प्रशिक्षकों से ज्यादा से ज्यादा जानने की कोशिश की। आई.बी. के उन बेनाम, बेचेहरा अधिकारियों को मैं नमस्कार करता हूँ जिन्होंने इस एजेंसी को सुचारु रूप से चलाने में बहुत मदद की और आज भी कर रहे हैं।

* * * *

एजेंट भर्ती करने के पाठ के दौरान ढींगरा ने मुझे सिखाया कि हर चीज की कीमत होती है। उनका फार्मूला एक दम सरल था। किसी लक्ष्य क्षेत्र मे एजेंट भर्ती करने के लिए सही और उचित मूल्य अदा करना चाहिए। मैं यहाँ पाठकों को एजेंट को चिन्हित करने ,उसे अपना बनाने, घुसपैठ करने आदि की कडी मेहनत वाली प्रक्रिया के विस्तार में नहीं ले जाऊंगा। ये तकनीकी मामले उतने ही छलावे से भरे हैं जितना कि गीदडों का छल-कपट। लेकिन इस सिद्धांत वाक्य में छिपा दर्शन बिलकुल स्पष्ट था। लक्ष्य को निष्ठाभ्रष्ट करना और उसका सही मूल्यांकन करना इस के दो महत्वपूर्ण पहलू थे।

उन लक्ष्यों का क्या किया जाए जो आदर्श-प्रेरित होते हैं? ढींगरा इस का कोई तर्कसम्मत जवाब नहीं दे पाए। मैंने ऐसे अवसर देखे हैं जब मेरा आदर्श से प्रेरित लक्ष्यो से सामना हुआ। उनका भी मोल होता है, पर वह रुपयों में नहीं होता। मैंने अपने कैरियर में बहुत आगे चल कर सीखा कि आदर्श-प्रेरित लक्ष्य एजेंट की कीमत, उससे काम लेने वाले ऑफिसर के मानसिक स्तर का लक्ष्य के मानसिक स्तर तक उठना होता है जो कि अक्सर बहुत सुविज्ञ और परिष्कृत होता है।

मुझे ढींगरा का यह कथन बहुत अच्छा नही लगा कि किसी समझदार आपरेटर को भावनाओं से छुटकारा पाकर बिना किसी आत्मिक पीडा के, अपने एजेंट से वास्ता खत्म कर लेना चाहिए। उनके मुताबिक तो वह किसी वेश्या के समान ही होता है जो अपने लाभ के लिए आप को सूचना बेचता है। लिहाजा इस कारोबार में भावना के लिए कोई स्थान नहीं है। मुझे गुप्तचरी की भाषा का यह सूत्र बहुत पसंद नहीं आया। मैं कभी भी किसी इन्सानी एजेंट से हृदयहीन, रक्तहीन व पश्चातापहीन छुटकारा पाने के सुनहरे सिद्धांत को आत्मसात नहीं कर सका। मैं उनसे असहमत हो सकता था। लेकिन उन्होंने मुझे ज्ञान से सुसज्जित गुलदस्ता दिया था। खासतौर पर इस्लाम की दुनिया की गहरी अंदरूनी दृष्टि का गुलदस्ता।

मुझे मुसलमानों से नफरत थी। मेरी राय में वही देश के विभाजन और हिंदुओं पर किए गए जुल्म के लिए जिम्मेदार थे। मैं उन्हें अपनी बचपन की साथी मनोरमा का पूर्वी पाकिस्तान में बलात्कार करने और हमें अपनी असली मातृभूमि से बेदखल करने के लिए कभी माफ नहीं करूँगा। उस समय मुझे हिंदुओं और मुसलमानों के बीच सभ्यताओं के संघर्ष और अंतर्राष्ट्रीय इस्लामी भाईचारे की इसमें भूमिका के बारे में बहुत कम जानकारी थी।

ढींगरा ने मुसलमानों के अंदर गहरे में झाँकने और उन्हें नए सिरे से समझने में मेरी बहुत मदद की। यह एक बड़ा सम्मोहक अनुभव था। अब मैं भारत के बहुधर्म, बहुभाषा, बहुजाति,

बहुसंस्कृति राष्ट्र होने की भू-राजनीतिक मजबूरियों को समझने लगा था। इसे कभी भी दारुल इसलाम या हिंदू राष्ट्र नहीं बनाया जा सकता था। न तो यह कभी था, न होगा। मैं अपने प्रशिक्षकों, विशेषतः ढींगरा का, कृतज्ञ हूँ जिन्होंने एक नया आयाम खोला। पर मैं उनसे एक बात में सहमत न था। यह थी इस्लाम और उपमहाद्वीप के मुसलमानों का सुरक्षा के संदर्भ में अध्ययन। मैं आज भी समझता हूँ कि राष्ट्र के सुरक्षा परिप्रेक्ष्य में क्षेत्र के नाजुक धर्मनिरपेक्ष संतुलन को बिगाड़ने के इस्लामवादियों के प्रयासों पर अधिक ध्यान देना चाहिए।

अपने आप में इस्लाम की प्रकृति कभी विघटनकारी न थी। उनके मत ने भी हिंदुत्व (अगर ऐसा कोई धर्म है तो) की तरह ही अपने अनुयायियों को सहिष्णुता का पाठ पढाया। लेकिन दक्षिण और दक्षिण पूर्व एशिया के मुसलमानों की भू-राजनीतिक विवशताएँ फारस की खाडी के क्षेत्र, अरब प्रायद्वीप, उत्तरी व मध्य अफ्रीका तथा मध्य एशिया के मुसलमानों से भिन्न थीं। भारत में ही अंग्रेजों द्वारा गुलाम बनाए जाने से पहले मुसलमानों ने 800 सालों से ज्यादा राज किया था। कभी मुसलमान शहंशाहों द्वारा शासित मुस्लिम समुदाय हिंदुओं के अधिराज्य में रहने के विचार के साथ मानसिक शांति से नहीं रह सकते थे। दक्षिण एशिया में हिंदू-मुसलमानों की फूट ने सभ्यताओं के संघर्ष का रूप ले लिया था। इसे वहाबी और देवबंदी सुन्नियों तथा ब्रिटिश गृह कार्यालय ने और हवा दी।

सभ्यतागत संघर्ष के इस पहलू को, जो आज भी दक्षिण एशिया के मुसलमानों के बडे वर्ग में मौजूद है, आई.बी. के प्रशिक्षकों ने कभी महत्व नहीं दिया। उनके लिए यह भी सांप्रदायिक तनाव का ही एक और चेहरा था। वे इस रोग को समझने और उसका निदान करने में असफल रहे।

* * * *

अतिगुप्त तकनीकी प्रयोगशाला के अलौकिक कारिंदों से मैं जरा भी प्रभावित नहीं हुआ। मेरे पास तकनीकी गुप्तचरी के विभिन्न स्वरूपों पर किताबों का अच्छा खासा संग्रह था। आरंभिक किस्म के वायरलेस सेट देख कर मुझे हंसी आ गई।(इन में से कुछ तो आनंद पर्वत पर आई.बी. के तकनीशियनों ने ही बनाए थे।) इसी किस्म के गुप्त कैमरे, छोटे रेडियो ट्रांस्मीटर व गुप्त रूप से सुनने के कुछ उपकरण थे जिन्हें तथाकथित विशेषज्ञ बडे नाज से तकनीकी गुप्तचरी के मुख्य उपकरणों के तौर पर दिखाते थे। ये उपकरण हमें ऐसे दिखाए जाते थे जैसे कोई जादूगर अपने हैट से खरगोश निकाल कर दिखाता है। मेरे विचार से क्लास से कोई भी गुप्त सूचनाएँ एकत्र करने के लिए उपकरणों के इस्तेमाल के बारे में पहले से ज्यादा जानकारी हासिल कर के नहीं निकलता था। तकनीकी प्रयोगशाला में हमारा जाना भी उतना ही निराशाजनक रहा। आई.बी. में गुप्त सूचनाएँ एकत्र करने के लिए अत्याधुनिक उपकरणों की आवश्यकता की धारणा ही नहीं थी।

काम करने के इस ढुलमुल तरीके को बहुत बाद में टी.वी. राजेश्वर ने बदला। फिर एम.के. नारायणन ने इसे और आगे बढ़ाया। उन्होंने सेटेलाइट के माध्यम से संचार, कंप्यूटर के इस्तेमाल तथा सुधारे हुये इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों के इस्तेमाल की शुरुआत कराई। मुझे उनके मातहत आई.बी.में तकनीकी विभाग का प्रमुख होने का दुर्लभ अवसर मिला। हालांकि यह हुआ विचित्र परिस्थितियों में। गुप्त सूचनाएँ एकत्र करने वाले उस आकर्षक विभाग का मैं शायद पहला और आखिरी आई.पी.एस. अधिकारी था।

बाद में क्षेत्र अधिकारी के तौर पर काम करते हुए मैंने महसूस किया कि सामान्य अधिकारियों को तकनीकी अधिकारियों से अलग कर के आई.बी.बहुत बड़ी गलती कर रही है। उन्हें भी तो पुलिस और गुप्तचरी का प्रशिक्षण दिया जाता था। फिर बाद में जन गुप्तचरी (ह्यूमिन्ट) काडर से अलग किया जाता था। किसी दूरदराज सीमा चौकी पर एक ही छत के नीचे काम करते हुए भी वे अलग-थलग रहते। उनके अधिकारी भी अलग थे, जिन के प्रति वे जवाबदेह थे। सामान्य गुप्तचरी वाले अपने सोपान के अनुरूप चलते। जबकि तकनीकी वाले अपने घुमावदार नेतृत्व के अनुरूप चलते जो उनके शीर्ष अधिकारी की समझदारी या मूर्खता पर निर्भर करता था।

यह विसंगति आज भी कायम है। सामान्य गुप्तचरी वालों के कारण तकनीकी विभाग नुकसान उठाता है। उसे जन गुप्तचरी की आकर्षक दुनिया के अनुभवों से वंचित रखा जाता है। वे अब भी परदे के पीछे रहते हैं। कुछ वरिष्ठ आई.बी.अधिकारी ही गुप्त सूचनाएँ एकत्र करने या उन्हें सुरक्षित रखने के लिए आगे आने का हौसला दिखा पाते हैं। वे सामान्य गुप्तचरों की सहायता करते हैं। उन्हें अनुसंधान और विकास की दुनिया में प्रवेश करने के लिए प्रोत्साहित नहीं किया जाता और वे गुप्तचर समुदाय को अपने नव-अन्वेषण का सहयोग नहीं दे पाते। आई.बी.आज भी तकनीकी इंटेलिजेंस के काम में पुराने ढर्रे पर चल रही है।

* * * *

हमारी बुनियादी ट्रेनिंग मिश्रित सी थी। ज्यादातर दुनियाबी। लेकिन कुछ पहलू अंतर्राष्ट्रीय स्तर के थे। इस प्रशिक्षण ने मुझे पुलिसिया प्रभाव से छुटकारा पाने में मदद की जो मैं पुलिस ट्रेनिंग कॉलेज से अपने साथ दिल्ली लें आया था। मेरी समझ में आ गया कि मेरा इन्सानी संपदा से वास्ता है। उन्हें कच्ची मिट्टी में बदलना है और फिर दोबारा गुप्तचरी के लिए एजेंटबनाना है। इसके लिए मानव मनोविज्ञान, किसी निश्चित लक्ष्य स्थिति की गहरी जानकारी और कूटनीति, रिश्वत देने, भ्रष्ट करने, भय व शोषण का संतुलित प्रयोग करने में महारत की जरूरत थी। किसी स्थान विशेष के लोगों, भूभाग, सामाजिक-आर्थिक विलक्षणता, उन लोगों के सपनों और हताशा की गहरी जानकारी ही किसी गुप्तचर अधिकारी के लिए इसमें कारगर हथियार साबित हो सकती थी। यह सुनहरा नियम कि हर आदमी की कोई कीमत होती है, थोथा प्रतीत होता था, क्योंकि कुछ लोग बिकाऊ नहीं होते। यह सच्चाई मुझे अपने कैरियर में कुछ आगे चल कर समझ में आई।

मैंने महसूस किया कि आनंद पर्वत में हमें किसी लक्ष्य स्थान के खास मानव समूह के बारे में प्रषिक्षण नहीं दिया जाता था। उदाहरण के लिए मणिपुर के लोगों के बारे में बुनियादी विश्लेषण भी मुझे उपलब्ध नहीं हुआ जबकि ट्रेनिंग पूरी करने के तुरंत बाद मुझे आई.बी.की मणिपुर यूनिट का कार्यभार संभालने को कहा गया। मेरा सामना सिर्फ के.एन. प्रसाद के पथरीले चेहरे से हुआ या फिर अपने डेस्क प्रमुख वी.के. कौल की लफ्फाजी से। मेरा संबल केवल मेरा किताबी ज्ञान, मेरी आशा और मेरी प्रिय पत्नी थी जो मेरे साथ मणिपुर के वीराने में जाने से हिचकी नहीं।

मैं यह शिद्दत से महसूस करता था कि जब भी किसी ऑफिसर को किसी नई जगह पर भेजने के लिए चिन्हित किया जाए तो उसे उस स्थान के बारे में हर पहलू से सघन प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। यह सब आनंद पर्वत पर नहीं होता था और आज भी नहीं होता। किसी ऑफिसर को नई जगह पर झोंक दिया जाता है। उससे उम्मीद की जाती है कि असफलताओं

की भरमार और किसी विरली सफलता के दम पर वह खुद सीखे। बहरहाल ज्ञान के टुकड़े क्लासरूम, ज्ञान के कारखाने और विद्वान वरिष्ठ अधिकारियों की सलाह से दूर बाहर की दुनिया में बहुत मिल जाते हैं। मैं जानता था कि आनंद पर्वत मेरी प्यास की शुरुआत भर था। मुझे लतहे और धड़काने वाले लोगों से भरे गुप्तचरी के अद्भुत संसार का और परिचय पाना था।

आनंद पर्वत पर मेरी ट्रेनिंग के आखिरी दिन मुझे प्रसाद साहब के सामने पेश होने का आदेश मिला ताकि मैं भारत के उत्तर-पूर्व वाली शाखा के बारे में कुछ जान सकूँ। जहां तक मुझे याद है मैं उस विशाल इमारत की ड्योढी में बडी घबराहट के साथ दाखिल हुआ था। मेरे कुछ वरिष्ठ सहयोगियों ने मुझे बताया था कि प्रसाद आदमखोर हैं और वह मुझे दो सेकंन्ड में चित्त कर देंगे। तीखे लहजे में बात करने, अशिष्ट भाषा का प्रयोग करने और काम के लिए आसक्ति संबंधी उनकी ख्याति संगठन में दूर-दूर तक फैली थी। मैं जानता था कि मेरे मासूमियत के दिन लद चुके थे। मुझे बड़ी कठिन सुई के छेद में से हो कर गुजरना था।

प्रसाद उन लोगों में से नहीं थे जो किसी आगंतुक को अपनी मुस्कान से सहज बना देते हैं। उनकी पुतलियां उनके चेहरे की मांसपेशियों के मुड़ने-तुडने के अनुरूप ही रुख बदलती थीं। कुल मिलाकर इसे मुस्कराहट तो कहा नहीं जा सकता था।

उन पुतलियों ने मेरी हवा खिसका दी। उनकी दाहिनी हथेली थोड़ी फैली, यह इशारा करने के लिए कि मैं बैठ जाऊँ।

"अच्छा तो तुम हो नक्सलबाडी के हीरो।"

"मैं कोई हीरो नहीं, सर। मैं वहाँ ट्रेनिंग लेने गया था और वहाँ मैंने कुछ पुलिस की ड्यूटी की। उसी का विस्फोट मेरे मुंह पर हुआ।" मैंने यथासंभव नम्रता से जवाब दिया।

"और उसी विस्फोट ने तुम्हें मेरी गोद में ला पटका, है ना?"

"मैं यकीन से नहीं कह सकता, सर। पर मैंने अपना काम पूरी दिलचस्पी से किया।"

"देखते हैं," उन्होंने घंटी बजा कर अपने सिपाही से कहा," कौल साहब को आने को कहो।"

कौल साहब, मेरा मतलब है विनोद कुमार कौल, गोलमटोल कश्मीरी थे। वह किसी छोटे बगुले की तरह भागे-भागे आए। उनके हाथ में कागजों का पुलिंदा लटक रहा था। उनके मुंह में दबे पान से तंबाकू की खुशबू फैल गई।

"मिस्टर कौल, यह एक नकली कश्मीरी हैं। ये धर हैं, लेकिन हैं बंगाली।"

"आप से मिल कर खुशी हुई।"

कौल ने अभिवादन के लिए अपनी खाली वाली हथेली फैलाई। मेरे खयाल में वह बाईं हथेली थी। हाथ उन्होंने गर्मजोशी से मिलाया पर उनकी आँखें शरारत से मुस्करा रही थीं।

"इन्हें आदिवासियों के मामले में प्रशिक्षित करो। इन्हें झारखंडियों और उत्तर-पूर्वी आदिमजातीय समुदायों की पूरी-पूरी जानकारी दो।"

"बड़ी खुशी से," कौल ने ऐसे कहा मानो वह किसी क्लास में पढ़ाने वाले पंडित हों और उसकी जबान कोड़ा हो।

हमारी छोटी-सी मुलाकात पाँच मिनट में खत्म हो गई। मैं कौल के साथ उनकी केबिन में आ गया। मेरे पास अपनी कोई मेज नहीं थी। कौल ने झारखंड आंदोलन के बारे में बहुत

से आधिकारिक नोट्स और सारांश मेज पर रख-दिए। इस आंदोलन ने उन दिनों बिहार, पश्चिम बंगाल और उड़ीसा को झटके देने शुरू कर दिए थे। मुझसे उम्मीद की गई कि मैं देश के सब से पिछड़े क्षेत्र के आदिवासियों संथाल, मुंडा, ओरांव और हो का इतिहास पढ़ कर आत्मसात कर लूँ और आंदोलन के बारे में संक्षिप्त आलेख तैयार करूँ। एक और काम जो मुझे सौंपा गया वह था आदिवासी क्षेत्रों में पादरियों की विघटनकारी गतिविधियों के बारे में आलेख तैयार करना।

कौल के पास मुझे कुछ समझाने का समय नहीं था। वह जल्दबाज आदमी थे। वह मानसून की झड़ी की तरह लगातार बोलते थे। उनकी वचनावली में चुनिंदा अपशब्द, गालियाँ और कुछ मसलों या लोगों के प्रति कड़वे प्रहार होते थे। वह अक्सर दीवार पर लगे नगालैंड, मिजो पहाड़ियों, मणिपुर और साथ के पूर्वी पाकिस्तान, बर्मा व चीन के इलाकों के नक्शे की तरफ जाते। उनके कान पर और जेब में हमेशा कुछ रंगीन पेंसिलें होती थीं। इनका इस्तेमाल वह नगा या मिजो विद्रोहियों की किसी ताजा हिंसक वारदात के स्थान को चिन्हित करने के लिए करते। अपने डिप्टी डाइरेक्टर के.एन. प्रसाद को कोई क्षेत्रीय रिपोर्ट पेश करने से पहले उस पर अपने हाथ से खाका बनाने का उन्हें बड़ा शौक था। नगा और मिजो के अलावा दो और विषयों से भी उन्हें बड़ा लगाव था। ये थे होमियोपैथी और अदालती मुकदमे।

मेरी छोटा नागपुर के आदिवासियों के साथ लिप्तता अक्सर कौल की थोडी कॉफी बनाने की अपशब्दों से समृद्ध फरमाइश से भंग हो जाती। हम कई बार कॉफी के लिए अंतराल करते जिसमें कौल अपनी चुनिंदा वचनावली से हमारा मनोरंजन करते। हम अक्सर गुल-गपाडे के साथ दोपहर का भोजन करते। शनिवार के सामूहिक लंच में डिप्टी डाइरेक्टर भी आते। यह विचारों के आदान-प्रदान का अच्छा मौका होता। इसमें कंपनी में चल रही गतिविधियों के बारे में भी बडी जरूरी जानकारी मिल जाती। कुछ घृणा या प्रेम के पात्र अधिकारियों की अंदरूनी बातों का भी पता चलता।

प्रसाद और कौल की सरपरस्ती में मैं कुछ ज्यादा नहीं सीख सका। उन्हें अपने क्षेत्र का माहिर उस्ताद माना जाता था। पर वे स्वार्थी उस्ताद थे और उनके पास मेरे जैसे नए कबूतर को सिखाने के लिए समय नहीं था। दरअसल मेरी समझ में आ गया कि काम करते हुए सीखने की कोई धारणा ही नहीं थी। किसी नवागंतुक को भयभीत बच्चे की तरह तूफानी धारा में फेंक दिया जाता था। उससे उम्मीद की जाती थी कि वह कठोरतम स्थितियों में अपनी चमड़ी बचाने के गुर सीखे। फिर कुछ अपने काम के दम पर,कुछ अपने बडे अफसरों की खिदमत करके और काफी हद तक अनिश्चितता के नियम की मेहरबानी से तरक्की करे।

विश्लेषण डेस्क पर तैनाती के बाद किसी भी नए ऑफिसर से उम्मीद की जाती थी कि वह पहले के रिपोर्ट करने के ढर्रे पर चले। आई.बी.ब्रांड की अंग्रेजी की नकल करे। अपने कनिष्ठ मसौदा तैयार करने वालों की राय और वरिष्ठ अधिकारियों की सनक का ध्यान रखे। ये वरिष्ठ अधिकारी विराम, अर्द्धविराम लगाने और हिज्जे सुधारने में कड़ा परिश्रम करते थे। सरकार को भेजी जाने वाली किसी भी रिपोर्ट का मसौदा बार-बार सुधारा जाता था जब तक कि कोई वरिष्ठ अधिकारी संतुष्ट न हो जाए कि उसकी अंग्रेजी पढ़ने वालों की अक्ल में बैठ जाएगी।

मुझे किसी विश्लेषण डेस्क पर लगाया जाने वाला था। तभी किसी ने मुझ से कहा कि हाल ही में गठित रॉ के प्रमुख आर.एन काव मुझ से मिलना चाहते हैं। वह जॉचना चाहते हैं कि क्या मैं ढाका भेजे जाने के लिए उपयुक्त रहूँगा। मेरे खयाल से कलकत्ते में आई.बी. के वरिष्ठ अधिकारी पी.एन. बनर्जी ने मेरा नाम सुझाया था। तेज दिमाग और पैनी आँखों वाले उस कश्मीरी ने मुझसे करीब एक घंटे तक अनौपचारिक बातचीत की। मुझे संकेत दिया गया कि उनके संगठन में शामिल होने और ढाका जाने को तैयार हो जाऊँ।

इतनी बडी खबर छिपनी मुश्किल थी। आई.बी के प्रमुख और इंदिरा गॉधी के पर राष्ट्र गुप्तचरी के प्रमुख को यह बात हजम नहीं हुई। रॉ के गठन के बाद कुछ आई.बी.अधिकारियों को नए सगठन में भेजा गया था। युवा आई.पी.एस. और गैर-आई.पी एस अधिकारियों मे नए सगठन की तरफ भागने की होड-सी लग गई थी। इसमें विदेशों मे नियुक्ति के अलावा इसकी अपनी चमक का आकर्षण भी था। सिर्फ बहुत चहेतों, रिश्तेदारों और बडे लोगों के बच्चों को ही तरजीह दी जा रही थी। इनमें मैं अकेला ही अनजान प्राणी था जो छत से रॉ की थाली में टपक पडा था। मुझ-जैसे नौसिखिए ने जो चमत्कार दिखाया था उससे बहुत-सी ऑखे सिकुडी और होंठ टेढे हो गए।

शायद इसी ने मेरे किस्मत का फैसला कर दिया। एक अभागे शनिवार के सामूहिक लच के दौरान प्रसाद ने ऐलान किया कि मुझे मणिपुर की पूर्व रियासत की राजधानी इम्फाल के सहायक इंटेलिजेंस ब्यूरो के लिए चुन लिया गया है। मुझे दिल्ली से अपना बोरिया बिस्तर समेटने के लिए सिर्फ सात दिन दिए गए थे। पहले मुझे इम्फाल को देखने-भालने के लिए जाना था। फिर जनवरी 1969 के पहले हफ्ते में आई.बी.की इस दूर-दराज चौकी की जिम्मेदारी संभालनी थी।

मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि इस बदले घटनाक्रम को कैसे लूँ। मैंने अपनी ढाका नियुक्ति की संभावना का पता लगाने की एक असफल कोशिश की। एम.आई.एस. अय्यर ने मुझे सलाह दी कि बेहतरी इसी में है कि मैं मणिपुर चला जाऊ। बॉस मेरी काव से मुलाकात से खुश नही थे और मुझे इस मामले को ऐसे भूल जाना चाहिए जैसे कुछ हुआ ही न था।

आई.बी.में आमतौर पर किसी नए अफसर को संवेदनशील और उपद्रवग्रस्त स्थान पर नहीं भेजा जाता था। किसी भारी स्टेशन की जिम्मेदारी सौंपने से पहले अधिकारियों को दिल्ली में अपनी जडे जमाने का कुछ समय दिया जाता था। मैंने अपनी मणिपुर नियुक्ति को रद्द करवाने की संभावना का पता लगाने की कोशिश की। मैंने अपनी पत्नी के दादा त्रिगुण सेन से मिलने की भी सोची। मैंने अशोक सेन से भी मिलने का विचार किया। उनको मैं उनके ससुर न्यायमूर्ति एस.आर. दास की मार्फत जानता था। सुनंदा ने मुझे सही सलाह दी कि मुझे यह नियुक्ति शालीनता के साथ स्वीकार कर लेनी चाहिए। बिना भविष्य की रूपरेखा को समझे और यह जाने बिना कि समय के गर्भ में क्या छिपा है, किसी आने वाली घटना का विरोध नहीं करना चाहिए।

कुछ समय तक चिढ़ने-कुढ़ने के बाद मैंने कौल से कहा कि वह मुझे मणिपुर, नगालैंड और शेष उत्तरपूर्व पर पढ़ने के लिए कुछ सामग्री दें। उन्होंने कृपा की और मैंने अपना ध्यान छोटा नागपुर के आदिवासियों तथा 'विघटनकारी ईसाई पादरियों ' से हटाकर उत्तरपूर्व के

आदिवासियों पर लगाया। इस तरह ध्यान हटाना बाद में मेरे लिए उस क्षेत्र और वहाँ के उत्तेजनाग्रस्त लोगों के प्रति प्रेम मे बदल गया। जैसे-जैसे मेरा वहाँ के लोगों और उनकी समस्याओं के साथ वास्ता बढता गया, मेरा उत्तरपूर्व के लिए प्यार भी और बढता गया।

मेरी किसी गलती के बिना ही मुझे दिल्ली से निकाला गया था। आई बी.मुख्यालय मे मुझे एक दशक के बाद ही जा कर नियुक्ति मिली। मैने अपने तईं फिर कभी काव से मिलने का साहस नहीं किया। वैसे उन्होने बहुत बाद मे मुझे पजाब के कुछ मसलो पर चर्चा के लिए आमंत्रित किया था।

<6>

रत्नों की भूमि को

तुम महान ऊर्जा का सारतत्त्व हो, केवल वीर ही तुम्हें पाने का साहस करते हैं,
तुम करुणा और कठोरता का सम्मिश्रण हो,
तुम पुरुष भी हो, नारी भी।
तुम मानव जीवन को असहनीय संघर्ष से आलोडित कर देती हो।
अपने दाहिने हाथ से तुम अमृत उडेलती हो,
बाएँ से सुरापात्र को चकनाचूर कर देती हो,
तुम्हारी क्रीड़ाभूमि में अनुनादी ललकार प्रतिध्वनित होती रहती है,
तुम वीरों के जीवन को अपना आशीर्वाद देती हो,
जो कि जीवन में महान कार्यों के योग्य होते हैं
साध्य संघर्ष के।

पृथ्वी के लिए सबोध गीत

रवींद्रनाथ टैगोर

हम 19 दिसंबर 1968 को दिल्ली से रवाना हुए। आई.बी. में आने के पॉच महीनों से कुछ समय बाद। सुनंदा मॉ बनने वाली थी। इसलिए वह कलकत्ते में अपने माता-पिता के पास रुक गई। मैंने इम्फाल के लिए हचकोले देने और कांपने वाली डी सी-3 की उडान पकडी। यह विमान रास्ते में अगरतला और सिल्चर, इन दो स्थानों पर रुकता था।

तुलीहाल हवाई अड्डे पर मेरी आगवानी कुछ उत्साहहीन-सी थी। सहायक निदेशक के. एन. सान्याल ने मुझे जो खुलासा दिया वह भी कुछ ऐसे ही अदाज में था। मुझे उनकी जगह काम करना था। न तो मुझे किसी खुफिया एजेंट से मिलवाया गया और न ही मुख्य राजनीतिज्ञों या शीर्ष प्रशासकों से मुलाकात करने का मौका दिया गया। दफ्तर के माहौल ने, खास कर डिप्टी सेंट्रल इंटेलिजेंस ऑफिसर जे.एन. टोपा के व्यवहार ने, मेरा उत्साह फीका कर दिया। देखने-भालने वाली यह यात्रा निराशाजनक ही रही।

मैं 27 दिसंबर को दिल्ली लौटा। मुझे तुरंत रिलीव कर दिया गया। सात दिन के अंदर अपना कार्यभार संभालने के आदेश के साथ मुझे इम्फाल जाने को कहा गया। आखिरकार 3 जनवरी 1969 को मैं इम्फाल पहुंचा, इस उम्मीद के साथ कि सान्याल से कार्यभार संभाल लूँगा।

सान्याल तब तक इम्फाल से अपनी नियुक्ति पर कलकत्ता चले गए थे। वहाँ कोई मुझे कार्यभार संभलवाने वाला नहीं मिला, न ही कोई वहाँ के एजेंटों या गुप्तचरी के कार्यकलाप के बारे में बताने वाला। मुझे बिना जीवनरक्षक जैकेट के समुद्र में फेंक दिया गया था। एक

ही जानकारी थी, जिस से कुछ सुकून मिला, वह यह कि मेरी रिश्ते की एक बहन अपने परिवार के साथ इम्फाल में रहती थी। मेरी उखडी भावनाओं के संतोष के लिए इतना काफी था। मुझे इस समय किसी सहारे की बडी जरूरत थी।

मणिपुर उन दिनों नगा और मिजो विद्रोह तथा अन्य हिंसात्मक आंदोलनो से क्षत-विक्षत था। वह किसी भयंकर विस्फोट के कगार पर ही था। दिल्ली से मुझे आदेश हुआ था कि मैं उस विस्फोट से बने खोखर में जाकर लोकतक झील के किनारों को निकट भविष्य में ध्वस्त करने वाले मौग्मा को निकाल लूँ। यह झील ताजे पानी का सब से बडा भडार थी। यह घाटी की हरी धान की फसलों और सुदूर धूसर पहाडियों के बीच पन्ने सी दमकती थी।

मणिपुर मेरे लिए वह जगमगाता रत्न न था जैसा कि पांडवों की तीसरी पीढी के लिए था। मुझे इस प्रदेश और यहाँ के लोगों की खूबसूरती को पहचानने के लिए कडा परिश्रम करना पड़ा। 1972 मे जब मैंने मणिपुर छोडा, मैं जानता था कि मैंने उसकी आत्मा को पा लिया है। यही मणिपुर का रत्न था।

मणिपुर मेरे लिए एक पालना था जो इंटेलिजेंस संचालक के रूप में मेरे जन्मकाल से मुझे मिला। मैं ने के.एन. प्रसाद और वी.एन. कौल को कोसना बंद कर दिया। मैंने अपने भाग्य को सराहा जिसने एक अनगढ धातुपिंड को मणिपुर की दहकती भट्टी में झोंक दिया था। मैंने महसूस किया कि केवल विपत्ति की आग ही मुझे वांछित स्वरूप में नहीं ढाल सकती। मेरे सामने चुनौती यह थी कि जिस आग में झोंका गया हूँ उसकी प्रचंडता की समानता पैदा करूँ। जन्मजात ही मैं उन में से न था जो हाथ खडे कर मदद के लिए चिल्लाने लगते हैं। किसी मैदानी दीमक की तरह मैं भी अपने सामने की चट्टान के जर्रों को चट करने और नए जोश के साथ उसका मुकाबला करने में माहिर था। सुनंदा के हौसला बढाने के साथ ही मैंने तय कर लिया कि इस चुनौती का सामना करूँगा और साबित कर दूँगा कि शाह सुलेमान की खाली खदानों में से भी सोना निकाला जा सकता है।

लेकिन 1968-69 का मणिपुर खाली खदान न थी। राज्य में नगा और मिजो विद्रोह का जोर था और इस के साथ ही दूसरे आदिवासी दल भी सशस्त्र संघर्ष कर रहे थे। चुराचादपुर, तेंगनूपाल, कारोंग, सेनापति और सुगनू के गैर नगा पहाडी इलाकों में कुकी नेशनल असेंबली, हमार नेशनल वॉलटियर्स तथा पायते लिबरेशन फ्रंट ने विद्रोह के झंडे फहरा रखे थे।

उखरूल, मओ, तामेंगलांग व तेंगनूपाल और कारोंग के जिलों (पुराने) में स्वयंभू नगा संघीय सरकार और भूमिगत नगा सेना की टुकडियाँ सक्रिय थीं।हिंसा का स्तर काफी ऊंचा था। अपने प्रभाव क्षेत्र में नगा विद्रोही समानांतर सरकार चला रहे थे। गैर-नगा इलाके के आदिवासी क्षेत्रों में मिजो यही हरकत कर रहे थे।

इम्फाल घाटी में अधिकतर हिंदुओं की एक धारा मैतेई वैष्णवी के अनुयायी बसते थे। वे भी आंदोलन पर उतारू थे। इसकी शुरुआत हिजाम इराबोट सिंह ने की, जो मार्क्सवादी कम्यूनिस्ट था। मैतेई राज्य समिति ने अखिल मगोलियन आंदोलन तथा अरंबाम सम्रेंद्र सिंह के यूनाइटेड नेशनल लिबरेशन फ्रंट के संरक्षण में तेजी पकड ली थी। लगभग इसी समय ओइनाम सुधीर कुमार ने मणिपुर संयोजन समिति बना ली थी और उसके तहत मणिपुर क्रांति सरकार (आर.जी.एम.) की स्थापना कर डाली थी। एन. बिशेश्वर सिंह इस सरकार का सब से अग्रणी नेता बन कर उभरा। 200 मैतेई हिंदू युवकों के एक दल को पाकिस्तानी संगठन (आई.एस.आई.) ने फुसला कर पूर्वी पाकिस्तान के सिल्चर जिले में ट्रेनिंग के लिए राजी कर लिया।

इस संघीय प्रदेश के टूटे-फूटे राजनीतिक ढांचे ने मैतेइयों के भूगर्भीय आंदोलन को और बल दिया। यह प्रदेश एक मुख्य आयुक्त बालेश्वर प्रसाद के अधीन था। वह भारतीय प्रशासनिक सेवा से सेवा-निवृत्त थे। उनके अपने गृह राज्य के कुछ शीर्ष प्रशासकों तथा इंदिरा गाँधी के परिचरों से बड़े घनिष्ठ संबंध थे। प्रदेश की विधान सभा प्रसाद की पितृसत्ता के अधीन चलती थी। इस संचालन में मुख्यभूभाग के भारतीय प्रशासकों का सहयोग रहता था। कुछेक स्थानीय तत्वों का मेल भी था।

मणिपुरी इस विचार से उत्तेजित हो गए कि दिल्ली ने नगालैंड को राज्य का दर्जा दे दिया है। पंजाब राज्य को मान्यता दे दी है। अब वह मेघालय को भी यह दर्जा देने वाली है। लेकिन उसने इस भूतपूर्व रियासत का दर्जा बढाने से इनकार कर दिया है जिसने कि अंग्रेजी राज में भी किसी न किसी रूप में अपनी स्वतंत्रता बनाए रखी। भारत के इस शांत पूर्वी सीमाँत में राज्य स्तर के लिए आंदोलनों का सिलसिला छिड गया। दिल्ली ने उस पर जरा भी कान न धरे और आतंकवाद के भयानक विस्फोट का सामना करने के लिए पुलिस, अर्धसैनिक बलों और सेना पर भरोसा किया।

मेरे सेवा काल को चार साल से कुछ ही अधिक समय हुआ था। मेरा पद असिस्टेंट डाइरेक्टर का था और मुझे इम्फाल के सहायक इंटेलिजेंस ब्यूरो का प्रमुख बनाया गया था। मैं शायद इस स्तर पर सब से कनिष्ठ अधिकारी था।पर मुझे सीधे मुख्य आयुक्त, मुख्य सचिव, इंस्पेक्टर जनरल पुलिस, सेना के जनरल व ब्रिगेडियरों के अलावा मुख्यमंत्री तथा उनके मंत्रिमंडल के सहयोगियों से मिलना होता था।

सब से पहले मैंने उन साधनों का लेखा लिया जो दिल्ली ने मुझे इन चुनौतियों का सामना करने के लिए उपलब्ध कराए थे। मुझे अपने पाठकों को ईमानदारी से बताने की कोशिश करनी चाहिए कि मुझे विरासत में क्या मूलभूत ढांचा मिला था।

मुझसे केंद्र सरकार का आँख-कान होने की उम्मीद की जाती थी। मेरी सहायता के लिए एक डिप्टी सेंट्रल इंटेलिजेंस ऑफिसर थे। वह सज्जन कश्मीरी थे और मैतेई भाषा से बिलकुल अनजान थे। उन्होंने कोई एजेंट बनाने की भी कोशिश नहीं की। अगर मैं गलत नहीं हूँ तो वह हर महीने गुप्त फंड से एक अच्छी रकम भी ले लेते थे। मैंने कभी पूछा नहीं कि वह ऐसा क्यों करते थे। उन दिनों यह सोचने का रिवाज था कि हर कश्मीरी नेहरू खानदान का रिश्तेदार है।

विरासत में मुझे मनी सिंह भी मिला था। वह संपर्क वाला असिस्टेंट सेंट्रल इंटेलिजेंस ऑफिसर ग्रेड 1 था। उसने कुछ सतही मैतेई एजेंट बनाए। वह ईमानदारी से मैतेई भाषा के दैनिक अखबारों से खबरें उडाता और उन्हें अंग्रेजी में एजेंटों की रिपोर्ट के तौर पर पेश करता। मैंने कभी इस पर एतराज नहीं किया। कम से कम मुझे हर शाम ऐसे कागजों का पुलिंदा तो मिल रहा था जिस में खुली राजनीतिक गतिविधियों पर अखबारों की रिपोर्ट होती थी। कुछ गुप्त रिपोर्ट भी होती थी। मुख्य भूमि के हिंदी अधिकारी इस तरह की रिपोर्ट तैयार नहीं कर सकते थे। उनकी मैतेई समाज में पैठ नहीं थी।घाटी के हिंदुओं ने किसी भी मुख्य भूमि के दिखने वाले भारतीय को 'मयंग' (बाहर वाला) कह कर गाली देना शुरू कर दिया था।

कहने का मतलब यह नहीं कि मेरे पास कोई आधिकारिक इंटेलिजेंस संचालक था ही नहीं। मैं एन.के. सिंह की पैठ से हैरान था। वह विष्णुप्रिया मणिपुरी (एक अलग वैष्णव संप्रदाय जो मैतेई, असमिया और बंगाली की मिश्रित भाषा बोलते थे) था। उसने घाटी के हिंदुओं तथा

नगा कबीलों में से कुछ जेलियांग व रोंगमेई मुखबिर बनाए जो बड़े काम के थे। एक और सिपाही देवकिशोर शर्मा था। उसका मयखाना सुबह सात बजे ही खुल जाता था। वह सब से अमूल्य इंटेलिजेंस संचालक था। शुद्धिवादी कश्मीरी ब्राह्मण डी.सी.आई.ओ. ने उसे दबा रखा था। मैंने उसे खुली छूट दी। गुप्तसेवा राशि के अलावा जो गैरपरंपरागत भुगतान मैंने उसे किया वह था खुले दिल से रम की सप्लाई। यह मैं सेना की कैंटीन से सस्ते भाव मंगा लेता था। मैं उससे ऐसे व्यवहार करता था मानो वह एजेंट हो।

थाई जैसा दिखने वाला मोटा सोइबाम याइमा सिंह हमारा जूनियर ऑफिसर था। उसने मेरे लिए मैतेई समाज के बंद दरवाजे खोल दिए। वह मुझे महाराजकुमार प्रियव्रत सिंह, राजकुमार माधुर्यजीत सिंह, लेइशराम लोकेंद्र और महल के मंदिर व बिशनपुर, थोउबाल तथा मोइरांग के मंदिरों के मुख्य पुजारियों के निकट ले आया।

मेरा ड्राइवर मनी सिंह भी इस मौके पर पीछे नही रहा। उसने अरंबाम सोमोरेंद्र और ओइनाम सुधीर के कोन्सकोम के निकट के एजेंट नियुक्त करने में मेरी मदद की।

सिपाही देवकिशोर शर्मा मणिपुर क्रांतिकारी सरकार में सबसे महत्वपूर्ण सूचना देने वालों को मेरे निकट लाया। उसकी पीने की आदत मुझे पसंद न थी। पर मैं जानता था कि इस मैतेई ब्राह्मण को सिर्फ इसी से प्रेरणा मिलती है।

यहाँ मैं इस बात की चर्चा करना चाहूँगा कि मेरी कोशिशों ने एक निम्न श्रेणी क्लर्क नवरंग शर्मा को प्रेरित किया। उसने मैतेई भूमिगत आंदोलन में बडे संवेदनशील एजेंट बनाने में मदद की। मेरे अर्दली सिपाही इबोम्चा सिंह ने भी सहयोग दिया। पाँच महीने के अल्पकाल में ही एस.आई.बी. घाटी में काफी संख्या में एजेंट होने का गर्व कर सकती थी। मैंने अपने पूर्ववर्ती के खाली रजिस्टर के स्थान पर एक नया एजेंटों का रजिस्टर खोला। मेरे नियंत्रक अधिकारी कोहिमा स्थित डिप्टी डाइरेक्टर ने मुझसे बड़ी विचित्र जानकारी चाही। उन्होंने जानना चाहा कि इतने सारे एजेंट बनाने और गुप्त फंड से इतना भुगतान करने की जरूरत क्या है? मुझे काफी लंबा जवाब देना पडा। उसमे मैंने बताया कि कितनी झुलसी हुई धरती मुझे विरासत में मिली थी और उभरते मैतेई विद्रोही आंदोलन पर ध्यान देने की तत्काल कितनी आवश्यकता थी। शिलांग स्थित क्षेत्रीय अधिकारी वी.वी. चौबाल ने मेरा समर्थन किया।

* * * *

घाटी 7000 वर्ग किलोमीटर के दायरे में फैली थी। इसमें इंटेलिजेंस निगरानी के लिए कुछ सीमावर्ती चौकियों और आंतरिक गुप्तचरी चौकियों सहित मुख्य स्टेशन इम्फाल में था।

सडकें पुराने जमाने की थीं। परिवहन व्यवस्था न के बराबर थी। एस.आई.बी. अधिकारी इम्फाल से बाहर कम ही निकलते। मेरे कश्मीरी डी.सी.आई.ओ. ने भी मेरा साथ छोड़ दिया। जब उसने देखा कि यह काम को चाट जाने वाला दीमक झूठ के अंबार पर चैन से सोने न देगा तो उसने दिल्ली तबादला करवा लिया। वह अर्जियाँ लगाने में माहिर था और उसके दिल्ली में राज कर रहे अपने जातीय गुट से अच्छे संपर्क थे।

मेरा कुछ हर्ज नहीं हुआ। बल्कि मैं खुश ही था कि एक काम न करने वाली गरारी हट गई है। अब मैं नए सिरे से काम की रफ्तार बढाने को स्वतंत्र हूँ। मैंने उपलब्ध आठ ऑफिसरों की सूची बनाई। इनमें से चार मुख्य भारतीय भूभाग से थे। मैंने इनको घाटी में प्रादेशिक जिम्मेदारियाँ सौंपीं। कुछ ने आपत्ति की। कुछ ने शारीरिक सुरक्षा की चिंता जताई। मैं मुख्य

भूभाग के अधिकारियों को दोष नहीं दे सकता था। उनको सुरक्षित प्रशासनिक क्षेत्र में सरकारी आवास नहीं दिया जाता था। उन्हें मैतेई बस्तियों में किराए पर घर लेने को विवश किया जाता था। अंततः मैं पास की बस्ती में एक पक्का मकान खोजने में कामयाब रहा। वहाँ पाँच ऑफिसरों और उनके परिवारों को बसा दिया। अपने परिवारों की सुरक्षा के प्रति निश्चिंत हो जाने पर वे युवा 'मयंग' अधिकारी डगमगाए नहीं। फिर तो वे मणिपुर के पहाडी रास्तों पर और घाटी की उपद्रवग्रस्त गलियों में बेहिचक घूमे।

दिल्ली से मुख्य भूमि के भारतीयों को पहली नियुक्ति पर मणिपुर भेजना स्थिति को न समझने वाली बात ही थी। उन्हें इस क्षेत्र के लोगों की भाषा, रीतिरिवाजों, सांस्कृतिक रवैए की मामूली जानकारी भी नहीं दी जाती थी। किसी दूसरी अच्छी नियुक्ति पर लगाए जाने से पहले उन्हें सीमा पर अनिवार्यतः तीन साल काटने होते थे। इसका कोई फायदा न था। यह तो सिर्फ जनशक्ति को व्यर्थ करने वाली बात थी। पर मेरे पास इन युवाओं पर निर्भर रहने के सिवा और कोई चारा न था। इनमें से कुछ ने विलक्षण साहस और दृढता का परिचय दिया।

मैंने मैतेई जाति के इतिहास और निकटवर्ती असमी, बंगाली तथा ब्रिटिश राज कायम करने वालों के साथ उनके संबंधों पर थोडा शोध किया। इससे मेरी समझ में आया कि घाटी में मेरे ये समानधर्मी, थाई लोगों की तरह ज्यादा थे। वे मिलनसार थे। पर बाहरी लोगों पर बहुत ज्यादा शक करते थे। बर्मियों के साथ उनके संबंध खराब रहे। नगा, कुकी, चिन और दूसरी आदिमजातियों के कबाऊ घाटी तथा बर्मा की चिन पहाडियों से लगातार आगमन ने उन्हें दिल्ली की सरकारों के प्रति शक्की बना दिया था। असम के राज्यपालों और इम्फाल के राजनीतिक एजेंट के प्रति तो उनका अविश्वास और भी अधिक था।

परंपरागत 'सनामाही' और 'कांगला' आराधना के स्थान पर वैष्णव मत का प्रसार उन को दूरस्थ थाई कडी से बहुत अलग-थलग नहीं कर पाया था। मणिपुर की अपूर्व सुंदरी और वीरांगना राजकुमारी चित्रांगदा के साथ तीसरे पांडव अर्जुन की कथा पूर्ण रूप से उन को समाहित नहीं कर पाई थी। दिल्ली और उसके अंग्रेजों के समरूपियों के उपनिवेश जैसे प्रशासन तथा मुख्य भूमि से आने वाले भारतीय अधिकारियों की लंबी-चौडी फौज ने अलगाव के एहसास को और भी कटु बना दिया था। वे उपनिवेशी आकाओं की तरह शासन करते थे। जिस प्रदेश की जनता ने केवल 1949 में भारत के साथ संबंध जोडा था उसकी आकांक्षाओं के प्रति वे एकदम उदासीन थे।

मैतेई अनेक अभावों से ग्रस्त थे। 1969 में वहाँ अच्छे शिक्षा संस्थान और व्यावसायिक शिक्षा के कॉलेज न थे। रोजगार पैदा करने वाला मूलभूत ढाँचा भी नहीं था। वे आदिवासी हिंदू थे। पर उन्हें आरक्षण की सुविधा उपलब्ध नहीं थी। नगा और गैर-नगा युवक आरक्षण का लाभ उठा कर अखिल भारतीय सेवाओं में आसानी से नौकरी पा जाते थे। ज्यादा समझदार मैतेई लड़के भी मुख्य भूमि के बेहतर सुविधा सम्पन्न लड़कों का मुकाबला नहीं कर सकते थे।

ज़मीन की भी कमी थी। पहाड़ के आदिवासियों को घाटी में जमीन खरीदने की इजाजत थी। लेकिन घाटी के हिंदू पहाड़ में ज़मीन जायदाद नहीं ले सकते थे। जमीन की कमी के कारण किसानों को वहाँ से पलायन करना पड़ा। ग्रामीण युवाओं में बेरोजगारी बढ़ने लगी। शहरी युवाओं की स्थिति भी कोई बेहतर न थी। अच्छी शिक्षा के अभाव में वे साधारण बाबुओं वाली नौकरी भी नहीं पाते थे। अधिकांश सरकारी नौकरियाँ सब से ज्यादा बोली लगाने वालों को मिलती थीं। इनमें से ज्यादातर मामलों में भारतीय अधिकारियों का निर्णय ही अंतिम होता

था। सारे दस्तूर से भ्रष्टाचार की बू आती थी। बहुत से सामान्य भारतीय प्रशासनिक अधिकारी या तकनीकी अधिकारी मणिपुर हल्की जेबों के साथ आते थे और घर भारी जेबें ले कर वापस लौटते थे। उनके लिए यह सचमुच रत्नों की भूमि थी।

वहाँ कोई भी भारी या मंझले आकार का उद्योग न था। लघु उद्योग भी हैंडलूम या फिर कुछ पावरलूम तक सीमित थे। कुछ भारतीयों को दूसरे उद्योग लगाने के लिए भी प्रोत्साहित किया गया। इनमें से एक के ह्यूम पाइप की फैक्टरी लगाने पर मुख्य आयुक्त ने पद्म अलंकरण के लिए सिफारिश की। यह वहाँ के औद्योगीकरण का शीर्ष था।

मैतेई समाज का 'नूपी' (महिला) वर्ग अपनी बर्मी और थाई बहनों की तरह आर्थिक क्षेत्र में प्रमुख था। लेकिन हथकरघा उद्योग में मारवाडी व्यापारिक संस्थानों के अचानक आगमन से बाजार की स्थिति जटिल हो गई। वे महिला बुनकरों पर डोरे डालते थे, यार्न और रंगो पर उन्होंने इजारेदारी कायम कर ली थी और शेष भारत मे मणिपुरी उत्पादों के विपणन पर उनका एकाधिकार था।

मैतेई अपने पूर्व गौरव के भ्रम से तो ग्रस्त थे ही, उन्होंने यह गलत धारणा भी बना ली थी कि भारत के साथ विलय एक धोखा था। वे अपनी सब विपदाओं के लिए भारत को ही दोष देते थे। नगा और मिजो क्षेत्रों में हिंसा के वातावरण ने स्थिति को और जटिल बना दिया था। मोहभग से त्रस्त मैतेइयों को यही समझ में आ रहा था कि हिंसा ही शक्तिशाली दिल्ली के घुटने टिकवा सकती है। भारत गाँधी के अहिंसा और लोकतत्र के दर्शन की भूमि थी। लेकिन उसने हिंसा को अपनी बात मनवाने और शिकायतें दूर करवाने का अर्द्ध-लोकतात्रिक साधन बनवा दिया था। लोगों की उचित माँगों के प्रति साम्राज्यवादी रवैया अपना कर उन्हे सिर्फ कानून-व्यवस्था की समस्या करार देने और शांतिपूर्ण लोकतात्रिक आंदोलन का प्रशासन पर कोई असर न होने से लोगों के दिमाग में यह बात अच्छी तरह बैठ गई थी कि सरकार सिर्फ हिसा की भाषा ही समझती है। नगाओं को शस्त्र उठाने के बाद ही अलग राज्य मिला। खासियो को भी पाकिस्तान समर्थक आदोलन का खतरा खडा करने के बाद ही राज्य का दर्जा नसीब हुआ। स्वाधीन भारत में हिंसा नागरिक अभिव्यक्ति का एक अंग बन गई थी। स्वाधीनता बाद के प्रशासन की निरतर असफलताओं ने बहुत से भारतीयों को हिसा समर्थक बना दिया था। लोकतंत्र के नाम पर अराजकता का शासन था। मैतेइयों को भी यह संदेश मिल चुका था।

क्षोभ का एक और कारण था, मुख्य आयुक्त का काम करने का साम्राज्यीय तौर-तरीका। उन्हें विधानसभा के निर्वाचित सदस्यों के साथ पाँव की धूल सा व्यवहार करने में जरा भी हिचकिचाहट नहीं होती थी। वह मंत्रियों और अक्सर मुख्यमंत्री के साथ भी दुर्व्यवहार करते थे। वे निर्वाचित विधायिका के कार्यकलाप में खुला हस्तक्षेप करते थे। शक्तिशाली भाषाई मीडिया से वह घाटी के विद्रोहियों की आवाज समझ कर व्यवहार करते। सिर्फ चापलूसों और मुख्य भूमि के भारतीय व्यापारियों का गुट ही उनके कामकाज से खुश था। लेकिन बालेश्वर प्रसाद चोटी के कुछ प्रशासकों और गुप्तचर बिरादरी के कुछ बागड़बिल्लों के बहुत चहेते थे। मणिपुर में सभी उनसे डरते थे। नफरत करने वालों की संख्या भी कम न थी। मुझसे मुख्य आयुक्त के काम करने के तौर-तरीके पर रिपोर्ट करने की उम्मीद नहीं की जाती थी। कोहिमा स्थित डिप्टी डाइरेक्टर द्वारा मेरे शिलांग स्थित बॉस के माध्यम से यह बात भली प्रकार समझा दी गई थी। इससे दिल्ली के शीर्ष व्यक्ति के इम्फाल में काम करने के बारे में उनकी गहरी रुचि साफ जाहिर थी। बाद में मुझे पता चला कि इस का कारण उनके दिल्ली स्थित सहयोगी

के.एन. प्रसाद थे। वे किसी ऐसी जिज्ञासा से अप्रसन्न होते क्योंकि मुख्य आयुक्त उनके संबंधी थे।

खैर जो भी था। मैंने विवश मैतेई समाज के बारे में अपनी जानकारी का फायदा उसमें घुसपैठ करने वाले एजेंट बनाने में किया। अगस्त1969 तक एस.आई.बी. को जरा दम मारने की फुर्सत मिल गई थी। इम्फाल के ऊपरी शांत आवरण के नीचे जो बादल उमड-घुमड रहे थे उनके बारे में मैंने काफी पता लगा लिया था।

* * * *

विद्रोहग्रस्त पहाडी भूभागों में एस.आई.बी. की स्थिति बहुत अच्छी न थी। मुझे विरासत में सड़क और वायरलेस से संपर्क वाली कुछ चौकियाँ मिली थीं। ये थीं उखरूल, चसाद (बर्मा सीमा), चुराचांदपुर (बर्मा सीमा), मओ (नगालैंड सीमा) और मोरेह (बर्मा सीमा)। थानलोन (मिजोरम सीमा) और तामेंगलाग (एन.सी.पहाडी सीमा) तक मोटर लायक सड़क नहीं थी। लेकिन उनका इम्फाल के साथ उच्च आवृत्ति के वायरलेस से सपर्क था। उपद्रवग्रस्त खास इलाकों में एक ऑफिसर होता था जो अक्सर ए.सी.आई.ओ.2 होता था, या फिर वह जूनियर इंटेलिजेंस ऑफिसर-1 होता था। उसके साथ कम से कम तीन सिपाही होते थे। वायरलेस स्टेशन का इंचार्ज ए.सी.आई.ओ.2 गुप्त सूचनाएँ एकत्र करने में मदद नहीं करता था। वह और उसका सामान्य इंटेलिजेंस संकलन वाला साथी एर्क ही तंग जगह पर रहते। वे कई बार जगह को ले कर झगड भी पडते, उस बीहड और दूरदराज इलाके में जो कुछ छोटी सी जगह उनके पास होती।

जब मुझे अखाडे में उतारा गया, नगा विद्रोह अपने चरम पर था। मेरे पास इंटेलिजेंस अधिकारियों का एक छोटा-सा दल था। संचार के लिए पुराने ढंग के सकेत साधन थे। परिवहन की सुविधा भी सीमित थी। तकनीकी उपकरणों के नाम पर खाली झोला था। न फोटो लेने की सुविधा,न इलेक्ट्रानिक सकेत साधन, न अन्य गुप्त सूचना जुटाने के सामान। फैक्स और इंटरनेट का अभी चलन नहीं हुआ था। फोटोकॉपी को भी अत्याधुनिक परिकल्पना समझा जाता था। टेलीफोन का तंत्र निहायत पुराना था। दूर कहीं बात करनी हो तो महत्वपूर्ण और लाइटनिंग काल की वरीयता का सहारा लेना पडता था। दिल्ली तक का टेलेक्स कनेक्शन बरास्ता कोहिमा था। कई बार, खासतौर पर लंबे बरसात के मौसम में, वह ठप रहता था। इस तरह की सुविधाओं और भारी बोझ से लदी एस.आई.बी. से सामरिक और तकनीकी इंटेलिजेंस संकलन की आशा की जाती थी। उससे नगा और मिजो विद्रोहियों की गतिविधियों व घाटी के ज्वालामुखी पर नजर रखने की उम्मीद की जाती थी जिससे अवश्यंभावी भीषण विस्फोट के लक्षण प्रकट हो रहे थे।

दिल्ली को खासतौर पर नगा और मिजो की परेशानी से सरोकार था। वे और इम्फाल स्थित मुख्य आयुक्त इस बात को मानने को तैयार न थे कि मैतेई भी सोते से जाग कर अपनी वास्तविक मुसीबतों और माँगों के लिए आंदोलन करने लगेंगे। वे मैतेइयों को असमियों के मुकाबले बहुत कम करके आंकते थे। वे उन्हें 'लाहे लाहे' (इत्मीनान पसंद) लोग कहते। उन्हें यह समझाना लगभग असंभव था कि ऊपर से शांत दिखने वाले आवरण के नीचे ज्वाला दहक रही है जो निश्चय ही एक दिन भड़क उठेगी।

इन खतरों की आशंका से भरपूर व जख्म खाई जाति में सच्ची और काल्पनिक शिकायतों के बीच की महीन परत राज्य प्रशासन की निरंतर उपेक्षा और कुछ न करने के रवैए के कारण अक्सर लुप्त हो जाती। मैतेइयो को यह महसूस होता था कि उनके राजा को भारत के साथ करार करने को धोखे से राजी किया गया था। वे नगा व मिजो पहाडियो के विद्रोह के परिणामो के प्रति भी सशंकित थे। वे बृहत्तर नगालैंड की मॉंग के विरुद्ध थे। उन्हें भारत के साथ विलय के सभी तरह के फायदों से वंचित रखा गया था। नव साम्राज्यवादी आका, मुख्य आयुक्त और उनके साथ के अधिकारी, मैतेइयो को लोकतान्त्रिक प्रशासन और तीव्र आर्थिक विकास के लायक नहीं समझते थे। उन्होंने अपने व्यवहार का तौर-तरीका अंग्रेज राजनीतिक एजेंटों तथा काबिज फौजों की डायरियों और किताबों से सीखा था। निरंतर उपेक्षा अक्सर संघर्ष का रूप धारण कर लेती है। संघर्ष के इस वातावरण को बल देने वाले तत्वों को दूर करने की विफलता आमतौर पर हिंसा का कारण बनती है। मणिपुर को रियायत पाने के लिए बंगाल या बिहार की हिंसात्मक तरकीबों की नकल करने की जरूरत नहीं थी। उनके पडोसी नगा, मिजो, खासी और गोरोस हिंसा के मार्ग पर चल ही रहे थे। भारत का संवैधानिक संस्थान सामरिक सघर्ष की तीखी ऑंच से झुकना शुरू हो गया था।

मणिपुर भारतीय विशेषज्ञों के, जनसाधारण की बेहतर राजनीतिक सुलूक, आर्थिक विकास व सांस्कृतिक विलयन की, सामान्य लोकतांत्रिक आकांक्षाओं को हिसा की आस्था में बदलने का उदाहरण है। असम ने दो दशक के बाद मणिपुर का अनुकरण किया।

असल में स्वाधीनता बाद के भारत के राजनीतिक व प्रशासनिक शासक हिसा मे आस्था को शिकायतों व समस्याओ को दूर करने के साधन के रूप में उभारने में कामयाब रहे। पहले तो वे लोगों की स्वाभाविक आकांक्षाओं को कुचलने और उनकी उपेक्षा करने में लगे रहते। फिर जब उन का एकत्रित क्षोभ हिंसा के रूप में प्रकट होता तो कानून-व्यवस्था की समस्या की तरह उस का निबटारा करते। राज्य सरकारें और केंद्र सरकार का गृह विभाग जनता के हिंसात्मक वर्ग का मुकाबला करने के लिए पुलिस और अर्द्धसैनिक बल का इस्तेमाल करने में बेहतरी समझते थे। जबकि पहले उनको अपनी स्वाभाविक प्रतीत होने वाली समस्याओं की अभिव्यक्ति के लिए शातिपूर्ण संवैधनिक तरीके के मुकाबले हिंसात्मक रवैया अख्तियार करने को विवश किया जाता था। राजनीतिक व प्रशासनिक ढॉंचे में कहीं न कहीं कोई निहित स्वार्थ था जो शिकायतों के संवैधानिक निबटारे की पद्धति को दबा कर हिंसा की आस्था को उकसाने में लगा था। वे स्वाधीनता बाद की भारतीय जनता के साथ अंग्रेजों वाले रवैए से पेश आ रहे थे, जबकि उसने अपने लिए संवैधानिक व अनेक स्तरों की कानूनी गारंटी का सृजन किया था। राजनीतिज्ञ व प्रशासक कानून-व्यवस्था बहाल करने के नाम पर जनता के खज़ाने को लूट रहे थे। वे न तो जनता की समस्याओं को दूर करने की योग्यता रखते थे और न ही उनकी इस में दिलचस्पी थी।

भारतीय राजनीति की अनगिनत गलतियों में यह सब से बड़ी थी।

<7>

चूर-चूर होते रत्न की कहानी

जब कोई आदमी किसी शेर को मारना चाहता है वह इसे खेल कहता है।
जब कोई शेर उसे मारना चाहता है तो वह उसे क्रूरता कहता है।

बर्नार्ड शॉ, क्रांति के सिद्धांतवाक्य

हिंदू मैतेई समाज में मेरा प्रवेश कई कारणों से आसान हुआ। मैं खुद बंगाली वैष्णव परिवार से था। मैं महाप्रभु गौरंग और श्रीकृष्ण की स्तुति में भजनकीर्तन बहुत अच्छी तरह गा सकता था। वैष्णवों का गौडीय मत (बंगाल का गौड मत) इन्हीं की आराधना में पल्लवित हुआ था। मैतेइयों को गौड संप्रदाय में दीक्षित किया गया था। मुझे महल के मंदिर में जाने और खोल (एक विशेष प्रकार का थपक मार कर बजाने वाला ढोल) बजाने की खुली छूट थी। यह कीर्तन, भजन और विशेष प्रकार के मणिपुरी नृत्य का अभिन्न अंग था।

महाराजकुमार प्रियव्रत , राजकुमार माधुर्यजीत, लेइसराम जयचंद्र सिंह और एम. देवेश्वर देव शर्मा जैसे परंपरागत मैतेई समाज के प्रमुखों व अपने से बडों के साथ मेलजोल बढाने के लिए मैं अपनी वैष्णव उपाधि का पूरा इस्तेमाल करता था।

मैतेइयों युवकों से व्यवहार रखना दिलचस्प था, तो खतरनाक भी। पड़ोसी नगालैंड और लुशाई पहाड़ियों के विद्रोही वातावरण का उन पर दुष्प्रभाव पडा था। पास के चिन, शान, काचिन तथा म्यांमार के सफेद व लाल झंडे वाले कम्यूनिस्टों का स्वाधीनता संघर्ष उन्हें आकर्षित करता था। वे बंगाल के मार्क्सवादी-लेनिनवादी चरमपंथियों की कारगुजारियों और राजकुमार बीर तेजेंद्रजीत तथा कम्यूनिस्ट क्रांतिकारी एच. इराबोट सिंह के कारनामों के किस्सों से बहुत प्रेरित थे। वे मैतेई पुनर्स्थापना आंदोलन से भी प्रेरित थे जो भारत में मणिपुर के विलय की भर्त्सना करता था। वे सनामाही आराधना, मैतेई देवताओं के पौराणिक स्थल कांगला के पुनर्स्थापन और बंगाली लिपि के स्थान पर पुरानी मैतेई लिपि लागू करने के लिए प्रयासरत थे।

मैतेई युवकों में घुसपैठ कोई आसान काम न था। वे भारतीय अधिकारियों पर शक करते थे और उन से डरते भी थे। धीरे-धीरे वे सभी भारतीयों से घृणा करने लगे थे। वे सभी बाहरवालों को 'मयंग' कहते थे। उन्हें इस बात से नाराजगी थी कि असम के बंगालियों और गौहाटी व दिल्ली स्थित सरकारी अधिकारियों ने विष्णुप्रिया मणिपुरियों (कछार व पूर्वी पाकिस्तान में रहने वाले मैतेइयों) को मैतेई जाति का सच्चा प्रतिनिधि मान लिया था।

सांस्कृतिक संघर्ष को अर्थव्यवस्था की दुर्दशा से और बल मिला था। 1968 में अर्थव्यवस्था के नाम पर मणिपुर के पास कहने को कुछ न था। साक्षरता का प्रतिशत तो ऊँचा था लेकिन युवाओं को सामान्य और विशेष क्षेत्रों मे उच्च शिक्षा की सुविधा उपलब्ध न थी। पैसे वाले तो

अपने बच्चों को उच्च शिक्षा के लिए शिलांग, गौहाटी और कलकत्ता भेज देते थे। छात्रवृत्तियां बहुत कम थीं। वे मुख्य आयुक्त के दरबारी विदूषकों तथा बड़े लोगों के बच्चों में बंट जाती थीं।

मुझे एक नाजुक सूत्र से पता चला कि मैतेइयों की जातिप्रथा का आसानी से लाभ उठाया जा सकता है। राजकुमारों और सिंहों का वंश कठोर किस्म का था। वे खुद को थाइयों का वंशज मानते थे। शर्मा और दूसरे सभी ब्राह्मणों को भारतीय या फिर आर्य-थाई संकर माना जाता था।

अपनी विचारधारा के जोश से भरे मैतई युवकों में घुसपैठ करना बहुत मुश्किल था। उनके यूनाइटेड नेशनल लिबरेशन फ्रंट और रेवोल्यूश्नरी गवर्नमेंट ऑफ मणिपुर जैसे क्रांतिकारी संगठनों का संबंध नगा व मिज़ो विद्रोहियों से था। पाकिस्तान की इंटर सर्विसेज इंटेलिजेंस, पाकिस्तान इंटेलिजेंस ब्यूरो तथा डाइरेक्टोरेट ऑफ मिलिटरी इंटेलिजेंस ऑफ पाकिस्तान के एजेंट उन्हें बढ़ावा देते थे।

अभी मैंने काम संभाला ही था कि मेरे पास जिरीबाम की बाहरी चौकी से बहुत सी रिपोर्टें आने लगीं। इन के अलावा जेलियाग्रोंग नगा व पाइते तथा हमार कबीलों के मेरे दोस्तों ने भी फुटकर खबरें भेजीं कि पाकिस्तान ने सिल्हट में कहीं मैतेई युवकों के लिए शिविर लगाया है। मैतेइयों और पाकिस्तान की गुप्तचर एजेंसियों के बीच यह सांठगांठ एक तांगखुल नगा विद्रोही नेता जेड. राम्यो और विधिबाह्य नगा सेना के स्वयंभू ब्रिगेडियर थिनूसिले अंगामी ने कराई थी। ओइनाम सुधीर, अरंबाम समरेंद्र और एन. बिश्वेश्वर पाकिस्तानी संचालकों के संपर्क में थे। मुझे पता चला कि 150 मैतेई युवक ट्रेनिंग के लिए पूर्वी पाकिस्तान गए हैं।

मेरी दिल्ली को भेजी रिपोर्टों को नौसिखिए की अतिरंजना माना जा रहा था। वे तथा मुख्य आयुक्त व उनके सहयोगी मणिपुर क्रांतिकारी सरकार के गठन तथा उसके काडर के पाकिस्तान में प्रशिक्षण पर मेरे विचारों को मानने को तैयार न थे। छोटे ओहदे से तरक्की पा कर इंस्पेक्टर जनरल पुलिस बने मदन गोपाल सिंह मेरी रिपोर्ट को मजाक समझते थे। मध्यप्रदेश से आई.ए.एस. अधिकारी डी.सी. भावे मुख्य सचिव थे। उनके विचार में सिर्फ चार साल के अनुभव वाला एक नौसिखिया ज्यादा होशियार बनने की कोशिश कर रहा था। उन्होंने मेरी बातों को दरकिनार कर दिया। मुख्य आयुक्त ने हड़बड़ाहट की इस प्रतिक्रिया के लिए मेरी खिंचाई की।

कोहिमा स्थित मेरे निकटस्थ बॉस श्री एम.एन. गाडगिल बडे भले आदमी थे। पर मुझे कहना पड रहा है कि वह किसी इंटेलिजेंस टेक्नोक्रेट के काम लायक बिलकुल न थे। वह भी कोहिमा जैसे संवेदनशील स्टेशन के लिए। उन पर मेरे कुशल सहकर्मी जे.एन. राय का बहुत अधिक प्रभाव था। भाग्यवश उनके सहायकों के तौर पर बड़े समर्पित इंटेलिजेंस संचालकों का दस्ता था। इंटेलिजेंस के अंधियारे व गाडगिल के बीच इंटेलिजेंस ब्यूरो का यह कुशल तंत्र था।

एस.आई.बी. की अग्रिम रिपोर्ट आई कि मैतेइ चरमपंथी बैंक डकैतियों का सिलसिला छेड़ेंगे और पुलिस से हथियार छीने जाएंगे। इससे मेरी स्थिति को समर्थन मिला।

मैं शिलांग में था। तभी एस.आई.बी. की चेतावनी के अनुरूप आर.जी.एम. के युवकों ने एक दुस्साहसपूर्ण बैंक डकैती डाली। शिलांग स्थित वरिष्ठ डिप्टी डाइरेक्टर श्री वी.वी. चौबाल उत्तर पूर्व भारत की सभी एस.आई.बी. के पर्यवेक्षण प्रमुख थे। मैं क्षेत्रीय बॉस के साथ एक मीटिंग

में था। तभी मणिपुर के इंस्पेक्टर जनरल पुलिस मदन गोपाल सिह ने चौबाल को फोन किया। उस बातचीत से मेरे बॉस खुश नहीं हुए। उन्होंने मुझे एक कोने मे ले जा कर आर.जी.एम. की गतिविधियों के बारे में सही रिपोर्ट देने के लिए बधाई दी। साथ ही उन्होने मुझे मदन गोपाल सिंह के इस शक के बारे में भी आगाह किया कि मेरे विधिबहिष्कृत मैतेइयो के साथ गुपचुप संबंध हैं। उन्होंने मुझे सलाह दी कि मैं एजेंटों से संपर्क करने और घाटी तथा पहाडियों में होने वाली हरकतों पर नजर रखने के लिए अपने पेशे की तकनीक का पूरी तरह पालन करूँ।

"क्या आप को भी मुझ पर शक है?" मैंने पूछा।

"नहीं। मदन गोपाल मूलतः पुलिस इंस्पेक्टर है। वह अपनी सीमाओं के जख्मों से पीडित है। अगर कोई इंस्पेक्टर किसी एजेट का पीछा नहीं कर पाता तो वह उसके सचालक के पीछे पड जाता है। वह तुम्हारे एजेंटों को जोखिम में डाल सकता है।"

"वाजिब बात है," मैंने कहा,"उससे ज्यादा तो मुख्य आयुक्त मुझे मणिपुर से बाहर फेंकने को आतुर हैं।"

"क्यों?"

"यह लंबी कहानी है। उम्मीद है मैं आप को किसी दिन वह कहानी सुनाने के लिए बचा रहूँगा।"

* * * *

मैतेई समाज में मेरी घुसपैठ अधूरी थी। पर इस समाज के गलत राहों पर चलने के बारे में मेरी खोज गैरपरंपरागत दायरों में चली गई। रिशांग केइशिंग और के इन्वाय दोनों टेंगहुल राजनीतिक नेता थे। के काकुथोन जेलांग्रूंग नगा यूनियन का अध्यक्ष था। इन सब ने बहुत ही मूल्यवान सेवा की। उन्हें मुझ में एक सच्चा हमदर्द मिल गया था। राजनीति के उन शुरुआती दिनों में सीधे-सादे आदिवासी राजनीतिज्ञ एस आई.बी. प्रमुख को केद्र सरकार का सीधा नुमाइंदा समझते थे। अब तो स्थिति उससे उलट हो गई है। अब तो राज्य के राजनीतिज्ञ, दिल्ली के राजनीतिज्ञों और प्रशासकों के लिए छठे या सातवें दशक में एस आई बी. के प्रतिनिधि उनको जो तुच्छ भेंट चढाते थे उसके मुकाबले बहुत भारी सूटकेस ले कर जाते हैं।

दौषी करार दिया गया एक नगा ऑफिसर एल हूँग्यो अचानक प्रकट हुआ और उसने बडी मूल्यवान गुप्त जानकारी देनी शुरू कर दी। मैं एक हमार आदिवासी युवक दिंगलेन सनाटे का भी कृतज्ञ हूँ। वह कॉलेज की पढाई पूरी कर के निकला ही था। वह हमार नेशनल फ्रंटियर फोर्स में अग्रणी था। सोइथांग हमार और थांगकलिंग सनाटे जैसे स्थानीय अधिकारियों ने दिंगलेन की सहायता की।

मैतेई समाज की गलत हरकतों के बारे मे मेरी खोज के अच्छे परिणाम निकले। आर जी.एम. और यू.एन एल.एफ. के कुछ शीर्ष कार्यकर्ताओ को इटेलिजेस ब्यूरो का वैतनिक एजेंट नियुक्त किया गया। उनमें से एक को स्पष्ट निर्देश के साथ पूर्वी पाकिस्तान भेजा गया। वह सिल्हट जिले में श्रीमंगल तथा कुलौरा में आई.एस.आई. द्वारा चलाए जा रहे ट्रेनिंग कैम्पों के बारे में फिल्म का ठोस सुबूत ले कर लौटा।

आर.जी.एम. का एक और शीर्षकर्ता सुदर्शन एक मैतेई लडका था। वह अपनी स्वयंभू सरकार की नीतियों और रणनीतियों के बारे में मुझे निरंतर जानकारी देता रहता था। वह युवक बहुत भावुक था। हमारी मुलाकातें आमतौर पर इम्फाल की बाहरी सीमाओं पर होतीं। इस तरह की गुप्त मीटिंगों के लिए मैं अपनी सरकारी कार का इस्तेमाल नहीं करता था। पूर्व की दूरवर्ती

पहाड की तलहटियों या लोकतक झील के आस-पास के दलदली गाँवों या फिर काकचिंग, थाउबाल और बिशनपुर में इन के लिए मुझे देवकिशोर शर्मा ले जाया करता था।

हालांकि मेरा यह आर.जी.एम.का एजेंट बहुत होशियार था, लेकिन साथ ही वह बहुत उत्तेजित होने वाला, उल्लासी और उग्र स्वभाव का भी था। अक्सर वह देर तक पीने में मस्त रहता। उसे इसकाम के लिए देवकिशोर-सा खुले में पीने वाला साथी भी मिल गया था। मैंने कई बार देवकिशोर और इस एजेंट को हद से ज्यादा पीने के दुष्परिणामों के बारे में समझाया। मुझे इस बारे में कोई शक नहीं था कि यह कुंठित मैतेई युवक सपनों की दुनिया में खोने के लिए शराब और गांजे से बने नशीले पदार्थों का सेवन करता है। मुझे उस पर तरस आता था। पर मैं कोई मसीहा न था। मुझे अपना काम निकालना था। एक इंटेलिजेंस संचालक के रूप में मेरे पास इससे बढ कर हथियार नहीं था कि उसे गले तक भारत में बनी विलायती शराब से भर दूँ। एक भारतीय होने के नाते मुझे यह विकल्प चुनने का पछतावा था। अगर मेरे धंधे की मजबूरी न होती और परिस्थितियाँ विवश न करतीं तो मैं यह रास्ता कभी न चुनता।

मणिपुर के भारत का हिस्सा बनने की ऐतिहासिक अनिवार्यता को समझाने का कोई मौका नहीं छोडा गया और न ही मणिपुरियों के राष्ट्र के भाग्य निर्माण में और हिस्सा लेने की संभावना का पता लगाने में कमी की गई। मेरे खयाल में मैं कुछ विद्रोही और कुंठित युवकों के आदर्श का आवरण भेदने में सफल रहा। पर मेरे पास उन्हें थोडी नकदी और नशीले पदार्थों के अलावा देने को कुछ नहीं था। न तो इम्फाल की सरकार और न ही दिल्ली सरकार मैतेइयों की आकांक्षाओं की पूर्ति के रास्ते पर कुछ कदम भी चलने को तैयार थी, जो यह धारणा बना बैठे थे कि दिल्ली सिर्फ हिंसा की भाषा समझती है। शिकायतें दूर करवाने के लिए अन्य उपाय के अभाव में उनकी समझ में यही बात आती थी।

आर.जी.एम. के शीर्षकर्ता और देवकिशोर शर्मा की कहानी पर लौटें तो मैं बताना चाहूँगा कि शक्की मिजाज आई.जी.पी. मदन गोपाल मुझे घेरने में कामयाब रहे। वह जी भर के हंसे, जब उन की पुरानी तरकीब ने मुझे मात दे दी।

उस दिन 13 जुलाई थी। यही मेरा जन्मदिन भी था। मुझे बालेश्वर प्रसाद ने अपने विशाल राजनिवास पर बुला भेजा। सामाजिक शिष्टाचार में उनका विश्वास न था। खासतौर पर जब मातहतों का मामला हो।

"मेरा खय़ाल है तुम्हारा आतंकवादियों से मेल-जोल है।" उन्होंने किसी सांड की तरह मुझ पर हमला किया।

"आप ऐसा क्यों समझते हैं?"

"तो फिर तुम्हें उन की कार्रवाइयों की खबर पहले से कैसे हो जाती है?"

"इस बात पर तो आप को गर्व होना चाहिए,"मैंने जवाब दिया,"मैं तो आप की सेवा के लिए हाजिर हूँ। मैं आप के प्रशासन की मदद कर रहा हूँ।"

"उनमें से कुछ की मुलाकात मदन गोपाल और एम.के. महंती से कराओ।'

महंती इंटेलिजेंस ब्यूरो का जूनियर ऑफिसर था। वह विलेज वॉलेंटियर फोर्स (वी.वी. एफ.) के प्रशासनिक कामों में मुख्य आयुक्त की मदद करता था। यह आई.बी. और एस.एस. बी. द्वारा गठित नगा मिलीशिया-सी थी जिसे विद्रोही नगाओं से लड़ने के लिए संगठित किया गया था।

"सर, मैं ऐसा नहीं कर सकता।"

"क्यों?"

"गुप्त एजेंटों की साझेदारी नहीं होती।"

"पर वे छीने तो जा सकते हैं, कि नहीं?"

बालेश्वर प्रसाद ने जबरदस्त नाक-भौं चढा कर मुझे विदा किया।

उस रात मेरी जन्मदिन की पार्टी में दो फोन आने से विघ्न पडा। पहला दिल्ली से था। सर्वाधिक अधिकारसंपन्न डिप्टी डाइरेक्टर के.एन. प्रसाद ने मेरे दुराग्रह और प्रदेश के मुख्य आयुक्त के साथ सहयोग न करने के लिए मुझे फटकार लगाई।

दूसरा फोन मणिपुर केंद्रीय जिले के डिप्टी कमिश्नर एस.सी. वैश्य का था।

"धर तुम फंस गए।"

"क्या हुआ, सर?"

"तुम्हारे दो आदमी पुलिस हिरासत में हैं। उन्होंने उनको रिमॉड के लिए मेरे सामने पेश किया है। तुम मेरे यहाँ आ जाओ।"

वैश्य मुझसे चार साल सीनियर थे। वह बडे सज्जन थे। उन्हें अपने दोस्तों से और पीने से बहुत लगाव था। उनका घर बिलकुल पास था। मैं वहाँ तक चल कर गया। वहाँ मैं अपने सब से महत्वपूर्ण आर.जी.एम. एजेंट और देवकिशोर को हिरासत में देख कर भौचक्का रह गया। वैश्य अभी तक अपनी रोज वाली स्कॉच के घूंट लगा चुके थे। पर वह काफी सजीदा थे। उन्होंने पुलिस वालों को पास के कमरे मे इतजार करने को कहा। उन्होंने एक सिगरेट के साथ मेरा स्वागत किया। फिर बताया कि मदन गोपाल ने देवकिशोर पर नजर रखी हुई थी। जब आर.जी.एम. का प्रमुख कर्ता एक धान के खेत में उसे पचास और मैतेई युवकों के पूर्वी पाकिस्तान जाने के बारे में संवेदनशील खबर दे रहा था, तभी उन्होंने उन्हें दबोच लिया।

"अब मैं क्या करूं?" मैंने हैरान-परेशान होकर वैश्य से पूछा।

"पहले अपने आदमियों से बात करो।"

उन्होंने मुझे परदों के पीछे छिप जाने को कहा। फिर एक पुलिस वाले को आदेश दिया कि पहले देवकिशोर को हाजिर करे।

देवकिशोर बासी सेकमई (एक देशी दारू) से बुरी तरह महक रहा था। उसने थोडे में जो बताया उससे मैं हिल उठा। पुलिस वालों ने मेरे शीर्ष आर.जी.एम. एजेंट को फांस लिया था। उन्होंने उसके खिलाफ कुछ डकैती के और एक कत्ल का मामला दर्ज कर लिया था।

फंसा हुआ एजेंट मरा एजेंट होता है। अब किसी भी पेशे के काम के लिए मैं उसे खो चुका था। मैं तो सिद्धांतहीन मदन गोपाल को ले कर अधिक चिंतित था। कोई भी उन्हें आर.जी.एम., यू.एन.एल.एफ. या अखिल मंगोलियन आंदोलन में आई.बी. की पैठ की बात फैलाने से रोक नहीं सकता था। धोखेबाजी में वह यहाँ तक गिर सकते थे कि विद्रोही मैतेई युवकों को मेरा नाम तक बता दें। इससे मेरी, सुनदा की और आई.बी. की कार्रवाइयों की सुरक्षा के लिए बड़ा खतरा पैदा हो जाता।

मैंने वैश्य से अनुरोध किया कि वह देवकिशोर को छोड दें और पुलिस को आदेश दें कि उसके विरुद्ध कोई मामला न बनाए। आर.जी.एम. के जवान लड़के के लिए मैंने अनुरोध किया कि कुछ नर्मी बरतें। उन्होंने मेरी उसके साथ अकेले में मुलाकात करा दी। मैंने उसे हर संभव सहायता के लिए वचन दिया। मैंने यह भी कहा कि उसकी माँ को पैसे की मदद दूँगा।

इस थोडी-सी सद्भावना ने मुझे और सुनंदा को जान माफी दिला दी। इम्फाल जेल से उसने चोरी से एक पत्र लिख कर मुझे आर.जी.एम. और पी.एम.एम. के दो महत्वपूर्ण व्यक्तियों से मिलने की सलाह दी। उसने कहा कि वे मेरे साथ सहयोग करेंगे और सारी गलतफहमी दूर कर देंगे। औचित्य और सुरक्षा के कारण मैं उन दो व्यक्तियों का नाम नहीं देना चाहता जो बाद में उच्च राजनीतिक पदों तक पहुँचे। वे वास्तव में बहुत सहायक सिद्ध हुए। मैतेई विद्रोही संगठन ने मुझे और सुनंदा को निशाना नहीं बनाया और हमारा मैतेई समाज से संपर्क बना रहा।

उस रात मैंने अपनी जन्म दिन की पार्टी छोडी और कूट लिपि में कोहिमा तथा दिल्ली को अपनी मुख्य आयुक्त से मुलाकात, मणिपुर पुलिस द्वारा आई.बी. के एक शीर्ष एजेंट को निष्क्रिय कर देने तथा एक आई.बी. अधिकारी को फांसने का सारा ब्योरा लिखने में तीन घंटे लगाए। उन्होंने मुझे व्यवहार कुशल बनने और तरकीब से काम निकालने की सलाह दी। मैंने उनकी राय को सिर माथे लिया, पर यह समझ नहीं पाया कि कोई किसी उजड्ड पुलिस ऑफिसर के साथ व्यवहार कुशल कैसे हो सकता है।

गुप्तचरी में त्रुटिहीनता कपोल-कल्पना ही है। बडा माहिर और महान गुप्तचर भी अपने पीछे ऐसी अनगढ दरारें छोड जाता है जिनका लाभ उसके विरोधी उठा सकते हैं। एजेंटों से मिलने का कोई त्रुटिहीन तरीका नहीं है। एजेंट और उसके संचालक अधिकारी के बीच ऐसी मुलाकातें होती ही हैं। अकसर एजेंट से रू-ब-रू मिलने के लिए किसी ओट का इस्तेमाल किया जाता है। ये मुलाकातें भौगोलिक स्थितियों, जनसंख्या की जटिलताओं तथा मुलाकात के लिए सुरक्षित स्थान की उपलब्धि पर निर्भर करती हैं। मैं अपने एजेंटों के साथ मुलाकातों और अपने अधिकारियों की सुरक्षा के लिए पर्याप्त बंदोबस्त करता था।

मैंने बालेश्वर प्रसाद से व्यक्तिगत शत्रुता नहीं बढाई। बाद मे मुझे एक विश्वस्त मित्र ने यह भी बताया कि वह के.एन. प्रसाद के करीबी रिश्तेदार हैं। सुनंदा ने मुझे सलाह दी कि मैं अंगारा निगल जाऊँ और मेल-जोल वाला रवैया अपना लूँ। उसकी सोच एकदम सरल थी। मैं उसी पानी में रह कर एक बेरहम मगरमच्छ से लडाई मोल नहीं ले सकता था।

मणिपुर पुलिस मेरे खिलाफ नही थी। मध्यप्रदेश से आए एक एंग्लो-इंडियन पुलिस ऑफिसर टी.जे. क्विन ने मदन गोपाल के धूर्त व्यक्तित्व को संतुलित किया। मणिपुर के पहाडी जिलों में हमारी कार्रवाइयां बहुत शानदार रहीं और हमने इकट्ठे कई जटिल स्थितियों से पार पाया। वह यह चाहता था कि मैं उसके साथ सिर्फ कार्रवाई से संबंधित गुप्त सूचनाएं बॉटूँ। फिर आई.जी.पी. और मुख्य आयुक्त को उनकी लिखित रिपोर्ट भेज दी जाएगी। यह एकदम ठीक तरह चला। मदन गोपाल ने पहाडी विद्रोह में कोई दिलचस्पी नहीं ली। वह यहीं होहल्ला मचाने में व्यस्त रहते थे कि आई.बी. उनके साथ सहयोग नहीं करती।

* * * *

राजनीतिज्ञों की तरफ से मुझे किसी विरोध का सामना नहीं करना पडा। बल्कि वह तो 'केंद्र की आँख कान', यानी मुझे संतुष्ट रखना चाहते थे।

1968-69 की स्थिति आज से बहुत भिन्न थी। तब तक राजनीतिज्ञों और प्रशासकों ने राष्ट्रीय खजाने को खोलने का खुल जा सिमसिम मंत्र नहीं सीखा था। उनमें से बहुत-से पैसे की मदद के लिए छोटे आई.बी. प्रतिनिधियों पर निर्भर करते थे। वह दिल्ली के राजनीतिक आकाओं और शीर्ष प्रशासकों से संपर्क बनाने के लिए भी उन पर निर्भर थे। अब तो स्थिति

उससे एकदम उलट है। अपने दिल्ली और भारत में दूसरी जगहों के समानकर्मियों की तरह ही उन्होंने भी खजाने की चाबी पा ली है। अब तो वे कई करोडपति उद्योगपतियों को भी शर्मिंदा करने की स्थिति में हैं। अब मैं समझ सकता हूँ कि उनको स्थानीय एस.आई बी. प्रमुख की खुशामद करने की जरूरत नहीं है। अब वे दिल्ली में चोटी के राजनीतिज्ञों से ले कर प्रशासकों के सुपर बाजार से जो चाहें खरीद सकते हैं और जितना चाहें खर्च कर सकते हैं। वे दिल्ली सूटकेस ले कर आते हैं। फिर वापस योजनाबद्ध और योजना से बाहर अनुदान और सहायता ले कर लौटते हैं। कोई अंधा भी देख सकता है कि इनमें से अधिकाश अनुदान सीधे इन तिकडमी पैसा बनाने वालों की तिजोरियों में जाता है। भारत में गरीबी दूर करने और जनता का जीवन-स्तर सुधार कर सभ्य समाज के समतुल्य बनाने के लिए चलाई जा रही विकास की कार्रवाइयों को इसी तरह लागू किया जाता है। सभी जानते हैं कि भ्रष्ट राजनीतिज्ञों और प्रशासकों की बदौलत भारत सरकार का बहुत-सा अनुदान विद्रोहयों और आतंकियो के पास भी पहुँच जाता है।

खैर जो कुछ भी है। हमारी राज्य प्रशासन में घुसपैठ करने की तरकीब काम आई। हम ने चुनिंदा राजनीतिज्ञों और लगभग सभी प्रमुख अधिकारियो को रात के खाने-पीने के लिए बुलाना शुरू किया। इससे हमारे बहुत से दोस्त और हमदर्द पैदा हो गए। इससे आई जी.पी. की हरकतों का जवाबी संतुलन हो गया। यहाँ से शुरू हो कर मैंने पुलिस मुख्यालय के अंदर, उसके आसपास तथा मणिपुर सरकार के कई मुख्य विभागों में एजेंट बनाने शुरू कर दिए। इसके बाद मेरे पास अपने प्रशासन व पुलिस में 'दोस्तों' के कारण पूर्व चेतावनी की कमी न रही। इसका खर्चा आई.बी. के गुप्त कोष से पूरा हो जाता था। शराब सेना की कैंटीन से सस्ती मिल जाती थी। 1968-69 में मणिपुर में चीजे बहुत सस्ती थी।

मैं मानता हूँ कि यह शर्मनाक हरकत थी, पर मजबूरन मुझे दो उद्देश्यो से मणिपुर प्रशासन के अदर एजेंट बनाने पडे। एक तो यह कि मुझे आई.जी पी. के मसूबों के बारे में चेतावनी मिलती रहे, दूसरे कुछ सरकारी अधिकारियों और पहाड के विद्रोहियों के बीच संबंधों की जानकारी मिले। इस दांव को खेलने के बहुत अच्छे परिणाम मिले।

मेरा दृढ विश्वास है कि आज की स्थितियों में भी इटेलिजेंस कार्रवाइयों के लिए इस तरह के एजेंट बनाना बहुत जरूरी है खासतौर पर जल्दी-जल्दी बदलने वाली और गठबंधन की सरकारों के इस माहौल में। आई.बी. को माफिया की खोज सिर्फ दिल्ली और मुंबई की पिछवाडे की गलियों में ही नहीं करनी चाहिए बल्कि राजनीतिक ढांचे के अंदर प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति की कुर्सी के आस-पास भी करनी चाहिए। बहुत से माफिया से राजनीतिज्ञ बने लोग चिराग तले के अंधेरे में ही अपनी हरकतें करते हैं। इनमें से ज्यादातर वे और उनके प्रशासनिक सहायक संवैधानिक तंत्र और कानूनी ढांचे की सुरक्षा में ही काम करना बेहतर समझते हैं।

राज्य और केंद्रीय गुप्तचर एजेंसियों के बीच तालमेल व सहयोग के विषय में यह एक खेदजनक टिप्पणी थी। हमें एक साझी धुरी बनाने का अवसर नहीं दिया गया। राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद बन जाने और बहुएजेंसी गुप्त सूचना की साझेदारी की कोशिशों के बावजूद आज भी पद्धति में इस तरह की खामियाँ हैं।

दरअसल, कानूनविदों, प्रशासनिक विशेषज्ञों और विवेकी राजनीतिज्ञों को चाहिए कि वे केंद्र-केंद्र में और केंद्र-राज्य में गुप्तचर संगठनों के बीच बेहतर तालमेल के लिए प्रक्रिया आरंभ करें। सेना की एजेंसियों सहित अधिकतर इंटेलिजेंस व सुरक्षा एजेंसियाँ अकेले काम करती

हैं। गुप्तचर समुदाय अपने रहस्य इस तरह छिपाता है जैसे कोई बनिया अपनी काली कमाई को। वर्तमान आदान-प्रदान और समन्वय की कार्यपद्धति दिखावा मात्र है। इस मामले का निबटारा संसद के किसी समुचित कानून से ही किया जा सकता है जिस मे इन संगठनों को जनता और राष्ट्र के प्रति जवाबदेह बनाया जाए। वरना हमे बहुत-से पुरुलिया, करगिल और हिल काकास का सामना करना पडेगा। समितियों का गठन करके यह हासिल नहीं किया जा सकता।

भ्रष्ट और डरे हुए दिमागों को हमेशा लगता है कि शत्रु उनकी आत्मा पर प्रहार कर रहा है। इस प्रकार के भय अपराधबोध से पैदा होते हैं। अगर वे सत्ता में है तो वे प्रतीत होने वाले शत्रुओं के लिए अलंघ्य कठिनाइयॉं उत्पन्न करते हैं। मेरी क्षेत्रीय सरकार के साथ उठा-पटक आर.जी.एम. वाले मामले पर ही खत्म नहीं हुई। विरोध का वातावरण लगातार मेरा पीछा करता रहा। इन काल्पनिक शत्रु खोजने वालों ने दो और घटनाओ पर काफी बवाल खडा किया।

विलेज वॉलंटियर फोर्स (वी वी एफ) एक तरह का मिलीशिया थी जिसका गठन आई बी और विशेष सेवा ब्यूरो (एस.एस.बी.) ने किया था। इसका वेतन गुप्तचर ब्यूरो के गुप्त फड से दिया जाता था। खर्चे का नियंत्रण मुख्य सचिव के हाथ मे था। सभी भुगतान उनके छोटे से प्रबंधन के माध्यम से होते थे जो एकदम उनके निजी नियंत्रण में था। मुझे हर महीने आई बी. से एक चैक मिलता था जिसे मैं भुना कर मुख्य सचिव के हवाले कर देता था। वह हिसाब रखते थे और एक सामान्य प्रयोग प्रमाणपत्र देते थे जो मैं आई बी. मुख्यालय को भेज देता था।

उखरूल, तामेंगलौग तथा मओ जिलों में कुछ वी वी एफ शिविरो के नगा विद्रोहियो द्वारा अतिक्रमण की बुरी घटनाएँ घटी। कुछ वी वी.एफ वॉलटियर पलायन भी कर गए। इससे खतरे की घंटी बजी। मुझे दिल्ली से आदेश मिला कि सारे मामले की अकेले तहकीकात कर के संबंधित ज्वाइंट डाइरेक्टर को सीधे रिपोर्ट करूँ।

इस तहकीकात के सिलसिले में मुझे और सुनंदा को मणिपुर के विद्रोहग्रस्त अंदरूनी नगा इलाकों में जाना पडा। नगा समुदाय के अगुआ रिशांग केशिंग (पूर्व मुख्यमंत्री), के. एन्वी, तांगखुल, असोली मओ, के. काकुथोन और मोनो मयाल ने तत्काल मेरी सहायता की। हम आमतौर पर गॉव के स्कूल में ठहरते। 'खलाकपास' (गाँव के मुखिया) को रम के क्रेट भेट करते, गॉव के गिरिजाघर को चदा देते तथा अक्सर नाच व दूसरे आमोद-प्रमोद में हिस्सा लेते। इससे हमें गाँव वालों से मेल-जोल बढाने और मुखबिर बनाने में मदद मिली।

उखरूल में सोरापहग गॉव के मुखिया ने सुनंदा और मेरा अपूर्व सम्मान किया। उसने हमें अपना बेटा और बहू बना लिया। उसने हमें परपरागत नगा शाल ओढ़ाए। फिर हौबेडा की लकड़ी के बने 'खलापका' के प्याले से हमें मधु (चावल की मदिरा) का घूँट भरने दिया। एक मोटे बॉस के तने में पकाया गया चावल का केक काटने का सम्मान सुनदा को दिया गया। इसका अजीब-सा स्वाद था। लेकिन हमने अपने मुंह बिगाडे नहीं और मुस्कराते रहे।

करीब एक महीने में मैंने वी.वी.एफ. अधिकारियों के कुप्रबंध के बारे में काफी जानकारी इकट्ठी कर ली। मेरी रिपोर्ट में यह निश्चित तथ्य सामने आया कि वी.वी. एफ. में प्रतिनियुक्ति पर आए आई.बी. अधिकारी आर.के. मोहंती और मुख्य आयुक्त के बीच कुटिल सांठगांठ थी। वे वी.वी.एफ. के अनुदान में से मोटी रकम आपस में बाँट लेते थे।

मेरी सिफारिश पर दिल्ली ने वी.वी.एफ. के मामले देखने और अन्य सभी सुरक्षा कार्यों के लिए एक सुरक्षा आयुक्त का पद बनाया। श्री एम. रामुन्नी रॉयल एयर फोर्स के भूतपूर्व अधिकारी थे। उन्हें आई.ए.एस. में अधिकारी के तौर पर लिया गया था। उन्होंने मणिपुर सरकार के पहले सुरक्षा आयुक्त के रूप में पदभार संभाला। रामुन्नी एक निष्कपट और काम से काम रखने वाले फौजी थे। उन्होंने मेरे साथ वी.वी.एफ अधिकारियों की गुप्त सेवा कोष में घपलेबाजी के बहुत से सुबूत बाँटे।

मेरी दिल्ली भेजी गई रिपोर्ट को मुख्य आयुक्त तक पहुँचने में अधिक समय नहीं लगा। उन्होंने मुझ पर जवाबी अभियोग लगाए कि मैंने चुराचादपुर और मोरेह क्षेत्रों में भारत-बर्मा सीमा पर के खभो को इधर-उधर किया है। ये अभियोग अस्पष्ट और अनिश्चित थे।

सीमा के दोनों ओर के ग्रामीण 'झूम'(स्थानांतरण) खेती पर निर्भर करते थे। वे जंगल के कुछ भागों को जला देते। फिर वहाँ चावल, बाजरा और मक्का की बुआई करते। गावों के मुखिया अक्सर जिला प्रशासन की पीठ पीछे 'झूम' का स्थान चुनते। वे अपनी साल की फसलों के चक्र के हिसाब से जगह चुनते और इसके लिए खंभो को आगे-पीछे करते रहते थे। एस बी.आई ने इन रिर्पोटों का संज्ञान लिया और उसी के अनुसार दिल्ली को भी खबर कर दी थी। मुख्य आयुक्त को भी यह जानकारी दे दी गई थी।

पर उन्हें मेरी पीठ में छुरा घोंपने मे सकोच नहीं हुआ।

मैने उखरूल, तेगनूपाल और चुराचादपुर जिलो के कुछ हिस्सो मे हरकते करने वाली भूमिगत नगा सेना की 9वी व 10वी बटालियन की सारी कमान और कर्मियों को बातचीत कर के आत्मसमर्पण के लिए राजी किया था। यह बातचीत बडी कठिन स्थितियों में हुई थी। इस-में हमने एक नगा महिला की मदद ली जो मेरे एक सिपाही पर मर मिटी थी। वह विधिवहिष्कृत नगा सेना बटालियन के एक कमॉडर की बहन थी। सुनंदा ने इस महिला को राजी करने में मेरी बहुत मदद की। साइमी (असली नाम नहीं) को हमारे घर आने की खुली छूट थी। सुनंदा उसे हमारे ड्राइग या डाइनिग रूम मे बैठाने में संकोच नहीं करती थी।

काफी लंबे पत्र-व्यवहार के बाद दिल्ली ने कार्रवाई को अंतिम रूप देने और नगा सेना की यूनिटो को मुख्य आयुक्त के सामने आत्मसमर्पण करने की अनुमति दी। मेरी इच्छा थी कि आत्मसमर्पण जाकाहामा स्थित 8वीं पहाडी डिवीजन के जी.ओ सी. के समक्ष हो। जनरल जोरावर बक्शी को सूचना दी गई तो उन्होंने इस विचार का स्वागत किया। लेकिन दिल्ली इस बात पर अडी रही कि आत्मसमर्पण मुख्य आयुक्त के सामने ही होगा। लिहाजा मैंने विधिवत स्थानीय बॉस को रिपोर्ट दी और सूचित किया कि आत्मसमर्पण एक तलहटी के गॉव चापकीकरांग में स्वाधीनता दिवस से एक दिन पहले 14 अगस्त को होगा।

जिस सिपाही ने सियामी से शादी की थी उसने 13 अगस्त की रात को मुझे सोते से जगाया। उसने बडी अजीब कहानी सुनाई। वी वी एफ. और मणिपुर राइफल्स की एक बडी सैन्य टुकडी ने नगा सेना की 9वीं और 10वीं बटालियन के शिविर को घेर कर उन्हें हैरत में डाल दिया था। उन्होंने कमान अधिकारियों तथा कुछ सिपाहियों को गिरफ्तार कर लिया था और उनके हथियार कब्जे में ले लिए थे। शस्त्रास्त्रों की सूची काफी प्रभावशाली थी। इसमें 5 हल्की मशीनगनें, 6 राकेट लांचर, 20 कारबाइनें और 25 अलग-अलग किस्म की राइफलें थीं। 'क्या मैं कुछ मदद कर सकता हूँ?' उसने पूछा। मैं कुछ मदद नहीं कर सकता था क्योंकि

दिल्ली ने मेरी इस मामले मे हस्तक्षेप करने और मुख्य आयुक्त को समझाने की मेरी प्रार्थना पर कोई ध्यान नही दिया।

सुनदा और मुझे बदले हालात से बडा झटका लगा जब के एन प्रसाद को मेरे खिलाफ आरोप की जाँच करने का काम सौंपा गया। पहली बार मैने उसे विश्वास और भाग्य के बीच हचकोले खाते देखा। उसने यह भी सलाह दी कि मैं वापस अपने राज्य काडर पश्चिम बगाल को भेज दिए जाने के लिए कहूँ। चार साल से कुछ ही अर्सा ज्यादा के सेवाकाल के कारण मै भी कुछ भ्रमित-सा था। किसी मार्क्सवादी मत्री से झगडना एक अनाडी की अभद्रता थी। प्रसाद का सामना करना आत्महत्या करने के समान था। उन की तलवार आम अनुशासन की कार्रवाई से कही ज्यादा धारदार थी और वह मुख्य आयुक्त के रिश्तेदार भी थे।

मुझे प्रसाद की पेशे की कुशलता पर जरा भी सदेह न था। मै सिर्फ यह मना रहा था कि उनका मुख्य आयुक्त के यहाँ ठहरना कही उनके निर्णय पर विपरीत प्रभाव न डाले। मेरे खयाल मे उन्होने आई जी पी मुख्य सचिव और कुछ अन्य अधिकारियो से कई बैठके की। केद्र शासित मणिपुर के मुख्यमत्री ने दिल्ली के प्रतिनिधि से मिलने का मौका गवाया नही।

के एन प्रसाद मेरे साधारण-से दफ्तर मे आए। उन्होने दो घटे तक मुझ से पूछ-ताछ की और जो कुछ जानना चाहते थे सब उगलवा लिया। उन्होने मुख्य आयुक्त के आरोपो के बारे मे कुछ छोटे अधिकारियो से भी पूछताछ की। अत मे उन्होने सडक पार मेरे घर पर मेरी पत्नी से मिलने की इच्छा प्रकट की।

सुनदा को पता था कि प्रसाद ने भी वही कोर्स किया हुआ है जो उसके पिता ने किया था। उसने इस सक्षिप्त औपचारिक आगमन को स्नेह भरा बनाने की पूरी कोशिश की। फिर उसने उनको हमारे यहाँ रात का खाना खाने का निमत्रण दे डाला।

यग लेडी, मै तुम्हारे साथ खाना कैसे खा सकता हूँ, जबकि मै तुम्हारे पति के खिलाफ जाँच कर रहा हूँ?" प्रसाद ने अपने खास रोबीले अदाज मे कहा।

"तो फिर आप किसी ऐसे आदमी के घर मे मेहमान कैसे है जो इस विवाद का एक पक्ष है? सुनदा ने अपने प्रफुल्लित स्वर मे पूछा। मैं उसके जवाब और शब्दो के चयन से हैरान रह गया।

'तुम सत्येन की बेटी हो ना? 'प्रसाद ने पूछा।

' जी हाँ, पर इसका मेरे अनुरोध से कोई सबध नही है। अगर आप हमारे साथ रात का भोजन करे तो हमे खुशी होगी।

प्रसाद ने कुछ देर अपनी बडी पुतलियाँ घुमाईं और फिर ठठा कर हस पडे। यह पहली और आखिरी बार था, जब मैने उन्हे इतने जोर से हसते देखा।

'ठीक है, यग लेडी, तुम्हारे घर पर डिनर खाने मे मैं गौरव महसूस करूगा।

बाद मे कलकत्ते के लिए विमान पकडने से पहले प्रसाद मुझे एक कोने मे ले जा कर बड़े सधे हुए लहजे में बोले।

"देखो, इस आदमी के गृह मत्रालय के कुछ चोटी के अधिकारियों और मत्रियो से सपर्क हैं। दिल्ली अनिश्चयात्मक स्थिति मे है। प्रधानमत्री के रुख के बारे मे हम आई बी वाले निश्चित रूप से कुछ नहीं जानते। वह अगले महीने उत्तरपूर्व आ रही हैं। मुख्य आयुक्त के साथ चुपचाप सहयोग करो। मुझे उम्मीद है यह तूफान जल्दी ही थम जाएगा।"

"अगर आई.बी. समझती है कि मेरी गलती है तो आप मुझे वापस मेरे राज्य को भेज सकते हैं।"

"खामोश। तुम बहुत ही अच्छा काम कर रहे हो। इसे जारी रखो।"

प्रसाद मुझे और भी चक्कर में डाल कर चले गए। एक नौसिखिया होने के नाते मुझे अपनी जवाबदेही की छाप अभी छोडनी थी जो अस्पष्ट थी। मैं अभी अपने आस-पास की घटनाओं को अनेक रंगों में परावर्तित करने वाले प्रिज्म में से छानना सीख रहा था। उन दिनों में एक रंग और दूसरे रंग की घटना का कोई स्पष्ट क्षितिज भी नहीं होता था। मानव स्वभाव के जटिल रंगों को समझने में मुझे बरसों लगे। असल में मणिपुर ने मुझे अपने व्यक्तिगत एजेंडे को आगे बढ़ाना सिखाया। इसमें मेरे व्यक्तिगत पैनेपन में वृद्धि करना और अपने लिए राजनीतिक ठौर बनाना शामिल था। यह बात मेरी समझ में आ गई कि मुझे अपनी नौकरी में बने रहने और आगे बढने के लिए कुछ प्रशासनिक और राजनीतिक प्रश्रय की आवश्यकता है। एक क्षेत्रीय संचालक में आए इस परिवर्तन को इंटेलिजेस ब्यूरो नहीं भांप सका।

* * * *

अपने विरुद्ध इस विचित्र जाँच के बाद हम ने मओ के एक वीरान-से डाकबंगले में थोडा विश्राम करने का मन बनाया। यह नगा नेता अंगामी जाफू फिजो के गाँव के पास, सब से ऊँची चोटी जाफू पहाडी के नीचे था।

मओ मुझे कई कारणों से आकर्षित करता था। सुनंदा और मैं जाफू पहाडी के ऊपर की ओर सैर का आनद लेते या फिर नीचे की ओर रूवूनामेई, कालीनामेई, ग्राम-समूहों की ओर घूमते। वहाँ हम मओ सांगसांग गिरजाघर के नीचे बैठ कर धान के खेतों में काम करती ग्रामीण युवतियों को देखा करते। हमें नगा विद्रोहियों का कोई डर न था। उन सुनहरे दिनों में नगा विद्रोही और मैतेई लडके भी युद्ध के नियमों का सख्ती से पालन करते थे। वे नागरिकों पर हमला नहीं करते थे। किसी महिला को तो कभी तंग नहीं करते थे। कोई भारतीय यात्री, अकेला या किसी महिला के साथ अत्यंत उपद्रवग्रस्त नगा क्षेत्र में कलकत्ता की सडकों की अपेक्षा अधिक सुरक्षित था।

इसके अलावा मैंने अध्यापक से स्कूल इंस्पेक्टर बने एन. अशोली तथा रूवूनामेई के एक और सज्जन जो नगा संघीय सरकार के मिदनपूयू (गवर्नर) थे के माध्यम से मओवासियों का विश्वास जीत लिया था। हमारी दोस्ती पेशे के दायित्व से आगे बढ गई थी। इस बात की जानकारी ने कि नगा सामाजिक दृष्टि से अधिक शिष्ट और सज्जन होते हैं और गॉव के मेहमान के साथ अत्यंत भद्रता का व्यवहार करते हैं, मुझ में विचित्र सा विश्वास भर दिया था।

वे दो दिन बहुत आमोद-प्रमोद भरे गुजरे। गॉव के नर्तकों की टोली और कालीनामेई गिरिजाघर के बडे भोज ने हमें दोहरा विश्राम दिया।

हमारे शरीर और आत्मा को पूरा विश्राम मिला था। लेकिन इन जंगलों वाली पहाडियों और पुरातन गाँव का आकर्षण अगली सुबह भंग हो गया जब कोहिमा से आए एक संदेशवाहक ने हमारा दरवाजा खटखटाया। वह मेरे तुरंत इम्फाल लौटने का आदेश ले कर आया था। वहाँ मुझे राजनिवास में सुरक्षा निर्देशों की बैठक में भाग लेना था। इसके लिए आई.बी. के एक वरिष्ठ अधिकारी आ रहे थे। यह महत्त्वपूर्ण अवसर था 23 सितंबर 1969 को इंदिरा गाँधी की इम्फाल की प्रस्तावित यात्रा।

<8>

चित्रांगदा से धोखा

ढोंग आलीशान वादे कर सकता है। उसका इरादा वादों से आगे कुछ करने का जो नहीं होता। इसका कोई मोल नहीं लगता।

एडमंड बुर्के

सुरक्षा की स्थिति में कुछ भी संतोषजनक नहीं था। इम्फाल घाटी और आसपास की पहाडियां, दोनों में आग लगी थी। मैतेइयो ने अखिल मंगोलियन आदोलन, मणिपुर क्रांतिकारी सरकार और यूनाइटेड नेशनल लिबरेशन फ्रंट के नाम से विद्रोह का झडा बुलद करने के अलावा मणिपुर को राज्य का दर्जा दिए जाने की मॉग को ले कर अनेक शांतिपूर्ण व लोकतांत्रिक आंदोलन भी छेड रखे थे। 1949 मे भारत मे विलय के पश्चात भूतपूर्व रियासत अभी भी एक केंद्र शासित प्रदेश की तरह एक मुख्य आयुक्त द्वारा शासित थी। उसका प्रशासन का ढर्रा वही था जो तीस या चालीस के दशक में ब्रिटिश एजेंटों का होता था। मैतेई जनता के एक वर्ग ने अभी भी विलय को स्वीकार नहीं किया था। उनका तर्क इन तथ्यों पर आधारित था कि मणिपुर नरेश को दबाव दे कर शिलांग में विलय के करार पर हस्ताक्षर करने को बाध्य किया गया था। वह संवैधानिक दृष्टि से राज्य के सर्वोच्च थे पर उनको राज्य की प्रभुसत्ता को हस्ताक्षर कर के सौंप देने का कोई अधिकार नही था। बाद में राज्य विधानसभा या मंत्रिमंडल द्वारा उस करार की पुष्टि भी नही हुई थी।

प्रजा शांति सभा ने जिस मंत्रिमंडल का गठन किया था उसे भग कर दिया गया था और मणिपुर पर बर्बरतापूर्वक एक मुख्य आयुक्त लाद दिया गया था। मणिपुर के हितों की उपेक्षा हुई थी और उसे एक तृतीय श्रेणी के राज्य का दर्जा दिया गया था।

पडोसी नगाओं के साथ भिन्न व्यवहार किया गया था। 1 दिसबर,1963, को भारत के राष्ट्रपति ने नगा पहाडियों तथा तुएनसांग क्षेत्र का भारतीय सघ के 16वें राज्य के रूप में उद्घाटन किया था। खासी, जयंतिया, तथा गारो पहाडियो में उभरती स्थिति से भी कुछ ऐसा ही संकेत मिलता था कि दिल्ली असम के वर्तमान राजनीतिक भूगोल में से एक और राज्य बनाने की तैयारी में है। यह दर्जा अंततः 1972 में दिया गया। 1965 के पाकिस्तान के साथ युद्ध के बाद संयुक्त पंजाब में से हिमाचल प्रदेश और हरियाणा भी बनाए गए और इस तरह बाकी बचा पंजाबी सूबा रूठे सिखों को मिल गया।

मैतेइयों को उस समय बहुत तकलीफ हुई जब राज्य पुनर्गठन आयोग ने उनकी दलीलों को नजरअंदाज कर के इस गर्वीले राज्य को केंद्र शासित प्रदेश का दर्जा दिया और उसके लिए एक क्षेत्रीय समिति बना दी जिसने दरअसल मुख्य आयुक्तों के लिए पायदान बन कर उनकी सेवा करनी थी।

राज्य के दर्जे के लिए आंदोलन इन वर्षों में और भी कटु हो गया था। मैतेई लड़ाकू गुटों और पड़ोस के नगालैंड, मणिपुर के नगा क्षेत्र व मिजो पहाडियों में हिंसा के वातावरण ने इस पर और भी रंग चढा दिया था।

इंदिरा गाँधी मणिपुर आने वाली दूसरी प्रधानमंत्री थीं। उनके पिता 1950 में बर्मा के प्रधानमंत्री यू नू के साथ इस तृतीय श्रेणी के राज्य में पधारे थे। उस दौरान एक करार पर हस्ताक्षर हुए थे। इसके मुताबिक कबाऊ घाटी बर्मा को सौंपना तय हुआ था। यह वास्तव में बर्मा के अधिकार में थी पर उस पर मणिपुर का ऐतिहासिक दावा था। बर्मा की उपजाऊ चिन पहाडियों के मैदान तक जाने वाली इस घाटी से मैतेइयों को रागात्मक और ऐतिहासिक लगाव था।

वे इंदिरा गाँधी को संदेह की दृष्टि से देखते थे। वे इम्फाल के राजनिवास स्थित उनके प्रतिनिधि से घृणा करते थे। एम.कोइरंग सिंह के नेतृत्व वाली कांग्रेस पार्टी भी संकट में थी। वह अपने आप को राजनिवास के शासक और उनके चहेते ऑफिसरों से अलग रखने में असफल रहे थे। भारतीय राष्ट्रीय सेना के पूर्व सहचर कोइरंग सिंह समझते थे कि वह भी उसी मिट्टी के बने हैं जिसके पंजाब के पी.एस. कैरों और पश्चिम बंगाल के बी.सी. राय बने हैं। बहरहाल वह जनता का रुख पहचानने में चूके नहीं। आल मणिपुर स्टूडेंट्स यूनियन युवाओं का सशक्त संघ था। उसने उन्हें पहले ही नोटिस जारी कर दिया था। उनके मंत्रिमंडल के कुछ सहयोगी और कुछ विधायक उनके नेतृत्व के विरुद्ध विद्रोह करने के कगार पर थे। वे परिवर्तन चाहते थे।

मणिपुर समिति के दिनों से ही राजनीतिक दृष्टि से मणिपुर अस्थिरता से ग्रस्त था। हालांकि हरियाणा आयाराम-गयाराम की राजनीति के लिए बदनाम हुआ लेकिन मणिपुर भी भूखे राजनीतिक गीदडों से भरा पडा था। सत्ता के जरा-सा डांवाडोल होने की गंध मिलते ही या सिक्के की एक उछाल पर ही वे दल बदलने को तैयार रहते थे।

एम. कोइरंग सिंह की बहुत कम बहुमत वाली कांग्रेस सरकार खरीद फरोख्त के कई दौर के बाद बनी थी। वह विश्वासघात और धोखे की नींव पर खडी थी। दलबदल के एक और दौर ने कमजोर मंत्रिमंडल को हिला कर रख दिया। वाई. याइमा सिंह के नेतृत्व में विपक्ष ने अविश्वास का प्रस्ताव रखा जिसे 24 सितंबर, 1969, को चर्चा के लिए स्वीकार कर लिया गया।

राज्य में माहौल अच्छा नहीं था। राज्य के लिए आंदोलन संगीन हालत को पहुँच चुका था। आल मणिपुर स्टूडेंट्स यूनियन (ए.एम.एस.यू.), सर्वदलीय राज्य माँग समिति तथा अन्य संगठनों में मैतेई राज्य समिति, कांसोकोम, उल्फा, आर.जी.एम., अखिल मंगोलियन आदोलन, अखिल मंगोलियन युवा लीग तथा अन्य छोटे या बडे राजनीतिक बलों ने घुसपैठ कर ली थी।

घाटी के क्रांतिकारी प्रधानमंत्री पर शारीरिक हमला करने की तैयारी में नहीं थे। पर वे राज्य के लिए चल रहे आंदोलन का पूरा-पूरा फायदा उठाना चाहते थे। मेरे एजेंट इस तरह की कोई गुप्त सूचना नहीं लाए जिससे पता चले कि क्रांतिकारी इंदिरा गाँधी की हत्या का षडयंत्र रच रहे हैं। बाद में इस तरह के किए गए दावे 23 सितंबर की घटना पर आधारित थे। अनबन और मतभेद की धुनें भी अब वहाँ एक ही राग गा रही थीं। जब तक वह राज्य का दर्जा देने का फैसला नहीं करतीं, मणिपुर उनका स्वागत नहीं करेगा।

निरंतर सैनिक व अर्द्धसैनिक कार्रवाइयों के बावजूद पहाडों से अब भी खून बह रहा था। विद्रोह के वातावरण को मणिपुर और असम के नगा बहुल क्षेत्रों को मिला कर बृहद नगालैंड बनाने की माँग ने और बल प्रदान किया था। एन.एन. सी., एन.एफ.जी. तथा नगा संघीय सेना में मौजूद मणिपुरी तत्वों ने स्पष्ट कर दिया था कि उखरूल में इंदिरा गाँधी के प्रस्तावित आगमन का स्वागत नहीं होगा। ए.जेड. फिजो के भूमिगत अनुयायी जबरदस्त प्रदर्शन करने पर आमादा थे।

एक वरिष्ठ डिप्टी डाइरेक्टर सुधीन गुप्ता आई.बी.के प्रतिनिधि के रूप में एक व्यक्ति के अग्रिम सुरक्षा संपर्क अधिकारी की हैसियत से इम्फाल पहुँचे। उन्हें इंदिरा गाँधी की इम्फाल और उखरूल की यात्रा से संबंधित सुरक्षा प्रबंधों का अध्ययन करना था। गुप्ता उखडी उखडी निगाहों वाले लगे, जैसे उनकी अति महत्वपूर्ण व्यक्ति की यात्रा से संबंधित सुरक्षा की बारीकियों में दिलचस्पी न हो। मुझे लगा कि वह इस काम के लायक नहीं हैं।

मुझे सुरक्षा संपर्क की औपचारिक बैठकों से अलग रखा गया। लेकिन मैंने संभावित कानून-व्यवस्था की स्थिति पर दिल्ली जो टेलीप्रिंटर संदेश और लिखित संवाद भेजे थे, उनकी प्रतियाँ आई.जी.पी., मुख्य सचिव, सुरक्षा आयुक्त एम. रामुन्नी, डी.आई.जी. टी.जे. क्विन और क्रमशः चुराचांदपुर व लीमांखेंग स्थित 57वीं एवं 59वीं ब्रिगेड के कमांडरों को दी गईं।

मेरी मेहनत का पुरस्कार मुझे मुख्य आयुक्त के कार्यालय से एक रुखाई भरे फोन के रूप में मिला, जिस में मुझे वहाँ 11 सितंबर को मीटिंग में भाग लेने के लिए बुलाया गया था। मैं पूरी तैयारी के साथ वहाँ गया। मेरे पास राजनीतिक स्थिति का विस्तृत अनुमान, सरकार की नाजुक हालत और नगा विद्रोहियों व घाटी के उग्रवादियों व आंदोलनकारियों के कारण खतरे के बारे में ब्योरा था। इस महत्वपूर्ण बैठक में शीर्ष सरकारी अधिकारियों के अतिरिक्त 59वीं पहाड़ी ब्रिगेड के कमांडर, ब्रिगेडियर एस.के. सिन्हा (अब जम्मू-कश्मीर के राज्यपाल), मौजूद थे।

पुलिस के इंस्पेक्टर और डिप्टी इंस्पेक्टर जनरल ने अति विशिष्ट व्यक्ति के आगमन से संबंधित पुलिस, अर्द्धसैनिक व सैनिक तैयारियों पर संतोष व्यक्त किया। ब्रिगेडियर सिन्हा ने चुराचांदपुर और उखरूल के पहाडी जिलों में, जहाँ प्रधानमत्री को संक्षिप्त दौरे पर जाना था, सुरक्षा-व्यवस्था कडी किए जाने के बारे में मीटिंग में जानकारी दी।

इसके बाद मुख्य आयुक्त ने मेरे दिए नोट्स उठाए और लगभग सभी बातों पर असहमति दर्शाई। असल में उनको आई.बी. की रिपोर्ट पर खुली मीटिंग में चर्चा ही नहीं करनी चाहिए थी। शायद एक गुप्तचर की बात अकेले में सुनने के परंपरागत नियम के बनिस्बत उनके दिमाग पर मेरा मखौल उड़ाने का विचार ज्यादा हावी हो रहा था। जब मैंने जॉन्स्टन हाई स्कूल के पास, भीड-भाड वाले बाजार के साथ, पोलो ग्राउंड में सभा करने का विरोध किया तो वह आपे से बाहर हो गए। मैंने स्पष्ट किया कि सभास्थल को जाने के लिए एक ही संकरा रास्ता था और किसी भी आपद्काल में प्रधानमंत्री को वहाँ से निकालने के लिए बाहर जाने का कोई चिन्हित मार्ग नहीं था। मैंने राय दी थी कि सार्वजनिक सभा खाली पडी कोइरांगेई हवाई पट्टी पर की जाए।

बातचीत कुछ इस तरह हुई :

"तुम राज्य के मामलों में दखल दे रहे हो।"

"यह कोई दखलंदाजी नहीं। मैंने कुछ सुझाव दिए हैं। यह आप पर और दिल्ली पर निर्भर करता है कि वह उन्हें अस्वीकार कर दें।

"तुम दहशत फैलाने वाले व्यक्ति हो। तुम्हारी रिपोर्टें भ्रमपूर्ण हैं।"

"सर, इस बारे में मुझे कुछ नहीं कहना।"

"अपनी चार साल की नौकरी के दम पर तुम मुझे सुरक्षा मत सिखाओ।"

"मैं मानता हूँ ,सर। लेकिन गुप्त सूचना एकत्र करने की योग्यता का सेवाकाल से कोई संबंध नहीं।"

उन्होंने मुझे रुखाई से विदा कर दिया। मैं राजनिवास से यह इरादा कर के निकला कि उस शाम की मीटिंग का ब्योरा शब्दशः के.एन. प्रसाद को और प्रधानमंत्री की सुरक्षा के लिए जिम्मेदार आई.बी. के ज्वाइंट डाइरेक्टर गोपाल दत्ता को बताऊँगा।

* * * *

इम्फाल घाटी पर 23 सितंबर की सुबह दीप्तिमान सूर्य के साथ आई। लेकिन वहाँ के शांत ग्रामीण वातावरण में उमड़ती भीड़ के कारण विघ्न पड़ गया, जो राजनिवास के आसपास इकट्ठी होनी शुरू हो गई थी। वे राज्य का दर्जा देने की मॉग के नारे लगाते हुए हर संभव दिशा से आ रहे थे। सुबह 9 बजे तक उन्होंने हवाई अड्डे से राजनिवास और सभास्थल को जानेवाले सभी रास्ते जाम कर दिए थे। सभास्थल भी मुख्य आयुक्त के सरकारी आवास के पास ही था।

प्रधानमंत्री के काफिले की पारंपरिक शान और समारोह पूर्वक आगवानी की गई। गोपाल दत्ता मेरी वैन में आ चढे और दिल्ली को जो मैंने गुप्त सूचनाएँ भेजी थीं उनके हर विवरण पर मुझ से सवाल किए।

उनका रवैया मणिपुर सरकार कीं रिपोर्टों पर अधिक भरोसा करने का था। उन्होंने मुझे यह बताना चाहा कि गुप्तचर ब्यूरो के निदेशक की राय में भी रिपोर्टें दहशत पैदा करने वाली थीं।

"मुझे उम्मीद है आने वाली घटनाएँ मुझे सही साबित कर देंगी।"

मैं उस वरिष्ठ गुप्तचर को इतना ही जवाब दे सका जो सुनंदा के पिता से भी सीनियर थे।

सच्चाई ने हमें पत्थर और दूसरी अघातक चीजों के फेंके जाने के साथ अपना परिचय दिया। यह तुलिहाल हवाई अड्डे के ठीक बाहर हो रहा था। अधिकतर महिलाओं और युवाओं वाली उस उमड़ती भीड़ ने अति विशिष्ट काफिले को रोकने की कोशिश की। एक छोटा दल स्पष्टतः ज्ञापन देने के लिए आगे आया। प्रधानमंत्री के दल को थोडे-से बल प्रयोग के बाद इस अफरा-तफरी से निकाल कर राज निवास की सुरक्षा में पहुँचा दिया गया।

"स्थिति खराब मालूम पड़ती है।"

गोपाल दत्ता ने टिप्पणी की।

"मेरी राय में आप को एक चक्कर लगा कर सभास्थल का निरीक्षण कर लेना चाहिए।"

वह सहमत हो गए। मैं उनको पैदल ले गया। मैंने उनको ध्यान दिलाया कि सभास्थल में लगाई गई बांसों की बाड़ किसी उपद्रवी भीड़ का दबाव सहन करने लायक नहीं है। जिस संकरे रास्त से हो कर प्रधानमंत्री को राज्य संग्रहालय और सभामंच तक जाना था वह आंदोलनकारी भीड़ से अटा पड़ा था। सभा वाला मैदान एक स्कूल और व्यापारी संस्थान से घिरा हुआ था। किसी आपद्काल में प्रधानमंत्री को वहाँ से निकालने के लिए कोई भी सुरक्षित

मार्ग न था। मंच के सामने मुश्किल से तीन सौ गज उत्तर की ओर कुछ चार मंजिला इमारतें थीं।

"तुम ठीक कहते हो। यह जगह प्रधानमंत्री की सभा के लायक नहीं।"

दत्ता वापस राजनिवास आए और बैठ कर मेरी दी हुई रिपोर्टें पढ़ने लगे।

"उखरूल जाने के बारे में तुम्हारा क्या विचार है?"

"उन्हें वहाँ नही जाना चाहिए। नवीनतम गुप्त सूचना के अनुसार तांगखुल जिले मे नगा सेना ने शक्ति प्रदर्शन के लिए तीन और यूनिटें लगा दी हैं। "

"तुम निश्चित रूप से कह सकते हो?"

"मुझे जरा भी शक नही," मैंने आत्मविश्वास से कहा,"एक और समस्या भी है। कोइरंग सरकार का कल के शक्ति परीक्षण मे पतन होने की संभावना है।"

"लेकिन मुख्य आयुक्त का कहना है कि स्थिति नियत्रण में हैं।"

"मैं उनसे सहमत नहीं।"

मुझे अपने राजनीतिक और व्यावसायिक मित्रों से जो सूचनाएँ मिली थीं, वह मैंने उनको बताईं। विपक्ष बहुमत में था। वे कोइरंग सिंह को हराने पर आमादा थे। अंत मे मैंने कहा कि प्रधानमंत्री को आने के लिए ऐसा विस्फोटक समय नहीं चुनना चाहिए था।

दिल्ली में भी उनके सामने अनेक राजनीतिक कठिनाइयाँ थीं। राष्ट्रपति के चुनाव में सिंडीकेट के उम्मीदवार डा संजीव रेड्डी इंदिरा के नामित वी.वी. गिरि से बहुत कम अतर से हारे थे। संगठन की गुटबाजी में उनका संघर्ष समाप्त नहीं हुआ था। मोरारजी देसाई को निकाला जाना, बैंकों का राष्ट्रीयकरण तथा अन्य राजनीति प्रेरित आर्थिक कदम, जो इदिरा की गरीबों की हिमायत वाली छवि को निखारते, उनसे उनका राजनीतिक आधार अभी दृढ होना शेष था। उनके चारों तरफ जो कश्मीरी गुट था, सब लोग न तो उनके प्रशंसक थे न उन्हें पसंद करते थे।

मणिपुर को लौटें तो कुछ विद्रोही कांग्रेस नेता व विपक्ष के दिग्गज सिंडीकेट के नेताओं निजलिंगप्पा, मोरारजी देसाई और अतुल्य घोष से सपर्क साधे हुए थे। मणिपुर काग्रेस के विद्रोहियों को उनसे और इंदिरा के खुद के आत्मा की आवाज पर वोट देने के नारे से संकेत मिल गया था। वे कोइरंग सिंह को निकालने के लिए कमर कसे हुए थे।

गोपाल दत्ता मेरे अनुमान से सहमत हो गए। वह उस कमरे में गए जहाँ प्रधानमंत्री मुख्यमंत्री और मुख्य आयुक्त से बातचीत मे व्यस्त थीं। वह कुछ मिनटों बाद बाहर आ गए। उन्होंने मुझे बताया कि प्रधानमंत्री सार्वजनिक सभा को संबोधित करने को कटिबद्ध हैं। मैंने इस विचार का विरोध किया। उन्हें बल प्रयोग करने के बाद ही पोलो ग्राउंड ले जाया जा सकता है। बिगडी हुई भीड इसे कभी पसंद नहीं करेगी। वे प्रधानमंत्री को हानि भी पहुँचा सकते हैं। पर इंदिरा गाँधी अपनी तरह की ही थीं। उन्हें विपरीत सलाह देने का साहस किसी में न था।

पुलिस और केंद्रीय रिजर्व पुलिस के संयुक्त बल ने डंडे चला कर राजनिवास से पोलो ग्राउंड का छोटा-सा रास्ता खाली करवाया। केसरिया साड़ी में लिपटी हुई वह मंच पर चढ़ीं और अपनी सदा वाली पैनी आवाज में एकत्रित लोगों को संबोधित करना शुरू किया। भीड ने आगे आ कर राज्य का दर्जा देने की माँग शुरू कर दी। बाँस की बाड़ टूट गई। पुलिस

सुपरिंटेंडेंट गोपाल सिंह और आई.जी.पी. मदन गोपाल लट्ठे की तरह बेजान से खडे रह गए। पुलिसवाले घबरा कर पीछे हटने लगे।

गोपाल दत्ता मुझे खींच कर ले गए। वह आई.जी.पी. और एस.पी. के पास पहुँचे और उनसे कहा कि भीड़ को मंच पर चढने से रोकने के लिए पुलिस को बल प्रयोग करने का आदेश दें। मणिपुर का पुलिस अधिकारी गोपाल सिंह होश-हवास खोया-सा लग रहा था। गोपाल दत्ता ने उसे और मदन गोपाल से कहा कि वे पुलिस दल को फिर से एकत्र कर के आगे बढ़ती भीड़ को मार कर पीछे खदेड़ें। एक युवा आई.ए.एस. अधिकारी आर.डी. कपूर ने जब भीड़ पर एक बार और डंडा चलवाया तो उसके बाद गोपाल दत्ता ने मंच पर जा कर इंदिरा गाँधी के सुरक्षा अधिकारी की सहायता कर के उन्हें राजनिवास की सुरक्षा में पहुँचाया। पुलिस ने अपनी बंदूकों से गोलियाँ चलाईं और भीड ने बदले में आई.जी.पी. की जीप जला कर और सी.आर.पी.एफ. के सिपाही को जान से मार कर अपना गुस्सा उतारा। घंटों तक यह अशांति बनी रही। स्थिति पर कर्फ्यू लगा कर और सेना को तैनात कर के ही काबू पाया जा सका जिसने राजधानी नगर और आसपास के इलाके में फ्लैग मार्च किया।

मैं रात दस बजे के काफी बाद घर लौटा। फिर जल्दी से खाना खा कर अपने दफ्तर चला गया। जब मैं दिल्ली, कोहिमा और शिलांग को टेलीप्रिंटर और कूट लिपि में संदेश भेज रहा था, उसी बीच सुनंदा भागी-भागी मेरे दफ्तर में आई। उसने बताया कि गोपाल दत्ता मुझे तुरंत राजनिवास बुला रहे हैं। मैं उसे वापस अपने पास के निवास पर छोड कर राजनिवास के लिए वैन में बैठा। मुझे रास्ते में एक और जीप ने रोक लिया। उसमें से हेंगलेप का युवा कुकी नेता होल्खोमॉग हाओकिप और कुछ भरे बदन का तांगखुल आर्थर उतरे। आर्थर नगालैंड सरकार के लिए काम करता था पर रिशांग केशिंग का राजनीतिक सहायक था।

उन्होंने दो नई खबरें दीं। यूनाइटेड फ्रंट लेजिस्लेचर पार्टी (विद्रोहियों) ने मुहम्मद अलीमुद्दीन को अपना नेता चुन लिया है और 32 सदस्यों के सदन में उनकी संख्या बढ कर 20 हो गई है।

आर्थर के पास एक और खबर थी। नगा संघीय सरकार (एन.एफ.जी.) ने उखरूल में प्रधानमंत्री की सभा में गड़बड़ी फैलाने के लिए तीन विशेष कार्यबलों को तैनात किया है। उनके पास हल्की विमानभेदी तोपें (एल.ए.ए.जी.) हैं। प्रधानमंत्री के लिए उखरूल जाना सुरक्षित न होगा। उसने यह भी बताया कि इम्फाल-उखरूल के सर्पीले रास्ते पर कई जगह घात लगा कर हमला करने की तैयारी भी है। मैंने उनको धन्यवाद दिया और राजनिवास की तरफ भागा।

गोपाल दत्ता मुझे एक कमरे में ले गए जहाँ इंदिरा गाँधी त्योरी चढ़ाए, मुंह बिगाडे बैठी थीं।

उन्होंने ऊपर देख कर पूछा कि जो रिपोर्ट वह देख रही हैं, क्या मैंने तैयार की हैं? मैंने चुपचाप हाँ में सिर हिलाया।

"क्या तुम ने स्थानीय अधिकारियों को ये सब सूचनाएँ दी थीं?"

"जी मैडम।"

"तुम्हें इन के अलावा और क्या बताना है?"

मैंने गोपाल दत्ता की तरफ देखा और जो नवीनतम जानकारी होल्खोमाँग हाओकिप तथा आर्थर से मिली थी वह बयान कर दी। उन्होंने एक कापी में सारी बात लिख लीं और धीरे से बोलीं—

"मुझ से दिल्ली आ कर मिलो। मैं कुछ चर्चा करना चाहती हूँ। धवन से संपर्क करना। वह सब इंतजाम कर देगे।"

दत्ता मुझे बाहर ले आए और धीमे से फुसफुसाए।

"मेरे प्यारे लडके, धन्यवाद। आज तुम ने इंटेलिजेंस ब्यूरो की लाज रख ली।"

"क्या आप उन्हें उखरूल ले जा रहे हैं?"

"मेरे खयाल में जो कुछ तुम ने उन्हे बताया , उसके बाद तो वह नहीं जाना चाहेगी।"

"क्या मै दिल्ली आकर उनसे मिलूं?"

"चलो। यह मैं इटेलिजेंस ब्यूरो के डाइरेक्टर से बात कर के तुम्हें बताऊँगा।"

मैं रात के दो बजे के बाद घर पहुँचा और सुनंदा की बेचैन नजरों के सामने पेश हुआ। यह सत्यानाश और जीत का दिन व रात थी। एक गुप्तचर अधिकारी के तौर पर मेरी पहचान अंशतः फिर कायम हो गई थी। यह एक तरह की जीत थी। गुप्त सूचनाए, मूलत जन- सूचना एकत्र करने की तकनीक को और अधिक सीखने की मेरी लालसा जोर मारने लगी थी। मैंने आनद पर्वत के आई बी. स्कूल में जो सीखा था उसे और परिष्कृत करना चाहता था।

संपूर्णता मेरे लिए सदा एक सपना, एक सुदर वस्तु, एक प्रेरणा रही है। हालांकि इसकी चाह मुझे कई बार मुसीबतों में डाल चुकी थी। जीवन में बहुत आगे चल कर मेरी समझ मे आया कि संपूर्णता जैसा कुछ नहीं होता। प्रस्तर युग के मानव के लिए तीर की नोक पर लगा पत्थर का अनगढ नोकीला टुकडा एक सपूर्ण व त्रुटिहीन हथियार था। अमेरिका और सोवियत सघ ने सोचा कि नाभिकीय बम विनाश के संपूर्ण व त्रुटिहीन हथियार हैं। सपूर्णता एक मानसिक अवस्था को कहते हैं। यह एक प्रतीति है। देश, काल, मस्तिष्क और पदार्थ के सगम का एक काल्पनिक सत्य।

उस रात मैंने अपने बेचैन दिमाग में थोड़ा गर्व का एहसास भर लिया। यह झूठी तसल्ली भी खुद को दे ली कि मैंने किसी हद तक तो संपूर्णता पा ली है। अपनी कुशलता के लिए मुझ में जो जोश था वह सत्ता के मद मे चूर लोगो के एक गुट के अधे विश्वास से बेहतर साबित हुआ था। मुझे अपने इस विश्वास से तसल्ली हुई कि मै एक सफल सूचना सचालक बन सकता हूँ।

इस तसल्ली ने मेरा उत्साह बढा दिया था। मैं सुबह जल्दी उठा और दफ्तर जा कर कुछ देर पिछले 24 घंटे की घटनाओं पर दिल्ली, कोहिमा और शिलांग को भेजने के लिए गुप्त लिपि में संदेश तैयार किए। इसमें मैंने प्रधानमत्री से हुई विलक्षण मुलाकात का भी जिक्र किया लेकिन उनके निमंत्रण वाली बात नहीं लिखी।

मैंने वायरलेस रूम में जा कर उखरूल का चैनल चालू किया। वहाँ से काफी खराब खबरें मिली। उखरूल स्थित अधिकारी ने स्थिति को भयावह बताया। नगा भूमिगत संगठन मे हमारे एजेंटों ने इस बात के पर्याप्त संकेत दिए कि स्वयभू कर्नल पीटर (परिवर्तित नाम) ने भारत की प्रधानमंत्री के सामने नगा शक्ति के प्रदर्शन का बडा व्यापक प्रबंध किया है।

मैं भागा-भागा राजनिवास गया और गोपाल दत्ता को यह सूचना दी। वह मुझे एक तरफ ले गए और बताया कि प्रधानमत्री ने उखरूल का कार्यक्रम रद्द कर दिया है। अब वह कोहिमा के लिए उड़ान भर रही हैं।

जब हम राजनिवास के अगले लान की सीढियों पर खड़े बातें कर रहे थे तभी खबर आई कि जिस काफिले में सुरक्षा आयुक्त एम. रामुन्नी तथा डी.आई जी टी जे. क्विन वापस इम्फाल

आ रहे थे, उस पर नगा विद्रोहियों ने घात लगा कर हमला किया है और दोनों घायल हो गए हैं। प्रधानमंत्री उस समय पास के असम राइफल्स के मैदान से हेलीकाप्टर में चढने जा रही थीं। किसी ने भाग कर उन्हें यह खबर दी।

हम ने प्रधानमंत्री को विदाई दी। उन्होंने हेलीकाप्टर में बैठने से पहले पत्रकारों को बताया कि उन पर यह हमला पूर्वनियोजित था। उन्होंने उस पर विस्तार से बताने से इनकार किया पर कहा कि इस बात की पुष्टि के लिए उनके पास पर्याप्त प्रमाण हैं।

उसी दिन सलाम गंभीर सिंह के अविश्वास प्रस्ताव पर विधान सभा में कांग्रेस सरकार गिर गई। 16 अक्तूबर 1969 को इसकेंद्र शासित प्रदेश में राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया।

ऐसा नहीं है कि मेरे आहत स्वाभिमान ने मुझे इन घटनाओं का ब्योरा देने को प्रेरित किया हो। यह तो मैंने अति विशिष्ट व्यक्तियों की सुरक्षा-व्यवंस्था की दयनीय स्थिति बयान करने और यह बताने के लिए किया है कि किस तरह छिछोरे प्रशासकों के रवैए से महत्वपूर्ण व्यक्तियों की जान खतरे में पडती है। आतंकी और हत्यारे सुई के नाके में से निकल सकते हैं यह बात तब अकाट्य रूप से सिद्ध हो गई जब इंदिरा गॉधी और राजीव गॉधी की हत्याएं हुईं। उनके आसपास के अति महत्वपूर्ण कर्मी निर्दय थे। मेरे खयाल से इन घटनाओं ने आई. बी. के सुरक्षा प्रबंधकों को प्रधानमंत्री तथा अन्य अति विशिष्ट व्यक्तियों की सुरक्षा के नियमों और कवायद पर दोबारा गौर करने को प्रेरित किया होगा।

* * * *

जिन अप्रिय घटनाओं ने मणिपुर को चकरघिन्नी की तरह घुमा दिया, उन में से मुझे बिना खरोंच लगे बच निकलने से मुख्य आयुक्त और उनके मुसाहिब खुश नहीं हुए। मैंने कानून-व्यवस्था की स्थिति पर आई.जी.पी. को समय-समय पर अहस्ताक्षरित रिपोर्टें भेज कर सामान्य सबंध बहाल करने की कोशिश की। मैंने उनको हस्ताक्षरित रिपोर्टें भेजने में असमर्थता व्यक्त की। मुझे पंजाब पुलिस के इस अनुभवी इंस्पेक्टर पर विश्वास नहीं रहा था। शिष्टाचारहीन मुख्य आयुक्त ने सितंबर की विफलता से सही सबक हासिल नहीं किया था। हमारी कुछ और भी भिडतें हुईं, कुछ ज्यादा ही खराब।

अविश्वसनीय वरिष्ठ प्रशासकों के साथ रहने के तनाव ने मेरे स्वास्थ्य पर कुछ प्रतिकूल प्रभाव डाला। हमने मोरेह में विश्राम कर के राहत पाने का निर्णय लिया। यह भारत-बर्मा सीमा पर एक छोटा-सा पुरवा था जहॉ से तस्करी होती थी। यह काम और आमोद वाला प्रवास था।

बर्मा की ने विन सरकार के साथ भारत के बहुत अच्छे राजनयिक संबंध न थे। स्वयंभू जनरल काइतो सेमा और बाद में मोऊ अंगामी के नेतृत्व में नगा विद्रोही दलों ने बर्मा के नगा क्षेत्रों में अड्डे कायम कर लिए थे। वे चीन के जियांगुआंग प्रांत में जाने के लिए साउला, कामती, लक्संग्वांग मार्ग का प्रयोग करते थे। दूसरे महायुद्ध की पुरानी स्टिलवेल रोड का इस्तेमाल करने के अलावा वे अक्सर एक वैकल्पिक मार्ग से भी आते-जाते थे। यह था कामती, शादुजुप, मेतकिना के ऊपर ऊशे होकर। इससे वे जियांगुआंग प्रांत की बोशान प्रशासनिक यूनिट में शिबेई से चीन में घुसते थे। बहुत बाद में उन्होंने अरुणाचल प्रदेश के नोते, वांचू बहुल इलाकों और बर्मा के हेइमी नगा क्षेत्रों से चीन के युनान प्रांत में जाने का आसान रास्ता विकसित किया। या तो बर्मा सेना के पास इतने साधन नहीं थे, या इच्छा का अभाव था कि वह चीन में प्रशिक्षण और हथियारों व गोलीबारूद की सप्लाई के लिए आमंत्रित नगा विद्रोही दलों को रास्ते में रोके।

नगा दलों ने बर्मा के शान और कोचिन विद्रोहियों के साथ मिल कर काम करने के संबंध भी बना लिए थे। बर्मा की सफेद और लाल झंडा कम्यूनिस्ट पार्टियों से भी उनको गुपचुप मदद मिलती थी। कुओमिंतांग शासन के कुछ बचे-खुचे तत्व भी पैसे के लिए भारतीय नगाओं से हथियारों का सौदा करते थे। वैसे चीन के आदिवासी क्षेत्रों में सक्रिय कुओमिंतांग तत्व बड़े पैमाने पर अफीम और उससे बनने वाले मादक पदार्थों का धंधा करने लगे थे।

बर्मा के इलाकों का इस्तेमाल करने वालों में अकेले नगा ही नहीं थे। मिजो विद्रोही पूर्वी पाकिस्तान के चटगांव पहाडी क्षेत्रों की मेजबानी तो पाते ही थे, वे बर्मा के मोनीवा डिवीजन में दारलिंग, फालम और दूसरे कुकी व चिन बहुल गाँवों में भी अक्सर ठहरते थे। उन्हें छिंदविन और इरावादी घाटियों में कालेवा, चतकेई, सिकाऊ और मोगयू क्षेत्रों से हो कर चीन के जियांगयुंग प्रांत के लुक्सी प्रशासित उपखंड को जाते देखा गया।

बर्मा के सिंगेल, सेक्शी, पांथा, कुजेत और थाइगौन प्रशासनिक इकाइयों के अंतर्गत रहने वाले कुकी और चिन अक्सर मिजो विद्रोहियो की मदद करते थे। वे भी भारत आना चाहते थे। उन्होंने बर्मा के कुकी व चिन क्षेत्रों के भारत के साथ विलय की एक नई मॉंग भी उठाई थी।

यह एक खतरनाक चाल थी। कुकी और दूसरी संबद्ध जातियों के लोग मूलतः उस समय बर्मा से आए थे जब मणिपुर के नरेशों का आधिपत्य अक्सर काबाऊ घाटी और छिंदविन के किनारों तक फैला रहता था। जवाहरलाल नेहरू ने काबाऊ घाटी विधिवत बर्मा को सौप दी थी। मणिपुर के मैतेई इसे अब भी अपने देश का एक अभिन्न अंग मानते हैं।

मणिपुर में केंद्रीय इटेलिजेंस अधिकारी होने के नाते मेरा नगा व मिजो दलो के चीन जाने से सीधा वास्ता न था। लेकिन मणिपुर की पहाडियों में परेशान करने वाले नगा-विद्रोह और मिजो-विद्रोह पर ध्यान देना मेरे लिए आवश्यक था।

मणिपुर में केंद्रीय गुप्तचर अधिकारी के रूप में मेरा नगा और मिजो के चीन जाने से सीधा संबंध नहीं था। लेकिन मणिपुर की पहाडियों में परेशान करने वाला नगा-विद्रोह और मिजा-विद्रोह के वहाँ तक पहुँचने वाले प्रभाव पर ध्यान देना मेरे लिए जरूरी था। इन गतिविधियों पर ध्यान रखने के लिए मैंने कुछ अस्थाई गुप्तचर चौकियॉं बनाईं जो बर्मा के कुकी व चिन की हरकतों पर भी नजर रखें।

संयोग से मेरा परिचय एक बर्मी सेना के अधिकारी कर्नल अउंग थान (बदला हुआ नाम) से तामू में हो गया। मैं उस धूल भरे बर्मी शहर में घूमने गया था।

हमने अनौपचारिक तौर पर तय किया कि मोरेह स्थित मेरे अधिकारी नगा और मिजो विद्रोही दलों के बारे में उन्हें खबर देते रहेंगे। कुकी और चिन की आवाजाही के बारे में हम-ने ब्योरे का आदान-प्रदान किया और उनको आश्वासन दिया कि भारत इस तरह जनसंख्या के स्थानांतरण को प्रोत्साहित करने के हक में नहीं है। मुझे दिल्ली से यही बताया गया था। मैं कर्नल अउंग को भारतीय सीमा के अंदर आमंत्रित नहीं कर सका क्योंकि मुझे पता था कि रंगून स्थित सैनिक शासन ने उस पर पाबंदी लगा रखी है।

मुझे मोरेह जाने के लिए एक और बात ने बाध्य किया। यह थी आई.बी. के चौकी प्रमुख नांबियार (परिवर्तित नाम) के विरुद्ध तस्करी के आरोपों की अनौपचारिक पडताल करना। वह मद्रास के जवाहरात के व्यापारियों के एक गुट के लिए काम करता था। वह तस्करी का माल

अक्सर कलकत्ता ले जाया करता था। वहाँ उन व्यापारियों के एजेंट नकद भुगतान कर के उससे माल ले लेते थे।

मैंने कोहिमा स्थित अपने उच्च्य अधिकारी को इस आपत्तिजनक हरकत की जानकारी दी। वह अनुशासन की कार्रवाई के लिए राजी नहीं हुए। बहुत बाद में मुझे पता चला कि एक वरिष्ठ अधिकारी की पत्नी तामू से सोने के जेवर मंगवाने के लिए नांबियार की सेवाएं लेती थी। मुझे पता चला कि ऊंचे कैरेट के कुछ माणिक भी दिल्ली के कुछ वरिष्ठ अधिकारियों को भेंट किए गए थे। चाहे किसी भी तरह की सेवा में हों, मणिपुर में तैनात भारतीय अधिकारियों में से बहुत से सोने और कीमती जावाहरात की तस्करी में लिप्त रहते थे। उन में से कुछ तो अपने घर की जमीन पर शानदार मकान बनाने के लिए बर्मा से बहुमूल्य टीक और अगरु की लकड़ी की तस्करी भी करते थे। अगरु की लकडी दिल्ली के व्यापारियों को मोटे मुनाफे पर बेची जाती थी। वे इसे विदेशी इत्र निर्माताओं को निर्यात करते थे।

इससे पहले कि मैं कोई दूसरा प्रसंग छेड़ूं , पहले नांबियार की कहानी पूरी कर लेते हैं। कुछ वरिष्ठ अधिकारियों की शह पर उसकी खुलेआम होने वाली तस्करी की कारगुजारियों ने मुझे भडका दिया। मैं उसकी गलत हरकतों का पर्दाफाश करने के लिए कडी कार्रवाई पर आमादा हो गया। अंततः मैंने अपने एक जूनियर अधिकारी की शिकायत पर कार्रवाई की। उसने मुझे सूचित किया कि नांबियार की बेलगाम हरकतों ने एस.बाई.बी. यूनिट को तस्करी का अड्डा बना दिया है। उसकी शिकायत की पुष्टि कलकत्ता स्थित रिसर्च एंड एनालिसिस विंग के क्षेत्रीय प्रमुख पी.एन. बनर्जी के एक पत्र से हो गई। उन दिनों मणिपुर में आई.बी. और रॉ दोनों की चौकियाँ मेरे निरीक्षण में थीं। उन्होंने नाबियार की आपत्तिजनक गतिविधियों के बारे में लिखा था।

मैंने एक सुराग के तहत उसका पीछा किया और मणिपुर पुलिस के द्वारा उसे गिरफ्तार करवा दिया। वह बस से इम्फाल जा रहा था तभी उसके बैग से माणिक बरामद हुए। आई. बी. ने उस बदनाम अधिकारी को मुअत्तल कर दिया। मुझ से विभागीय जांच करने को कहा गया जो आई.बी. की घूसखोरी की किसी अंधी गली में खो कर रह गई। मुझे पता चला कि नांबियार अपने बाद के सेवाकाल में आई.बी. के दक्षिणी क्षेत्र में खूब फला फूला।

* * * *

इस बीच मणिपुर में एक स्वागत योग्य परिवर्तन हुआ। बालेश्वर प्रसाद को उनके संरक्षकों ने ठुकरा दिया। उन्हें हटा कर बर्मा में राजदूत बना दिया गया। एक सौम्य, सभ्य और व्यवहारकुशल उपराज्यपाल डी.आर. कोहली उनके स्थान पर आए। भारतीय प्रशासनिक सेवा से आए कोहली अपने साथ ताजा बयार का झोंका ले कर आए थे।

उनके सामने बहुआयामी चुनौतियाँ थीं। राज्य के लिए आंदोलन जोर पकड़ रहा था। हिमाचल को राज्य का दर्जा देने की घोषणा ने आंदोलन को और तेज कर दिया था। इसने न सिर्फ मणिपुरियों की कल्पना को बल दिया था बल्कि सारे विपक्ष और सत्तारूढ दल के एक वर्ग को भी प्रभावित किया था।

मैंने दिल्ली भेजे अनेक संदेशों में लिखा था कि केंद्र मणिपुर की जनता की संवैधानिक माँग को ठुकरा कर आग में ईंधन झोंकने का काम कर रहा है। राज्य का दर्जा देने के बारे में जल्दी, संभवतः 1968-69 में ही निर्णय ले लेने से और एक सहानुभूतिपूर्ण आर्थिक पैकेज देने से मैतेई युवकों को विद्रोह/आतंक के मार्ग पर जाने से रोका जा सकता था। मैंने कोहली

के सामने भी वही विचार रखे। मैंने अपनी आधरभूत जानकारी का इस्तेमाल करते हुए कृषि, ऊर्जा, उद्योग और संचार के क्षेत्र में लागू करने लायक एक खाका भी तैयार किया। किन्हीं कारणों से मुझे विश्वास था कि उपराज्यपाल ने इन सुझावों को गंभीरता से लिया है। पर दिल्ली अभी भी इस विस्फोटक स्थिति के प्रति उदासीन थी।

इंदिरा गॉधी और उनकी सत्तारुढ पार्टी के पास मणिपुर के लिए बहुत कम समय था। इधर इस सीमावर्ती राज्य में स्थिति निरंतर बिगडती जा रही थी। मैतेई युवकों का एक बडा दल पूर्वी पाकिस्तान पहुँच चुका था। आई एस.आई. उन्हें ट्रेनिंग दे रही थी। नगा विद्रोहियों के कम से कम दो जत्थे मणिपुर और एन.सी. पहाडियों के विद्रोहग्रस्त रास्ते से हो कर सिल्हट पहुँच गए थे। आई एस.आई ने उनकी मेहमाननवाजी की और उन्हें आधुनिक हथियार दिए। भारत के उत्तर-पूर्व पर दबाव बढाने के लिए पाकिस्तान ने जानबूझ कर यह खेल खेलना शुरू कर दिया था।

इसी दौरान 3 सितबर 1971 को इंदिरा गॉधी ने घोषणा कर दी कि उनकी सरकार ने मणिपुर को राज्य का दर्जा देने का निर्णय सिद्धात रूप में ले लिया है। बाग्लादेश के युद्ध की पूर्वसंध्या पर हुई इस घोषणा को उनकी रणनीति का ही एक पहलू माना गया। जो भी हो, यह था सही निर्णय। 1972 में ससद ने उत्तर-पूर्व भारत के पुनर्गठन का विधेयक पास कर दिया। 21 जनवरी 1972 को राज्य का उद्‌घाटन करने के लिए इंदिरा गॉधी एक बार फिर इम्फाल आईं।

* * * *

यहाँ मैं बताना चाहूँगा कि मैंने फरवरी 1970 में दिल्ली का चक्कर लगाया था। मैं गोपाल दत्ता से मिला और उनसे पूछा कि क्या आर.के. धवन से मिलना मुनासिब होगा?दत्ता सहमत हुए। उन्होंने प्रधानमंत्री कार्यालय के इस मुख्य व्यक्ति से मेरी मुलाकात तय करवा दी।

मुझे धवन के धुएं भरे कमरे में ले जाया गया। धवन सफेद से सफारी सूट मे थे। उनके होठों में सिगरेट थी। सांवले धर को देख कर उनको निराशा हुई।

"क्या तुम कश्मीरी नहीं?"

"नहीं। मैं बंगाली हूँ।"

"वह कैसे? धर तो कश्मीरी होते हैं।"

मैंने बताया कि धर बगाल और असम में भी होते हैं। पर मुझे पता नहीं कि उन में रग, भाषा और जाति का अतर कैसे आया।

मैं उनकी कुशलता से बहुत प्रभावित हुआ। उनकी आखों में चमक थी। उनके काम करने के तरीके से उनकी कार्यकुशलता झलकती थी। अंततः मुझे बताया गया कि मैडम मुझ से मिलने के लिए तैयार हैं।

वह मुझे अंदर के कक्ष में ले गए। अब वह मेरे सामने थीं। भारतीय स्वाधीनता संग्राम की अंतिम सजीव कड़ी के रूप में।

उन्होंने मणिपुर के बारे में बात की और कहा कि राज्य के कल्याण का उनको बहुत अधिक ध्यान है। क्या मैं इस बारे में कुछ राय दे सकता हूँ?

मैंने बताने की कोशिश की कि राज्य का दर्जा देने के राजनीतिक हल के अलावा मणिपुर को तुरंत एक आर्थिक पैकेज चाहिए। साथ ही ऐसा कार्यक्रम चाहिए जो वहाँ की जनता की गंभीर आर्थिक समस्याओं का समाधान कर सके।उन्होंने "हाँ" में सिर हिलाया और कहा कि

मैं संपर्क बनाए रखूं। यह इशारा था कि मैं उठ कर सैल्यूट करूँ और वापस धवन के कमरे में लौट जाऊँ।

"भाई, क्या मैं तुम्हारे लिए कुछ कर सकता हूं?" धवन ने अपने करिश्माई अंदाज में पूछा।

मैं यहां कहना चाहता हूँ कि धवन मुझे पहली मुलाकात में ही बहुत अच्छे लगे। इंदिरा गाँधी की करिश्माई मुस्कान और कृपा ने तो मेरा दिल ही जीत लिया।मैं इम्फाल इस उत्साह के साथ लौटा कि मुझे भारत के अतीत को वर्तमान से जोडने वाली कडी से मुलाकात का अवसर मिला था। हालांकि यह एक साधारण घटना का मूर्खतापूर्ण और रोमानी अर्थ निकालने वाली बात थी।

मेरे इम्फाल लौटने के तुरंत बाद ही नगा और मैतेई गुटों की युद्धक कार्रवाइयों के और भडकने के समाचारों की बाढ़ सी आ गई। तभी मुझे मणिपुर मे सक्रिय भूमिगत मिजो सेना की 10वीं बटालियन का सुराग किसी चमत्कार की तरह मिल ही गया। स्वयंभू कर्नल लालजिका सीलो इसका प्रमुख था।

कुकी नेशनल असेंबली का एक प्रमुख नेता पाओकाई इसमे मध्यस्थ था। मिजो सेना की 10वीं बटालियन में 80 सैनिक और 4 ऑफिसर थे। हथियारों मे उनके पास 8 हल्की मशीनगनें, 40 राइफलें और इतने ही दूसरे छोटे हथियार थे। उनके सबसे खतरनाक हथियारों मे कुछ आर.पी.जी. राइफलें, (रॉकेट प्रोपेल्ड ग्रेनेड फायरिंग राइफलें) और तीन 2 इच की मॉर्टार तोपे थीं।

लालजिका मिजो नेशनल आर्मी के शीर्ष अधिकारियो से हताश हो चुका था। वह दिल्ली के राजनीतिक नेताओं और मणिपुर सरकार से अपनी और अपने परिवार के लिए सुनिश्चित सुरक्षा चाहता था। लालजिका का जेलियॉग और रोगमेई के बीच मणिपुर व कचार पहाडियो के विशाल गैर-नगा क्षेत्र पर नियंत्रण था। मणिपुर मिजोरम के सीमावर्ती क्षेत्रों और असम के निकटवर्ती कचार जिले के कुछ भागों पर उसका आदेश लगभग निर्विवाद चलता था।

इस खबर की पहल के बारे में मैंने दिल्ली को एक अति गुप्त संदेश भेजा। उसमें मैंने कहा कि मैं आरंभिक स्थिति में इस बारे में मणिपुर सरकार को जानकारी नहीं देना चाहता। दिल्ली से गुप्त लिपि में अनुमति मिली। उसमें कहा गया कि मैं राज्यपाल को बराबर सूचित करता रहूँ और अपनी व्यक्तिगत सुरक्षा का ध्यान रखूँ। डी.आर. कोहली मेरे इस साहसपूर्ण कारनामे से बहुत खुश हुए। उन्होंने अपने सचिव और विकास आयुक्त टी.एस मूर्ति आई.ए. एस. को निर्देश दिए कि वह कार्रवाई के प्रमुख डी.आई.जी. टी. जे. क्विन के साथ तालमेल बनाएँ। मूर्ति बड़े ही सौम्य सज्जन थे। उनकी विश्लेषण क्षमता अद्‌भुत थी। उनकी कनाडियन पत्नी ने इम्फाल के सामाजिक परिवेश में आकर्षण भर दिया था।

क्विन के साथ काम करने में भी मुझे कोई दिक्कत न थी। वह एक बहुत ही अच्छे ऑफिसर और धर्मपरायण ईसाई थे। इस निस्संतान दंपती ने अपना घर तरह-तरह के जीवों से भर रखा था। हमे ये धर्मपरायण दपती बहुत भाए। हमने आपस मे तय कर लिया कि उपराज्यपाल औपचारिक रूप से आत्मसमर्पण लेंगे।

क्विन, मुझे जब भी जरूरत पडे, सुरक्षा प्रदान करेंगे चाहे मैं वायरलेस से भी अनुरोध करूँ।

मिजो खूंखार नगा लड़ाकुओं से भी अधिक क्रूर माने जाते थे। मैतेई युवक भी इतने निर्मम न थे जितने मिजो समझे जाते थे।

पाओकाई इम्फाल-कोहिमा मार्ग पर सेकमाई के निकट सड़क किनारे के एक गाँव के पास मेरा इंतजार कर रहे थे। मैंने सुबह आठ बजे के करीब उनको साथ लिया। वहाँ से हम सीधे इंटेलिजेंस ब्यूरो की कांगपोकपी चौकी पर गए। उप-सूचना अधिकारी शर्मा, जो बड़ा लायक था, मुझे देख कर हैरान हुआ। हमने काफी पी और फिर शर्मा को जीप की पिछली सीट पर बैठने को कहाँ ड्राइवर माधो सिंह ने करीब एक घंटे तक कच्ची सडक पर जीप चलाई। फिर हाओकिप ने उसे एक बड़े झाऊ के पेड के नीचे रुकने को कहाँ यह थांगलांग कुकी गाँव से थोडा ही पहले था।

जैसे ही हम नीचे उतरे , मिजो युवकों की एक हथियारबंद टुकडी ने हमें घेर लिया। उनमें से एक के कंधे पर कैप्टन का बैज लगा हुआ था। इन युवकों में से कुछ ने माधो सिंह से चाबी छीन ली और उसे एक पेड से बाँध दिया। कप्तान ने हमें दूर एक टीले की चोटी पर बनी झोंपडी की तरफ पीछे-पीछे आने का आदेश दिया। मुख्य रास्ते के दोनों तरफ चट्टानों के पीछे दो हल्की मशीनगनें लगी हुई थीं। हथियारबंद आदमियों की एक और टोली झाडियों के पीछे जा दुबकी।

हमें अंदर ले जाया गया। पाओकाई आगे-आगे थे।

लालजिका सीलो सुलगती आग के पास एक तख्त पर बैठा था। अल्यूमीनियम के एक बर्तन में कुछ हरी सब्जियां और मुर्गे का मांस पक रहा था। उसने मेरी तरफ देखा और तीखी आवाज में बोला।

" मैंने तुम से कहा था कि कोई हथियार ले कर नहीं आना। पर देख रहा हूँ के तुम्हारे पास हथियार है। "

मैंने अपनी पेटी से .9 मिमि स्वचालित बेल्जियन निकाली। उसके साथ ही कमर के क्लिप से अतिरिक्त मैग्जीन भी निकाल कर लकडी के एक तख्ते पर रख दी।

"यह रहा खतरनाक हथियार। मैं देख रहा हूँ कि तुमने हमारे स्वागत के लिए एक पूरी फौज बुला रखी है। क्या तुम इतनी मेहरबानी करोगे कि मेरे ड्राइवर के बंधन खोल दो और उसे कुछ चाय पिलाओ।"

" मैं अपने आदमियों को खतरे में नहीं डाल सकता। तुम भारतीय हमें कभी भी धोखा दे सकते हो।"

"ईश्वर तुम्हारा रक्षक है। तुम्हारे दाहिने हाथ पर उसकी छाप है।" मैंने धर्म के प्रति उसकी कमजोरी को समझते हुए उसे बाइबिल की सूक्ति सुनाई। "तुम्हें किस बात का डर है?"

"बहुत अच्छा कहा बंगाली बाबू।" लालजिका के चेहरे की मांसपेशियाँ फिर सिकुडीं,"हम ईश्वर पर पूरा भरोसा करते हैं। पर भारतीयों पर भरोसा नहीं कर सकते। "

"तब तो पाओकाई," मैंने कुकी नेता से कहा,"हमें लौट चलना चाहिए।"

"रुको,"पाओकाई ने मुझे जबरदस्ती एक कुर्सी पर बैठाया और शर्मा को एक लकडी के तख्ते पर। "अरे लालजिका, मैं समझौते की बातचीत के लिए तुम्हारे पास सब से अच्छे आदमी को लाया हूँ। यह बंगाली बाबू बहुत भरोसे के काबिल हैं। " वह बोला।

एक औरत कमरे में आई। उसने मुर्गे और सब्जियों का गर्मागर्म शोरबा लकड़ी के प्यालों में पेश किया। साथ में कुछ लकड़ी के चम्मच भी थे।

हमने स्वादिष्ट लेकिन तीखी गंध वाला शोरबा पीया और कुछ सिगरेटें भी सुलगाईं। शोरबा पेट में जाने पर मिजाज की गर्मी कुछ कम हुई तो लालजिका खुलने लगा। हम ने

आगे बातचीत करने के तरीके पर और लालजिका भारत सरकार से जो पैकेज चाहता था, उस बारे में बातचीत की।

जब मैं जीप में बैठा तो मैंने 31 महार की एक टुकडी को ऊपर की पहाडी से आते हुए देखा। मैं तुरंत वापस लौटा। मैंने लालजिका को सावधान किया कि वह अपनी हिफाजत के लिए मोलबंग से ऊपर किसी घने जंगल में जा छिपे। उसने इस प्रयास की सराहना की और तेजी से संकरी घाटी में भागा जिस में जाफू की पहाडियों का पानी आकर बहता था। हमारा महार की टुकडी से सामना हुआ। उसका नेतष्त्व एक युवा सिख अधिकारी लेफ्टिनेंट अंगद (बदला हुआ नाम) कर रहा था। वे हमें दो किलोमीटर नीचे मिले। उसने हमें रोक कर खबर दी कि उसे इस इलाके में घूमते हुए एक मिजो दल के अवरोध का आदेश मिला है। उसने मुझे अपनी कैंटीन से थोडी विस्की पिलाई और हम एक-दूसरे को शुभकामना दे कर विदा हुए।अंगद एक अच्छा ऑफिसर था। नगा और मिजो विद्रोही उससे खौफ खाते थे। भूमिगत विद्राहियों के छिपे ठिकानों को ढूढ निकालने की उसमें अद्भुत क्षमता थी। उसका कहना था कि यह सब बटालियन के तांत्रिक का वरदान था। रहस्यमय संसार के उस ओझा को अपनी दिव्य दृष्टि में विद्रोहियों के छिपने के ठिकाने दिख जाते थे। अंगद उसके सपनों में विश्वास रखता था और लगभग ऑख मूद कर उसकी दिव्य दृष्टि का अनुसरण करता था।

लालजिका वाली कार्रवाई का परिणाम लंबी बातचीत और उपराज्यपाल द्वारा प्रदर्शित सूझ-बूझ के बाद सामने आया। उन्होंने दिल्ली को एक उदार पैकेज के लिए राजी कर लिया था। इसमें योग्य लडकों को मणिपुर राइफल्स में शामिल करने और लालजिका व उसके परिवार का अच्छे मुआवजे के साथ पुनर्वास शामिल था। उन्होंने 20 जुलाई 1970 को इम्फाल में औपचारिक आत्मसमर्पण स्वीकार किया। टी.जे. क्विन इस समारोह में आगे-आगे थे। मै अपने काम के तकाजे के मुताबिक पर्दे के पीछे चला गया था।

आई.बी. के डाइरेक्टर और केंद्रीय गृह सचिव ने मेरी इस उपलब्धि पर प्रशंसापत्र भेजे। इससे मुझे बहुत संतोष हुआ। यह वीरता के लिए मिलने वाले पुलिस मेडल से कुछ ही कम, लेकिन मेरे पेशे में मिलने वाला सर्वोच्च सम्मान ही था। मेरा दिल्ली में कोई गॉडफादर नही था। मेरे डेस्क-प्रमुख्न बालेश्वर प्रसाद से मेरी तनातनी को लेकर काफी नाखुश थे। बहरहाल अपना झंडा बुलंद रखकर उसे लहराने के लिए हर किसी को कुछ कीमत तो अदा करनी ही पड़ती है।

मणिपुर से मिजो विद्रोह के खात्मे की मिठास 9 सितंबर 1970 को हमारे पहले पुत्र के जन्म के साथ और भी बढ गई। सुनंदा को इस सौभाग्य पर दोहरी खुशी हो रही थी। बात यह थी कि उसका पहला गर्भ 1969 में स्वास्थ्य सबंधी कुछ जटिलताओं के कारण डाक्टरों ने गिरा दिया था। यह आनंदातिरेक था। मणिपुर हमारे लिए बहुत शुभ स्थान सिद्ध हुआ था।

‹9›

बिछुड़ने की कसक

जब कभी दो लोग मिलते हैं तो वहाँ दरअसल छ लोग मौजूद होते हैं।
एक जो दूसरे को देखता है। दूसरा जो पहले को देखता है।
और वे दोनों जो वास्तव मे है।

विलियम जेम्स

एक दुखद घटना ने अचानक हमारी खुशी में विघ्न डाल दिया। एक प्रतिभाशाली आहोम युवक था, ज्योतिष गोगोई। उसने मेरे साथ भारतीय पुलिस सेवा का वही कोर्स किया था जो मैंने किया था। उसे केंद्रशासित प्रदेश का काडर मिला था पर उसे घर की याद बहुत सताती थी। वह अपनी माँ के पास रहना चाहता था। खुशमिजाज ज्योतिष जितना हजम कर सकता था, उससे कुछ ज्यादा ही पीने लगा था।

सुदूर अंडमान में भेजे जाने से बचने के लिए उसने अस्थायी रूप से मणिपुर राइफल्स में बटालियन कमाँडर का पद प्रतिनियुक्ति पर ले लिया।

वह कोहिमा रोड पर एक बडे बंगले में·अकेला रहता था। मुझे यह तो पता था कि वह पीने का शौकीन है, पर यह अंदाज नहीं था कि उसकी पीने की आदत इस हद तक बढ चुकी है कि स्थिति गंभीर है और उसके कुछ खूबसूरत औरतो के साथ भी सबध हैं।

इदुशेखर शर्मा भी 1962 समूह का एक भारतीय पुलिस सेवा अधिकारी था। वह एक विख्यात मणिपुरी ब्राह्मण द्विजदेव शर्मा का बेटा था। वह ज्योतिष की इस विलासिता में मदद करता था। द्विजदेवमणि शर्मा मणिपुर के पहले मुख्यमत्री रह चुके थे। विशुद्ध देशप्रेमी भारतीय द्विजदेवमणि अपने आई पी एस बेटे के चाल-चलन और अपने छोटे बेटे बॉबी शर्मा के आतंकवादियों से संबंधों से बहुत व्यथित थे। मैं उस पवित्र विभूति का बहुत कृतज्ञ हूँ। उन्होंने मैतेई चरमपंथियों का मुकाबला करने में मेरी बहुत सहायता की थी।

ज्योतिष गोगोई मुझ पर बहुत भरोसा करता था। वह हमेशा अपनी व्यक्तिगत खिड़की मेरे लिए खुली रखता। वह अक्सर आकर अपनी कुंठा की चर्चा किया करता था। दरअसल उसे एक ईसाई लड़की से प्यार हो गया था। वह उसे जीवन साथी बनाना चाहता था, पर उसके परिवार को इस पर आपत्ति थी।

इंदु शर्मा और एक मैतेई लड़की के ब्लैकमेल से परेशान हो कर ज्योतिष गोगोई ने आत्महत्या कर ली। तब मैं मिजोरम सीमा पर एक दूरदराज चौकी थानलोन के दौरे पर था। वहाँ मुझे वायरलेस पर खबर दी गई कि नगा सेना के एक स्वयंभू तांगखुल कर्नल ने उसकी गर्लफ्रेंड से छेडखानी करने के कारण गोगोई को मार डाला है।

मेरे लौटने पर डी.आई.जी. क्विन ने एक और ही कहानी सुनाई। गोगोई ने अपने सिर में गोली मार कर आत्महत्या कर ली थी। इसके लिए वह अकेले ही गाड़ी चला कर कोहिमा रोड के एक निर्जन स्थान पर चला गया था।

इंदुशेखर शर्मा को मैंने अकेले में टोका। उसने सारी बात को सिरे से इनकार कर दिया। अपनी बात के समर्थन में उसने उस मैतई लडकी की लिखी कुछ चिट्ठियाँ भी दिखाईं। इन के मुताबिक गोगोई ने उस युवा महिला एन.सी.सी. ऑफिसर को गर्भवती बनाने का कायरतापूर्ण काम किया था।

गोगोई की मौत का समाचार स्थानीय मीडिया की सुर्खियों में आया। उसमें अंततः दोष नगा विद्राहियों के सिर मढ़ा गया।

सुनंदा ने मुझे यह कह कर तसल्ली दी कि आखिर मेरे दोस्त का नाम शहीदों में तो आया। पर मैं समझता था कि शहीदी के रंग में रंगने से सच्चाई तो बदल नहीं जाएगी। मैं इस अफसोस के साथ मणिपुर से विदा हुआ कि इंदुशेखर शर्मा को कानून की गिरफ्त में नहीं ले सका।

* * * *

मुझे एल हुग्यों के माध्यम से स्वयंभू कर्नल स्टीफन फुनयांग (बदला हुआ नाम) से एक गुप्त संदेश मिला कि गोगोई की मौत के लिए नगा जिम्मेदार न थे। उसने तुसुम खुलेन के पास एक गुप्त मुलाकात के लिए भी अनुरोध किया। यहाँ मैं बताना चाहूंगा कि नगाओं के साथ मेरी मुलाकातें मणिपुर तक ही सीमित न थीं। मैंने नगा समाज से स्वस्थ संबंध बना लिए थे। मेरे उत्तरपूर्व के कार्यभार के समाप्त होने पर भी ये सबंध बने रहे।

तुसुम के लिए कोई निर्धारित मार्ग न था। मैं लेजर आंद्रो की पहाडियों से आगे गाड़ी ले कर निकला और धूलभरे कच्चे रास्ते पर इरिंग नदी के साथ-साथ चला।

मैं एक सिगरेट सुलगाने के लिए रुका। अचानक बाईं तरफ से एक सनसनाती हुई इस्पाती आवाज आई। मुझे अपने दाएं कान के पास से गर्म हवा का एक झोंका गुजरता महसूस हुआ। मैंने एक चट्टान की ओट ले कर अपनी पिस्तौल निकाल ली। मैंने देखा कि हुग्या ने रेंग कर एक नुकीली चट्टान के पीछे मोर्चा ले लिया है।

यह जरूर घात होगी।

मैं साँस रोक कर गोलीबारी जारी रहने का इंतजार करता रहा।

जंगल की वर्दी पहने एक आदमी नाले से बाहर निकला। उसने जीप पर कुछ और गोलियाँ चलाईं। वह नगामी (नगालैंड की एक बोली, जिस में असमिया और बंगाली का विचित्र मिश्रण होता है) में कुछ चिल्लाया।

"मुझे पक्का यकीन है कि वह तांगखुल नहीं है। हम नगामी नहीं बोलते। हम तांगखुल या मैतेई भाषा बोलते है।" हुंग्यो ने कहा।

उसकी बात और ऊपरी नाले से आने वाली गोलियों से मुझे भी विश्वास हो गया कि घात लगाने वाला दल इस इलाके में नया आया है।

'तुसुम यहाँ से कितनी दूर है?"

"करीब तीन किलोमीटर और। लेकिन हम वहाँ नहीं पहुँच सकते क्योंकि रास्ता सूखे नाले से हो कर जाता है।"

हमने एक घंटा बड़ी कशमकश में गुजारा। तभी हमने देखा कि विलेज वॉलंटियर फोर्स के करीब बीस लडके घात वाली जगह की ओर दौडे चले आ रहे हैं। उन्होंने दो इंच की मॉर्टार तोप से गोले दागे। फिर राइफल से ग्रिनेड छोड़े और हल्की मशीनगन चलाई। नगा टुकड़ी ने अस्थिरता के साथ कुछ गोलियॉं चलाईं। फिर वे जंगल में गायब हो गए क्योंकि वी.वी एफ के जवान उन से अधिक थे।

मैं खडा हो कर हिंदी में चिल्लाया कि मैं एक भारतीय अधिकारी हूँ। नगा सेना ने मेरी जीप पर घात लगाई है। वी वी.एफ. का प्लाटून कमॉडर फैसला नहीं कर पा रहा था कि मेरी बात पर विश्वास करे या नहीं।

"अरे राउलिंग," तभी हुंग्यो ने उस लडके से चिल्ला कर कहा,"मैं हुंग्यो चाचा। मेरे साथ मेरे साहब हैं। हमें तुसुम खलेन तक छोड कर आ।"

लडके ने हुंग्यो की आवाज पहचान ली।

राउलिग सोराहुंग का एक प्यारा-सा युवक था। वह हमें तुसुम की बाहरी सीमा तक छोड अपने शिविर को लौट गया।

गॉव के मुखिया और पादरी मैथ्यू काराकाल ने हमारा स्वागत किया। वह नगालैंड की 16वीं जाति मलयाली का था। केरल के बहुत से पादरी और अध्यापक आदिवासियों, विशेष रूप से नगाओं, का दिल जीतने में सफल हो गए थे। बहुत बार मेरे जैसे सचालक इन प्रतिभाशाली भारतीयों का प्रयोग दूर-दराज के गॉवों में घुसपैठ बनाने के लिए करते थे।

स्टीफन फुचांग से हम देर रात गॉव के गिरजाघर में मिले। उसके पास एक जबरदस्त खबर थी। नगा संघीय सरकार के काल्पनिक मुख्यालय ओकिंग में पाकिस्तान से दो दूत आए थे। उन्हें यिमचुंगेर क्षेत्र में कहीं ठहराया गया था। वहाँ उन्होंने नगा संघीय सरकार के प्रेसिडेंट श्री जाशी हुइरे, महत्वपूर्ण किलोंसारों (मंत्रियों) तातारों (सांसदों) व सेना के जनरलों से सलाह-मशविरा करना था। आई एस आई. ने नगा संघीय सरकार से कहा था कि वह पूर्वी पाकिस्तान में ट्रेनिंग के लिए और चीनी हथियारों की खेप लेने के लिए नई टोलियों को वहॉं भेजें।

ब्रिगेडियर थिउंसिले और कर्नल सुरोजोली अगले महीने दो टोलियों को पूर्वी पाकिस्तान ले जाएँगे। वे पाकिस्तान में घुसने के लिए अंगामी, जेलियाग, उत्तरी कछार पहाडियों और सिल्चर का रास्ता अपनाएँगे। दो और दल वेसाल्टो और वेदाई के नेतृत्व में चीन जाने को लबे मार्च के लिए तैयार किए जा रहे हैं।

नगा संघीय सरकार ने मिदान पेयुस (क्षेत्रीय गवर्नरों) और रजा पेयुस (उपक्षेत्रीय गवर्नरों) और रुना पेयुस (ग्राम पंचायत प्रमुखों) को गाँवों से नए रंगरुट भर्ती करने को कहा है। उन्हें नए सिरे से राष्ट्रीय रक्षा कर इकट्ठा करने को भी कहा गया है।

"पाकिस्तान ऐसी हरकत किस उद्देश्य से कर रहा है?"

"आप बेहतर जानते होंगे। मेरे खयाल में पाकिस्तान उत्तरपूर्व में लडाई को बढाना चाहता है। वह और चीन भारतीय सेना को इस क्षेत्र में उलझाए रखना चाहते हैं। पूर्वी पाकिस्तान में उनको बडी कठिनाइयों का सामना करना पड रहा है जिसमें वे भारतीय हस्तक्षेप कतई पसंद नहीं करते।"

"आपने अपने क्षेत्र में अंगामी क्यों तैनात किए हैं? उन्होंने हमारी जीप पर गोलियाँ चलाईं।"

"उसके लिए खेद है। रंगरूट भर्ती करने के काम में तेजी लाने के लिए जेड. राम्यो (किलोंसार-मंत्री और जार हो हो - राष्ट्रीय असेंबली के निचले सदन, के भूतपूर्व अध्यक्ष थे) मणिपुर की कार्रवाई देख रहे थे। पर वह बीमार हो गए। अब उन्होंने मेरी टीम की सहायता के लिए कर्नल रजानाऊ अंगामी को लगाया है।

मैंने रजानाऊ पर घात लगाने की संभावना पर चर्चा की। स्टीफन ने अपनी सुरक्षा की दलील देते हुए इसका विरोध किया। उन्होंने मुझे अपना वादा भी याद दिलाया। मैंने उन को उखरूल में भूमिगत खतरे का मुकाबला करने में मेरे साथ सहयोग के बदले दक्षिणी प्रायद्वीप के किसी मेडिकल कॉलेज में सीट दिलाने का वादा किया था।

हमने गाय, सूअर, हिरन और मुर्गे के माँस के साथ बढिया रात का खाना खाया। मैं अपने साथ रम की पेटी लाया था। इसने वातावरण में गर्मजोशी भरने में मदद की। अगली सुबह मुझे इम्फाल के पूर्व में आंद्रो की तलहटी तक पहुँचा दिया गया।

लौटने से पहले स्टीफन ने मुझसे एक और वादा ले लिया कि मैं जेड. राम्यो के इलाज का प्रबंध करूँगा जिन्हें डाइबिटीज और दिल की बीमारी हो गई थी।

स्टीफन से मेरी मुलाकात का संबंध समरकौशल से न था। उन्होंने मुझे ढेर सारी गुप्त सामरिक जानकारी दी। मैंने भारतीय उपमहाद्वीप में सुरक्षा की स्थिति और नगा सेना के पाकिस्तान में घुसने और लौटने के संभावित मार्गों पर चर्चा करने में अपने स्टाफ के अधिकारियों के साथ लगातार पाँच घटे बैठक की। हमने नक्शे पर विभिन्न रास्तों पर निशान लगाए और अपने क्षेत्रीय विस्तार में परिवर्तन किए।

सारे क्षेत्र में एस.आई.बी. का विस्तार बहुत विरल था। पूरे थामेंगलौंग जिले के लिए हमारी सिर्फ दो इंटेलिजेंस चौकियाँ थीं। कोहिमा के दल के पास नगालैंड के जेलियांग क्षेत्र में सिर्फ तीन बाहरी चौकियाँ थीं। असम में एस.आई.बी. के पास उत्तर कछार पहाडियों में बहुत थोडी और छितराई हुई गुप्तचर व्यवस्था थी। हमारे पास रोजमर्रा के इस्तेमाल वाले उच्च आवृत्ति संचार सेटों के अलावा गुप्तचरी के लिए बहुत कम तकनीकी उपकरण थे। हमें इस तरह के रास्तों पर चलने के लिए गाडियों की जरूरत थी ताकि आवागमन तेज हो। साथ ही शीघ्र संचार के लिए अति उच्च आवृत्ति के सेट दरकार थे। मुझे बताया गया कि दिल्ली से हमें सिर्फ तीन बैकपैक उच्च आवृत्ति सेट मिल सकते थे जो ध्वनि संप्रेषण की सुविधा रखते हों। कडी सौदेबाजी के बाद मुझे अति उच्च आवृत्ति वाले दो मॉनीटरिंग सेट प्राप्त हुए। मैंने सोचा कि इनसे मुझे नगा टुकड़ियों की रेडियो बातचीत सुनने में सहायता मिलेगी।

हमारी जनगुप्तचरी बहुत ही कमजोर थी। मैंने तुरंत अपने कुछ जेलियांग, रोंगमई और तांगखुल दोस्तों से बातचीत की। मणिपुर के जिरीबाम क्षेत्र के कुछ विश्वस्त सूत्रों से भी मैंने चर्चा की। यह क्षेत्र मिजोरम और एन.सी. की पहाडियों की सीमा को छूता था।

इतनी पृष्ठभूमि तैयार कर लेने के बाद मैं कोहिमा गया। वहाँ मैंने चीन को दो दल भेजे जाने के सामरिक महत्व पर चर्चा की। मेरे साथी जे.एन. राय एक अनुभवी इंटेलिजेंस संचालक थे। मेरे पास यह मानने के पर्याप्त कारण थे कि उन्होंने भूमिगत नगाओं के प्रयास विफल करने के लिए आवश्यक कदम उठाए होंगे। उन्होंने मुझे बताया कि मेरी खबर शायद सही नहीं है। उनके पास ए.जेड. फिजो के जाशी हुइरे को लिखे कुछ पत्र थे। इनमें नगा संघीय सरकार और एन.एन.सी. को भविष्य में भारत-पाक युद्ध होने पर तटस्थ रहने की सलाह दी गई थी। मैं राय के इस रहस्य खोलने पर चक्कर में पड़ गया। पर मैंने अपनी चौकसी में ढील नहीं

दी। बहुत बाद मे जब मैं कोहिमा में राय के स्थान पर आया, तब मुझे फिजो और हुइरे तथा अन्य नगा नेताओं के बीच हुए पत्राचार के रहस्य का पता चला।

मुझे जरा भी संदेह न था कि उपमहाद्वीप गंभीर सघर्ष की तरफ बढ रहा है। 25 मार्च 1971 को पूर्वी पाकिस्तान मे सेना के दमन के बाद पूर्वी पाकिस्तान की पुलिस, ई.पी.आर, अंसार और पूर्वी बंगाल रेजिमेंट्स ने विद्रोह का झंडा बुलद कर दिया था। भारत और सोवियत संघ ने काफी पहले ही बंगाल के पूर्वी पाकिस्तानियों को बडी संख्या में ट्रेनिंग देकर उन को छोटे और मंझले हथियार दे दिए थे। भारतीय सेना के कुछ नियमित जवान तथा अर्द्धसैनिक बलो के कुछ तत्व भी बगाली क्रांतिकारी सेना मे शामिल हो गए थे। 11 अप्रैल 1971 को इन को मुक्ति वाहिनी के नाम से औपचारिक रूप दे दिया गया। कर्नल एम.ए जी. उस्मानी (अ प्रा.) इसके सेनाध्यक्ष थे।

मुझे मालूम था कि हमारे क्षेत्र मे 8वीं पहाडी डिवीजन के कुछ तत्वों को बंगाली मुक्ति सेना को ट्रेनिंग देने लिए लगाया गया था। ब्रिगेडियर शहबेग सिंह, जिन्हें मैं जखामा के एक उत्साही अधिकारी के तौर पर जानता था, इसमें किसी किंवदन्ती की तरह उभरे। बाद में वह सिख संत से विद्रोही बने जरनैल सिंह भिंडरांवाले के साथ सांठगांठ करके बदनाम भी हुए।

एक संवेदनशील कार्रवाई के दौरान मैं कछार-पूर्वी पाकिस्तान सीमा पर भारत द्वारा चलाए जा रहे ऐसे कुछ शिविरों मे गया। मुक्ति वाहिनी के कुछ तत्वों के थोडे से साथ ने मुझे पक्का विश्वास दिला दिया कि पाकिस्तान ने बगालियों पर अपना हर राजनीतिक व राजनयिक हथकडा आजमा लिया है। बाग्लादेश पूर्वी पाकिस्तान के बगालियों को पश्चिमी पाकिस्तान के पंजाबी और सिंधी शासकों से उपहार में मिलना अब तय है। पश्चिमी पाकिस्तान के मुसलमान नए मुस्लिम राष्ट्र के लाभ अपने बंगाली भाइयों के साथ बॉटने को तैयार न थे। 1905-1906 में पूर्वी बगाल की भूमि पर अंग्रेजों द्वारा भारतीयों को धर्म के आधार पर बॉटने के लिए जो दो राष्ट्र की धारणा खडी की गई थी, वह चरमरा कर गिरने लगी थी।

पाकिस्तान के लिए उत्तरपूर्व के विद्राही गुटो से सपर्क करके भारत के लिए परेशानियॉं खडी करना स्वाभाविक था। मैं अपने कोहिमा के सहयोगियो से सहमत न था कि फिजो को भारत से सहानुभूति हो गई है। मैं अपनी तैयारियो में लगा रहा। इम्फाल एस.आई.बी के अधिकारी नगा गुटों का पहाड़ी से पहाडी तक और घाटी से घाटी तक पीछा करने में सफल रहे। अपने सचल वायरलेस सेटों और अति उच्च आवृत्ति के श्रवण उपकरणों के साथ वे टेढे-मेढे रास्तों पर जीप में और कई बार खच्चरों पर आडे-तिरछे चल कर उन का पीछा करते रहे। हम पाकिस्तान से आधुनिक हथियार लेकर आने वाले तीन नगा सैन्य दलों, जिनकी कुल सख्या 500 के लगभग थी, के आने-जाने का सारा आँखों देखा हाल निरंतर बता रहे थे। ब्रिगेडियर थिनूसिले अंगामी के नेतृत्व में, जो बाद में जनरल बने, कुछ नगा सैन्यदल ढाका में रह गए थे। इस शहर मे अपने विजयी प्रवेश के समय भारतीय सेना ने पाकिस्तान से ठहरे इन नगा दलों को पकडा।

नगा-पाकिस्तान गठजोड और उत्तरपूर्व में अस्थिरता पैदा करने के पाकिस्तानी सामरिक हस्तक्षेप के बारे में मेरी अनुमानित धारणा सच साबित हुई। इस बीच आर.पी. जोशी, एम.एन. गाडगिल के स्थान पर गए । वे भी जमीन से जुडे आदमी थे। लेकिन गुप्तचर समुदाय में नए थे। उन्होंने मेरी गुप्त सूचनाओं की कद्र की और दिल्ली से सिफारिश की कि मुझे विशेष अवार्ड दिया जाए। मेरी राय में मेरे एल. हुग्यो, लखिंदर सिंह, मनी सिंह तथा कुछ दूसरे युवा साहसी

जूनियर अफसरों को भी शाबाशी मिलनी चाहिए थी। आई.बी. की तकनीकी यूनिट के कुछ अधिकारियों का भी विशेष उल्लेख होना चाहिए था। नगा दलों के आपसी संचार को सुनने में एस.आई.बी. के तकनीकी डिवीजन के दिए अति उच्च आवृत्ति के श्रवण यंत्रों का पूरा-पूरा फायदा उठाया गया था।

* * * *

मुझे पता नहीं था कि इनमें से एक सेट एक और संदिग्ध मामले में काम आएगा। एक सुबह एम.एस. 44 चौकी का मेरा एक अधिकारी मेरे दफ्तर में आया। यह चौकी इम्फाल और तामेंग्लांग के बीच पडती थी। उसकी जेब में दो ऑडियो टेप थे। उसने 31 महार के मुख्यालय, उसके गश्ती दलों और लीमाँखोंग स्थित 59 पहाडी ब्रिगेड के बीच अति उच्च आवृत्ति पर होने वाली बातें सुन ली थीं।

हम जरा देर के लिए फिर से युवा अंगद की चर्चा करेंगे। उसकी बटालियन का पुजारी तांत्रिक शक्तियाँ रखने का दावा करता था।

उस दिन अंगद एक गश्ती दल लेकर निकला था। उसे तांत्रिक ने एक संदिग्ध विद्रोही के घर तक जाने का निर्देश दिया। पुजारी ने दावा किया कि देवी ने उसे स्पष्ट दिखाया है कि उस विद्रोही के घर में हथियार छिपे हुए हैं। अंगद ने मामले को हद तक खींचते हुए उस आदमी को उल्टा लटका कर इतनी बुरी तरह मारा कि उसने दम तोड दिया। अंगद घबरा गया। 31 महार के मुख्यालय में भी घबराहट फैल गई। उन्होंने उस ग्रामीण का शव जला कर उसकी हड्डियाँ पास की नदी में डाल दीं।

टेप सुन कर डर और चिंता की कंपकंपी-सी दौड गई। बेचारे अंगद के लिए मेरे मन में दया उमड आई। मैंने मामले की सूचना आई.बी. को दी और इस मामले में शांत रहने का फैसला किया। ब्रिगेडियर ए.के. सिन्हा को परेशानी में डालना मुझे अच्छा नहीं लगा। मैं उनका आदर करता था और उनकी बौद्धिकता से प्रभावित था।

लेकिन गॉव के बडों ने कुछ और ही सोच रखा था। वे मुख्यमंत्री मुहम्मद अलीमुद्दीन और उपराज्यपाल डी.आर. कोहली के पास गए। टी.एस. मूर्ति ने मुझे मुलाकात के लिए राजनिवास बुलाया। मेरी पेशे की ईमानदारी मेरे पहले के शांत रहने के फैसले में आडे आई। मैंने उन को वास्तविक जानकारी दी और बताया कि टेप अब भी मेरे पास हैं। उपराज्यपाल ने डी.आई. जी. क्विन और टी.एस. मूर्ति को आदेश दिया कि मेरे कार्यालय में जाकर टेप सुनें और उसका आलेख ले लें। मैंने कोहिमा से विचार-विमर्श करके उन्हे ऐसा करने दिया। इसके बडे विध्वंसक परिणाम निकले।

ब्रिगेडियर सिन्हा मेरे घर आए। उन्होंने मुझसे टेप की कापी देने का अनुरोध किया। मैंने दिल्ली से अनुमति मिलने पर टेप की कापियाँ उन को दे दीं। बाद में मुझे बताया गया कि कमाँडिग आफिसर, उनके नंबर दो आफिसर और अंगद को नौकरी से बर्खास्त कर दिया गया। अंगद को थोड़े समय का कारावास भी भुगतना पडा। 31 महार को भंग कर दिया गया।

मुझे बताना है कि ब्रिगेडियर सिन्हा ने किसी भी समय मुझ पर सुबूत में गडबडी करने के लिए दबाव नहीं डाला। उन्होंने बिलकुल न्यायोचित व्यवहार किया। उपराज्यपाल ने भी नागरिक नियमों का अनुसरण किया। बाद मे वह शोक-संतप्त परिवार को सांत्वना देने के लिए उस गाँव में भी गए।

* * * *

कुछ विशिष्ट लोगों की सक्षिप्त चर्चा के बिना मैं अपने मणिपुरी नगा मित्रो का जिक्र अधूरा नही छोड सकता। उनमे से कुछ आज भी मौजूद है। मुझे अपने मुख्यभूमि के शीर्ष देशभक्तो और स्वाधीनता सेनानियो से उनकी तुलना करने मे जरा भी सकोच नही। वे पहले की तरह आज भी विघटनकारी शक्तियो के विरुद्ध अपनी तरह का सघर्ष करने मे लगे हैं और देश की स्वाधीनता की रक्षा के लिए प्रयत्नशील है।

मेरी अब्राहम (बदला हुआ नाम) से सयोगवश मुलाकात हुई थी जो बाद मे दोस्ती में बदल गई। वह एक अल्पसख्यक नगा जाति के महत्वपूर्ण सदस्य थे। ये लोग तेंगनुपाल (अब चदेल) के दक्षिण जिले मे रहते थे।

इस मुलाकात के कुछ दिन बाद मुझे कोहिमा से सदेश मिला। मुझसे कहा गया कि मैं अपने एजेटो द्वारा ओकिग मे ततार होहो(भूमिगत नगा ससद के निचले सदन) की होने वाली महत्वपूर्ण बैठक की सूचना एकत्र करूँ। ओकिग का कोई वजूद न था। यह नाम भूमिगत नगा आदोलन की चलती-फिरती राजधानी को दिया गया था। उस समय तक उत्तरपूर्व के आई बी. सगठन का ततार होहो के किसी सदस्य से कोई सपर्क न था।

मैंने अपने मिदान पूयू मित्र से सपर्क किया। इस उम्मीद मे कि शायद वह होहो मीटिग मे विशेष रूप से आमत्रित होगा। उसने सदेशवाहक के माध्यम से जवाब नही दिया। उसने सुबह चार बजे रुवनामई गॉव के जगल के नीचे वाले हिस्से मे मिलने को कहा।

मेरा एक ऑफिसर सी के पी सिन्हा मुझे वहाँ ले गया। मेरा मिदन पेयू दोस्त नेफ्यूमो (असली नाम नही) कट्टी शार्क की बोतल के इतजार मे बैठा था, जो मैं उसके लिए ले जाया करता था। दिन हो या रात वह किसी भी समय बोतल का स्वागत करता था।

आने वाली तातर होहो मीटिग के महत्व पर प्रकाश डालने के बाद उसने मेरे कान मे फुस-फुसाकर कहा कि मैं अब्राहम से मीटिग की रिपोर्ट देने को कहूँ। वह मणिपुर के 10 होहो सदस्यो मे से एक था।

'क्या तुम सच कह रहे हो? वह तो भूमिगत नही है।'

"छिपने का सब से अच्छा तरीका तो यही है। तुम उसके पास जाओ। प्रेम से बात करो। वह आई एन ए का पुराना सिपाही है।

"ऐसा कैसे?'

'यह एक पुरानी कहानी है।

वह भुना गोश्त चबाते हुए बडे सधे स्वर मे बोल रहा था।

सुबह पॉच बजे तक नेफ्यूमो ने पूरी बोतल खत्म कर ली थी। अब वह घने जगल मे गुम होने को तैयार था। हमने दूसरा रास्ता पकडा और एक घटे की थका देने वाली पदयात्रा के बाद डाकबगले पहुँचे।

इम्फाल लौटने के बाद मैंने हुग्यो से कहा कि वह अब्राहम से मुलाकात का बदोबस्त करे। वृद्ध दपती बेहिचक तैयार हो गए। उन्होने मुझे बढ़िया फ्रूटकेक के साथ चाय पिलाई।

जब मैंने फुस-फुसाकर कहा कि मुझे भूमिगत नगा सगठनमे उनकी असली स्थिति का पता है तो अब्राहमने विरोध नहीं किया। वह अपने कलकत्ता के दिनो की याद मे खो गए जब उनका एक बगाली लडकी से प्यार था। इस पर हम लोग जी भर के हसे। अतत वह अगामी क्षेत्र के बीचोबीच होने वाली तातार होहो की मीटिग मे जाने को तैयार हो गए और मुझसे कहा कि खर्च के लिए तीन सौ रुपए अदा करूँ।

कोहिमा ने मेरी पेशकश को गंभीरता से नहीं लिया। उन्होंने ने जिद की कि मैं खर्च की मंजूरी से पहले होहो-सदस्य की पहचान बताऊँ। दिल्ली ने भी कुछ ऐसा ही कहा। मैं अपने नए दोस्त की पहचान बताने को तैयार न था। मुझे कोहिमा दफ्तर से, खासतौर पर दीमापुर में तैनात एक ऑफिसर से बात खुल जाने का डर था। मैंने खर्चा अपनी जेब से भर दिया। फिर मैंने अब्राहम को नगा मामलों की मुझे जो कुछ सीमित जानकारी थी, उसके आधार पर सब कुछ समझा दिया।

अब्राहम दो हफ्तों के बाद लौटे। वह एन.एन.सी., नगा संघीय सरकार ओर नगा सेना के बारे में ढेरों गुप्त सूचनाएँ लेकर आए थे। प्रमाण के लिए उनके पास आधिकारिक दस्तावेज भी थे। उस सारी सामग्री का अध्ययन करके मुझे दिल्ली और कोहिमा के लिए रिपोर्ट बनाने में तीन दिन लगे। मुझे पता चला कि पिछले दस वर्षों में किसी होहो मीटिंग की पूरी जानकारी मुहैया कराने वाले अब्राहम पहले नगा थे। अंततः इस सारी कार्रवाई के लिए सात सौ रुपए की मंजूरी दी गई और दिल्ली से एक प्रशंसापत्र भी आया।

मुझे यहाँ स्वीकार करना चाहिए कि अब्राहम और उनके सहयोगी काटुनांग जेलियांग (असली नाम नहीं) ने, जो कि काटुनांग जेलियांग क्षेत्र के नगा सेनाध्यक्ष थे, मणिपुर के तामेंगलांग जिले व कुछ हद तक एन.सी. हिल्स के सीमावर्ती क्षेत्र में भूमिगत हरकतों को कम करने में महत्वपूर्ण सेवा दी। अब्राहम कट्टर देशभक्त थे। पर स्वाधीन भारत ने उनकी उपेक्षा की जैसा कि उत्तरपूर्व के और भी बहुत से स्वाधीनता सेनानियों के साथ हुआ।

मैं गुप्तचर बिरादरी के नियमों का उल्लंघन करते हुए यहाँ कुछ नगा और गैर-नगा नेताओं की मूल्यवान सेवाओं का भी जिक्र करना चाहूँगा।

जन्मजात समाजवादी से कांग्रेसी बने रिशांग केइशिंग, के. एन्वी, स्टीफन अंगकाग, आर्थर लुईखाम, इन सभी तांगखुल नगा नेताओं ने तांगखुल क्षेत्र में नगा विघटनकारी आंदोलन को कम करने में महत्वपूर्ण सेवाएँ दीं। इनमें से कुछ ने राजनीतिक सत्ता का स्वाद भी चखा। मैं आज भी इनमें से कुछ के संपर्क मे हूँ।

गैर नगा क्षेत्रों में एन गाउजागिन, होल्खोमॉग हाओकिप, मोनो भोयाल और के. काकुथोन सरीखे राष्ट्रवादी नेताओं ने चुराचादपुर के अविभाजित जिले और तामेंगलांग व जिरिबाम के सीमावर्ती जिलों में नगा व एम.एन.एफ. के दबाव को सीमित करने में मेरी बहुत सहायता की। वे पेशे वाले दोस्त न थे। उन्हें आई.बी. के गुप्त कोष से मिलने वाली तुच्छ राशि की जरूरत न थी। वे अपनी इच्छा से प्रेरित थे। मैं मणिपुर के गैर-नगा आदिवासियों और नगा व मिजो विद्रोहियों के बीच एक पत्थर की मजबूत दीवार खडी करने में सफल रहा। चुराचांदपुर की पहाड़ियाँ मुंबई के चौपाटी समुद्रतट से अधिक सुरक्षित हो गई थीं।

अफसोस है कि आई.बी. के बाद के प्रतिनिधियों और राज्य सरकार के चलाने वालों ने वर्षों के परिश्रम से बनाए गए इस ढाँचे को बरकरार नहीं रखा। अब यह सुनने में मजाक नही लगता कि एन.एस.सी.एन. (आई.एम.) ने अपनी कार्रवाइयों का दायरा सुगनू , चंदेल व चुराचांदपुर की पहाड़ियों तक फैला लिया है, या फिर मैतेई उग्रपंथियों ने घाटी के आसपास की पहाड़ियों में अपनी जड़ें जमा ली हैं। साहसी राष्ट्रवादी पष्ठभूमि में लुप्त होते जा रहे हैं। वे राजनीतिक सौदेबाजों और लोभी प्रशासकों के लिए रास्ता छोड रहे हैं। दुनिया बदलती है लेकिन उत्तरपूर्व में यह कुछ ज्यादा ही तेजी से बदली है और बेहतरी की तरफ नहीं बदली है।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना जरूरी है कि मैतेई समाज की मुख्य धारा अलग-थलग होने के बावजूद भारत के साथ ऐतिहासिक व सांस्कृतिक सबधों से जुड़ी रही। उनमें से अधिकांश ने भारत के साथ विलय का स्वागत किया था। उनमें से कुछ उन्नति विरोधी और पुनरुत्थानवादी ही मैतेई राज के सुनहरे दिनों को लौटाने के सपने देखते थे।

द्विजमणिदेव शर्मा जैसे प्रखर देशभक्तों के अतिरिक्त मोइरांग कोइरंग सिंह,एच. नीलोमणि सिंह, आर.के रणवीर सिंह, आर.के बीरचंद्र सिंह तथा कुछ सी.पी.आई. नेताओं में मैंने गहरा देशप्रेम देखा। इनमें से मेघचंद्र सिंह का उल्लेख विशेष रूप से किया जाना चाहिए। अडिग पत्रकार जयचंद्र सिह ने भी बडी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई हालाकि बालेश्वर प्रसाद ने उनका बहुत अधिक अपमान किया।

विशेष सेवा ब्यूरो के अधिकारी आर के माधुर्यजीत सिह ने बडी वीरता और साहस का परिचय दिया, जबकि उनके बेटे आर.के रोनान और आर के मेघेन भटक कर मैतेई क्रांतिकारियों के खेमे में पहुँच गए थे। आर के मेघेन (सना याइमा) बाद मे यूनाइटेड नेशनल लिबरेशन फोर्स का महासचिव बना। वह ट्रेनिग और हथियारों के लिए बर्मा भी गया। माधुर्यजीत ने मेरी मेघेन और रोनान से मुलाकात भी करवाई। मैंने उन को मुख्यधारा मे वापस लाने का पूरा प्रयास किया। पर वे पहले से ही पाकिस्तानी आई एस आई और चीनी सिक्योरिटी ब्यूरो के कुछ एजेंटों के सपर्क में थे। था. मुइवा ने भी उन पर अपना असर छोडा था। उन का भारत से स्वतंत्र हो कर उत्तरपूर्व आदिवासी समुदाय के लिए समाजवादी गणतत्र स्थापित करने की संभावना में दृढ विश्वास था। मुइवा बाद का स्वयंभू फिजो था। उसीने शुरू मे मैतेई युवको संपर्क कराया था। उसके बृहत्तर नगालैंड के बेमानी दावे को कुछ गलत इरादे रखने वाले प्रशासक और आसानी से अपना मतलब हल करने के इच्छुक राजनीतिज्ञ ही हवा दे रहे हैं।

एक गुप्तचर कर्मी की हैसियत से मैं कुछ मैतेई युवको का पता लगाने और उन्हें प्रेरित करने में सफल रहा जिन्होंने युवकों को पुनः मुख्यधारा से जोडने का बीडा उठाया था। उनमे से कुछ बाद मे सक्रिय राजनीति मे आए। पर चीन और पकिस्तान परस्त पीपुल्स लिबरेशन आर्मी,पीपुल्स लिबरेशन आर्मी ऑफ कागलीपाक, (पी आर.ई पी.ए के), कांगलीपाक कम्यूनिस्ट पार्टी, रोइरेई लिबरेशन फ्रट, कांगलीपाक सोशलिस्ट आर्मी, लाल सेना, रेवोल्यूश्नरी पीपुल्स फ्रंट और इडो-बर्मा रेवोल्यूश्नरी फ्रंट जैसे संगठनों के उदय ने उनकी कोशिशों को व्यर्थ कर दिया। मणिपुर में मुख्यधारा की राजनीतिक शक्तियों और दिल्ली के नीतिनिर्धारको ने आंदोलन को अब भी कानून-व्यवस्था की समस्या माना हुआ था। और अधिक सेना तैनात की जा रही थी। कम आर्थिक विकास किया जा रहा था। अवसरों के अभाव और बेरोजगारी से त्रस्त मैतेई युवक अधिक से अधिक सख्या में आतंकवादियों में शामिल हो रहे थे। वे भारत सरकार और एन.एस.सी.एन (आई.एम.) में चल रही वार्ता पर नजर टिकाए हुए थे।

मेरी बाद की मणिपुर यात्रा में मुझे आभास हुआ कि मैतेई युवक राजनीतिक छल-प्रपंच, सर्वव्यापी भ्रष्टाचार और दिल्ली के उदासीन रवैए से तंग आ चुके थे। उनमें से कुछ का आतंकवादी गतिविधियों से मोहभंग हो गया था लेकिन यह समझ नहीं पा रहे थे कि अपने कदम वापस कैसे लें। मणिपुर मेरी नजर में एक अधर में लटकी हुई चट्टान थी। वह दिल्ली से सार्थक रवैए और अपने राजनीतिक खिवैयों से बेहतर नाव खेने के इंतजार में थी। इस पीड़ित राज्य को जरूरत थी दुख-दर्द दूर करने के सच्चे मरहम की जिसमें बृहत्तर नगालैंड की माँग के खतरे से भरा विभाजन का डर न हो।

इस उपचार में बेहतर संचार, उद्योगीकरण, मुख्य भारतभूमि और विदेशों में उसके उत्पादों के लिए सहज व सरल विक्रय की व्यवस्था, क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार का निराकरण तथा मुख्यभूमि के राजनीतिक व सामाजिक दर्शन में सुदूर पूर्व भारत की भावनाओं का समाहित किया जाना शामिल होना चाहिए। भारतीयों को अपने व्यवहार से यह सिद्ध करना होगा कि वे सर्वथा साथ रहने योग्य हैं। उत्तरपूर्व एवं जातीयता से सुलगते अन्य क्षेत्रों को यह एहसास कराया जाना जरूरी है कि भारत भुलाए जा चुके साम्राज्य से भिन्न है। किसी देश के इतिहास व भूगोल का निर्धारण उसके अपने नागरिकों की रक्षा व उनका विकास करने की क्षमता से होता है न कि उसके संविधान, कानून, सेना, नैतिकता या देशभक्ति की लफ्फाजी से।

क्या स्वाधीनता बाद का भारत राष्ट्र के इस सार्वभौम सत्य की कसौटी पर खरा उतरा है?

* * * *

मैं जानता हूँ कि मणिपुर में मुझे जो अनुभव हुए उन सब का लेखाजोखा मुझे पेश नहीं करना है। मणिपुर के अपने अनुभवों की कहानी को मुझे कहीं तो समाप्त करना चाहिए। इसलिए अब हम गुप्तचर संगठनों के कार्यकलाप के अंधेरे पक्ष की तरफ लौटते हैं। इस विवरण में 'मैं' का प्रयोग आत्मश्लाघा के लिए नहीं किया जा रहा है। यह तो एक निश्चित संदेश देने का माध्यम है। यह संदेश आज के शासकों द्वारा गुप्तचर संगठनों के खुलेआम दुरुपयोग का है। भारतीय सत्तारूढ़ वर्ग इंटेलिजेंस ब्यूरो जैसी एजेंसियों को सरकारी विभाग मानता रहा है। वे संसद के किसी अधिनियम से नियंत्रित नहीं हैं। वे किसी वैधानिक संस्था के प्रति जवाबदेह नहीं सिवाय प्रधानमंत्री और गृहमंत्री के। भारतीयों को यह जानने का हक है कि उनके शासक व कारिंदे, आई.बी.,रॉ या सी.बी.आई. जैसी अनुचरियों के माध्यम से देश की रक्षा करने के नाम पर उन का धन कैसे खर्च कर रहे हैं।

मेरी प्रिय कर्मस्थली मणिपुर के भाग्य में शांतिपूर्वक विकास करना नहीं लिखा था। राज्य के लिए माँग का आंदोलन हिचकोलों भरा था। उसमें अक्सर संवैधानिक प्रक्रिया से पहले हिंसा होती थी। पाकिस्तान के साथ होने वाले युद्ध के मंडराते साए ने 3 सितंबर 1971 को इंदिरा गाँधी को लोकसभा में यह घोषणा करने को विवश कर दिया कि उनकी सरकार ने मणिपुर की जनता की माँग को सिद्धांत रूप में स्वीकार कर लिया है। यह रियासत के भारत में विलय के 22 साल बाद हुआ। जैसा कि मैं पहले बता चुका हूँ, 21 जनवरी 1972 को इंदिरा गाँधी ने मणिपुर का उद्घाटन किया। बी.के. नेहरू को राज्यपाल नियुक्त किया गया लेकिन डी. आर. कोहली को भी कुछ समय के लिए बने रहने को कहा गया।

बहरहाल पर्दे के पीछे कांग्रेस पार्टी और इंदिरा गाँधी की सरकार ने नए राज्य के उद्घाटन से पहले ही राज्य में कांग्रेस सरकार कायम करने की कोशिशों में कोई कसर नहीं छोड़ी।

इंदिरा गाँधी के कार्य-दर्शन में यह खेल नया न था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष की हैसियत से उन्होंने यह खेल केरल से शुरू किया था। उनके छोटे-बडे राजनीतिक प्रतिद्वंद्वियों ने सत्ता के इस नए खेल की नकल की। इसने भारत के वांछित संघीय स्वरूप की संवैधानिक वरीयता को बहुत क्षति पहुँचाई।

मैंने यह कभी नहीं सोचा था कि मणिपुर जैसे छोटे से राज्य में दिल्ली के बड़े खिलाड़ी अपना राजनीतिक स्वार्थ सिद्ध करने के लिए ऐसा निरंकुश खेल खेलेंगे। मणिपुर नगा विद्रोह और घाटी के हताश व क्षुब्ध युवाओं की हिंसक कार्रवाइयों का सामना करने के कगार पर था।

उसे निरंतर आर्थिक प्रगति की आवश्यकता थी, राजनीतिक छल-प्रपंच की नहीं। अगर जनता उसे सत्ता देने से इनकार कर दे तो कांग्रेस पार्टी सन्नाटे के भय से त्रस्त हो जाती है। मणिपुर में भी कुछ ऐसी ही प्रवृत्ति दिखाई दी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष और उनके कनिष्ठ पार्टी नेता दल-बदल द्वारा राज्य में पार्टी की सरकार बनाने की संभावना का पता चलाने के लिए राज्य में आने लगे। उनके इस खेल को बढावा देने के लिए केंद्रीय गृह मंत्री ने भी अपनी भूमिका अदा की।

कई बार मुझे उपराज्यपाल के विलक्षण अतिथियों से मुलाकात के लिए राजनिवास बुलाया गया। इनमें से कुछ राजनीतिज्ञ तो कुछ सार्वजनिक सेवा से होते थे। ओम मेहता और केंद्रीय गृह सचिव के साथ ऐसी दो महत्वपूर्ण बैठकों में मुझसे कहा गया कि मुहम्मद अलीमुद्दीन के नेतृत्व वाली सरकार को गिराने की सभावनाओ का पता लगाऊँ।

* * * *

मैं अपने पेशे के कर्तव्य का दृढता से पालन करने में विश्वास रखता था। असंवैधानिक राजनीतिक हस्तक्षेप में मैं कभी नहीं पडा। वैसे अपने पेशे से संबंधित मेरी कुछ कार्रवाइयाँ कानून की हदों को जरूर लांघ गई थी, पर मैंने कभी भी एक सरकारी कर्मचारी के लिए निर्धारित कानूनी और संवैधानिक सीमाओं का उल्लंघन नहीं किया । उन दिनों में मैंने अपने काम को श्रेष्ठ तरीके से करने का संतोष पाया। लेकिन अब दिल्ली से आए भारी-भरकम राजनीतिज्ञों और प्रशासकों ने मुझे एक गैरकानूनी हरकत में लिप्त होने को कहा था। मैंने दिल्ली स्थित अपने उच्च्य अधिकारियों से राय माँगी। मुझे 'सलाह' दी गई कि 'चुपचाप सहयोग' करने का रास्ता अपनाऊँ। मैं पूरी तरह से भ्रमित हो गया। मेरे अदर की गिलहरियो ने कुछ देर आपस में झगडा किया। फिर जीतने वाली ने मुझे दिल्ली की योजना में सहयोग देने को कहा। फिर भी मैंने अपने राज्य काडर में लौटने का फैसला किया। मैं कलकत्ता जा कर आई.जी.पी. रंजीत गुप्ता से मिला और उनसे अनुरोध किया कि मुझे राज्य काडर में वापस ले लिया जाए। मैं उनके सरकारी आवास पर दो बार मिला। रंजीत गुप्ता ने निश्चय ही मेरा मामला दिल्ली के साथ उठाया। पर केंद्रीय गृह मंत्रालय और आई.बी. ने यह कह कर इनकार कर दिया कि मैं एक चिन्हित अधिकारी हूँ और मेरी सेवाएँ राज्य को नहीं दी जा सकतीं।

8 नवंबर को मैं इम्फाल लौट आया। वहाँ राजभवन में मैंने दिल्ली के एक दूत (कृपया नाम न पूछें) को बैठे देखा। मेरी उससे कुछ घंटों तक गुपचुप बातें हुई। इस दौरान हमने सत्तारूढ गठबंधन के असंतुष्ट विधायकों के बारे में विचारों का आदान-प्रदान किया। उनके राजनीतिक रिकार्ड का विश्लेषण करने और व्यक्तिगत झुकाव पर विचार करने के बाद उस विशिष्ट हस्ती ने अनुमान लगाया कि अब अलीमुद्दीन को गिरा कर कांग्रेस के नेतृत्व वाली सरकार बनाने की प्रक्रिया शुरू की जा सकती है।

मैं इस बात से हैरान था कि राज्यपाल के कार्यालय और भारत के राष्ट्रपति के अधिकृत प्रतिनिधि का किस तरह क्षुद्र राजनीतिक उद्देश्य के लिए इस्तेमाल किया जा रहा था। भारतीय राज्यों के राज्यपाल राजनीतिज्ञों द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। तत्कालीन शासक उनका अपने राजनीतिक उद्देश्य के लिए धडल्ले से इस्तेमाल करते हैं। इस संवैधानिक पद का प्रयोग वे सत्तारूढ दल के हितों के लिए करते रहते हैं। इनमें से अधिकांश राज्यपालों को दैनिक भाडे पर रखे कर्मचारियों की तरह समझा जाता है।

जिस राजनीतिक हस्ती से मैंने चर्चा की थी उनके बाद एक और महानुभाव मोटे ब्रीफकेस ले कर पधारे। ब्रीफकेस संस्कृति से यह मेरा पहला परिचय था। उन्होंने हरेक विधायक का मूल्याँकन किया और प्रत्येक के नाम पर एक समुचित मूल्य की पर्ची लगाई। इस प्रक्रिया में मेरे कुछ कांग्रेसी और विपक्षी दल के मित्रों ने सहायता की। मुझसे उन लक्षित व्यक्तियों तक ब्रीफकेस पहुँचाने को कहा गया तो मैंने यह कह कर इनकार कर दिया कि यह नाजुक काम किसी राजनीतिज्ञ के हाथों कराया जाना चाहिए।

इस बीच मुझे आई.बी. से तबादले की संभावना की सूचना मिली। मुझसे कहा गया कि मैं जे.एन. राय को मुक्त कर के नगालैंड का कार्यभार संभालूं। उन्हें किसी बेहतर जगह पर भेजा जा रहा था।

मैं अपने निजी सामान को कोहिमा ले जाने की कवायद में लगा था तब एक बडी हस्ती ने इम्फाल में कदम रखा। उन्होंने हुक्म फरमाया कि उनके आला कमान ने सरकार गिराने की शुरुआत करने का फैसला कर लिया है। मैंने फिर दिल्ली से राय माँगी। मुझे कोहिमा रह कर इस प्रक्रिया को पूरा करने को कहा गया। मैं अपने उत्तराधिकारी को कार्यभार सौंप कर कोहिमा चला गया। वहाँ से मैं विमान से इम्फाल आता था ताकि दिल्ली से आई बडी राजनीतिक और प्रशासनिक तोपों की सरकार गिराने के काम में मदद कर सकू।

मुझसे कहा गया कि मैं असंतुष्ट विधायकों से स्वयं मिलूँ और उनसे दिल्ली से आए दूतों के दिशानिर्देश के अनुरूप बातचीत करूँ।

मुहम्मद अलीमुद्दीन अपनी सरकार बचा नहीं पाए। कांग्रेस भी आवश्यक बहुमत नहीं जुटा सकी। इस विफलता का परिणाम एक और केंद्रीय शासन के रूप में सामने आया। मुझे पता चला कि कुछ विधायक दो कारणों से मुकर गए थे। एक तो दिल्ली से आए वाहक ने उन को पूरी संख्या में ब्रीफकेस नहीं दिए थे। गृह मंत्रालय के उस अधिकारी ने उनमें से कुछ अपने बुरे वक्त के लिए बचा लिए थे। दूसरे मैतेई चरमपंथियों ने विधायकों पर दबाव डाला था कि वे अलीमुद्दीन सरकार न गिराएँ, क्योंकि ए.जेड. फिजो की भतीजी का एक रिश्तेदार यगमाथे शैजा उसका एक प्रमुख सदस्य था। यहाँ यह बताना भी उचित होगा कि एक प्रमुख तांगखुल नगा नेता और फिजो समर्थक शैजा परिवार के कट्टर प्रतिद्वंद्वी रिशांग केइशिंग ने अलीमुद्दीन की सरकार गिराने में प्रमुख भूमिका निभाई थी।

मुहम्मद अलीमुद्दीन ने एक जनसभा में कहा कि उन की सरकार गिराने के लिए मैं जिम्मेदार हूँ। यह बात किसी हद तक सही भी थी। वह मेरे विरुद्ध शिकायत करने एक प्रतिनिधिमंडल ले कर दिल्ली भी गए। जैसी कि उम्मीद थी ऐसी सब शिकायतें व्यंग्यपूर्ण मुस्कराहटों में दफ्न हो कर रह गईं।

अपनी अंतर्रात्मा के साथ हुए इस बलात्कार पर मैं खुश था या दुखी इसका ठीक-ठीक जवाब देना मुश्किल है। अंतरात्मा अक्सर चित्त को प्रसन्न करने वाली सुगध की जगह दुखदायी रसायन ही छोड़ती है। अंतरात्मा शून्य में नहीं भटकती। यह किसी भी व्यक्ति के चारों ओर के संसार से प्रतिक्रिया करती रहती है। इस प्रतिक्रिया की तीव्रता और अंतरात्मा कहलाने वाली निराधार अनुभूति का निर्धारण सामाजिक-आर्थिक घटकों व परिस्थितियों के वे बंधन करते हैं जिनसे कोई आबद्ध होता है।

आज मैं जहाँ खड़ा हूं वहाँ से यह अनुभूति होती है कि मैंने अपने व्यक्तित्व का एक विचित्र रूपांतर देखा। छोटी उम्र में मुझे राजनीति की जो कुछ दीक्षा मिली थी उसने इस ललचाने

वाले फल के लिए मेरी ललक बढ़ा दी थी। मैं आज भी आर.एस.एस. की तरह की राजनीति के प्रति आकृष्ट था। विभाजन के घाव अभी भी भरे न थे। राजनीति के प्रति मेरे रुझान में मेरा हिदू होना अभी भी एक बडा मुद्दा था।

पर मेरी आर.के. धवन, इदिरा गाँधी तथा कुछ अन्य राजनीतिक नेताओं से मुलाकातों ने इंदिरा गॉधी के प्रति मेरी प्रशंसा को और बढा दिया था। पाकिस्तानी सेना की संपूर्ण पराजय और बाग्लादेश बनने पर यह प्रशसा और भी बढ गई। पूर्वी पाकिस्तान से स्थानांतरण की कटु यादे हमेशा मेरा पीछा करती रहीं। मै अटल बिहारी वाजपेयी की इस बात से अधिक सहमत नही हो पाया कि इंदिरा गॉधी देवी दुर्गा की तरह उभरी हैं। मैं अपनी राजनीतिक धारणा को विभाजित महसूस करता था। मुझे वंशगत शासन नापसंद था। फिर भी मैं इंदिरा गॉधी का प्रशंसक था। मैं आर.एस.एस. के मूल्यों को पसंद करता था, पर मुझे इस बात का विश्वास न था कि वे स्थायी राजनीतिक सरकार बना सकते हैं।

मैं मणिपुर में एक सरकार गिरा सकता हूँ। पर्वतीय विद्रोह को सीमित रख सकता हूँ। घाटी के चरमपंथियों को दबा सकता हूँ। इस सोच से मेरे अह पर मिथ्या महिमा की कुछ परते चढ गई। मगर मेरी अतरात्मा पर कुछ खरोचे भी लगी। काग्रेस विरोध के बीज, हिदू हितो के लिए मेरी छिपी सहानुभूति और नक्सलबाडी के हेडमास्टर जगदानंद राय समर्थित सशस्त्र सामाजिक क्राति के लिए मेरी तरजीह की भावनाएँ मेरे आई.पी.एस में शामिल होने और आई बी. से मेरे सबध के बावजूद समाप्त नही हुई थीं।

अपने-आप से नफरत करने के बजाय मैंने अपने दिमाग मे सावधानी से अलग-अलग खाने बनाने शुरू कर दिए। जिनमें मैं परस्पर विरोधी भावनाओ को अलग-अलग रख कर रोटी कमा सकूँ। पूजा-प्रार्थना करूँ और अपनी आत्मा को चैन की नींद सोने दूँ। इस तरह का सतुलन करना असभव था। मै इस तरह का चमत्कार करने मे अक्सर असफल रहा। मेरे अदर उठने वाली अतर्विरोधी धाराएँ अक्सर मेरी अतरात्मा को मथती थी। मैं कई बार चुपचाप खून के ऑसू पी जाता। एक इटेलिजेस सचालक जो जिदा लाश नही बन सका, उसे यह मोल तो चुकाना ही था।

मैं मणिपुर से मिश्रित भावनाओं के साथ रवाना हुआ। हमारा बेटा समय की सुई पर एक साल की यात्रा पूरी कर चुका था। अपनी शादी के पॉचवे साल मे हममे अलौकिक प्यार का ऐसा बंधन बध गया जो धार्मिक विधि-विधान से बहुत आगे था। पेशे के लिहाज से मैंने सीखने की प्रक्रिया को दृढ आधार दे दिया था। सीखने के लिहाज से मणिपुर मेरे लिए विलक्षण भूमि साबित हुई थी।

मेरे लिए यह सीखने की अनोखी प्रक्रिया थी। मैंने नगा, मिजो और मैतेई भूमिगतों के अदर गहरे तक जन कारिंदे बनाने की कई तकनीकों के प्रयोग किए। मैं इन संगठनों में सक्रिय कुछ प्रतिभाओं का पता लगाने मे सफल रहा और अधिकांशतः जिस निमित्त से वे संघर्ष कर रहे थे, उसके साथ समन्वय स्थापित करके उन का दिल जीत सका। इस तरह का छद्म समन्वय मुझे उनके मनोवैज्ञानिक स्तर के समतुल्य ले आता था और मैं उनके अर्द्धवास्तविकता वाले कल्पनालोक में प्रवेश पा जाता था। मैंने सदा अपने जन कारिंदों से किए वादे निभाने का प्रयास किया। मुझे यह देख कर क्षोभ होता था कि इंटेलिजेंस ब्यूरो सिर्फ मोल चुका कर काम करवाने के सिद्धांत पर चलता था। वे मनोवैज्ञानिक संपर्क साधन व मानवीय वादों को पूरा करना नहीं सिखाते थे। वे मूल्यवान जन कारिंदों से सहृदयता के साथ विदा होना भी नहीं

सिखाते थे। कई बार मैं आई.बी. की खोए सामान की तरह अपने संपर्क सूत्र को न पहचानने की नीति के कारण संकट के गहरे गर्त की ओर धकेला गया।

ऐसा नहीं हैं कि मैं वाजिब पैसे दो और काम कराओ की नीति में विश्वास ही नहीं रखता था। ऐसे बहुत से कारिंदे थे। उन्हें या तो प्रति काम के हिसाब से भुगतान किया जाता था या फिर जब तक जरूरत हो, नियमित भुगतान पर रखा जाता था।

लेकिन नगा और मिजो विद्रोहियों और मैतेई क्रांतिकारियों के शीर्ष नेतृत्व में अधिकांशतः तुच्छ अपराधी न थे। उन्होंने विभिन्न कारणों से हथियार उठाए थे। नगा उथल-पुथल विदा होते साम्राज्य की अधूरी रह गई कार्यसूची का हिस्सा थी, जो वे विरासत के तौर पर छोड़ गए थे। मिजो विद्रोह का मुख्य कारण शिलांग व दिल्ली के संवेदनशून्य राजनीतिज्ञों न प्रशासकों की लुशाई पहाडियों की समस्याओं के प्रति नासमझी का आचरण था। मिजो पहाडियों के असंतोष और भारत के कुपथगमन का फायदा उठाने में पाकिस्तान भी चूका नहीं।

दिल्ली ने मणिपुर की लंबे समय तक उपेक्षा की थी। मैतेई हिंदुओं को विनीत वैष्णव मान लिया गया था जो सदा के लिए अहिंसा के दर्शन से बंधे हुए थे। वैष्णव संप्रदाय के प्रचार-प्रसार से सनामाही धर्म लुप्त हो गया था। इसने नए धार्मिक विचार दिए थे। अशांत लोगों को एक नया जीवनदर्शन दिया गया था। लेकिन मैतेइयों ने बर्मी नरेशों और अंग्रेज उपनिवेशवादियों से प्रतिक्रिया में बहुत कम शांति देखी थी। मैतेई अपनी युद्ध क्षमता के लिए प्रसिद्ध हैं। वे चतुर, चाल चलने में माहिर और हठी हैं।

दिल्ली और इम्फाल में उनके प्रतिनिधियों ने घाटी और पहाड के लोगों की उचित आर्थिक आकांक्षाओं की पूरी तरह उपेक्षा की । राज्य संचालन को प्राथमिक आर्थिक गतिविधियों तक सीमित रखा गया। सामाजिक व आर्थिक परिवर्तन के परिदृश्य की अधिकांशतः अवहेलना की गई। प्रतिगामी विचारों वाले 'फूट डालो और राज करो' के साम्राज्यवादी खेल में खूब आनंद लूट रहे थे। उनको अपनी जेबें भरने से फुर्सत नहीं थी। प्रशासन और राजनीति में हर स्तर पर भ्रष्टाचार का बोलबाला था।

मैतेई विद्रोह का कारण पुनरुत्थानवाद नहीं था। पुनरुत्थानवाद लोगों के संस्कृतिक अस्तित्व का सार तत्व होता है। प्राचीन सभ्यताओं और संस्कृतियों के मूल से फिर से जुड़ने से नवजागरण आता है। भारतीय राष्ट्रवाद के विकास के आरंभिक दिनों में ऐसा नवजागरण देखा गया था। तब गौरवशाली अतीत से दोबारा जुडने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ी थी। मणिपुर में जरूर कहीं कुछ गलत हुआ था। वहॉ अतीत की खोज वर्तमान राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक परिस्थितियों के प्रति क्षोभ और हताशा से शुरू हुई। दिल्ली ने मणिपुर के रोगों के निदान में बहुत समय नष्ट किया, जैसा कि उसने उत्तरपूर्व के सभी राज्यों और देश के अन्य भागों के असंतुलित क्षेत्रों में किया।

मैतेइयों को उस सीमा तक पीछे धकेला गया जब तक उनको यह विश्वास नहीं हो गया कि अगर वे नगा और मिजो की तरह हथियार नहीं उठाते तो उनकी आवाज नहीं सुनी जाएगी। उत्तरपूर्व में असंतोष और विद्रोह के वातावरण को देखते हुए दिल्ली को चाहिए था कि वह अधिकांशतः हिंदू मैतेइयो से बसी इस शांति की घाटी को मजबूत बनाने के लिए शीघ्र कदम उंठाए।

इसीलिए मेरा विश्वास है कि मैतेइयों का प्रतिरोध घोर हताशा व मोहभंग के कारण हुआ। विद्रोह के वातावरण और मणिपुर के वाम चरमपंथ के साथ संपर्क ने युवा मैतेइयों के इरादों

को और भी पुख्ता बनाया। अव्यवस्थित, रोमानी, स्वधर्मत्यागियों से वे सिद्धांतवादी क्रांतिकारी बन गए।

इसी विश्वास के कारण मैंने विद्रोही आंदोलनों के प्रति राज्य प्रशासन, सैनिक बलों और यहाँ तक कि आई बी. के अपनाए सैनिक रवैए से अलग रवैया अपनाया। बहुत पहले इम्फाल में ही मैंने महसूस किया कि आदर्शवादी असंतोष को निरा जातीय उपद्रव नहीं समझना चाहिए। इसका कोई सैनिक समाधान भी नहीं है। किसी समुदाय को देश के साथ रखने के लिए उसे यह विश्वास दिलाना भी जरूरी है कि यह स्वर्ग है। जीने योग्य और प्राण न्योछवार करने योग्य है। मैं आज भी इसी मूल्य का कायल हूँ। लेकिन मणिपुर ही भारत के अपने जनसमुदाय के प्रति असंतुलित रवैए का अंतिम क्षितिज न था। मैंने पंजाब, कश्मीर, तथा आंतरिक संघर्ष के अन्य क्षेत्रों में भी यह संकट देखा है।

* * * *

ब्रिटिश साम्राज्य, हिंदू बहुमत और मुस्लिम अल्पमत ने भारतीय उपमहाद्वीप का जो राजनीतिक भूगोल तय किया था, उसे 1970-71 की उथल-पुथल भरी घटनाओं ने बदल डाला। लेकिन इससे भी मेरे संसार के प्रति सभ्यताओं के संघर्ष वाले दृष्टिकोण में बहुत अंतर नहीं आया। विभाजन बाद की विपत्तियों ने मेरी विचारणा में भारत को गुलाम बनाने वाले सभ्यता बलों, ईसाई और इस्लामी सभ्यताओं के प्रति घृणा, नापसंदगी और तिरस्कार के कुछ तत्व भर दिए थे। भारतीय सभ्यता के समर्थक आए एस एस से मेरे सपर्क ने मेरे किशोर मस्तिष्क में इस भावना को और दृढ बना दिया था। मेरी सहज-सरल काली-सफेद धारणा को आई बी. की आनद पर्वत वाली ट्रेनिंग में जो सिखाया गया उससे और भी बल मिला। यह पाठ्यक्रम हिंदू समर्थक पूर्वाग्रह से युक्त था।

मुझे बडे स्पष्ट रूप से बताया गया कि कुछ ईसाई मिशनरी ताकतें नगा और मिजो विद्रोहियों की मदद कर रही हैं। स्वदेशी और व्यापक इस्लामी ससार की ताकतें भारतीय समाज व राजतंत्र को अस्थिर करने की कोशिश कर रही हैं। मुसलमान विश्वास के काबिल नहीं। सांप्रदायिकता के अध्ययन का मुख्यत: अर्थ था इस्लामी ताकतो का अध्ययन और उन का राब्ता-अल-आलम-अल-इस्लामी व संसार भर मे चल रहे तबलीगी जमात आदोलन से उनके संपर्क का अध्ययन।

दो अपरिचित सभ्यताओं को असुविधाजनक वातावरण में इकट्ठे रहना पडा लेकिन भारत में कभी भी उनका सार्थक सम्मिश्रण न हो सका। भारतभूमि और भारतीय जीवनशैली ने अतीत में अनेक मानव तरंगों को आत्मसात किया। कुछ मुख्य रूप से परिभाषित और अपरिभाषित सभ्यताओं ने अपने आप को भारतीय मानवता के समुद्र मे उडेल दिया। सभ्यताओ की इस विपरीतता को धार्मिक पहलू ने और भी दृढता प्रदान की। सिनाई पर्वत और अरब के रेगिस्तान से नि:सृत इस पहलू ने संसार के विभिन्न भागों में अपने विस्तार के लिए उग्र अग्राशयी प्रक्रिया अख्तियार की।

ईसाई और इस्लामी सभ्यताओं के रवैए में कुछ अंतर था। मध्ययुग के विजेताओं में बहुत परिवर्तन आ गया था। वे भी धर्मग्रंथ और तलवार उतनी ही आस्था से पकडते थे। लेकिन वे कभी भी पराजितों के संपूर्ण सभ्यता रूपांतर पर जोर नहीं देते थे। वक्त गुजरने पर गिरजाघर ने पवित्र पुस्तक और बूट के दर्शन के साथ पराजित देश की सभ्यतागत विलक्षणता को मिश्रित होने की आजादी दे दी।

ऐसा नहीं है कि इस्लाम ने इस तरह की गुंजाइश ही न की हो। इस्लाम की कुछ किस्मों ने भी विजित माटी की सुगंध को अपने अंदर आत्मसात कर लिया। पर कुछ किस्में ऐसी भी थीं जिन्होंने सदा खालिस इस्लाम पर जोर दिया।

जिस पवित्र ग्रंथ का वे प्रचार करते थे उसका पूरा अनुपालन और उस नई सभ्यता को वे पूरी तरह स्वीकार करने में आस्था रखते थे जो मध्यपूर्व की बद्दू और दूसरी जनजातियों को रास आती थी। भारत में इस्लाम की ये दोनों किस्में किसी न किसी रूप में सदा रहीं।

लेकिन अंग्रेजों ने इस बात को अच्छी तरह समझ लिया था कि हिंदू और मुस्लिम समुदाय की सभ्यता के कोने कभी पूरी तरह मेल नहीं खा सकते। इनमें गहरी दरारें कुछ सहस्राब्दियों तक सदा बनी रहेंगी। उन्होंने अपनी चाल बहुत सोचसमझ कर चली। अधिकांश मुसलमान भारत में ढह चुके मुस्लिम साम्राज्य की खाक पर एक नई मुस्लिम पहचान उभारने की ललक में फंसे हुए थे। 1970-71 की घटनाओं ने इस मिथ्या प्रतीति को भंग कर दिया। सभ्यता के माहिरों और धूर्त साम्राज्यवादियों ने दो राष्ट्रों के जिस सिद्धांत को बडी मेहनत से गढा था, वह धराशायी हो गया और बांग्लादेश के रूप में एक नया जातीय राष्ट्र मानचित्र पर उभरा।

ऊपर जो विचार मैंने प्रकट किए वे किसी समय मेरे विश्वास के मूल सिद्धांत का हिस्सा थे। लेकिन ईसाई मिशनरियों और उत्तरपूर्व के ईसाई समुदाय के साथ न्याय करने की बात तो यह होगी कि मैंने उनको कभी भी भारत विरोधी भावनाएँ रखते या उन का पोषण करते नहीं देखा। ईसाई मत ने उपेक्षित आदिवासी जनों को बेहतर शिक्षा और आधुनिक सभ्यता से परिचित कराया। मैंने एक साधारण नगा घर को दिल्ली और कलकत्ता जैसे बडे शहरों के हिंदू परिवारों से भी अधिक सभ्य और परिष्कृत पाया है। सेना और पुलिस के क्रूर दमन या सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक अन्याय का गिरजाघरों ने हमेशा समुदाय की आवाज के रूप में उठ कर सामना किया न कि धार्मिक शक्ति के रूप में। उन्होंने हमेशा उन जिम्मेदारियों को निभाया जो आज के युग में मानवाधिकार संगठन या एन.जी.ओ. निभाते हैं।

इस संदर्भ मे खारासोम (उखरूल) की एक अत्यंत रूपसी तांगखुल महिला आंगी लुइखाम की चर्चा करूँगा। आंगी एक सीधी-सादी ईसाई महिला थी। वह कभी इतवार की प्रार्थना में नागा नहीं करती थी। जुलाई 1971 की बात है। मैं अपनी पत्नी और बच्चे के साथ था। हम लोग उखरूल, कोइरी, खारासोम और जेसामी के विद्रोहग्रस्त क्षेत्र से होकर गुजर रहे थे। हम वहाँ से हो कर नगालैंड में फेक जा कर वहाँ रात बिताने का इरादा रखते थे। हमारा पहला पडाव कोइरी में था। काफी मात्रा में पेट्रोल और खाने-पीने का सामान ले कर हम अगली सुबह खारासोम और जेसामी के लिए रवाना हुए। हम खारासोम में बच्चे को दूध पिलाने और एक कप चाय पीने के लिए रुके।

तभी हमारी जीप धोखा दे गई। हमने एक हरकारा कोइरी चौकी को दौडाया। इस उम्मीद में कि उसके पास के सेना के पड़ाव से पुरजे मिल जाएँगे। एल. हंग्यो भी हमारे साथ था। वह और भी बुरी खबर ले कर आया। मणिपुर-नगालैंड सीमा पनदी की तलहटी में चाकेसांग नगा विद्राहियों का एक दल डेरा डाले था। उनका इरादा मुझे पकड कर पूछ-ताछ करने का था।

यह वाकई बुरी खबर थी। हम खुलाका (गाँव के मुखिया) के पास गए और उससे मदद माँगी। उसने मुंह मोड लिया। उसने मुझसे कहा कि वह तीन भारतीयों की जिंदगी की

खातिर चाकेसांग लडाकुओं का गुस्सा मोल नहीं ले सकता। हम गाँव के गिरजाघर की ड्योढ़ी पर बैठ गए।

उन दुष्टों द्वारा पकडे जाने से मैं परेशान नहीं था। मैं सुनंदा और हमारे बच्चे की सुरक्षा को लेकर चिंतित था। पर वह तो स्थिति की गंभीरता से परेशान न था। वह भाग कर उस नगा युवती के पास चला गया जो गिरजाघर के सामने वाले फूलों की क्यारी में पानी दे रही थी।

उसने हुंग्यो से बात की। हुंग्यो ने मुझे समझाया कि गाँव के पादरी की पत्नी आंगी गाँव के स्त्री व पुरुषों को हमारी रक्षा के लिए संगठित करेगी। हम उनके गाँव में रह सकते हैं। हमें अब निश्चिंत हो जाना चाहिए। आंगी ने हमें यह भी आश्वासन दिया कि गाँव के युवकों का एक दल हमें जेसामी तक छोड आएगा।

हमने आगी को हृदय से धन्यवाद दिया। उसने अपने दिल पर क्रास बना कर शाति से जवाब दिया कि एक ईसाई घर में आए अतिथि को कोई हानि नहीं पहुँचा सकता।

हमने रात खारासोम में बिताई और रात का खाना आगी और उसके पादरी पति जासोन लुइवान के साथ खाया। अगले दिन सुबह हम जासोमी के लिए रवाना हुए। हमारी धीमी रफ्तार से चलती जीप को छः खारासोम युवक घेर कर चल रहे थे।

खारासोम के लुइखाम परिवार ने गिरजाघर और ईसाइयों के बारे मे मेरे दृष्टिकोण को बदलने में मदद की। मैं आर.एस.एस. की कट्टरता और आई.बी. की शिक्षा के कोए से बाहर निकला। मैं जानता था कि भारत मे अच्छे पडोसियों की तरह रहने और एक-दूसरे की धार्मिक आस्था का आदर व मान करने के लिए बहुत स्थान है।

मैंने एक और महत्वपूर्ण सबक सीखा। लगभग अपनी जान की कीमत पर। उसने मुसलमानों के लिए मेरे मन में गहरे पैठ चुकी घृणा में कुछ परिवर्तन किया।

मैंने 1946 में उनसे नफरत करना सीखा था जब एक मुसलमान भीड ने पूर्वी पाकिस्तान में हमारे घर पर हमला किया और मेरे परिवार को अस्थायी रूप से अगरतला जाने को बाध्य कर दिया। यह नफरत उस वक्त गुस्से में बदल गई जब हमें सिर्फ तन के कपडो में 'दूसरे भारत ' में जाने को बाध्य किया गया। लेकिन नफरत की जिन पर्तो को मैंने इतने एहतियात से संजो कर रखा था, कुसुम मियां ने उनमें से कुछ पर्तो को बडे प्यार से छील कर हटा दिया।

गौहाटी और शिलांग जाने के लिए मैं आमतौर पर गोलाघाट और काजीरंगा जाने वाले राष्ट्रीय राजमार्ग का इस्तेमाल नहीं करता था। इसके लिए मैं जंगल की सडक से जाता था। यह मुझे दीफू से हो कर नवगाँव, होजाई, काथियाटोली और जग्गी रोड से होकर ले जाती थी। सडक ऊबड़खाबड़ थी। रास्ता भी बहुत सुरक्षित नहीं था। लेकिन मुझे जंगल के जीव और हरियाली बहुत पसंद थी।

जुलाई 1972 के उस बुरे दिन मुझे राज्यपाल और अपने क्षेत्रीय बॉस से मिलने के लिए बुलाया गया था।

दीफू एक छोटा प्रशासनिक केंद्र था। वहाँ कुछ छितरी हुई इमारतें थीं। होजाई मे झोंपडियों की दुकानों वाला बहुत छोटा-सा बाजार था। कथियोटोली बंगाली मुसलमानों की बस्ती वाले अनेक गाँवों मे से एक था।

कथियाटोली के पास एक बडे पेड के तने ने पक्की संकरी सडक को रोक रखा था। असम का मैदानी इलाका विद्रोहमुक्त था। मुझे कभी भी वहाँ शत्रुता का सामना नहीं करना पडा था। कई बार मैं वहाँ अपनी कार रोक लेता।

पर उस दिन मेरी मैमनसिंही बंगाली बोली गाँव वालों की उस मिलीजुली भीड़ को संतुष्ट करने के काम न आई जो रुकावट के उस पार छुरे और भाले लिए खडी थी।

"क्या तुम अहोमिया हो?" एक ने पूछा।

"क्या तुम हिंदू मैमनसिंहिया हो?" एक और ने पूछा।

"हां," मैंने जवाब दिया और पूछा," तुम लोगों ने रास्ता क्यों रोक रखा है?"

"यहाँ हिंदू-मुसलमान दंगा हो गया है।"

"मार डालो ," कोई चिल्लाया,"यह साला भी हिंदू है।"

करीब 12 मुस्लिम युवकों की भीड ने मेरी कार पर हमला कर दिया। मेरे पास तो हथियार के नाम पर फल काटने वाली छुरी तक न थी।

मेरा ड्राइवर एक लोथा नगा था। वह मेरा साथ छोड कर पास के जूट के खेत में जा छिपा।

अचानक मैंने देखा कि हंसिया से लैस एक अधेड मुसलमान मेरी तरफ दौड चला आ रहा है।

"हे मोगेर पुतेरा (अरे कुतिया के बच्चो) ," मुझे बचाने वाला खास मैमनसिंही बंगाली में चिल्लाया," या आमागो मानूह, मैंमनसिंहा बंगाली। कछू कर्ताई न ऐरे।"

मोटे तौर पर यह कहें कि वह उस भीड में जमा लोगों को कुतिया के बच्चे कहता हुआ बोला कि मैं मैमनसिंह का बंगाली हूँ। मुझ पर हमला नहीं करना चाहिए।

इस जादू ने अपना असर दिखाया। उन हथियारबंद दरिंदों के हाथ मेरी गर्दन से कुछ दूरी पर ही रुक गए।

मेरी रक्षा करने वाले ने अपना नाम कुसुम मियाँ बताया। वह गाँव का मुखिया था। वह कुलयरचार गाँव से आकर यहॉ बसा मुसलमान था। कुलयरचार हमारे गॉव कमालपुर के पास ही था। मैं कुसुम मियां के साथ उसके घर पर गया।

कुसुम मियॉ के आदमियों ने लोथा ड्राइवर को जूट के खेत की दलदल से बाहर निकाला। अपने मैंमनसिंह के साथी ग्रामीणों के साथ एक घंटे की प्यार भरी गपशप के बाद मैं नवगाँव के लिए रवाना हुआ।

उस रात शिलांग में अपने ठंडे बिस्तर में दुबके हुए मैं राज्यपाल के दिए काम के बारे में नहीं सोच रहा था। मैं आंखें बंद कर के कुसुम मियाँ के बारे में सोचने लगा। उसने मेरी जान तो बचाई ही थी, एक और मुसलमान रहमान की यादें भी ताजा कर दी थीं। वह पूर्वी पाकिस्तान में मेरे परिवार का बंधुआ मजदूर था। 1950 में उसने फसादी भीड से हमारी जानें बचाई थीं। फरिश्ते किसी बडी धूम-धाम के साथ नहीं आते। जब भी वे आते हैं, उनके परों पर किसी धर्म की छाप नहीं लगी होती। मुसलमानों और मेरे बीच जो सभ्यतागत दुश्मनी थी, उस पर मेरा शक गहराने लगा। इस गली में तब और भी कमी आई जब मैं जामा मस्जिद की सर्पीली तंग गली में मिर्जा हातिम सुहरावर्दी से मिला।

<10>

सलीब पर टंगे लोग

"मैं तुम सब की बात नहीं कर रहा हूँ। मैं उन्हें जानता हूँ, जिनको चुना है। पर यह तो पवित्र ग्रंथ का पालन करने की बात है, जिसने मेरे साथ रोटी खाई है, उसी ने मेरे खिलाफ कदम उठाए हैं।"

जान 12:18 (लास्ट सपर)

ईसा इसका विशिष्ट उदाहरण है कि सही सोचने वाले व्यवस्था से असहमति के कारण सूली पर चढा दिए जाते हैं। वह अपने समय की व्यवस्था के विरुद्ध गए। उन्हे बेरहमी से मार डाला गया। नगा इसलिए मुसीबत में पडे क्योकि अग्रेज और भारतीय प्रशासक यह नही समझ पाए कि उन लोगों का क्या किया जाए जो दूसरे भारतीयों से अलग थे। अग्रेजों के अधीन होने से पहले वे किसी व्यवस्था द्वारा प्रशासित न थे। अंग्रेजों ने उनको सूली पर नही चढाया। उन्होंने नगा भूमि पर संगीनें, बूट और बाइबिल लेकर कदम रखा। इन तीनो हथियारों का खुले दिल से इस्तेमाल किया गया। वे उनका धर्म परिवर्तन कर के, उन्हे दुलार कर और उद्दड नगाओं को सजा दे कर बहुत खुश थे। भारतीय यह नहीं समझ सके कि उन लोगों का क्या करें जो अन्य भारतीयो से बहुत अलग थे और जो भारतीय व्यवस्था के नियमकायदो से अपरिचित थे। अंग्रेजों के भारत छोडने के फैसले के बाद स्वाधीनता की सुखभ्रांति से अभिभूत मुख्यभूमि के भारतीयों ने यह तय कर लिया कि स्वाधीनता भारत के हर भौगोलिक क्षेत्र में रहने वाले हर भारतीय के लिए एक ही मायना रखती है। दरअसल ऐसा था नहीं। पंजाबियो और बंगालियों के लिए स्वाधीनता एक सहस्त्राब्दि का देश निकाला थी। नगाओ के लिए यह अनिश्चितता का भय और उन लोगों का राज्य था जो उनके लिए मंगलवासियो की तरह अनजान थे।

मेरे लिए स्वाधीनता का अर्थ था अपने घर से बेघर हो कर एक अजनबी जगह में शरण लेना जिसे 'भारत' कहते थे। नगाओं के लिए स्वाधीनता बहुत सी आशंकाएं लेकर आई। शेष भारत से उनकी पूर्ण असमानता थी-सांस्कृतिक, भाषाई, धार्मिक। भारत उनके लिए विदेशी भूमि थी। मेरे मामले में तो जो भूल थी उसका आने वाले वर्षों में सुधार कर लिया गया था। अब मैं भारत के पूर्वी भाग में रहने वाले किसी भी भारतीय की तरह ही था।

व्यवस्था के एक पुरजे के तौर पर मैंने कोहिमा में अपना काम संभाला। मैं उन अनजान लोगों के साथ संपर्क करने की अपनी क्षमता के बारे में शकित था जिन्होंने भारत कहे जाने वाली दूरवर्ती राजनीतिक व भौगोलिक सत्ता के साथ एकात्म स्थापित करना शुरू किया था। वे अब भी विशाल भारतीय व्यवस्था से सहमत न थे। पर उन्होंने व्यवस्था के कुछ पहलुओं का अनुकरण करना शुरू कर दिया। इनमें वित्तीय और राजनीतिक आचरण शामिल थे। पर

इनमें सामाजिक और नैतिक आचरणों का शामिल होना जरूरी न था। उन्हें सूली पर नहीं चढाया गया। लेकिन नगाओं ने व्यवस्था को रातोंरात आत्मसात् करने की अक्षमता और एक अति प्राचीन व विकसित सभ्यता से पराभव के भय के कारण बहुत दुख झेले।

2 फरवरी 1972 को हम अपना नया कार्यभार संभालने के लिए अपनी कार में कोहिमा के लिए रवाना हुए। जब मैं उस रूई के गोले जैसे कोहरे से ढके उस शहर में दाखिल हुआ तो मेरे मन में अजीब सी आशंका थी।

नगा समस्या मेरे लिए नई न थी। लेकिन नगाओं के साथ रहे बिना कोई यह दावा नहीं कर सकता था कि वह समस्या से परिचित है। मैं अच्छी तरह जानता था कि मेरा मणिपुर में नगा मामलों के साथ सतही सपर्क मुझे उस समुद्रविज्ञानी से ज्यादा समझदार नहीं बनाता जिस ने किनारे पर बैठ कर जीवाश्मों का अध्ययन किया हो। जटिल नगा समाज में घुसपैठ बनाना आसान न था।

अपनी नई गृहस्थी जमाने में हमें कोई दिक्कत नहीं हुई। जो घर मेरे पूर्ववर्ती के लिए आई. बी. ने किराए पर लिया था, मैं उसमें आ गया। यह एक अंधेरा और गंदा सा घर था। सुनंदा को इस जगह से नफरत थी। उसकी समस्या मेरे कोहिमा आने के पांच महीने के अंदर हल हो गई। होकिसे सेमा सरकार में लोकनिर्माण मंत्री कोरामोआ जमीर ने हमारे लिए एक पहाडी की चोटी पर एक सुंदर शीशे का घर बनवा दिया।

जे.एन.राय ने मेरी मुलाकात नगा नेशनलिस्ट आर्गनाइजेशन के कुछ नेताओं से कराई। इनमें कुछ मंत्री थे, कुछ मददगार किस्म के सरकारी अधिकारी। ये सब बंटी हुई वफादारी के साए की जद में रहते थे। नगालैंड के संदर्भ में यह समझ लेना चाहिए कि धरातल से ऊपर रहने वाले नगा सभ्य समाज और भूमिगत नगा विद्रोही संगठनों के बीच एक बडा झीना धुएं का पर्दा था। नगा नेशनलिस्ट आर्गनाइजेशन का एक शक्तिशाली धडा नगा नेशनल काउंसिल, नगा संघीय सरकार और नगा सेना का समर्थक था। फिजो समर्थक राजनीतिज्ञों का एक मिला-जुला धडा यूनाइटेड डेमोक्रेटिक फ्रंट भूमिगत आदोलन के उतराने और डूबने में सहायक था।

मुझे एक व्यवस्थित कार्यालय मिला और विरासत में निष्ठावान अधिकारियों का दल प्राप्त हुआ।

नए कार्यालय की जो कुछ कमियां थीं वे मेरे बड़े अधिकारी आर.पी. जोशी के कारण पूरी हो गई थीं। वह एक सज्जन और संतुलित अधिकारी थे। जोशी ने जहां मेरे लिए कार्यालय का वातावरण सहज बनाया वहाँ उनकी पत्नी तारा दीदी ने सुनंदा और हमारे बेटे बाबू को अपने स्नेह की छाया में लेकर हमारी गृहस्थी की देखरेख की। इसने मुझे नगालैंड में गहरे पैठने में मदद दी जो बडे संकटकाल से गुजर रहा था।

1971 में बंगलादेश का युद्ध सिर पर था। देश में और बाहर इंदिरा गांधी की बढ़ती लोकप्रियता का नगालैंड के विभक्त भूमिगत आंदोलन में परस्पर विरोधी प्रतिकिया हो रही थी। कुखालो, सुखाई, काइतो और स्कातो स्वू की अगुआई वाले प्रमुख सेमा दल ने अंगामी प्रमुखता वाले एन.एन.सी./एन.एफ.जी. से नाता तोड़ लिया था और अलग काउंसिल आफ नगा पीपुल बना ली थी। इस घटना की परिणति बाद में रेवोल्यूश्नरी गवर्नमेंट आफ नगालैंड के गठन के रूप में सामने आई। इसने एन.एफ.जी. के प्रधान जी. मेहियासियू की अध्यक्षता वाली एन. एन.सी. की इजारेदारी को चुनौती दी। गृहमंत्री जेड. राम्यो, नगा सेनाध्यक्ष मोवू अंगामी,

थिनुसेली अंगामी, थियुइंगालेंग मुइवा तथा अन्य ने उसका भरपूर साथ दिया। ए.जेड. फिजो के बडे भाई केवी यालेय ने फिजो समर्थकों की उपलब्धियों पर अपनी गिद्ध दृष्टि जमा रखी थी। उसे भूमि के ऊपर वाले राजनीतिज्ञों, सहानुभूति रखने वाले प्रशासकों और कुछ ईसाई प्रचारकों से सक्रिय सहयोग मिल रहा था।

फिजो गुट ने भी कुछ गलत राहें पकडनी शुरू कर दी थीं। एक निपुण तांगखुल नगा थ. मुइवा को चीन में अधिकराम्पन्न राजदूत नियुक्त कर दिया गया था। उसने 1966 में थिनुसेली अंगामी की मदद से चीन जाने वाले एक नगा दल का नेतृत्व किया था। वह 1968 में भारी मात्रा में चीनी हथियार और सिद्धांतों का पाठ पढे लडाकू नगाओं का काडर लेकर लौटा था। 8वीं पहाडी डिवीजन के जनरल एन.सी. राउले ने जोत्सुमा में उनको रोका और भारी सख्या में हताहत किया।

इस घटना ने और सेमा विद्रोह ने भूमिगत नगा नेताओं में झुर्झुरी दौडा दी। दो तांगखुल नेताओं जेड. रम्यो और मुइवा में मतभेद खुल कर सामने आ गए थे। दोनों आंदोलन को महत्वपूर्ण सहारा देने वाले भूमिगत आंदोलन की इजारेदारी को लेकर लड रहे थे। ईसा के लिए नगालैंड की धारणा को एन.जी.एफ. की कम्यूनिस्ट चीन के साथ खुली मिलीभगत के कारण सख्त झटका लगा। नगाजन नास्तिक चीनियों के सामने समर्पण करने के विचार से ही भौंचक्के रह गए। दशकों से नगा जिस ईसाई धर्म के मूल्यो को सजोए हुए थे ये तो उनके विरुद्ध थे। उन्हें मुइवा के नास्तिक चीनियों को ईसाई नगाओ को बेच डालने का विचार पसद न था। इसकारण से कुछ शीर्ष भूमिगत नगा नेता इस समस्या का भारत सरकार के साथ कोई सम्मानजनक हल निकालने के बारे में सोचने का मन बनाने लगे। गैर-भूमिगत राजनीति ने भी एक विचित्र रुख अख्तियार कर लिया। मुख्यमंत्री होकिशे सेमा विद्रोही सेमा गुट के साथ एक अलग समझौता करने के हक में थे। उनकी कोशिशों ने सत्तारूढ दल एन.एन.ओ. मे दरार पैदा कर दी। प्रमुख ओ नेता और इंदिरा गांधी के मंत्रिमंडल में मंत्री रह चुके एस.सी. जमीर अलगाव वाली मुहिम के मुखिया थे। एक अन्य ओ नेता व होकिशे मंत्रिमडल में मंत्री तोशी जमीर उनके साथ हो गए। एन.एन.सी./ एन.एफ.जी समर्थक तत्वों ने उनका साथ दिया। इस से फिजो समर्थक युनाइटेड डेमोक्रेटिक फ्रंट को बल मिला।

जनरल ए.आर. दत्त के नेतृत्व में भारतीय सेना की कार्रवाई और और पूर्वी पाकिस्तान में उनका आधार छिन जाने के मनोवैज्ञानिक दबाव से एन.एन.सी./ एन.एफ.जी. के हौसले पस्त होने लगेंगे, यह उम्मीद सही साबित नहीं हुई। इस बीच भारतीय सेना ने नगा दलों के वापस आने पर उन्हें रास्ते में रोक कर आर.जी.एन. की मदद से या अपने तईं छिटपुट कार्रवाइयाँ ही कीं।

चीनियों से संपर्क और भूमिगत आंदोलन में अंदरूनी नवशक्ति के संचार ने नगा विद्रोहियों के संघर्ष जारी रखने के संकल्प को और मजबूत कर दिया। अलग हुए एन.एन. नेताओं और यू.डी.एफ. के समर्थन ने भी विद्रोही बलों के हौसले बढाए। बर्मी नगाओं और काचिन विद्रोहियों के साथ नए गठबंधन ने नगालैंड-मणिपुर में खोए मैदान की भरपाई कर दी। बर्मा की भूमि पर नए स्वर्ग की रचना की गई। 8 अगस्त 1972 को कोहिमा के कुछ ही नीचे राष्ट्रीय राजमार्ग 39 पर मुख्यमंत्री होकिशे सेमा के काफिले पर घात लगा कर फिजो गुट ने एक बडी जवाबी कार्रवाई की शुरुआत की। दिन दहाडे की गई इस दुस्साहसी कार्रवाई ने यह संकेत दे दिया था कि भूमिगत आंदोलन में अब बड़ा परिवर्तन आ गया है।

इसके बाद भारत सरकार ने नगा भूमिगत संगठनों को गैरकानूनी घोषित कर दिया। 1 सितंबर को कोहिमा आकाशवाणी से राज्यपाल बी.के नेहरू ने स्पष्ट कर दिया कि जो व्यक्ति या संस्थाएँ भूमिगतों की सहायता करेंगी या उन्हें उकसाने का काम करेंगी उनको गिरफ़्तार किया जा सकता है और उनके खिलाफ कानूनी कार्रवाई हो सकती है।

इस दौरान थ. मुइवा और इसाक चिसी सू ने पूर्वी नगा क्रांतिकारी समिति के साथ चीनी आकाओं के तत्वावधान में समझौता कर लिया था। काचिन इंडिपेंडेंट आर्मी के साथ एक अलग नयाचार (सम्बंध) स्थापित कर लिया गया। इसने बाद में मुइवा और इसाक को शरण दी और उनके चीन में प्रवास का बंदोबस्त किया। नेशनलिस्ट सोशलिस्ट कांउंसिल ऑफ नगालैंड के बीज इन्हीं दिनों में मुइवा, इसाक, चीनी नीति निर्धारकों के बीच मेल-मिलाप के दौरान बोए गए। शांति को तो कहीं पिछवाडे धकेल दिया गया।

इन घटनाओं से होकिशे सेमा घबराए नहीं। उनको योग्य साथी मिले हुए थे। जैसे कि जे.बी. जसोकी, चिंगवांग कोन्याक, कोरामेवा जमीर और मुख्य सचिव एम. रामुन्नी के साथ दूसरे योग्य प्रशासक। रामुन्नी लगभग मेरे तबादले के दिनों में ही मणिपुर से नगालैंड आए थे। कमिश्नर एस.सी. देव ने युद्ध और शांति के दिनों में सरकार के रवैए को स्वरूप देने में मुख्य भूमिका निभाई। होकिशे और जसोकी नगालैंड को शांति और आर्थिक विकास के पथ पर ले जाने को कटिबद्ध थे।

यहाँ मुझे दिल्ली के कुछ नीति निर्धारकों की विकृत विचारणा की चर्चा अवश्य करनी चाहिए। वे बपतिस्त ईसाइयों को कैथॉलिकों के मुकाबले कम देशभक्त समझते थे। उन्होंने नगालैंड में कैथॉलिकों के मिशन को मजबूत बनाने के लिए कुछ स्पष्ट प्रयास किए। उन्होंने उन्हें अधिक स्कूल, अस्पताल और धमार्थ संस्थान खोलने के लिए प्रोत्साहित किया। मैं इस दृष्टिकोण से सहमत न था। नगालैंड में गिरिजाघर की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। पर ऐसा कोई प्रत्यक्ष प्रमाण न था कि यह संस्था विघटनकारी प्रवृत्ति रखती है। किसी राजनीतिक आवाज के अभाव और जनसाधारण व सत्ताधारियों के बीच दूरी के कारण गिरिजाघर को लोगों की तरफ से बोलने का मौका मिला। बहरहाल एक इंटेलिजेंस संचालक के रूप में मुझे गिरिजाघर वालों के एक वर्ग की संदिग्ध गतिविधियों पर तीखी नजर रखने का प्रबंध करना पड़ा।

जो हो, मैंने मलयाली केरलवासी ईसाई पादरियों व शिक्षकों की संख्या में वृद्धि का स्वागत किया जिन्होंने नगालैंड और मणिपुर में कैथॉलिक चर्च के विकास का लाभ उठाया था। उन का दूरदराज नगा गाँवों में भी स्वागत होता था। उन्हें देश की सुरक्षा संबंधी आवश्यकता में सहयोग देने में एतराज भी नहीं होता था।

मैं आई.बी. की कोहिमा इकाई में आने से पहले से ही होकिशे सेमा का आदर करता था। सितंबर 1969 की बात है। विद्रोहियों ने मंत्री की पहाड़ी और कोहिमा के दूसरे आवासीय क्षेत्रों में मॉर्टार तोपों के गोलों की भरमार कर दी थी। तब मैं कुछ सहयोगियों के साथ बैठा हुआ था। होकिशे ने रक्षा के लिए कोई ओट लेने की कोशिश नहीं की। इसके बजाए उन्होंने प्रभावित क्षेत्रों और सेना के कुछ इलाकों का दौरा किया। मैंने उनके चेहरे पर एक विलक्षण संकल्प देखा।

"तमाशा पसंद आया?"

उन्होंने पान चबाते हुए पूछा।

"जी हाँ, मुझे तो मजा आ रहा है।"

"मैं इन जडबुद्धियों को समझा देना चाहता हूँ कि उन्हे आजादी नही मिल सकती। उन्हें भारत के अंदर ही रहना होगा।"

वह शहर मे किसी सेना के जनरल की तरह घूमे और शहर के खतरे वाले इलाकों की रक्षा करते घबराए हुए सिपाहियों से भी मिले।

* * * *

मैं तेजी से घूमते घटनाचक्र के भंवर मे फंस गया। मै अपने काम मे इतना डूब गया था कि सुनदा ने मेरे दफ्तर मे लंबे समय तक लगे रहने और अदरूनी इलाकों मे मेरे जोखिम भरे दौरों पर नाराजगी जाहिर की। काम का भार बहुत ज्यादा था। आई.बी. के कर्मियों द्वारा नियत क्षेत्र से एकत्रित गुप्त सूचनाओं के अलावा मुझे मणिपुर, दीमापुर, मोकाचुग और तुएनसाग के आई.बी स्टेशनों से मिली रिपोर्टों को भी देखना होता था। बहुत से संदेश भी भेजने के लिए तैयार करने होते थे।

परिचालन संबंधी सूचनाएँ एकत्र करना मुझे आकर्षक लगता था। मणिपुर में जो हुनर मैंने सीखा था उसपर धार देने के पर्याप्त अवसर कोहिमा मे मिले। मुझे लगा कि मैं पानी में उस मछली की तरह हूँ जो अपने करतब दिखाने को बेताब है। मैंने चुनौती स्वीकार की और उपलब्ध साधनों का सेना व अर्द्धसैनिक बलों के लाभ के लिए भरपूर इस्तेमाल किया। कुछ अधिकारियो और नए भर्ती किए गए एजेटों ने सूचना के नए आधार खोजने मे मेरी बहुत सहायता की। जनरल ए.आर दत्त कुछ सही सूचनाओ से बहुत प्रभावित हुए और उनकी सेना ने सफलतापूर्वक उन पर कार्रवाई की। नतीजा यह हुआ कि सुनदा को कम से कम हफ्ते मे तीन बार जनरल के लिए स्वादिष्ट बंगाली व्यंजन बनाने पडते थे। सिने और रगमच के प्रसिद्ध कलाकार उत्पल दत्त के भाई जनरल हमे अपने भाई के कारनामो और अपनी सेना के अनुभवों के किस्से सुना कर आमोदित करते।

मेरे विचार से परिचालन की विस्तृत चर्चा करना उपयुक्त न होगा। लेकिन बहुत से अंगामी, तागखुल और चाकेसाग विद्रोही दलो को निष्क्रिय करने मे आई बी की गुप्तचरी से जो सहायता मिली उसका श्रेय उसको दिया गया। कम से कम दो दलो को चीन से लौटते हुए बर्मा सीमा के निकट खेमुगान क्षेत्र में अवरुद्ध किया गया और 200 से अधिक विद्रोहियो का अधिकारियों के सामने आत्मसमर्पण कराया गया।

विद्रोहियों पर कार्रवाई के दबाव और मेरे द्वारा दी गई सूचनाओं की प्रशसा से ही मैं सतुष्ट न था। मैं नगाओं के मन की गहराइयों को समझ लेना चाहता था। ए.जेड. फिजो आदोलन को एक अखिल नगा छवि देने में सफल हो गए थे। सकीर्ण जनजातिवाद उत्तरपूर्व के जनजातीय समाज का अभिशाप रहा है। आज भी ऐसा ही है। जनजातिवाद को गलती से राष्ट्रवाद समझा जाता है। भाषा व बोली के व्यवधान, कबीलों के विधि-विधान और अह ने पद्रंह मुख्य नगा कबीलों को अलग करके रखा। गिरजाघर का सब में समान बंधन भी युगों पुराने कबीलों के व्यवधान और वंशगत शत्रुता को समाप्त न कर सका। असमिया, बंगाली और नेपाली की खिचडी नगामी सामान्य बोली थी। लेकिन पहाड की चोटियों पर रहने वाले नगा इसे ठीक से नहीं समझते थे।

फिजो के अलगाववादी आंदोलन ने किसी हद तक कबीले और वंशों के अवरोध को कम किया था। लेकिन नगाओं की भू-राष्ट्रीयता की परिभाषा अभी भी स्पष्ट होनी बाकी थी। हालांकि उन्होंने भारत सरकार को लगभग बंदूक के जोर पर उन्हें भू-राजनीतिक पहचान देने के लिए मजबूर कर दिया था। यह अस्पष्टता अभी भी नगाओं को परेशान कर रही है और वे अपने जातीय भूगोल को बृहत्तर नगालैंड बना कर संपूर्ण करना चाहते हैं जिसमें मणिपुर, अरुणाचल प्रदेश, असम और शायद बर्मा के नगावासी इलाकों को भी वे शामिल करना चाहते हैं।

यहाँ बृहत्तर नगालैंड के मामले से थोडा विषयांतर करना जरूरी है। मुइवा गुट की माँग इस शांतिवार्ता के रास्ते में सब से बडा व्यवधान साबित हुई।

यह बडा विवादास्पद मुद्दा है। आज के राजनीतिक भूगोल में जिसे नगालैंड कहते हैं उसके नगाओं के मुकाबले तांगखुल, जेलियांग और रोंगमई व मओ मारम तथा अन्य कम नगा जनजातियाँ बहुत अलग हैं। स्पष्टतः वे उसी ट्रांस-पैसिफिक से चीनी-पोलीनेशियन से यहॉ नहीं आए थे। वे देखने में अलग हैं। वे अलग भाषा बोलते हैं। उनके सामाजिक रीति-रिवाज अलग हैं। नगालैंड के नगाओं को फिजो ने कुछ अखिल नगा संबद्धता दी थी जो बाद के आंदोलन में भी बरकरार रही। मणिपुर के नगाओं ने हमेशा नगालैंड के नगाओं से अपने-आप को अलग रखा। शताब्दियों में उन्होंने मणिपुर नरेशों के अधीन एक स्पष्ट मणिपुरी पहचान बनाई। इसमें संदेह नहीं कि वे भी आज ईसाई धर्म के समान संबंध से जुडे हुए हैं, पर वे विभिन्न वर्गो से हैं। किसी बडे राजनीतिक क्षेत्र के लिए सिर्फ इसलिए राजी हो जाना, क्योंकि वे भी उसी धार्मिक ग्रंथ के अनुयायी हैं, उसी तरह होगा जैसे कि कुछ इस्लामी मानते हैं कि धार्मिक एकात्मता से एकजुट राष्ट्र का निर्माण हो जाता है।

मैं निश्चित तौर पर कह सकता हूँ कि नगालैंड के नगा, मणिपुरी नगाओं का कभी स्वागत नहीं करेंगे। तांगखुल भी स्वाभाव से उतने ही प्रभुत्व जमाने वाले हैं जितने कि अंगामी, ओ या सेमा हैं। यह मामला तो कुछ उसी तरह का है जैसे बंगलादेश और भारत में रहने वाले बंगालियों की एक जातीय राष्ट्र के रूप में फिर से एक हो जाने की इच्छा। अंतर्राष्टीय सीमा के दोनों ओर रहने वाले बंगालियों और पंजाबियों में जातिगत और भाषाई समानता है, लेकिन इस से यह साबित नहीं होता कि यह पुर्नमिलन का मामला है। यह तो एक सपना है। एक बुरा सपना। इसी तरह अंग्रेजों द्वारा एक नाम दे दिए जाने के आधार पर नगालैंड, मणिपुर ओर बर्मा के नगाओं के एक हो जाने की इच्छा भी एक कपोल कल्पना ही है।

नगा शब्द का प्रयोग निंदात्मक रूप में पहाड़ पर रहने वाले उन लोगों के लिए किया जाता था जो असम में रहने वाले सभ्य लोगों की तुलना में कम वस्त्र पहनते थे। नगा का मूल शब्द नग्न है। यह उसी तरह है जैसे हिंदू अपने कुछ खास साधुओं को नागा कहते हैं। इसी तरह जैनियों में दिगंबर सप्रदाय के साधु होते हैं जो वस्त्रों का त्याग करते हैं। मणिपुर की नगा जनजाति न केवल भाषा की दृष्टि से बल्कि चेहरे-मोहरे और सामाजिक रीति-रिवाजों की दृष्टि से भी भिन्न है। उनकी रानी गाइदिंल्यू के अनुयायी जेलियांग तथा रोंगमेई नगाओं के एक वर्ग ने ईसाई धर्म स्वीकार करने से इनकार कर दिया। वे हिंदू नगा कहलाना पसंद करते थे। मणिपुर के नगाओं का एक छोटा समुदाय यंहूदी होने का दावा करता था। कुछ इनसे भी छोटे वर्ग अपने आप को हिंदू ही मानते थे। पर भारत सरकार ने रामकृष्ण मिशन जैसे हिंदू संगठनों को वहाँ जाने को प्रोत्साहित नहीं किया। बात यह थी कि उसे वहाँ के ईसाई बहुसंख्या वाले नगा कबीलों से कुछ प्रतिक्रिया होने की आशंका थी। आर.एस.एस. ने भी दीमापुर,

हाफलांग के शहरी इलाके से आगे जाने की चेष्टा नही की। चीनी और पाकिस्तानी मार्के की गोलियों के सामने उनका हिंदुत्व का जनून ठडा पड़ गया।

लिहाजा नगालैंड सामान्यत· इस भौगोलिक क्षेत्र में कही भी रहने वाले नगाओ का घर नहीं बन सकता। सबको एक समान नाम देने या उनके एक ही धर्म मे विश्वास होने के आधार पर एक नई भौगोलिक पहचान नही बनाई जा सकती। यह मणिपुर, असम या अरुणाचल प्रदेश में रहने वाले नगाओ को स्वीकार्य नहीं होगा। ये लोग उतने ही नगा है जितने कि बगलादेश के बगाली या पाकिस्तान के पजाबी बगाली और पजाबी हैं।

बहरहाल इतिहास किसी व्यक्तिगत विचारणा की परवाह नही करता। अगर किसी कमजोरी के पलो मे दिल्ली की सरकार इतिहास के चक्र को भारतीय सघ की सीमाओ के अदर एक समान भौगोलिक-राजनीतिक दायरे मे नगा एकता की दिशा मे घुमाने की चेष्टा करती है तो यह उत्तरपूर्व भारत के सुरक्षा परिदृश्य को मजबूत नही बनाएगा। इससे असम अरुणाचल प्रदेश, मणिपुर तथा अन्य जातीय क्षेत्रो मे गभीर विस्फोट होगे, जहाँ जातीय भूगोल अभी भी आलोडन की स्थिति मे है।

* * * *

मैं नगालैंड की नगा जातियो के रहस्य-पटल से अपरिचित था। नगा समाज मे पैठ बनाने के अपने साहसी काम मे कूदने से पहले मैने अपनी नगामी भाषा सुधारने की कोशिश की। धीरे-धीरे मुझे और सुनदा को कोहिमा बडा बस्ती बडा गॉव के चेदेमा, फेसामा, फेक और जेसामी जैसे रहस्यमय और भयावह समझे जाने वाले गाँवो मे घुसने की अनुमति मिल गई।

सुनदा को नगा तरीके से पकाए गए सूअर, गाय और दूसरे किस्म के मास नापसद थे। पर वह स्थानीय सब्जियो और अदरक के साथ बनाए गए मुर्गे के सूप को पसद करती थी। उसे यह चावल और स्थानीय नदी की ट्राउट मछली के सग बहुत भाता था। मुझे भी एक दिक्कत थी। मैं बहुत तेज शराब नही पी सकता था। मुझे खराब-सी महक वाली मधु और नगा चाय पर सब्र करना पडता। मेरे तेज शराब से परहेज से मेरी रम की पेटियॉ ले जाने मे रुकावट नही आई। जब कभी मैं अदरूनी गॉवो मे या किसी नगा नेता के यहा जाता तो इनको जरूर साथ ले जाता क्योकि नगा सदा इनका स्वागत करते थे। जब कभी हम किसी बहुत सभ्रात घर मे जाते तो रम की जगह स्कॉच ले जाते।

एक बार कोहिमा के एक गॉव के ऐसे ही भ्रमण पर जब हम वहॉ गॉव की युवतियो का नाच देखने जा रहे थे, भूमिगत नगा सगठन के कुछ हथियारबद सदस्य हमारे साथ हो लिए। उन्होंने पूछा कि एक गुप्तचर अधिकारी हमारे गॉव में किस मकसद से जा रहा है? मेरा सीधा जवाब था कि मै वहॉ गुप्त सूचनाएँ एकत्र करने नहीं जा रहा। मैं और मेरी पत्नी गॉव के मेहमान है। हम नगा जीवन शैली को समझना चाहते हैं। पता नहीं उन्हे मेरा यह सीधा जवाब अच्छा लगा या नही। पर नाच के बाद बहुत अच्छा रात्रि भोज हुआ और सुनदा को एक रग-बिरगा नगा शाल भेट किया गया। मैंने गाँव के गिरिजाघर को 500 रुपए भेंट किए।

धीरे-धीरे बर्फीले व्यवधान पिघलने शुरू हो गए और उनकी जगह पान से रंगी खिली मुसकान ने ले ली। इसकी परिणति चाकेसाग के विपक्षी क्षेत्र के बीचो-बीच बसे जेमामी में हमारे स्वागत समारोह में हुई। वहाँ इस खुशी को हमारे सम्मान मे परपरागत तरीके से एक सकर जाति के बछड़े को काट कर मनाया गया। इस बार नगा सघीय सरकार से सबद्ध नगा महिला समाज ने मुझे एक नगा टाई भेट की। सुनदा को एक सुदर चाकेसाग शाल और हमारे बेटे

को एक स्कार्फ भेंट किया गया। अंदरूनी गाँवों में मेरे दौरों के दौरान मेरे परिवार की उपस्थिति ने बहुत से नगा दिलों के दरवाजे खोल दिए। इससे मेरे इस अनुमान की पुष्टि को गई कि नगा परिवार की संस्था का उतना ही आदर करते है जितना कि वे अपनी-अपनी जनजातियों के प्रति अपनी वफादारी का। यह बात बहुत स्पष्ट थी कि हमारे घर पर आने के निमंत्रण का मतलब था पूरे नगा परिवार को निमंत्रण। राजनयिक किस्म की पार्टियों में तो औपचारिक तौर पर विचारों का आदान-प्रदान होता था। लेकिन परिवारों से मिलन अक्सर नगाओं और घृणित भारतीय कुत्तों के बीच का व्यवधान मिटा देता था। मेरी अपने काम के साथ अपने परिवार को मिलाने की तरकीब के बहुत अच्छे परिणाम सामने आए। आदर्शवादी विद्रोह के उन दिनों में नागरिकों और महिलाओं पर नगा हमला नहीं करते थे। हम आजादी से घूमते-फिरते थे और हमारा यह लापरवाही वाला अंदाज नगाओं को दिलचस्प लगता था।

‹11›

प्यार करने लायक लोगों के बीच

शांतिपूर्वक समय लगाकर सोच-विचार करने पर ही किसी जनसमुदाय की पुकार को पहचाना जा सकता है।

जार्ज वाशिंगटन

नगा गाँवों में हमारे जाने से मैंने अपने पेशे की जरूरतों से आँखें नहीं मूँद ली थीं। मेरे अंदर का गुप्तचर अधिकारी यंत्रवत चलकर अपनी याद दिलाता रहता था। मैं बहुत-से एजेंट बनाने में सफल रहा और इससे मुझे नगा मन को समझने और नगा भूमिगत तंत्र के काम करने की जानकारी पाने में बहुत मदद मिली। इसमें मुझे बहुत सूचनाएँ एकत्र करने के भी अवसर मिले।

सरकारी प्रतिबंध के प्रभाव और चीनियों के साथ बढते संपर्कों तथा मुइवा व इसाक की हठधर्मी से आशंकित कुछ फिजो समर्थक नगा नेताओं ने शाति प्रक्रिया को बहाल करने के बारे में सोचना शुरू कर दिया था। मैं जानता था कि नगालैंड में शाति कल्पनामात्र ही है जब तक कि उस प्रक्रिया को फिजो का आशीर्वाद न मिले। मुझे यह जानकारी भी थी कि आर्मी इंटेलिजेंस डायरेक्टोरेट भी फिजो की एक भतीजी रानो शाइजा और उसके तांगखुल नगा पति लुंगशीम के माध्यम से इस तरह के प्रयास कर रहा है। उनकी शादी भी नगालैंड और मणिपुर की दो प्रमुख नगा जनजातियों–अगामी व तांगखुल–के बीच सेतु का काम करती थी। मंत्रिमंडल सचिवालय के कलकत्ता स्थित रॉ के कुछ सचालक भी रेवरेंड लोंगी ओ. से इस बारे में संपर्क कर रहे थे। इसके अलावा नगालैंड के आयुक्त एस सी. देव, राज्यपाल के सलाहकार एम. रामुन्नी, नगालैंड के अनुभवी और अब केंद्रीय गृह मंत्रालय में वरिष्ठ अधिकारी एम.एल. कंपानी भी शांति प्रकिया आरंभ करने के लिए प्रयास कर रहे थे। मेरी तो उनके सामने कोई हैसियत ही नहीं थी।

मेरे भाग्य और प्रयास ने खोनोमा स्थिति एक मित्र के माध्यम से एक रास्ता खोला। मुझे 1972 के क्रिसमस से पहले चेदेमा के निकट किसी जगह पर ए. जेड. फिजो के बडे भाई केवी याले से मिलने वाला पहला भारतीय गुप्तचर अधिकारी होने का श्रेय प्राप्त हुआ।

मुझे मेरे खोनोमा वाले मित्र ने नगा बाजार से लिया और हम एक घंटे तक पहाडियों में ऊपर-नीचे चढते उतरते रहे। फिर हम एक ऐसी जगह पहुँचे जहाँ से रास्ता चेदेमा जाता था। एक जीप मोड पर हमारा इंतजार कर रही थी। हम कोई आधा घंटा चले। फिर तीन हथियारबंद आदमियों ने हमें रोका। मेरे दोस्त ने मुझे नीचे उतर कर तलाशी देने को कहा। यह काम एक आदमी ने किया जिस के कंधे पर स्वचालित राइफल और होठों पर मुस्कान थी।

हमें टिन के छत वाली एक झोंपडी में ले जाया गया। उस प्रभावशाली व्यक्ति ने लबादे जैसी पोशाक पहन रखी थी और ऊपर से शाल ओढे हुए था। वह दरवाजे पर मेरी आगवनी को आया। अपने लंबे बालों में वह सॉवले रंग का मूसा लग रहा था।

हमें एक लट्ठे को चीर कर बनाई गई बडी-सी मेज के साथ बैठाया गया। हमें आम अंग्रेजी चाय और कुरकुरे बिस्किट पेश किए गए। मेरा ध्यान बिस्किट के पैकेट पर छपे चीनी अक्षरों की ओर गया।

"दार्जीलिंग की चाय और शंघाई के बिस्किटों के साथ तुम्हारा स्वागत है," केवी याले ने अपने खास अंदाज में कहा।

"अच्छे बिस्किट हैं," मैंने कहा।

"अच्छे ही होने चाहिए। पर तुम्हारे लिए शायद कडवे हों। इन्हें मेरा दोस्त मुइवा चीन से लाया था।"

"मैं भाग्यशाली हूँ।"

"बिलकुल। तुम मुझ से मिलने वाले पहले भारतीय अधिकारी हो। मुझे तुम्हारी अच्छी खातिर करनी चाहिए।"

"अगर इसकी जगह चावल का बना नगा केक होता तो बेहतर रहता।"

"खूब कहा कोलकाता के बाबू। मुझे तुम्हारी यह बात अच्छी लगी। "

यह हास-परिहास कुछ देर चला। उसके बाद मैंने केवी याले से असली मुद्दों पर बात की। हमारी बातचीत कोई दो घंटे चली। फिर हमने अच्छे दोस्तों की तरह विदा ली। मैंने केवी को एक पतली सी चेन भेट की जिस के पेंडेट में क्रास बना हुआ था। उसने उत्सुकता के साथ उसे लिया और फिर ठहाका मार कर हस पडा।

"बहुत चतुर हो। मेरे खयाल से तुम अपनी पत्नी और बच्चे के साथ हमारे गॉवों में जाते हो।"

"हॉ, मैं जाता रहता हूँ।"

"इसे जारी रखो। नगा लोगों को समझने की कोशिश करो। तुम भारतीय हमसे उसी तरह दूर हो जैसे एस्कीमो न्यूयार्क से दूर हैं। अपने लोगों को समझा दो कि हमें भारतीय बनाने के लिए उन्हें यह साबित करना होगा कि भारत नगाओं के रहने के काबिल है।"

मैंने केवी की इस टिप्पणी का जवाब न देने का फैसला किया। क्योंकि मैंने उसमें समझौते की एक हल्की झलक देखी थी। एक नगा भारतीयों के प्रति स्वभावतः सशंकित था जो अचानक 1947 में सत्ता परिवर्तन के बाद उसके ऊपर आ विराजमान हुए थे। मैं जानता था कि एकता की प्रक्रिया इंडिया के भारत बनने की प्रकिया से भी अधिक समय लेगी।

कोहिमा लौटने पर मुझे नगा नेता से चर्चा का ब्योरा लिखने में दो दिन लग गए। अपने पाठकों के साथ मैं उस ब्योरे को बॉट नहीं सकता क्योंकि यह गोपनीयता कानून का उल्लंघन होगा। लेकिन दिल्ली इस रिपोर्ट से सन्न रह गई। शुरू में तो इस मुलाकात पर विश्वास ही नहीं किया गया। सेवा के लिहाज से कल का बच्चा केवी जैसे जाने-माने नगा विद्रोही को कैसे अपने प्रभाव में ले सकता है? लेकिन अंततः विश्लेषण डेस्क इस रिपोर्ट से सहमत हो गया। मुझे आर डी. पांडे से एक बधाई का पत्र मिला। उनकी बधाई में एक चेतावनी भी छिपी थी कि मुझे अपनी और अपने परिवार की सुरक्षा का ध्यान रखना चाहिए।

मुझे पता चला कि मेरी रिपोर्ट का मसौदा बाद में 1974-75 में शांति वार्ता की तैयारी में भारत सरकार के लिए सहायक सिद्ध हुआ।

* * * *

केवी के साथ मेरी मीटिग के बाद जेड राम्यो के साथ मेरी एक निर्धारित मीटिंग हुई। राम्यो एक रहस्यमय किस्म का तांगखुल नेता था। उसने 1967-68 में समानांतर नगा सरकार के लिए यहेजाबो (संविधान) का मसौदा तैयार करने की पहल की थी।

मेरा राम्यो से संपर्क उस समय हुआ जब वह एन.एन.सी./एन.एफ.जी. के अंगामी और चाकेसांग धडे के सदेह के घेरे में आ चुका था। तुइंगालेंग मुइवा एक और रहस्यमय तागखुल था। वह राम्यो को कुछ नहीं समझता था। यह कोई हैरानी की बात न थी। तांगखुल ईर्ष्यालु स्वभाव के होते हैं। वे किसी साथी तागखुल को पनपते नहीं देख सकते। यही कारण है कि तागखुल, रिशांग केइसिंग जैसा कद्दावर दूसरा राजनीतिक नेता या फिर राम्यो जैसा संतुलित सोच वाला भूमिगत नेता नहीं बना सके।

भारत सरकार यह सोचती थी कि मुइवा नगा समस्या के हल की कुंजी है। यह देखकर जानकार लोगों को अफसोस होता था। मुइवा के तो अपने गृह जिले में भी बहुत कम अनुयायी थे। उसके तांगखुल बहुल हथियारबंद दल को भी नगालैंड की बहुत सी जनजातियाँ मान्यता नहीं देती थीं। इस चीन और पाकिस्तान परस्त ने यह भ्रम पैदा कर दिया कि उसकी तांगखुल समस्या ही नगालैंड की समस्या है, वह फिजो नहीं, जिसने नगालैंड, मणिपुर, असम, अरुणाचल और बर्मा की नगा जनजातियों को एक अखिल नगा पहचान दी थी। कई लोग समझते न थे कि उसके आदेश, जब तक कि उनके पीछे बंदूक का जोर न हो, घिरांग उखरूल, चंदेल दक्षिण मणिपुर और मराम-खुलेन उत्तर मणिपुर में नहीं माने जाएँगे। अनभिज्ञ राजनीतिज्ञों और स्वार्थी प्रशासकों के यह अजब तरीके है जो आज भी भारत की जनता को झूठी शांति बेच रहे हैं। वे मुइवा और इसांक को अंतिम शांति समझौते की कुंजी के रूप में पेश कर रहे है। फिजो समर्थको और सवैधानिक रूप से निर्वाचित सरकार से ध्रुवता को स्थानांतरित करने को सहमत हो कर भारत सरकार ने एक नई ध्रुवता कायम कर ली जो चीन, पाकिस्तान और पश्चिमी गोलार्द्ध के योजनाकारों के साथ सांठ-गांठ रखती है।

मेरा राम्यो तक सेतु पुराने वफादार एल. हुंग्यो ने बनाया। उसने नगा सिद्धान्तकार के गुप्त ठिकाने तक कई चक्कर लगाए और विश्वास का माहौल बनाया। हुंग्यो को तुरंत कुछ दवाओं की जरूरत थी। उसने उन्हें इम्फाल के बाजार से मंगाने के लिए हुंग्यो की सेवाओं का लाभ उठाया। एक बार उसे एक विशेष जीवन रक्षक दवा लाने के लिए गौहाटी भी भेजा गया।

हुंग्यो समझदार था। वह राम्यो तक दवा पहुंचाने के लिए तोली गाँव की एक युवा नगा लड़की रश्मि (बदला हुआ नाम) को भेजता था। वह हुंग्यो के इम्फाल में मंत्री के पोखरी वाले घर तक आती और वहाँ से बीमार नगा नेता के लिए दवाएँ ले जाती।

मैं रश्मि और हुंग्यों के साथ एक प्राइवेट जीप में तोली गॉव की बाहरी सीमा तक गया। वहाँ मैंने इंतजार किया। रात पड़ने पर वह बहादुर लड़की मुझे गाँव के गिरिजाघर तक ले गई। हुंग्यो बाहर पहरे पर खड़ा रहा। हम लोग करीब दो घंटे साथ रहे और परस्पर हित की बातें कीं। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि बहुत प्रशंसित और बदनाम किया गया नगा नेता बच्चों के-से सरल स्वाभाव का था और उसका ईसाई धर्म में अगाध विश्वास था। बंगाली बाबुओं

और उनकी नगा समस्या के प्रति समझ के लिए उसकी मुक्त प्रशंसा ने मुझे कुछ हैरान कर दिया।

मैंने उसके साथ तीन मीटिंगें कीं। मुझे इसमें तनिक भी सदेह नहीं रहा कि जेड. राम्यो शांति का हिमायती था और वह भारतीय संघ के अंदर एक सम्मानजनक हल के हक में था। हमारी बातचीत में 1971 में पाकिस्तान के साथ चीनियों के दगा करने और चीन में ईसाइयों के दमन का मुद्दा भी आया। मैंने उसे समझाया कि आने वाला इतिहास भारत के हक में होगा और नगाओं को अंग्रेजों के साथ अपने संबंधों के अतीत से बाहर निकलना चाहिए।

राम्यो बहुत होशियार न था। काफी विश्वास जम जाने के बाद हम दोनों दोस्तों की तरह भी मिले। राम्यो से बातचीत की मेरी कुछ रिपोर्टों ने फिजोपरस्त भूमिगत नगा नेताओं और उनके गैरभूमिगत समर्थकों के सोचने के तरीके के बारे में गहरी अंतर्दृष्टि प्रदान की। बाद में सेना के गुप्तचर विभाग ने राम्यो का घटिया तरीके से दोहन किया और उसका बुरी तरह पर्दाफाश किया।

यहाँ मैं अपने पाठकों को बता देना चाहता हूँ कि नगालैंड जैसे क्षेत्र में गुप्तचर संगठन और सरकार के प्रशासन विभाग पेशे की जलन के मारे एक दूसरे का रास्ता काटते रहते हैं। एक दूसरे की कार्रवाई में रोडे अटकाने के लिए ये सगठन लगातार लुका-छिपी का खेल खेलते रहते हैं। डी.एम.आई. की एफ आई.यू. इकाइयों और डिवीजन मुख्यालयो के फील्ड इंटेलिजेंस डिटैचमेंट्स से अधिकतर इस तरह की शुरुआत हुआ करती है। इस तरह के अनुचित मुकाबले को देखते हुए मैंने राम्यो के साथ अपनी मीटिंगें बहुत नियमित रखीं और हम लोग लगातार मिलते रहे। इसका परिणाम मेरे नगालैंड छोडने के बाद शिलांग समझौते के रूप में सामने आया।

* * * *

मेरे भूमिगत नगा नेताओं के साथ संपर्क बनाने के प्रयास राम्यो तक ही सीमित न थे। यू.डी.एफ. के एक महत्वपूर्ण चाकेसाग नेता, जो 1992-93 में नगालैंड के मुख्यमंत्री भी बने, मेरे काम आए। उन्होंने नगा संघीय सरकार के स्वयंभू गृहमंत्री बिसेतो मेदोम केहो से मेरी मुलाकात की पृष्ठभूमि तैयार करवाई। मीटिंग का प्रस्ताव बिसेतो की तरफ से आया। दीमापुर से आगे पहाड की तराई के एक छोटे कस्बे से एक बडी खूबसूरत अंगामी युवती वेनी इरालू (असली नाम नहीं) जब उन का अनुरोध ले कर मेरे घर कोहिमा आई तो मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। वेनी कलकत्ता के एक कॉलेज में डाक्टरी की पढाई करती थी। उसका भाई जैसिलू इरालू (परिवर्तित नाम) शायद पहला अंगामी था जिसे मैंने पिछले दो दशकों में सुरक्षा सहायक के पद पर तैनात किया था। मैं उसे प्यार से जेसी बुलाता था।

अंगामियों को भारत की हर चीज से नफरत थी। खासतौर पर आई.बी. से। गर्वीले होने के कारण वे खुद को नगा जनजातियों में दूसरों से ऊँचा समझते थे। शिक्षा में उनसे आगे होने के कारण वे अंगामियों को तुच्छ समझते थे। उभरते हुए सेमा भी ए.जेड. फिजो की जाति के इस दावे को नहीं मानते थे। मणिपुर के तांगखुल भी अंगामियों की तरह ही स्वयं को उत्कृष्ट समझने वालों में से हैं।

जेसी ने यह काम करने का हौसला दिखाया। इस साहसी नवयुवक ने कठोर अंगामी समाज और उसके भूमिगत नेताओं से मेरी मेल-मुलाकात के रास्ते खोल दिए।

केवी याले और जेड. राम्यो से मुलाकात के लिए मैने आई.बी. की अनुमति नहीं ली थी। बेसेतो के मामले में मैंने आई.बी. से मशविरा करना जरूरी समझा। दिल्ली ने प्रस्ताव मंजूर कर लिया। साथ ही नगा संघीय सरकार के स्वयभू गृहमत्री से पूछने के लिए एक विस्तृत प्रश्नावली भी भेज दी।

विद्रोही नेता से मिलने के लिए मुझे अंगामी इलाके के किसी अंदरूनी हिस्से तक के कठिन रास्तों पर नहीं चलना पडा। हमारी मुलाकात आंगामी इलाके के बीच में दीफू पार गॉव की एक मामूली झोंपडी में तय हुई। जेसी ने मुझे कच्ची सडक के किनारे तक छोडा जहा चाकेसांग नेता मुझे मिले। हम लोग करीब आधा घटा चले। फिर हमे दो शाल ओढ़े लोग मिले जिन्होंने चुपचाप हमारा पथप्रदर्शन किया। उनके उभरे हुए शाल बता रहे थे कि उनके पास स्वचालित हथियार हैं। वे एक झोपडी के दरवाजे पर आ कर एक ओर हट गए। वहॉ वेनी ने हमारा स्वागत किया। उसकी मौजूदगी से मुझे हैरानी हुई। मैं इस मिलन स्थल पर उसके होने की उम्मीद नही रखता था।

बाद मे मुझे पता चला कि वेनी और जेसी बेसेतो मेदोम के रिश्तेदार है। वह दीफू गॉव. मवाद वाले किसी त्वचा रोग से पीडित भूमिगत नेता का इलाज करने आई थी।

बेसेतो ने हमारा गर्मजोशी से स्वागत किया पर यू.डी.एफ नेता को मीटिग से बाहर रहने को कहा। वेनी चाय और कुछ अल्पाहार देकर चली गई। अब हम अकेले रह गए। हमने एक घंटे से ज्यादा बातचीत की। उसके दोबारा शातिवार्ता करने पर भारत सरकार की क्या प्रतिकिया होगी, इस बारे में पूछे गए सवालों से मुझे आश्चर्य हुआ। नगालैड मे उस समय रेवरेंड लोगी ओ सहित कोई भी शांति की बात नहीं कर रहा था। चीनियो और नगा विद्रोहियो की बढती सांठ-गाठ ने इंदिरा सरकार का रवैया सख्त बना दिया था। फिजो समर्थक नेताओ और ईसाई नेताओं का एक वर्ग चीनी कम्यूनिस्टो के साथ मुइवा की नई दोस्ती से क्षुब्ध था।

बेसेतो से मेरी पहली और बाद की मुलाकातों का ब्योरा मैं यहाँ नही देना चाहूगा। बातचीत के कुछ मुद्दे ईसाई नगाओं के लिए चीनियो के सभावित खतरे, भूमिगत सेना के लिए भर्ती के सीमित होने और सशस्त्र सघर्ष के मद्धम पडने से सबद्ध थे। मैं यह बताना चाहूंगा कि बेसेतो बंद दिमाग वाला आदमी न थे। नगाओं के हित के लिए उनकी निष्ठा सच्ची थी। पर वह मुवइया या इसाक की तरह तंग नजर वाले न थे। बाद मे उनके इसी लचीले रवैए ने शाति वार्ता की शुरुआत में मदद की जिसकी परिणति शिलांग समझौते में हुई।

* * *

चेंगसाग इलाके मे मेरे फेक जाने का कारण ग्रामसमिति के उपप्रधान की मेरे चौकी प्रमुख के विरुद्ध शिकायत थी। यह बंगाली बोलने वाला युवा अधिकारी कुछ एजेट बनाने मे सफल रहा था और उसका काम भी सतोषजनक था। शिकायत की वजह उसका गॉव की एक लडकी के लिए आकर्षण था।

मैं इस संबंध से अनजान न था। मैंने उस युवा अधिकारी का हौसला बढ़ाया था कि वह लड़की की अपने प्रति चाहत बढाए। मैं जानता था कि लडकी कौन है। फिर एक जवान आदमी का एक युवा चाकेसांग लडकी के प्रति आकृष्ट होना भी स्वाभाविक ही था। चाकेसांग मंगोल मूल के नगाओं के मुकाबले तीखे नाक-नक्श वाले होते हैं। उनकी गोरी त्वचा से लाली झलकती है और पहचान वाले को उनके प्रशांत क्षेत्र के चेहरे-मोहरे की याद आती है।

इस मौके पर सुनंदा और हमारा बेटा मेरे साथ गए। हम गॉव के मुखिया के लिए रम की एक पेटी, कंडेंस्ड दूध के कुछ डब्बे, चाय के पैकेट, कुछ इत्र और प्रसाधन सामग्री ले गए। फेक पहुँचने पर गॉव के गिरिजाघर में हमारा स्वागत किया गया। उसके बाद दोपहर का खाना हुआ। असम राइफल के स्थानीय कमांडर की इच्छा थी कि हम लोग रात यूनिट के अतिथिगृह में गुजारें। हमने सरकारी विश्रामगृह पसद किया हालांकि उस में एक महिला और बच्चे के लायक इंतजाम नहीं था।

अगली सुबह हम उस लडकी मेरी (असली नाम नहीं) के घर के लिए निकले जिसके प्रति मेरा अधिकारी भावुक हो गया था। रास्ते में एक अफसर ने बताया कि हम जेशी हुइरे के गॉव वाले घर को जा रहे है। जेशी नगा संघीय सरकार के स्वयभू अध्यक्ष थे। मेरी उनकी बेटी थी।

गृहस्वामिनी और नगा विद्रोही की नगीने जैसी बेटी ने हमारा स्वागत किया। हम आग के पास बैठ गए। मेरी ने हमारे लिए चाय और हमारे बेटे के लिए एक प्याला दूध पेश किया। महिला ने सेना के गश्ती दलों द्वारा परेशान किए जाने और बार-बार असम राइफल कैंप में बुलाए जाने की शिकायत की। उसने कहा कि उसे कैंप जाने से उतना एतराज नहीं है। लेकिन उसे अपनी बेटी को बुलाए जाने पर सख्त एतराज था।

हमने उसे तोहफे दिए। वह कंडेंस्ड दूध से प्रफुल्लित हो गई। मेरी को प्रसाधनों की भेंट से आश्चर्य हुआ। इससे सकोच दूर करने में मदद मिली और हमने कोई दो घंटे इकट्ठे गुजारे। मैंने सुंनंदा के सामने ही गृहस्वामिनी को एक कोने मे ले जाकर पूछा कि क्या उसे मेरे अफसर से कोई शिकायत है? उसे कोई शिकायत न थी। पर उसने कहा कि उसे हमारे घर पर आने में और सावधानी बरतनी चाहिए, क्योंकि गॉव के बडे किसी भारतीय का नगा संघीय सरकार के अध्यक्ष की बेटी से मेल-जोल पसंद नहीं करते। मैंने उसे उचित कार्रवाई का आश्वासन दिया।

हमारा उनके यहॉ जाना बाद में एक अच्छे दोस्ताना रिश्ते में बदल गया। अंततः इसका परिणाम 1973 मे मेरी जेशी से मुलाकात के रूप में सामने आया। हम लोग ज्यादातर विद्रोही नेता के जंगल के छिपे ठिकानों पर मिलने लगे। मैंने जेशी हुइरे से पॉच मुलाकातें कीं। हमने भारत-नगा सबधो के सब पहलुओं पर विस्तार से चर्चा की। हमने स्थायी शांति समझौते की संभावनाओं पर भी बातचीत की। वह पहले नगा नेता थे जिन्होंने मुझे स्पष्ट संकेत दिए कि सरकार फिजो के हाथों से खिसकती जा रही है और लंदन में स्वतः निर्वासित नेता वास्तविकता से कट चुका है। भूमिगत संगठन में चीन के साथ बढते संबंधों के प्रति विरोध की भावना पनप रही है। उनका साफ नजरिया था कि मुइवा और इसाक नगाओं को चीन की गोद में धकेल रहे थे और फिजो चीनी नेताओं के साथ एक स्पष्ट राजनीतिक व सैनिक नयाचार तय करने में विफल रहे हैं। उनके विचार में मुइवा और इसाक चीन व पाकिस्तान के मोहरे बने हुए थे। इससे भूमिगत आंदोलन में एक और दरार पड जाएगी। वह ईसा की भूमि पर नास्तिक चीनियों को आमंत्रित करने के हक में नहीं थे।

जेशी खुले दिमाग के लोगों में से थे। वह आदर्शो की घेराबंदी में कैद न थे। वह धर्मपरायण ईसाई थे और उनका मानव संबंधों के आधारभूत मूल्यों में विश्वास था। वह सेना के साथ खूनी संघर्ष को अक्सर प्रभु की सेवा कहा करते थे। उन्होंने इस बात की कद्र की

कि मेरे, एम रामुन्नी और एस सी देव से बात करने के बाद सेना ने उनकी पत्नी और बेटी को परेशान करना बद कर दिया था। उन दोनो ने भी मेरी नगालैड के अदरूनी हिस्सो मे पैठ की तारीफ की। हालाकि मैंने उनको जेशी से अपनी बातचीत का ब्योरा कभी नहीं बताया। मैं यहाँ स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि जिन शीर्ष भूमिगत नगा नेताओ से मैं मिला उनमें से कोई भी आई बी का भाडे का एजेट नही था। मैंने व्यक्तिगत रूप से उनसे मित्रता की थी। हम कह सकते है कि वे अवचेतन एजेट' थे। इस तरह दोस्ती करने की आई बी और भारत सरकार ने प्रशसा की। इस तरह की दोस्ती गुप्तचर सूचनाएँ एकत्र करने की एक पद्धति है। इसे राजनयिक सबध भी कहते हैं।

<12>

जनसमुद्र में तैरना

ईश्वर आम आदमी से अवश्य प्रेम करे। आखिर उसने इतने सारे बनाए हैं।

अब्राहम लिंकन

पेशे के लिहाज से 1973 बडा महत्वपूर्ण साल था।

एन.एन.सी., एन.एफ.जी. और नगा सेना के अदरूनी ढॉचे में मेरी पैठ के पीछे त्रुटिहीन सूचना के स्रोत पैदा करने, नगा सोच को समझने और नगा मन में बसे इतिहास की जटिलताओं की थाह पाने की प्रेरणा थी। मैं सोचता था कि लगातार मिलते रहने से इतिहास की उन जम चुकी परतों को खोलने व विचारों के आदान-प्रदान की प्रक्रिया को समझने मे सहायता मिलेगी जिसने ए. जेड. फिजो की शुरू की कार्रवाई को बढावा दिया।

मेरे प्रयास स्वभावतः उन घटनाओं की ओर उन्मुख हुए जिन्होंने नगा आंदोलन को विभक्त किया। कुखातो, कइतो स्क्रातो और जुहेतो सेमा गुट फिजो समर्थक गुट से अलग हो गए थे और उन्होंने नगा क्रातिकारी सरकार के गठन की घोषणा कर दी थी।

अक्तूबर 1967 में इंदिरा गॉधी से मुलाकात के बाद नगा प्रतिनिधियों के लौटने से संघीय गुट संतुष्ट नहीं हुआ। इससे पहले हुए समझौते ने स्वाधीनता के अतिरिक्त सब कुछ दिया था। ततार होहो ने कुखातो सुखाई पर नगा हितों को बेच डालने का आरोप लगाया। उन्होंने सेमा नेता के खिलाफ अविश्वास का प्रस्ताव पास करके उसे अतो किलोसार (प्रधानमंत्री) के पद से हटा दिया। इससे पहले कइतो सेमा को सेनाध्यक्ष के पद से हटाकर उसकी जगह ज्वलत अगामी मोवू को नियुक्त किया गया था। लगभग इसी समय मेहासियू अंगामी ने स्कातो स्यू की जगह संघीय सरकार के अध्यक्ष का पद सभाला। मोवू और मेहासियू दोनो फिजो के गॉंव खोनोमा से थे। मेहासियू ने तांगखुल जेड. राम्यो को अपना गृहमंत्री बनाया। कानून के स्नातक राम्यो 1957 से फिजो के साथ थे। थुइगालेंग मुइवा को एन.एन.सी. का महासचिव नियुक्त करने पर तागखुलों की उपस्थिति और मजबूत हुई। मुइवा राजनीति शास्त्र में एम. ए. थे। वह महत्वाकांक्षी और राम्यो के मुकाबले अधिक निष्ठुर थे। शुरू में वह रानो और लुगशिम शैजा के प्रभाव में थे। पर समझा जाता है कि उन्होंने राम्यो के श्रेष्ठ काम से आगे निकलने के लिए उनका इस्तेमाल किया। मुइवा ने हमेशा अपने कबीले से बाहर भी खुद को नगाओं का शीर्ष नेता सिद्ध करने की व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा को वरीयता दी। यह भी सुनने में आया कि सेना इंटेलिजेंस निदेशालय के एक उच्च अधिकारी ने मुइवा को एजेंट बना रखा था जब तक कि वह साम्यवादी चीन में नगा संघीय सरकार के दूत बन कर नहीं गए। मुइवा की 1966 में ढाका यात्रा और उसके आई.एस.आई. के सचालकों तथा चीनी वाणिज्य दूतावास के अधिकारियों से लंबी मुलाकातों के बारे में बहुत कम जानकारी उपलब्ध है। इन बैठकों ने आने वाले वर्षों में मुइवा के नगा मसलों पर विचारों में बहुत परिवर्तन ला दिया।

1968 मे कोहिमा मे काइतो की हत्या के बाद हालात और भी खराब हो गए। सेमा ने इस का बदला मेहास्यू और राम्यो का अपहरण कर लिया। सेमा ने एक और राजनीतिक सगठन काउसिल आफ नगा पीपुल के गठन का ऐलान किया। कुखातो सुखाई को नई पार्टी का अध्यक्ष चुना गया। स्कातो स्यू को क्रातिकारी सरकार का प्रधानमत्री चुना गया। इसने होकिसे सेमा के नेतृत्व वाली नगालैंड सरकार और दिल्ली की केद्रीय सरकार के लिए नया रास्ता खोल दिया।

इस क्रातिकारी गुट ने भारतीय सेना व भारत सरकार के अधिकारियो के साथ सबध कायम कर लिए। होकिशे खुद सेमा थे। उन्होने सेमा गुट को राजी कर लिया। इस दौरान सघीय गुट पाकिस्तान और चीन के और भी नजदीक खिसक गया था।

अगस्त 1973 मे सेमा के भूमिगत दल ने जुहेबोतो मे आत्मसमर्पण कर दिया। इससे होकिशे खेमे मे जो खुशी हुई उसमे उनके मत्रिमडल के कुछ साथी और एन एन ओ के कुछ सदस्य शामिल नही हुए। वे यू डी एफ और सघीय गुट के साथ जुडे रहे। स्कातो स्यू को बाद मे राज्यसभा के लिए नामाकित किया गया। इसमे आई बी ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। जुहेतो ने सीमा सुरक्षा बल मे कोई जिम्मेदारी सभाल ली।

मेरे कोहिमा का कार्यभार सभालते ही स्कातो और जुहेतो से निकट सपर्क बनाने की जिम्मेदारी मुझ पर आ गई। स्कातो एक अच्छे इन्सान थे। वे चीन और पाकिस्तान के बजाय भारत के साथ नगाओ के हितो को जोडने के सच्चे हिमायती थे। एक गर्वीले सेमा होने के नाते स्कातो नगा आदोलन पर अगामी चाकेसाग और तागखुल का हावी होना पसद नही करते थे। हालाकि उन्होने नागरिक पक्ष मे एम रामुन्नी और एस सी देव से सपर्क बनाए रखे। साथ ही 8वी पहाडी डिवीजन के डिवीजनल कमाडर के भी सपर्क मे रहे। स्कातो मेरे गृह अतिथि ही बन गए।

क्रातिकारी सरकार के मामले मुझे बहुत व्यस्त रखने लगे। मुझे वार्ता को उपयुक्त बनाने का काम सौंपा गया था। भारत सरकार ने अचानक एक कजूसी वाला रवैया अपना लिया था। वह अपने क्रातिकारी सगठन के सामान्य काडर के पुनर्वास के वादे से खिसकने लगी थी। रामुन्नी और देव दोनों धडे अलग-थलग हुए सेमा गुट के साथ न्याय करने के पक्ष मे थे। उनके प्रयासों का दिल्ली से तालमेल न था। कई बार मैं ऐसी विचित्र स्थिति मे फँस जाता जब क्रातिकारी सेना के हथियारबद सिपाही मुझे घेर लेते और दिल्ली के कुछ अधिकारियों के किए वादों को दबा लेने के कथित आरोप मे धमकाते।

एक बार घोर हताशा की स्थिति मे स्कातो ने सघीय दल के साथ मेल कर लेने का मन बनाया और मेहास्यू व राम्यो को सकेत भी भेजे। मुझे राम्यो से इसकी भनक लग गई। मैने दिल्ली को यह जानकारी भेजी और आर पी जोशी से अनुरोध किया कि वह स्कातो के निजी पुनर्वास के लिए दिल्ली से फौरन सिफारिश करें। उनके राज्यसभा में नामाकन से एक सभावित कठिन स्थिति टल गई।

स्कातो कोई मामूली लोगों मे से न थे। अगामियो के हावी होने वाले रवैए के विरुद्ध सेमाओ के विद्रोह का अत कुछ अपना भला चाहने वाले नेताओ के निजी लाभ तक सीमित न रहा। यह घटना नगा इतिहास और उसके भारत से सबध का अभिन्न अग बन गई। यह दावा करना उचित न होगा कि बाग्लादेश की घटनाएँ, शेख अब्दुल्ला का तथाकथित मुख्य

धारा में लौट आना, सिक्किम का विलय, पोखरण का अणु विस्फोट और इंदिरा गाँधी के आपात्काल लागू करने ने नगा नेताओं को शांति वार्ता के एक और दौर के लिए आगे आने को उत्प्रेरित किया था। नगा आंदोलन में सेमा विच्छेद ने भूमिगत ढाँचे को काफी कमजोर कर दिया था। हालांकि कुछ लोग यह कहना चाहेंगे कि सेमा के अलग हो जाने ने फिजो गुट को बांग्लादेश तथा अन्य विदेशी शुभचिंतको के क्षेत्रों से सक्रिय पाकिस्तानी व चीनी शक्तियों के और करीब ला दिया था।

नगालैंड की हरी-भरी ढलानो पर सिर्फ युद्ध के बादल ही नहीं गरज रहे थे। कोहिमा मे लोकतांत्रिक सरकार के प्रयोग और आर्थिक विकास की शुरुआत से प्रगति की स्वाभाविक आकांक्षा के अंकुर फूटने लगे थे। इसके लिए शांति कायम होना जरूरी था। भूमिगत नेताओं का बहुमत और भारत सरकार इस बात को समझने लगे थे कि शांति के लिए और प्रयास किया जाना चाहिए। एन.एन.ओ. के कई नेता और गिरिजाघर के अगुआ इसके लिए कोशिशें कर रहे थे। अनुभवी प्रशासक एल.पी. सिंह, जिन्होंने राज्यपाल का पद संभाला था, शांति प्रयासों के महत्व को समझते थे। एम.एल. कंपानी, आर. पी. जोशी, एम. रामुन्नी, एच. जोपियांगा और एस.सी. देव जैसे नगा विषयों के विशेषज्ञ इसमें उनके कुशल सहायक थे।

शिलांग समझौते में परिणत होने वाले इन प्रयत्नों में मेरी भूमिका की चर्चा करना उचित न होगा। पर इस बारे में मेरे मौन को मेरा नगालैंड के बनते इतिहास से पृथक रहना न समझा जाए। इस बारे में इतना कहना ही काफी होगा कि मेरे राम्यो, बेसेतो, जेशी तथा कुछ अन्य नगालैंड व मणिपुर के महत्वपूर्ण भूमिगत नगा नेताओं के साथ गुपचुप संबंधों ने नीति-निर्धारकों की नगा सोच को बेहतर तरीके से समझने में मदद की। मैं तैयारी के दिनों में बहुत अधिक व्यस्त था। मुझे लगातार भूमि के नीचे और ऊपर दौडना पड रहा था। इसकी सबसे अच्छी प्रशंसा जेशी से मिली। उन्होंने मुझे अपनी बेटी की शादी में बुलाया और साथ ही धन्यवाद की एक व्यक्तिगत टिप्पणी भी लिखी। आई.बी. के एक इंटेलिजेंस संचालक के रूप में मैं किसी अतिरिक्त पारितोषिक की आशा नहीं रखता था। मैंने अपने उच्च अधिकारियों और राजनीतिक नेताओं के लिए संतोषजनक काम किया था।

* * * *

फरवरी 1974 का महीना बहुत से परिवर्तन ले कर आया। इस महीने में राज्य के राजनीतिक रंग में बड़ा अंतर आया और हमारे व्यक्तिगत जीवन में भी।

जुलाई 1972 में यूनाइटेड डेमोक्रेटिक फ्रंट के उभरने से एन.एन.ओ. का एक विकल्प सामने आ गया था। एन.एन.ओ. टी.एन. अंगामी तथा कुछ अन्य वरिष्ठ नेताओं के यू.डी.एफ. में चले आने से प्रजातंत्रवादी तथा सरहद पर बैठे नगाओं के वर्ग का पार्टी को समर्थन मिल गया। भूमिगत सशस्त्र गतिविधियों को सीमित करने में होकिशे ने बडी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। फिर भी सत्ता के निर्बाध उपभोग ने होकिशे को लोगों की आकांक्षाओं के प्रति अंधा कर दिया और उनका ध्यान भूमिगतों के विरुद्ध आग बुझाने वाली कार्रवाइयों तक सीमित रहा। लोग शांति चाहते थे। वे आर्थिक विकास और भ्रष्टाचार में कमी चाहते थे। वे सोचते थे कि जमीन से ऊपर चल रही राजनीति में चेहरे बदल जाने पर शायद बेहतर आर्थिक निदान का वातावरण बन सकता है।

एक और दुखद वास्तविकता भी थी। दिल्ली से जो धन आ रहा था वह सिर्फ एन.एन. ओ. नेताओं की जेबों में जा रहा था। इस छोटे से राज्य में जो धन की बाढ़ आई थी उसका

स्वाद चखना उनके विरोधियों के हिस्से में अभी नहीं आया था। यह निश्चित तौर पर नहीं कहा जा सकता कि भारत में लोकतंत्र अपनी जनता को एक-से अवसर प्रदान करता है। पर यह चुनाव के माध्यम से राजनीतिक वर्ग को बारी-बारी से लूट का माल हथियाने के समान अवसर अवश्य देता है।

बहरहाल जो भी हो, 1974 के चुनावों में यू.डी.एफ. की जीत ने यह स्पष्ट कर दिया था कि यह केवल गैर-भूमिगत शक्ति का उत्थान ही नहीं, यह वास्तव में एक समानांतर राजनीतिक वर्ग का उत्थान था जो दिल्ली से आए धन के बेहतर बँटवारे की आस दिलाता था। किसी और रंग के नेताओं के मिनिस्टर्स हिल में आ जाने से उनकी नदी शहद और अन्न से भर जाएगी, ऐसी उम्मीद तो किसी नगा ने नहीं लगा रखी थी, उन्हें यह गलतफहमी भी नहीं थी कि यू.डी.एफ. उनको स्वतंत्रता दिलाने जा रही है।

व्यंग्य को छोड वास्तविकता की बात करें तो चुनाव के कडे मुकाबले में यू. डी.एफ. की पच्चीस सीटों के मुकाबले में एन.एन.ओ. ने तेईस सीटें हासिल कर ली थीं। एक मध्यमार्गी गैर-भूमिगत नेता विजोल ने सात निर्दलीय उम्मीदवारों का समर्थन जुटा कर 26 फरवरी को सरकार बना ली।

राजनीति और विद्रोह की इस नीरसता के माहौल में 21 फरवरी की एक घटना ने हमारे घर को खुशियों से भर दिया। उस दिन कोहिमा के नगा अस्पताल में हमारे दूसरे बेटे मानिक ने जन्म लिया। अत्यंत अल्प सुविधाओं व अस्वच्छ वातावरण में बच्चे के सामान्य जन्म के लिए मैं डा.एस.पी. घोष और अपने बॉस आर.पी. जोशी की पत्नी तारा दीदी का बहुत आभारी हूँ।

अपने काम की वजह से मुझे अक्सर राजनयिक तौर-तरीके की पार्टियाँ करनी पड़ती थीं। कोहिमा में ऊँचे स्तर के होटल या रेस्त्रां तो थे नहीं। हमारे पास राजनीतिज्ञों, प्रशासकों और दूसरे कामकाजी मित्रों को घर पर आमंत्रित करने के सिवाय और कोई चारा न था। इसका मतलब था गृहस्वामिनी का इस में लगना और कडी मेहनत करना। सुनंदा बढ़िया पार्टियां देने में माहिर थी और वह मुझे अपने काम के दोस्तों के दिलों तक उनके पेट के रास्ते पहुंचने में मदद किया करती थी। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, नगा अपने परिवार से बहुत प्रेम करते हैं और उनको परिवार के बना पार्टियों में आने का सलीका नहीं आता। इससे सुनंदा का काम और भी आनंददायक, लेकिन जटिल हो जाता था।

हमारे दूसरे बेटे के जन्म के तुरंत बाद ही मैंने अपने कलकत्ता तबादले के लिए दिल्ली से अनुरोध किया। हम सोचते थे कि हमारा गृहनगर बच्चों की पढाई और बंगाली संस्कृति के वातावरण में उनकी परवरिश के लिए उचित रहेगा। लेकिन भाग्य ने, अगर ऐसी कोई अदृश्य शक्ति होती है तो, अपने होंठ असहमति में टेढे कर लिए होंगे। हालांकि मैंने अपनी धरती पर काम करने की कई कोशिशें कीं, लेकिन मेरी किस्मत में बंगाल जाना नहीं लिखा था।

* * * *

फरवरी 1974 के बाद की घटनाओं से दिल्ली में चिंता व्याप्त हो गई। खराब आर्थिक स्थिति ने दिल्ली को विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से ऋण लेने को विवश कर दिया जो कठोर शर्तों के साथ मंजूर किया गया। भारत को अपनी सोवियत संघ जैसी समाजवादी अर्थव्यवस्था को विराम लगाने को विवश होना पड़ा। बेरोजगारी और औद्योगिक अशांति के चलते प्रशासन को काफी कठिनाइयाँ हुईं। जनवरी '74 में गुजरात में नवनिर्माण आंदोलन ने जोर पकड़ा जिसका परिणाम वहां चिमनभाई पटेल के भ्रष्ट मंत्रिमंडल के पतन और राष्ट्रपति

शासन लागू होने के रूप में सामने आया। इंदिरा ने इस अशांति के पीछे विदेशी हाथ होने का संकेत दिया। लेकिन इससे जनता का मोहभंग होना थमा नहीं। लोग जनआंदोलन का संचालन करने में सक्षम अंतिम द्रष्टा जयप्रकाश नारायण के साथ हो लिए। हिंदुत्ववादी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और जार्ज फर्नांडिस सरीखे करिश्माई समाजवादी नेता उनके साथ हो गए। आई.बी. ने उनके अंतर्राष्ट्रीय समाजवाद से संबंधों के चलते उनको विदेशी एजेंट करार दिया और उन की गतिविधियों पर नजर रखने के लिए बहुत से कदम उठाए गए। सरकार ने आंतरिक सुरक्षा कानून (मीसा) को सख्ती से लागू किया।

लोगों की धारणा है कि घरेलू विवशताओं के चलते इंदिरा गाँधी ने पोखरण में परमाणु विस्फोट करवाया। यह सही नहीं है। भारत को परमाणु हथियारों से युक्त करने का आदेश लाल बहादुर शास्त्री ने जारी किया था। पुराने रिकार्डों से यह बात बिना किसी संदेह के सिद्ध की जा सकती है। इंदिरा गाँधी ने नेहरू और शास्त्री की बनाई नीतियों को आगे बढाया। उन्होंने परमाणु विस्फोट कराके देश की निश्चय ही बहुमूल्य सेवा की। चीन की परमाणु क्षमता और वाशिंगटन, इस्लामाबाद व पीकिंग के बीच बढते ध्रुवीकरण को देखते हुए भारत के लिए परमाणु विस्फोट करना एक ऐतिहासिक अनिवार्यता थी। बहरहाल राजस्थान के विस्फोट से जन उत्साह कोई खास नहीं बढा। लोगों ने आंदोलन का रास्ता नहीं छोडा। पोखरण के विस्फोट में संजय की मेनका आनंद से शादी और उसके मारुति संबंधी विवाद का जन-आक्रोश घुल-मिल गया।

सिक्किम में होने वाली घटनाएँ भी गंभीर चिंता का कारण बन रही थीं। आरोप था कि चोग्याल (राजा) और उसकी अमेरिकन पत्नी होप कुक अलगाववादी गतिविधियों में लगे थे। चोग्याल और काजी लेंडुप दोरजी खंगसरपा के नेतृत्व वाली भारत समर्थक व लोकतंत्र समर्थक शक्तियों के बीच राजनीतिक रस्साकशी ने हिमालय के इस राज्य में भूचाल ला दिया था। इससे भारत की रक्षा-व्यवस्था के लिए भी खतरा हो गया था। पाकिस्तान, नेपाल और चीन ने विरोध प्रकट किया था। दूसरे देशों के राजनयिकों ने भी सिक्किम के अंजाम को ले कर चिंता प्रकट की थी। अंततः भारतीय सेना ने सिक्किम की राजधानी गंगतोक में प्रवेश किया। जल्दबाजी में किए गए और विवादास्पद रूप से कराए गए जनमत संग्रह ने सिक्किम के भारत में विलय का समर्थन किया हालांकि बहुत से महत्वपूर्ण सवालों के जवाब बाकी रह गए। भूटिया लेप्चा कबीलों के अपने तरह के तीन सौ तैंतीस साल पुराने राजतंत्र का अंत हो गया।

घरेलू स्थितियाँ कुछ इस तरह की थीं जब एक नई नगा शांतिवार्ता अपने लडखडाते पैरों पर खडी हुई। नगा और मिजो की चीन पर निर्भरता ने भी दिल्ली की चिंता बढा दी थी। इंदिरा के सलाहकारों ने भी शांति के एक और प्रयास को आजमाना बेहतर समझा। नगालैंड के बैप्टिस्ट गिरिजाघर के नेताओं ने विरोधी पक्षों को वार्ता की मेज पर लाने की पहल की। मई 1974 के दौरान एक और शांति समिति का गठन किया गया। जून 1974 में मुझे आदेश हुआ कि भूमिगत और गैर-भूमिगत नगा नेताओं के मूड का अनुमान लगाऊँ। मैंने भूमिगत की जिम्मेदारी संभाली और जोशी ने गैर-भूमिगत का जिम्मा लिया। मैंने जल्दी से केवी याले, जेशी, बिसेतो, राम्यो और भूमिगत नगा सेना के कुछ अन्य मध्यस्तरीय नेताओं से भी विचार-विमर्श किया। मेरे परिणाम उत्साहजनक निकले। मुख्य भूमिगत नेता शांति के लिए एक और प्रयास के हक में थे। मैं यह तो नहीं कह सकता कि मेरे संपर्क ने जंगल के उन योद्धाओं के रुख

को नर्म बनाने मे कुछ सहायता की या नहीं किन्तु मुझे अपने इन संपर्कों से संतोष हुआ और मुझे ये अपने इंटेलिजेंस कैरियर के बहुत महत्वपूर्ण पडाव महसूस हुए।

नगालैंड शांति समिति ने राज्यपाल एल.पी. सिंह को चार सूत्रीय स्मरणपत्र दिया। इसके बाद एक अखिल नगा जन शांति सम्मेलन (जिस में नगालैंड के सभी नगा जनजातियों के प्रतिनिधि शामिल थे) कोहिमा में हुआ। इस सम्मेलन में नगा शांति समिति द्वारा भूमिगतों के नाम की गई इस अपील को मान्यता दी गई कि वे युद्धबंदी कर दें और भर्ती व कर वसूली अभियान न चलाएँ।

* * * *

यहाँ अपराधबोध के साथ यह स्वीकार करना पड रहा है कि मुझे एक बार फिर नगालैंड विधायिका के यू.डी.एफ.सदस्यों की वफादारी भंग करने के लिए कहा गया। मेरे निशाने पर एक सेमा और कुछ गैर-आंगामी विधायक थे। दिल्ली के आकाओं के कहने पर मैं उनको एन. एन.ओ. में शामिल होने के लिए 'प्रेरित' करने को जो कुछ कर सकता था, वह मैंने किया। यह मेरा खुली गैरकानूनी हरकत के साथ दूसरी बार वास्ता पडा था। तब तक मैं समझ चुका था कि गुप्तचर तंत्र का प्रयोग राजनीतिक हितों के लिए खुलेआम किया जाता है। आई.बी जैसी एजेंसियां सिर्फ देश की सुरक्षा करने का साधन ही नहीं हैं, वे सत्तारूढ वर्ग के क्षुद्र राजनीतिक हितों के लिए भी काम करती हैं।

मैं उनके लिए कोई ब्रीफकेस नहीं ले गया। मैंने उन पर जो मनोवैज्ञानिक प्रभाव डाला उसके बाद राजभवन से 'प्रोत्साहन पैकेज ' भेजा गया। मुझ पर गलत तरीकों से लोकतांत्रिक रूप से चुनी गई सरकारों को बदलने का नशा तारी नहीं हुआ। इंटेलिजेंस एजेंसी के एक साधारण संचालक के तौर पर मेरा इस्तेमाल एक सीमित उद्देश्य के लिए किया गया। मैं इंटेलिजेंस स्टेशन का पहला या आखिरी ड़िप्टी न था जिस का उपयोग/ दुरुपयोग सरकार द्वारा संवैधानिक प्रकिया को उलटने के लिए किया गया था। यह तो भारतीय राजतंत्र के लोकतांत्रिक मूल्यों का एक अभिन्न अंग बन चुका था। राजनीति की यह शतरंजी चाल तब तक भारतीय लोकतंत्र का ट्रेडमार्क बन चुकी थी और गुप्तचर संगठनो का इस्तेमाल आए दिन की बात थी। न तो तब देश में ऐसा कोई कानून था और न आज है जो किसी गुप्तचर अधिकारी को संसद की किसी समिति के सामने बुला कर उससे उसकी कार्रवाइयों का ब्योरा माँगे। आई.बी. या रॉ को न तो पहले कभी और न आज ही, देश की संवैधानिक पद्धति से बने किसी तंत्र से जवाबदेही का खतरा है।

इसके लिए पद्धति में बहुत बड़े सुधार की जरूरत है। राजनीतिज्ञों को यह बात समझनी चाहिए कि लोकतंत्र के कमजोर पड़ जाने पर सत्तालोलुप राजनीतिक वर्ग गुप्तचर तंत्र का और भी बेरहमी से इस्तेमाल कर सकता है। जब इंदिरा गाँधी ने लोकतांत्रिक प्रतिमानों से हट कर एमरजेंसी लागू की थी तब ऐसा ही किया था। इन दिनों में जब मैं यह अध्याय लिख रहा हूँ, गुजरात की लोकतांत्रिक सरकार ने सरकारी मशीनरी, खासतौर से राज्य के खुफिया विभाग, का इस्तेमाल अल्पसंख्यकों के विरुद्ध साम्प्रदायिक हत्याकांड छेड़ने के लिए किया। केंद्रीय गुप्तचर एजेंसी इसकी मूक दर्शक बन कर रह गई। भाजपा की अगुआई वाली केंद्र सरकार इस मामले में ठुनकती और हिचकियाँ लेती रही जबतक कि उच्च न्यायपालिका ने बीच में आकर कानून-व्यवस्था की रक्षा नहीं की।

सबसे खराब स्थिति वह हो सकती है जब एक दुष्टबुद्धि व षडयंत्रकारी गुप्तचर प्रमुख और सेना के कुछ महत्वाकांक्षी अधिकारी मिलकर उस समय लोकतांत्रिक पद्धति को पलट दें जब राजनीति के खिलाडी उसके अपराधीकरण में आकंठ डूबे हों। लालच बहुत हैं और अवसर असीम। राजनीतिक नस्ल को समझ लेना चाहिए कि उनके आई.बी. और रॉ जैसे पसंदीदा खिलौने गलत ढंग से उनको घायल भी कर सकते हैं। इंटेलिजेंस और जाँच समुदाय पर शासन करने के लिए संसद में कानून बना कर देश को सुरक्षा प्रदान करनी चाहिए। अपने भंगुर लोकतंत्र के हित में यही होगा कि हम देश में आई.एस.आई. जैसे संगठन की जडें न जमने दें।

नगालैंड में संवैधानिक पद्धति में उलटफेर करने के प्रसंग पर वापस आएँ तो इसमें मेरी भूमिका के मुकाबले एम. रामुन्नी और एस.सी. देव के प्रयास अधिक निर्णायक सिद्ध हुए। भारतीय लोकतंत्र का ट्रेडमार्क बन चुके इन संविधानेतर प्रयासों के चलते अंततः विजोल सरकार का पतन हो गया। उसकी जगह एक राष्ट्रवादी कैथोलिक अंगामी नेता बास्को जसोकी के नेतृत्व में एन.एन.ओ. मंत्रिमंडल ने शपथ ली। लेकिन उनका मंत्रिमंडल सदन में यू.डी एफ. से हार गया और इस गतिरोध के फलस्वरूप एक बार फिर राष्ट्रपति शासन लागू हुआ।

* * * *

मार्च 1974 के करीब सूचना मिली कि नगा संघीय सरकार एक स्वयंभू ब्रिगेडियर वेदाई चाकेसांग के अधीन एक और बडे नगा दल को चीन भेजने का विचार बना रही है। इस मामले में स्टाफ के एक चाकेसांग सदस्य ने मेरी बहुत सहायता की। कुछ सहायता नगा सेना के एक तांगखुल सदस्य ने भी की जिसे मैं वेदाई दल में घुसाने में कामयाब हो गया था। वह पढा-लिखा लडका था जो उखरूल के सोरापुंग जिले का रहने वाला था। उसे आई.बी में एक दिखावे का काम दे दिया गया। फिर उसे गुप्त संदेश भेजने व पेशे के दूसरे जरूरी काम सिखाए गए। वह दल के जाने के प्रस्तावित यात्रा-कार्यक्रम की सूचना समय पर भेजने में सफल रहा। मुझे अपनी मणिपुर वाली तरकीब इस्तेमाल करने का एक और मौका मिला। दल को जिस रास्ते से जाना था उस पर बहुत सी सचल टीमें लगा दी गईं। आई.बी. की सूचना के आधार पर दल से कई जगह मुठभेड करने में भारतीय सेना भी सफल रही। बाद में पता चला कि हमने जो सुरक्षा जाल फैलाया था, यह दल उसे भेद कर नहीं निकल पाया। फिर भी 10 नवंबर 1975 के शिलांग समझौते पर हस्ताक्षर हो जाने के बाद एक छोटा गिरोह बर्मा सीमा पार करने में सफल रहा। तब तक मैं नगालैंड से तबादले पर कलकत्ता चला गया था। मेरा खयाल था कि मेरे गृहनगर में खुशियों की मृगतृष्णा मेरा इंतजार कर रही है।

आई.बी. को एक और जबरदस्त कामयाबी मिली। मणिपुर के मेरे मित्र अब्राहम और वाइकोस सेमा (वास्तविक नाम नहीं) , जो ततार होहो के सदस्य थे, को 14 अगस्त को लोअर सेमा क्षेत्र में कहीं पर इगानुमी और लासामी के बीच होहो की बैठक के लिए आमंत्रित किया गया। यह बैठक बहुत महत्वपूर्ण थी, क्योंकि यह दोबारा होने वाली शांतिवार्ता और भूमिगत नेताओं की बड़ी संख्या के नगालैंड में स्थायी शांति चाहने की पृष्ठभूमि में बुलाई गई थी।

हमें इसमें कोई संदेह न था कि इस बार भूमिगत और गैर-भूमिगत दोनों तरह के शीर्ष नगा नेताओं में विभाजन होने वाला है। दिल्ली और कोहिमा में कोई भी प्रस्तावित शांतिवार्ता के बारे में पूर्ण एकमत होने की उम्मीद नहीं रखता था। लेकिन फिजोवादियों का एक बडा गुट समस्या के हल के लिए राजी था। हम इसी का तो इंतजार कर रहे थे।

इगानुमी-लसामी ततार होहो बैठक ने भूमिगत नेताओं में चल रहे आंतरिक संघर्ष को गहराई से समझने में मदद की। इसने आई.बी. की उन कट्टर यू.डी. एफ. नेताओं को पहचानने में भी मदद की जो नगाओं के भले की अपेक्षा अपने निजी स्वार्थ के लिए विद्रोह को और आगे तक खींचना चाहते थे।

अब्राहम और वाइकोस जैसे मित्रों के दिए कुछ दस्तावेजों ने हमारी इस पहले की सूचना की पुष्टि कर दी कि थ. मुइवा को लाल चीन में नगा सघीय सरकार का पूर्णाधिकारी दूत नियुक्त किया गया था। वह और इसाक चिसी सू शांति फार्मूले से असहमत थे। वे निरंतर पाकिस्तानी खुफिया एजेंसी आई.एस.आई. और के.आई.ए. मित्रों की सहायता से चीनी दूतों के संपर्क में थे। (इस बारे में प्रामाणिक गुप्त रिपोर्टें हैं।) उन्होंने फिजो को नकारा तो नहीं पर उसके साथ नगा इतिहास के एक दीमक खाए पन्ने की तरह व्यवहार किया। नगा पर्यवेक्षकों में से बहुत कम को यह दिखा कि नगा उलझन अब एक और करवट लेने वाली है हालांकि फिजो समर्थक नेता भारतीय सविधान के अंतर्गत समझौते के लिए तैयार हैं।

इंटेलिजेंस ब्यूरो के डाइरेक्टर ने और नगालैंड के राज्यपाल ने ततार होहो बैठक की सूचनाओं की प्रशंसा की। नगा विषयों के सदाबहार विशेषज्ञ मर्कोट रामुन्नी मुझे राज्यपाल एल. पी. सिंह के पास ले गए ताकि मैं उनको ततार होहो बैठक व चीन के लिए रवाना होने वाले नए गिरोहों के निहितार्थ के बारे में अवगत करा सकूँ।

* * * *

1974 के मध्य में मैंने अपने-आप को एक और विवाद मे फंसा लिया। आई.बी के प्रबध के अधीन एक संवेदनशील स्रोत ने दावा किया कि वह महत्वपूर्ण भूमिगत नेताओ और ए.जेड. फिजो के बीच होने वाले संचार को पकडने की स्थिति में है। इसे शीर्ष नगा नेताओ के बारे में मिलने वाली सूचनाओं में वेदवाक्य के समान अतिम सत्य मान लिया गया। मेरे पास इस स्रोत पर संदेह करने का कोई कारण न था। लेकिन मेहास्यू , राम्यो, बेसेतो और जेशी की ओर से फिजो को भेजे गए संदेश और उनको फिजो के आए सदेश बेमेल से लगते थे। संदेशवाहकों द्वारा लाए-लेजाए गए समझे जाने वाले इन पत्रों मे से अधिकांश का मसौदा मेरे कार्यालय की बनाई संक्षिप्त दैनिक गुप्तचरी के समरूप लगता था। मैं कुछ समय तक इस विचित्र संयोग को देखता रहा। फिर इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि ये पत्र किसी कल्पनाशील दिमाग की उपज हैं जिनके लिए आई.बी. मोटी रकम अदा कर रही थी।

मैंने इस मामले की चर्चा आर.पी. जोशी से की। उन्हीं दिनो में वेदाई चाकेसांग एक जत्था चीन ले जाने की तैयारी कर रहा था। मैं ने देखा कि कुछ पत्रों की जानकारी हमारे रोजाना के ब्योरे के समरूप ही है जिनका आदान-प्रदान शीर्ष नगा नेताओं के बीच हुआ था। थ मुइवा के बारे में एक जानकारी कि वह फिजो के निर्देश पर उस समय नगालैंड से होकर गुजरे थे इस बात का स्पष्ट संकेत देती थी कि कोई पैसे के लिए हमें गुमराह कर रहा है। मुझे इस बात का पूरा विश्वास हो गया। जब नगालैंड शांति समिति ने नई शांतिवार्ता आरंभ की तब फिजो और मुइवा के संबंध बहुत अच्छे न थे। एन.एन.सी. व एन.एन.जी. के अधिकांश नेता शांति की पहल के पक्ष में थे। मुइवा और इसाक इसके खिलाफ थे। वे इस समय चीन मे मौजूद थे। कलकत्ता, ढाका और लंदन से सक्रिय किसी चीनपरस्त संवेदनशील स्रोत ने नए शांति समझौते के प्रति चीन और पाकिस्तान की आपत्ति का संदेश भेजा था। उन्होंने संकेत

दिया था कि बीजिंग और इस्लामाबाद फिज़ो जैसे थके हुए घोडे के मुकाबले मुइवा और इसाक जैसे मुश्की घोडों पर दांव लगाना बेहतर समझते हैं।

ये पत्र बना कर कुछ मोटी कमाई करने वाले किसी साथी का परदाफाश करने की मेरी मंशा न थी। लेकिन अपने संगठन और देश की खातिर मैंने अपने बॉस से मिन्नत की वह एक बार फिर इस घोटाले पर गौर करें। मैंने अपने रोजाना पेश किए ब्योरे और उन पत्रों के मसौदे का एक तुलनात्मक चार्ट बनाया। मैंने उनका ध्यान कुछ पत्रों में दी गई गलत जानकारी की ओर भी दिलाया। जोशी ने मामले को अपने तरीके से हाथ में लिया और हम लोग उस मनगढंत सूचना-स्रोत को पकड़ने में कामयाब हो गए। इसने आई.बी. को गंभीर परेशानी से बचा लिया। लेकिन दिल्ली के कुछ शीर्ष विश्लेषक मुझसे पूरी तरह सहमत न हुए। मुझे उन में से दो के सामने पेश हो कर अपनी जानकारी का विस्तृत विवरण पेश करना पडा। तब कहीं जाकर उनकी तसल्ली हुई।

* * * *

जिन दिनों में मैं नगालैंड में सक्रिय था, हम और नगा भूमिगत दोनों संचार की गंभीर समस्या से ग्रस्त थे। फैक्स, इंटरनेट और सेल फोन की सुविधाएँ तो तब थीं ही नहीं। भूमिगत नगाओं के पास उच्च फ्रीक्वेंसी वाले रेडियो संचार उपकरण भी न थे। उनके पत्र बरास्ता ढाका, बैंकाक, काठमांडू या फिर दिल्ली, कलकत्ता, गौहाटी व मुंबई के कुछ सुरक्षित पतों के माध्यम से भेजे जाते थे। बंग्लादेश बन जाने पर भी ढाका का स्रोत सक्रिय रहा। एक वरिष्ठ नगा नेता ने मुझे अपना घुमा-फिरा कर संदेश भेजने का तरीका समझाया। मेरे पास उस पर विश्वास न करने का कोई कारण न था।

हमने कोहिमा और दूसरे उपकेंद्रों पर लगभग सारी संदिग्ध डाक पकडी। इनमें सब से बडे सुबूत चर्च के खिलाफ विदेशों से डालर की मुद्रा और चेक लेने के मिले। इनमें से कुछ डालर नोट कुछ आई.बी. कर्मियों ने गायब कर दिए थे। मुख्य सचिव एच. होपियांगा और गिरिजाघर के नेताओं से इस बारे में बहुत सी शिकायतें मिलीं। विवश होकर मुझे कुछ सुधार करने पडे ताकि डालर की नकदी सही पतों पर पहुँचे।

आधुनिक तकनीकी उपकरणों के अभाव के कारण कई बार विकट समस्याएँ पैदा हो जाती थीं। एक साधारण जेराक्स मशीन भी कल्पना से बाहर थी। यहाँ तक कि दिल्ली में भी दस्तावेजों की बुरी तरह मुडी-तुड़ी कापियाँ निकालने के लिए तकनीकी प्रयोगशाला की शरण जाना पड़ता था। या फिर घटिया किस्म के पीले कागज पर पुराने तरीके से हाथ से स्टेंसिल करके प्रतियां निकालनी पडतीं थीं। क्षेत्र में काम करते समय इस तरह के पुराने तरीकों पर निर्भर नहीं किया जा सकता था। बाहर मुलाकातों के हमारे एजेंट कुछ ऐसे दस्तावेज भी लाते थे जिन्हें चंद घंटों में वापस करना होता था। मैंने इस समस्या का हल ऐसे दस्तावेजों के फोटो खींच कर और निगेटियों को कामचलाऊ डार्करूम में डेवलप करके निकाला। यह तरीका भी बहुत संतोषजनक नहीं रहा।

बहरहाल हमारे तकनीकी लड़कों ने एक बक्सनुमा चीज बनाई। इसमें कुछ बल्ब लगे थे। यह थर्मल पेपर पर दस्तावेज की तस्वीर उतार लेती थी। फिर इन कागजों को एक रसायनिक घोल में डेवलप कर लिया जाता था। निगेटिव लेकर उसका प्रिंट निकालने में काफी समय लगता था। पर इस भौंड़े तरीके ने हमारी समस्या हल कर दी। अब हम अपने एजेंटों को कुछ ही घंटों में मूल दस्तावेज लौटा सकते थे। बहुत बाद में जब मैं आई.बी. के

तकनीकी विभाग का प्रमुख बना तब मैने इस समस्या का हल कुछ बहुत छोटी इलेक्ट्रानिक कापीयर मशीनें मगा कर किया। इन से हमारे फील्ड आफिसर एजेट मीटिग के दौरान किसी भी दस्तावेज की गुप्त प्रतिया निकाल सकते थे। कुछ अतिप्रशिक्षित एजेटो को भी इन छोटी मशीनों का इस्तोमाल करना सिखाया जाता था जिनको वे अपने साथ छिपा कर रख सकते थे।

मुझे ऐसे लघु रेडियो माइक्रोफोन की बहुत जरूरत थी जिस से कि मै कुछ ऐसे लोगो की बातें रिकार्ड करके भेज सकूँ जो आई बी की निगरानी के अदर थे। शुरू मे तो दिल्ली वाले दूरदराज के क्षेत्रीय काम के लिए ऐसा उपकरण देने को राजी न हुए। वहाँ बैठा कोई व्यक्ति इस बात के महत्व को न समझ पाया कि भूमिगत नेताओ के साथ बातचीत को रिकार्ड करने की कोई जरूरत है जिसमे कि उनके चीन को नगा गिरोह भेजने की चर्चा करने की भी उम्मीद हो। 1974 मे नए शाति प्रस्ताव पर चर्चा के लिए एक महत्वपूर्ण भूमिगत बैठक होनी थी। इसका पूरा मसौदा विधिवत तैयार करने की जरूरत थी।

मुझे दिल्ली बुला कर हिदायत दी गई कि बात-बात पर ऐसे आधुनिक उपकरण इस्तेमाल करने के आकर्षण से बाज आ जाऊँ। मुझे तकनीकी प्रयोगशाला के डाइरेक्टर से बाकायदा जिरह करनी पडी कि मुझे ऐसे उपकरणो का इस्तेमाल करना आता है। वह कुछ नरम पडे और नियत्रण करने वाले अधिकारियो के काफी टालमटोल के बाद मुझे अलादीन के गुप्त खजाने तक पहुचने का मौका दिया गया। दिल्ली के इटेलिजेस विश्लेषको ने बाद मे मेरे काम की तारीफ की लेकिन इस बात पर डटे रहे कि तकनीकी विभाग पवित्र गाय की तरह है जिसे हर कोई नही दुह सकता। बहुत बाद मे 1986-87 के लगभग आई बी के प्रगतिशील निदेशक एम के नारायणन ने तकनीकी प्रेतो की बेडियो से सगठन का पिड छुडाया।

नगालैंड में मेरी तैनाती के अतिम दिनो मे मैंने स्ट्रेजिक इटेलिजेस एस्टीमेट के महत्व को समझा। यह एक प्रमाणित पद्धति है जो किसी देश को राजनयिक पहल की तैयारी करने रक्षा की तैयारियाँ करने राष्ट्रीय नीति का निर्धारण करने और आतरिक सुरक्षा-व्यवस्था बनाए रखने मे सहायक होती है। रक्षा सेनाए अक्सर रणनीति और युक्ति के क्षेत्र मे यह आकलन करती है। मेरे खयाल से विदेश मत्रालय के कुछ मुख्य विभाग भी यह आकलन करते हैं ताकि राजनयिक पहल और प्रतिक्रिया का पूर्वानुमान किया जा सके।

पर मैंने आई बी के विश्लेषण डेस्क द्वारा यह कार्य होते कभी देखा न था। सचालन डेस्क और विश्लेषण डेस्क को अलग रखने की धारणा बहुत बाद मे 1980 के बाद पजाब और कश्मीर की कार्रवाइयो के दौरान सामने आई। इस विभाजन को अब आई बी की काम करने की फिलासफी के रूप मे मान्यता मिल गई है।

रणनीति और युक्ति पर दोनो तरह के व्यापक इटेलिजेस आकलन कोई ज्वाइट डाइरेक्टर ही करता है। यह पद आई बी डाइरेक्टर के दिल और दिमाग दोनो के करीब होता है। यह पद आई बी के मस्तिष्क की धुरी और इटेलिजेंस के आकलन के लिए बनाया गया था लेकिन अब इसे बहुत से दुनियावी कामों में भी इस्तेमाल किया जाता है। इस पद को अब आमतौर पर भारत सरकार के जाच-पडताल करने वाली विशेष शाखा के प्रमुख की तरह इस्तेमाल किया जाता है। इसमें मत्रियो, सासदों वरिष्ठ प्रशासको के बारे मे सामान्य जाँच और प्रधानमत्री व गृहमत्री द्वारा बताए काम शामिले रहते हैं। इस तरह के अधिकाश कामों का संबध सत्ताधरियों और उनके दल के बने रहने से सबद्ध होते हैं।

अपने सेवा-काल के 14 साल हो जाने पर मुझे एक संवेदनशील डेस्क मिला। इसमें मुझे इंदिरा गाँधी के मंत्रिमंडल के मंत्रियों के बारे में जॉच करने का काम सौंपा गया। इनमें एक शिक्षा मंत्री पर आरोप था कि उन्होंने स्कूलों के लिए रंगीन टेलीविजनों की खरीद में कमीशन ली है। मैंने राय दी कि यह जॉच सी.बी.आई या केंद्रीय सतर्कता आयोग को करनी चाहिए। इसका जवाब एक वाक्य में मिला कि मुझे अपनी नौकरी चाहिए या नहीं। वह तो निश्चित ही मुझे चाहिए थी। लिहाजा मैंने वह काम कर डाला और बाद में शायद इंदिरा गॉधी ने मंत्री को बदल दिया।

यह विषयांतर तो एक उदाहरण देने के लिए था। दरअसल जरूरत इस बात की है कि विभिन्न जीवंत विषयों और विपथ विचारों पर एस.आई.ई. की जाए। लेकिन राष्ट्रीय इंटेलिजेंस आकलन का महत्वपूर्ण काम, विशेष रूप से देश के उपद्रवग्रस्त क्षेत्रों और सामाजिक-आर्थिक भूलों से संबधित आकलन का काम नहीं ही किया गया। मैंने उत्तरपूर्व के बारे में ऐसा कोई आकलन होते नही देखा।

नगालैंड के 1970-74 के अशांत समय की बात करे तो आई बी. अधिकारियो ने आग बुझाने वालों के रूप में प्रशंसनीय काम किया। एजेंट भर्ती करने और इटेलिजेंस एकत्र करने में कुछ अतराल रह गए थे। लेकिन हम अपनी रोज की रोटी आराम से कमा रहे थे। एक मुख्य इटेलिजेंस संगठन के तौर पर आई बी की साख को कोई बट्टा नहीं लगा।

बृहत् स्तर पर पूर्वी पाकिस्तान की बदलती स्थिति, चीन के अंदरूनी हालात और भारत के उत्तरपूर्व में चीनी कूटयोजना के संभावित प्रभाव के बारे में दिल्ली से बहुत कम इंटेलिजेंस उपलब्ध होती थी। फिजो बाद का चीनपरस्त नगा नेतृत्व उत्तरपूर्व में विद्रोह के आधारस्तंभ की तरह उभरेगा, असम व अन्यत्र हुई आंतरिक भूलों का पाकिस्तान, चीन व बांग्लादेश की पाकिस्तान समर्थक शक्तियाँ फायदा उठाएंगी, इनका न तो अनुमान लगाया गया और न ये बाते क्षेत्रीय घटको तक पहुँचाई गईं। गृहमत्रालय की फीकी वार्षिक रिपोर्ट तो हमेशा से प्रशासनिक चालबाजी ही रही।

लेकिन सैन्य बलों की अवश्य प्रशंसा की जानी चाहिए। मेरे कोहिमा स्थित सैनिक इंटेलिजेंस प्रतिनिधि से बातचीत के दौरान मुझे हमेशा लगा कि वे लोग न केवल रक्षा के मामले में बल्कि आंतरिक मामलो का भी दीर्घकालीन इंटेलिजेंस आकलन करने मे माहिर थे। बाद में इस तरह का इंटेलिजेंस आकलन करने का काम सयुक्त इंटेलिजेंस समिति को सौंपा गया। लेकिन प्रमुख इंटेलिजेंस एजेंसियों के असहयोग वाले रवैए के चलते उसका काम करना मुश्किल हो गया। कभी भी आंतरिक सुरक्षा आकलनो का सैनिक आकलन और राजनयिक आकलन के साथ संबंध बैठाने का प्रयास नहीं किया गया। हर सूबेदार अपने इलाके में अपने ढग से काम करता रहा और मेरे खयाल में वे आज भी बदले नही हैं।

सितंबर 1974 के अंतिम दिनों में मैंने नगालैंड छोडा। मेरा दिल भारी था पर उम्मीदें भी बहुत थीं। दिल इस लिए भारी था क्योंकि मैं वह भूमि छोड रहा था जहाँ मैंने अपने विवाहित जीवन के पहले कुछ वर्ष अपनी प्रिय पत्नी के साथ बिताए थे जहाँ हमारे दो बेटे पैदा हुए थे। मैं मणिपुर और नगालैंड के वासियों से प्रेम करता था और उनका प्रशंसक भी था। मुझे कुछ शीर्ष नगा और मैतेई नेताओं के साथ अपने व्यक्तिगत और पेशेगत संबंध तोडने का दुख था। मैं रुक कर नए शांति प्रस्ताव का फल देखना चाहता था। पर दिल्ली के सुरक्षा नियंत्रण के उपनिदेशक के रूप में मुझे कलकत्ता भेजने के उदार प्रस्ताव में कुछ अधिक ही आकर्षण था।

मेरे नगालैंड में रुकने का पुरस्कार मुझे एक नाटकीय तरीके से मिला। जिस दिन हम गौहाटी जाने वाले थे, प्रेक गाँव से एक आगंतुक आया। वह नगालैंड संघीय सरकार के स्वयंभू अध्यक्ष जेशी हुइरे की भेजी एक सुंदर चाकेसांग शाल लाया था। जिन साहसी और वीर नगा, मैतेई और गैर-नगा जनजाति के लोगो ने हमारे जीवन में खुशियाँ भर दीं, मैं आज भी उनका बहुत आदर करता हू।

मैंने बहुत बार उनके विरुद्ध लडाइयाँ लडी हैं, पर उन लडाइयों का संबंध राष्ट्रीय सुरक्षा से था। वे उन राज्यों की जनता के विरुद्ध न थीं। मेरे विचार में मैंने स्थानीय जनजाति के और महत्वपूर्ण राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में एकता स्थापित करने के लिए दमन, परिवर्तन और समानता लाने के साधनों का प्रयोग किया। मैंने अपने सेवा-काल का एक भाग ही पूरा नहीं किया बल्कि स्वयं-स्वीकृत एक मिशन भी पूरा किया।

〈13〉

शांग्री-ला को वापस

एक राजनेता और राजनीतिज्ञ में अंतर यह होता है कि राजनेता अगले चुनाव के बारे में सोचता है जब कि राजनीतिज्ञ अगली पीढी के बारे में।

जेम्स फ्रीमन क्लार्क

नवंबर 1974 में हम लोग बहुत कम समय के लिए रहने को कलकत्ता पहुँचे। यह भाग्य का रहस्यमय खेल था। यह अदृश्य शक्ति नहीं चाहती थी कि हमारी जडें कलकत्ता में जमें। हम तो बस हेमंत के बादल की तरह कलकत्ता के आकाश पर मंडरा कर रह गए। इससे हमारी आत्मा पर एक कडवी छाप रह गई। इसने हमे महानगरो की सामाजिक वास्तविकता का एक बार फिर ज्ञान करा दिया। यही तो बंगाल का वर्गहीन, जातिहीन समाज था। थोडे में मैं इतना ही बताना चाहूँगा कि सहायक इंटेलिजेंस ब्यूरो का स्थानीय प्रमुख अत्यत संकीर्ण जातिवाद से ग्रस्त था। आई बी. यूनिट से भ्रष्टाचार और भाई-भतीजावाद की गंदी बदबू आती थी। शीर्ष प्रबंधको में सौ प्रतिशत ब्राह्मण थे। उनमें जो सबसे छोटे थे उन्होंने खुलेआम औरतबाजी और दारूबाजी में नाम कमा लिया था। मुझे एक डेस्क से दूसरे डेस्क तक भटकना पडता था क्योंकि मैं इस तरह का खुला भ्रष्टाचार और भाई-भतीजावाद सहन नहीं कर सकता था। मैं अपने इस सपनों के शहर में होने वाली इन घटनाओं की सक्षिप्त चर्चा ही करूँगा। सौभाग्य से हमें आई.बी. की ओर से हाल ही में भारत में विलय हुए हिमालयी राज्य सिक्किम जाने का एक प्रस्ताव मिला। मैंने उन लोगों से संघर्ष से बचने के लिए इस प्रस्ताव को स्वीकार करने का फैसला किया जो बडी बेहयाई से ब्राह्मणवाद का झडा फहरा रहे थे।

सुनंदा को कलकत्ते से विदा लेने में बहुत तकलीफ हुई। इस महानगर से उसे गहरा भावनात्मक लगाव था।

मुझे कलकत्ते से प्यार था, लेकिन मेरे भाग्य में अपने सपनों के इस शहर में रहना और सेवा करना नहीं लिखा था।

9 जून 1975 को हम सडक मार्ग से गंगतोक पहुंचे। मई 1975 को भारत के साथ ' विलय' के बाद आई.बी. ने गंगतोक में एक अधिकारी नियुक्त करने की जरूरत महसूस की थी। कुछ का कहना था कि यह साफ तौर पर कब्जा कर लेने का मामला था। मैं उस राजनयिक और राजनीतिक भानुमती के पिटारे को खोलने का इरादा नहीं रखता जिसने भारत, नेपाल और चीन के सामरिक महत्व के कोने में टंगे इस तीन सौ तैंतीस साल पुराने धार्मिक राजतंत्र का अंत किया। अलग सामाजिक व सांस्कृतिक मूल्यों वाले बडे देश अक्सर छोटे देशों पर अपनी शर्तें लादा करते हैं। भारत ने ऐसा नया कुछ नहीं किया था जो पश्चिमी देशों ने न किया हो।

भारत ने सिक्किम के साथ विशेष संधि और उस देश की जनता की लोकतांत्रिक महत्वाकांक्षा का लाभ उठाया। अगर अंग्रेजों के समय के भारत और सिक्किम के संबंधों के इतिहास और अंतर्राष्ट्रीय कानून की पृष्ठभूमि में जाकर अध्ययन करें तो 'विलय' की वैधता संदिग्ध हो सकती है।

जो हो, भारत का अभिन्न अग होने के कारण नए राज्य को आंतरिक गुप्तचर ढाँचे की जरूरत थी जो आतरिक मामलों के अतिरिक्त प्रति-गुप्तचरी का कार्य देख सके। रॉ के अधिकारी को यहाँ नया कार्यालय खोलना था ताकि चीन के सदर्भ में बाह्य गुप्तचरी का कार्य देखा जा सके। बहरहाल कुछ समय के लिए मुझे शायद आवरण बनाए रखने के इरादे से असिस्टेंट डाइरेक्टर की जगह ऑफिसर ऑन स्पेशल ड्यूटी का पद दिया गया।

अधिकांश स्थानीय राजनेता, कुछ मुख्य प्रशासक और बुद्धिजीवी राजनीतिक अधिकारी से वास्ता रखने के आदी थे। यह पद भारतीय विदेश सेवा का कोई सदस्य ही संभालता था। ओ. एस.डी. (पुलिस) भी राजनीतिक अधिकारी के सहायक की तरह ही काम करता था। विदेश सेवा का साउथ ब्लॉक ऑफिस ही सिक्किम के मामले देखता था। वह और रॉ ही पैसा भी देते थे। सिक्किम के लोगों और जनता के लिए गृह मंत्रालय और इंटेलिजेस ब्यूरो नई चीज थी। पर उन्हें यह बात समझने में देर न लगी कि एक और भुगतान करने वाला आया है जो पहले वालों से गरीब और छोटे ब्रीफकेस वाला है। उत्तरपूर्व के छोटे व जातीयता की दृष्टि से विशिष्ट राज्य गुप्तचर अधिकारियों से संबध रखने में अधिक सुविधा महसूस करते थे। उनको वह दिल्ली का सीधा दूत समझते थे। उनका यह आभास लगभग ठीक ही था। वे सीधे-सादे जातीयजन इस तरह भ्रष्टाचार और निरतर होते राजनीतिक दल-बदल के भवर से बच जाते थे। अब तो छोटे राज्यों के राजनीतिक जीवों को मुख्य भूमि की नई वास्तविकताओ ने सयाना बना दिया है। अब वे आई बी प्रतिनिधि नाम के उनके गरीब अनुचरो के बजाय सीधे दिल्ली के नेताओं को प्रभावित करने के लिए ब्रीफकेसो का सहारा लेते हैं।

मेरे विचार से मैं मणिपुर और नगालैंड मे लोगों की आकांक्षाओं पर खरा उतरा था। उस प्रक्रिया में मैं वे खेल खेलना सीख गया था जो आमतौर पर एक राजनयिक खेलता है। मेरे काम का राजनयिक तरीका एक विश्वस्त स्रोत की तरह था क्योंकि यह रात की तर पार्टियो और अस्पष्ट आचरण से रहित था। उत्तरपूर्व के जनजातीय लोग सीधे-सादे व्यवहार में विश्वास रखते थे। वे प्रशासनिक स्पष्टता के साथ परिणाम की आशा रखते थे न कि गदे धन की रपटीली गली से। मेरे खयाल में अब उनमे काफी बदलाव आ गया है। यह बदलाव सरलता से प्राप्त धन और वर्गहीन, जातिहीन समाज में वर्ग विभाजन से आया है। भ्रष्टाचार ने संवैधानिक और कानूनी पद्धति को बिगाड कर रख दिया है।

सिक्किम इनसे भिन्न था। यह भोले-भाले लेप्चा और धूर्त भूटियो का घर था। भूटिए तिब्बतन होशियारी में माहिर थे। भूटिए शासकदल के प्रतिनिधि थे। वे राजमहल के करीब थे और उनकी जमीनों और मठों पर इजारेदारी थी। वे दिल्ली के विदेश कार्यालय से परिष्कृत और जटिल संबंधों तथा भारत के शीर्ष राजनेताओं से सीधे संबंधों के अभ्यस्त थे। हिमालय के इस संरक्षित राज्य के कुछ स्वप्नद्रष्टा तो भारत के साथ भूटान जैसे उन्नत संबंधों की आस लगाए हुए थे। कुछ तो ऐसे भी थे जो नेपाल जैसी प्रभुसत्ता पाने की उम्मीद में थे। वे विदेशों से गुपचुप और सामरिक सहायता की आकांक्षा रखते थे।

नेपाली संख्या में कम थे पर वे राजशाही के खास लोगो में थे। वे देश के राजनीतिक व आर्थिक मामलों के बाहरी दायरे पर मंडराते रहते थे। उनमें से अधिकांश तो सिक्किम के नागरिक तक न थे। नेपाल पूर्वी पाकिस्तान/ बंग्लादेश की तरह भारत को गैरजरूरी मानव संसाधन निर्यात करने में माहिर है। वे हिमालय के निचले हिस्सों से हो कर आए और सिक्किम के उपजाऊ हिस्सों में बस गए।

वे विचित्र परिस्थितियों में फंस गए थे। सीमा पार नेपाल मे नेपालियों को अभी अपने पूरे राजनीतिक व आर्थिक अधिकारों की मांग करनी थी। पश्चिम बंगाल के पडोस वाले दार्जीलिंग जिले में नेपालियों का अलग स्थान था। वहाँ वे वास्तविक आर्थिक और राजनीतिक अधिकारो के अखाड़े के दरवाजे पर थे। बंगालियों के बडे भाई वाले रवैए ने पश्चिम बंगाल और कलकत्ता के नेपाली भाषियों को अलग-थलग कर दिया था। वे पर्वतीय जिले के विकास की आवश्यकताओं के प्रति भी उदासीन थे। हिमालय की इस सौंदर्य की रानी की तीन संपत्तियों, चाय, इमारती लकडी और पर्यटन का लाभ अधिकांशत: बाहरी लोग उठा रहे थे। बहुत कम धन का पुनर्निवेश होता था। कलकत्ता के बाबू अपनी राजनीति में मस्त और अपनी सांस्कृतिक श्रेष्ठता में आनंदित थे। उनके खयाल में बंगाली संस्कृति का अस्तित्व गंगा के उत्तर में था ही नहीं। वर्षों की उपेक्षा ने जातीय आकांक्षाओं को जन्म दिया था। दार्जीलिंग और दुआर के नेपाली अपने जन्मसिद्ध अधिकार के लिए ठोस कदम उठा रहे थे। दरअसल दार्जीलिंग के नेपाली अपने नेपाल और सिक्किम के जातीय बंधुओं की तुलना में बेहतर अधिकार पाए हुए थे।

मेरा इरादा सिक्किम के विलय या इस पर कथित कब्जे पर एक और शोधग्रंथ लिखने का नहीं है। 1963 में पिता ताशी नामग्याल की मृत्यु के बाद पाल्देन थोंडुप नामग्याल सिंहासन पर बैठे। तब से ही सिक्किम में राजनीतिक ज्वार जनतंत्र के हक मे हिलोरें लेने लगा था। जन आकांक्षाओं को स्थान देने की उनकी अक्षमता को उनकी अमेरिकन पत्नी होप कुक ने और भी जटिल बना दिया। उसका सपना सिक्किम को एक पूर्ण राजतंत्र बनाने का था। इससे चोग्याल अपने देश को सार्वभौम प्रभुसत्ता वाला देश बनाने की सोचने लगे। कुछ पश्चिमी मित्रों के थोथे शोर का भी उन पर प्रभाव पडा। फिर भी यह कहना ठीक न होगा कि होप कुक ने भारत की सुरक्षा की पीठ में छुरा घोंपने की साजिश की थी।

अक्सर कहा जाता है कि मामूली हैसियत से रानी बनी यह अमेरिकी लडकी सी.आई. ए. की तैनात की हुई थी। इनमें से अधिकांश आरोपों की पुष्टि तथ्यों से नहीं होती। चोग्याल ने संधि में संशोधन और भारत के साथ सिक्किम के संबधों को उन्नत बनाने की माँग के लिए सही समय नहीं चुना। उन्होंने यह नहीं सोचा कि पडोस में बंग्लादेश बन जाने और प्रजा के एक वर्ग के नाटकीय आंदोलन के कारण ऐसी असामान्य-सी स्थिति बन गई है जो भारत को सिक्किम से संधि पर पुनर्विचार को बाध्य करेगी। इंदिरा गांधी अपनी गिरती राजनीतिक साख को संभालने के लिए कुछ विलक्षण कदम उठाना चाहती थीं। यह एक शेरनी सिक्किम की कथित शेरनी होप कुक नामग्याल और घात में बैठी दूसरी शेरनी लोकतंत्र समर्थक नेता काजी लेहंडुप खंगसरपा की पत्नी काजिनी एलाइजा मारिया खंगसरपा से कहीं बढ कर थीं। चोग्याल समय के फेर में फंस गए थे जिसने सिक्किम के 'विलय' को अवश्यंभावी बना दिया। वह अपने राज्य की ओर आते इतने बड़े बवंडर को नहीं देख पाए।

रानी का सिक्किम का सपना पूरा हो सकता था पर भारत के लिए इसका सामरिक महत्व सर्वोपरि था। शीतयुद्ध के उन तीव्रता के दिनो मे भारत चीन के साथ अपनी सीमा पर एक संदिग्ध अमेरिकी नुमाइदे को सहन नहीं कर सकता था। भारत को लाल रूस का साथी समझा जाता था और बग्लादेश युद्ध की केवल पाकिस्तान मे ही नही वाशिगटन, बीजिंग और लंदन में भी प्रतिक्रिया हुई थी। सिक्किम भारत और चीन के बीच एक अतस्थ राज्य था और भारतीय सेना के लिए सिक्किम का मैत्रीपूर्ण होना अत्यंत आवश्यक था। तभी वह उस संकरे क्षेत्र के दोनो छोरों की रक्षा कर सकती थी जो चीनी सेनाओं के चबी घाटी मोर्चों के बहुत करीब था।

जुल्फिकार अली भुट्टो ढाका की हार के साए और शिमला संधि के प्रभाव से बाहर निकलने को बेताब थे। चोग्याल ने जो शोर मचाया वह उसे दोहराने लगे। नेपाल दरबार भी भारत की लोकतंत्र आंदोलन को गुपचुप सहायता से प्रसन्न न था।

चोग्याल यह भी समझने मे असफल रहे कि पाकिस्तान पर अपनी निर्णायक विजय के बाद इंदिरा अपने राजनीतिक कैरियर के शिखर पर थी। उनमे जीत को हार मे बदलने की खासियत भी थी, 1971 के वसंत के बाद सूखे, किल्लत, युद्ध के बाद की मुद्रास्फीति तथा खुले भ्रष्टाचार का एक और दौर आया। वह अपनी स्थिति को किसी भी तरह से सुरक्षित करना चाहती थीं। चाहे वह पोखरण का परमाणु परीक्षण हो या फिर सिक्किम की जनता की लोकतात्रिक आकांक्षाओ के साथ खेल खेलना। थोडे में कहें तो यह राजा और उसकी अमेरिकी रानी के लिए इंदिरा के साथ शतरजी चालें चलने का सही समय नही था।

इंदिरा की कुछ और मजबूरियाँ भी थी। 1971 से 1975 के बीच इंदिरा गाँधी की राजनीतिक नाव सफलताओं और असफलताओं के बीच हचकोले खाती रही। वर्षा का न होना, सूखा तथा युद्ध के बाद के प्रभाव ने अर्थव्यवस्था पर बहुत दबाव डाला था। तेल की बढती कीमतों ने भी मुद्रास्फीति की दर को 20 प्रतिशत बढा दिया था। देश के विभिन्न भागों मे खाद्यान्न को लेकर दगे भडक उठे थे। इसेके बाद अनगिनत औद्योगिक हडताले हुईं।

संजय गांधी और उसकी मारुति कार को ले कर अनेक विवादों तथा सरकार के 1971 के संविधान संशोधन पर सर्वोच्च न्यायालय के फैसले ने इंदिरा गाँधी की परेशानियो को और बढा दिया। उन्होंने इसका बदला तीन वरिष्ठ न्यायाधीशों का अधिलघन कर के अपनी पसंद के न्यायमूर्ति ए.एन. रे को सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश नियुक्त कर के लिया।

इंदिरा को उस समय एक और नुकसान तब हुआ जब राजनारायण ने 1971 के चुनाव में अनियमितताएँ बरतने का आरोप लगाकर उनके विरुद्ध मुकदमा दायर कर दिया। जनवरी 1974 में गुजरात में विद्यार्थियों का आंदोलन हुआ। उनके चहेते चिमनभाई पटेल को हटा कर राष्ट्रपति शासन लागू किया गया। वरिष्ठ समाजवादी नेता जयप्रकाश नारायण के आंदोलन ने बिहार और अन्य राज्यों को हिला कर रख दिया। आंदोलन को वाम दलों के साथ-साथ आर.एस.एस. जैसी हिंदुत्ववादी शक्तियों से भी समर्थन मिला। इस आंदोलन की रही-सही कसर गर्मदल के समाजवादी जार्ज फर्नांडिस की देशव्यापी रेलवे हड़ताल ने पूरी कर दी।

ऐसा लगता था कि इंदिरा के पास विचारों और पहल करने की क्षमता चुक गई है पर वह हार मानने को तैयार न थीं। 18 मई 1974 के उनके पोखरण में परमाणु परीक्षण को उनके देशी और विदेशी आलोचकों ने एक विकल्पहीन हताश नेता की कार्रवाई बताया। फिर भी इससे इंदिरा की छवि में कुछ सुधार हुआ। वह कांग्रेस संगठन पर पूरा नियंत्रण पाने और अपने कट्टर

अनुयायी फखरुद्दीन अली अहमद को भारत का राष्ट्रपति बनाने में सफल रहीं। इंदिरा फिर से राजनीति में आक्रामक हो गईं।

इंदिरा के विरुद्ध लगभग सारे देश में आरंभ हुए आदोलनों की प्रतिध्वनि सिक्किम की पहाड़ियों और घाटियों में भी सुनाई पडी। भारत में लोकतांत्रिक आंदोलन को भोथरा करने के उनके संकल्प की सिक्किम में अलग किस्म की अभिव्यक्ति सामने आई। उनकी सरकार ने लोकतंत्र समर्थक शक्तियों को पूरा समर्थन दिया। इंदिरा ने देश में अपनी छवि सुधारने के लिए सिक्किम के तुरुप के पत्ते का जो इस्तेमाल किया चोग्याल उसकी थाह न पा सके। इंदिरा का अध्ययन करने वालों ने कई बार कहा है कि उनके घाव उनको और भी उग्र बना देते थे। उनकी स्वदेश की मजबूरियों ने उनके सिक्किम के राजा के प्रति रवैए को और भी कठोर बना दिया था। उन्होंने विदेश कार्यालय और गुप्तचर एजेसियों को अपनी मंशा के अनुसार चलाया ताकि वे चोग्याल को राजनीति के गहनतम गर्त में धकेलें। अगस्त 1974 के भारतीय संविधान में संशोधन ने चोग्याल को केवल संवैधानिक प्रमुख बना दिया था। सपना टूट जाने पर उनकी रानी कुक उनसे नाता तोड कर अमेरिका लौट गई। अकेले राजा, विदेश कार्यालय, रॉ और वहाँ मौजूद विशाल भारतीय सेना के मुकाबले कुछ भी न थे। उन्होंने अपनी चाल गलत चली थी।

इंदिरा लोकतांत्रिक आंदोलन की धीमी गति से सतुष्ट न थीं। उनके नाटकीय विकल्प का नतीजा सिक्किम में 8 अप्रैल 1975 को गगतोक मे भारतीय सेना के प्रयाण और राजमहल पर हमले के रूप में सामने आया। 14 अप्रैल को उनके चतुराई से कराए गए जनमत संग्रह में भारत में सिक्किम के विलय के हक में भारी बहुमत ने समर्थन किया। थोडे से मिलीभगत वालों को छोड कर सिक्किमियों को इसमें कोई संदेह नहीं था कि जनमत संग्रह चालाकी और धांधली का नतीजा था। बात तो सही थी ही। कहा जाता है कि सिक्किम के 'विलय' का सच्चा इतिहास तो कोई निष्पक्ष राजनीतिज्ञ समय आने पर लिखेगा।

जो भी हो, मई 1975 में सिक्किम भारत का 22 वां राज्य बन गया। बी.बी लाल इसके राज्यपाल और काजी लेंहडुप दोरजी इसके मुख्यमंत्री बने।

जनमत संग्रह में धांधली के आरोपों की कोई नियमित तरीके से जॉच नहीं हुई। दिल्ली और गंगतोक की सरकारें ही जॉच करा सकती थीं। इन दोनों की इस में कोई दिलचस्पी न थी। चोग्याल के समर्थकों की कुछ छिटपुट आवाजों का प्रशासन ने गला घोंट दिया। बाकी की कसर आंतरिक सुरक्षा कानून लगने पर पूरी हो गई। काजी के कुछ राजनीतिक प्रतिद्वंद्वियों के अलावा किसी का जनमत संग्रह का विरोध करने का साहस नहीं हुआ।

मैं सिक्किम में कोई बीती घटनाओं की जॉच करने नहीं आया था। मैं वहाँ के लोगों और स्थिति को समझ कर दिल्ली और गंगतोक के विलय के बाद के संबंधों को मजबूत बनाने और विलय के लाभ को स्थिरता प्रदान करने में सहायता देने के लिए आया था।

सिक्किम के भारत में विलय के औचित्य पर निर्णय लेना मेरे लिए संभव नहीं। पर इतना तो कहा ही जा सकता है कि सिक्किम के लोग दो दशकों से भी अधिक समय से लोकप्रिय जनतांत्रिक सरकार के लिए आंदोलन कर रहें थे। चोग्याल दिल्ली की महिला की घायल मनःस्थिति को समझने में भी असफल रहे। कुछ विदेशी राजधानियों के बेमानी शोर ने भी उनको गुमराह किया। वह इंदिरा के जीवन के संकटपूर्ण समय में उनके रास्ते में आ गए।

1971 की दुर्गा आतरिक समस्याओ से घिरी हुई थी जिनमे से कुछ उसकी अपनी पैदा की हुई थी। वह एक गलती करने वाले राजा और उसकी अतिमहत्वाकाक्षी पत्नी से मिले जीत के एक और मौके को हाथ से नही जाने देना चाहती थी। जैसा कि मैंने अपने कैरियर में आगे चल कर जाना इदिरा गाँधी किसी अखाडे मे घिरे तलवारबाज से कही अधिक निर्ममता से प्रहार कर सकती थीं। उनकी मुकाबला करने की क्षमता पर किसी को सदेह न था। वह जन्मजात योद्धा थी।

* * * *

सिक्किम का कार्यभार मेरे मणिपुर और नगालैंड के काम से कहीं अधिक चुनौतीपूर्ण था। सिक्किम के विलय ने उसकी समस्याए हल नही की थी बल्कि उसके नए दर्जे ने उसकी कमजोरियाँ बढ़ा दी थीं। काजी लेहडुप दोरजी के नेतृत्व मे लोकतात्रिक नेता अनुभवहीन थे। जातीय तनाव, आर्थिक सकट और अपदस्थ नरेश के प्रति सहानुभूति की समस्याओ से ग्रस्त राज्य के मामलों को सभालना उनके लिए आसान न था।

बी एस दास भारतीय पुलिस सेवा के योग्य सदस्य थे। उन्हें भूटान के मामलो को सभालने का खास अनुभव था। मुख्य कार्यकारी की हैसियत से उन्होने सिक्किम की बहुमूल्य सेवा की। उनके सहायक के रूप मे भारतीय प्रशासनिक सेवा के बगाल काडर के तीन अधिकारी काम कर रहे थे। ये थे के एम लाल जयत सान्याल और डी के मनावलन। उन्होने उन घटनाओ को मोड देने मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा की जो भारत मे सिक्किम के विलय का कारण बनीं। कानून-व्यवस्था बहाल करने और राजधानी तथा उसके आस-पास के जिलों में आर्थिक विकास की शुरुआत करने में उनकी जो भूमिका थी 333 साल पुराने राजतत्र पर 'कब्जा' होने के प्रबल विरोधी राजतत्रवादी भी उसे नकार नही सकते थे। उन्हें नए स्वामियो के रूप मे पहचाना जाता था। जिनको विकास का लाभ मिला वे उनसे प्रेम करते थे दूसरे घृणा। आमलोग देश बेचने वालो के प्रति घृणा का भाव रखते थे।

राज्यपाल बी बी लाल ने राजनेताओ और प्रशासको की जटिल टीम का नेतृत्व किया। उनका उल्लेख एक ऐसे व्यक्ति के रूप मे ठीक ही किया गया है जिसने सिक्किम मे भारतीय प्रशासन तत्र को आमूलचूल स्थापित किया जिसने अनुभवहीन राजनेताओ को ज्ञान दिया उनका दिशानिर्देश किया और राज्य के आर्थिक ढाचे के कुछ महत्वपूर्ण हिस्सो की बुनियाद रखी। चोग्याल के वफादार पुराने ढर्रे के अधिकारी सामती तौर-तरीके से काम करने के आदी थे। उनको वह सब भुलाने और प्रशासन चलाने का नया भारतीय तौर-तरीका सिखाने का काम किया गया। उन्होने नई पद्धति की अच्छाइयो और भ्रष्टाचार को बढ़ावा देने वाली उसकी खामियों को सीखने मे अधिक समय नही लगाया।

मैं एक अवाछनीय स्थिति में फस गया था।

मेरी पहली चिता अपने लिए एक कार्यालय का स्थान खोजने की थी। साथ ही कार्यालय और इटेलिजेंस एकत्र करने वाला स्टाफ जुटाने की थी ताकि दिल्ली की आवश्यकताएँ पूरी कर सकूँ। मेरे साथ एक उप केंद्रीय इटेलिजेंस अधिकारी थे। वह केवल भारत-चीन सीमा की दूर-दराज चौकियों के प्रशासनिक काम की देख-रेख करते थे। वह राजनीतिक व आतरिक इटेलिजेंस एकत्र करने वाले तत्र से सबद्ध न थे। यह काम भूतपूर्व ओ एस डी (पुलिस) और अब रॉ के प्रतिनिधि देखते थे। पारस्परिक प्रयत्नों से अतत स्थान की समस्या हल हो गई।

रॉ को उस परिसर में स्थान मिल गया जिसमें पहले राजनीतिक अधिकारी के ऑफिस हुआ करते थे। मैं ओ.एस.डी. के विशिष्ट कार्यालय व आवास में चला गया।

पर मुझे विरासत में कोई बुद्धिजीवी नहीं मिला।

अधिकांश सीमावर्ती चौकियाँ चीन की सीमा के साथ ऊँचाई पर थीं। लेप्चा और भूटिया जनजाति के लोग ही उन जगहों पर रहते थे। नेपालियों को इन जनजातीय क्षेत्रों में रहने को प्रोत्साहित नहीं किया जाता था। नेपाल सीमा पर एक ही चौकी उत्तरी में थी। यह आव्रजन चौकी के रूप में भी कार्य करती थी। राज्य के शेष भाग में आई.बी. की उपस्थिति नहीं थी। उन भागों में अधिकतर नेपाली या लिंबू रहते थ। चोग्याल ने भारतीय इंटेलिजेंस को अंदरूनी हिस्सों में ठिकाने बनाने की अनुमति नहीं दी थी। इनमें से कुछ भागो की सूचनाएँ दार्जीलिंग और कालिंपोंग से एकत्र की जाती थीं।

दरअसल 1966-68 में जब मैं कालिंपोंग में सब डिवीजनल पुलिस ऑफिसर था, मुझे सिक्किम के मामले में पश्चिम बंगाल राज्य इंटेलिजेंस को प्रति सप्ताह एक रिपोर्ट भेजनी होती थी। कालिंपोंग स्थित आई.बी. अधिकारी अक्सर मुझसे भारत के इस आरक्षित राज्य में होने वाली हलचलों के बारे में सलाह किया करते थे। उन दिनों में सिक्किम की राजनीति में राजनीतिक आकांक्षाओं की कोंपलें निकलने लगी थीं। काजी लेहंडुप और उनकी प्रसिद्ध पत्नी काजिनी एलाइजा मारिया कालिंपोंग में प्रमुख व्यक्ति माने जाते थे। काजिनी शायद बेल्जियम की थीं।

भूतपूर्व चोग्याल के एक वफादार अधिकारी ने तीन महिलाओं की महत्वाकांक्षाओं, आकांक्षाओं और हताशाओं की बडी खूबी से चर्चा की है जिनके चलते सिक्किम विचित्र जाल में फंसा, ये थीं इंदिरा गांधी, होप कुक और काजिनी एलाइजा मारिया खंगसरपा।

मेरे लिए मूलभूत ढांचे की समस्या से निबटना आसान न था। मेरे कलकत्ता स्थित बॉस संभार की समस्या को नहीं समझते थे। उनके लिए सिक्किम एक और इलाका था जो उनको विलय के बाद उपहार में मिला था। मैंने उनसे आस छोड दी और सीधे दिल्ली के शीर्ष अधिकारियों से अनुरोध किया कि मेरी मानव संसाधन, संचार उपकरणों व स्थान लेने के लिए धन से सहायता करें। मुझे तुरंत सहायता मिली। कुछ ही महीनों के अंदर मैं रेहनाक, जोरेथांग, रोंगपो, माल्ली, गीजिंग, नामची और मनगान के अंदरूनी हिस्सों में चौकियाँ बनाने में सफल रहा। मेरी कोशिशों को आई बी. की तकनीकी शाखा का पूरा सहयोग मिला। उन्होंने प्राथमिक वायरलेस सैट और प्रशिक्षित ऑपरेटर उपलब्ध कराए। मुझे चीनी सीमा तक जाने के लिए साल में 20 हेलीकॉप्टर उडानें भरने और घायलों व रोगियों को लाने के लिए कितनी भी उडानें भरने की अनुमति मिल गई।

भारत का यह छोटा-सा 22वां राज्य असंख्य चुनौतियाँ लिए था।

इंटेलिजेंस ब्यूरो सिक्किम के लिए एक अनजानी चीज थी। सिक्किमी प्रधानमंत्री कार्यालय, विदेश मंत्रालय और रॉ के संचालकों से परिचित थे। मेरी पीठ पर लगा ओ.एस. डी. का ठप्पा रहस्यमय राजनीतिक गिरोहों, भूतपूर्व चोग्याल के निकटवर्तियों और यहाँ तक कि सिक्किम सरकार में प्रतिनियुक्ति पर आए भारत सरकार के कुछ प्रशासकों तक को मूर्ख नहीं बना सकता था।

1975 में सिक्किम एक स्पष्ट श्वेत-श्याम कोलाज की तरह था। हालांकि बीच में जो कुछेक रंग थे वे ऐसे न थे कि दिखें ही नहीं। लेकिन उन रंगों को पहचानने के लिए अति सूक्ष्म विश्लेषण कुशलता की आवश्यकता थी।

आमतौर पर लोगों को भारत समर्थक और चोग्याल समर्थक, इन दो वर्गो में बॉटा जा सकता था। भारत समर्थक होना उन दिनों का फैशन था। चोग्याल समर्थकों को अछूत माना जाता था। समझा जाता था कि उनके शायद चीन, अमेरिका या फिर उन दिनों की सर्वव्यापी बुराई मशीन सी.आई.ए. से संबंध हैं। सामान्य सरकारी कर्मचारियों व राजनीतिक संगठनों से आशा की जाती थी कि वे अपने आचरण और काम से नई सरकार व नए आकाओं के प्रति वफादारी प्रदर्शित करें। वे 'प्रतिनियुक्त अधिकारियों ' और इस नए राज्य मे धीरे-धीरे आयात होने वाली रहस्यमय प्रशासकीयता का स्वागत करने का हर संभव प्रयास करते थे। राज्यपाल ने चोग्याल का स्थान ले लिया था। मुख्यमंत्री अपने मिटोकगांग भवन में रहते थे। यह दो पहाडियों के बीच था। एक पर राज्यपाल का निवास था। दूसरी पर ताशिदिंग महल था–भूतपूर्व नरेश पाल्देन थोंडुप नामग्याल का आवास।

काजी ने बेमन से भारत के साथ सिक्किम के विलय में साथ दिया था। एक बार दिल्ली की चालों के जाल में फंस जाने के बाद उनके पास साथ बने रहने के अलावा कोई और विकल्प न था। वह सिक्किम का अस्तित्व पूरी तरह से समाप्त हो जाने के हक में न थे। विलय के बाद उनके मंत्रिमंडल के साथी व निर्वाचित विधायक जान गए कि रोटी में किस तरफ मक्खन लगता है। फिर तो उनमें नए राजनीतिक विधान के साथ वफादारी का ऐलान करने की होड लग गई।

खुद काजी भी जोरदार शब्दों में इंदिरा गॉधी और दिल्ली के नए राजनीतिक आकाओं के प्रति वफादारी जता रहे थे। उन्होंने आख़िरकार अपने जीवन भर का लक्ष्य पा लिया था। सत्ता, महिमा, चाटुकारिता और आखिरी मंजिल। पर जब मैं काजियों के और निकट गया तो कोई शक नहीं रहा कि काजी लहेंडुप और काजिनी एलाइजा मारिया कभी सिक्किम का भारत में विलय नहीं चाहते थे। वे चाहते थे कि चोग्याल को निकाल बाहर किया जाए और सिक्किम भारत के सुरक्षाधीन लोकतांत्रिक राज्य या फिर हद से हद सवैधानिक राजतंत्र वाला देश बने।

कई मौकों पर काजी ने मुझसे अपने दिल की बात कही। उन्होंने नेपाली में बताया कि वह दिल से सिक्किमी हैं। उन्होंने लोकतान्त्रिक शासन के लिए सघर्ष किया। वह एक लेप्चा सामंत थे। वह धर्मपरायण बौद्ध थे । वे चालाक भूटियों और तिब्बतियों पर विश्वास नहीं करते थे। नेपालियों को वह जनसांख्यिकीय चींटियों के समान समझते थे जो मूलनिवासियों की पहचान निगलना चाहते थे। काजी का अपना एक सपना था। पर वह उस मिट्टी के बने नहीं थे जिसके भारतीय राजनीतिज्ञ बने होते हैं। वह विश्वास करने वाले लोगों में से थे और आसानी से दबाव में आ जाते थे। उनकी सबसे बडी गलती यह थी कि उन्होंने भारतीय प्रशासकों और राजनीतिज्ञों पर विश्वास किया जिन्होंने दिल्ली की कूटयोजना के अनुरूप उनको सिक्किम के विलय के रास्ते पर चलाया। काजिनी अक्सर काजी के निजी व गुप्त विचारों के बारे में खुलेतौर पर बताया करती थीं। काजी की पीठ पीछे उनके कुछ नेपाली साथियों ने दिल्ली से गुपचुप समझौता कर लिया था। उन्हें भारतीय सिक्किम से अधिक लाभ की आशा थी।

काजी और काजिनी पर घटनाएँ हावी रहीं। दिल्ली में इंदिरा गाँधी तैयार फल को किसी गलत गोद में डालने के मूड में न थीं। वह जीतती नजर आ रही थीं। सिक्किम ने उनको महानता सिद्ध करने का एक और अवसर दिया था। पाकिस्तान का अंग-भंग कर के उन्होंने इतिहास के एक भाग को ध्वस्त करने में मदद की थी जो ब्रिटिश राज और 1947 के भूखे राजनीतिज्ञों ने लिखा था। उन्होंने भारत को परमाणु क्लब का सदस्य बना दिया था। सिक्किम उनको महानता के मंच कर खडा करने की एक और सीढी थी। काजी और काजिनी दोनों उनकी समस्याओं और रुझान को समझने में असफल रहे थे। अंततः वे ऐसे अनचाहे साधन बनकर रह गए जिन्होंने सिक्किम की जनता को लोकतंत्र दिलाने में तो सहायता की, लेकिन साथ ही वे अपनी 300 साल पुरानी विशिष्ट पहचान खो बैठे।

मंत्रिमंडल के अधिकांश मंत्री बच्चों की तरह नासमझ थे। वे उस जटिल राजनीतिक प्रक्रिया को समझने में असमर्थ थे जिससे कोई लोकतंत्र विधिवत चलता है। निर्वाचित विधायकों के पास बहुत कुछ करने को न था। वे राज्यपाल की कार्रवाइयों का अनुमोदन भर कर देते थे जो आमतौर पर मुख्यमंत्री के ज़रिये उन तक आती थीं और जिन पर राज्य विधानसभा के अनुमोदन की मोहर होती थी। लेकिन वे सभी एक बात से प्रसन्न थे कि विलय के साथ दिल्ली से योजना और गैर-योजना बजट-सहायता आई थी। उन्होंने इससे अपनी जेबें भरने की तरकीब सीखने में अधिक समय नहीं लगाया। कुछ भारतीय प्रशासक भी इसमें उनके काम आए जिन्होंने उनको बजट के प्रावधानो को हवा मे लोप करने की जादुई तरकीबें सिखाई। उनको भारत की मुख्य भूमि में इस तरह के करिश्मे करने का काफी अनुभव था। उन्होंने अपने राजनीतिक आकाओं को ये करिश्मे मिलीभगत के उत्साह के साथ सिखाए। विलय ने भोले-भाले लोगों के राजनीतिक और नैतिक शील को भंग कर दिया था। मैंने उत्तरपूर्व में भ्रष्टाचार के लिए राजनीतिज्ञों और प्रशासकों में यही अस्वस्थ होड देखी थी। ब्रिटिश इंडिया की तरह ही भारतवर्ष भी संबद्ध लोगों को शात और संतुष्ट रखने के लिए उनकी जेबें नोटो से भर देने के राजनीतिक दर्शन में यकीन रखता था। मुझे यह देखकर दुख होता था कि सिक्किम के सरल लोग भी मुख्य भारतभूमि के लोगों की नकल पर अपने मूल्यों को भूल कर भ्रष्टाचार में लिप्त हो रहे हैं।

जो चोग्याल के वफादार पुराने ढर्रे के प्रशासक और राजनीतिज्ञ थे, उनको हाशिए पर धकेल दिया गया था। 'वफादार' भारतीय उनको दूर रखते थे। के.सी. प्रधान, एन.बी. भंडारी और एल.बी. बास्नेट जैसे राजनीतिज्ञों से प्लेग की तरह परहेज किया जाता था। जिगदल देनसप्पा, एम.एम. रसेली, करमा तापदेन जैसे कुछ प्रशासक, जिनको राजमहल के करीबी समझा जाता था, संदिग्ध लोगों की सूची में रखे गए थे।

भूटिया और लेप्चा ग्रामीण भी अपने राजा को अपने राजमहल तक सीमित देख और उस से ऐसा तुच्छ व्यवहार होते देख खुश न थे। अनेक मठाधीश भी यह सोच कर व्यथित थे कि भारत ने उनके राजा और धर्म के साथ दुर्व्यवहार किया है।

एक समझदार इंटेलिजेंस संचालक होने के नाते मेरे लिए इस कोलाज के दो नितांत विपरीत रंगों के साथ मिल-जुल कर रहना उचित न था। मेरे सामने आई.बी. को ऐसे राजनीतिक और प्रशासनिक तौरतरीके पर रखने की चुनौती थी जो भारत सरकार के अन्य विभागों की सोच के अनुरूप हो।

पुलिस कमिश्नर, जिसे भारत सरकार ने नियुक्त किया था, उसे भी अपनी वफादारी नई सरकार के प्रति बदलनी पडी थी। अब उसे अपने पहले के रोजी देने वाले सिक्किम नरेश के वफादार तत्वों पर पुलिसिया निगरानी करने का अरुचिकर काम करना पड़ रहा था।

मध्यप्रदेश के एक वरिष्ठ और रंगीन किस्म के आई.पी.एस. अधिकारी आर.पी. खुराना ने पदस्थ पुलिस कमिश्नर बजरंगलाल का स्थान ग्रहण किया। हमारी पहली मुलाकात में ही खुराना ने मुझे बिना आँख झपकाए बता दिया कि आई.बी निदेशक ने उनको स्थानीय आई. बी यूनिट से सूचनाएँ प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार दे दिया है। इस रहस्योद्घाटन के बाद एक मौखिक आदेश भी आ गया कि मैं हर हफ्ते उनको मिल कर रिपोर्ट दूं और मेरे कार्यालय ने जो भी सूचनाएँ एकत्र की हों उन सबकी जानकारी उनको दूँ। उन्होंने मुझे अपना मातहत समझने और मुझसे संपूर्ण 'वफादारी' की उम्मीद लगाने में जरा भी संकोच नहीं किया।

यह ऐलान मुझे रास नहीं आया। मैंने आने वाले वर्षों में कई उलझने पैदा कर ली थीं। पर मुझे आई.बी. के निदेशक (एस.एन माथुर) से यह पूछने की हिम्मत नहीं हुई कि क्या सचमुच उन्होंने खुराना को ऐसा निरंकुश अधिकार दिया है। बहरहाल मैंने अपने डेस्क सुपरवाइजर को खुराना के साथ मुलाकात की हू-ब-हू रिपोर्ट भेज दी। उसमें यह भी लिख दिया कि इस तरह का इंतजाम आई बी के लिए घातक होगा। खुराना ने सहयोग का अर्थ संपूर्ण आत्मसमर्पण लगा लिया था।

धारा के साथ तैरना तो आसान काम था। 'प्रतिनियुक्ति पर आए अधिकारी' सहज मित्र थे। मुझे गंगतोक सरकार के प्रमुख अधिकारियों से दोस्ती करने मे अधिक समय नही लगा। प्रशासक सबसे अच्छे मौसम को भांपने वाले होते हैं। उन्होंने जब देख लिया कि मेरे राज्यपाल, मुख्यमंत्री, उनके मंत्रिमंडल के सहयोगियों और खासतौर पर काजिनी के साथ बहुत अच्छे संपर्क हैं तो उन्होंने आई बी. का गुणगान करने और मुझे एक बेहतरीन इन्सान मानने में जरा भी समय नहीं लगाया। जिला स्तर के अधिकारी तो मेरे कहने से पहले ही समर्पण को तैयार हो गए। यह एक विचित्र स्थिति थी। यह मणिपुर और नगालैंड के अधिकारियों के रवैए से बिलकुल अलग थी।

पर मैंने अब भी चोग्याल के प्रति वफादार लोगों और राजमहल के प्रभाव वाले सस्थानों से वास्ता रखने में आग की दीवार जैसी रुकावट पाई। गंगतोक में एक अलिखित कानून लागू था कि शासकदल का कोई भी अधिकारी चोग्याल और उसके खुशामदी टट्टुओं से कोई संबंध नहीं रखेगा। राज्यपाल ने मुझे कहा था कि मैं चोग्याल, युवराज और उनके निकटस्थ संभ्रांतजनों की गतिविधियों की नियमित जानकारी उनको देता रहूं। राज्यपाल बी.बी. लाल एक अनुभवी प्रशासक थे। वह इंटेलिजेंस एकत्र करने और उस के आवंटन के खेल को बहुत अच्छी तरह समझते थे। वह इंटेलिजेंस के दिए जाने और न दिए जाने के अनुपात से संतुष्ट थे। यह तो राज्य प्रशासन की एक कला है जिसे कम लोग समझते हैं।

बहरहाल वर्जना तोड कर चोग्याल और उनके लोगों के साथ मेलजोल बढ़ाने वाला मैं पहला भारतीय अधिकारी था। मैंने शुरूआत चोग्याल से ही की। इसके लिए मैंने चोग्याल की पूर्व सेना के एक भूटिया अधिकारी कैप्टन शेराब पाल्देन की मदद ली। 15 सितंबर 1975 को हमें महल में चाय के लिए आमंत्रित किया गया। यह हमारे गंगतोक आने के कुछ ही महीने बाद की बात है।

सुनंदा और मेरी चोग्याल के निजी सेवकों ने आगवानी की और हमें सिंहासन वाले कक्ष में ले जाया गया। नरेश पाल्देन थोंडुप कोई पाँच मिनट बाद पधारे। उनके चेहरे पर एक थकी-सी मुसकराहट थी। वह खास भूटिया पोशाक में थे। हमें परिचय प्राप्त करने की औपचारिकता नहीं करनी पड़ी। नरेश ने हमारी 1968 की मुलाकात की चर्चा की और खेद प्रकट किया कि वह साधनों की कमी के कारण अब मेरी पत्नी का राजमहल के परंपरागत तरीके से स्वागत नहीं कर सकते। हमने भारत के सामान्य राजनीतिक माहौल पर चर्चा की। फिर सिक्किम में जो परिवर्तन आए थे और वर्तमान प्रबंध के अंतर्गत वह जो चुनौतियाँ झेल रहा था, उन पर बातचीत हुई। उन्होंने जवाहरलाल नेहरू की काफी तारीफ की पर इंदिरा के लिए कडी भाषा का प्रयोग किया। उन्होंने खेद प्रकट किया कि जवाहरलाल की बेटी ने बहुत बाद में सिक्किम के साथ भी एक रियासत वाली कार्रवाई की, जो कि वह थी नहीं। उन्होंने कहा कि सिक्किम ब्रिटिश भारत और भारतीय गणतंत्र दोनों के साथ विशेष संधि से अनुबद्ध था। एक सुरक्षाधीन निर्बल राज्य के विरुद्ध शक्ति प्रदर्शन की क्या जरूरत थी? क्या यह इंदिरा की इस हिमालयी राज्य को हडपने की साजिश नहीं थी?

मैंने धैर्यपूर्वक उनकी बातें सुनीं। उन्होंने एक अच्छा श्रोता जानकर मुझसे दिल की बात कह डाली हालांकि वह अच्छी तरह जानते थे कि मैं सिक्किम में क्या काम करता हूँ। एक घंटे की मीटिंग के बाद वह हमें राजघराने के मंदिर में ले गए। वहाँ पूजा के बाद उन्होंने सुनंदा को एक नीलम भेंट किया। मुझे भेंट स्वीकार न करने का हौसला नहीं हुआ। हमने फिर आने का वादा कर के भूतपूर्व नरेश से विदा ली। लौट कर मैंने आई.बी. को एक रिपोर्ट भेजी और उसमें मेरी पत्नी को मिली भेंट का जिक्र भी किया। मैंने यह भी प्रस्ताव किया कि मैं वह भेंट दिल्ली भेज देता हूँ, वे उसका जो चाहें करें। आई.बी. के निदेशक रिपोर्ट से प्रसन्न हुए। उन्होंने मुझे एक व्यक्तिगत टिप्पणी लिखकर भूतपूर्व नरेश और उनके निकटस्थ लोगों से नियमित रूप से मिलते रहने की आवश्यकता पर बल दिया। उन्होंने हमें वह नीलम रखने की अनुमति दे दी। उन्होंने मुझे राज्यपाल को सूचित करते रहने की हिदायत भी की।

गंगतोक छोटी जगह थी। स्थानीय पुलिस ने हमारे राजमहल जाने की रिपोर्ट राज्यपाल और मुख्यमंत्री को बाकायदा दी। मैंने राज्यपाल को पहले ही इसकी जानकारी दे दी थी। पर काजिनी इस पर काफी लाल-पीली हुईं और पूछा कि क्या मैं सचमुच दिल्ली के प्रति वफादार हूँ। उनको समझाने में काफी वक्त लगा कि चोग्याल और उनके वफादारों के लिए भी एक रास्ता खुला रखने की बहुत जरूरत है। काजी लेहंडुप इंटेलिजेंस के खेल को समझते थे। उन्होंने चोग्याल और उनके वफादारों के साथ सार्थक बातचीत शुरू करने की प्रशंसा की। मैंने उनको विश्वास दिलाया कि भूतपूर्व राजशाही के रुष्ट वफादारों को मुख्यधारा में लाने के लिए यह प्रकिया बहुत आवश्यक है जो अब भी अतीत की महिमा के अंधेरों में भटक रहे हैं।

पी.आर. खुराना ही एक ऐसे शख्स थे जो मेरे इस रास्ता खोलने के खेल से सहमत नहीं थे। मैं जब भी राजमहल गया, उन्होंने मुझसे उस के बारे में पूरी सूचना तलब की। उनके याद दिलाने पर भी कि आई.बी. के निदेशक ने इस बारे में उन्हें पूरा अधिकार दिया है , मैंने उनकी बात नहीं मानी।

हमारे राजमहल जाने की खबर का चोग्याल के वफादारो पर बहुत असर पडा। जिगदल देनसप्पा, एम.एम. रसैली, नरबहादुर भडारी और कई दूसरे महत्वपूर्ण लोगों ने अपने घरों के दरवाजे हमारे स्वागत मे खोल दिए। हमारा सामाजिक आदान-प्रदान शीघ्र ही इटेलिजेंस एकत्र करने का महत्वपूर्ण साधन बन गया। मैंने इनमे से कुछ नेताओं और महत्वपूर्ण लोगों से निकटता बनाने के लिए आई.बी के साधनों का इस्तेमाल किया। भूतपूर्व नरेश के कुछ वफादार पुट्टपार्ती के आध्यात्मिक सत सत्य साई बाबा के सप्रदाय के कट्टर अनुयायी थे। मैं ऐसे लोगो में कभी विश्वास नही रखता था। पर मैंने उस कथित संत के प्रति गहरी आस्था का अभिनय किया ताकि एम.एम. रसैली जैसे लोगो को मुख्यधारा मे ला सकूँ। दरअसल मैंने सत्यसाई के भक्तों का एक समूह बनाने की पहल की जिसने बाद में एक अच्छे खासे संगठन का रूप ले लिया।

गगतोक के आई.बी. यूनिट के पास एक सपूर्ण और भरी-पूरी मैडिकल डिस्पेसरी थी। इसके साथ एक नियमित डॉक्टर भी थे। इसका इस्तेमाल मुख्य रूप से सीमावर्ती चौकियो के स्टाफ के लिए और सोनाम ग्यास्तो पर्वतारोहण स्कूल के कर्मियों के लिए होता था। यह आई बी का अपना स्कूल था। यहाँ हम सभी नए लोगो को दूर-दराज की सीमावर्ती चौकियों में अपनी सुरक्षा के लिए पर्वतारोहण सिखाते थे। मैने आई बी. की अनुमति से चोग्याल के कुछ वफादारो को भी चिकित्सा सुविधा देनी शुरू कर दी। इतना ही नही कुछ को तो चौकियो के लिए मिलने वाले राशन में से उनकी रसोई के लिए भी सामान भेजा जाता था।

इस का लाभ उठाने वालो मे एक महत्वपूर्ण व्यक्ति नरबहादुर भडारी थे। उन्होने चोग्याल का समर्थन करने और इस छोटे से राज्य पर 'कब्जा' किए जाने का विरोध करने मे बहुत नुकसान उठाया था। वह अब अपनी पत्नी की साधारण-सी आमदनी पर गुजारा कर रहे थे। मैंने रोजाना की जरूरतो और चिकित्सा क्री सुविधा देकर उनकी सहायता की। वह कोई वैतनिक एजेट न थे। पर वे मेरे साथ सहयोग करने को राजी हो गए। मैने पाया कि भडारी कोई अलगाववादी नही थे और वह चोग्याल के लिए लडना नही चाहते थे। वह भी स्थिति की वास्तविकता को समझ चुके थे। उन्होने अपना समय जनाधार बनाने में लगाना शुरू कर दिया। मुझे उनकी लोकतात्रिक राजनीतिक गतिविधियो मे कोई बुराई नजर नही आई। हालांकि उनके कुछ भाषण 'देश बेचुओं' और भारत से आए भ्रष्ट प्रतिनियुक्त अधिकारियों के खिलाफ होते थे। लोकतांत्रिक भारत मे पला-बढ़ा होने के कारण मैंने राजनीतिक विरोध की भाषा का सम्मान करना सीख लिया था। मैं पुलिस कमिश्नर की उस राय से सहमत नहीं हुआ कि भडारी पर भारत रक्षा अधिनियम और आतरिक सुरक्षा कानून के तहत मामला बनाया जाए।

बाद मे भडारी ने भारत विरोधी भावनाओं और काजी लेहंडुप दोरजी की सरकार की असफलताओ का लाभ उठाना शुरू किया ताकि सत्ता हथिया सके। मेरा काम भंडारी की व्यक्तिगत ईमानदारी पर निर्णय करने का नहीं है। मैं सी बी.आई के उस मार्ग पर नहीं चलना चाहता जो उस काले धन के पहाड का पता लगा रही थी जो कथित रूप से भडारी ने इकट्ठा कर लिया था। भंडारी ने कौन-सा नया काम किया था। भारत में राजनीतिक नस्ल को लगभग सवैधानिक सुरक्षा प्राप्त है कि वह राष्ट्रीय कोष को लूटे और गरीबों की जेबों पर डाका डाले। उन्होंने तो केवल दिल्ली और भारत में अन्यत्र अपने सहभागियों के पवित्र चरणचिन्हों पर चलने का प्रयास किया।

भंडारी अकेले ठग तो नहीं। फिर वह अच्छे दोस्त भी हैं। मैं तो उस ईमानदार स्कूल टीचर भंडारी की यादों को संजोए हुए हूँ जिसने भारत द्वारा सिक्किम पर अधिकार करने के विरोध का हौसला दिखाया था।

भूतपूर्व दरबार के वफादारों के साथ मेल-जोल बढने के सिलसिले में मुझे नाराज भूटिया और लेप्चा ग्राम प्रमुखों और मठाधीशों से दोस्ती करने में कोई कठिनाई नहीं हुई। इसका असली फल करमप्पा से मिला। वह रूमटेक मठ के प्रमुख थे। उन्होंने पधार कर हमारे घर को पवित्र किया। बाद में जब सुनंदा एक आपरेशन के लिए सिलीगुडी जा रही थी तो मठ में उसके लिए कालचक्र पूजा भी की।

मुझे इस बात से संतोष हुआ कि आठ महीने के अल्पकाल में ही मैं सिक्किम के सारे क्षेत्र की निगरानी का बंदोबस्त कर सका हूँ। मैं भारत के इस 22वें राज्य की संचालन व्यवस्था में अपनी पैठ बनाने में भी सफल रहा था। सीमावर्ती चौकियों को भी बराबर सहायता मिल रही थी। मैं सुनंदा और बच्चों को चुगत्हांग, लाचेन, लाचुंग और शेरथांग जैसे नेपाल सीमा पर उत्तरी व नाथू ला जैसी दूरवर्ती चौकियों पर भी अपने साथ ले जाता था। गॉव के मुखिया हमारा स्वागत करते और हमें उनके साथ भोजन करने व नाचने का सम्मान मिलता। इस सिलसिले में मैंने अपने अधिकारियों की कई सीमा पार के एजेंट बनाने में मदद की। ये लोग तिब्बत के अंदर तक जाकर चीनियों की सैनिक तैयारी और लोगों के उत्साह के बारे में महत्वपूर्ण गुप्त सूचनाएँ लाते थे।

सोनाम ग्यास्तो पर्वतीय संस्थान के बहादुरों के साथ मेरे अनुभव आशा से अधिक आनंददायक रहे। मैं खुद कभी पर्वतारोही नहीं रहा, हालांकि मैं समुद्र की तुलना में पर्वतों का अधिक प्रेमी रहा हूँ। यहां एवरेस्ट के वीर सोनाम वाग्याल कर्मठ शेरपाओं और अधिकारियों की टीम के प्रमुख थे।

वे आई.बी. अधिकारियों को पर्वतारोहण का कौशल और सुरक्षा के उपाय सिखाते थे। साल में दो बार वे गश्ती दलों को बाहर भेजने में मेरी सहायता करते। ये दल अंतर्राष्ट्रीय सीमा पर उन आवाजाही वाले और सुनसान रास्तों पर जाते थे जिनपर आमतौर पर चीन के गडरिए या गुप्त कार्रवाइयाँ करने वाले जाया करते थे। हर साल मई और अक्तूबर में गश्ती दल और टोही दल भेजने का रिवाज एक निश्चित इंटेलिजेंस अभ्यास था। इसकी शुरुआत स्वाधीनता बाद के इंटेलिजेंस व सुरक्षा ढाचे के गुरु श्री बी.एन. मलिक ने की थी।

हमारे जवान इन मार्गों के नक्शे बना लेते। फिर हिमालय की बर्फीली चोटियो पर शत्रु की घुसपैठ के निशानों का पता लगाते। वे अंतर्राष्ट्रीय सीमा के पार चीनियों की तैनाती पर नजर रखते। कई बार चीनी क्षेत्र के मुख्य ठिकानों के फोटो भी खीच लाते।

चीन के साथ की सिक्किम सीमा चार भागों में विभक्त थी। यहॉ आठ गश्ती दल नियमित रूप से भेजे जाते थे। इस अभ्यास से बहुत महत्वपूर्ण इंटेलिजेंस जानकारी मिलती थी। इससे शत्रु के एजेंटो और संचालकों द्वारा पुराने रास्तों के इस्तेमाल और नए रास्तों व चौकियों के विकास का पता चलता था।

1982 में ये चौकियां रॉ के हवाले कर दी गईं। मुझे जानकार सूत्रों से पता चला कि दोनों ऋतुओं में गश्ती दल भेजने की प्रथा समाप्त कर दी गई है। रॉ अधिकतर हवाई फोटोग्राफी और सीमा पार के एजेंटों पर निर्भर करती है जिन का मिलना जरा मुश्किल ही होता है। रॉ.

के अधिकारी अपेक्षाकृत नाजुक मिजाज होते थे। वे ज्यादातर विदेश में जाने की जुगत में रहते थे। जमीनी मेहनत उनकी खासियत न थी। सीमा पर इंटेलिजेंस एकत्र करने के इस महत्वपूर्ण साधन की लगातार अवहेलना ने देश की सुरक्षा के लिए कई बार संकट पैदा किया। इस का एक ज्वलंत उदाहरण 1999 की कारगिल की वारदात थी जहाँ पाकिस्तानी सेना भारतीय सीमा के अंदर नियंत्रण रेखा के साथ अपने मोर्चे बनाने में कामयाब हो गई। समय की कसौटी पर परखे जा चुके इस इंटेलिजेंस साधन की अवहेलना का देश को बहुत बडा मोल चुकाना पड़ा जिस का कि कभी इंटेलिजेंस ब्यूरो इतनी कुशलता से इस्तेमाल करता था।

यह टिप्पणी संगठनात्मक प्रतिद्वंद्विता के कारण नहीं है। यह ठोस सुबूतों पर आधारित है।

पर्वतीय संस्थान कम प्रचारित पर बहुत कुशल संगठन था। मैंने सोनम वांग्याल के नेतृत्व का लाभ उठाते हुए हिमालय की ऊँची चोटियों पर कई अभियान दल भेजे। आई.बी. के जवान लडकों ने जिन शिखरों पर विजय पाई उनमें कंचनजंगा के दक्षिणी पार्श्व की 14000 फीट ऊँची सीनियाल्चू चोटी भी थी। अपने सेवाकाल के दौरान मुझे अपने पाँच कर्मियों को ऊँचाइयों से सुरक्षित लाने के लिए हेलीकॉप्टर का प्रयोग करना पडा। इनमें से एक युवक रिंजिंग तिब्बत सीमा पर दोमबांग में फंस गया था। बर्फानी तूफान और निरंतर खराब मौसम के कारण उसे समय से नहीं निकाला जा सका। पाँच दिनों के कठिन प्रयास के बाद ही उसे निकाला जा सका। तब तक उसके फेफडे निमोनिया से ग्रस्त हो गए थे। इससे पहले कि हम उसे बीनागुडी के सेना के बेस अस्पताल में ले जाते, वह दम तोड गया। बाद में संस्थान के एक और प्रशिक्षक फुरबा तेरिंग ने उसके शरीर की भस्म को चोमोलोंग्मा (एवरेस्ट) के शिखर पर बिखेरा।

<14>

कालचक्र के अंदर

त्रुटिहीन अवलोकन को आमतौर पर सनक कहा जाता है
उन लोगों द्वारा जिनमें यह क्षमता नही होती।

जार्ज बर्नार्ड शा

सिक्किम के सुंदर परिवेश और 'विलय' के लाभ को स्थायित्व देने की तेज रफ्तार से भी, एक आदमी के स्वभाव में कोई अंतर नहीं आया। ये थे पुलिस कमिश्नर पी.आर. खुराना। वह मेरी भूतपूर्व चोग्याल से मुलाकातों और युवराज तेनजिग नामग्याल के हमारे साधारण घर मे पधारने से बहुत खफा थे। मेरी जिगदल देनसप्पा, एम एम रासेली और नरबहादुर भडारी से मुलाकातों पर भी उनको एतराज था। सिक्किम राजनीति के बगूले नरबहादुर खातिवाडा का नाम भी उनकी घृणासूची में दर्ज हो गया था। क्योंकि मुख्यमत्री के मिंटो गॉव अवास मे जम जाने के बाद काजिनी ने अपने इस 'दत्तक पुत्र' को अमान्य कर दिया था। वह इस सच्चाई को मानने को तैयार न थे कि एक इंटेलिजेंस संचालक को जहरीले कोबरा का भी चुबन लेना पड जाता है।

नरबहादुर खातिवाडा और उसके साथ के जोशीले युवकों ने ही काजी लेहंडुप के आंदोलन को नेपाली समर्थन जुटा कर दिया था। खातिवाडा और एन के. सुबेदी जैसे युवा नेपाली नेताओं ने पूरे दिल से काजी का साथ दिया था। उनको उम्मीद थी कि संवैधानिक राजतंत्र में नेपालियों के साथ बेहतर सुलूक होगा और उनको भूटियों व लेप्चा के बराबर समझा जाएगा। खातिवाडा के युवा संगठन ने नरबहादुर भडारी तथा अन्य समर्थित चोग्याल हिमायती शक्तियों का सफतापूर्वक विरोध किया था। काजी के मंत्रिमंडल में मत्री एक और युवा नेपाली नेता रामचंद्र पोड्याल भी खातीवाडा की लोकप्रियता का मुकाबला नहीं कर सकते थे। लेकिन जब खातिवाड़ा ने सिक्किम के सीधे-सीधे भारत में विलय के औचित्य पर सवाल करने शुरू किए तो काजिनी की मेहरबानियों का दूध सूख गया। काजी लेहडुप ने भी संपूर्ण विलय नही चाहा था, लेकिन वह दिल्ली की चाल से मात खा गए। काजी युवा नेता के साथ अव्यहारकुशलता से पेश नहीं आते थे और न उस तरह का रूखा व्यवहार करते थे। पर काजिनी एक अति से दूसरी अति पर जानी वाली महिला थी। मिंटो गॉव में आने के बाद काजिनी को पता चला कि खातीवाड़ा चोग्याल का एजेंट बन गया है। उसके करीबी दोस्त मोहोन गुरुंग के साम्यवादियों से संबंध हैं। पुलिस कमिश्नर ने काजिनी के आदेश को गंभीरता से लिया और वह नरबहादुर खातिवाड़ा के पीछे पड गए।

दिल्ली से मेरे लिए बहुत स्पष्ट आदेश आए थे। वे चाहते थे कि मै उत्पाती युवा नेता का दिल जीत कर उसे वापस काजी के निकट ले आऊँ। उसकी उपद्रव करने की क्षमता

को कम कर के नही आका जा स ता था। दिल्ली की सोच मेरी सोच से मेल खाती थी। खातिवाडा को नेपाली भावनाएँ उभार कर काजी की सरकार को अस्थिर करने का मौका नहीं दिया जा सकता था। नेपाली युवको के अतिरिक्त खातिवाडा ने साघा ससदीय क्षेत्र मे भी घुसपैठ बना ली थी। इससे उसकी शक्ति बढ गई थी। दिल्ली के जीतने वाले घोड़े काजी के विरुद्ध नेपालियो और भूटियो को एकजुट करने की उसकी चाल को विफल करना आवश्यक था। इस अनुमान में उस समय नए आयाम जुड गए जब नरबहादुर खातिवाडा ने राज्यपाल की कुछ कार्रवाइयो को चुनौती देना शुरू कर दिया।

मै खुराना को इस विश्लेषण की जानकारी नही दे सकता था। उनके पेट मे कोई बात पचती नही थी। शाम होने पर जब विस्की उनकी समझ और प्रशिक्षण पर हावी हो जाती थी तो यह अपच और भी बढ जाती थी। 21 सितबर को उन्होने मुझे अपने घर शाम को विस्की पीने के लिए आमन्त्रित किया। दूसरे बहुत से लोगो की तरह मै भी उनके इस आमत्रण से बहुत डरता था। उनका शाम का कार्यक्रम साढे छ बजे शुरू हो कर आधी रात के बाद तक चलता था।

मेरे आने पर उन्होने जिद की कि मै उनका साथ दूँ। मै गिलास पकडने को राजी हो गया। उन्होंने बोलना शुरू किया।

"आप को पता है कि देश मे आपात्कालीन स्थिति लागू है?'

"जी सर,"मैंने जवाब दिया "यह सविधान के अनुच्छेद 325 के अतर्गत 25 जून को लागू की गई थी।"

'यह बताए कि आपके खिलाफ आपकी राष्ट्रविरोधी गतिविधियो के लिए इसके तहत कार्रवाई क्यों न की जाए?'

मुझे इस धमाके की उम्मीद न थी।

' आप कहना क्या चाहते हैं?"

' आप नियमित रूप से राजमहल जाते रहते है। युवराज आपके घर पर नियमित आते रहते हैं। आप देशद्रोहियो की सगत करते हैं। आप खातिवाडा और भडारी के साथ मिलकर काजी की सरकार गिराने का षडयत्र रच रहे है।"

अब तक खुराना को काफी चढ गई थी। उन्होने मुझपर इससे भी घृणित आरोप लगाए।

"क्या आप ये आरोप लिखित मे देने को तैयार है?'

'इसकी जरूरत नही। मैं आपको अदर कर दूँगा।"

"यह तो बता दीजिए कि किस कानून के तहत।'

"आप अपनी रिपोर्टों का ब्योरा मुझे नही दे रहे हैं। आपको पता होना चाहिए कि आपके आई बी निदेशक मेरे मित्र हैं और उन्होने मुझे अधिकार दिया है कि आप से पूरी इटेलिजेस रिपोर्ट लूँ।"

"मुझे दिल्ली के किसी भी ऐसे आदेश की जानकारी नहीं है। कृपया निदेशक से कहें कि वह मुझे लिखित आदेश दे।"

मैं उठ कर खडा हो गया और नशे मे धुत्त पुलिस चीफ को शुभ रात्रि कह कर चला आया।

मैंने सारे मामले की रिपोर्ट दिल्ली भेज दी। साथ ही राज्यपाल को भी बिना हस्ताक्षर के जानकारी भेजी। उन्होंने राय दी कि मैं उनके पुलिस चीफ को झेल जाऊँ और देश की अखडता के विरुद्ध काम करने वाली शक्तियों के खिलाफ शक्तिशाली मोर्चा बनाए रखूँ।'

* * * *

नवबर 1975 के आस-पास मेरा राज्यपाल से पहला मतभेद सामने आया। उन्होने मुझे अपने सरकारी आवास पर बुलाया और मुझसे एल डी काजी की सिक्किम राष्ट्रीय काग्रेस के दिल्ली मे इदिरा गॉधी के सत्ताधारी दल भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस (आई) के साथ विलय के औचित्य पर मेरी राय मागी।

आपातकाल लागू किए जाने के बारे मे मेरी अपनी राय थी जो मैंने आज तक किसी पर जाहिर नही की थी। हम सब कठिन दौर से गुजर रहे थे। मन की बात कहना सुरक्षित नही था। इदिरा गॉधी आपात्काल लागू करने और सविधान मे अनेक सशोधन करने के लिए मजबूर हो गई थी। वह जनता से अलग-थलग हो गई थी। सत्ता की बागडोर उनके छोटे बेटे सजय ने हथिया ली थी। सिर्फ बहुत बहादुर या मूर्ख ही श्रीमती गॉधी या उनके बेटे को चुनौती देने का साहस कर सकते थे।

मुझमे बहादुरी की कमी न थी। पर उनका विरोध करने वाली राजनीतिक शक्तियो पर मेरा विश्वास था। जनसघ आर एस एस किस्म-किस्म के समाजवादी पार्टी से अलग हुए काग्रेसी और क्षेत्रीय छुटभैये नेताओ-- इस भानुमती के कुनबे ने छिटपुट विरोध तो दिखाया था पर उसे अभी सिद्ध करना था कि वह इदिरा गॉधी का राजनीतिक विकल्प है। इसके अलावा मैं जोखिम को भी समझता था। मैं अकेला कमाने वाला था और अपने परिवार की हितरक्षा करना मेरा फर्ज था।

लिहाजा मैने आपातकाल के ज्वार के साथ तैरने का फैसला नही किया। पर इसके साथ ही जयप्रकाश नारायण के आरभ किए आदोलन की थाह पाने की कोशिश जरूर की। सघ परिवार (आर एस एस) के पुराने मित्र (उनके अनुरोध पर नाम गुप्त रखे जा रहे है) मुझसे सपर्क बनाए हुए थे। उन मे से एक जो वाराणसी से थे वे पुलिस को चकमा देने मे सफल रहे थे। उनको मैने सिलीगुडी मे पाया। उन्होने मुझे 1953 मे आर एस एस मे प्रवेश दिलाया था। वह कुछ दिन मेरे घर मे मेहमान रहे। फिर आपातकाल विरोधी शक्तियो को सगठित करने के लिए असम चले गए। उन्होने मुझसे कहा कि इदिरा के हटने के बाद सघ परिवार निश्चित रूप से केद्र मे सत्ता मे भागीदारी करने का प्रयास करेगा।

दरअसल मैं उस समय कुछ भ्रमित सा था। मै इदिरा का प्रशसक था। उन्होने देश को सही रास्ते पर लाने के लिए जो कुछ कठोर कदम उठाए थे उनसे सहमत था। पर मै उनके अदालत के फैसले को न मानने और कम से कम थोडे समय के लिए किसी विश्वस्त साथी के हक मे गद्दी छोड देने मे नाकाम रहने को पसद नही करता था। मुझे सजय और उसके इर्द-गिर्द रहने वाले गुडो से नफरत थी। वह पहला दुष्कर्मी था जो भारतीय लोकतत्र को सडक पर ले आया और उसे अराजकता का चोला पहना दिया। उसके नाना ने लोकतत्र के जिस ढॉचे को खडा करने मे मदद की थी उसने उसे ध्वस्त करने के प्रयास किए।

मैं उस भीड की आतरिक क्षमता के प्रति आश्वस्त न था जो जयप्रकाश नारायण के आस-पास इकट्ठी हो गई थी न ही परस्पर विरोधी राजनीतिक शक्तियो के साथ मिलकर काम कर रहे सघ परिवार की सामर्थ्य पर मुझे विश्वास था। मै अदर से बहुत सतप्त था। क्योकि एक तरफ तो मै इदिरा गाँधी का प्रशसक था दूसरी तरफ उनकी ताजा राजनीतिक भूलो के प्रति आशकित था।

इस तरह की राजनीतिक अराजकता की स्थिति मे इदिरा गॉधी चडीगढ मे काग्रेस पार्टी का वार्षिक अधिवेशन बुलाना चाहती थी। युवा काग्रेस की कार्यकारिणी मे नियुक्त हो जाने पर

संजय गाँधी ने पार्टी के मामले वस्तुतः हथिया लिए थे। उसने राजनीतिज्ञों और प्रशासकों को आदेश देने शुरू कर दिए थे।

राज्यपाल ने मुझसे चंडीगढ़ अधिवेशन के दौरान सिक्किम राष्ट्रीय कांग्रेस के भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (आई.) के साथ विलय के औचित्य पर सलाह माँगी। उनके सवाल पर मुझे जरा भी हैरानी नहीं हुई। काजी लेहंडुप ने पहले ही इस बारे में मुझसे चर्चा की थी। मैंने उनको अनौपचारिक रूप से राय दी थी कि वह अपनी पार्टी की विशिष्ट सिक्किमी पहचान बनाए रखें। मैंने तर्क दिया था कि इससे उनकी छवि निखर सकती है और वह 'देश बेचवा' वाली तोहमत का मुकाबला करने की स्थिति में आ सकते हैं। काजी दृढ निर्णय लेने वाले लोगों में से न थे। वह दिल्ली के राजनीतिक छल-प्रपंच के भी आदी न थे। उन पर दिल्ली से दबाव था। प्रतिनियुक्ति पर आए अधिकारियों का भी उन पर विलय के लिए दबाव था। मैंने अपनी काजी से बातचीत की जानकारी दिल्ली भेजी थी और सुझाव दिया था कि सिक्किम राष्ट्रीय कांग्रेस का वजूद बनाए रखने से काजी की स्थिति को मजबूत बनाने वाले दूरगामी परिणाम होगे और इससे 'विलय' के लाभ को भी स्थायित्व मिलेगा।

यही बात मैंने राज्यपाल बी.बी लाल से कही। मेरे तर्क बहुत सीधे थे : जनता काजी और उसके विधायकों को 'देश बेचवा' और 'अलीबाबा चालीस चोर' के नाम से पुकारती थी। बाद वाली उपाधि सिक्किम विधानसभा के उन निर्वाचित सदस्यो के लिए थी जो राहजनों और छोटे चोरों से भी कुछ कम जिम्मेदार लगते थे। वे राज्यपाल द्वारा किए गए सभी फैसलों पर अपनी अनुमति की मोहर लगा देते थे और काजी मंत्रिमंडल उनको कार्यान्वित कर देता था। वे हताश थे। विलय से उनकी प्रासगिकता समाप्त हो गई थी। उनको दिल्ली के एजेटो से जो टुकडे मिलते थे वे भी बद हो गए थे। अब वे काजी और काजिनी के रहमोकरम पर थे। या फिर उनको उस लूट का आसरा था जो हाथ लग जाए। राज्यपाल और उनके साथ के लोग इन निर्वाचितों की निराशा का अदाजा लगाने में असफल रहे थे। गाँव वाले उनसे नफरत करते थे और सिक्किम की सामाजिक-राजनीतिक शक्तियों ने उनको त्याग दिया था।

काजी सरकार में सब ठीक-ठाक न था। कुछ मंत्रियों के विरूद्ध भ्रष्टाचार के गंभीर आरोप थे। मेरा तर्क था कि विलय के कारण सिक्किम की राजनीतिक शक्तियो का लोप नहीं हो जाना चाहिए। भारतीय राज्य राष्ट्र के अतर्गत राज्य हैं जो अपने विशिष्ट राजनीतिक स्वरूप और अपनी भाषाई व स्थानीय पहचान बनाए हुए हैं। काजी के कांग्रेस मे विलय से उनके अपने अस्तित्व और उनकी सिक्किम की विशिष्टता बनाए रखने की क्षमता को ग्रहण लग जाता।

मेरा कहना था कि काजी को अपनी स्वतंत्र छवि बनाने दी जानी चाहिए। मेरी राय में इससे उनको लोगों का विश्वास जीतने में मदद मिलेगी और सिक्किम के भारत में विलय की कार्रवाई के समर्थन में जनाधार बनाने में वे सफल होंगे। मेरी यह राय थी कि सिक्किम राष्ट्रीय कांग्रेस के भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (आई) के साथ विलय से राष्ट्रीय दल सुदृढ नहीं होगा न ही इससे उसकी आपात्काल से धूमिल छवि में निखार आएगा। पर यह बहुतों को पसंद नहीं आई।

राज्यपाल मुझसे सहमत नहीं हुए। उनका खयाल था कि सिक्किम राष्ट्रीय कांग्रेस के भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (आई) के साथ विलय से सिक्किम का भारत के साथ राजनीतिक एकीकरण संपूर्ण हो जाएगा। मैं इससे सहमत नहीं हुआ।

लेकिन बी.बी. लाल कोई क्षुद्र व्यक्ति न थे। वह खुशी से मुझसे असहमत होने को सहमत हो गए। उन्होंने काजी को अपनी विधानसभा के सदस्यों के साथ बागडोगरा से विमान पकड़ कर चंडीगढ़ जाने को कहा जहाँ दिसंबर 1975 में कांग्रेस का अधिवेशन होने जा रहा था। काजी गंगतोक शेर बनकर लौटे। लेकिन वह मिट्टी के शेर साबित हुए। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (आई) के साथ विलय के बाद उन्होंने सिक्किम में अपनी राजनीतिक प्रासंगिकता खो दी। राज्य की राजनीति के प्रति जागरूक जनता दिल्ली के आकाओं और उनके गंगतोक में नुमाइंदों की कथित खुशी में शरीक नहीं हुई। जनवाणी ने विक्रय की इस कार्रवाई की निंदा की। काजी लेहंडुप दोरजी खंगसारपा, जो कि सिक्कम में सबसे कद्दावर और आखिरी ईमानदार राजनीतिज्ञ थे, दिल्ली के नासमझ राजनीतिक दांव-पेंच में फंस गए और रातों-रात एक घृणित बौने बन गए।

चोग्याल ने अपनी चाल होशियारी से चली। उनके एजेंटों ने सरकार के कई महत्वपूर्ण लोगों से संपर्क करके उनको काजी के नेतृत्व के खिलाफ उकसाया। बडी बारीकी के साथ इस बात की कोशिशें की गई कि सांघा नेताओं को उनसे दूर कर दिया जाए। कुछ महत्वपूर्ण गांपा (मठों) के रिंपोचों (पवित्र धार्मिक नेताओं) के काजी और उनके सहयोगियों के कामों के अमान्य करने की खबरें फैलाई गई। नौजवान युवराज तेनजिंग नामग्याल इस अभियान के अगुआ थे। चोग्यल के कुछ कट्टर अनुयायी काजी और काजिनी द्वारा तिरस्कृत बेसब्र युवा नेता नरबहादुर खातिवाडा के गुट में जा घुसे। खातिवाडा ने नरेश के समर्थकों का एक बेमेल-सा गठजोड बना रखा था। बंगाल-बिहार सीमा से सक्रिय जयप्रकाश नारायण के कुछ अनुयायियों ने भी खातिवाडा को अपने साथ मिलाने के लिए लुभाने की कोशिश की।

दिल्ली से मिलने वाले निर्देश स्पष्ट थे। वे काजी के विरोधियों द्वारा उन्हें अस्थिर करने का कोई खेल नहीं चलने देना चाहते थे। इंटेलिजेंस की एक अच्छी-खासी खोज-बीन वाली कार्रवाई के बाद मैं खातिवाडा और उसकी आकर्षक युवा पत्नी हेमलता से मित्रता करने में सफल हो गया। मैं अक्सर देर रात को उनके देवराली वाले साधारण से घर में जाया करता या फिर वे मेरे सरकारी घर पर सूरज डूबने के काफी बाद में आते।

धीरे-धीरे मैं उस को युवा कांग्रेस के साथ अपने गुट को जोड कर राजनीतिक आधार बनाने के लिए राजी करने में सफल हो गया। मैं इसमें विश्वास तो नहीं करता था कि सजय की भारतीय युवा कांग्रेस कोई सद्गुणों की मिसाल थी। सारे देश को उसके नैतिक मूल्यों से विहीन किया जा रहा था। संवैधानिक लोकतांत्रिक मूल्यों को पैरों तले रौंद कर आए दिन अनगिनत संवैधानिक संशोधन लाए जा रहे थे या अध्यादेश जारी किए जा रहे थे। अज्ञात कारणों से इंदिरा गाँधी ने खुद को अपने बेटे के कुकृत्यों के पीछे कैद कर लिया था। लेकिन यह सत्ता का ऐसा आधार था जिसने खातिवाडा को आकर्षित किया। उसे संजय गॉधी में अवसर की खिड़की खुलती नजर आई।

जुलाई 1975 के आस-पास एक समय ऐसा आया जब मैं बहुत अवसाद से घिर गया। मुझे दिल्ली से कुछ विश्वस्त सूत्रों से पता चला कि इंदिरा और संजय आई.बी. तथा रॉ का इस्तेमाल विपक्षी नेताओं के विरुद्ध झूठी रिपोर्टें तैयार करवाने के लिए कर रहे हैं। मुझे भी आई.बी. के एक वरिष्ठ अधिकारी ने भूतपूर्व नरेश की चीन समर्थक गतिविधियों और सिक्किम में सी.आई.ए. की अपने काठमांडू व कलकत्ता के ठिकानों से की जाने वाली कार्रवाइयों की

रिपोर्ट भेजने को कहा जिससे कि मैंने इनकार कर दिया क्योंकि मुझे सिक्किम में सी.आई.ए. और चीनी गतिविधियों की कोई जानकारी न थी।

चोग्याल पर आरोप लगाने के प्रति मेरी अनिच्छा को मेरे कलकत्ता स्थित बॉस ने पसंद नहीं किया। ऊपरसे आए आदेश का पालन न करने के लिए मुझे फोन पर फटकार लगाई गई।

जब मैं इस तरह के भावनात्मक सकट से गुजर रहा था तभी सिलीगुडी से एक अप्रत्याशित फोन आया। इसने मुझे उस भीड-भाड वाले शहर मे जाने को प्रेरित किया जहाँ मैं सुकना गॉव की एक झोंपडी में अपने आर.एस एस वाले मित्र से मिला। वह असम से अपने आध्यात्मिक घर वाराणसी जा रहा था और उसे पैसे की जरूरत थी। उसने मेरे नौकरी छोड कर जे पी आंदोलन में शामिल होने के विचार का समर्थन नहीं किया।

मेरे अवसाद ने मजबूर कर दिया कि मैं आई.पी एस से इस्तीफा दे कर जे.पी. आदोलन में शामिल होने के बारे में सुनंदा से सलाह करूँ। उसने मेरी भावनाओ को समझा लेकिन कहा कि हमने परिवार बना लिया है और वह मेरी गैर-मौजूदगी में अपना और बच्चो का भरण पोषण करने का जुगाड नहीं कर सकती।

इसके बावजूद मेरा विश्वास था कि भारत को इदिरा प्रियदर्शिनी गॉधी से बढ कर गतिशील प्रधानमत्री नहीं मिला, आपात्काल के विपथगमन को छोड कर। इदिरा जैसे जटिल व्यक्तित्व को केवल उसकी गलतियों से ही नही आका जा सकता था। भारत को अपने इतिहास के गौरवशाली और अगौरवशाली क्षणों मे उनकी आवश्यकता थी। अपने आसपास के बौनो मे उनका कद सब से ऊंचा था।

जब 1976 मे आपात्काल में संजय और उसके चमचों की उच्छृखलता खुल कर सामने आ रही थी तभी गंगतोक मे एक विचित्र आगंतुक मेरे पास आया। यह पत्रकार किस्म का प्राणी था जो काजी के दरबार मे बराबर आता रहता था। उसके साथ एक गेरुए कपडो वाला स्वयभू भिक्षु भी होता था। यह पत्रकार चोग्याल के महल में भी बराबर जाया करता था। लेकिन सिक्किम के विलय के बाद इसने उसे प्लेग की तरह त्याग दिया था। वह एक समाचार और फीचर एजेंसी चलाता था। वह एक तरह का व्यापारी था जो अपने बौद्धिक सौदे को सब से ज्यादा कीमत देने वाले को बेचा करता था। मेरे पास उसके कुछ यूरोपीय-अमेरिकन देशो के राजनयिकों के साथ संपर्क की निश्चित सूचना थी। वह उनको सूचनाएँ बेचा करता था। इस तथ्य की पुष्टि दिल्ली और कलकत्ता स्थित जासूसों ने भी की थी। बाद मे इदिरा के बेटे के राज में उसने दार्जीलिंग पहाडियों में परेशानियॉ दूर करने वाले की भूमिका संभाली। उसके बाद भारतीय संसद में अपने लिए एक सीट हासिल कर ली। भिक्षु भी सत्ता की सीढ़ियाँ चढता रहा । वह संसद में प्रवेश पा गया और भारत सरकार के एक महत्वपूर्ण आयोग में उसने अपने लिए एक सीट सुनिश्चित कर ली। भारत के दरबारी किस्म के जनतत्र में इस तरह की सीढियाँ चढ़ना कोई आश्चर्य की बात नहीं। हर होशियार कुत्ते की तरह उन्होंने भी चटक धूप निकलने पर उस का आनंद लिया।

अप्रैल 1976 में किसी समय वह तथाकथित पत्रकार मेरे साधारण-से घर पर आया। उन दिनों संजय इंदिरा गाँधी के 20 सूत्री कार्यक्रम और बंध्यकरण व तोडफोड़ के कामों में व्यस्त था। उसने सिक्किम सुप्रीम विस्की के एक गिलास पर मुझे बताया कि मेरे लिए एक महत्वपूर्ण संदेश लाया है। संदेश कोई बहुत जटिल न था। मुझे सिर्फ इतना करना था कि नरबहादुर

खातिवाड़ा को युवा कांग्रेस की एक इकाई बनाने और भारत के भविष्य के प्रकाश-स्तंभ संजय गाँधी के कार्यों का समर्थन करने को राजी करूं। वह मेरे लिए एक और मौखिक संदेश भी लाया था। वह यह कि मैं भूतपूर्व चोग्याल को राजी करूँ कि वह प्रधानमंत्री को सिक्किम के विलय का समर्थन करते हुए एक पत्र लिखें जिसमें खुद को देश के सर्वोच्च नेता को समर्पित कर दें। मैंने उस फेरीवाले की बात सब्र से सुनी। फिर उसको चेहरे पर मुसकान चिपका कर और मन में तीव्र आक्रोश के साथ विदा किया।

अगली सुबह मैंने दिल्ली एक टेलेक्स संदेश भेजकर उस पत्रकार के लाए संदेश का ब्योरा देते हुए इस विषय में आदेश देने को कहा। दिल्ली ने इस पर चुप्पी साध ली। कुछ दिनों बाद मुझे एक गुप्त संदेश मिला। इसमें हिदायत दी गई थी कि मैं टेलेक्स जैसे असुरक्षित माध्यम से ऐसे संवेदनशील संदेश न भेजा करूँ। पर जो बात मैंने पूछी थी उस पर वह चुप ही रहे।

खातिवाडा को राजी करना कोई बडी समस्या न थी। शक्की मिजाज काजिनी ने काजी मंत्रिमंडल के एक मंत्री आर.सी. पोद्याल को युवा कांग्रेस का नेता बनने योग्य ठहराया था। उधर खातिवाड़ा अभी भी सिक्किम के विलय के बाद के अपने जख्मों में तडप रहा था। काजी लेहंडुप का मुंहबोला बेटा कहलाने के बाद उसने मंत्रिमडल में अपनी सीट की उम्मीद लगा रखी थी। पर काजी किसी ज्वलंत किस्म के नेपाली नेता को प्रोत्साहित करने के हक में न थे। उन्होंने अधिक आज्ञाकारी व बिना किसी आधार वाले नेताओं को वरीयता देना बेहतर समझा। बहरहाल मैं खातिवाडा को नर्म करने में सफल रहा। अंततः वह संजय गाँधी के गुट के साथ मिलने को राजी हो ही गया हालांकि यह ज्यादा दिन नहीं चला। यह 19 नवंबर की बात है जब संजय अपनी माँ के साथ उनके जन्मदिन पर गंगतोक आया था। यह किस्सा मैं बाद में बयान करूँगा।

चोग्याल जैसा दिल्ली ने सोचा था उस से कहीं कठोर निकले। उन्होंने मेरी बात को अपने पीछे बनी अवलोकितेश्वर बुद्ध की पेंटिंग के समान निर्विकार भाव से सुना।

" आप मेरे पास इस तरह का अनुरोध ले कर कैसे आए?" उन्होंने अंततः पूछा," मेरे खयाल से आप एक ईमानदार इन्सान हैं।"

"वह तो मैं हूँ," मैंने जवाब दिया," पर मैं आपके लिए संदेश लाया हूँ। आप संदेश का तिरस्कार कर सकते है, संदेशवाहक का नहीं।"

" तो फिर दिल्ली को बता दें कि मैंने संदेश का तिरस्कार किया है," उन्होंने हंसते हुए कहा," मैं संदेशवाहक का सम्मान करता हूँ।"

हम अच्छे दोस्तों की तरह विदा हुए। नौजवान युवराज मुझे छोडने बाहर तक आए।

मैंने वह सारी शाम दिल्ली के लिए एक गुप्त संदेश बनाने में बिताई। इसमें मैंने संजय को उस दरबारी के विचार को अमान्य किए जाने की जानकारी दी। दिल्ली ने हमेशा की तरह इस बारे में चुप्पी साध ली।

मुझे जो करना था मैंने कर डाला था। मैं चोग्याल के फैसले को भी गलत नहीं मान सकता था। वह अपने तईं सही थे। मेरे विचार में बिना किसी मुआवजे का पैकेज की चर्चा किए भूतपूर्व नरेश से एक औपचारिक समर्पण-पत्र की मांग करना उनकी अवमानना करना ही था। इस संवेदनशील मिशन को पूरा करने में मेरे असफल होने पर मेरे दिल्ली के बॉस खफा हुए।

मेरे पास इस तरह के भूचाल ला देने वाले मामले पर भी विचार करने की फुर्सत नहीं थी। क्योंकि घरेलू स्तर पर मेरी अपनी धरती मेरे पैरों तले बहुत जोर से डोल रही थी। सुनंदा गर्भाशय के रक्तस्राव के कारण गंभीर रूप से बीमार हो गई थी। उसे तुरंत चिकित्सा सहायता की आवश्यकता थी। बाद में उसका सिलीगुड़ी के एक अस्पताल में आपरेशन कराना पडा। इस अवसर पर भूतपूर्व चोग्याल ने पेमायांग्से मठ के रिंपोशे का मंत्रपूत खदा (रेशमी स्कार्फ) भेजा।

चोग्याल से इस मैत्रीपूर्ण आचरण से मेरे इंटेलिजेंस वाले रवैए में कोई कमी नहीं आई। वह एक उत्कृष्ट राजनयिक और जादुई करिश्मा रखने वाले व्यक्ति थे। वह अपने करिश्मे से सुई के नाके में से भी निकल सकते थे। यह और बात है कि उनकी अमेरिकन पत्नी और कुछ विदेशी राजधानियों के बेमानी शोर ने उनको गुमराह कर दिया। कई दूसरे समसामयिकों की तरह वह भी इंदिरा गॉधी की तलवार की धार का अंदाजा लगाने में चूक गए। यह उनके जीवन की सबसे बडी भूल थी। लेकिन उनको सिक्किम के छुटभैए राजनीतिज्ञों से निबटने की कला आती थी। भारत की विभिन्न जेलों में नजरबंद कुछ प्रमुख भारतीय राजनीतिज्ञों से उन्होंने संपर्क बना रखा था। इस काम के लिए उनकी महिला वकील राजकुमारी भुवनेश्वरी देवी और कलकत्ता के एक पत्रकार सपर्क-सूत्र थे।

बहरहाल मेरे एजेंटों ने मुझे चोग्याल के कठपुतली का खेल खेलने के बारे में सचेत कर दिया था। उन्होंने अपनी कुछ आजमाई हुई राजनीतिक कठपुतलियों की डोर फिर से संभाल ली थी। इनके साथ कुछ नई बदलू कठपुतलियॉं भी थीं जिन का काजी से मोहभंग हो गया था। इस नए गुट की अगुआई के.सी. प्रधान कर रहे थे। उनके पीछे-पीछे एन.के. सुबेदी, एल. बी. बासनेत और एन.बी. भंडारी थे।

एल.डी. काजी के मंत्रिमंडल में अधिकांश मंत्री अनुभवहीन थे। उनको सिक्किम जैसे सामरिक महत्व के राज्य का प्रशासन चलाने की कला का अल्पज्ञान ही था। सारा तंत्र मुख्यतः राज्यपाल के दिशानिर्देश और प्रतिनियुक्ति पर आए अधिकारियों की गढी प्रक्रिया के अनुसार ही चल रहा था।

लेकिन दिल्ली से मिलने वाले नोटो का रंग पहचानने में वे अकुशल नहीं थे। पहले की निर्धन हिमालयी रियासत में अब नोटों की बाढ आ रही थी। ये नोट दिल्ली द्वारा योजना और गैर-योजना प्रावधानों के लिए आते थे। भ्रष्टाचार के दम पर कराया गया विलय भ्रष्टाचार के गर्त में जा रहा था। राजनीतिक और प्रशासनिक दोनों स्तरों पर इसका बोलबाला था। मैंने मणिपुर और नगालैंड में आसानी से मिलने वाले धन का करिश्मा देखा था। मुझे जरा भी संदेह न था कि सिक्किम भी जल्दी ही भ्रष्टाचार के कुंड में गिरेगा।

भूतपूर्व चोग्याल उस विपथगमन को पहचानने से चूके नहीं जो काजी के निकटस्थ भ्रष्ट तरीके से अमीर हुए लोगों और दिल्ली से मिलने वाले अवसर से वंचित विधायकों व अन्य राजनीतिज्ञों के बीच की खाई को बढ़ा रहा था। उन्होंने इस गलती का बडी होशियारी से फायदा उठाना शुरू किया। सत्तारूढ दल के कुछ सदस्य और विपक्ष के कुछ मुख्य सदस्य उनके वफादारों के साथ मिल गए। उन्होंने 'देश बेचवों' से सवाल पूछने शुरू कर दिए। काजी [illegible] हो-हल्ले वाले विरोध का मुंह बंद नहीं कर पाए। उनके सलाहकारों ने उनको चोग्याल [illegible] अनुयायियों को बदनाम हो चुके आंतरिक सुरक्षा अधिनियम (मीसा) के अंतर्गत बंद

करने की सलाह दी जिसका कि इस्तेमाल देश के अन्य भागों में विपक्षी राजनीतिक आदोलनों को दबाने के लिए बिना सोचे-समझे किया जा रहा था।

मैंने दिल्ली से अनुमति ले कर भूतपूर्व चोग्याल के इस नए षडयंत्र का ब्योरा राज्यपाल बी.बी. लाल को दिया। उन्होंने तुरंत सुधार की कार्रवाई करके गलत नीतियों में आंशिक सुधार किया। एल.डी. काजी ने अपनी पार्टी के कुछ असंतुष्टों की रुपए की थैलियों से सेवा की जिसके वे सपने देख रहे थे। कुछ विपक्षियों को नागरिक कार्यों के ठेके देकर उनके भी अंधेरों को उजाले में बदल दिया। चोग्याल के 'देशप्रेम' के मुकाबले पैसे की यह भाषा उनको बेहतर समझ में आई।

सिक्किम को संभालने का छोटा काम दिल्ली में हो रही भूकप जैसी घटनाओं का प्रतिबिंब न था। फरवरी 1976 में इंदिरा ने ससद के चुनाव टाल दिए थे। वह आपात्काल के लाभ पक्का करने के लिए कुछ और समय चाहती थीं। सारे विपक्ष को सींखचों के पीछे डाल दिया गया था। देश की बागडोर कमोबेश संजय गाँधी के हाथ में थी। नवंबर 1976 में उन्होंने एक बार फिर चुनाव टाल दिए। कहा जाता है कि इस फैसले के पीछे सजय का दबाव था। बहरहाल उन्होंने अपने आपात्काल के वादे पूरे करने का काम किया। वह अपने 59वें जन्मदिन पर 19 नवंबर को गगतोक आईं। राजीव, संजय, मेनका गॉधी सोनिया गॉधी और उनके बच्चे उनके साथ थे। राज्यपाल बी.बी लाल ने उनकी मेजबानी की। यह सिक्किम के लिए बहुत बडा अवसर था। राजभवन के लॉन में दोपहर के भोज का आयोजन किया गया और विशिष्ट लोगों को इदिरा गॉधी व उनके परिवार से मिलने के लिए आमत्रित किया गया। मुझे और सुनंदा को भी कुछ अन्य वरिष्ठ अधिकारियों के साथ आमंत्रित किया गया था। मुझे इंदिरा से मणिपुर में और उसके बाद एक बार फिर दिल्ली में मिलने का अवसर मिला था। उनके गतिशील देश-प्रेम और देश के लिए कुछ अच्छा करने की अदम्य इच्छा ने मुझे प्रभावित किया था। पर मुझे आपात्काल लागू होने और उसके बाद के दमनचक्र से निराशा हुई थी।

हालांकि राजभवन के लॉन सूर्य की रोशनी मे चमक उठे थे पर मुझे उनके चेहरे पर बदली सी छाई नजर आई। केसरिया साडी में लिपटी वह कुछ चितित और अपने-आप मे खोई-सी लगीं। उन्होंने अधिक बातचीत नही की।

राज्यपाल के सचिव ने रात को आठ बजे के लगभग मुझे राजभवन बुलाया। वहॉं जाने पर उसने मुझे बताया कि संजय नरबहादुर खातिवाडा से मिलना चाहता है। इसलिए मैं खुद उसे राजभवन ले कर आऊं। उसने मुझे संजय से उसके कमरे में मिल लेने को भी कहा। मुझे यह अच्छा तो न लगा पर बच निकलने का कोई रास्ता भी न था। यहॉं मैं युवराज से अपनी पहली मुलाकात का विवरण देना चाहूँगा।

अपने कमरे में अकेला बैठा संजय मेरे आने का इंतजार कर रहा था।

"क्या तुम आई.बी. वाले हो? तुम कश्मीरी तो नही लगते?"

"जी सर, मैं आई.बी. का प्रतिनिधित्व करता हूँ। मैं बंगाली हूँ।"

"क्या धर बंगाल में भी पैदा होते हैं?"

"मुझे ठीक पता नहीं सर, कि उनका मूल वहॉं है या नहीं। पर मेरी पिछली सात पीढियॉं बंगाल में रहती आई हैं। "

संजय को यह जवाब भाया नहीं। शायद वह धर उपनाम से ही नाखुश था, क्योंकि उसके धर उपनाम वाले अपनी मॉं के मंत्रिमडल के एक मंत्री से गंभीर मतभेद थे।

मै उसकी आखो मे घृणा देखकर हैरान हुआ। ऐसा लगता था कि वह खुद से भी नाखुश है।

'तुम कब से सेवा मे हो?

बारह साल से।

ठीक है। मुझे सिक्किम के बारे मे और यहाँ परिवार नियोजन कार्यक्रम के लागू किए जाने के बारे मे बताओ।

राजनीतिक ब्योरा दस मिनट मे समाप्त हो गया। पर परिवार नियोजन कार्यक्रम के बारे मे मुझसे चूक हो गई। मै यही कह पाया कि जनसख्या के लिहाज से भूटिया और लेप्चा सवर्धन की अपेक्षित गति से बहुत पीछे थे। नेपाली भी जनसख्या के सतुलन के बिगडने का खतरा पैदा नही कर रहे थे।

क्या तुम्हारे खयाल से नेपालियो पर परिवार नियोजन लागू नही करना चाहिए?

मेरी राय मे यह राजनीतिक दृष्टि से बहुत समझ-बूझ वाला कदम न होगा। सिक्किम अभी-अभी भारत का हिस्सा बना है। नागरिकता का मसला अभी तय होना है। सिक्किम को आर्थिक विकास और भावनात्मक एकीकरण की आवश्यकता है।

क्या तुम्हारी राय मे जनसख्या नियत्रण अच्छी नीति नही ?

नही सर लेकिन सिक्किम अभी इस कार्यक्रम के लिए परिपक्व नही है।

सजय ने मुझे चलता किया और आदेश दिया कि रात के ठीक साढे दस बजे खातिवाडा को हाजिर करूँ।

मै वापस अपने कार्यालय आया। वहॉ से मैने दिल्ली फोन करके पूछा कि क्या मुझे सजय के कामो मे लिप्त होना चाहिए। डेस्क विश्लेषक ने मुझे रात को तग करने के लिए फटकार लगाई। उन्होने मुझसे कहा कि उगते सूर्य को नाराज न करने के लिए मै जो कुछ कर सकता हूँ मुझे करना चाहिए। उनका आखिरी वाक्य कुछ इस तरह था उसे नाराज करके तुम एक दिन भी ओर टिके न रहोगे।'

मुझे बात बडी अच्छी तरह समझ मे आ गई। मैने खातिवाडा को उनके देवराली वाले घर से लिया। वह सशकित न थे। उन्हे सजय से बहुत कुछ मिलने की उम्मीद थी। 1976 मे खातीवाडा बाड पर बैठे थे। इधर जाऊँ या उधर जाऊँ के चक्कर मे। वह राजनीतिक लुटेरो के गिरोह मे शामिल नही हुए थे और उन्हे भारत के साथ सिक्किम का कपटपूर्ण विलय' भी पूरी तरह हजम नही हुआ था। काजी और काजिनी के त्याग देने पर वह अपनी राजनीतिक पहचान बनाने के लिए प्रयत्नशील थे।

सजय और खातिवाडा अकेले एक कमरे मे गुप-चुप बातचीत करते रहे। मै तब तक साथ वाले कमरे मे प्रतीक्षा कर रहा था। वे कोई एक घटे के बाद बाहर निकले। सजय ने मुझे अभद्र तरीके से उगली का इशारा करके बुलाया।

'मै खातीवाडा को युवा काग्रेस का एक महत्वपूर्ण पद दे रहा हूँ। यह सुनिश्चित करो कि उनके काम मे मुख्यमत्री या कोई दूसरा बाधा न डाले।

'क्या आप इस बारे मे राज्यपाल से बात नही करना चाहेगे?'

जो मैने कहा है करो। मुझे जो करना होगा करूँगा।"

क्या आप खातिवाडा को इतना विश्वासयोग्य पद देने पर पुनर्विचार करना चाहेगे।"

संजय ने मेरी ओर घोर अविश्वास के अंदाज में देखा। उसे यकीन नहीं हो रहा था कि एक मामूली आई.बी. अधिकारी उससे इस तरह से बात कर सकता है।

"तुम्हारी क्या समस्या है?"

"मुझे कोई समस्या नहीं, सर। समस्या यह है कि सिक्किम में अभी नया प्रयोग हो रहा है। काजी को स्थिर होने और एकीकरण करने का अवसर दिया जाना चाहिए। खातिवाड़ा गरम दल के हैं और उनका मोहभंग हो चुका है। मुझे आशंका है कि वह मुख्यमंत्री को चुनौती दे सकते हैं।"

"कोई बात नहीं। मैं किसी दूसरे को मुख्यमंत्री बना सकता हूँ। अब जो मैंने कहा है वह करो।"

मैं नहीं जानता था कि उस रात मैंने भारतीय सार्वजनिक जीवन के सब से बडे धौंसिए से सवाल-जवाब करके अपनी नौकरी और गर्दन को जोखिम में डाल लिया है। बाद में मुझे राज्यपाल ने सलाह दी कि मैं कभी संजय गाँधी को इस तरह की ईमानदार राय देने का जोखिम मोल न लूँ। उन्होंने नर्मी से मुझे याद दिलाया कि एक प्रशासनिक कर्मचारी होने के नाते मेरा कर्तव्य राजनीतिक आकाओं का हुक्म बजा लाना था। मैं उनसे सहमत नहीं हुआ, न ही मैं बाद में संजय से एक और मुलाकात के दौरान सहमत हुआ। वह एक अलग कहानी है जो मैं कुछ देर बाद बयान करूँगा।

खातिवाडा ने अपने युवा कांग्रेस सम्पर्क को एल.डी. काजी के विरुद्ध एक राजनीतिक अग्निभित्ति खडी करने के लिए किया। वह हताश और धैर्यहीन व्यक्ति थे। सिक्किम का भारत में विलय करने के लिए जब राजनीतिक बावेला खडा किया गया था, उस दौरान चार नेपाली युवा नेताओं ने मुख्य भूमिका अदा की थी। इनमें से एक नरबहादुर भंडारी चोग्याल और सिक्किम के विशेष स्वरूप के तरफदार थे। वह इसके लिए लडे और उन्होंने भारतीय सुरक्षा बलों के हाथों अपमान और यातनाएँ सहीं। बहुत बाद में वह बदल गए और उन्होंने अपने आदर्श आर्थिक लाभ की लालसा को समर्पित कर दिए।

अन्य तीन नेपाली युवा नेता, आर.सी. पोद्याल, एन.के. सुबेदी और नरबहादुर खातिवाडा ने एल.डी. काजी के नेतृत्व वाले लोकप्रिय आंदोलन का समर्थन किया। इसका उद्देश्य औपाधिक राजशाही के अंतर्गत प्रजातंत्र को बहाल करना था। उन्होंने कभी भी सिक्किम की पहचान समाप्त करने का सौदा नहीं किया था।

एन.के. सुबेदी कुछ रहस्यमय किस्म के युवा थे। काजी के हाथ में युवाओ की जो तिकडी थी, वह उन में सब से महत्त्वपूर्ण थे। सुबेदी ने मूलतः सिक्किम के भारत में विलय के विचार का विरोध किया था। मिंटो गाँव में स्थापित हो जाने के बाद काजी और काजिनी ने उनको हटा दिया। आर.सी. पोद्याल काजी और काजिनी के कृपापात्र बने रहे। वह बहाव के साथ तैरने का फैसला करने के समय तक उनके मंत्रिमंडल में मंत्री बने रहे। वह अपेक्षाओं पर खरे नहीं उतरे और राजनीतिक व व्यक्तिगत जीवन दोनों में भटकाव में आ गए।

खातिवाडा काजी के दत्तक पुत्र मशहूर थे। वह 'क्रांति' की अनोखी चिंगारी के समान थे। उनमें आग लगाने की अद्‌भुत विशेषता थी। लेकिन किसी भी क्रांति की अनियंत्रित चिंगारी की तरह वह भी उसी आग में जल गए। वह अपने अंदर की आग को नियंत्रित नहीं रख सके। वह भी सिक्किम की अनोखी पहचान के नष्ट होने के हक में नही थे। लेकिन दो दुर्दम्य महिलाओं, इंदिरा और एलाइजा मारिया, ने काजी को शेर पर सवार कर दिया था और वे समझ

नहीं पा रहे थे कि उस पर से उतरें कैसे। दिल्ली से आने वाली धारा के साथ तैरने के सिवा उनके पास कोई चारा नहीं था। वह हर चीज के लिए दिल्ली का मुंह जोहते थे। उन्होंने उन नेपाली शक्तियों की अवहेलना करनी शुरू कर दी जिनमें उनके कार्यों को चुनौती देने की क्षमता थी।

खातिवाडा को भी खट्टी छंग की तरह छोड दिया गया था।

संजय के निकट आने से खातीवाडा को वह ईंधन मिल गया जिसकी उन्हे बडी जरूरत थी। उनका विचार था कि इससे वह अपनी बुझी चिंगारी फिर सुलगा सकेंगे। उन्होंने सोचा कि अब वह उन दो राजनीतिक सितारों के मुहताज नहीं रहे–एक तो काजी और काजिनी, दूसरे शक्ति का स्रोत राज्यपाल व उनके वफादार प्रशासक। उन्होंने युवा कांग्रेस के झडे तले एक राजनीतिक अभियान छेड दिया जिसने काजी के राजनीतिक आधार की जडें खोद डालीं। वह सत्ता के वैकल्पिक आधार की तरह उभरने लगे। इससे अनेक बाड पर बैठने वालों का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट हुआ। सजय और दिल्ली स्थित मेरे वरिष्ठ अधिकरी इस बात को नहीं समझ रहे थे कि काजी के कमजोर पडने का अर्थ होगा चोग्याल समर्थक शक्तियों का मजबूत होना।

काजी को उनकी सिक्किम राष्ट्रीय काग्रेस के भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (आई) के साथ विलय के लिए बाध्य करना भी एक और बडी भूल थी।

‹15›

जनता की जीत विदूषकों की हार

अनेक जनसमूह अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाते। किसी मूर्खतावश नहीं न ही सिद्धांत-दोष के कारण। बल्कि अपने आंतरिक क्षय और जडता के कारण। उनके जोड सख्त हो जाते हैं। वे लीक में फंस कर अधोगति को पहुँचते हैं।

जेम्स गार्डनर

मैं दक्षिणी प्रायद्वीप में कुछ दिन छुट्टी मनाने के बाद 23 जनवरी 1977 को गगतोक लौटा। मुझे आई.बी. का संदेश मिला था कि छुट्टियाँ कम करके तुरंत अपने स्टेशन पहुंचूँ। प्रधानमंत्री ने 18 जनवरी को फैसला किया था कि 17 मार्च 1977 को संसद के चुनाव कराए जाएँ। यह आदेश इसी वजह से आया था। मेरे सहयोगियों ने बताया कि उन्होंने यह फैसला संजय के प्रत्यक्ष विरोध और उनके अक्लमंद सलाहकारों के अनुमान के विरुद्ध लिया था। उन्होंने अधिकांश राजनीतिक कैदियों को रिहा करने के आदेश भी जारी कर दिए थे। यह साहसपूर्ण निर्णय था। एक अरसे के बाद अपने बेटे के सामने सज्ञाशून्य हो कर आत्मसमर्पण कर देने के बाद उन्होंने सत्य का सामना करने का निर्णय लिया था। यह उनके भारत की जनता और लोकतंत्र में अटूट विश्वास का प्रत्यक्ष प्रमाण था। इंदिरा ने स्पष्ट रूप से समझ लिया था कि उनका हमेशा के लिए आपात्काल लगाए रखना न केवल देश के लिए संकट लाएगा बल्कि उनके नाश का भी कारण बनेगा। संजय पर अपनी निर्भरता से वह भयभीत होने लगी थीं। यह शायद उस चुडैल की कहानी की तरह था जो एक दिन आईने के सामने खडी हुई तो एहसास हुआ कि वह चुडैल नहीं है। वह लोकतंत्र की देवी थीं। वह एक द्रष्टा की पुत्री और समृद्ध विरासत की मशालधारिणी थीं। उनके इस आत्मबोध ने उनको समृद्ध भारतीय लोकतंत्र को स्थायी क्षति पहुंचाने के खतरनाक रास्ते पर जाने से रोका। यह साहसपूर्ण निर्णय लेकर उन्होंने मेरे जैसे कई संशय में पड चुके लोगों का मन जीत लिया।

लेकिन राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद के निधन और जगजीवनराम के उनके मंत्रिमंडल से त्यागपत्र दे कर कांग्रेस फार डेमोक्रेसी के नाम से अलग पार्टी बना लेने से इंदिरा की परेशानियाँ और बढ़ गईं। उनकी बुआ विजयलक्ष्मी पंडित और उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री हेमवतीनंदन बहुगुणा भी उनके साथ हो गए थे। लोहे का झूठा कवच पहनने वाला संजय बालू की भीत की तरह ढह गया। उसकी शक्ति का स्रोत उसकी माँ थीं जिन्होंने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया था। एकबारगी ऐसा लगा कि कट्टर जनतांत्रिक जवाहरलाल नेहरू की बेटी और महात्मा गाँधी की अनुयायी इंदिरा फिर से अपने पैरों पर खडी हो गई थीं।

मैंने उनके इस साहसपूर्ण कदम की सराहना की। मैंने एक व्यक्तिगत पत्र लिख कर उनको इस साहसपूर्ण निर्णय के लिए धन्यवाद दिया। उनके सहायको ने मुझे कुछ नहीं बताया कि उस पत्र का क्या हुआ। मैं इसकी उम्मीद भी नही रखता था। मै तो 1971 की दुर्गा का नव अवतार देखना चाहता था।

क्या संजय के पास अपनी माँ को ब्लैकमेल करने का कोई गुप्त हथियार था? मुझे ऐसी कहानियों पर विश्वास न था। यह सोचना हास्यास्पद ही होगा कि संजय के पास कोई इस तरह की कलंकित कर देने वाली सामग्री थी जिसका इस्तेमाल वह अपनी माँ की राजनीतिक आकांक्षाओं को अशक्त करने के लिए कर रहा था।

मैं इस बारे में कुछ देर बात चर्चा करना चाहूँगा।

फिर से सिक्किम की बात करें तो वहाँ काजी सरकार और कांग्रेस की हालत पतली ही थी। सिक्किम की प्रजा और नागरिकता के सदा से चले आ रहे मसले ने संख्या में ज्यादा नेपालियो और राजनीतिक दृष्टि से बेहतर भूटियों और लेप्चा की छिपी कटुता को सामने ला दिया था। काजी ने नेपाल से आकर बसे हर ऐरे-गैरे को नागरिकता न देने का मन बना लिया था। वह सिक्किम की प्रजा की सूची के शब्दों और भावना का अनुसरण करना चाहते थे।

जब वह काजी के विश्वासपात्र थे तब भी नरबहादुर खातिवाडा ने नेपालियो के अधिकारों के लिए आवाज बुलंद की थी। उनके नेपाली रुझान ने ही उनको काजिनी से दूर किया था। पर खातिवाडा ने अपने युवा कांग्रेस मंच का इस्तेमाल किसी भी अन्य नेपाली नेता से बढ कर नेपाली हितों के समर्थन के लिए किया। लेकिन सिक्किम क्राँति के इस दमकते स्फुलिंग के दिमाग में और ही कुछ था। जगजीवनराम के इदिरा का साथ छोडने के कुछ ही पहले , काजी ने मुझे अपने कार्यालय में बुलाया। वह खातिवाडा को अपने मंत्रिमंडल मे शामिल करने के बारे में मेरी राय जानना चाहते थे। लेकिन खातीवाडा आर सी. पोद्याल, बी पी. दहल और यहाँ तक कि पार्टी के वरिष्ठ नेता एस.के राय के लिए भी किसी अभिशाप से कम न थे। वे उनको मंत्रिमंडल में शामिल किए जाने के विरुद्ध थे। जिन प्रतिनियुक्ति पर आए प्रशासकों के विरुद्ध खातिवाडा खुल कर बोले थे वे भी इस विरोध को बल दे रहे थे। पर मैंने इस विचार का समर्थन किया और काजी को सलाह दी कि वह खातिवाडा को मंत्रिमडल में शामिल करके पार्टी में होने वाले विभाजन को टाल सकते हैं। मैंने काजी के साथ अपने विचार-विमर्श की रिपोर्ट दिल्ली भेजी और राज्यपाल को भी इसकी जानकारी दी।

पर एलाइजा मारिया और उनके मंत्रिमंडल के कुछ सहयोगियों ने काजी को ऐसा करने से रोक दिया। मुझे बताया गया कि राज्यपाल भी इस विचार के विरुद्ध थे। जगजीवनराम के कांग्रेस फार डेमोक्रेसी बना लेने के कुछ दिन बाद एक दिन आधी रात को नरबहादुर खातिवाडा मेरे घर पर आए। उन्होंने बताया कि वह कांग्रेस छोड़ कर जगजीवनराम की पार्टी में शामिल होने जा रहे हैं। वह उनके बेटे सुरेश और कुछ अन्य विद्रोही काग्रेसी नेताओं के संपर्क में थे। मेरा उनके राजनीतिक फैसले से कोई वास्ता न था। मुझे चिंता उस संबंध की थी जो मैंने पिछले दो सालों की मेहनत से उनके साथ बनाया था। हमने अपना संबंध बिलकुल पेशे के आधार पर बनाए रखा और उनकी राजनीतिक कलाबाजी का मेरे कार्य की उपलब्धियों पर कोई असर नहीं पड़ा।

पर बाज न आने वाले पुलिस कमिश्नर ने खातिवाडा पर निगरानी बैठा रखी थी और वह इस तूफानी हस्ती से मेरे संबंधों से खुश नहीं थे। उन्होंने मुझे अपने दफ्तर बुलाकर सफाई

पेश करने को कहा। उनकी ढिठाई देख कर मैं दंग रह गया। खुराना पियक्कड तो थे ही। पर मुझे यह देख कर हैरानी हुई कि उन्होंने अपने पेशे की सूझ-बूझ भी खो दी थी। मैं उनको खरा-खरा जवाब दे कर चला आया कि मेरे पेशे के लोगों से मेरे संबंध उनकी पुलिसिया कार्रवाई के दायरे में नहीं आते।

खातिवाडा अपने दावे पर खरे उतरे। उन्होंने विधानसभा के अपने तीन सदस्यो के साथ काजी को छोड दिया। इससे 32 सदस्यो के सदन मे सत्तारूढ दल की सख्या घट कर 28 हो गई। के सी प्रधान सिक्किम की राजनीति मे सबसे बढ कर अस्थिर नेता थे। वे खातिवाडा से जा मिले। काग्रेस फार डेमोक्रेसी ने बहुत सी रैलिया करके इदिरा गॉधी की आलोचना की।

मुझे खातिवाडा के इस कायापलट पर जरा भी आश्चर्य न हुआ। वह राजनीतिज्ञ ही क्या जो कुछ ऊँची छलागें न लगाए , कुछ गुलाटियॉ न मारे और पलटियॉ न खाए। वह रग बदलने वाले पहले सिक्किमी राजनीतिज्ञ न थे।

काजी को उस समय एक और राजनीतिक परिवर्तन का सामना करना पडा जब सिक्किम के राष्ट्रवादी व चोग्याल के भूतपूर्व वफादार नरबहादुर भंडारी ने 22 मार्च 1977 को एक नई पार्टी बना ली। भडारी ने अपने सिक्किम प्रेम और 'देश बेचवा' के विरुद्ध घृणा को एकाकार कर लिया।

17 मार्च के चुनावों मे काग्रेस का सफाया हो गया और उसमे सजय व इदिरा को व्यक्तिगत हार का सामना करना पडा। संजय की गलत सलाह और बुरे प्रभाव के चलते आपातकाल में उन्होंने जो कुछ किया उसके बाद किसी आशावादी ने भी इदिरा के जीतने की उम्मीद नही रखी थी। भानुमती का पिटारा जनता पार्टी वह दल नहीं था जिसकी कल्पना जयप्रकाश नारायण ने की थी। इदिरा के शासन का स्थान भूखे राजनीतिज्ञों की एक और टीम ने ले लिया था। वे इदिरा से नफरत करो, इदिरा को खत्म करो, यही राष्ट्रीय कार्यक्रम बना पाए थे। उन्होंने ने भी प्रातीय सरकारो को बर्खास्त करने और नए चुनाव कराने के आदेश देन का काग्रेस का तरीका अपनाया। यह भारतीय लोकतंत्र के लिए बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण प्रक्रिया थी जिसमें वह जकड गया था। इदिरा ने यह प्रक्रिया 1958 मे केरल से शुरू की थी। जनता के मसीहाओं ने प्रतिशोध की भावना के साथ उसका अनुकरण किया।

सिक्किम एक छोटा-सा राज्य था। इसकी केवल एक ससद की सीट भारत के राजनीतिक भाग्य पर कोई असर नही डाल सकती थी। लेकिन जनता सरकार के ओझाओं की जिद थी कि सिक्किम की सरकार भी गिरानी चाहिए। काजी लेहडुप के पास दो विकल्प थे। या तो वह आयाराम-गयाराम का खेल खेलते और अपने दलबल के साथ जनता पार्टी मे शामिल हो जाते, या फिर बर्खास्तगी झेलते।

काजी लेहंडुप ने मुझे फोन करके रात 11 बजे उनके घर पर मिलने को कहा।

" मुझ पर जनता पार्टी में शामिल होने के लिए दबाव डाला जा रहा हैं," उन्होंने अपने शयनकक्ष के एकांत में बात खोली, " मुझे क्या करना चाहिए?"

" आप पर कौन दबाव डाल रहा है?"

" सभी," काजी ने आगे कहा ," यहाँ राज्यपाल और कुछ दूसरे अधिकारी और दिल्ली से मधु लिमए और जार्ज फर्नान्डिस।"

" आप क्या सोचते हैं?"

"मैं तो सोचता हूँ कि मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए। पर राज्यपाल का कहना है कि सिक्किम केंद्र की सहायता और अनुदान का मुहताज है। अगर मैं जनता पार्टी में शामिल होने से इनकार करता हूँ तो मेरी जनता भूखों मर जाएगी।"

मैंने काजी से गोपनीयता बनाए रखने का वादा लेकर कहा कि उन्हें फिर से दलबदल नहीं करना चाहिए।

"खातिवाडा बहुगुणा और जगजीवनराम के साथ हैं। वे मेरी सरकार गिरा कर उसे मुख्यमंत्री बना सकते हैं।"

काजी सीधासीधा सोच रहे थे।

मैं निश्चित तौर पर नहीं कह सकता कि उस रात काजी को प्रेरित कर पाया था या नहीं। अगली सुबह मैंने अपना आकलन दिल्ली भेज दिया। जवाब में डेस्क विश्लेषक का लाइटनिंग काल आया। कुछ आवश्यक विचार-विमर्श के लिए मेरी मौजूदगी तुरंत चाहिए। मुझे केंद्रीय गृहमंत्री के सामने पेश किया गया। वह पश्चिमी उत्तर प्रदेश के एक तपे हुए महत्वाकांक्षी जाट थे। उन्होंने मेरी तरफ देखा, बैठने की अनुमति देने की मेहरबानी की और फिर एक ही वाक्य बोला।

"काजी को मेरी पार्टी में शामिल होने के लिए राजी करो।"

बातचीत यहीं खत्म हो गई। मैंने बागडोगरा के लिए वापस विमान पकडा और घर जाने से पहले काजी के यहाँ गया। वहा समस्याएं निबटाने वाला पत्रकार, भिक्षु और कुछ ऐसे ही दूसरे लोग उन्हें घेरे हुए थे। मैंने उनको एक तरफ बुला करकेंद्रीय गृहमंत्री की इच्छा की जानकारी दी। काजी ने अपनी बडी-बडी आंखों से मेरी तरफ देखा और नेपाली में एक गूढ़ वाक्य कहा।

इसका मतलब यह था कि वह-दिल्ली की बात मानेंगे। पर उनको दुख इस बात का था कि दिल्ली उनको फुटबाल की तरह इधर से उधर ठोकर मार रही थी।

अंततः राजनीतिक व्यभिचार की एक अनोखी मिसाल कायम करते हुए काजी ने कांग्रेस की सिक्किम इकाई का जनता पार्टी में विलय कर दिया। इसने उनके विरोधियों को उनका ताबूत तैयार करने का अच्छा-खासा मौका दे दिया। राज्य विधान सभा के अगले चुनावों के दौरान उस ताबूत में अंतिम कीलें जडी गईं। काजी को राजनीतिक विस्मृति के हवालेकर दिया गया।

काजी ने 1981 में एक बार फिर मुझ से इंदिरा गाँधी से मुलाकात करवाने के लिए कहा। वह दोबारा कांग्रेस मे लिए जाने की याचना करने के लिए घंटों लाइन में खड़े रहे। इंदिरा गाँधी ने उनसे मिलने और उनको घास डालने से सिरे से मना कर दिया। स्वतंत्र निर्णय लेने की अक्षमता ने काजी लेहंडुप दोरजी को सदा के लिए राजनीतिक विस्मृति के गर्त में गिरा दिया। वह नहीं जानते थे कि भगोड़ों को दोबारा साथ मिलाना इंदिरा गाँधी के स्वभाव में नहीं है। उनके लिए वफादारी किसी भी अन्य गुण से अधिक महत्व रखती थी।

काजी के जनता पार्टी में शामिल होने से नरबहादुर खातिवाड़ा भौचक्के रह गए थे। उन्होंने अपनी पार्टी की पहचान बनाए रखने के लिए उसका सिक्किम प्रजातंत्र कांग्रेस नाम रख दिया। उन्होंने कांग्रेस (आई.) के नेताओं को प्रस्ताव भेजने भी शुरू किए। लेकिन इंदिरा के सलाहकारों ने राज्य यूनिट को समाप्त करना बेहतर समझा।

जनाधार का समर्थन खो देने के बाद काजी और भी ज्यादा राज्यपाल व उन अधिकारियों पर निर्भर रहने लगे जो खुद अपना अस्तित्व मुख्यमंत्री से जुडकर बचाना चाहते थे। मुझे यह दुर्दशा देख कर दुख हो रहा था। पर मैं दिल्ली के अपने वरिष्ठ सहयोगियों को इसके लिए प्रेरित करने को अधिक कुछ न कर सका कि राजनीतिक नेतृत्व में सुधार के लिए सुझाव दिए जाएँ। जनता नाम के अहंकारी जमावडे ने तो अपने आप को एक ही काम मे व्यस्त कर लिया था–इंदिरा को मिटा दो और उनके सहयोगियों को सजा दो।

सिक्किम में स्थिति सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व तथा नेपाली, भूटिया और लेप्चा मूल के लोगों के आनुपातिक प्रतिनिधित्व के पुनर्निर्धारण के मुद्दे को लेकर और भी खराब हो गई थी। भारतीयों की वह नई नस्ल जिसने सिक्किम की राजनीतिक व सामाजिक कोशिकाओं में प्रवेश करना शुरू कर दिया था, वह भी सिक्किमी नागरिको के बराबर के अधिकार मॉगने लगी थी। काजी अंदर से अल्पसंख्यक भूटिया, लेप्चा और जांग को मिलने वाले विशेष प्रतिनिधित्व को समाप्त करने के खिलाफ थे। भारतीय प्रशासकों की सोच नेपालियों के भारत में बेरोक-टोक आने के खतरे व दार्जलिंग की पहाडियों में हो रहे आदोलन से प्रभावित थी।

काजी बहुत हद तक मुझ पर निर्भर थे। पर आई.बी पर बदली स्थिति का जो प्रभाव पडा था उसके कारण मेरी क्षमता बहुत सीमित रह गई थी। आई बी के लिए इदिरा ही एकमात्र समस्या थी। इंदिरा और उनके निकटवर्तियों पर पूरी नजर रखी जा रही थी। उनके फोन सुने जाते थे। पत्र खोले जाते थे। उनका पीछा किया जाता था और उनके मित्रों व जानपहचान वालों से पूछताछ की जाती थी। जनता सरकार ने उसी निर्ममता के साथ आई.बी. का इस्तेमाल किया जिस निर्ममता के साथ इंदिरा गॉधी ने आपात्काल में उनके विरूद्ध किया था। आई बी. वालो को अपने साथी बदलने में जरा भी हिचक न हुई। मुझे संगठन के इस व्यवसायगत व्यभिचार को देख कर सिहरन होने लगी। जो अधिकारी कुछ महीने पहले इंदिरा के रास्ते की धूल साफ करने को दौडे आते थे वे अब कैसे उन्हे अग्निदड पर जिंदा जलाने को तैयार हो सकते थे? इसका जवाब कोई बहुत मुश्किल न था। आई.बी. किसी पद्धति के नियत्रण मे काम नहीं करती थी। यह तो एक विभाग था जो प्रधानमत्री और गृहमत्री की व्यक्तिगत निगरानी में काम करता था। इसलिए संगठन के पास पासा पलटने के सिवा कोई चारा न था।

मैंने राज्यपाल और काजी को उस कुचाल के बारे में जानकारी देनी जारी रखी जो प्रधानमंत्री मोरारजी भाई के सिक्किम के बारे मे अलोकप्रिय वक्तव्य के बाद चली जा रही थी। कुछ अज्ञात शक्तियों के प्रभाव में आ कर विधायकों ने सिक्किम के विलय के विरूद्ध मतदान की माँग करनी शुरू कर दी। ठीक उसी तरह जैसे 1975 में विलय के पक्ष में मॉग की गई थी।

मैं यह देख कर हैरान था कि आई.बी. के वरिष्ठ कर्णधार चोग्याल और उनके चिंतकों के नए खेल के प्रति तटस्थ बने हुए थे। 'स्वाधीनता' के समर्थकों की गतिविधियों पर नजर रखने के उद्देश्य से मैंने दिल्ली और कलकत्ता दोनों से अनुरोध किया कि मुझे चुनिंदा लोगों के फोन सुनने और डाक खोल कर देखने आदि के लिए सुविधाएँ प्रदान की जाएँ। मैंने माइक्रो टेप रिकार्डरों और रेडियो माइक्रोफोन की जरूरत पर भी जोर दिया। इस अनुरोध को छूटते ही अस्वीकार कर दिया गया। इलेक्ट्रानिक उपकरणों के अभाव में मेरा इंटेलिजेंस एकत्र करने का प्रयास एजेंटों की क्षमता तक सीमित रह गया।

विलय की प्रीत का वातावरण खत्म हो चुका था। विघटनकारी शक्तियों ने नई दरारें डालनी शुरू कर दी थीं। उनमें से कुछ जनता गठबंधन के दिशाहीन और लक्ष्यहीन नेताओं के संपर्क मे थे। भूतपूर्व चोग्याल ने अपने पत्ते सावधानी से फेंटने शुरू कर दिए थे।

मुझे सिक्किम के विलय के सही या गलत होने पर निर्णय लेने का कोई हक न था। 1974-75 में राजनीतिक नेतृत्व ने जो भी किया उसे मिटाने का जरिया भी मैं न था। मैं तो सिक्किम में राज्य की सुरक्षा के बारे में गुप्त सूचनाएँ एकत्र करने और चीनी सीमा के साथ-साथ प्रति-गुप्तचरी की कार्रवाई करने का जरिया था। यह समझ लेने पर कि दिल्ली ने अपना आचरण बदल लिया है, मैंने अपने-आप को ईमानदारी से रिपोर्ट भेजने तक सीमित कर लिया।

1977 की दीपावली के आस-पास अस्थिरता का नाटक अपने चरम पर पहुँच गया। मेरे एजेंटों ने खबर दी कि काजी की जनता पार्टी के चार मंत्रियों सहित 11 विधायक दल बदल कर सरकार गिराने के कगार पर हैं। उनकी योजना के दो मुख्य पहलू थे वैकल्पिक सरकार बनाना और बहुमत से एक प्रस्ताव पास करके ' सिक्किम के भारत में कपटपूर्ण विलय ' को निरस्त करना। चोग्याल समर्थक कुछ तत्वों ने यह अफवाह फैलानी भी शुरू कर दी कि राज्य विधानसभा के विलय को निरस्त कर देने के बाद नए सार्वभौम सिक्किम को कुछ अंतर्राष्ट्रीय शक्तियाँ मान्यता देने वाली हैं। सिक्किम के निरक्षर लोग इस मुहिम से गुमराह हो रहे थे। मैंने यह जानकारी दिल्ली और कलकत्ता भेजी और निर्देश का इंतजार करता रहा। कोई निर्देश नहीं आया।

शाम को 7 बजे के लगभग मुझे राजभवन से फोन आया। मुझे तुरत राज्यपाल से मिलने को कहा गया था। राज्यपाल बी.बी. लाल अपने भव्य कार्यालय में पहले से ही बैठे थे। वह देवे मनावलन के साथ राजनीतिक अस्थिरता पर चर्चा कर रहे थे। राज्यपाल के पूछने पर मैंने उनको जो भी खबर मेरे पास थी, बता दी। मैंने उनको यह भी बता दिया कि लगभग 12 विधायक राजधानी में किसी गुप्त स्थान पर इकट्ठे रखे गए हैं। यह एक तरह का कार्रवाई शिविर था। इसका उद्देश्य उन विधायकों को प्रेरित करना, मत्रियों के विभागों के निर्धारण को अंतिम रूप देना और रुपयों की थैलियाँ बाँटना था।

राज्यपाल ने पुलिस कमिश्नर को बुलाकर 'शिविर में रखे गए' विधायकों को मुक्त कराने के लिए कहा। मैंने उनसे अनुरोध किया कि इस मामले पर पुलिस कमिश्नर के सामने चर्चा करने के लिए मुझे विवश न किया जाए। लेकिन उन्होंने जिद की कि मैं सारी जानकारी खुराना को दूँ। मुझे ऐसा करना पडा।

राज्यपाल चाहते थे कि मैं ' शिविर में रखे गए ' विधायकों की मुक्ति के लिए पुलिस की सहायता करूँ। मैंने मना करते हुए कहा कि मैं ज्यादा से ज्यादा यह कर सकता हूँ कि उस जगह को देवे मनावलन को दूर से दिखा दूँ और उसके बाद की कार्रवाई वह खुद कर सकते हैं। यह समझौता मान लिया गया। देवे मनावलन पश्चिम बंगाल से आए सबसे पुराने प्रतिनियुक्त अधिकारियों में से थे। उनके सिक्किम के राजनीतिज्ञों और प्रशासकों से बहुत अच्छे संबंध थे। वह अत्यंत ईमानदार और कुशल अधिकारी थे। मैं विधायकों को मुक्त कराने में सहायता करने के बाद घर लौट आया और दिल्ली को उस शाम की गतिविधियों की सारी जानकारी दी।

दीवाली से पहले की रात परपरा से अंधविश्वासी भारतीयों के लिए जुआ खेलने की वेला होती है। इसके लिए लालायित जुआरी ऐसी कई माँदों में इकट्ठे होते हैं जहाँ शराब बड़ी

उदारता से बहाई जाती है। गंगतोक भी इसका अपवाद न था। पर मनावलन के साथ मुलाकात वाला काम पूरा करने के बाद मैं परिवार के साथ रात का भोजन करने और विश्राम करने के लिए घर आया। हमारे बडे बेटे को खसरा निकल आया था। सुनंदा को भी बुखार था। मैं त्योहार की शाम उनके साथ बिताना चाहता था।

लेकिन मेरे भाग्य में दीवाली से पहले की शांतिपूर्ण रात नहीं लिखी थी। खुराना ने मुझे फोन करके पूछा कि मैंने उनको राज्यपाल को जानकरी देने से पहले दल-बदल की सूचना क्यों नहीं दी थी। वह हमेशा की तरह नशे में धुत थे और जो कुछ कहना चाहते थे वे शब्द भी उनके मुंह से मुश्किल ही निकल रहे थे। खुराना किसी संदेश को शालीनता के साथ स्वीकार करने वालों में से न थे। वह हर 10 मिनट के बाद मुझे फोन करते रहे और मुझे गालियाँ बकने पर उतर आए।

खुराना ने बडे हो-हल्ले के साथ मेरे घर पर धावा बोला। वह रात का गर्म गाउन पहने थे। उनके हाथ में पिस्तौल थी। वह हगामा करते हुए मेरे घर पर आए और दरवाजा खोलने को कहा। उन्होंने सी.आर.पी एफ के सशत्र रक्षक को एक तरफ धकेला और जोर-जोर से दरवाजा पीटने लगे।

संकट को भॉप कर मैं ने उसी परिसर मे रहने वाले अपने स्टाफ के सदस्यों को फोन किया। वे मेरी सहायता के लिए भाग कर आए। मैंने के एम लाल और मनावलन से अनुरोध किया कि वे मेरे घर पर आ कर नशे में धुत पुलिस प्रमुख को शांत करें।

मेरे दरवाजा खोलने पर खुराना बाहरी बरामदे मे तेजी से घुसे। उनके पीछे-पीछे एक पुलिस का डी एस पी था। उसका काम जब तक आधी रात के बाद उस का चीफ सो न जाए उस के साथ रहना होता था। उस युवा भूटिए ने माफी मॉगी और मुझसे मदद करने का आग्रह किया। सुनदा ने खुराना से अनुरोध किया कि वे आराम से बैठ जाऍं और धीमे स्वर में बात करें क्योंकि हमारे बेटे को तेज बुखार था। लेकिन नशे में धुत पुलिस प्रमुख चिल्लाते रहे और उनके उच्च पद की अवहेलना करने के लिए मुझे गालियॉ देते रहे। यह हमारा सौभाग्य था कि लाल और मनावलन पाच मिनट में ही हमारे घर पहुंच गए । वे चुपचाप खुराना के पीछे खडे हो गए। उनको देखते ही वह बरामदे से बाहर भागे और एक सीढी से टकराए। हम ने उनको संभाला और उस कार में बैठने में उनकी सहायता की जिसमें वे हमारे घर पधारे थे।

पुलिस कमिश्नर की इस उद्दंडता से मैने और सुनदा ने बहुत अपमानित महसूस किया। वह तो सामान्य सामाजिक शिष्टाचार भूल गए थे। अगली सुबह ही मैं और सुनंदा राजभवन गए और राज्यपाल को खुराना के शरारतपूर्ण व आपत्तिजनक व्यवहार की उनको जानकारी दी। मैंने उनको स्मरण दिलाया कि राज्य के प्रमुख होने के नाते उनको सुरक्षा और स्थिरता संबंधी इंटेलिजेंस प्राप्त करने का पूरा अधिकार है लेकिन उनके पुलिस कमिश्नर मुझ से इस तरह की माँग करके बच नहीं सकते। इसके बाद मैंने इस बारे में एक लिखित शिकायत आई. बी. के निदेशक को की और उसकी एक प्रति राज्यपाल को भी भेजी। इसके बाद मेरा खुराना से राजकीय और सामाजिक संबंधों का अंत हो गया।

राज्यपाल ने मेरी बात को बखूबी समझा और दिल्ली ने भी मेरा समर्थन किया। खुराना का कहीं बाहर तबादला कर दिया गया। मैं अपने कोहिमा के भूतपूर्व बॉस एम.एन. गाडगिल के नए पुलिस प्रमुख के रूप में नियुक्त होने में सहायक सिद्ध हुआ। मैंने अपने अधिकार क्षेत्र

से बाहर जाकर उनके लिए सपर्क साधे। वह अपने राज्य काडर को वापस भेजे जाने के कगार पर थे। उनका अगला बडा ओहदा पाने का कोई मौका नही था। उन्होने कलकत्ते मे मुझे गगतोक भेजने के लिए सहायता की थी। मैने मुख्यमत्री और अत्यत सज्जन राज्यपाल को प्रभावित करने और उनके काम आने के लिए काफी कुछ किया।

राज्य और केद्र के गुप्तचर तत्र के जटिल सबधो और गुप्त सूचनाओ के आदान-प्रदान के आचार का गहराई से विश्लेषण करने की आवश्यकता है। कुछ पुलिस प्रमुख केद्रीय इटेलिजेस से आशा रखते है कि वह उनके स्थानीय हितो के लिए काम करे जो आमतौर पर राज्य के राजनीतिज्ञो की जरूरतो पर आधारित होते हैं। मैने मणिपुर मे भी ऐसी स्थिति का सामना किया था। वहॉ हताश और निकम्मे पुलिस आई जी ने मुझ पर और मेरे मातहतो पर निगरानी रखनी शुरू कर दी थी। भ्रष्ट मुख्य आयुक्त बालेश्वर प्रसाद ने उसे उकसाया था।

बहरहाल सिक्किम का मामला उससे भिन्न था। यह राजनीतिक प्रयोग की नई प्रयोगशाला थी। राज्यपाल एक अनुभवी और सतुलित व्यवहार वाले प्रशासक थे। उनको एक बेहतर पुलिस प्रमुख मिलना चाहिए था जो खुराना नही थे। उनकी मॉग उस अडिग कदम का उल्लघन करती थी जिस पर डटे रहने का प्रशिक्षण एक गुप्तचर अधिकारी को दिया जाता है और जो उसका नैतिक कर्तव्य भी होता है। गुप्त सूचनाओ को बाटना और उससे इनकार करना एक कला है जो समय के साथ सीखी जाती है। पर कुछ बैल बैलगाडी और चीनी मिट्टी के बर्तनो की दुकान मे फर्क नही समझते। वे सूचनाएँ देने से विनम्र इनकार को अवहेलना समझते है। खुराना की यही त्रासदी थी जो उनकी पीने की लत ने और बढा दी थी।

* * * *

दिल्ली मे पहली गैर-काग्रेसी सरकार बनी। यह विरोधी सिद्धातो और दिशाहीन नेतृत्व का विचित्र गठजोड था। इसके कारण होने वाले परिवर्तनो ने मेरे दिमाग मे गभीर उलझने डाल दी। ऐसा लगता था कि मोरारजी देसाई और उनके मत्रिमडल की टीम को इदिरा से घृणा करो की गोद ने जोड रखा था। उनके पास देश का शासन चलाने के लिए बहुत कम समय था। उनके इदिरा ध्वस्त करो कार्यक्रम मे मीडिया वाले बुद्धिजीवी और तथाकथित धर्मनिरपेक्ष लोकतात्रिक भी बडे जोश-खरोश के साथ शामिल हो गए। इस में शक नही कि इदिरा वफादारी के नाम पर सविधान को तोडने-मरोडने , न्यायपालिका के साथ छेडखानी करने और प्रशासन के फौलादी ढाचे को नष्ट करने की दोषी थी। आपातकाल के विपथगमन ने लोकतात्रिक पद्धति की कुरूपता को उजागर कर दिया था। वह एक खाऊ राजनीतिक दल और ऐसे नेता के पास गिरवी हो गई थी जिसने लोकतत्र का यह सुनहरा सिद्धात भी भुला दिया था कि पद्धति को किसी नेता की व्यक्तिगत स्थिरता की अनुचरी नही बनाना चाहिए। इदिरा आला कमान बन गई थी। उनको इस बात का ध्यान नही रहा कि अपरिहार्यता लोकतत्र का मेल नही। शायद वह चाटुकारो के इस नारे मे विश्वास करने लगी थी कि इदिरा इडिया है।

ऐसा लगता था कि सजय गॉधी ने न केवल उनके काम करने के तरीके पर बल्कि उनकी मानसिक सपदा पर भी अपना शिकजा कस लिया था। पिछली सीट पर बैठ कर गाड़ी पर नियत्रण रखने वाले ने समझ लिया था कि भारत सिर्फ लूटने के लिए और गुलाम लौडी की तरह सुलूक करने के लिए है। वह पूरी तरह गलत था। उस ने लोकतात्रिक पद्धति के सूक्ष्म ततुओ को नष्ट करने की प्रक्रिया शुरू कर दी थी। उसकी जगह उसने नए हथकडो के रूप मे बाहुबल, पैसा और सार्वजनिक हिसा को अपना लिया था। यह अध पतन शुद्ध आपराधिकता

की शक्ल मे सामने आया। सजय पहला गैर-जिम्मेदार भारतीय राजनीतिज्ञ था (अगर उसे राजनीतिज्ञ माने तो) जिसने सामाजिक व राजनीतिक स्वीकृति के ऊँचे मच पर अपराध और राजनीति को स्थापित कर दिया।

मोरारजी देसाई के इदिरा विरोध और शासन न चलाने के कारण देश के अधिकाश चितको का उन से मोहभग हो गया। वह भारत को राजनीतिक विकृति की दलदल और आर्थिक सकट से उबारने मे असफल रहे। इसके अलावा वह अपने राजनीतिक जमावडे की परस्पर विरोधी हठो के शिकार भी थे।

जनसघ आर एस एस के हिदुत्व के अराजकतावादी चितन से बधा था। यह शायद विभाजन से पहले के दिनो मे हिदू हितो के प्रतीक स्वरूप प्रासगिक रहा हो जब मुसलमान सिर्फ मुस्लिम वाले एक ही ढर्रे पर चल रहे थे और दिवालिया हो चुके साम्राज्यवादी आका उनका हौसला बढा रहे थे। जनसघ के मत्री अपने किस्म के राजनीतिक उद्देश्य का अनुसरण करने की चेष्टा कर रहे थे। रग-बिरगे समाजवादी सवेदनशील राष्ट्रीय मुद्दो के प्रति और भी अराजकतावादी तरीके अपना रहे थे। मोरारजी के मत्रिमडल के कुछ सहयोगियो ने उनको हटाने और उनकी जगह खुद प्रधानमत्री बनने की साजिश भी शुरू कर दी थी। इदिरा गॉधी को गिरफ्तार करने का तमाशा उसके पीछे पडना शाह कमीशन का हास्यास्पद तरीके से सचालन-- इन सब ने स्पष्ट कर दिया था कि जयप्रकाश नारायण का सपना चकनाचूर हो चुका था। जिन भूखे राजनीतिज्ञो के जमावडे को उन्होने राष्ट्र की बागडोर सौपी थी वही उनके क्राति के सपने का ध्वस्त कर रहे थे। उनके सपने भी महात्मा गॉधी की तरह टूट कर बिखर गए थे।

आई बी के प्रशासनिक प्रमुख ने जब यह बताया कि मेरा दिल्ली तबादला हो सकता है तो मै कुछ आशकित हो गया। मैने सिक्किम मे अपना सेवाकाल सपन्न कर लिया था। मुझे इस नए राज्य मे इटेलिजेस ब्यूरो का ढाचा बनाने का श्रेय मिला था। मै आई बी के आतरिक और प्रति-गुप्तचरी विभाग के लिए महत्वपूर्ण एजट बनाने मे भी सफल रहा था। अब समय आ गया था कि मै इससे कुछ बडे क्षेत्र की चाह करूँ। बच्चो को भी बेहतर शिक्षा की आवश्यकता थी। एक इटेलिजेस सचालक के कैरियर की दृष्टि से मुझे भी डेस्क विश्लेषक का अनुभव प्राप्त करना चाहिए था। आई बी मे जो पीछा करने और सताने का काम चल रहा था उससे मै जरा दूर था। नए आका इदिरा और उनके निकटवर्तियो के पीछे आई बी को लगाने मे जरा भी हिचकिचाए नही। इदिरा ने भी उनके साथ ऐसा ही किया था। आई बी सी बी आई और रॉ जैसे सरकार के शक्तिशाली सगठन अस्थिर राजनीतिक आकाओ के हाथ मे सरल हथियारों की तरह आ गए थे। देश मे ऐसा कोई कानून न था जो उनको ससद की किसी पुनरावलोकन समिति या सवैधानिक प्रहरी के प्रति जवाबदेह बनाता। भारत मे गुप्तचर तत्र को हुक्म बजा लाने वाली बादियो की तरह इस्तेमाल किया जाता था और यह सिलसिला अबाध चल रहा था। पुलिस और अर्द्धसैनिक बलो की तरह ही ये सगठन भी सरकार के सजा देने वाले हथियार बन चुके हैं। वे किसी भी तरह से करदाता और नागरिको के प्रति जवाबदेह नही जिन को कि लोकतत्र मे अतिम मालिक माना जाता है।

खैर, हम लोग 16 दिसबर 1978 को गगतोक से दिल्ली के लिए रवाना हुए। अब हमारे जीवन का एक नया अध्याय शुरू हो रहा था जो मेरे विचार मे बहुत सहज नही होना था।

मुझे सिक्किम में उसके भाग्य के एक महत्वपूर्ण मोड पर भेजा गया था। विलय के बाद की प्रक्रिया की मॉग तो यह थी कि तेजी से एकीकरण किया जाए और भावनात्मक एकता स्थापित की जाए। इसके अलावा योजनाबद्ध आर्थिक पैकेज तो दरकार था ही। कुशल राज्यपाल ने सिक्किम को व्यवहार्य प्रशासनिक ढॉचा और आर्थिक विकास देने का कठिन काम तो कर दिखाया था। मैं यहां जरूर कहना चाहूँगा कि बी.बी. लाल और उनके कुछ अधिकारियों ने ठोस आर्थिक प्रगति की नींव रखी थी। पर बाद के राजनीतिज्ञ उत्तरपूर्व के अपने कुछ सहकर्मियों का अनुकरण करने से चूके नहीं। आर्थिक सहायता तत्कालीन शासकदल का मोटापा बढाने का पर्याय बन चुकी थी।

मुझे इस बात का संतोष था कि मैंने सिक्किम मे भारत सरकार के सम्मानजनक विभाग के रूप में आई.बी. को स्थापित करने के लिए जो किया जा सकता था, वह सब किया। मैंने अपने तईं भरसक आंतरिक व प्रति-गुप्तचरी के साधनो को संपूर्ण बनाने का प्रयास किया। मै सिक्किम के समाज के लगभग सभी वर्गो में पैठ बनाने मे सफल रहा था। वहॉ के राजनीतिज्ञ और जनता आई.बी. को दिल्ली के एक स्वतत्र झरोखे के रूप मे देखने लगे थे। मुख्यमत्री और राज्यपाल स्टेट इंटेलिजेंस के मुकाबले आई.बी. पर अधिक भरोसा करने लगे थे। मेरे विचार मे यह साधारण उपलब्धि नहीं थी।

<16>

वापस परकोटे पर

जब आप युवा हो तो मैकबेथ एक उपयुक्त पुनरानुवाद की आवश्यकता है। जब आप बडे हो जाते है तो वह एक सच्चा पात्र हो जाता है।

सर लॉरेंस ऑलिवर

दिल्ली बहुत ही निर्मम स्थान है। यह ऐश्वर्याकाक्षियो की नगरी है। यह बाहर से आने वाले प्रशासको व गहरी जडे जमाए व्यापारियो और शासको का शहर है। शासक कुछ अर्से तक टिके रहते है। प्रशासक जल्दी ही लुप्त हो जाते है। व्यापारी और ऐश्वर्याकाक्षी यहॉ जमावडा लगाए रहते है।

दिल्ली अवसरो का शहर भी है। उस भूराजनीतिक अस्तित्व का भाग्य, जिसे हम भारतवर्ष कहते है, दिल्ली या दिल्ली से पहले के शासको ने बनाया या मिटाया था। सत्ता के इस केद्र के आसपास होने वाली मानव गतिविधियो की लहरो ने दिल्ली को अपनी विशिष्ट सुवास और दुर्गंध दी है। दुर्गंध तो स्पष्ट रही है। लेकिन इसकी सुवास को जानने के लिए इसके जनसमुद्र मे गहरे उतरने की जरूरत है।

मै भी इस शहर की प्रवृतियो से बच नही पाया। यह सही आर्यों मे सुरो (वास्तव मे आर्यों) की नगरी थी। यह एक तरह की समतल कर देने वाली नगरी थी। हालाकि सब के लिए नही।

पहला समनाकरण एक शयनकक्ष के अस्थायी प्रवास के रूप मे सामने आया। यह बदनाम तुर्कमान गेट के पास मिटो रोड पर था। दूसरी बाधा खुल जा सिमसिम मत्र सीखने की थी जो हमारे बच्चो के लिए पब्लिक स्कूल के दरवाजे खोल सके।

परिवार को व्यवस्थित करने के बाद मै हरकत मे आने को तैयार हो गया।

मैने अपने आर एस एस वाले (बनारस वाले) दोस्त को खोज निकाला जो वापस प्रचारक बन गया था। वह अपनी परवा न करने वालो मे से था। हमारी बातचीत से मेरे इस सदेह की पुष्टि हो गई कि जनसघ अच्छा शासन नही दे सकता। जनता गठबधन के परस्पर विरोधी हित उसके बखियो पर दबाव डाल रहे थे। भूतपूर्व काग्रेसी क्षेत्रीय क्षत्रपो और सदा दोफाड होने वाले समाजवादियो के साथ मिले हुए थे। चरण सिह, जगजीवनराम और बहुगुणा अपना स्वार्थ प्राप्त करने मे जुटे थे। मोरारजी देसाई इदिरा को अपमानित करने और नेहरू विरासत पर ज्यादा से ज्यादा कालिख पोतने के मिशन से ग्रस्त थे।

आर एस एस इस विचित्र प्रयोग को ज्यादा दिन तक ऑक्सीजन देने के हक मे नही था। वे इस प्रयोग की प्रक्रिया मे व्यस्त थे कि किस तरह एक नितात सास्कृतिक सगठन को शासक बनाया जा सके। इदिरा घृणा की पात्र थी। पर वह उनका राजनीतिक मत्र न था। इससे उनके

हिंदुत्व के एजेंडे को बढावा नहीं मिलता था। मेरे दोस्त ने यह स्पष्टतः स्वीकार किया कि गठबंधन उम्मीद से भी पहले टूट जाएगा। सत्तारूढ गठबंधन में फूट डलवाने के इंदिरा और संजय के हथकंडो से भी वे अनजान न थे। वे राजनारायण और चरणसिह के सपर्क में थे। यहाँ तक कि शीर्ष पद का वादा किए जाने पर जगजीवन राम को भी मोरारजी को गच्चा देने से परहेज नहीं था। दलित जाति का होने के नाते वह समझते थे कि उनका साउथ ब्लॉक के कक्ष पर हक बनता है। राजनीतिक माहौल इतना निराशाजनक था कि जयप्रकाश नारायण के सेनानियों का भरोसा तोडने के लिए काफी था।

मैं अपने आर.एस.एस वाले दोस्त के संपर्क में रहा और अगले कार्यभार के लिए तत्पर हो गया।

* * * *

मुझे आशा थी कि एक विश्लेषण डेस्क संभालने का मौका दिया जाएगा। पर मुझे एक संयुक्त निदेशक बी.आर. कल्याणपुरकर ने बुलाया। उन्होंने मुझसे गुप्तचरी के तकनीकी, इलेक्ट्रॉनिक और मानवीय पहलुओं पर अनेक प्रश्न पूछे। मैं इस विस्तृत साक्षात्कार से अचंभे में आ गया। कल्याणपुरकर तटीय महाराष्ट्र के कोंकणी ब्राह्मण थे। वह मष्दुभाषी और विनम्र थे। उनको व्यंग्य से आई.बी. का सेफ डिपाजिट वाल्ट कहा जाता था क्योंकि उनकी फाइलें दबा कर रखने की आदत थी।

उस विस्तृत साक्षात्कार के कोई सात दिन बाद मुझे एक आदेश मिला। इसके तहत मुझे आई.बी. के प्रसिद्ध प्रशिक्षण केंद्र में सहायक निदेशक के तौर पर भेजा गया था। मैंने इस आदेश का स्वागत किया। प्रशिक्षण प्रमुख के तौर पर मुझे सिर्फ निर्णय लेने के तरीके सिखाने थे न कि कोई बडे फैसले करने थे। मुझे उम्मीद थी कि मेरे प्रशिक्षण संस्थान के कार्यकाल में मैं कुछ उन गैरपरंपरागत तरीकों को भी ठोस रूप दे सकूँगा जो मैंने क्षेत्रीय कार्य के दौरान अपनाए थे। मुझे उन पुरातन प्रशिक्षण पुस्तिकाओं का भी पता था जो अपर्याप्त थीं और जिनको नए और पुराने अधिकारियों पर थोपा जाता था। किसी ने भी पश्चिमी देशों की प्रशिक्षण पुस्तिकाओं का अध्ययन करने का कष्ट नहीं किया था। हमारे पास रूसी और चीनी गुप्तचरी से सबंधित वास्तविक जानकारी न थी हालांकि हमारी प्रति-गुप्तचरी इकाई भारतभूमि पर उनकी गतिविधियों पर नजर रखती थी। संबद्ध प्रति गुप्तचरी शाखा भारत में विदेशी गुप्तचरों द्वारा इस्तेमाल किए जा रहे गुप्तचरी के तरीकों का विश्लेषण भी करती थी। पर उस का उपयोग वह अपने तईं करती थी। उसे कभी भी आई.बी के प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में शामिल नहीं किया गया।

मैं यह सोच कर रोमांचित हो गया कि अब प्रशिक्षण की प्रक्रिया पर कुछ शोध करने और जन-गुप्तचरी को तकनीकी मदद देने वाले विभिन्न उपकरणों का स्तर उन्नत करने का मौका मिलेगा।

मैंने प्रशिक्षण पाठ्यक्रम और तत्संबंधी विषयों का अध्ययन करने में दो सप्ताह का समय लगाया। 1968 में जब मैंने यह कोर्स किया था तब से पाठ्यक्रम की विषयवस्तु में कोई परिवर्तन नहीं किया गया था।

मैंने अपने पेशे की कार्यपद्धति के विषयों पर ध्यान केंद्रित किया ।साथ ही जन-अभिकर्ता बनाने , गुप्त संचार , छिपाने की कला , याद्दाश्त की ट्रेनिंग, गुप-चुप पड़ताल करने पर ध्यान दिया। इसके साथ कुछ और संबंधित तकनीकी विषयों, जैसे पैदल निगरानी करने, पीछा करने व विद्रोह एवं आतंकवाद प्रभावित क्षेत्रों में इंटेलिजेंस के संचालन संबंधी विषयों को भी तवज्जो दी। मैं चुपचाप कुछ प्रशिक्षकों की कक्षाओं में उपस्थित रहा ताकि विषयवस्तु की गुणवत्ता और प्रशिक्षण लेने वालों पर उसके प्रभाव का आकलन कर सकूँ। नए रंगरूट उन पुराने अधिकारियों से अधिक ग्रहण करते थे जिनको कि कोर्स दोहराने के कथित कार्य के लिए समय-समय पर दोबारा भेजा जाता था। उनके लिए यह या तो सवैतनिक अवकाश होता था या फिर जबरदस्ती की कैद। मैंने देखा कि इनमें से अधिकांश में नई तकनीक सीखने के प्रति प्रतिरोध की भावना थी। वे सोचते थे कि आनंद पर्वत में बहुत कम सीखने लायक है। आई.बी. में प्रतिनियुक्ति पर आए पुलिस अधिकारी भी नई ट्रेनंग के प्रति प्रतिरोध रखते थे। उनमें से अधिकांश पुलिस अधिकारी से इंटेलिजेंस संचालक बनाए जाने को नकारते थे।

इस बीच भारतीय पुलिस सेवा से इंटेलिजेंस ब्यूरो में सदस्यों को शामिल करने के आलेख में बहुत परिवर्तन किए गए थे। पहले अधिकांश आई.पी.एस. अधिकारियों को ट्रेनिंग के दौरान ही चिन्हित कर लिया जाता था और इस योजना के तहत उनके सेवाकाल के तीसरे या चौथे साल के दौरान उनको आई.बी. में शामिल कर लिया जाता था। उनसे अपना सारा सेवाकाल आई.बी. में गुजारने की अपेक्षा की जाती थी। वे अपने आप को इंटेलिजेंस संचालक या प्रशासक के रूप मे ढाल लेते थे। इन चिन्हित अधिकारियो से संगठन का मेरुदंड बनने की अपेक्षा रखी जाती थी।

इंदिरा गॉधी ने यह प्रक्रिया समाप्त कर दी। इसका एक कारण तो यह था कि वह अपने आस-पास वफादार और प्रतिबद्ध अधिकारियों को देखना चाहती थीं। दूसरा कारण आई.पी.एस. लॉबी का दबाव था जो दिल्ली में सदा अपने लिए बेहतर मौकों की तलाश में रहती थी। उस का तर्क था कि इंटेलिजेंस ब्यूरो को केद्रीय पुलिस संगठन की तरह समझा जाना चाहिए न कि कुछ चुनिंदा लोगों के संचालन योग्य विशेष एजेंसी की तरह। भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी इस मामले में इस लॉबी की हिमायत करते थे। उनकी मंशा इस गुप्त संस्था में अपने लिए वफादारों का एक गुट बनाने और आई.बी. को बौना करने की ताकि प्रधानमंत्री व गृहमंत्री के कानों तक न पहुँच सके। इसने आई.बी. की अल्पकाल सेवा के दरवाजे खोल दिए। खास-तौर से उन अधिकारियों के लिए जिन पर राजनीतिज्ञों का वरदहस्त था। या फिर जो उत्तरपूर्व के कठिन राज्य काडर या मार्कसवादियों द्वारा शासित राज्यों के काडर से बचना चाहते थे।

ऐसा नहीं है कि इन में से अधिकांश अधिकारी अस्थायी यात्री हों। उनमें से कुछ बहुत अच्छे इंटेलिजेंस प्रशासक बने और उन्होंने तत्कालीन शासक राजनीतिज्ञों के साथ अच्छे संबंध बनाए।

इस तरह के अधिकारयों को प्रशिक्षण देना बडा कठिन काम था। 1968 में मैंने अपने से आठ से बारह साल तक वरिष्ठ अधिकारियों के साथ प्रशिक्षण पाया था। वे अपने आप को इंटेलिजेंस अधिकारी बनाने में दिलचस्पी नहीं रखते थे। वे दिल्ली में आराम फरमाना चाहते थे। उनका इरादा मौसम के अनुकूल हो जाने पर अपने राज्य लौट जाने का होता था।

मैंने कुछ प्रशिक्षण पुस्तिकाओं में संशोधन-परिवर्धन करके उनको अपटूडेट बनाने के बारे में एक आलेख तैयार करने में कुछ समय लगाया। मैंने कुछ विदेशी इटेलिजेंस सेवाओं की पेशागत विशेषताओं का अध्ययन करने की आवश्यकता पर भी बल दिया। मेरे सुझावों में किसी सीधे भर्ती किए गए अधिकारी को अगले पद पर उन्नति देने से पहले टेस्ट पास करना अनिवार्य करना, सामान्य व तकनीकी वर्ग के अधिकारियों के बीच सार्थक संवाद की व्यवस्था करना और चिन्हित करने की योजना को दोबारा शुरू करना शामिल था। एक और 'हास्यास्पद' सुझाव वैज्ञानिक, आर्थिक व संचार की विशेष शाखाओं से लेकर मध्यश्रेणी के अधिकारयों को नियुक्त करना था। मैंने यह सुझाव भी दिया कि आई.बी. अधिकारियो को इस्लाम के सिद्धातों मे प्रशिक्षण देने के लिए एक अलग यूनिट बनाई जाए ताकि उनको असली मुसलमानों की तरह प्रशिक्षित किया जा सके। मैंने इंटेलिजेंस के काले इल्म की तालीम देने के लिए एक और यूनिट बनाने का सुझाव भी दिया ताकि इटेलिजेंस अधिकारियों को शत्रु के इलाके में काम करने और विद्रोह या आतंकवाद ग्रस्त क्षेत्रो में सक्रिय रहने मे सहायता मिल सके।

मेरे खयाल से इन क्रांतिकारी विचारों ने कुछ उच्च अधिकारियो और सकाय के सदस्यो के बने-बनाए ढर्रे में दखल दिया। आखिर परिवर्तन की बात करना तो कुफ्र था ही। अगस्त 1979 के शुरू में मुझे प्रशिक्षण सस्थान से बाहर नियुक्त कर दिया गया। मुझे चुनाव सेल का कार्यभार संभालने को कहा गया। इसके प्रमुख श्री सुधीन गुप्त थे। वह एक बढिया इन्सान थे। लेकिन उनका मोहभंग हो चुका था और वे काम में दिलचस्पी नहीं रखते थे। उन्हे अपने अतीत से प्रेम था और अतीत में ही रहते थे।

* * * *

राष्ट्रपति ने 22 अगस्त को संसद भग करने और जनवरी 1980 में चुनाव कराने के आदेश जारी किए। उससे काफी पहले ही चुनाव सेल ने धीमी गति से काम करना शुरू कर दिया। राष्ट्रपति के आदेश से पहले ही जनता गठबधन में विचित्र परिवर्तन होने आरभ हो गए। मोरारजी देसाई ने निस्सदेह साबित कर दिया था कि वे ऐसे द्रष्टा न थे जो इदिरा गॉधी के छोटे बेटे के पैदा किए बखेडे से देश को छुटकारा दिला सकें। वह तो बदले की कार्रवाई मे व्यस्त थे। उनका बेटा संदिग्ध आर्थिक गतिविधियों में लग गया था। मोरारजी के गलत कारनामों से जनता पार्टी में गभीर दरारें पड गई थीं।

संजय की युवा पत्नी मेनका गॉधी ने अपनी चमकदार पत्रिका *सूर्या* में जगजीवनराम के बेटे सुरेश राम की सेक्स की करतूतों को प्रकाशित करके सरकार को बदनाम करने की कोशिश की। जनता नेताओं के कई और घोटालों ने इदिरा और उनके छोटे बेटे की कथित करतूतों की अफवाहों को पीछे छोड दिया।

आर.एस.एस. समर्थित जनसंघ दोहरी सदस्यता के सवाल और गैर-धर्मनिरपेक्ष हरकतों के धुंधलके में उलझ गया था। भटके हुए समाजवादी राजनारायण और उनके गुरु उत्तर प्रदेश के जाटों के प्रमुख चौधरी चरण सिंह ने इदिरा और उनके बेटे सजय की सशर्त सहायता के बल पर मोरारजी की सरकार गिरा दी। दल बदल की राजनीति के अगुआ चरण सिंह के लिए एक पक्ष से दूसरे पक्ष में जाना कोई नई बात नहीं थी। वह पहले उत्तर प्रदेश में यह करिश्मा दिखा चुके थे।

भारत ही एक मात्र देश न था जो राजनीतिक तूफानो से घिरा हो।

दिल्ली के हास्यास्पद कर्णधारों ने पाकिस्तान में होने वाले पैशाचिक परिवर्तनों पर गौर नहीं किया था। जो वहाँ जुल्फिकार अली भुट्टो को हटाने के बाद जनरल जिया उल हक के सत्ता हथियाने के बाद हो रहे थे। कट्टरपथी जनरल ने पाकिस्तान के इस्लामीकरण की प्रक्रिया शुरू कर दी थी। उन्होंने रूस समर्थित अफगानिस्तान की सरकार से संघर्ष के लिए अमेरिका से सांठ-गांठ का रास्ता भी अपना लिया था। उन्होंने भारतीय पंजाब और जम्मू-कश्मीर के स्थानीय धार्मिक गुटों को उत्साहित करने का काम भी शुरू कर दिया था।

जनता सरकार ने इस क्षेत्र में होने वाले भू-राजनीतिक परिवर्तनों से आंखें मूंद ली थीं। मोरारजी देसाई ने तो भारत के साथ सिक्किम के विलय के प्रश्न को दोबारा खडा कर दिया था। उनके लंदन में विद्रोही नगा नेता ए.जेड फिजो से मिलने की गैर-राजनयिक हरकत ने 1975 में हुए शिलांग समझौते की भावना को ठेस पहुचाई।

इंदिरा गॉधी को अपने 12 विलिंगडन क्रिसेंट वाले घर से ज्यादा कुछ नहीं करना पडा। यह एक छोटा घर था । जिस में उनका परिवार रहता था और दफ्तर भी था। जयप्रकाश नारायण ने जिस 'क्राति' की शुरुआत की थी उसे जनता गठबंधन के भूखे और अनाडी राजनीतिज्ञों ने हवा में उडा दिया था। वे यह समझ नहीं पाए कि भारत की जनता आपादकालीन गलतियों के लिए इंदिरा गॉधी से बदला लेने में दिलचस्पी नहीं रखती। उस के साथ अन्याय हुआ था और उसने भारतीय लोकतंत्र को बेहतरी के लिए परिवर्तन का मौका दिया था। जनता नेताओ ने उसे निराश किया। जनता आर्थिक पुनरुद्धार, गरीबी उन्मूलन और पारदर्शी शासन चाहती थी। बदले की कार्रवाई नहीं।

इंदिरा जनता के विदूषकों की हास्यास्पद हरकतों का फायदा उठाने से चूकीं नहीं। वह एक और विभाजन कर के ससद में लौटने और कांग्रेस पार्टी का पुनरुद्धार करने मे सफल रहीं। आम जनता समझ गई कि इंदिरा ही उन के लिए सही विकल्प है। वही देश के अंदर की सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक समस्याओं का हल निकाल सकती हैं। वही पाकिस्तान के पैशाचिक इरादों के विरुद्ध भारत की रणनीति को सही रास्ते पर ला सकती हैं। उस का कांग्रेस पर से विश्वास नहीं उठा था। संजय और उस के युवा ब्रिगेड की ज्यादतियों के कारण उसे ठेस पहुंची थी। वह इंदिरा को एक और मौका देने की दिशा में बढ रही थी।

इसलिए मेरे साधारण और महत्वहीन चुनाव डेस्क को कुछ महत्व मिलने लगा था। मुझे देश भर से आंकडे एकत्र करके चुनाव के मुख्य मुद्दों , पार्टियों की संभावनाओं और कानून-व्यवस्था पर इंटेलिजेस रिपोर्ट तैयार करनी थी। इस बृहत् कार्य के लिए मुझे चार सहायक मिले थे। मेरे इन सहायकों को देश की चुनाव पद्धति का नाममात्र अनुभव था।

इस मौके पर एक विलक्षण व्यक्ति हमारे पडारा रोड वाले साधारण से घर पर आए। वह थे आपात्काल से पहले के इंदिरा के मंत्रिमंडल के भूतपूर्व मंत्री और सुनंदा के नाना डा. त्रिगुण सेन। उन्होंने हमें 11 साल बाद याद किया था। विद्वान शिक्षाविद् और राजनीतिज्ञ ने हमारे साथ भोजन किया और अंततः मुझे बताया कि संजय गॉधी मुझे मिलना चाहता है। मैं इस अनुरोध पर हैरान रह गया। मेरा गंगतोक में संजय से मिलना कोई बहुत रुचिकर नहीं रहा था। मैंने साफ मना कर दिया।

लगभग उसी दौरान मेरे संयुक्त निदेशक ने मुझसे कार्यकारी प्रधानमंत्री से उनके कार्यालय में मिलने को कहा। मैं चरण सिंह से जरा देर के लिए मिल चुका था जब उन्होंने मुझ से काजी लेहंडुप दोरजी को अपनी कांग्रेस यूनिट को जनता में मिलाने को राजी करने को कहा था।

मुझे प्रधानमंत्री के भव्य कक्ष में लाया गया। वहाँ मुझे विभिन्न राज्यों से जनता गठबंधन के बचे-खुचे उम्मीदवारों की सूची दी गई। उन्होंने मुझे आदेश दिया कि इन में से हरेक उम्मीदवार की संभावनाओं पर जल्दी से अपना आकलन पेश करूँ। साथ ही यह भी सुझाव दूँ कि उनकी सरकार को हर चुनाव क्षेत्र में मतदाताओं को प्रभावित करने के लिए क्या करना चाहिए। मैं उस अनुरोध से हैरान रह गया। आमतौर पर वह यह अनुरोध आई.बी. के निदेशक के माध्यम से भिजवा सकते थे। मैं नॉर्थ ब्लॉक के गलियारो को पार करता उन संयुक्त निदेशक के पास पहुँचा जिन्होंने मुझे प्रधानमंत्री से मिलने को कहा था। उन्होंने मेरी बात सुनी और कहा कि मैं इसको कार्यालय के लेखे से बाहर ही रखूँ। मैं आई बी. की क्षेत्रीय इकाइयों को निर्देश दूँ कि वे इस बारे मे तुरत रिपोर्ट भेजें। उन्होंने यह भी कहा कि यह आई बी में आमतौर पर होता ही है।

मैंने ईमानदारी से यह काम किया। इसके लिए मुझे अपने क्षेत्रीय सहयोगियों से पूरी सहायता मिली। मध्य सितंबर तक मैने रिपोर्ट को अंतिम रूप दे दिया था। मैंने एक आश्चर्यचकित करने वाली तस्वीर पेश की थी। इंदिरा लहर का एक स्पष्ट स्वरूप दिखाई दे रहा था। मेरे आकलन के अनुसार इदिरा काग्रेस नई ससद मे 300 से अधिक सीटे ले कर विजयी हो रही थी। मेरे डिप्टी डाइरेक्टर ने लगभग चार घटे तक मुझ से सवाल-जवाब किया। वह मेरे निष्कर्ष से अनिच्छापूर्वक सहमत हुए और रिपोर्ट को अपने वरिष्ठ अधिकारी को भेज दिया। अब मेरी संयुक्त निदेशक से सवालजवाब की बारी थी। वह रिपोर्ट से असहमत थे। उन्होंने कटुता के साथ यह टिप्पणी भी की कि प्रधानमत्री मेरे काम से खुश होने वाले नहीं।

मुझे केंद्रीय गृह सचिव के सामने पेश किया गया। उन्होंने रिपोर्ट पर नजर डाली और कहा कि मैं उनके साथ प्रधानमंत्री के कार्यालय चलूँ। प्रधानमंत्री ने रिपोर्ट पर सरसरी नजर दौडा कर पूछा कि क्या मैं इंदिरा गॉधी का घोडा हूं। मैने मूलभूत चुनावी माहौल को समझाने की पूरी कोशिश की, पर मेज की दूसरी तरफ बैठे वृद्ध सहमत नही हुए। उन्होंने मेरी एक और रिपोर्ट निकाली जिसमें मैंने पश्चिमी उत्तर प्रदेश के कुछ चुनाव क्षेत्रों में जाटों द्वारा छोटी जातियों के खिलाफ बाहुबल का प्रयोग करने का जिक्र किया था। मुझे रिपोर्ट वापस लेने और 'यथार्थपरक दृष्टिकोण 'के साथ दोबारा चुनाव का आकलन पेश करने के लिए कहा गया।

उनके कार्यालय से लौटने पर एक वरिष्ठ अधिकारी ने मेरी अच्छी खबर ली और कहा कि मैं अपने पश्चिम बंगाल काडर में लौटने के लिए बोरिया-बिस्तर बाँध लूँ। उस रात मैं अपने घर आहत मन और अपमानित भाव से लौटा। बच्चों के सो जाने पर मैंने सुनंदा से अपने मन की बात कही। उसने मुझे ढाढस बंधाया और सलाह दी कि मैं कैरियर के लिए कोई और रास्ता देखूँ। उसने मुझे आश्वस्त किया कि भाग्य जो भी दिखाएगा वह उसमें मेरा पूरा साथ देगी।

साढे ग्यारह बजे के करीब दरवाजे की घंटी बजी। मैं पश्चिम बंगाल में भेजे जाने के आदेश के लिए तैयार था। लेकिन दरवाजा खोला तो एक अप्रत्याशित आगंतुक मेरे सामने

थे। किसी कारण से मैं उनका नाम नहीं बताना चाहता। वह इंदिरा काग्रेस के एक महत्वपूर्ण नेता थे और इंदिरा गाँधी के करीबी थे। उन्होंने मुझ से आर.के. धवन और इंदिरा गॉधी से मिलने को कहा। यह विचार कुछ असंगत सा था। मैं इंदिरा और उन के आसपास आई.बी. की निगरानी से अनजान न था। इस में आर. के. धवन पर भी यह निगरानी थी। आई.बी. उन के अधिकांश फोन सुनती थी । दरअसल इंदिरा गॉधी की सुरक्षा में लगाए गए सुरक्षाकर्मियों में भी आई.बी. के दो एजंट घुसाए गए थे। वे मुझे पहचानते थे। मैंने अपने आगंतुक को बताया कि मैं पहले ही मुश्किल में हूँ और अनजाने पानी में कूद कर अपने परिवार की सुरक्षा को खतरे में नहीं डालना चाहता।

मेरे मित्र ने मुझ पर इंदिरा और धवन से मिलने के लिए जोर डाला। मैंने उनसे अनुरोध किया कि मुझे इस बारे में सोचने दें। उन्होंने कहा कि वह अगले दिन इसी समय निश्चत जवाब के लिए आऍगे। सुनदा और मैं इस देर रात तक इस अप्रत्याशित स्थिति के बारे में बात करते रहे। फिर एक और फोन से हमारी नींद में खलल पडा। फोन इंदिरा गॉधी के भूतपूर्व मंत्री सुनंदा के नाना का था। उन्होंने ने भी मुझ पर इंदिरा गॉधी से मिलने को जोर डाला।

अंततः हमने छलांग लगाने का फैसला कर ही लिया। हालांकि हमें अच्छी तरह मालूम था कि इससे मेरी नौकरी हाशिए पर आ जाएगी। यह सदा से सम्मानित आचार संहिता का उल्लंघन होगा। क्या मैंने प्रधानमंत्री के दबाव के कारण नासमझी वाला कदम उठाया? मेरे खयाल से नही। मेरी पैतृक विरासत में बसे और मेरे अदर अब तक सुषुप्त राजनीतिज्ञ ने जोर से पुकारा कि मैं जनता के जंजाल से देश को बचाने मे इंदिरा की सहायता करूं। मेरा जनता पार्टी के विदूषकों से पूरी तरह मोहभंग हो चुका था। उसने मुझे आर.एस.एस. से संपर्क तोड कर मुझे इंदिरा गॉधी का समर्थन करने के प्रेरणा दी। इस ऐतिहासिक मोड पर जनता के कुशासन से देश का उद्धार करने वाली एकमात्र शख्सियत वही थीं।

अगली रात को मैं एक मित्र की कार में दूर एक जगह गया। वहॉ से एक और कार ने मुझे आगे के लिए बैठाया। फिर मुझे सीधे 12 विलिंगडन क्रिसेंट के अगले लान मे ले जाया गया। मुझे एक कमरे में ले जाया गया जहॉ आर.के. धवन मुझे मिले। मैं इंदिरा गांधी के 1969 में इम्फाल आने के बाद उनसे बहुत थोडी देर के लिए मिला था। मैं उम्मीद नहीं करता था कि उनको मेरा चेहरा याद हो। होशियार आदमी की तरह धवन इस तरह पेश आए जैसे मुझे तुरंत पहचान गए हों। चुनाव के माहौल के बारे में थोडी चर्चा के बाद धवन मुझे मद्धम रोशनी वाले एक कमरे में ले गए जहां इंदिरा चिंतित मुद्रा मे बैठी थीं। मैं उनके गालों पर आंसुओं के दाग देखने से चूका नहीं। उनके माथे पर बल पडे हुए थे और उनकी आंखों में पराजय के भाव साफ झलक रहे थे।

उन्होंने जनता द्वारा बदले की कार्रवाई से शुरुआत की और फिर पूछा कि क्या मैं उनकी सहायता कर सकता हूँ। इंदिरा के एकाकीपन और अवसाद ने मेरे ह्रदय को छू लिया। उनकी यह हरकत डूबते को तिनके का सहारा पाने की-सी थी। मुझे ऐसा लगा जैसे इतिहास का कोई हिस्सा मेरी आत्मा का स्पर्श कर रहा है। मैं अभिभूत हो गया। मैंने कहा कि अगर वह समझती हैं कि मेरे जैसा एक छोटा अधिकारी उनकी कुछ सहायता कर सकता है तो मैं हाजिर हूं। मै उनकी भर आई आंखों को देख रहा था। मैं ऐसा नहीं सोच सकता था कि यह उनकी नाटकीयता है जिस की उन्होंने बरसों के अभ्यास से महारत हासिल कर ली थी।

मैंने एक नजर आई.बी. और सरकार के दूसरे विभागों के अंदर झांका। आई.बी. और रॉ के अधिकांश अधिकारी जनता नेताओं के साथ थे, या फिर वे अपनी जाति या राज्य के नेताओं से जुडे थे। आई.बी. के एक वरिष्ठ अधिकारी थंगा वेल्लू राजेश्वर को इंदिरा का नजदीकी समझा जाता था। उनको आई.बी. से बाहर कर दिया गया था। वे अब दिल्ली के आंध्र प्रदेश भवन में स्थानीय आयुक्त के तौर पर पडे थे। वह अब भी इंदिरा और आर.के. धवन के संपर्क में थे।

इंदिरा गाँधी ने पंजाब के कुछ राजनीतिज्ञों और आर के धवन की सिफारिश पर श्री एस. एन. माथुर को आई.बी. में नियुक्त कर दिया था। पर उन्होंने जनता नेताओं के साथ सांठ-गांठ करके अपनी चमडी बचा ली। के.पी. मेढेकर, बी.आर. कल्याणपुरकर और आर.के. खंडेलवाल जैसे कुछ वरिष्ठ अधिकारियों ने बदला लेने वाली राजनीतिक शक्तियों से कुछ दूरी बना रखी थी। लेकिन वे भी इंदिरा के वफादारों की नजर में संदिग्ध बन गए।

मेरे पश्चिम बंगाल के राजनीतिक नेताओं से कोई संबंध न थे। मैंने अपनी सेवा के चौथे साल में वह राज्य छोड दिया था। मेरा उस राज्य के मामलों से बहुत कम वास्ता था। इसके अलावा कम्यूनिस्ट नेता मुझे पसंद नहीं करते थे। मैंने युवावस्था में जनसंघ और फिर कांग्रेस में सक्रिय रह कर उनका विरोध किया था। मैं अपने स्वभाव और परवरिश के लिहाज से भारतीय कम्यूनिस्टों का विरोधी था। मैं उनको भारतीय राष्ट्रीय हितों के मुकाबले बाहरी शक्तियों का अधिक वफादार समझता था।

मेरी निजी तरजीह जनसंघ की राजनीतिक संभावनाओं को आगे बढाने की थी। अब यह भारतीय जनता पार्टी के लिए थी। मैं निरंतर आर.एस.एस. के प्रति आकृष्ट होता रहा। मैं कभी अपने विभाजन के दिनों की मुसलमानों के प्रति घृणा से उबर नहीं सका। मैंने अपने आर.एस. एस. वाले मित्र को खोजा जिस ने जे.पी. आदोलन के दौरान महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। हम दो बार मिले पर मुझे उससे कोई ठोस दिशा-निर्देश नहीं मिला। वह खुद भ्रमित थे। वह समझते थे कि वर्तमान नेतृत्व जनता को आकृष्ट करने लायक कोई रणनीति बनाने में विफल रहा है। अंततः मेरे मित्र ने यह राय जाहिर की कि आर.एस.एस. के जमीनी कार्यकर्ता स्वर्णसिंह की बची-खुची कांग्रेस या बार-बार दल बदल करने वाले समाजवादी बिल्ले वाले राजनीतिज्ञों के मुकाबले इंदिरा को समर्थन देना पसंद करेंगे। मेरे स्पष्टवादी मित्र ने यह भी कहा कि अभी आर.एस.एस. के लिए सत्ता के लिए प्रयास करने का समय नहीं आया है। वे कांग्रेस के खात्मे तक कुछ देर इंतजार करेंगे।

वर्तमान राजनीतिक परिप्रेक्ष्य और राष्ट्र निर्माण में योगदान देने के मेरे व्यक्तिगत रुझान ने मुझ पर असर डाला और मैंने इंदिरा गाँधी की सहायता करने का फैसला कर लिया। मैं इस सहायता के लिए किसी तरह के मुआवजे के लिए राजी नहीं हुआ। मूलतः देश की वर्तमान दशा और जो क्षय देश की सामाजिक व आर्थिक सुरक्षा को खाने लगा था उसने मुझे ऐसा करने के लिए प्रेरित किया था। क्षेत्रीय भू रणनीतिक स्थिति और पाकिस्तान व अफगानिस्तान में हो रहे परिवर्तन भी भारत की आंतरिक व बाहरी सुरक्षा के लिए खतरा पैदा कर रहे थे। मैंने यह कदम शुद्ध प्रतिबद्धता के साथ यह सोच कर उठाया था कि प्रताडित इंदिरा अपेक्षाकृत अधिक स्वच्छ और सबल शासन दे सकेंगी।

मैंने धवन के साथ अपने संजय गॉधी के प्रति परेशान करने वाले पूर्वाग्रह की चर्चा भी कर डाली। इंदिरा गाँधी को बडी संख्या में संजय के चमचो को टिकट देनी पडी थी। वे दोबारा व्यवस्था को बिगाड सकते थे। धवन ने कहा कि इदिरा के पास इस राजनीतिक एकाकीपन में संजय पर निर्भर होने के अलावा और चारा न था। राजीव गाधी की राजनीति मे कोई दिलचस्पी न थी। सोनिया गॉधी गॉधी परिवार के कामकाज सभालने में व्यस्त रहती थी। मेनका तडक-भडक पसद मा की बेटी थी। उसकी परवरिश अलग किस्म के सामाजिक वातावरण में हुई थी। वह अपने निजी मकसदों में व्यस्त थी और खुद को नेहरू-गॉधी परिवार के मूल्यो के साथ संबद्ध नहीं कर सकती थी। धवन ने कहा कि इदिरा को संजय की महत्वाकाक्षाओ का अंदाजा है। वह उसको फिर से उस तरह का राजनीतिक फसाद खड़ा नहीं करने देंगी जो उसने इलाहाबाद उच्च न्यायालय के फैसले के बाद या फिर आपात्काल में किया था। इसमें सदेह नहीं कि वह उसे पसंद करती थी, लेकिन वह उस के काम करने के सिद्धांतहीन और अनुचित तरीको से परेशान रहती थी। उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया कि इदिरा खुद नाव की पतवार संभालेगी। उन्होने संजय के जादू के काले पिटारे से अपनी आत्मा को आजाद कर लिया है।

उन्होंने ऐसा कैसे किया? धवन ने कहा कि आप इस सच्चाई को बहुत जल्दी खुद ही जान जाएँगे।

चुनाव के परिदृश्य पर विचारों का आदान-प्रदान करने के लिए हम लगातार मिलते रहे। इदिरा गॉधी ने इसरार किया कि उनको अपने चुनाव अभियान के प्रभाव का हर रोज ब्योरा दिया जाए। साथ ही सब चुनाव क्षेत्रो का विश्लेषणात्मक अध्ययन भी पेश किया जाए। वह कमजोर कडियो के बारे मे सुधार के सुझाव चाहती थी। यह बडा काम था। उनके विलिंगडन क्रिसेट वाले घर पर मिलना सुरक्षित न था। मैंने धवन से उनके गोल्फ लिक वाले घर पर मिलने से भी इनकार कर दिया था।

लेकिन मैं इदिरा को निराश भी नहीं करना चाहता था। यह तय हुआ कि धवन के सहायक और कांग्रेस महासमिति मे स्टेनोग्राफर विंसेंट जार्ज और महासमिति मे ही एक और सहायक रघु (जो बाद में संजय के अस्थायी सहायक बने) रात को मेरे घर पर आया करेंगे। वे मेरे यहाँ डिक्टेशन ले कर सुबह होते ही इदिरा गॉधी को पेश कर दिया करेगे। यह सिलसिला मतदान के दिन तक जारी रहा।

मुझे निश्चित रूप से पता नहीं कि इंदिरा मेरी रिपोर्टों से प्रभावित हुई या नहीं। हम मतदान से तीन दिन पहले अंतिम आकलन बैठक के लिए मिले। इंदिरा यह मानने को तैयार न थीं कि उनकी पार्टी निश्चित जीत हासिल करेगी। उन्होने एक थकी-सी मुस्कान के साथ कहा कि मेरे जैसा आशावादी उन्होंने दूसरा नहीं देखा।

मैंने इसको अपनी प्रशंसा ही माना। इंदिरा ने सब कुछ दांव पर लगा दिया था। वह जानती थीं कि एक और हार का मतलब होगा राजनीति से सदा के लिए विदाई। साथ ही एक और घृणा अभियान की शुरुआत। उनकी मनःस्थिति आशा और निराशा के बीच हिचकोले खा रही थी। वह बहुत अधिक शक्की मिजाज की हो गई थीं। उन्हें अपने आस-पास के लोगों पर भी विश्वास नहीं रहा था। वह संजय पर निर्भर करती थीं। पर वह मेनका को निश्चित

रूप से नापसंद करने लगी थीं। पर संजय का बेटा वरुण उनका लाडला था। उन्हें पूरा विश्वास था कि अपनी पत्नी और सास की धनलोलुपता के चलते संजय की बुराइयाँ और बढ जाएँगी।

जनता-जैसे एक और भानुमती के पिटारे सरीखे गठबंधन के लौटने का अदेशा उनको हताशा के घेरे में ले लेता। उनको तांत्रिकों और योगी कहे जाने वाले धीरेंद्र ब्रह्मचारी से सलाह करने की आदत थी। उस ने उनकी संवेदनशीलता का लाभ उठाना शुरू कर दिया था। वह उन्हें उनकी जान को खतरे की 'गुप्त सूचना' दे कर और ग्रहों के कुचक्र की बातें कर के फायदा उठाने लगा था। एक और छोटा बिहारी तान्त्रिक भी जो कालकाजी मंदिर से संबद्ध था, उन के पास मंडराने लगा था। पर वह छोटा धूर्त था। वह गलत किस्म के लेन-देन में कुछ लाख बना कर चलता बना। इंदिरा बडी अंधविश्वासी महिला थीं। मैंने उनको शकुन-अपशकुन में विश्वास करते देखा। उनकी संवेदनशीलता का फायदा उठाना आसान था। यह उनकी अपने कष्टों, अपनी माँ के कष्टों और अंतत: फिरोज गाँधी से उनके मोहभंग के कारण उपजी थी।

अपने दुर्दिन में भी इदिरा के पास सलाहकारों की कमी न थी। पुराने 'कश्मीरी वफादार' तो चलते बने थे। लेकिन उन कद्दावर बुद्धिजीवियों की जगह एम एल फोतेदार और अरुण नेहरू सरीखे नए बौने आ गए थे। ये नई पौध समस्याओं का हल करने और धन बटोरने वालों में से थी। वे उतने ही निकम्मे थे जितने कि फेरीवाले होते हैं। वे सजय के ज्यादा वफादार थे। पर इंदिरा ने उनकी सुननी शुरू कर दी थी। वह इंटेलिजेंस के आवरण मे लिपटी अफवाहों और गप्पों पर यकीन कर लेती थीं।

टी वी. राजेश्वर उनके प्रति पूरी तरह वफादार रहे। वह उनको नियमित रूप से चुनाव का आकलन भेजते रहे, विशेष रूप से प्रायद्वीपीय राज्यों का। रॉ के प्रमुख आर एन. काव ने भी उनके साथ गुप-चुप संपर्क बनाए रखा। मेरे विचार में उनका निजी आकलन बहुत उपयोगी रहा। मै निश्चित तौर पर नहीं कह सकता कि उनको मेरी रिपोर्ट पसंद आई या नहीं। हालांकि मेरा उपनाम धर था लेकिन मैं कश्मीरी तो नहीं था। मेरा सांवला रंग और बंगाली अंग्रेजी से वह शायद प्रभावित न थीं।

एक रात चुनाव से करीब दस दिन पहले विंसेंट जार्ज मेरे घर आया। उस ने कहा कि मैडम मुझसे तुरंत मिलना चाहती हैं। मैं उनसे देर रात जा कर मिला। मुझे मेरी भेजी चुनाव की भविष्यवाणी की रिपोर्ट ही दिखाई गई। मेरा आकलन, जिसे कि आई बी. के उच्च अधिकारियों ने एक बार फिर अस्वीकार कर दिया था, यह था कि इंदिरा कांग्रेस 320 से 350 तक सीटें ले जाएगी। जहाँ तक मुझे याद है, मैंने इन संभावित सीटों के बारे में राज्यवार आकलन पेश किया था।

उन्होंने पन्ने पलटे और मेरी तरफ देखा।

" आप सीटों की गिनती के बारे में इतने आश्वस्त कैसे हैं?"

" मैडम, मैं आश्वस्त नहीं," मैंने जवाब दिया,"यह क्षेत्रीय संचालकों के अनुमान पर आधारित आकलन है। यह हिसाब जाति और संप्रदाय को भी ध्यान में रख कर लगाया गया है। "

" पर मुझे दूसरे सूत्रों ने बताया है कि मेरी सिर्फ 200 सीटे आएगी और मुझे कम्यूनिस्टो व क्षेत्रीय दलों पर निर्भर करना होगा।"

" मेरे विचार मे ऐसा नहीं होगा। देश परिवर्तन चाहता हैं। जनता चाहती है कि आप एक बार फिर उसका नेतृत्व करे। मेरे खयाल से वह आप को वोट देगी।"

उन के चेहरे पर जरा देर के लिए एक क्षीण सी मुसकराहट उभरी। उसके बाद वह फिर अपने चुप्पी के घेरे मे चली गईं। धवन ने इशारा किया कि यह मेरे वहा से चले जाने का समय है। हम उनके कमरे मे गए और फिर हम ने एक-एक सीट पर दोबारा चर्चा की। मेरी अंतिम गणना 335 थी, इस से कम कतई नहीं। वह भी मेरी गणना के प्रति इतने आश्वस्त नहीं थे और उन्होने मुझे कहा कि इदिरा निराशाजनक मन·स्थिति में है। अगर वह चुनाव हार गईं तो सदा के लिए टूट जाएंगी।

" अगर वह जीत गईं तो?" मैंने पूछा।

" हम आप को बडा आदमी बना देंगे।"

" आप ऐसा नहीं कर सकते। मुझे कोई मेहरबानी नही चाहिए। सिर्फ यह ध्यान रखना कि संजय फिर से देश का नाश न करे और उसे पटरी से न उतारे।"

हमेशा की तरह हम चाय और सिगरेट के बाद विदा हुए। इस उम्मीद के साथ कि मेरी रिपोर्टों से इंदिरा का हौसला बुलंद होगा और वह कुछ कमजोर समझे जा रहे चुनाव क्षेत्रों में अपना अभियान तेज कर देंगी।

चुनाव के परिणाम मेरी गणना के अनुरुप ही आए। इंदिरा कांग्रेस को 351 सीटें मिलीं। संजय भी अमेठी से ससद में दाखिल हो गया। इंदिरा ने चौथी बार भारत के प्रधानमंत्री के रूप में शपथ ली।

धवन ने मेरे घर पर निमंत्रण पत्र भेजा तो मैंने खुद को सम्मानित महसूस किया। यह मेरे लिए भी भावनात्मक अवसर था। इंदिरा ने फिर साउथ ब्लॉक के कक्ष की शोभा बढाई। धवन ने प्रधानमत्री के विशेष सहायक का पद हमेशा की तरह संभाला। अधिकांश मतदाताओं की तरह मुझे भी यही उम्मीद थी कि इंदिरा अब पहले से अधिक समझदार साबित होंगी। उन्होंने आपात्काल की त्रासदी से सबक हासिल किए होगे और वह जनता पार्टी के खोखले व निकम्में नेताओं से बेहतर साबित होंगी।

इंदिरा अपने सफदरजंग वाले घर पर लौट आईं। स्वयं को इतिहास के एक और अध्याय के लिए तैयार करने के लिए जिसमें निर्मम त्रासदी छिपी हुई थी। उनका जन्म एक त्रासद बालिका की तरह हुआ। वह त्रासद और दुखद स्थितियों के साथ युवाअवस्था तक पहुँची और उनका अंत कुछ यूनानी त्रासदी की तरह हुआ।

❮17❯

खौलती कड़ाही में

कोई कभी शानदार उपलब्धि हासिल नही कर सकता। सिवाय उनके जो इसमे विश्वास रखने का हौसला करते है कि उनके अदर ऐसा कुछ है जो परिस्थितियो से कही बेहतर है।

ब्रूस बर्टन

जैसा कि जनता पार्टी के कुछ नेताओ ने कहा इदिरा गॉधी को लोकतत्र के ओझाओ ने इतिहास के कूडेदान से एक ही झटके मे उठा कर सत्ता के शीर्ष पर पहुँचा दिया। जनमत एकदम स्पष्ट था। काले और सफेद मे। काला उस विकल्प के लिए जो भारत की जनता खुद को देना चाहती थी। सफेद एक बार फिर इदिरा के लिए। उस दुर्गा से आसुरी बनी इदिरा के लिए जिसे उन्होंने सिर्फ तीन साल पहले अस्वीकार कर दिया था। इस घटना ने सिद्ध कर दिया कि भारतीय लोकतत्र परिपक्व हो रहा है। पैसे के बल पर या बाहुबल से जनता को विकलांग नही किया जा सकता।. जब भी सकट मे पडे देश को आवश्यकता हो, जनता निर्णयकारी फैसला कर सकती है।

इदिरा भारतीय स्वाधीनता सग्राम की एक कडी थी। वह उस परिवार की विरासत लिए हुए थी जिसने देश के लिए महत्वपूर्ण योगदान दिया था। उन्हे उनके देशवासियो ने बार-बार बुलाया। इस आशा के साथ कि वह भारतीय एकता के सपने की सर्वश्रेष्ठ वारिस थी। वह सपना जो महात्मा गॉधी, जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, सुभाष बोस और श्यामा प्रसाद मुखर्जी आदि ने बुना था।

उन्होंने देश को राजनीतिक और आर्थिक दलदल से सफलता पूर्वक निकाल कर उसे 1971 मे युद्धक्षेत्र की विजय का पहला स्वाद चखाया था। उन्होंने उस विभाजन को एक विडंबना स्वरूप ही सही, बदल डाला जो उनके पिता और अन्य राष्ट्रीय नेताओं को उस समय स्वीकार करना पडा था जब अंग्रेज भारत छोड़ कर भागे थे।

सारा देश और मैं भी, जो एक सामान्य भारतीय और ' मामूली इंटेलिजेंस संचालक ' था इस उम्मीद में था कि इंदिरा ऐसा मौलिक और ढाँचागत परिवर्तन लाएगी जो देश को आर्थिक प्रगति के रास्ते पर आगे ले जाएगा। जिससे गरीबी के खिलाफ लडाई शुरू होगी और सामाजिक समानता के लिए संघर्ष का बिगुल बजेगा। 1980 के क्षत-विक्षत भारत को एक मरहम लगाकर चंगा करने वाला मसीहा चाहिए था न कि ऊँचे मंच पर बैठने वाला तमाशबीन।

कुछ दूसरे थे जिनका विश्वास था कि वह अब कभी भी संजय और उसके चाटुकारो के बुरे असर से बाहर नहीं निकल पाएँगी न ही उन धूर्त और टुच्चे राजनीतिक प्रशासकों से छुटकारा पा सकेंगी जो फंगस की तरह उनके आसपास एकत्र हो चुके हैं और खुद को उन

की घरेलू काबीना का सदस्य बताते हैं। मैने कई बार इस बारे में आर.के. धवन और कांग्रेस में अपने कई दोस्तों से बात की। वे संजय के पार्टी और सरकार में एक बडी शक्ति के रूप में उभरने से काफी परेशान थे। वे घुमा-फिरा कर यह भी कहते थे कि इंदिरा भी इस मामले के प्रति उदासीन न थीं। लेकिन उनको कांग्रेस के उनके अधिकांश पुराने साथियों ने छोड़ दिया था। वह अपने निकट अनुभवी व स्थायित्व देने वाले लोगों की तलाश में थीं। उनमें से कुछ की स्पष्ट राय थी कि वह अपनी सत्ता की बागडोर संजय के पास गिरवी न रखेंगी। राजीव गॉधी इस संकट की घडी में अपनी मां की सहायता के लिए कुछ भार अपने कंधे पर लेने को तैयार न थे। घर पर भी इंदिरा गॉधी मेनका के मुकाबले सोनिया गॉधी पर अधिक निर्भर थीं। छोटी बहू ने कई और दिलचस्पियॉ पाल ली थीं जो उनको पसद न थी।

लोग बहुत से परिवर्तन चाहते थे। परिवर्तन बहुत हो भी रहे थे। मैं यहॉ उन परिवर्तनों की विस्तार से चर्चा नहीं करना चाहता जो इंदिरा ने अपने चौथी बार प्रधानमंत्री बनने पर देश में राजनीतिक व प्रशासनिक स्तर पर किए।

गाज इंटेलिजेंस ब्यूरो पर भी गिरी। इटेलिजेंस ब्यूरो के निदेशक एस.एन. माथुर ने आंध्र प्रदेश काडर के आई.पी.एस. अधिकारी टी.वी. राजेश्वर के लिए रास्ता छोड दिया। वह आई. बी. के लिए नए न थे। उन्होंने धवन से दोस्ती कर रखी थी और वे इंदिरा गॉधी के प्रति वफादारी का दम भरते थे। के.पी मेडेकर, आर.के. खडेलवाल सरीखे कुछ और अधिकारी भी जो आई.बी. के मेरुदंड का हिस्सा थे, उनको बाहर करके उनकी जगह नए चेहरों को लाया गया।

मुझे राजेश्वर के साथ काम करने का कोई मौका नहीं मिला था, क्योंकि मैंने अपने सेवाकाल के पहले 10 वर्ष मणिपुर, नगालैंड, और सिक्किम जैसे स्टेशनों पर कठिन क्षेत्रों में गुजारे थे। मुझे अपनी संचालन कुशलता के लिए जाना जाता था, पर मैंने डेस्क की शोभा कभी नहीं बढाई थी जो एजेंसी के उभरते सितारों, सूर्यों के साथ संपर्क बनाने के लिए जरूरी था। आई.बी. निदेशक एजेंसी के तारामंडल का केंद्र समझा जाता है। लेकिन कुछ मुख्य ग्रह अपने चारों ओर उपग्रह भी बना लेते हैं। यह अगर जात-पांत के दम पर न हो तो क्षेत्रीय और भाषाई समानता के आधार पर बना लिया जाता है। हममें से अधिकांश कुशल खगोलशात्री थे। वे उगते और डूबते सितारों और ग्रहों की पराकाष्ठा और पराभव का ठीक-ठीक अनुमान लगा लेते थे। वे अपने कंपास को उसी के अनुरूप ठीक कर लेते और वफादारी की बाड को मेंढक की तरह एक ही छलांग में फांद जाते। वे गिरगिट से भी बढकर रंग बदलने में माहिर थे।

नए आई.बी. निदेशक के लिए मैं एक अनजान व्यक्ति था। मैं धवन और इंदिरा गॉधी के निकट था, यह उनकी जानकरी से छिपा न था। उनका आंध्र प्रदेश के अपने कांग्रेसी मेहरबानों से अच्छा संबंध था। अपने आंध्र भवन के मामूली पद के पर्दे के पीछे से वह धवन के माध्यम से इंदिरा गाँधी की निरंतर सहायता करते रहे। उनको तुंरत इसका पुरस्कार मिला। मैं यह मानता हूँ कि राजेश्वर इस संगठन के चलाने के लिए नितांत उपयुक्त थे। नेतृत्व करने में वे किसी से कम न थे। देश के समस्याग्रस्त क्षेत्रों पर उन की बहुत अच्छी पकड थी। इंदिरा गाँधी के इस चौथे अवतार को अंधाकरमय जल में खेने के लिए उनके पास सही किस्म का राडार था। वह पहले आधुनिक विचारों वाले आई.बी. निदेशक थे। वह आधुनिक तकनीकी उपकरणों से परिचित थे और संचालन की नई पद्धतियों से भी वाकिफ थे जो विद्रोह व

आतंकवाद का सामना करने के लिए आवश्यक थीं। इतिहास के इस नाजुक दौर मे आई बी. जो आदमी मुहैया कर सकती थी वह उनमें सर्वश्रेष्ठ थे।

राजेश्वर मेरे साथ बहुत सहज महसूस नहीं करते थे। इसमें उनका दोष न था। आई बी. जैसे संगठन में जहाँ कि संवैधानिक जवाबदेही न थी, सिर्फ शीर्षस्थ आदमी की ही औकात थी। प्रधानमत्री और गृहमत्री से उसकी निकटता पर ही सगठन की विश्वसनीयता निर्भर करती थी। मेरे जैसा मध्यश्रेणी का अधिकारी किसी भी तरह देश के मुख्य कार्यकारी के वैकल्पिक ऑख-कान का स्थान न ले सकता था। मैं उनकी समस्या को समझता था। पर मैं धवन और इंदिरा गाँधी से अपने संबंधो का स्वतः विच्छेद नहीं कर सकता था। ये सबध काफी जटिल थे।

मैं दिल्ली से बाहर तबादला कराने की स्थिति मे भी न था। मेरे बेटों को अच्छे स्कूल में दाखिला मिल गया था। हमें उम्मीद थी कि कठिन स्थानों पर 10 साल गुजारने के बाद अब हम अपने बेटों को बडे शहर मे पाल सकेंगे। सुनदा को कुछ परिवर्तन चाहिए था। बच्चो को भी अच्छी शिक्षा मिलनी चाहिए थी। सुनदा ने सलाह दी कि मै धवन से परामर्श करूँ। पर मैंने इस आकर्षण का संवरण करके अपने आदेश का इतजार किया। उस समय कुछ खुशी हुई जब मुझे डिप्टी डाइरेक्टर के अगले ओहदे पर तरक्की मिल गई और पुलिस मेडल भी दिया गया हालांकि यह सामान्य सम्मान था।

मेरे जैसे बेमेल आदमी को उसकी जगह देने की कठिन समस्या का अस्थायी हल निकल ही आया। राजेश्वर ने मुझे अपने कमरे मे बुला कर कहा कि वह मेरी सेवाओ को अस्थायी रूप से वित्त मंत्रालय को सौंप रहे हैं। वहॉ मुझे निदेशक के तौर पर सोने की नीलामी की जॉच करने वाली नवगठित समिति की सहायता का कार्य सभालना था। भारतीय रिजर्व बैंक के भूतपूर्व गवर्नर के.आर. पुरी इसके अध्यक्ष थे। मालूम करने पर पता चला कि मेरी प्रतिनियुक्ति समिति के समाप्त होने के साथ ही खत्म हो जाएगी। उसके बाद मेरा भविष्य आई बी. निदेशक के रहमोकरम पर होगा। मुझे आशका थी कि पुरी के साथ मेरा कार्यकाल समाप्त हो जाने के बाद वह मुझे मेरे राज्य काडर को वापस भेज देगे। मैंने सोचा कि यह मेरा धवन से सलाह करने का उपयुक्त समय है। पर मुझे ऐसा करना नही पडा। मैं राजेश्वर के सामने उठ खडा हुआ और उनको बताया कि चिन्हित अधिकारी होने के नाते मुझे किसी मत्रालय के आयोग में स्थानांतरित नही किया जा सकता। मैंने इंटेलिजेंस को अपना कैरियर चुना हैं। मैं अपनी व्यावसायिक क्षमताओ को प्रति विद्रोह, आतंकवाद रोध और प्रति गुप्तचरी के क्षेत्र मे रह कर और निखारना चाहता हूँ।

हमने बडी सहृदयता से बातचीत की। वह आश्वस्त हो गए कि मैंने इदिरा का साथ मलाईदार पद पाने और अतिरिक्त धन कमाने के लिए नहीं दिया था। राजेश्वर मेरी बात समझ गए। उन्होंने कहा कि मैं पुरी के पास जाने से पहले धवन से मिल लूँ। मुझे आई.बी. में रहने और उसके कोष से ही अपना वेतन-भत्ता पाने की इजाजत दे दी गई। मेरे विचार में तभी से मेरी राजेश्वर से जान-पहचान और मित्रता हो गई जो आज भी पूरी प्रगाढ़ता के साथ बरकरार है।

1, सफदरजंग रोड पर मेरी धवन से मुलाकात संक्षिप्त थी। उन्होंने मोटे तौर पर संकेत दिया कि उनको सोने की नीलामी की जॉच समिति से बहुत उम्मीदें हैं। पुरी की अध्यक्षता

वाली टीम उसमें से इतनी कालिख खोज निकालेगी जो मेरारजी देसाई और उनके बेटे कांतिभाई का मुंह काला करने के लिए काफी होगी।

जिन लोगों से मेरा वास्ता पडा उनमें के.आर. पुरी सबसे अच्छे थे। उनकी समिति का गठन देश के कानूनी प्रावधान के तहत नहीं किया गया था। उसे सिर्फ प्रशासनिक मंजूरी मिली थी। उसकी रिपोर्ट भी वित्तमंत्री को ही दी जानी थी। एक जॉच समिति के तौर पर जी.ए.ई. सी. (उच्चारण गा-एक) को शाह आयोग जैसे अधिकार प्राप्त न थे। मुझे गवाहों को बुलाने, छापा मारने, सुबूतों को जब्त करने और यहाँ तक कि संदिग्ध व्यक्तियों से पूछताछ करने तक का अधिकार नही था। मुझे जरा भी संदेह नहीं रहा था कि पूरी समिति राजनीतिक बदला लेने का एक और साधन भर था। किसी की भी मोरारजी सरकार के सोना हडपने की सच्चाई का पता लगाने में दिलचस्पी न थी। ऐसी कैंची से तो कांतिभाई के सिर का एक बाल भी बांका नहीं किया जा सकता था। मैं भी उनकी अलमारी से कोई कंकाल निकालने में दिलचस्पी नहीं रखता था। यह लोकतत्र का मूलतत्व न था।

इस बात को समझ लेने के बाद मैं पुरी की सहायता के लिए तैयार हुआ। फरीदकोट हाउसके कार्यालय और समिति के काम से मेरा उत्साहवर्धन नहीं हुआ। मैं तो पहले दिन से ही सोचता था कि यह काम सी.बी.आई. को सौंपना चाहिए था जो सोने के भंडार की नीलामी में हुई अनियमितता की जाँच करने का अधिकार रखती थी। लेकिन पुरी के सौम्य स्वभाव और दो अन्य अधिकारियों, सुनील खत्री व एस.के. मिश्रा, के आमोदमय साथ ने मेरी उदासीनता दूर कर दी। हम दिल्ली, बंबई, अहमदाबाद,सूरत और बडौदा में नीलामी के सोने के भारी मात्रा में खरीदारों का पता लगाने तथा बाद में उसके अन्य स्थानों की सोने के जेवर बनाने वाली मंडियों में पहुचने का पता लगाने में सफल रहे। लेकिन हमारी जॉच सिर्फ 1500 किलोग्राम सोने की खुली बिक्री का ही पता लगा सकी। भारी मात्रा में सोना खरीदने वालों का बाकी सोना हवा हो गया था। कुछ मोटे संकेतों और कमजोर कडियों के माध्यम से इतना ही पता चला कि नीलामी का सोना किसी खाडी देश को पहुंच गया था। लेकिन समिति के पास इस की जॉच करने के साधन न थे।

इस मौके पर मुझे एक सेवारत वर्दीधारी पुलिस अधिकारी की आवश्यकता महसूस हुई। पुरी ने तुरंत दिल्ली के पुलिस आयुक्त और संजय के पिछलग्गू कहे जाने वाले पी.एस. भिंडर को पत्र लिखा। मैं यह कल्पना नहीं कर सकता था कि भिंडर इस मामूली से अनुरोध को इतना टरकाएँगे। वह बडे कामों और जिम्मेदारियों में व्यस्त थे। उनका पुराना दोस्त संजय भी साथ था ही। उनकी पत्नी भी पंजाब से अपना राजनीतिक कैरियर शुरू करने की तैयारी में थीं।

कोई एक महीने के तकाजे के बाद मेरे फरीदकोट कार्यालय में एक लंबा और मुसटंडा जाट पुलिस इंस्पेक्टर हाजिर हुआ। उसकी सैल्यूट चुस्त थी लेकिन व्यवहार विनम्र न था। मैंने उसे बैठाया और काम के बारे में समझाना शुरू किया।

उसकी दिलचस्पी मेरे थोक और खुदरा खरीदारों और जेवरात बनाने वालों के बीच के जटिल संबंधों को समझाए जाने में न थी।

" साब ," उसने बीच में मुझे टोका ,"मैंने आप का क्या बिगाडा है?"

" कुछ नहीं, तुम ऐसा क्यों करोगे? मैंने तो तुम्हारी शक्ल ही आज पहली बार देखी है," मैंने जवाब दिया।

मुस्टंडे जाट ने अपना दुखडा सुनाना शुरू किया। उसने अभी हाल ही में केंद्रीय दिल्ली के एक मलाईदार थाने में खुद को तैनात करवाया था। इसके लिए उसने पांच लाख रुपए की मोटी रकम का चढावा चढाया था। यह नियुक्ति उसे मिली क्योंकि उसकी बोली सब से ज्यादा थी। अभी उसकी मूल रकम भी वसूल नहीं हुई थी।

" आप ही बताइए सर , " उसने एक लाजवाब कर देने वाला सवाल पूछा," क्या इस हालत में मुझे उस थाने से बाहर खदेडना जायज है? क्या मुझे अपनी असल रकम के अलावा 15 लाख भी और कमाने का हक नहीं है?"

" वह किसलिए?"

" कुछ तो मेरे बुरे वक्त के लिए। कुछ अगली तरक्की और किसी अच्छी जगह तैनाती के लिए। माफ करना , सर ," कहते हुए वह उठ खडा हुआ," आप असली पुलिसवाले नही लगते। आप इन बातों को नहीं जानते। पर मेहरबानी कर के मुझे माफ करे।"

उसने एक और चुस्त सैल्यूट बजाई और चौडी मुसकराहट के साथ चलता बना।

मैंने पुरी को पुलिस अधिकारी के साथ अपनी मुलाकात का किस्सा सुनाया और तय किया कि यह काम मैं और एस.के. मिश्रा मिल कर निबटाएँगे। मेरी रिपोर्ट अप्रैल तक तैयार थी । मेरे निष्कर्ष मुझे नियुक्त करने वालों की अपेक्षा के अनुरूप न थे। उनके लिए तो यह जॉच सत्यानाश करने वाली बात ही थी। पश्चिम बगाल के एक काबीना मत्री, उनके विशेष सहायक जो कि आई.ए.एस. अधिकारी थे और उनके एक बबइया उद्योगपति मित्र ने मुझ पर और पुरी पर दबाव डाला था कि हम इस जॉच को दूर तक न खींचें। मैं अगर चाहता भी तो ऐसा कर नहीं सकता था। समिति को इधर-उधर सूंघ कर कुछ पता करने का हक तो था लेकिन उसे गहराई में जा कर जॉच करने के अधिकार न थे।

अंतिम रिपोर्ट पेश हो जाने के बाद मैंने पुरी से निवेदन किया कि मुझे आई.बी. मे अपने काम के लिए मुक्त कर दिया जाए। पुरी ने मेरी रिपोर्ट की प्रशसा की। उन्होंने मुझे बबई के एक प्रमुख सार्वजनिक उद्यम में सतर्कता निदेशक का पद भी पेश किया। मैंने विनम्रतापूर्वक उसे अस्वीकार कर दिया। फिर मैं अगले काम के लिए वापस राजेश्वर के पास आया।

राजेश्वर ने बिना समय गंवाए मुझे विदेश मामलों को देखने वाले उपनिदेशक का काम सौंप दिया। उसका काम आव्रजन नियंत्रण पर नजर रखना था। भारत में पर्यटक, शोध छात्र, विद्यार्थी और यहाँ तक कि निवेशक के तौर पर आने वाले विदेशियों के बारे में व्याख्या प्रस्तुत करने और नीति संबंधी सुझाव देने का काम भी उसके जिम्मे था।

उन दिनों आशंकित राजनीतिज्ञो के मानस के हर कोने में सी.आई.ए. के भूत मंडराया करते थे। शीतयुद्ध के भभके और विशेष संधि ने भारत पर थोडा रूसी रंग चढ़ा दिया था। लिहाजा हमें सी.आई.ए. के प्रेतों से होशियार व खबरदार रहने की चेतावनी दे दी गई थी , जिनका झुकाव आज भी पाकिस्तान की तरफ था और जो भारत को अस्थिर करने के कुचक्र में लिप्त थे। लिहाजा मेरे काम में कुछ अनावश्यक तामझाम भी शामिल हो गया था। मुझे समझाया गया था कि मैं अपना नियंत्रण कठोर रखूँ। मैं देश के हर खिडकी व दरवाजे की पूरे मनोयोग से पहरेदारी करूं ताकि कोई राक्षसी प्रवृत्ति का विदेशी उसका अतिक्रमण न कर सके। मैंने अपना काम पूरी निष्ठा के साथ निभाया। मैं खुद इस में यकीन करने लगा था कि सी.आई.ए. देश के टुकडे करने से कुछ ही कदम दूर है। मैं वर्तमान भू-राजनीतिक इतिहास का अध्येता था। मुझे 'स्वतंत्र विश्व' की सी.आई.ए. तथा अन्य गुप्तचर एजेंसियों के पाकिस्तान

की इंटर सर्विस इंटेलिजेंस के साथ मिल कर अफगानिस्तान में और सोवियत संघ के कुछ मध्य एशियाई गणतंत्रों के अंदर किए जाने वाले कारनामों की जानकारी थी।

असल में मैंने एक संक्षिप्त आलेख भी तैयार किया था। इसमें मैंने अफगान जिहाद के भारतीय कश्मीर तक छलक आने और उसके भारतीय मुसलमानों के मानस पर होने वाले संभावित प्रभाव की चर्चा की थी। पाकिस्तान में इस्लामीकरण की प्रक्रिया और वहाँ जिहादी शक्तियों का विस्तार भारत के लिए शुभ लक्षण न थे। इस्लामीकृत सेना, आई.एस.आई. और स्वतंत्र मुजाहिदीनों द्वारा भारतीय मुसलमानों और अब तक अप्रभावित स्थानीय गुटों का ध्यान आकृष्ट करना अवश्यंभावी था। इस आलेख में सऊदी अरबपति बिन लादेन के संगठन अल कायदा की भूमिका का भी जिक्र किया गया था। मैंने कहा था कि सी.आई.ए. और आई.एस. आई. उत्तरपूर्व, पंजाब और कश्मीर पर प्रहार करेगी। मेरा पंजाब के बारे में सुझाव तो भविष्यवाणी-सा सिद्ध हुआ। मैं पाकिस्तानी निदेशकों और कुछ प्रवासी सिखो के बीच बढती सांठ-गांठ पर नजर रखे हुए था। शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी (एस.जी.पी.सी.) के कुछ नेताओं व कुछ जाने-पहचाने धर्मांध नेताओं के साथ उनके संपर्कों की जानकारी भी मुझे थी। मेरे पास इस बात पर विश्वास करने के कारण थे कि राजेश्वर ने वह रिपोर्ट पढी थी। पर उस समय आई.बी. में हम लोग भारत में आई.एस.आई. की हरकतो का पीछा करने, उनकी पहचान करने और उनको व्यर्थ करने के लिए तत्पर न हुए थे। इस मामले में आई.बी. की तैयारी बचकाना थी।

अधिकांश अधिकारी रोजमर्रा के सूचना सकलन और समय-समय पर स्थितिपरक आलेख तैयार कर के संतुष्ट हो जाते थे। इस तरह के अध्ययन अभिलेख बनाने के लिए तो ठीक थे पर पंजाब और कश्मीर पर घुमडते बादलों को नियंत्रित करने के लिए अपर्याप्त थे। पाकिस्तान काउंटर-इंटेलिजेंस यूनिट का विस्तार क्षेत्रीय एस.आई.बी. तक न था। क्षेत्रीय इकाई के पास भारत के महत्वपूर्ण इलाकों में पाकिस्तानी घुसपैठ का पता लगाने, उसकी जाँच करने और उसे व्यर्थ करने के लिए न तो अधिकार थे और न ही साधन। अज्ञान आनंददायक था लेकिन उस में खतरनाक विस्फोटक भी छिपे थे। मै उन अधिकारियों के क्षेत्र में अतिक्रमण कर रहा था जो बहुत अधिक अनुभवी और कई तरह के अलंकरण से सुसज्जित थे। वे मुझसे कहीं अधिक ' शक्तिशाली ' थे।

* * * *

विदेशियों के डेस्क पर मेरा कार्यकाल बहुत संक्षिप्त रहा।

मुझे एक काउंटर-इंटेलिजेंस डेस्क संभालने को कहा गया। यह डेस्क सोवियत संघ और उसके पिछलग्गू देशों की भारत में गुप्तचर गतिविधियों पर नजर रखता था। यह बहुत बडा काम था। मैं इस आकस्मिक परिवर्तन से अचंभित था। मैंने काफी कामयाबी के साथ दुष्ट विदेशियों के भारत में घुसने के जाने-अनजाने रास्ते और दरारें बंद कर दी थीं। मैंने भारत में बंग्लादेशी और पाकिस्तानी कानूनी व गैरकानूनी आगमन के क्षेत्र में भी दखल देने की कोशिश की थी। मेरा तैयार किया गया एक आलेख संबद्ध अधिकारियों में वितरित किया गया था। उन्होंने उनके अधिकार क्षेत्र में घुसपैठ करने के लिए मेरी अच्छी खबर ली। उनका निश्चित मत था कि उनके पार्श्व पाकिस्तान और बंग्लादेश की दुरभिसंधि से भारत की रक्षा करने में पूरी तरह सक्षम थे। इंटेलिजेंस ब्यूरो में अनौपचारिक चर्चा करने और खुले आम बातचीत कर के खतरे का आकलन करने की कोई व्यवस्था विकसित नहीं की गई थी। डेस्क

प्रमुख इस तरह की खिचडी पकाने वाले प्रमुख रसोइए थे। वही बौस और सरकार की आँखों व कानों तक पहुंच रखते थे। आई.बी. बंद खानों में काम करती थी। (यह प्रथा स्पष्ट कारणों से आज भी जारी है।) सीमित सुरक्षा की धारणा दरअसल स्वतंत्र चिंतन की मनाही करने के लिए बनाई गई थी।

भारी-भरकम सोवियत संघ डेस्क पर मेरी नियुक्ति ने आई.बी. के कुछ और दिग्गजों को भी हैरान कर दिया। कुछ अलंकृत कलगीवाले चिढे भी। अमेरिका और सोवियत संघ के डेस्कों के प्रमुख काफी वरिष्ठ अधिकारी हुआ करते थे। मेरे जैसी वरिष्ठता वाला अधिकारी आमतौर पर विश्लेषण डेस्क संभालता था।

जैसा कि मैंने पहले कहा, सोवियत सघ के डेस्क पर मेरी नियुक्ति से कुछ लोग चिंतित हो उठे थे। राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय कम्यूनिज्म पर अपने आप को माहिर उस्ताद समझने वाले एक वरिष्ठ अधिकारी ने मुझे बुला कर करीब घटे भर तक सवाल-जवाब किया। वह साबित करना चाहते थे कि मैंने कोई चक्कर चलाकर यह नियुक्ति हासिल की है। वह मेरी जानकारी में कोई कमी नहीं निकाल सके। उल्टे मैंने उनको बताया कि सोवियत सघ , वियतनाम और अफगानिस्तान में दलदल में फंस गया है। उसका आंतरिक राजनीतिक तनाव और आर्थिक दुर्दशा इस कम्यूनिस्ट साम्राज्य के ढाँचे को तोड कर रख देगी। वियतनाम मे विफलता ने कुछ समय के लिए अमेरिका का सूदूर-पूर्व और दक्षिण-पूर्व एशिया मे विस्तार रोक दिया है। लेकिन अफगानिस्तान में विफलता न केवल इस क्षेत्र मे अमेरिकी विस्तार को नवजीवन देगी बल्कि यह लौह प्राचीर वाले साम्राज्य के अत की शुरुआत भी सिद्ध होगी। वह अनिच्छापूर्वक मुझ से सहमत हुए। लेकिन मुझे यह हिदायत भी दी कि मैंने अपने से पहले वाले सरयूपारीण ब्राह्मण अधिकारी का स्थान ले कर ठीक नहीं किया।

एजंटों और तकनीकी गतिविधियों का लेखा लेने व सचल निगरानी करने पर मैं हैरान-परेशान हो गया। इस उच्चस्तरीय यूनिट ने न तो लक्ष्य इंटेलिजेस सचालकों के आंतरिक क्षेत्र में दखिल होने की कोशिश की थी और न ही उसकी परिधि का स्पर्श करने का कष्ट किया था।

नियंत्रण अधिकारी को इस जमीनी स्थिति की जानकारी दे दी गई। यह सुझाव भी दिया गया कि सोवियत धडे के पहचाने गए और सदिग्ध एजेटो और कम्यूनिस्ट पार्टी तथा उसके प्रत्यक्ष संगठनों में मौजूद भारतीय सूचना देने वालों को लक्ष बनाने के लिए एक अभियान चलाया जाना चाहिए। इस योजना को पर्याप्त गुप्त कोष के साथ मंजूरी दे दी गई। मुझे कम से कम चार एजेंटो का पता लगाने और उनको शिंकजे में लेने का संतोष मिला। इनमें एक राजनयिक मिशन से था जब कि तीन भारतीय कम्यूनिस्ट थे।

अफगानिस्तान में हो रही हलचलों ने शीतयुद्ध को भारत के दरवाजे तक पहुँचा दिया था। अफगानिस्तान की धरती से अपनी गतिविधियाँ चलाने के अलावा के.जी.बी. ने भारत में अफगान शरणार्थियों को भी अपना लक्ष्य बना लिया था। भूतपूर्व शाह के वफादार कुछ उच्च अफगान अधिकारी और पाकिस्तान व अमेरिका समर्थित मुजाहिदीन से संपर्क रखने वाले पख्तून नेता के.जी.बी. के तंत्र में शामिल हो गए थे। दिल्ली सोवियत-गुप्तचरी का एक महत्वपूर्ण अड्डा बन गई थी।

मुझे के.जी.बी. के तंत्र में घुसपैठ करने से यह तर्क देकर निरुत्साहित किया गया कि यह भारत की अफगानिस्तान में राजनयिक पहल के अनुकूल न होगा। मैं अफगान मामलों

का विशेषज्ञ न था। पर मैंने विदेशी मामलों के विशेषज्ञों को यह कह कर समझाने की कोशिश की कि भारत में के जी.बी. की कारगुजारियों को जानना हमारा कर्तव्य है। मेरी राय में भारत की नीति एकतरफा थी। उसे अफगान जनता की भावनाओ के अनुकूल संशोधित करने की आवश्यकता थी। सोवियत समर्थित शासन का साथ देना और अफगानिस्तान की जनता की आकांक्षाओं की उपेक्षा करना मेरी राय में अलाभकर हो सकता था। मैंने यह भी कहा कि अफगान इस्लाम के नाम पर लड रहे थे और भारतीय मुसलमान उनका साथ दे रहे थे। काबुल में कम्यूनिस्ट शासन का ऑख मूंद कर साथ देने से भारतीय मुसलमानों का अलग-थलग करने वाले परिणाम निकल सकते थे। इससे आई.एस.आई. और सी.आई.ए. को कश्मीर और भारत के दूसरे मुस्लिम-बहुल क्षेत्रों में उपद्रव भडकाने का मौका मिल सकता था। इस पर मुझे यह प्रवचन दे कर चुप करा दिया गया कि इस समय अफगान शासन को हमारे राजनयिक समर्थन की नितांत आवश्यकता है। इस निषिद्ध क्षेत्र मे गुप्तचर तंत्र का कोई काम नहीं है।

भारतीय कम्यूनिस्टों ने मेरी सामाजिक या राजनीतिक भावनाओं को कभी प्रेरित नही किया। सही या गलत कारणों से मैं उनको भारत में सोवियत या चीनी हितों का विस्तार मानता था। उनमें से बहुत कम ऐसे थे जिन में बोल्शाई क्राति के आदर्शों की प्रतिबद्धता थी। भारतीय समाज में एकता लाने, अंधअल्पसंख्यकता या जातिवाद के विरुद्ध संघर्ष करने के नाम पर उन्होंने कभी कुछ नहीं किया। वे सशस्त्र क्राति करने के लिहाज से बहुत बुजदिल थे। भारत जिन सामाजिक व आर्थिक रूढियों में जकडा था उनको तोडने के लिहाज से वे बहुत बुर्जुआ थे। भारतीय कम्यूनिस्ट सर्वहारा न थे। वे केवल सर्वहारा वर्ग के नारों के दम पर अपनी जेबें भरना जानते थे। उनमें से कुछ जरूर कम्यूनिज्म के प्रति प्रतिबद्ध थे। लेकिन अधिकांश इंदिरा गॉधी की बाद में बनाई बी. टीम के सदस्य थे।

कठिन परिश्रम से की गई मेरी शोध और गहरी पैठ के नतीजे सामने आए। चार से अधिक केंद्रीय मंत्रियों और दो दर्जन से अधिक सांसदों का पता चला जो के.जी.बी. के सचालकों से नियमित धन लेते थे। इनमें से कुछ अब भी मौजूद हैं। इनमें से एक पत्रकार था। आजकल वह एक बंबइया उद्योगपति का वेतनभोगी है। वह अपने आप को सदाबहार 'समस्याओं का समाधान करने वाला,' पाकिस्तानी विषयों का विशेषज्ञ और ट्रैक-2 कूटनीति का अवतार बताता है। स्पष्ट कारणों से मैं उन सब का नाम नहीं लेना चाहता।

प्रसंगवश अभी हाल में सोवियत पक्षत्यागी वासिली मित्रोखिन ने अपनी पुस्तक *दी के.जी. बी. एंड दी वर्ल्ड* में भी देश के कुछ प्रमुख राजनीतिज्ञों तथा शीर्ष कम्यूनिस्टों द्वारा के.जी.बी. से धन लेने की चर्चा की है। उनकी बात में सच्चाई है और इसकी पुष्टि अनेक प्रकार से हो चुकी है कि अनेक राजनीतिज्ञ और अनगिनत कम्यूनिस्ट के.जी.बी. सचालको से पैसा पाते थे। जैसाकि मैं ऊपर भी कह चुका हूँ कि हमारी अपनी टीम की खोज और निगरानी का यही निष्कर्ष निकला था। पर यह कहना कि प्रमोद दासगुप्ता जैसा ईगानदार व्यक्ति आई बी. से नियमित धन लेता था, या इंदिरा गाँधी ने कभी सीधे धन लिया बिल्कुल बेबुनियाद और बेतुकी बात होगी। सोवियत संघ से भी श्रीमती गाँधी के जो संबंध व संपर्क थे वे पूर्णतः कूट-योजना पर आधारित थे। उन्होंने उन संबंधों का इस्तेमाल अपनी सरकार को स्थिरता प्रदान करने के लिए किया। इसी तरह प्रमोददास गुप्ता का घरबार , परिवार कुछ न था। वह अलीमुद्दीन स्ट्रीट पर एकदम सादे ढंग से रहते थे। उनको धन का लोभ नहीं था।

के.जी.बी. की घुसपैठ का सबसे आश्चर्यजनक क्षेत्र रक्षा मंत्रालय रहा। साथ ही सशस्त्र सेनाओं के वे विभाग जो सैनिक साजसामान खरीदने का काम करते हैं। इन दमकते सितारों की मेरी सूची को देख कर मेरे बॉस खुश नहीं हुए। मुझे यह सूचनाएँ अपने अभिलेखागार में सुरक्षित रख लेने की राय दी गई। किसी में इतना हौसला नहीं था कि वह सोवियत लक्ष्यों के बारे में सरकार को जानकारी दे।

सोवितय संघ की इतनी गहरी घुसपैठ ने मुझे अचंभे में डाल दिया। मुझे इससे धक्का भी लगा। वामपंथियों के नियंत्रण में प्रकाशित होने वाली बहुत सी पत्रपत्रिकाओं के बारे में अध्ययन करने पर पता चला कि प्रत्यक्ष सगठनों को भी सोवियत दूतावास से पर्याप्त सहायता राशि मिलती थी। बहुत से लेखक,कवि और कलाकार भी उनसे नियमित धन पाते थे। उनमें से एक दर्जन से अधिक पारस्परिक संबंधों की मीटिंगों, शिक्षा या उपचार के लिए नियमित रूप से सोवियत धडे के देशों को जाते थे। यह सूची इतनी लंबी थी कि इन सब पर नजर रखना असंभव ही था। इनमें से एक संसद सदस्य का मामला बडा दिलचस्प था जिनको इंदिरा गाँधी की किचन केबिनेट के कुछ विशेष विषयों की जानकारी पहुँचाने के लिए सोवियत दूतावास से वेतन मिलता था। वास्तव में सोवियत बडी संख्या में शिक्षाविदों, साहित्यकारों कलाकारों और राय कायम करने वालों को प्रभावित करने में काफी हद तक सफल रहे थे।

मेरी गतिविघि की ओर एक वामपंथी मुस्लिम बुद्धिजीवी का ध्यान गया। वह इतिहास और कूटनीतिक विषयों में महारत रखने का दावा करते थे। वह मुझसे विश्वविद्यालय के एक मित्र के माध्यम से मिले। वह चाहते थे कि मैं सोवियत दूतावास के एक राजनयिक से मिलूँ। उन का दुस्साहस देख मैं स्तब्ध रह गया। मैंने यह पेशकश ठुकरा दी और इस बारे में अपने वरिष्ठ अधिकारियों को भी सूचित कर दिया। इस बुद्धिजीवी विशेषज्ञ ने इंदिरा गाँधी के आसपास की मंडली के कुछ सदस्यों से संपर्क बना रखे थे। वह अपने आप को भारत की सोवियत समर्थक अफगान नीति का प्रवर्तक समझते थे। उन्होंने अपने आसपास कुछ निर्वासित पख्तून इकट्ठे कर लिए थे। इसे वह पाकिस्तानी और अफगान पख्तूनों के विरुद्ध भारत का हरावल दस्ता बताया करते थे। दरअसल रूबल में उन की आस्था ने उनको अंधा कर दिया था। उनको अफगानिस्तान की कबीलियाई नीतियों की वास्तविकता दिखाई नहीं देती थी। उनको शीर्ष पख्तूनों की वह भूमिका भी दिखाई नहीं पड रही थी जिस के तहत वे वर्तमान पाकिस्तान के पख्तून बहुल इलाके का एकीकरण भारत के साथ करने की मांग कर रहे थे।

बहरहाल मेरा सोवियत काउंटर-इंटेलिजेंस का कार्यकाल सीमित ही रहा। मैंने कई सामर्थ्यवानों की दुम पर पैर रख दिया था। साथ ही कम्यूनिस्टों और शासकदल में से भी कुछ के अत्यंत प्रिय धुंधलके को आलोकित करने का दुस्साहस भी किया था।

मेरे लिए अज्ञात कारणों से मुझे दिल्ली के सहायक इंटेलिजेंस ब्यूरो की बागडोर संभालने का आदेश दिया गया। मैं निश्चित रूप से नहीं कह सकता था कि ऐसा कैसे हुआ। बहुत बाद में मुझे पता चला कि प्रधानमंत्री कार्यालय की इच्छा से मेरी इस पद पर नियुक्ति हुई थी। इस पद से सत्ता के केंद्र के कुछ ' गंदे काम ' करने की अपेक्षा रखी जाती है।

18

खुली आग पर भूने गए

एक आदमी की गलतियाँ उसके समय की गलतिया होती हैं।
जबकि उसके गुण उसके अपने होते है।

डबलू. बान गोएटे

मेरी दिल्ली एस आई बी में नियुक्ति कोई उपलब्धि न थी। कोई जीवित मछली अपने विकृत होठों से मुसकरा नहीं सकती जब उसे रसोइया पानी की हौदी से निकाल कर धधकती आग पर भूनता है। मैं अच्छी तरह समझ गया था कि मुसीबत के दिन आने वाले है। आग का काला धुऑ ज्यादा दूर न था।

दिल्ली का सहायक इटेलिजेंस ब्यूरो अपने दोगले चरित्र के लिए मशहूर है। वह एक सहज साधन है जिसका इस्तेमाल तरह-तरह के इंटेलिजेंस कार्यों के लिए किया जाता है। इन कामों की प्रकृति निदेशक आई बी. के मुख्य उपभोक्ताओं की तात्कालिक आवश्यकताओ के अनुरूप होती है। ये विभिन्नताएँ घडी के पेंडुलम की तरह झूलकर कुछ से कुछ हो सकती है। एक दिन ये इदिरा गॉधी और उनके परिवार के सदस्यो की गतिविधियों पर नजर रखना हो सकती हैं। दूसरे दिन स्पष्ट आदेश आ सकते हैं कि मेनका गॉधी, मोरारजी देसाई और आई.के गुजराल पर नजर रखो। किसी काम का निर्धारण कठिन था। काम फोन पर या व्यक्तिगत बातचीत के दौरान दिए जाते थे और परिणाम के लिए बहुत कम समय होता था। यह पहले और आज भी भाग कर काम करने वाले चाकर का काम रहा है। इस कार्यालय के बहुत उपयोगी ढॉचे के बावजूद यहाँ बहुत कम आदर्श इंटेलिजेस का एकत्रीकरण होता है।

लिहाजा मैं उस सहायक इटेलिजेंस ब्यूरो के दिल्ली कार्यालय में पहुँच गया। मैंने वह विशिष्ट कुर्सी एच एन भार्गव की जगह पर संभाली। उनको बाहर का रास्ता दिखाया गया था। इल्जाम यह था कि वह जनता पार्टी के कुछ नेताओं के निकट थे। उन्होंने पूर्वाग्रह से ग्रस्त हो कर इंदिरा गाँधी के खिलाफ भी कुछ हरकतें की थीं। मैंने उनसे कोई जन या संचलन साधन विरासत में नहीं लिए। भार्गव ने मुझे सिर्फ एक दोस्त से मिलवाया था। वह एस के. जैन थे जो बाद में जैन हवाला कांड में कुख्यात हुए। मैं उनके साथ स्थायी पेशेवर दोस्ती कायम नहीं कर पाया। एक बडे संवेदनशील मामले में उन्होंने मुझसे बिहार के एक कांग्रेस नेता के लिए एक ब्रीफकेस ले जाने को कहा। ये नेता इंदिरा गॉधी के बहुत करीब होने का दावा करते थे। मुझे यह काम करने के लिए 10000 रुपए देने की पेशकश भी की गई। मैं उनकी ढिठाई से दंग रह गया। मुझे अब कोई शक नहीं रहा कि उन्होंने अपने आई.बी. के जानकारों का इस तरह के नेक कामों में जरूर इस्तेमाल किया होगा। मैंने पेशकश ठुकरा

दी और इसके साथ ही हमारे संबंध भी समाप्त हो गए। उन्होंने मेरा पीछा भी नहीं किया। शायद उन जैसी गहरे समुद्र में तैरने वाली शार्क मछली के लिए मै बहुत तुच्छ प्राणी था।

मुझे कोई गलतफहमी न रही कि इस क्षेत्रीय यूनिट में मेरी तैनाती मेरे गले का फंदा ही थी। मैं आग से खेलने में किसी से कम न था। लेकिन मैं इस जटिल और भूल-भुलैया वाले राजनीतिक व प्रशासनिक बूचडखाने के लिए नया था जिसमे कोई महाधूर्त या महामूर्ख ही बचा रह सकता था। मैं इन दोनों में से न था।

आर के. धवन और इदिरा गॉधी के साथ मेरे सपर्क ने मुझे षडयंत्रकारियों, चालबाजों और ब्रीफकेसवाहकों के खास क्लब का टिकट तो दिलाया नहीं था। मैं तो जहॉ का तहॉ था। एक मामूली इंटेलिजेंस संचालक, जिसे अभी मुंह में राम बगल में छुरी रख कर बेरहमी से छलयोजनाएँ चलाने का जादू सीखना था। मैं इस काम के अयोग्य था। पर मैं इस काम पर लगा दिया गया था।

पहला काम मुझे यह सौंपा गया कि सारे कागज छान कर जनता शासन के दौरान उत्पादित इंदिरा गॉधी और उनके परिवार के सदस्यों से संबधित समस्त सामग्री खोज निकालूँ। सारा कचरा बीनने मे मुझे सात दिन लग गए। अंततः मैंने इंदिरा गॉधी, सजय गॉधी और मेनका के विरुद्ध कुछ संवेदनशील रिपोर्टे खोज निकालीं जिनमें उनको अच्छे रूप मे नहीं दर्शाया गया था।

कुछ कागजात में उन विश्वासी लोगों की तिजोरियों की तरफ भी संकेत किया गया था जिनके पास संजय का नाजायज पैसा संभाल कर रखा हुआ था। इनमे से कुछ कागज मेनका, उनकी मॉ अमतेश्वर और बहन अंबिका के बारे में बडी मनोरजक बाते बयान करते थे। वे अपनी तरह के सितारे थे। पर इस तरह के सितारे कुछ विशेष परिवेश मे ही अपनी दमक दिखाते हैं।

कागजों का एक पुलिंदा सजय गाँधी के एक मुस्लिम महिला और पजाब की कथित सुंदरी के साथ आरोपित प्रेम सबंधो की चर्चा से भरा था जो बाद में कांग्रेस की महत्वपूर्ण नेता बन कर उभरी। कहना मुश्किल है कि इन रिपोर्टों में कुछ दम था या ये सिर्फ प्रधानमत्री के दूसरे बेटे को बदनाम करने के लिए गढी गई थीं।

इन कागज़ों को फाइल से निकाल लिया गया। फिर उनको बद लिफाफे मे उपयुक्त अधिकारी के सुपुर्द कर दिया गया। मुझे यह पूछने का कोई अधिकार नहीं था कि उन कागजों का क्या हुआ या उनको कहॉ रखा गया। मेरे जिस तरह "मा फलेषु कदाचनः!" का आदेश द्वारिकाधीश से पांडु पुत्र को मिला था, उसी तरह आज्ञापालन के सिवा मेरे पास कोई चारा न था। मैं किसी परिणाम की आशा नहीं रखता था। इंदिरा, संजय या मेनका की निजी जिंदगी पर सरकारी रिपोर्टों की विषायवस्तु में मेरा विश्वास न था। ऐसी रिपोर्टें राजनीति-प्रेरित हो सकती थीं।

मुझे उन दस्तावेजों के बारे में कुछ चर्चा कर के गोपनीयता का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। लेकिन एक दस्तावेज ऐसा भी था जो इंगित करता था कि संभवतः संजय के पास इंदिरा गॉधी के व्यक्तिगत जीवन से संबंधित कुछ कागज थे। इस में जनता पार्टी के एक मंत्री से इस बारे में पूछे गए एक सवाल का भी हवाला था। जिसके जवाब में उस कागज को पेश करने वाले ने अपनी असमर्थता जताते हुए कहा था कि इस अत्यंत महत्त्वपूर्ण दस्तावेज को

पाना संभव नहीं है। उसकी राय में शायद संजय की पत्नी ने उसे अपनी माँ के घर के बजाय कहीं और संभाल कर रख छोडा था।

ऐसा नहीं है कि उस समय मेरे दिमाग में संजय का अपनी माँ पर जादुई नियत्रण कौंधा न हो और मैंने उसके संभावित कारणों पर विचार न किया हो। पर मुझे एक माँ और उसके बेटे के संबंधो में आ रही खटास या फिर एक बहू के इंदिरा के जीवन मे अतिक्रमण करने के बारे में सिर खपाने का क्या हक था, वह बहू जिसे इंदिरा कुछ नहीं समझती थीं। दुर्भाग्यवश कुछ बाद में मुझसे उनकागजों को ही खोज निकालने का काम सौंपा गया। यह एक और अनर्थकारी वाकया था जिसके बारे में विस्तृत चर्चा मैं बाद में करूँगा।

इस नए काम के लिए मुझे व्यक्तिगत रूप से 18 घंटे रोज देने पडते थे। मुझसे चिराग के जिन्न की तरह जो कुछ माँगा जाए पेश करना होता था। यह माँग मेरे निदेशक आई बी. या फिर प्रधानमंत्री के सदा मुसकराने वाले विशेष सहायक आर के धवन की ओर से आती थी। मेरा दफ्तर क्या था, निदेशक आई.बी., प्रधानमंत्री निवास और प्रधानमंत्री कार्यालय की विशेष शाखा था।

मुझे पाठकों को एक और बात बता देनी चाहिए। मेरी एस.आई.बी में तैनाती और मेरे आई.बी. निदेशक व प्रधानमंत्री निवास, प्रधानमंत्री कार्यालय में कुछ लोगों के साथ मेरी निकटता ने मेरे व्यक्तित्व में वास्तविकता से कुछ ज्यादा ही चमक ला दी थी। मुझे अचानक इस बात का भान हुआ कि सामाजिक हल्कों में मेरी पूछ अचानक बहुत बढ गई है। बहुत से प्रशासक और शासकदल के नेता मुझ पर ध्यान देने लगे थे। ऐसा नहीं कि उन्होंने मुझे 'और कुछ' देने की कोशिश नहीं की। यह 'और कुछ' साफ सुथरे पैकेटो में लिपटा होता था जो बहुत दुबले नहीं होते थे। अभी मैं ब्रीफकेस के लायक नहीं हुआ था। पर मैंने वे पैकेट लेने से मना कर के अपने शुभचिंतकों को निराश कर दिया। मुझे कोई भ्रम नहीं था कि मेरा आज वास्तविकता नहीं है। मेरे लिए मेरा आने वाला कल अधिक महत्व रखता था। मैं वही कर रहा था जो कोई और भी अधिकारी इन हालात में करता।

यहाँ मैं एक हास्यजनक घटना की चर्चा करना चाहूँगा। मेरे साथ आई.ए.एस. का कोर्स करने वाले एक साथी ने एक दिन मुझे फोन किया। उसकी आवाज में बडा प्यार उमड रहा था। उसने मुझे अपने दफ्तर में एक कप चाय पीने की दावत दी। वह एक मंत्री के साथ संबद्ध था। मैं इस अचानक फोन से हैरान हुआ। मैं साधारण बगाली शरणार्थी परिवार से था। मैने भारतीय प्रशासनिक हल्के में भले ही प्रवेश पा लिया था पर मैं इतना संभ्रात और समृद्ध न था कि अपने दोस्तों की जमात में शरीक हो सकूँ। वे अधिक धन कमाते थे और मुझसे बडा सामाजिक रुतबा रखते थे। मैं उस तबके में से न था।

बहरहाल उस भव्य कक्ष में मेरा कॉफी और केक के साथ सत्कार किया गया। मुझे बताया गया कि आदरणीय मंत्री महोदय मुझसे मिलना चाहते हैं।

मेरा स्वागत बडा भावपूर्ण था। मैं बहुत प्रभावित नहीं हुआ। मैं जानता था कि वह जो कह रहे थे उसके कुछ मानी नहीं थे।

उनका अनुरोध सीधा-सा था--क्या मैं बंबई के एक उद्योगपति से मिल कर उनकी मदद कर सकता हूँ? क्यों नहीं? मुझे किसी से मिलने में क्या दिक्क्त थी। यह तो मेरे काम का एक हिस्सा था।

मन्त्रीजी ने किसी को फोन किया। फिर मुझे बताया कि मैं उद्योगपति से होटल ताज मानसिह के एक सुइट मे मिल लूँ। मुलाकात उसी दिन हुई। उस उद्योगपति की ऑखो की चमक,चौडी मुसकान और सहज मेहमाननवाजी से मै बहुत प्रभावित हुआ। उनको यह जान कर आश्चर्य हुआ कि मै सुनहरे तरल का बहुत कद्रदान न था।

"मुझे एक छोटी-सी मदद चाहिए।"

"कोई बात नही। बशर्ते उससे मेरे काम के नियमो का उल्लधन न होता हो।"

"मुझे पता है आप बबई के कस्टम कलेक्टर पडारकर (परिवर्तित नाम) को अच्छी तरह जानते है। मुझे उनसे कुछ मदद चाहिए।'

"यह तो बडी बात नही। मन्त्रीजी उनको फोन कर सकते है।"

"यह नही हो सकता। कृपया उनसे मेरी मुलाकात करवा के मेरी मदद करे।

मैं इस साधारण से अनुरोध की पृष्ठभूमि से परिचित न था। पुरी समिति मे अपने अल्प कार्यकाल के दौरान मेरी पडारकर से मित्रता हुई थी। उसकी ईमानदारी और सरलता से बहुत प्रभावित हुआ था। उसने मेरी इस सेवा के जरिये अधिकारियो के बारे मे राय बदल दी थी। वह फिल्मो में दिलचस्पी रखता था। खासतौर पर फिल्म निर्माण की प्रकिया मे। आर के स्टूडियो मे एक फिल्म की शूटिग हो रही थी। मैने उस मौके का फायदा उठाया।

मैने पांया कि पडारकर को उद्योगपति से मिलने के लिए राजी करना आसान नही। उसने उद्योगपति द्वारा आयातित मशीनो के मामले मे गभीर अनियमितताओ की लबी कहानी सुनाई। उसने बताया कि मामला 'उच्च अधिकारियो 'के हस्तक्षेप से जून 1980 मे सुलटाया जा चुका है। मेरी एक ऐसे इन्सान से दोस्ती हुई जिसके भाग्य मे राजनीतिज्ञो और प्रशासको की जेबे और आत्मा को भेदना तथा उद्योग जगत मे शीर्ष तक पहुँचना लिखा था। यह नए परिचित थे धीरूभाई हीरूभाई अबानी। जिन हालात मे हम मिले उनका प्रभाव बहुत अच्छा नही पडा था। पर 1993 के आरभ मे मैने उनको नए तरीके से जाना-समझा।

* * * *

उन्ही दिनो मे 23 जून के दुर्भाग्यपूर्ण दिन से कुछ पहले मुझे दो सवेदनशील विषयो पर इटेलिजेस एकत्र करने को कहा गया। इनमे से एक का सबध समानातर प्रधानमत्री आवास/प्रधानमत्री कार्यालय बनने से था। यह 1, सफदरजग रोड के अलावा था जहॉ धवन सब काम देखते थे। चुपचाप पता लगाने पर सत्ता के एक नए केद्र के उभरने की जानकारी मिली। यह केद्र धवन के विरुद्ध था और सजय गॉधी की मडली का हिमायती था। एम एल फोतेदार उस मडली मे एक शक्तिशाली हस्ती के रूप मे उभर रहे थे। वह धवन को काटने की कोशिशे जानबूझ कर कर रहे थे।

धवन ने 'परिवार के प्रति 'अपनी अडिग वफादारी का ऐलान करने मे कभी सकौच नही किया। वह इदिरा गाँधी के प्रति अत्यधिक वफादार थे। लेकिन परिवार के कुछ सदस्य उन पर भरोसा नही करते थे। दिल्ली मे दरबार के वफादारों की कोई कमी नही। वह दरबार के प्रति वफादार रहते हैं। चाहे दरबार का मुकुट जिसके भी सिर पर हो। धवन व्यक्ति इदिरा गाँधी के प्रति वफादार थे। उनके मुकुट के प्रति नही। उन्होंने बुरे दिनो मे उनका साथ नही छोड़ा।

जैसा कि मैंने कहा, अकबर रोड के उपभवन मे सत्ता का एक और केद्र उभर रहा था। कुछ समय तक जगदीश टाइटलर इस मडली के अध्यक्ष रहे। कमलनाथ अक्सर उन पर छा

जाते। अरुण नेहरू और पायलट सतीश शर्मा भी पास ही मडराते रहते। लेकिन स्थूलकाय नेहरू और सलेटी आंखों वाले पायलट पर रांजय को विश्वास न था।

इंदिरा दरअसल सजय के प्रति वफादार बाहुबलियों और देश का शासन चलाने की नाममात्र कुशलता वाले कथित राजनीतिज्ञों से घिरी थीं। वे अपने साथ बाहुबल, अपराध और ठगी के अतिरिक्त मूल्य ले कर आए थे जिन पर इंदिरा का बहुत कम नियंत्रण था। मुझे कई बार यह देख कर दुख होता कि वह इन ठगों पर भरोसा करती थीं न कि अपेक्षाकृत सुलझे लोगों पर।

मेरे पास यह जानने का कोई साधन नही था कि प्रधानमंत्री निवास/प्रधानमत्री कार्यालय विषयक मेरे अध्ययन को उच्च अधिकारियों ने पसद किया या नहीं।लेकिन इसके परिणाम चौंकाने वाले थे।

यह धारणा बनती जा रही थी कि इंदिरा धवन को हटाने के कगार पर हैं। उनके स्थान पर संजय के चहेते वी.एस. त्रिपाठी (आई. ए. एस. अधिकारी) के आने की संभावना है।

मैं त्रिपाठी से पहली बार धवन के विलिंगडन क्रिसेंट कार्यालय में मिला था। वह वहाँ कुछ फाइले नियमित रूप से लाया करता था। उसने संजय और फोतेदार का विश्वास जीतने में अधिक समय नही लगाया। धवन ने भी प्रधानमंत्री कार्यालय तक उसकी पहुंच बनाने की गलती की। यह एक गलत चुनाव था। उत्तर प्रदेश के इस ब्राह्मण के बारे मे सब कहीं मशहूर था कि वह अपनी जान-पहचान का अगली तरक्की के लिए इस्तेमाल करता है। सजय की दुर्घटना में मौत के तुरंत बाद उसने भी प्रतिकूल रवैया अपना लिया था।

मेरा अनुमान कि इंदिरा का धवन पर विश्वास कम नहीं हुआ है, सही साबित हुआ। वह संजय के लिए एक नया सत्ता केंद्र विकसित होने दे रही थीं। देश के इस युवा नेता को अपने ऐसे वफादार ओहदेदारों की जरूरत थी जो उसके देश का शासन चलाने के फलसफे को समझते हों। संजय अपनी माँ से विरासत में मिलने वाले भारत को एक अलग ही स्वरूप देना चाहता था। यह स्वरूप आपात्काल के नक्शे से बहुत भिन्न न था। 160 से अधिक वफादार सांसदों की सहायता से वह भारत को इंदिरा के उसका अभिषेक करने से पहले भी हासिल कर सकता था।

आपात्काल में धवन की सजय के साथ कथित मिलीभगत दरअसल विश्वासयोग्य नही है। वह भी इंदिरा गाँधी की तरह ही अपने अस्तित्व को बचाने और बढाने के लिए संजय के आदेश मान रहे थे।

* * * *

23 जून 1980 को संजय कैप्टन सक्सेना के साथ पिट्स एस-2ए. के साथ धराशायी हुआ तो मुझे बहुत बुरा लगा। एक माँ ने अपना लाडला बेटा और राजनीतिक वारिस खो दिया था। एक युवती ने अपना पति खो दिया था, एक बच्चे ने अपना पिता।

सुबह 8 बज कर 10 मिनट या सवा 8 का समय होगा। मेरे दिवालिया दक्षिण भारतीय उद्योगपति मित्र का फोन आया। वह खुद को प्रधानमंत्री निवास के करीबी बताते थे।

"तुम ने खबर सुनी?"

"क्या खबर? रात कौन किस के साथ सोया?"

"मजाक मत करो। उन्होंने उसे मरवा डाला है।"

"किरा ने किस को मरवा डाला है, साफ-साफ बोलो।"

"इंदिरा ने संजय से छुटकारा पा लिया। वह अभी-अभी धीरेंद्र ब्रह्मचारी के नए विमान के साथ जमीन पर आ गिरा है।"

"तुम ऐसा कैसे कह सकते हो। कोई माँ अपने बेटे के साथ ऐसा नहीं कर सकती। "

"यह दिल्ली है प्यारे,, "मेरा दोस्त मजाकिया लहजे मे बोला,"दरबार साजिशों से बनते और बिगडते हैं। वह उनके गले की फास बन गया था। "

"बेवकूफी की बाते मत करो। "

मेरे पास इदिरा के एक हताश दोस्त के आरोपों पर गौर करने का समय न था। मैंने अपने निदेशक को फोन करके जो सुना था उसकी सूचना दी और दुर्घटनास्थल की ओर भागा। मैं वहाँ साढे आठ के करीब पहुंचा। इंदिरा गाँधी, धवन और कुछ अन्य राजनीतिज्ञ वहाँ पहले से मौजूद थे। मैने शोक में डूबी माँ को बहुत करीब से देखा। वह एक ट्रक में रखे अपने बेटे के मृत शरीर को एकटक देख रही थीं। उन्होंने अपना मुंह अपनी हथेलियो से ढक रखा था और उनके स्याह पड गए गालों से आँसू ढुलक रहे थे।

मुझे मृत शरीर और इंदिरा के साथ लोहिया अस्पताल तक जाने का आदेश मिला। इस दौरान मैंने अपने आदमियों को दुर्घटनास्थल, 1 सफदरजंग रोड, लोहिया अस्पताल और ब्रह्मचारी के निवास पर तैनात कर दिया था। मैं विमानन विशेषज्ञ तो न था, पर मैंने सफदरजंग हवाई अड्डे के एक व्यक्ति से संपर्क कर लिया। उससे मैने विमान के बारे में और आखिरी उडान से पहले सजय की गतिविधियों का विस्तृत ब्योरा पा लिया। मुझे बताया गया कि सजय ने ग्राउंड स्टाफ को विमान की रोजमर्रा की तकनीकी जाँच करने के लिए पर्याप्त समय नहीं दिया था। उसको यह नई चिडिया पसंद थी और वह रोमाँचक आनंद लेने की जल्दी में था।

फील्ड स्टाफ ने मुझे बताया कि संजय के शव को वापस सफदरजग आवास पर ले जाए जाने के बाद इदिरा और धवन विमान के मलबे वाले स्थान पर दोबारा गए थे। उन्होने धवन की सहायता से मलबे के कुछ हिस्से की छानबीन की। वे वहाँ पर कोई 20 मिनट तक रहे। मेरी इस दूसरी बार वहाँ जाने की व्याख्या यह थी कि इदिरा माँ की हैसियत से उस स्थान की तरफ खिंची चली गई जहाँ उनका प्यारा बेटा हादसे का शिकार हुआ था! लेकिन मैं जिस प्रधानमंत्री आवास के निकटवर्ती मित्र का जिक्र ऊपर कर आया हूँ वह मुझसे सहमत नहीं थे।

"क्या हाल है, जनाब?"

सर्वज्ञाता मित्र ने फिर फोन किया।

"मेरे खयाल से मैं तो ठीक ही हूँ। आ जाओ, एक कप कॉफी पीते हैं।"

"बड़ी खुशी से।"

वह मेरे कार्यालय पर पधारे। बंद दरवाजे में कॉफी की चुस्की लेते हुए उन्होंने गाँधी परिवार के कुछ राज बयान करने शुरू किए।

"तुम बहुत सीधे हो धर," गाँधी-नेहरू परिवार के कथित मित्र ने शान बघारते हुए कहा, "संजय कोई हिंदुस्तानी मातृभक्त न था। उसके पास एम.ओ. मथाई की किताब के विवादास्पद अप्रकाशित अध्याय थे। "

"पर वह इनका इस्तेमाल अपनी माँ के खिलाफ क्यों करता? कोई बेटा अपनी माँ की बदनामी नहीं चाहता।"

"आम तौर पर नहीं। पर हम आम आदमी की बात नहीं कर रहे हैं। संजय ने अपने पिता के कुछ गुण विरासत में पाए। लेकिन बहुत से दुर्गुण भी पाए। "

"प्यारे दोस्त,"मैंने उनकी बात को नकारते हुए कहा, "तुम्हारी कहानी दिल्ली की कुछ मशहूर महफिलों के लिए अच्छी है। लेकिन यह एक इंटेलिजेंस संचालक के भेजे में नही बैठ सकती। मुझे सच्चाई की तह तक जाने की आदत है। "

"जब सच्चाई प्रत्यक्ष नहीं दिखती तो वह अफवाह का भेस बदल कर आती है। "

"एक बहुत उलझे हुए मामले की इस दार्शनिक व्याख्या के लिए धन्यवाद। पर यह उम्मीद मत रखना कि मैं अपने उच्च अधिकारियों को इस तरह की कोई रिपोर्ट दूँगा। "

"अब यह तुम्हारी मुर्गी है। जैसे चाहो पकाओ। लेकिन दस्तावेज अब मेनका के पास है। एक और ब्रह्मांडकारी घटना समझो। गाँधी परिवार में आने वाला सूर्यग्रहण साबित कर देगा कि सूर्य वहाँ था।"

"तुम्हारा मतलब क्या है?"

"देखो बहुएँ क्या गुल खिलाती हैं। बडा विनाशकारी विस्फोट होगा, रचनात्मक नहीं।"

कद्दावर तमिल ब्राह्मण मुस्कराते हुए उठ खडे हुए।

"तुम इटेलिजेंस वाले नहीं जानते कि इंदिरा के दिमाग के पावर हाउस में क्या पक रहा है। तुम लोग घटनाओं का अनुसरण करते हो। मैं उनके चरित्र की गंध सूँघता हूँ। मैंने मेनका के परिवार को भी बहुत नजदीक से देखा है। "

मै उनके चेहरे की रहस्यमय मुसकराहट का अर्थ न समझ पाया। पर मैंने इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं किया कि वह दिल्ली के दूसरे गप हाँकने वालो से भिन्न हैं। उनकी मेनका के परिवार में गहरी घुसपैठ है और इंदिरा गाँधी के घर उनका बेरोकटोक आना-जाना है।

दुखद दुर्घटना में संजय की मौत के बाद इंदिरा की सदमा सहने की क्षमता के बारे में बहुत कुछ लिखा गया है। उनका अत्यंत प्रिय पुत्र और वारिस चल बसा था। फिर भी 26 जून को उन्होंने कुछ महत्वपूर्ण सरकारी फाइलें देखीं। 27 को वह वापस काम पर आ गईं। इंदिरा ने भाग्य की दुखद घटनाओं को सहन करते हुए जीने और काम करने का अदम्य साहस दिखाया था।

मुझे उनसे थोडी देर के लिए मिलने का मौका मिला। वह अपने परिजनो और पारिवारिक मित्रों की भीड से बडी शालीनता से अलग हो कर बराभदे तक आईं जहाँ मैं उनके निजी सेवक नत्थू के पीछे खडा इंतजार कर रहा था। उनके चेहरे पर चिरपरिचित मुस्कान न थी। उनकी बरौनियों पर भी आसुंओं की बूंदें थी। मैंने चुपचाप उनका अभिवादन किया। उन्होंने इसका जवाब अपने उदास होठों को मोड कर दिया।

संजय की मृत्यु से इंदिरा के रवैए में बहुत परिवर्तन आया। बडी बहू अपनी सास की प्रिय बन गई थी। इसके पीछे कोई सोचा-समझा कारण न था। मुझे यह राय बनाने में कोई दिक्कत नहीं हुई कि सोनिया परिवार में घुलमिल गई थीं। वह सच्ची पत्नी और माँ थीं। उन्हें राजनीतिक कोलाहल और गर्दगुबार पसंद न था जिसे संजय प्यार और पूजा से भी अधिक महत्व देता था। जानकार सूत्रों का कहना था कि वह संजय और मेनका के तौर-तरीकों के प्रति अपनी अरुचि को बहुत छिपाए हुए न थीं। इंदिरा को जब 1, सफदरजंग रोड छोड कर मुहम्मद यूनुस के 12, विलिंगडन क्रिसेंट वाले घर पर जाना पडा तब सोनिया ने उनके सारे व्यक्तिगत और गाँधी परिवार के काम संभाल लिए थे। सोनिया अपनी निजी जिंदगी से खुश थीं जिस में उनके पति, बच्चे और कुछेक मित्र थे।

इंदिरा की सोनिया पर बढ़ती निर्भरता स्पष्ट थी। सोनिया और उनके बच्चों के मुस्कराते चेहरे उनका सारा तनाव दूर कर देते थे। राजीव गाँधी भी अपनी माँ के साथ सहारे के लिए चट्टान की तरह अडिग खड़े थे। पर उन्होंने आस-पास मंडराने वाले राजनितिक लकडबग्घों से निश्चित दूरी बनाए रखी।

एक और व्यक्ति को इंदिरा गाँधी के निकट देखा गया, वह धीरेंद्र ब्रह्मचारी थे। उनकी इंदिरा से निकटता पर बहुतों ने टिप्पणी की। कुछ ने गलत जानकारी के कारण तो कुछ ने जलन के कारण। इंदिरा बहुत गतिशील व्यक्तित्व रखती थीं। वह जवाहरलाल की आध्यात्मिक वारिस थीं। नेहरू परिवार पर वंशानुगत महत्वाकांक्षाओं का आरोप लगाया जाता है। पर हमें यह नही भूलना चाहिए कि अधिकांश भारतीयों की तरह इंदिरा भी सामंती परिवेश में पल कर बड़ी हुई थीं। वह पूरी निष्ठा से महसूस करती थीं कि उनको भारत के भाग्य की रूप-रेखा संवारने में भूमिका अदा करनी चाहिए।

वह एक परिष्कृत और आधुनिक महिला थीं। पर वह अधविश्वास, तंत्र-मंत्र, भाग्यवाद के विश्वास में भी लिप्त थीं। धीरेंद्र ब्रह्मचारी और ऐसे ही दूसरे धूर्त जल्दी से कुछ कमाई करने के चक्कर में रहते थे। उन्होंने इंदिरा की इस मनोवृत्ति का भरपूर फायदा उठाया। इसे नीचे दिए उदाहरण में देखा जा सकता है।

मुझे उस समय बहुत हैरानी हुई जब इदिरा के मंत्रिमडल के एक मंत्री के बारे में पता करने को कहा गया कि क्या वह महामारण यज्ञ करवा रहे हैं। बताया गया कि यह यज्ञ शायद निगमबोध श्मशानघाट से परे यमुना किनारे किया जा रहा है। मैंने यह काम किसी मातहत को नहीं सौंपा बल्कि खुद ही दो दिन तक श्मशानभूमि में इस तथ्य की पुष्टि के लिए घूमता रहा। वह मंत्री श्मशानघाट आए जरूर थे, पर एक संबंधी के अंतिम संस्कार के लिए न कि यज्ञ करवाने के लिए।

मेरी खोज के परिणाम से इंदिरा गाँधी के एक सहायक (धवन नहीं) की सतुष्टि नहीं हुई। उन्होंने दावा किया कि ब्रह्मचारी से मिली सूचना एकदम सही और विश्वसनीय है। मैंने कहा कि असलीयत वास्वतिकता पर आधारित होती है, किसी व्यक्ति की कल्पना पर नहीं।

मेरी पीड़ा का अंत यहीं नहीं हुआ। मुझे ब्रह्मचारी के योग स्कूल में तलब किया गया। वहाँ करीब आधे घंटे तक मुझसे पूछताछ हुई।

"क्या वह उस दिन घाट पर नहीं गए थे?"

"हाँ, गए थे।"

"क्या वहाँ कोई यज्ञ नहीं किया गया?"

"नहीं , वह यमुना की धारा तक अपने संबंधी की भस्म विसर्जित करने गए थे। "

"क्या आप को पूरा विश्वास है?"

"जी हाँ।"

"ठीक है। चैन से घर जाइए।"

एक और अवसर पर मुझसे एक साधु के बारे में तहकीकात करने को कहा गया। इस साधु ने छतरपुर में एक मंदिर बनाना शुरू किया था। यह जगह उस फार्म हाउससे बहुत दूर न थी जहाँ राजीव अपने पिता फिरोज गाँधी की खरीदी जमीन पर घर बनवा रहे थे। आरोप था कि यह साधु कुछ प्रेतात्माओं को बुला कर इंदिरा गाँधी का नाश कराने का यत्न कर रहा है। मेरी जानकारी के मुताबिक यह साधु संजय के निकट था।

सौभाग्य से साधु मेरी भाषा बगाली भी बोलता था। इसलिए सुनदा और मेरे लिए उससे दोस्ती गांठने मे कोई दिक्कत नही हुई। वह अभी बहुत पहुँचा हुआ महात्मा नही बन पाया था। लेकिन सजय मडली के निकट होने के कारण उसपर महानता की कुछ परते जरूर वढ गई थी। वह साधु भी बहुत सतही निकला। वह आध्यात्मिक कामो की तुलना मे सरारी कामो मे कही अधिक व्यस्त रहता था।

मैने इन दो घटनाओ का जिक यह बताने के लिए किया है कि भले ही अल्पकाल के लिए हो, लेकिन अगर कोई सही सीढियो से चढे तो उसके लिए इदिरा की निकटवर्ती मडली तक पहुँचना कठिन न था। बशर्ते उसके कब्जे मे बहुत से जिन्न-भूत हो और विश्वास करने लायक कहानी गढ सकता हो। अपने बहादुरी वाल चेहरे के बावजूद इदिरा अदर से भयभीत थी। वह बचपन से सहमी हुई थी। उनके बहादुरी के कवच मे कई बार दरारे पड जाती थी जिनका पूरा फायदा धूर्त उठाते थे। वह बहादुर थी। उनमे शहादत का माद्दा भी था। पर वह पूरी तरह से भारतीय थी जो अपनी धरती के सस्कारो से मुक्त नही होता। नाजायज फायदा उठाने के इस धूर्तकर्म मे धीरेद्र ब्रह्मचारी अकेला न था। उनकी सवेदनशीलता का लाभ उठाने वाले और भी कई योगी महात्मा थे।

इस सदर्भ मे एक और विचित्र घटना की चर्चा करने का लोभ मे सवरण नही कर पा रहा हूँ।

दिल्ली के चुनिदा लोगो की नजरो से मेरी इदिरा गॉधी और आर के धवन से निकटता बची न थी। सही या गलत , मेरा प्रधानमत्री कार्यालय और आवास मे आना-जाना तो लगा ही रहता था। मुझे अक्सर देर रात वहॉ आने के लिए कहा जाता। उस समय वहॉ देश के बडे लोग धवन के दरवाजे पर लाइन लगा कर खडे रहते थे। वे वहॉ नत्थू या किसी अन्य निजी सेवक के लिए इतजार करते कि वह प्रधानमत्री से एक मिनट की मुलाकात करवा दे। मैने कई बार निजी सेवको को उद्योग-व्यवसाय की बडी हस्तियो से बक्शीश लेकर जेब के हवाले करते देखा।

परिस्थितियो ने दिल्ली के बडे लोगो को इस गलतफहमी मे डाल दिया कि मै प्रधानमत्री कार्यालय / आवास तक पहुँच का जरिया बन सकता हूँ। मै प्रत्यक्षत उस क्लब का सदस्य बन चुका था जो सत्ता के केद्र के निकट समझे जाते है। उस कमजोर-सी धारणा के चलते मुझे अक्सर उन पार्टियो या महफिलो मे आमत्रित किया जाता जहॉ मेरे जेसी हैसियत के लोगो का घुसना निषिद्ध होता है। ऐसी ही एक पार्टी मे मुझे के एन अग्रवाल 'मामाजी' से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वह पार्टी स्कॉच विस्की, व्यावसायिक सौदो, नाच और गजल गायकी से लबरेज थी। आज की एक पजाबी गायिका उन पार्टियो मे हमेशा दिखाई देती थी।

मामाजी ने मुझे विस्की से परहेज करने के मामले मे घेरा।

"आप कैसे ऑफिसर हैं? विस्की पार्टी मे न पीने वाले पर कोई विश्वास नही करता।"

"यह जानकारी देने के लिए शुक्रिया।"

"मेरी एक सहायता करो।"

"मैं आपकी क्या मदद कर सकता हूँ?"

"क्या आप ने चंद्रास्वामीजी का नाम सुना है?'

"नही तो।"

"वह बहुत पहुँचे हुए तांत्रिक हैं। वह चमत्कार कर सकते हैं। उनकी इंदिराजी से मुलाकात करवा दो।"

"मैं ही क्यों? आप किसी बडे आदमी से भी यह बात कह सकते हैं।"

"यह काम कर दो। आप को इस का प्रतिफल दिया जाएगा।"

"माफ कीजिए। यह मेरा धंधा नही।"

वह निराश हो गए। पर बाद में मुझसे उच्च अधिकारियों ने कहा कि मामाजी से वास्ता बनाए रखूँ। क्योंकि वह एम.ई.ए. के उच्च अधिकारी और खशोगी क्लब से संबद्ध अदनान खशोगी, विन चड्डा जैसे अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हथियारों की दलाली करने वालों के सपर्क में थे। मैंने उनके साथ कुछ चुपचाप-सा संपर्क तब तक बनाए रखा जब तक मैं मामाजी और स्वामी की जोडी की गदगी सहन कर सकता था। मुझे इसकी निश्चित जानकारी नहीं कि ये दोनों धूर्त इंदिरा के पास फटक भी पाए या नहीं। धवन ने मुझे बताया प्रधानमंत्री चद्रास्वामी पर विश्वास नहीं करती हैं और उन्होंने उसे घास नहीं डाली। मुझे मामाजी के साथ अपने संबध दोबारा जोडने का मौका 1991 में मिला। इस दौरान मेरे पास यह मानने के लिए काफी कारण थे कि उन्होंने राजीव गॉधी के कुछ सहायकों को पटाने में कामयाबी हासिल कर ली थी और कुछ छलयोजनाओं को अंजाम देने में सफल रहे थे।

इदिरा और राजीव ने अगर अपने संस्कारों का अनुचित लाभ किसी स्वामी को उठाने दिया तो इसके लिए अकेले उनका नाम लेना उनके साथ न्याय करना न होगा। इदिरा ने इन जादूगरों को एक सीमा से आगे बढने की इजाजत कभी नहीं दी। लेकिन बाद के छोटे नेताओ ने उस लक्ष्मण रेखा को नहीं समझा जो इंदिरा उनके लिए बनाए रखती थीं।

* * * *

काम की तेज रफ्तार और उसके स्वरूप ने मुझे थका मारा था। रोजाना 18 घंटे से अधिक समय के लिए मेरी सेवाओं की जरूरत पडती थी। बहुधा मुझे देर रात को बिस्तर से बाहर घसीटा जाता था। मैं सुनंदा और बच्चों के साथ समय बिताने के लिए छुट्टी चाहता था। बॉस ने मेहरबानी की। हमें पांच दिन की छोटी छुट्टी दे दी गई। हमने इसके लिए राजस्थान चुना क्योंकि यह अधिक महंगा नहीं था।

गंगानगर में एक सिख मित्र ने हमें भोजन पर आमंत्रित किया। वहाँ मेरी मुलाकात एक सिख युवक से हुई।

काम-धंधे और पढाई के बारे में पूछने पर युवक जसबीर सिंह ने बताया कि उसने अमृतसर के पास एक प्रमुख सिख शिक्षालय में धार्मिक शिक्षा ग्रहण की है। जीविका के लिए वह छोटा कारोबार करता है।

इस सक्षिप्त चर्चा में मेरी उस युवक के दूसरे चाचा जरनैल सिंह भिंडरावाले की कांग्रेस समर्थक गतिविधियों के बारे में जानकारी बढी। वह चौक मेहता शिक्षालय के सिख संत थे जिसे दमदमी टकसाल कहते हैं। एक उपनगर के कट्टरपंथी जरनैल सिंह को संजय गाँधी और पंजाब के भूतपूर्व मुख्यमंत्री ज्ञानी जैलसिंह ने बढावा दिया था। इसके पीछे उनका उद्देश्य शिरोमणि अकाली दल में फूट डालना था। यह राजनीतिक-धार्मिक दल खालिस सिख हितों का समर्थन करता था। इसने अपनी उस विचारधारा से देश कों आंदोलित कर दिया था जिसे बाद में 1973 में आनंदपुर साहिब प्रस्ताव का नाम दिया गया। मैं अपने पाठकों के साथ 1980

से 1983 के बीच उभरते हुए सिख अलगाववादी आदोलन के बारे मे अपने आरभिक अनुभवो की चर्चा करना चाहूँगा।

* * * *

मेरी अस्थायी छुट्टी का मजा भी कुछ कटीले कामो की वजह से किरकिरा-सा हो गया। इनमे सबसे जटिल था प्रधानमत्री के परिवार से सबधित एक काम। सजय की सामान्य परिवार की मेनका से शादी जिन परिस्थितियो मे हुई उनको नकारा तो नही जा सकता। इदिरा कोई बहुत गर्वीली सामाजिक महिला न थी। लेकिन उनकी परवरिश विरोधाभास वाली परिस्थितियो मे हुई थी। मोतीलाल और जवाहरलाल की वरीयताएँ पश्चिमी थी। लेकिन उनको स्वरूपरानी और कमला नेहरू की कश्मीरी ब्राह्मण परपराओ मे आस्था मद कर देती थी।

कर्नल टी एस आनद और अमितेश्वर आनद का परिवार किसी भी तरह से नेहरू-गॉधी परिवार से तुलना की कल्पना नही कर सकता था। उनका जोरबाग मे अच्छा घर था व्यापार भी था और जमीन-जायदाद भी थी। कर्नल सौम्य स्वभाव के थे और सामान्य स्तर से रहने मे विश्वास रखते थे। अनेक नेहरू-गॉधी परिवार पर नजर रखने वालो ने उस समय ऑखे सिकोडी और धीमी आवाज मे बुदबुदाए जब मेनका के पिता का मृत शरीर देहाती दिल्ली के एक खेत मे मिला। उनके पास पिस्तौल और एक रहस्यमय नोट मिला था। मेनका की मॉ की निजी जिदगी, आनद के आत्महत्या के प्रति रुझान और एक दूर की सभावना कि सजय ने अपने कुछ धोटाले छिपाने के लिए उनको सदा के लिए शात न कर दिया हो आदि को ले कर कई मत जाहिर किए गए।

यह फुसफुसाहट भी कई बार सुनी गई कि सोनिया और मेनका मे पटती नही। प्रधानमत्री के बेटे से ब्याही युवा लडकी की जीवन के प्रति बडी आकाक्षाएँ थी। उसे उम्मीद न थी कि आपात्काल के बाद गुमराह किस्म के लोग बदला लेने को पीछे लगेगे। ये लोग तो सकट मे पडे देश के लिए सुधार के नए रास्ते खोजने के बजाए बदला लेने मे अधिक विश्वास रखते थे। वह दबाव मे थी। वह कई बार आवेश मे आ जाती थी। सोनिया ने तो हवाई सेवा के एक पायलट से शादी की थी। वह अपने जीवन से सतुष्ट-प्रसन्न थी। सोनिया पश्चिमी जीवन-शैली मे पली थी। उन्होने बिना किसी कठिनाई के भारतीय जीवन-शैली अपना ली। उन्होने अपने आप को गॉधी-नेहरू परिवार के मूल्यो के साथ आत्मसात कर लिया था।

मेरे गोल्फ लिक रहने वाले तमिल ब्राह्मण मित्र सरीखे गॉधी परिवार के आलोचक गलत नही कहते थे कि दोनो बहुओ मे तालमेल नही था और न ही उनमे बनती थी। ये मित्र आज भी मेरे सपर्क मे थे। सजय की मौत के बाद हालत और भी खराब हो गई। मेरे शरारती दोस्त ने बताया कि मेनका के पास सजय के गलत तरीके से कमाए पैसे के बारे मे कुछ ठोस जानकारी थी। उसका कहना था कि बडी रकमे विदेश मे जमा थी जिनके बारे मे इदिरा को कोई जानकारी न थी। घर से बाहर निकलने वाली कहानियो मे सबसे दुखद थी सजय की लूट के बटवारे और उसकी राजनीतिक विरासत को लेकर हुए झगडे की कहानी। इन रिपोर्टो के सच या झूठ का फैसला तो सिर्फ दो शख्सियत ही कर सकती है जो आज भी मौजूद है लेकिन अलग-अलग दायरो मे घूम रही है।

इसमे कोई शक नही कि इदिरा अपने साथ अपनी राजनीतिक विरासत का अत नही होने देना चाहती थी। सजय से उनको बडी आशा थी और उतनी ही बडी निराशा भी मिली। उनकी यह उम्मीद कि उसे गॉधी-नेहरू परपराओ के अनुरूप ढाल लेगी मिथ्या कल्पना ही साबित

हुई। वह उनकी उम्मीदों पर खरा न उतरा। पर वही एक मशाल थी जो विरासत को बनाए रखने की उम्मीद जगा सकती थी। इंदिरा ने एक नई कांग्रेस बनाई थी। यह उनके पिता की कांग्रेस से भिन्न थी। इंदिरा कांग्रेस ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का स्थान ले लिया था। संजय इस परिवर्तन का अभिन्न अंग था। अतः उसका इसका वारिस बनने का दावा सही था।

राजीव सचमुच राजनीति से परे थे। सोनिया, जो टोरीनो (इटली) की थीं, राजनीति से परे नहीं हो सकती थीं। उनका परिवार पाइदमाँत क्षेत्र में राजनीति मे लिप्त रहा। टोरीनो 1861 से 1865 तक इटली की राजधानी भी रहा। लेकिन टोरीनो से आई इस युवती ने यह तथ्य अंगीकार कर लिया था कि संजय को वारिस चुन लिया गया है। उसने स्वेच्छा से परिवार को अपनाया और उसकी जिम्मेदारी एक भारतीय बहू की तरह सभाली। मेनका अपनी माँ की तरह बाहर की दुनिया में व्यस्त रही।

एक और नेहरू-गाँधी का वारिस बनना तो अवश्यंभावी था। परिवार से बाहर कोई ऐसा राष्ट्रीय नेता न था जो इंदिरा कांग्रेस का नेतृत्व करता। इंदिरा के राजनीतिक अनुयायी उनसे ही अपनी पहचान बनाए हुए थे। सही कहो या गलत, करोडो भारतीय इस परिवार को ही स्वाधीनता पूर्व की कांग्रेस की विरासत के साथ जोडते थे।

लिहाजा इंदिरा के लिए यह स्वाभाविक ही था कि वह अपने बाद राजदंड अपने बेटे को थमातीं। वही तो उनकी बनाए राजनीतिक ढाँचे और करिश्मे का असली वारिस था। राजीव इस दबाव को अधिक देर तक सहन न कर सके। उन्होंने मई 1981 से बहुत पहले ही अपनी माँ के चरणचिन्हों का अध्ययन करने का इरादा बना लिया था। अपने 2, मोतीलाल नेहरू मार्ग वाले दफ्तर में उन्होने विभिन्न विशेषज्ञों से राजनीतिक और प्रशासनिक पाठ पढ़ने भी शुरू कर दिए थे। वहाँ विजय धर, अरुण सिंह, अरुण नेहरू और अमिताभ बच्चन व्यवस्था की देखभाल करते थे।

विंसेंट जार्ज से मेरी पुरानी जान-पहचान थी। वह आर.के धवन के सहायक लिपिक थे। अब वह उन्नति कर के राजीव गाँधी के व्यक्तिगत सहायक बन गए थे। उन्होंने अथक परिश्रम करके सोनिया का विश्वास भी जीत लिया था। दोनों का ईसाई होना भी तालमेल मे सहायक सिद्ध हुआ। हमारी दोस्ती आज भी कायम है। 1983 में धवन को पसंद करने की मुझे मोटी कीमत चुकानी पडी। यह बात दिल्ली के नगरपालिका चुनावों के खत्म होने के तुरंत बाद की है जब राजीव ने संसार के प्रति समान दृष्टिकोण रखने वाले और उनके सांस्कृतिक मूल्यो के अनुकूल युवा सलाहकारों को चुनने का मन बनाया, उसी दिन से धवन का विरोध शुरू हो गया था।

मेनका को संजय का राजनीतिक चोगा राजीव को पहनाया जाना पसंद नहीं आया। संजय उसके लिए सिर्फ जीवनसाथी ही नहीं था। अपनी माँ की तरह वह भी बड़ी महत्वाकांक्षी थीं। वह खुद को भारत के भावी प्रधानमंत्री की पत्नी के रूप में देख रही थी। संजय की मौत ने उसकी भावनाओं और आकांक्षाओं को धूल में मिला दिया। पर वह बेसब्र किस्म की थी। संजय की तरह वह भी राजनीतिक पाठशाला में समय गंवाने को व्यर्थ समझती थीं। उसे लगा कि वह अपने पति के चरण चिन्हों पर चल सकती है। वह अमेठी से संसद का चुनाव लडना चाहती थीं। इंदिरा अपनी छोटी बहू को कुछ राजनीतिक दर्जा देने के खिलाफ न थीं। उनको मेनका का सामाजिक व्यवहार कई बार अखरता पर उनको युवा विधवा से हमदर्दी भी थी।

इस दौरान मेनका ने अपने चारों ओर कुछ युवा प्रशंसक और सलाहकार भी इकट्ठे कर लिए थे। उसके मायके वालों ने भी युवा विधवा की महत्वाकांक्षाओं को बढावा देने का काम किया। मेनका सचमुच बहुत जल्दी में थीं।

मेरे विचार में कुछ ठोस व्यावहारिक कारणों से सोनिया मेनका के महत्वपूर्ण राजनीतिक भूमिका संभालने के हक में नहीं थीं। राजीव को सक्रिय राजनीति में लाए जाने के फैसले के बाद उनको राजनीतिक सत्ता की चमक उन तक पहुँचने का आभास हो गया था। उनको अपनी देवरानी के दफ्तर मे समानांतर सत्ता केंद्र की नीव रखने के विचार से घृणा थी। उन्होंने राजीव का साथ दिया। कहा जाता है कि राजीव के 5 मई 1981 को ससद का चुनाव लडने का फैसला करने से बहुत पहले ही उनमें संबंध टूटने की नौबत आ गई थी।

मुझे उस समय हैरत हुई जब निजी तौर पर चुपचाप राजीव के चुने जाने की सभावना का अध्ययन करने को कहा गया। यह एक स्वतत्र अध्ययन था। मेरे जिम्मे जो काम सौपा गया उस में संजय और मेनका के समर्थको द्वारा भीतरघात किए जाने की सभावना का पता लगाना भी था। मैंने प्रधानमंत्री निवास का सौंपा यह काम स्वीकार कर लिया लेकिन अपने बॉस को इस बारे में जानकारी दे दी।

राजीव की शानदार जीत के साथ संसद मे प्रवेश से मेनका के धैर्य का बॉध टूट गया। इंदिरा गॉधी के धैर्य की सीमा भी जवाब दे रही थी। दिल्ली के चंडूखाने ने अमितेश्वर आनंद और उनकी छोटी बेटी अंबिका की कूटयोजनाओं की कहानियॉ सुनानी शुरू कर दीं। इन में से कुछ कहानियां मेनका को अच्छे रूप में नहीं दर्शाती थी। मेनका ने अपने व्यक्तिगत और सामाजिक व्यवहार से इंदिरा को निराश किया था। 19 वी शताब्दी के अंतिम सामंतों—नेहरू-गॉधी—के परंपरागत परिवार में डायना जैसा व्यक्तित्व बना कर रहने के लायक यह समय न था।

बेसब्री ने मेनका को परिवार से और भी दूर कर दिया था। असल में मेनका ने नेहरू-गॉधी परिवार की पहचान को कभी अपनाया ही नहीं था। इंदिरा और मेनका के बीच भावनाओ का कमजोर-सा बधन उस समय टूटने के कगार पर पहुँच गया जब नेहरू-गॉधी विरासत के वंशज ने समझ लिया कि एक नितांत बाहरी शख्सियत उनकी विरासत पर अपना दावा जता रही है। शायद इसी ने इदिरा को मेनका, उसकी मॉ और संजय के कुछ निकटवर्तियो की गतिविधियो पर नजर रखने के लिए बाहरी मदद लेने को बाध्य किया।

इसलिए मेरी जरूरत महसूस की गई। प्रधानमंत्री निवास और मेरे उच्च अधिकारी से मुझे जो आदेश दिया गया वह वस्तुतः आदेश न था। मुझे सौपे गए काम मे मेनका और उनके साथियों पर नजर रखना, उनका पीछा करना और उनकी गतिविधियो पर इंटेलिजेंस एकत्र करना था। यह काम कठिन ही नहीं अरुचिकर भी था। मैंने अनिच्छापूर्वक यह काम स्वीकार कर लिया। आखिर मुझे नौकरी कर के अपना परिवार पालना था।

इस काम में प्रधानमंत्री निवास के अंदर से और अमितेश्वर आनंद के परिवार के अंदर से इंटेलिजेंस एकत्र करना शामिल था। इसके लिए मुझे जनसाधनों और तकनीकी साधनों का मिश्रित प्रयोग बड़ी होशियारी से करना था। मैं जानता था कि मुझसे ऐसा काम कराया जा रहा है, जो मेरी ड्यूटी नहीं। मुझे इस विचार से नफरत थी। पर एक सेवक कर क्या सकता है। अपनी आत्मा का हनन करके एतराज के बावजूद हुक्म बजाने के सिवा।

प्रधानमंत्री निवास के अंदर से इंटेलिजेंस एकत्र करना बारूद के ढेर से खेलना था। इंदिरा गाँधी के सफदरजंग निवास और अकबर रोड पर सब मेरा चेहरा पहचानते थे। मेरी यूनिट प्रधानमंत्री निवास के अंदर और आस-पास कुछ सुरक्षा और इंटेलिजेंस का काम करती थी। मुझे कुछ संदिग्ध लोगों पर नजर रखने को कहा गया था। बाद में मैं उनके बारे में अतिरिक्त सूचना जुटा कर रिपोर्ट भी देता था। आई.बी. की अतिविशिष्ट व्यक्तियों की सुरक्षा शाखा ऐसे लोगों का ब्योरा रखती थी। मैंने इसका लाभ उठा कर मेनका की प्रधानमंत्री निवास के अंदर गतिविधियों की गुप्त सूचना एकत्र करनी शुरू की। संजय की युवा विधवा के कुछ दोस्तों के फोन टेप किए गए। इससे इस हौसले वाली युवती के बारे में अचंभे में डालने वाली ढेर जानकारी मिली। उसने तो टकराव का रास्ता अपनाने का फैसला कर लिया था। मुझे उस जवान लडकी पर तरस आया। हालांकि मैंने मन ही मन उसके हौसले की दाद भी दी। वह औरत के नए अवतार की प्रतिनिधि थी। जिसमें देश के सबसे शक्तिशाली लोगों को चुनौती देने की हिम्मत थी। वह अपना हक खुली लडाई से लेना चाहती थी। उसका समझौता न करने वाला रवैया उसकी बेसब्री की गवाही देता था। क्या वह तंग नजरिए की शिकार थी? शायद ऐसा ही था और आज भी ऐसा ही है। जो भी हो मेनका जीतने वाली स्थिति में तो थी ही नहीं। उसका मुकाबला एक शक्तिशाली महिला से पडा था जो अपने विरोधियों को मिटाने में शेरनी से भी खूंखार और निर्मम थी।

अमितेश्वर के बारे मे गुप्त जानकारी हासिल करना कोई मुश्किल काम न था। मेरा गोल्फ लिंक वाला मित्र उसके अदर बाहर का हाल जानता था। वह उनके साथ अपने व्यक्तिगत संबंधों के धूसर रंगों के साथ-साथ सफेद तथ्य बताने को भी खुशी से तैयार हो गया। स्वर्गीय टी.एस. आनंद के कुछ नाराज संबंधियों और पारिवारिक मित्रों ने अपने-आप ढेरों जानकारी मुहैया करा दी। अमितेश्वर और उनकी बेटियों ने संजय की ऊंची हैसियत का भरपूर फायदा उठाते हुए उनको जायदाद के मामले में परेशान किया था और यातनाएं भी दी थीं। दिल्ली पुलिस के कुछ खुशामदी टट्टू संजय मंडली के आदेश पर चलते थे। वे अक्सर उनके यहाँ परेशान करने आ जाते थे। परिवार के आर्थिक मामलों पर विस्तृत जॉच की गई। संजय के 'अज्ञात खजाने 'का पता लगाने के लिए विशेष प्रयास किए गए। मेरे अधिकारी परिवार के मामले में गहरे पैठे। इनमें कुछ व्यक्तिगत ब्योरे अरुचि पैदा करने वाले थे। मैं लोगों के निजी शयनकक्षों में झांकने के हक में नहीं था। इन्सान की कमजोरियां उसके चरित्र के वासनात्मक पक्ष के झरोखे खोल देती हैं। कुछ सामाजिक तबकों में तो इस तरह के खिलाडी बडी छूट ले लेते हैं। लेकिन राजनीतिक रंगमंच पर इस तरह के कारनामे कई बार अपूरणीय क्षति पहुँचाते हैं। संजय और मेनका ने जगजीवनराम के बेटे सुरेश राम पर यह तरकीब आजमाई थी और तीर ऐन निशाने पर लगा था। बहरहाल मुझे बताया गया कि ये रिपोर्टें उपभोक्ता के बडे काम की हैं।

मेनका भी हारने वालों में से नहीं थी। उसने अपनी माँ से कुछ सख्त रवैए विरासत में पाए थे। 1974 से 1977 तक उसने अधिकार का स्वाद भी चखा था। 1980 के चुनाव के दौरान भी उसे थोड़े समय के लिए यह अवसर मिला था। उसने वास्तविक उपप्रधानमंत्री और भारत के भावी प्रधानमंत्री के साथ देश के विभिन्न भागों का दौरा किया था। संजय के साथी उसकी खुशामद करते थे। अमितेश्वर आनंद के जोरबाग निवास पर होने वाली कुछ मीटिंगों में उसे संजय गाँधी की असली वारिस बताया गया। इंदिरा को अपने अधिकार के विरुद्ध चुनौती गवारा

न थी। उन्होंने अपने पुत्र को वारिस बनाया था पुत्रवधू को नही। उनकी राय मे वह तो गॉधी-नेहरू परिवार में घुसा दी गई थी।

मुझे एक और गंदा काम करने को कहा गया। हमें खेल के नियमों को समझना चाहिए। अगर काम गंदा और गैरकानूनी हो तब भी विभाग और सरकार का हुक्म बजाना ही पडता है। मै इस नियम का अपवाद न था।

मेनका ने 1970 के मध्य में 'सूर्या' 'पत्रिका निकाली थी। यह सजय गॉधी के राजनीतिक वाहक के तौर पर काम करती थी। इंदिरा ने इस चीथडे को आपात्काल और उसके बाद भी उपयोगी हथियार माना। गॉधी परिवार से सबंध खराब होने के तुरंत बाद मेनका और उसकी मॉ ने आर एस एस के सरदार आंग्रे से डा जे के जैन को 'सूर्या' बेच देने का सौदा कर लिया। इंदिरा इस सौदे के खिलाफ थी।

मुझसे 'सूर्या' के सपादकीय विभाग मे घुसपैठ करने को कहा गया। यह आसान काम था। मेरी रिपोर्टें और अक्सर प्रमुख लेखो के गैली प्रूफ भी आधिकारिक माध्यम से उपभोक्ता तक पहुँचा दिए जाते थे।

'सूर्या' के साथ उसने जो कुछ किया मेनका उसी से सतुष्ट नही हुई। आर एस एस के मेरे पुराने मित्र ने मुझे जनसंघ (भारतीय जनता पार्टी) के कुछ नेताओ और मेनका के बनते हुए राजनीतिक संबधो के बारे में जानकारी दी। इसी तरह के सबध वह कुछ अन्य राजनीतिक नेताओं से भी बढा रही थी।

पर मेनका का कथित सबसे निर्मम फैसला एम ओ मथाई की आत्मकथा के सेसर किए गए अध्याय 'शी' को सार्वजनिक करने का था। कहा जाता है कि यह दस्तावेज आपात्काल से पहले से ही संजय के पास था। दिल्ली के अफवाहबाजो का कहना था कि सजय का इरादा इसका खुल्लमखुल्ला इस्तेमाल करके अपनी मॉ को बदनाम करने का न था। पर उसने अपनी मॉ को बता दिया था कि उसके पास यह महत्वपूर्ण हथियार था। इस तरह की खबरो की सदेह से परे पूरी तरह पुष्टि कभी नहीं हो सकी। मुझे कभी विश्वास नही हुआ कि सजय या मेनका गाधी ओ पी मथाई की कुत्सित कल्पनाओं को लेकर इंदिरा गाधी को ब्लैकमेल करना चाहते थे। यह मिथ्या आरोप लगाने वालों की उडाई हुई अफवाह थी।

मुझसे कहा गया कि 'शी' की प्रतियों का पता लगाऊँ। साथ ही 'सूर्या' के कार्यालय मे कहीं छिपा कर रखी गई उसकी मास्टर प्रति चुराने का बदोबस्त करूँ जो अब डा. जे के जैन के स्वामित्व में थी। मैंने पहला काम करना तुरत मंजूर कर लिया, लेकिन दूसरे काम के लिए मना किया। लेकिन मुझ पर बहुत अधिक दबाव डाला गया। मुझसे कहा गया कि या तो यह काम करूँ या फिर सेवा से बर्खास्तगी के लिए तैयार हो जाऊँ।

'शी' मुझे एक अप्रत्याशित जगह पर मिली। किसी ने मुझे बताया कि 'शी' की प्रतियां पश्चिम बंगाल के आई.ए.एस. अधिकारियो के एक गुट में वितरित की जा रही हैं। इनमें से कुछ हेली रोड के अतिथिगृह मे ठहरे हुए थे। वे उसे अश्लील साहित्य की तरह पढ रहे थे। इनमें से दो मेरे मसूरी अकादमी के सहपाठी थे।

मैं उनमें से एक से मिला। मैने उसके दोपहर के भोजन के दौरान समझाया कि इस कथित दस्तावेज को ले कर इंदिरा गाँधी कितनी सवेदनशील है। वह स्थिति की गभीरता को समझ गया। उसने मुझे एक और सहपाठी के पास जाने को कहा। वह इस समय कालिंपोग

में था। वह मुझे अपने कार्यालय मे बडी अच्छी तरह मिला। पर पता चला कि इस बीच दस्तावेज बिक्रम सरकार (सरदार) के पास पहुँच गया है। वह भी मेरा उसी कोर्स का सहपाठी था। उसका विवाह बंगाल के एक प्रमुख कांग्रेसी परिवार में हुआ था। बिक्रम ने अच्छा व्यवहार नहीं किया। उसने मुझसे मिलने से इनकार कर दिया और खबर कर दी कि दस्तावेज पश्चिम बगाल काडर के एक अन्य आई.ए.एस आफिसर सी.जी. सलधाना के पास हैं।

मेरे सहयोगी के.एम. सिंह और मैं सलधाना से मिलने कार में चंडीगढ गए। वह हमारे बेवक्त आने पर हैरान हुए। उन्होंने बताया कि दस्तावेज तो अभी भी बिक्रम सरकार के पास ही थे। वह स्थिति से बच निकलने के लिए हर तरह की राजनीतिक सिफारिशें करवा रहा है। मेरी जॉच से पता चला कि उस राजनीतिक परिवार के वंशज किसी कारण से इदिरा से नाखुश थे। उनका इरादा पश्चिम बंगाल के किसी मार्क्सवादी नेता को वह दस्तावेज देकर इंदिरा को परेशानी में डालने का था। बाद में उन्होंने ऐसा किया भी।

खैर, मैं विभिन्न स्रोतों से 'शी' की चार प्रतियॉ हासिल करने में कामयाब रहा। कहा जाता है कि मेनका ने ही वह अशोभनीय तरीके से लिखा दस्तावेज वितरित किया था जिसे मनोरोगी मथाई ने अनाप-शनाप तरीके से लिख डाला था।

बिक्रम सरकार ने केंद्रीय गृहसचिव और दिल्ली के अन्य आई.ए.एस. अधिकारियो के पास जा जाकर वरिष्ठ अधिकारियों के प्रति मेरे निर्मम व्यवहार की चर्चा की। दरअसल मुझे एक आई ए एस विरोधी जीव करार दिया गया। इस तरह मै दिल्ली के कुछ वरिष्ठ आई.ए.एस अधिकारियो के लिए अवाछित व्यक्ति बन गया।

मै 'शी 'को ढूँढ निकालने के अभियान में अपनी उगलियॉ जला चुका था। अब मैने डा जे. के जैन के खिलाफ कार्रवाई न करने का लगभग मन बना लिया था। पर मुझसे इस मामले में कार्रवाई करने की ताकीद दी गई। बात यह थी कि जैन ने किसी प्रकाशक से मथाई की जीवनी प्रकाशित करने का सौदा कर लिया था। इसमें यह सेंसर किया हुआ अध्याय भी सम्मिलित था। मुझसे कहा गया कि मै चुपचाप रात को वाटरगेट जैसी कार्रवाई कर के मूल प्रति हासिल करूं। कोई चारा न देख मैने अपने सहायक के.एम. सिंह और कुछ अन्य विश्वस्त अधिकारियों के साथ देर रात को *सूर्या* के कार्यालय का ताला तोडा। बाजार के उस स्थान पर ज्यादा पहरेदारी न थी। लेकिन हमारी मौजूदगी का पता तो चल ही गया।

इंदिरा गॉधी अपनी बहू के खिलाफ इस छोटी-सी जीत से खुश हुई होंगी। लेकिन आई. बी. की ही एक शाखा से बात निकल गई और मेरा नाम जैन के कानों तक पहुँचा। अभी भी आई.बी. में कुछ जनता समर्थक तत्व सक्रिय थे।

दूसरी बार राजनीतिज्ञों द्वारा किसी सार्वजनिक सभा में संदिग्ध कार्य करने वाला बता कर मेरा नाम लिया गया। पहली बार 1972 में ऐसा हुआ था। तब इंटेलिजेंस ब्यूरो की सक्रिय सहायता से कांग्रेस ने मुहम्मद अलीमुद्दीन की सरकार गिराई थी।

* * * *

मेनका को 1 सदफरजंग रोड से निकाला गया था, इस आम धारणा को राजनीति के निकष पर कसने के बाद सोच-विचार कर समझना चाहिए। एक दृष्टि से यह सही था तो एक दृष्टि से नहीं भी। इंदिरा गांधी मेनका के तौरतरीको से क्षुब्ध थीं। इस युवा विधवा ने यह समझ लेने पर कि इंदिरा व उनकी बड़ी बहू का पल्लू पकड़ कर चलना उसके बस का नहीं, वहां से निकलने की तैयारी कर ली थी।

मेरे स्थायी निगरानी रखने वालो और प्रधानमत्री निवास के एजेटो ने देखा कि मेनका और अबिका सफदरजग वाले घर से अपनी मॉ के जोरबाग वाले घर को छोटे बैग ले जा रही हैं। बताया जाता है कि उनमे नकदी थी। मेनका के अतत वहॉ से निकलने की खेदपूर्ण घटना की चर्चा करना मेरा यहॉ उद्देश्य नही। उसने राजनीतिक हगामा खडा करने की कोशिश भी की थी कि उसके साथ एक बहू के रूप म अन्याय हुआ है। मै इतना जरूर कहना चाहूँगा कि इदिरा को उग्र सास के रूप मे दर्शाना व्यर्थ होगा। उन्होने अपनी मॉ को यातना भोगते और अपमानित होते देखा था। मै व्यक्तिगत रूप से जानता हूँ कि इदिरा के मन मे महिलाओ के प्रति बहुत सम्मान था। खासतौर पर धन और मानसिक कष्ट मे पडी महिलाओ के लिए। वह अपने बेटे की युवा विधवा को यातना देने वालो मे से न थी।

मेनका के इदिरा गॉधी के सफदरजग आवास से निकल जाने के बाद मुझसे अखिलेश्वर आनद और मेनका गॉधी पर ह्युमिट और टेक-इटेलिजेस की कार्रवाई फिर से आरभ करने को कहा गया। यह अरुचिपूर्ण काम था। यह व्यावसायिक नैतिकता के विरुद्ध भी था। ये लोग राष्ट्र के शत्रु न थे। मुझसे कहा गया कि प्रधानमत्री का दुश्मन देश का दुश्मन होता है। यह कैसा तर्क था! मेरी मेनका या उनकी मा से कोई व्यक्तिगत शत्रुता न थी। लकिन मै सरकारी नौकरी के कारण बेबस था। इससे मेरी मेनका के प्रति सहानुभूति बढ गई।

कुछ तकनीकी कारणो से आई बी मेनका के एक निकट सबधी का फोन टैप नही कर सकी। मुझसे कहा गया कि मैं उस फोन को सुनने का प्रबध करू और एक ऐसा सुरक्षित मकान तलाश करू जहॉ से उस फोन पर होने वाली वार्ता और घर के कमरो मे होने वाली बाते रिकार्ड की जा सके। यह असभव काम था। तकनीकी दृष्टि से ऐसा हो सकता था। लेकिन व्यावहारिक दृष्टि से इस मे जटिल कठिनाइया थी।

वह घर जबरदस्त राजनीतिक गतिविधियो का केद्र था। कुछ बाद के दिनो के राजनीतिज्ञ दिग्गज और उद्योगपति भी उनकी महफिल मे नियमित रूप से आते रहते थे। इनमे एक राज्यपाल भी शामिल थ)। मुझे दो घटे के लिए वह घर खाली चाहिए था ताकि वहॉ अपने रेडियो यत्र लगा सकूँ।

उनके घरेलू नौकर को पटा लिया गया। वह घर के अदर होने वाली हर घटना की निरतर जानकारी देने को तैयार हो गया। उससे यह अप्रत्याशित जानकारी मिली कि उसके मालिक दो दिन के लिए बाहर जा रहे है । यह श्रवण यत्र लगाने का बेहतरीन मौका था। टेलीफोनकर्मियो की मदद से घर का फोन खराब कर दिया गया। अब हम शिकायत का इतजार करने लगे।

सूक्ष्म रेडियो माइक्रोफोन सीमित सख्या मे उपलब्ध थे। मैने दो लबी दूरी के ट्रासमीटरो की मॉग की थी ताकि 150 मीटर दूर से बातचीत रिकार्ड कर सकूँ। मुझे सिर्फ दो छोटी दूरी के यत्र दिए गए और कहा गया कि मैं 100 गज की दूरी पर किसी सुरक्षित मकान का बदोबस्त कर लू।

बिजली की अबाध सप्लाई एक और समस्या थी। मैंने कार्रवाई को दो हिस्सो मे बॉटा। घर के फोन को सुनने का बदोबस्त करना और मास्टर बेडरूम मे एक श्रवण यत्र लगाना। एक बिलकुल नया 'प्रियदर्शिनी' फोन मगाया गया। उसकी कडेसर क्वाइल मे एक सूक्ष्म रेडियो ट्रासमीटर लगा दिया गया। जब भी इस्तेमाल करने वाला फोन उठाता यह यत्र चालू हो जाता

था। फिर दूरी पर रखा रिकार्डिंग उपकरण फोन करने वाले और सुनने वाले दोनों की आवाज को बाकायदा रिकार्ड कर लेता था।

जिस बुलावे के हम इंतजार में थे, वह अगले दिन आया। हम लाइनमैन बनकर उस घर में दाखिल हुए। खराब फोन की जगह डिवीजनल इंजीनियर की शुभकामनाओं सहित नया फोन लगा दिया गया।

दूसरा यंत्र एक बेडसाइड टेबल में खाली जगह बनाकर उसमें फिट कर दिया गया। इस पर एक आयातित गुलदस्ता रखा हुआ था। इस यंत्र को सदा चालू रखने के लिए इसे बिजली की लाइन से जोड दिया गया।

अगली समस्या एक 'सुरक्षित घर 'तलाश करने की थी जहॉ रिसीवर और रिकार्डिंग उपकरण लगाए जा सकें। तकनीकी डिवीजन ने एक ऐसा सेट दिया था जिसे लगाने के लिए काफी जगह दरकार थी।

हम इलाके में घूमे। फिर हमने एक मंदिर के पुजारी को पटाने की सोची जो पास के ही एक घास के मैदान में था। भगवा कपडों वाला पुजारी कोई अनाडी न था। थोडी सौदेबाजी के बाद वह राजी हो गया। भगवान के एक दरबान को काफी मोटी दक्षिणा देनी पडी, लेकिन इस से हमारी काम करने की गरज पूरी हो गई।

दुश्मनों के खिलाफ गुप्त सूचनाओं की भूख पेट की भूख से भी बढ कर होती है। घर में घुसने की कार्रवाई के सफल हो जाने पर प्रधानमंत्री के कुछ सहायकों ने यह मान लिया कि आकाश भी सीमा नहीं है। मुझे बुला कर कहा गया कि मेनका के राजेंद्र प्लेस दफ्तर और गोल्फ लिंक वाले निवास पर श्रवण यंत्र लगाने की संभावना पर रिपोर्ट पेश करूँ। मुझे सारे इलाके का निरीक्षण करने, वहॉ के कमजोर पहलुओं का पता लगाने और एक विस्तृत रिपोर्ट पेश करने में पंद्रह दिन लग गए।

मैंने यह तर्क रखने की कोशिश की कि संवेदनशील इंटेलिजेंस कार्रवाइयों का ब्योरा मुख्य उपभोक्ता के बिना आजमाए अधिकारियों के हाथों में नही जाना चाहिए। मैंने विश्वसनीय माध्यम आर.के. धवन के जरिए काम करने पर जोर दिया। थोडी गहरी पडताल करने पर मुझ पर यह रहस्य खुला कि धवन अब भी इंदिरा गॉधी के विश्वस्त थे। पर नए वारिस राजीव की अपने सलाहकार मंडली और राजनीतिक स्रोत के बारे में अलग राय थी। उनके और उनके सलाहकारों के लिए धवन 'स्टेनोग्रफर 'थे। उनको कंप्यूटर की जानकारी न थी। वह नए जमाने के न थे।

मुझे सलाह दी गई कि मैं वरिष्ठ राजनीतिक लोगों के प्रति जरा लचीला रवैया अख्तियार करूँ। मैं बहुप्रणाली कार्रवाई के तौर तरीके सीखूँ। मैं इस तरह की ओहदे वाली अवसरवादिता से न तो तब सहमत हुआ न आज हूँ। इंटेलिजेंस एकत्र करने और प्रदान करने के मामले में तो कतई नहीं। पांसा पलटने का रवैया कभी भी किसी इंटेलिजेंस बिरादरी की नैतिकता का अंग नहीं था। यह ज्यादा से ज्यादा किसी इंटेलिजेंस संचालक की कार्यप्रणाली का हिस्सा हो सकता है जो तरक्की के लिए सिफारिश और संरक्षण की सीढ़ी का इस्तेमाल करता हो।

मुझे एक बार फिर 1, अकबर रोड के धुएँ वाले कमरे में बुलाया गया। सहायक ने मेरी योजना के मसौदे को देखकर मुझसे मेनका के निवास तथा कार्यालय में श्रवण यंत्र लगाने को कहा। मैंने इस बारे में अनभिज्ञता जाहिर करते हुए उनसे अनुरोध किया कि यह आदेश निदेशक आई.बी. के माध्यम से मुझ तक पहुंचाया जाए। उसने आर.ए.एक्स. उठाया और किसी

से गुपचुप बातें रिकार्ड करने के बारे में पूछा। हैडसेट को वापस अपनी जगह रखने के बाद उसने मेरी तरफ विजयी मुद्रा में देखा। उसने मुझे बताया कि मेरे बॉस ने इस कार्रवाई के लिए इजाजात दे दी है। अब मुझे तीन दिनों में 'मैडम के सूचनार्थ 'आदेश पालन की रिपोर्ट दे देनी चाहिए।

वह धीरे-धीरे चलकर एक लोहे की आलमारी तक गया। फिर वहाँ से एक छोटा सा टेप रिकार्डर निकाल कर लाया।

"आपने यह पहले कभी देखा है? "

"जी नहीं।"

"यह आयातित टेप रिकार्डर है। इसे ले लीजिए और ज्ञानी जैल सिंह तथा सरदार फतह सिंह (बदला हुआ नाम) की बातचीत रिकार्ड कर के लाइए। "

"वह तो गृहमंत्री है । मैं ऐसा कैसे कर सकता हूँ?"

"मुझे खबर मिली है कि जैल सिंह भिंडरावाले के एक दूत से बगला साहिब गुरुद्वारा में मिलेंगे। यह याद रखें आपको सरकार ने आदेश मानने के लिए नौकरी दी है, बहाने बनाने के लिए नही।"

"यह मेरी जिम्मेदारी वाला क्षेत्र नहीं है।"

"मैने आप के बॉस से बात कर ली है। "उसने अंकड कर कहा। मेरे खयाल से यह सब झूठ था।

"अब जाकर मीटिंग की रिकार्डिंग करो और सीधे मेरे पास आओ। अपने बॉस को इस बारे मे कुछ बताने की जरूरत नही।"

भिंडरांवाले सत से पजाब के कट्टर उग्रवादी नेता बन गए थे। सजय गॉधी और जैल सिह ने जो पंजाब का ऊन का गोला बनाया और सजोया था वह अब इंदिरा गॉधी के कक्ष से निकल कर बाहर लुढकने लगा था। भारतीय इतिहास के इस शर्मनाक पहलू पर मैं बाद मे विस्तृत टिप्पणी करूँगा।

मैंने टेप रिकार्डर ले लिया पर इदिरा के निजी सहायक को कोई आश्वासन नहीं दिया। दमदमी टकसाल के सत का दूत मेरा पेशेवर मित्र था। उसीने संजय के लिए इस ज्वलंत सिख संत को राजी किया था। उसने बाद मे इस मामूली से कट्टरपंथी को फ्रेंकेस्टीन बना दिया।

मुझसे कहा गया कि अपनी साख के मुताबिक काम करके दिखाऊँ। मुझे सीधे नियंत्रण अधिकारी को रिपोर्ट करने की अनुमति मिल गई। उन्होंने मुझे इंदिरा गॉधी के उस सहायक से मिलने से निजात दिला दी जिसका जिक्र मैंने ऊपर किया है। वह सब से ज्यादा संवेदनहीन और शातिर बुद्धि वाला सहायक था। मुझे अपनी पसंद का समय और काम करने का ढंग चुनने की आजादी दी गई। अंततः मुझे एक और छूट भी मिल गई। पोल खुल जाने का खतरा होने पर मैं इस काम को छोड सकता था।

मेनका गाँधी के परिसर में घुसे बिना ही काम हो गया। मैंने वह पेयर खोल निकाले जो मेनका के दफ्तर और घर के टेलीफोन से जुडे थे। फिर जंक्शन बाक्स के पास इन पेयरों की तारों से सूक्ष्म रेडियो ट्रांस्मीटर जोड दिए गए। इनको छोटे टेपरिकार्डरों से जोड दिया गया। मेरे आदमी हर 4 घंटे के बाद टेप बदल देते थे। फिर मैंने खुद को स्मृतिलोप में डुबो लिया और इस बारे में भी कभी नहीं सोचा कि इन टेपों का अंतिम उपभोक्ता कौन है।

जैल सिंह और फतह सिंह की मीटिग से पंजाब में उबल रहे लावा के बारे में ढेर सारी जानकारी हासिल हुई। अपने हाथों रिकार्ड की रिपोर्ट मैंने खुद पजाब के मामले देख रहे ज्वाइंट डाइरेक्टर को दी। मेरे विचार से वह दोष सिद्ध करने वाली रिपोर्ट व्यक्तिगत रूप से प्रधानमंत्री के पास पहुँचा दी गई थी। उसे एक नीले लिफाफे में डाल कर अहस्ताक्षरित नोट के साथ भेजा गया होगा। इदिरा गाँधी के मंत्रिमडल के और राजनीतिक सहयोगियों के बारे मे रिपोर्टे इसी तरह भेजी जाती थीं। प्रधानमत्री के अलावा सिर्फ आर.के. धवन ही ऐसी रिपोर्टें देखते थे।

* * * *

राजीव के आगमन के साथ ही भारतीय राजनीति में कार्पोरेट-प्रबधन का भी समावेश हुआ। राजीव गाँधी के नए सहायक 'कंप्यूटर काउब्वाय 'कहलाते थे। इन में अरुण नेहरू, अरुण सिह, विजय धर और सुमन दूबे प्रमुख थे। उनका दावा था कि उन्होंने भारतीय राजनीति के बासी परिदृश्य में 21 वीं सदी की आधुनिकता का पुट दिया है। उनका भारत की जनता से दूर-दूर का वास्ता न था। पर उन्होंने आधुनिक भू-राजनीतिक धारणाओ के रास्ते जरूर खोल दिए थे। यह थे आर्थिक उदारवाद और शासन चलाने मे तकनीकी उपकरणो का प्रयोग। बहरहाल राजीव परंपरागत जाति, संप्रदाय, धर्म पर आधारित राजनीति के साथ तालमेल बैठाने मे सफल नहीं हो सके। अपने 21 वीं सदी के दृष्टिकोण के कारण वह जग खाई पुरानी आर्थिक अवधारणा के साथ भी मेल नहीं बैठा पाए। इंदिरा पुराने मूल्यों और शक्तियो से हट कर चलने के लिए बडी सावधानी से कदम आगे बढ़ा रही थीं। पर युवा राजीव की सभल कर छलॉग लगाने मे आस्था न थी।

जिस कुशलता से राजीव ने 1982 के एशियाड और 8वी नाम-चोगम काफ्रेन्स का प्रबध किया उसने उनकी प्रबध-कुशलता का बडा अच्छा परिचय दिया। लेकिन 1983 मे आंध्र के चुनाव के आकलन में हुए घालमेल ने और बाद में एन.टी.आर. को हटाने की जोड-तोड ने राजीव की जमीनी राजनीति पर पकड मे सदेह पैदा किया। समझा जाता है कि राजीव का एक रिश्ते का स्थूलकाय भाई इस गलती के लिए जिम्मेदार था।

एशियाड 1982 की पूर्व-संध्या पर मैं सुरक्षा संबंधी एक मीटिंग में मौजूद था। मीटिंग की अध्यक्षता राजीव की मंडली का एक सदस्य कर रहा था। इस सुरक्षा संबंधी चर्चा मे भिंडरावाले के हथियारबंद गुर्गों और जम्मू-कश्मीर लिबरेशन फोर्स से होने वाले खतरे का खास-तौर पर जिक्र आया। रॉ और इंटेलिजेंस ब्यूरो के प्रतिनिधियों ने इस बात पर जोर दिया कि दूसरे स्थानों से, खासकर पंजाब से, आने वाले सिखों की आवा-जाही पर कडा नियंत्रण रखा जाए। मैंने अभी नया-नया सिख/पंजाब मामलों पर कुछ सीखा था। यह निरकारियों के गुरु बाबा गुरबचन सिंह की हत्या के बाद हुआ। उनकी हत्या आनंदकीर्तनी जत्था और भिंडरांवाले के एक कट्टर अनुयायी रंजीत सिंह ने की थी। यह अप्रैल 1978 में जरनैल सिंह भिंडरांवाले के हथियारबंद दस्तों के साथ फौजा सिह और निरंकारियों के संघर्ष का नतीजा था। उनको दिल्ली की जनता सरकार और चंडीगढ की सरकार ने बिना सोचे समझे बैसाखी वाले दिन सिखों की पवित्र नगरी अमृतसर में वार्षिक अधिवेशन करने की अनुमति दे दी थी।

भिंडरांवाले को निरंकारी गुरु की हत्या से ही संतोष नहीं हुआ। इसके बाद उसने देशभक्त पत्रकार लाला जगतनारायण की भी हत्या कर दी (लगभग साल भर बाद उनके बेटे को भी भिंडरांवाले के अनुयायियों ने गोलियों का निशाना बना डाला था)। इन के अलावा उसने दिल्ली

गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के प्रधान एच.एस. मनचंदा और पंजाब के डिप्टी इंस्पेक्टर जनरल पुलिस ए.एस. अटवाल की भी हत्या करवा दी।

लिहाजा दिल्ली को सिख कट्टरपंथियों, कश्मीर के उग्रवादियों और अंतर्राष्ट्रीय स्तर के आतंकवादियों से अलग-थलग रखना अत्यंत आवश्यक था। लेकिन मेरी राय थी कि सभी सिखों को परेशान और अपमानित कर के हम सामान्य सिखों को भी भिंडरावाले की तरफ धकेलेंगे जिसने पहले से ही सिखों के लिए अलग खालिस्तान की माँग करनी शुरू कर दी थी। मैंने प्रवेश के स्थानों पर जाँच करने की एक योजना प्रस्तुत की और सुझाव दिया कि संदिग्ध उग्रवादियों की घुसपैठ नाकाम करने के लिए पंजाब, हरियाणा और दिल्ली की पुलिस को नाको पर तैनात किया जाना चाहिए। मेरे सुझाव को अन्य सुरक्षा विशेषज्ञों ने नामंजूर कर दिया। एक मीटिंग में तो राजीव ने आतंकवादियों को नष्ट करने के लिए आतंकित करने वाले साधन इस्तेमाल करने की बात भी कह डाली। यह मेरा भारत के भावी प्रधानमंत्री से पहला प्रत्यक्ष वास्ता पडा था। मुझे लगा कि राजीव में आत्मविश्वास के विकास के बनिस्बत असहनशीलता और बेसब्री ज्यादा तेजी से पनप रहे हैं। वह बाहरी चमक-दमक और चापलूसों से आकृष्ट होने लगे थे। वह उन सुझावों का तिरस्कार कर देते थे जो उनकी योजना के अनुरूप न हों।

एशियाड और चोगम ने भले ही इंदिरा और राजीव की अंतर्राष्ट्रीय छवि में कुछ इजाफा किया हो लेकिन वह गहरी राजनीतिक अस्थिरता की ओर फिसल रहे थे। आंध्र प्रदेश की असफलता के तुरंत बाद हरियाणा चुनाव के परिणामों ने इदिरा को तगडा झटका दिया। कांग्रेस को दिग्गज जाट देवीलाल की ताकतों से 'करारी हार खानी पडी।

इंटेलिजेंस ब्यूरो और प्रधानमंत्री निवास ने मुझे देवीलाल की चुनावी सफलता को विफल करने के लिए कहा। इसमें पहला काम इंदिरा गाँधी की देवीलाल से एक मुलाकात करवाना था। चौधरी जाट प्रधानमंत्री से मिलने के मूड में कतई न थे। पर मैंने उनके रवैए को कुछ नरम करते हुए उन्हें संसद की एक लिफ्ट में अचानक इंदिरा से छोटी सी मुलाकात करने को राजी कर लिया। यह मीटिंग हुई। उसके बाद वे दो बार फिर हरियाणा की राजनीति पर विचार करने के लिए मिले।

दूसरा काम 'ऑपरेशन हरित 'था। इसका मतलब था हरियाणा विधानसभा के कुछ सदस्यों को फोड कर इंदिरा कांग्रेस में मिलाना। यह तीसरी बार थी जब मुझे संवैधानिक रूप से चुनी गई विधानसभा के विरुद्ध काम करने को कहा गया था।

यह गंदा काम आसानी से ही हो गया। इस खेल में खुर्शीद अहमद, बनारसीदास गुप्ता और देवीलाल के बेटे रंजीत सिंह (सभी हरियाणा के राजनीतिज्ञ) ने प्रमुख भूमिका निभाई। मेरे हाथों पैसे का लेन-देन नहीं हुआ। पर मेरे खयाल से प्रधानमंत्री निवास ने भारी रकमें सीधे उन राजनीतिज्ञों को दीं। जो रकमें दी गईं उसके बारे में कयास लगाना शायद आसान न होगा। अंतिम आकलन करने वालों ने तय किया था कि हर विधायक की आत्मा का मोल अलगअलग होना चाहिए। यह दस लाख से पचास लाख रुपए के बीच होना चाहिए। मुख्य प्रेरकों को दस करोड या उससे भी अधिक दिया गया।

हरियाणा की चुनावी पराजय को आयाराम-गयाराम किस्म की राजनीतिक विजय में बदल लिया गया। चौधरी भजनलाल हरियाणा और दिल्ली के राजनीतिक उफान में एक और अस्थिर बदली की तरह आए। मैंने इस चालबाज राजनीतिज्ञ से संपर्क बढाने की कोशिश नहीं की।

मेरा कर्तव्य स्पष्ट था। 'आपरेशन हरित 'पूरा हो जाने के बाद मुझे आगे का काम प्रधानमंत्री निवास की पहल पर छोड देना था।

इस कार्रवाई के दौरान मेरी अतरात्मा को कचोटने वाले कटकों के चुभने से मेरा खून बह निकला। बहरहाल मैं पहली बार के सबक से तो आगे निकल कर आ चुका था।

* * * *

आंध्र की विफलता और हरियाणा की जादूगरी ने निश्चित तौर पर यह साबित कर दिया कि इंदिरा भी राजनीतिक ढलान पर थीं। पंजाब के हालात उनका हिंदू वोट बैंक कम कर रहे थे। अंतुले घोटाला, कुओ तेल सौदा, भागलपुर का आँखफोड काड और उत्तरप्रदेश के सांप्रदायिक दगे उनको परेशान कर रहे थे। असम लगातार उनकी गर्दन पर फुफकार रहा थ। ए ए एस.यू. ने राज्य प्रशासन को लगभग ठप कर दिया था। नेली नरसहार में मुसलमानों को भारी नुकसान हुआ था। इससे भी इदिरा की देश का शासन चलाने की क्षमता पर सवालिया निशान लग गया था।

पश्चिम की ओर अफगानिस्तान जल रहा था। इदिरा की अफगानिस्तान नीति क्षेत्र की भू-राजनीतिक वास्तविकताओं के अनुरूप न थी। इंदिरा यह समझने मे असफल रही कि पाकिस्तान ने काबुल के कम्यूनिस्टो से लडने के बहाने खुद को जिहादियों के पनपने का अड्डा बना लिया है। वहाँ की इंटर सर्विसेज इटेलिजेस और सैनिक व्यवस्था ने जो सशस्त्र गुरिल्ला युद्ध व अप्रत्यक्ष युद्ध के दांव-पेंच विकसित कर लिए थे वे बारबक कमाल के शासन या सोवियत सेना के अपमानित हो कर पीछे हटने से खत्म नही होने वाले थे। अफगानिस्तान जिया उल हक और उसकी मडली के लिए एक प्रशिक्षण का मैदान भर था। वह जल्दी ही भारत के विरूद्ध अप्रत्यक्ष युद्ध आरभ करने वाले थे । उसकी शुरुआत पजाब से होनी थी और अंत विभाजन के अधूरे रह गए लक्ष्य को पाने के लिए कश्मीर मे होना था।

मैंने रॉ की जानकारी के बिना कार्रवाई के लिए दो कार्यक्रम हाथ मे लिए। ये थे अफगानिस्तान की सीमा से लगे उत्तर-पश्चिम सीमाप्रात में स्पिन ख्वार में आई.एस.आई. द्वारा चलाए जा रहे मुजाहिदीनों के प्रशिक्षण कैंप मे भारतीय एजेंट की घुसपैठ कराना। एजेंट एक पख्तून अफगान था। उसे दो महीने का प्रशिक्षण दिया गया। फिर उसे मुजाहिदीन बल के गुलबुद्दीन हिकमतयार दल में शामिल कराया गया। वह काम कर के अपने भारतीय ठिकाने पर सफलतापूर्वक लौट आया। उससे पूछताछ ने इस तथ्य की पुष्टि कर दी कि सी.आई.ए और आई.एस.आई. अफगानों के अलावा अरब, मलेशियाई, इडोनेशियाई, फिलीपीनी, बंगलादेशी तथा अन्य मुस्लिम स्वयसेवकों को प्रशिक्षण दे रही हैं। उसने पाकिस्तानी पंजाब में ईशाखेल के पास के शिविर में दो सिखों की मौजूदगी का विशेष रूप से उल्लेख किया।

1982 में सिख तीर्थयात्रियों का एक जत्था पाकिस्तान गया था। दूसरा एजेंट उसके माध्यम से वहाँ पहुंचा। वह भारतीय सिख प्रतिनिधियों के आई.एस.आई. के साथ संबंधों के निश्चित प्रमाण ले कर लौटा।

बहरहाल पंजाब डेस्क देखने वाले ज्वाइंट डायरेक्टर ने इन रिपोर्टो को बहुत महत्व नहीं दिया। जैसा कि मैंने पहले जिक्र किया है उनकी आदत जटिल रिपोर्टों को दबा कर रखने की थी ताकि समय के साथ वैसे मुद्दे अपने आप खत्म हो जाएँ। उनको इस तरह की कोरी इंटेलिजेंस को समझने और उसे बडे मसले के साथ जोडने के लिए राजी करना असंभव था। वह पंजाब की स्थिति पर रोजमर्रा की रिपोर्ट तैयार करने और उनमें भाषा की नोक-पलक

संवारने से संतुष्ट थे। मैं उनको यह समझाने में असफल रहा कि जरनैल सिंह भिंडरावाले के विशाल चरमपंथी ढांचे को सामान्य रूप से एकत्र व आकलित की गई इंटेलिजेंस के साथ मिला कर देखना चाहिए। मैंने दल खालसा, अखंडकीर्तनी जत्था तथा दमदमी टकसाल के अंदर भी एजेंट घुसाने का प्रस्ताव रखा था। लेकिन उसे यह कह कर खारिज दिया गया कि पंजाब मेरे कार्यक्षेत्र से बाहर है। मैं उस बेजान दीवार को पार करने में असफल रहा। पर मेरा पंजाब के साथ वास्ता शुरू हो चुका था।

आम धारणा है कि सिख फ्रेंकेस्टीन जरनैल सिंह भिडरांवाले को ज्ञानी जैल सिह और संजय गॉधी जैसे इंदिरा कांग्रेस के नेताओं ने बनाया था। यह अधूरा सच है, हालांकि दमदमी टकसाल के उपदेशक के आतंकवादी व्यक्तित्व पर इंदिरा गॉधी के छोटे बेटे और पंजाब के भूतपूर्व मुख्यमंत्री के तराशने के निशान बहुत स्पष्ट थे। सिख संप्रदायवाद 19वीं सदी के अंत और 20वीं सदी की शुरुआत के सांप्रदायिक राजनीति के विकास का अभिन्न अंग है। इसी के तहत शिरोमणि अकाली दल बना। फिर शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी भी बनी। भारत मे ब्रिटिश हुकूमत की यह अवधि धर्म आधारित राष्ट्रवाद के पनपने का आधार बनी थी। सिख अलगाववाद की धारणा को हिंदुत्व के साथ सिखों के संपूर्ण अलगाव के रूप में देखा जाता है। इसमें कुछ सच्चाई हो सकती है। लेकिन यह भी याद रखना चाहिए कि सिख बुद्धिजीवियों और धार्मिक दिग्गजों मे भी कहीं न कहीं अलगाववाद की एक परत आज भी मौजूद है। पहचान के सकट के कचरे के नीचे अलगाववाद के बीज दबे रहते है।

* * * *

भिंडरावाले का उदय केवल खालिस सिखो और निरंकारी कहलाने वाले उनसे अलग हुए सप्रदाय के बीच विभेद के कारण नही हुआ था। पजाब की भू-राजनीतिक व आर्थिक गतिविधियों मे होने वाले बडे परिवर्तन ने इसमे अप्रत्यक्ष रूप से भूमिका निभाई थी। हिंदू दुराग्रह और साख्यिकी की समस्या ने इसे और तूल दी। अकाली और काग्रेसी दोनों ही राजनीतिज्ञों ने राजनीतिक वातावरण के भडकाने में खुल कर हिस्सा लिया।

14 अप्रैल 1978 को सिख उग्रवाद का पवित्र दिन मान लेना सही न होगा। सोच-समझ की कमी वाली और कौशलहीन जनता पार्टी की सरकार ने अमृतसर मे सिखों के सब से पवित्र दिन पर निरंकारी समागम करने की इजाजत दे दी थी। इस दिन उनके दसवें गुरु ने सिखो के खालसा पंथ की नींव रखी थी। चंडीगढ की सत्तारूढ अकाली सरकार भी अपने कुख्यात आनंदपुर साहब प्रस्ताव में रखी मॉग को आसानी से भूल गई थी।

14 अप्रैल की वारदात संजय गॉधी ने नहीं करवाई थी। इससे जरनैल सिंह जैल सिह के निकट आ गए। संजय ने देखा कि इस ज्वलंत विद्रोह खडा करने वाले में कट्टरता विस्फोटक सीमा तक मौजूद है। उन्होंने उम्मीद की कि वह अकाली ब्रांड कट्टरता को दबा कर सीमावर्ती राज्य में इंदिरा कांग्रेस को फिर से सत्ता में ला सकता है। वह सिख कट्टरपंथ के स्रोत दमदमी टकसाल के इस उपदेशक के सीधे संपर्क में थे। ऐसा इसलिए हुआ कि भिंडरांवाले और उनके युवा ब्रिगेड आल इंडिया सिख यूथ फेडरेशन, दल खालसा, अखड कीर्तनी जत्था के अलावा टकसाल से जुडे सभी बुनियादी स्तर के पाठी, ढाडी और कीर्तनी जत्थों ने पंजाब के तीनो क्षेत्रों में इदिरा कांग्रेस के उम्मीदवारो के लिए प्रचार किया था। खासतौर पर संजय के पिट्ठू पी.एस. भिंडर की पत्नी सुखविंदर कौर के लिए।

मई 1981 में मुझ आदेश मिला कि मैं जरनैल सिंह भिंडरावाले के एक विख्यात अनुयायी को हरियाणा सीमा से गृहमंत्री के आवास तक ले आऊँ। मैंने उनको शार्दूलगढ़ से लिया और सीधा गृहमंत्री के सरकारी आवास तक ले आया। वे दो मोटे झोले कंधे पर लटकाए वापस चले गए। मुझसे कहा गया कि उनको भटिंडा के पास मानसा तक छोड आऊं। मैंने अपना काम एक इंटेलिजेंस संचालक के विशिष्ट गुणों गूगे, बहरे, अंधे बन कर पूरा कर दिया।

1980 में इंदिरा कांग्रेस की जीत ने जैल सिंह और भिंडरांवाले के नापाक रिश्ते को और भी मजबूत कर दिया। गृहमंत्री ने जिला अधिकारियों को उकसाया कि जरनैल सिंह के अनुयायियों को अस्त्रों के लाइसेंस दें। यह हथियार बाद में आपराधिक कार्रवाइयों मे इस्तेमाल किए गए। जैल सिंह दिल्ली मे मत्रीपद मिलने से संतुष्ट न थे। उन्होंने इंदिरा काग्रेस के मुख्यमंत्री दरबारा सिंह के खिलाफ भिंडरांवाले को उकसाया, क्योंकि उन्होंने 20 सितबर को चौक मेहता से इस उद्दंड संत को गिरफ्तार करने की जुर्रत की थी। 14 अक्तूबर 1981 को उसके रिहा होने पर जैल सिह ने संसद में कहा कि जरनैल सिंह बेकसूर है।

जरनैल सिह का बडी धूमधाम से दिल्ली आने और बाद में महाराष्ट्र में नानदेड साहब जाने में भी जैल सिंह का सक्रिय समर्थन था। जबकि सुरक्षा एजेंसियों ने इस बात के पर्याप्त प्रमाण दिए थे कि सत आतंकवादी गतिविधियों और निशाना बना कर हत्याएँ करवाने मे लिप्त है। दिल्ली मे उनके आने से कुछ विचित्र घटनाएँ घटी।

मुझसे कहा गया कि जरनैल सिंह की गतिविधियो पर गुप-चुप लेकिन गहरी नजर रखूँ। इसके लिए ह्यूमिट और टेकइंट के आम तरीके बिना किसी दिक्क्त के अपनाए गए। पर जैल सिंह ने सब से टेढा काम सौंपा। उन्होंने कहा कि मै जरनैल सिह के भाषणो और उपदेशो को रिकार्ड करूँ और खुद वे टेप ले कर उनके निवास पर आऊॅ। मेरे सहयोगी अजायब सिह ने यह काम बडी तत्परता से किया। लेकिन इनमें सबसे मुश्किल काम तो जैल सिंह के घर पर टेप ले जाना और इतजार करना होता था जब तक कि वह इस सांप्रदायिक सत के भडकाऊ और लंबे भाषणों को अंत तक सुन न लें।

जैल सिंह की शामें उनकी अपनी होती थी। वे हट्टे-कट्टे सरदार थे। वह आमतौर पर अपनी गरीब आदमी वाली सुतली की चारपाई पर लेटे रहते। विस्की का गिलास उनके पास रखा रहता और एक तगडा मालशिया उनके तेल चुपडे बदन पर मालिश कर रहा होता। उनकी ग्रामीण सहजता से मैं अभिभूत हो गया। हालांकि मैं इस बात को समझता था कि इस सरलता के नीचे राजनीतिक जोड-तोड में माहिर व्यक्तित्व छिपा है। उनके चरित्र का यह कम उजला पहलू उस रात कैमरे में कैद कर लिया गया जब वह गुरुद्वारा बंगला साहब जा कर एक घटे से अधिक समय तक जरनैल सिंह के साथ बंद कमरे में गुफ्तगू करते रहे। दिल्ली में कोई भी यह उम्मीद न रखता था कि केंद्रीय गृहमंत्री संत से हिंसक अपराधी बने इस व्यक्ति के सामने लोट जाएगा और देश की सुरक्षा के साथ समझौता करेगा। मेरे विचार से इंदिरा गांधी अपने गृहमंत्री की ऐसी करतूत का प्रत्यक्ष प्रमाण देख कर प्रसन्न तो नहीं हुई होंगी।

उनको ज़ैल सिंह के अमितेश्वर आनंद के घर जाने के समाचार पाकर और भी कष्ट पहुंचा। जिस दिन वह राष्ट्रपति बने उस दिन भी वहाँ गए थे। ज़ैल सिंह के संजय और उसके परिवार के साथ घनिष्ठ संबंध थे। मैं वह दिन नहीं भूला जब अशोका हॉल में 1980 में शपथ लेने के बाद वह संजय के चरण छूने के लिए झुक गए थे।

मेरे खयाल में इंदिरा गाँधी ने अपने आंतरिक इंटेलिजेंस प्रमुख को जैल सिंह के आनंद परिवार से संबंधों के बारे में विस्तृत रिपोर्ट देने को कहा था। सहायक इंटेलिजेंस ब्यूरो का प्रमुख होने के नाते मैंने भी उस विशद रिपोर्ट में अपना क्षेपक लगाया था। उसकी विषयवस्तु भी पसंद आने वाली तो न थी। राष्ट्रपति भवन पहुँच जाने पर भी जैल सिह खुद को सिख राजनीति के उफान और संजय की पत्नी के परिवार से अलग नही कर पाए। उनको पायलट से प्रधानमंत्री बने हवाई कप्तान राजीव गाँधी भी कभी पसद नही आए।

इदिरा के इर्दगिर्द रहने वाले राजनीतिज्ञों से बात-चीत से और हरियाणा मे घोडा खरीद व दिल्ली में चुनाव की क्षीण संभावनाओं पर एक मीटिग मे उन्होंने मुझसे जो सवाल पूछे उन सब से मुझे लगा कि प्रधानमंत्री अपने गृहमंत्री की कार्यप्रणाली से आजिज आ चुकी हैं। उस अतिउत्साही ग्रामीण सिख को यह समझ नहीं थी कि खटास में आ चुकी राजनीतिक कारगुजारियों से कब दूर हट जाना चाहिए। चडीगढ की कुर्सी की भूख मे उनको यह तथ्य भी दिखाई न पडा कि सिख अलगाववाद को उन्होंने और उनके आका सजय ने अपनी बनाई जिस बोतल में बद किया था वह उसे तोड कर बाहर निकल चुका है।

इदिरा ने स्थिति की गभीरता को समझ लिया था। वह अपने गृहमत्री को किसी नियत्रक पिंजरे में रखना चाहती थीं। इसके लिए सब से सुविधाजनक पिजरा रायसीना पहाडी पर बना राष्ट्रपति भवन ही था। इदिरा अपने राजनीतिक समस्याओं के समाधानकर्ता को गलत रास्ते पर चलने के बाद नियत्रक घेरे मे रखने मे सफल हो गई थीं। पर उनकी समझ में ऐसी कोई युक्ति नही आ रही थी जिस से वे अपने बेटे की सुलगाई उग्रवाद की नरकाग्नि से बच निकलें। यह नरकाग्नि अंतत: उनको लील ही गई।

* * * *

दिल्ली के चुनावों के बारे में अक्सर मुझसे परामर्श किया जाता था। मई 1983 मे दिल्ली नगर निगम (एम.सी.डी.) के चुनाव होने थे। तब तक राजीव गाँधी इदिरा काग्रेस के और अपनी माँ की सरकार के परदे के पीछे के कामो की पूरी तरह जिम्मेदारी सभाले हुए थे। वह दूसरे नंबर पर सब से शक्तिशाली राजनीतिज्ञ के रूप मे उभरे थे।

राजीव और उनके सहायक पार्टी की आध्र प्रदेश और हरियाणा मे खोई प्रतिष्ठा को बहाल करने के लिए त्रुटिहीन समरनीति पर काम कर रहे थे। उनके दफ्तर ने उम्मीदवारो की एक सूची तैयार की जिस में संजय के अधिकांश अनुयायियो को हटा दिया गया। एम.एल. फोतेदार ने भी अपने अनुगामियों की टोली से एक सूची तैयार की। संजय के अनुयायियो ने भी अपनी एक सूची बनाई और इंदिरा का ध्यान आकर्षित करने की भरसक चेष्टा की।

मुझे इन तीनों, एक दूसरे की जबरदस्त विरोधी, सूचियों का अध्ययन कर के एक ऐसी सूची बनाने को कहा गया जो भारतीय जनता पार्टी (बी.जे.पी.) के उम्मीदवारो का मुकाबला करने में सक्षम हो। बी.जे.पी. को जोरदार जीत हासिल करके कांग्रेस की बुनियादें हिला देने की उम्मीद थी। पार्टी को सिख उग्रवाद रोकने में इदिरा की असमर्थता के विरुद्ध हिंदुओ की प्रतिक्रिया पर बहुत भरोसा था। वह स्थानीय मुद्दे और आपात्कालीन ज्यादतियों की यादों को उभार कर भी कुछ फायदा उठाने की ताक में थे। मीडिया भी इदिरा के विरुद्ध था और उनको सिर छिपाने को बहुत कम जगह मिल रही थी।

मैंने जाति, संप्रदाय, धर्म के नेताओं और विभिन्न भाषा-भाषियों के नेताओं के साथ विचार-विमर्श करके एक मिश्रित सूची तैयार की। इस तरह का काम पूरी गोपनीयता रख कर नही

किया जा सकता था। यह कोई नया काम न था। इंटेलिजेंस ब्यूरो को अक्सर उम्मीदवारों की सूची का निरीक्षण करने और सत्तारूढ़ दलों की जीत की संभावनाओं का पता लगाने को कहा जाता था। ऐसा ही राज्यों में होता है। वहाँ भी राज्य की इंटेलिजेंस शाखाओं और सी.आई डी. को सत्तारूढ दल की जीत की संभावनाओं का अध्ययन करने को कहा जाता है। भारतीय लोकतंत्र ने अतीत के कुछ अवशेषों को त्यागने से इनकार कर दिया है। बल्कि लोकतत्र के पहरुओं ने उस पर अपनी राजनीतिक इजारेदारी बनाए रखने के लिए कुछ नए हथियार भी उसमे जोड लिए है।

राजनेताओं को जल्दी ही मेरी गंध लग गई। वे अपने-अपने उम्मीदवारों को शामिल कराने के लिए मेरे चारों तरफ मंडराने लगे। जगदीश टाइटलर,, एच.के एल. भगत , जगदीश आनंद . जगप्रवेश चंद्र और इंदिरा मंत्रिमंडल में मंत्री भगवत झा आजाद जैसे नेता मेरे भारती नगर वाले घर के पास चक्कर काटने लगे। उनमें से कुछ ने मुझे आर्थिक और दूसरे लाभ देने का प्रलोभन भी दिया। मेरे गरीब और संघर्षशील इटेलिजेंस संचालक बनने के दृढ निश्चय ने मेरी आत्मा को बेदाग बनाए रखा। मैंने उस राजनीतिक दलदल में से सोना निकालने से इनकार कर दिया जिस में मैं भारतीय इतिहास के इन नाजुक क्षणों में परिस्थितिवश फंस गया था।

मुझे यहाँ बताना ही चाहिए कि इस साधारण लेकिन महत्वपूर्ण चुनाव मे इदिरा कांग्रेस की सहायता करने के लिए इटेलिजेंस ब्यूरो के पूरे तंत्र को लगा दिया गया था। धवन इस मे मुख्य जिम्मेदारी निभा रहे थे और मुझसे उनको पूरा सहयोग देने को कहा गया। मैने जितनी मुझसे अपेक्षा की गई थी, वह सब किया। मैं अकारण नही कहता कि मैने अपना काम बहुत अच्छा किया। हालांकि इस में राजीव गाँधी और एम एल फोतेदार के आस-पास की मडली काफी नाराज हो गई। इंदिरा काग्रेस के लिए चुनाव जीतने वाले धवन-धर जादू के लिए बेसिर-पैर की बाते भी कही गई। मैने ऐसा कुछ नहीं किया जो एक इटेलिजेस संचालक मेरी स्थिति मे नहीं करता। मैं तंत्र का एक हिस्सा था। मुझमें उससे बाहर जाने का साहस न था।

राजीव के गुट और फोतेदार-त्रिपाठी की अगुआई वाली मडली के कुछ सदस्य उनके चुने उम्मीदवारों को पार्टी द्वारा टिकट न दिए जाने से जख्म खा गए। राजीव के दोस्तो और धडे के बनिस्बत संजय के कुछ पिछलग्गुओ को तरजीह दी गई थी। इन अधकचरे राजनेताओ ने टिकट मिलने के आधार पर चदा इकट्ठा करना भी शुरू कर दिया था। अब उनके लिए मुह छिपाने को जगह न थी।

लिहाजा वे इकट्ठे होकर मेरी जान के ग्राहक बन गए। इस विकृत तर्क ने कि मैंने संजय के आदमियों को तरजीह दी है , कुछ फैसला करने वालों को प्रभावित कर लिया। पर इस से फर्क नहीं पडा। इंदिरा गाँधी ने इंटेलिजेंस ब्यूरो के लिए मेरी तैयार की गई जीतने वालों की सूची को मंजूरी दे दी। उन्होंने मेरी सुझाई कुछ युक्तियों को भी लागू किया। वे अभी भी आर.के. धवन को हटाने की स्थिति में न थे। लेकिन उनको भी काफी हद तक हाशिए पर ला दिया गया।

राजीव के अनुगामियों और फोतेदार-त्रिपाठी धडे के पास एक ही रास्ता था कि मुझे सजा दें और धवन को कमजोर करें। मेरे पास यह मानने के कारण हैं कि उन्होंने ही मुझे एस.आई. बी. दिल्ली के महत्वपूर्ण पद से हटवाया। उसके बाद मेरी जगह वी.एस. त्रिपाठी के उस रिश्तेदार को नियुक्त करवाया जिसका स्थान मैंने रूसी काउंटर-इंटेलिजेंस डेस्क पर संभाला था।

मैं हटाए जाने के इस निर्णय से आहत नही हुआ। आखिर प्रशासक इस तरह के हटाए जाने या दबाव में आने के लिए ही तो होते हैं। खारा तौर से उस पद्धति मे जहॉ गुप्तचर तत्र तत्कालीन आकाओं की कार्यप्रणाली का एक अंग होता है। लेकिन मुझे जिस तरह से हटाया गया उससे मुझे कष्ट हुआ। पहले मेरे कोहिमा के सहयोगी जे.एन. राय को मेरे उत्तराधिकारी के रूप में लगाया गया। लेकिन फोतेदार धडे ने यह कह कर इरा का विरोध किया कि वह शाह कमीशन से संबंधित थे। उनको तीन दिनों में ही हटा दिया गया। अंतिम चुनाव वी.एस त्रिपाठी के रिश्तेदार का हुआ।

इस दौरान टी.वी. राजेश्वर ने मुझे ढाका में नियुक्ति की पेशकश करके मेरी मदद करने की कोशिश की। मैंने इस आधार पर अस्वीकृति जताई कि मेरे परिवार ने पहले के पूर्वी पाकिस्तान में स्वाधीनता संग्राम के दौरान प्रमुख भूमिका अदा की थी। मेरी ढाका मे आच्छन्न नियुक्ति सात दिन भी नहीं टिक सकेगी।

मै तब तक अधर मे लटका रहा जब तक कि इदिरा गॉधी ने धवन के माध्यम से मुझे बुलाया नहीं। उन्होंने बडी कृपा दृष्टि दिखाई। उन्होने मेरी पत्नी और बच्चो के बारे मे पूछा और मुझे दिल्ली के चुनावों मे सहायता करने के लिए धन्यवाद दिया। जब मै प्रधानमत्री को धन्यवाद दे कर जाने के लिए उठा तो उन्होने मुझे बैठे रहने को कहा और पूछा कि क्या मै कनाडा में भारतीय उच्चायोग में नियुक्त किया जाना पसद करूँगा। मै इरा प्रस्ताव पर भौचक्का रह गया। मैं एक बार भी अपने अपमान का रोना रोने धवन या इदिरा गॉधी के पास नहीं गया था। मैंने जो नया डेस्क का काम दिया जा रहा था, उसी मे रमने का मन बना लिया था।

पहले उन्होंने विदाई की औपचारिकता निभाई और मेरे व मेरे परिवार के लिए सुख-समृद्धि की कामना की। मैं वापस आर.के. धवन के कमरे में आ गया। मुझसे कहा गया कि मैं विदेश मंत्रालय मे प्रतिनियुक्ति के लिए अपना आदेश लेने के लिए रुकूँ। मुझे इस में कोई शक नही रहा कि आर.के. धवन ने मेरी प्रतिष्ठा और कैरियर बचाने के लिए पहल की थी। उन्होंने विशेष प्रयास कर के बी.एल. जोशी (दिल्ली के उपराज्यपाल) को ओटावा भेजना रुकवाया और निजी तौर पर विदेश सचिव से बात करके मेरी सहायता की। मैने अपने मित्र का धन्यवाद किया जिनको खुद दीवार की तरफ धकेला जा रहा था।

मैं इस पेशकश से बहुत प्रभावित हुआ था। हालांकि मै इंदिरा के गिरते राजनीतिक कैरियर और उनके कुछ मामलों में गलत कदम उठाने से प्रसन्न न था। क्या सजय की मौत ने उनकी विलक्षण क्षमता को प्रभावित कर दिया था? मेरे खयाल में ऐसा ही हुआ था।

यह मेरी भारत की उस महिला प्रधानमंत्री से आखिरी मुलाकात थी जिससे कुछ ने बहुत प्यार किया तो कुछ ने बहुत नफरत। वह भारतीय स्वाधीनता संग्राम की अतिम कडी थीं। वह बौद्धिक और आध्यात्मिक गुणों से प्रेरित अंतिम नेहरू थी।

हम 22 अक्तूबर 1983 को ओटावा के लिए विमान मे सवार हुए। हालाकि एम.ई.ए. के कुछ लोगों ने इसका विरोध किया। प्रधानमंत्री निवास के एक गुट ने भी आखिरी दम तक इस में कुछ रोडे अटकाए।

मैं विदेश में नियुक्ति की उम्मीद नहीं रखता था। मैंने इसके लिए कभी कोशिश भी नहीं की। मैं इंटेलिजेंस के संचालन में खुश था। पर मेरा परिवार इस अप्रत्याशित नियुक्ति से रोमाँचित था। मैं भी यह सोच कर संतुष्ट हुआ कि कुछ समय भारत के बाहर गुजार लूँगा

और बहुत कुछ ठंडा पड जाएगा। मैं कहाँ जानता था कि भारत फिर पहले वाला भारत नहीं रहेगा। इंदिरा को स्वर्णमंदिर में सेना की कार्रवाई करने और जैल सिंह व उनके बेटे संजय के बनाए फ्रेंकलिन से भौतिक छुटकारा पाने को बाध्य होना पड़ेगा।

1987 में जब मैं लौटा तो मुझे सीधे पंजाब के इंटेलिजेंस संचालन की परिधि में पहुँचा दिया गया। यह एक अलग कहानी है जिसे मैं बाद में विस्तार से सुनाऊँगा।

मैंने दिल्ली की आई.बी. सहायिका में तीन साल गुजारे थे। इन तीन सालों ने मुझे एक आदिवासी क्षेत्र के विशेषज्ञ से महानगरीय इंटेलिजेंस संचालक में बदल दिया था। वैसे तो मैं मणिपुर में ही अपनी नैतिक मासूमियत खो चुका था लेकिन दिल्ली की दहकती भट्ठी ने मुझे इसका एहसास करा दिया कि यह पौराणिक-ऐतिहासिक नगरी बहुत कम बदली है। यह साजिशों, ठगी और सत्ता की बेरहम कशमकश पर पनपती है। शासन चलाने का ढाँचा तो शायद बदल गया है, लेकिन उसकी शैली आज भी वही है। जहाँगीर के दरबार और मोरारजी भाई या इंदिरा गाँधी के दरबार में कम ही अंतर है।

प्रशासकों में भी कोई सुधार वाला परिवर्तन नहीं आया। वे दरबारी अदब-कायदे के गुलाम थे। वे सत्तारूढ देवता की आराधना करते थे और आस्तीन में किरच छिपा कर रखते थे।

शीर्ष पर और उसके आस पास काम करने वालों के लिए आजादी से काम करने की कोई गुंजाइश न थी। इंदिरा ने प्रशासनिक स्तर पर 'प्रतिबद्धता' की एक नई धारणा पैदा कर दी थी। जवाहरलाल नेहरू और लालबहादुर ने कभी भी प्रशासनिक पद्धति और उसके कल-पुरजों के छेड़ने की कोशिश नहीं की। हालांकि उन्होंने विरासत में मिली ब्रिटिश पद्धति के रग-रूप में कुछ परिवर्तन जरूर किया था।

इंदिरा और संजय ने प्रशासनिक प्रक्रिया में तोड-फोड की और उसके पतन को रोकने के लिए कुछ नहीं किया।

मैंने कुछ अनैतिक और गैरकानूनी आदेशों का पालन किया था। मैंने लोकतंत्र की भावना और संविधान की मान्यताओं के विरुद्ध काम किया था। लेकिन यह नहीं भूलना चाहिए कि मैं एक एजेंसी में काम करता था जो उस समय भी और आज भी लोकतंत्र और संवैधानिक स्वाधीनता के दायरे से बाहर है। यह संस्था अपने ही नियम कायदों से और अपने समय के आकाओं की मरजी के मुताबिक चलती है। मैं जब जमुना गया तो जमुनादास की तरह व्यवहार करना ही था।

पर मैंने व्यक्तिगत भ्रष्टाचार से अपनी आत्मा को दूषित नहीं होने दिया। इंटेलिजेंस संचालकों और कुछ किस्मों के प्रशासकों को देश के संविधान और कानून का उल्लंघन करना पड़ता है। जब तक उनको संसद की चौकसी करने वाली समितियों के माध्यम से देश के प्रतिनिधियों के प्रति जवाबदेह नहीं बनाया जाता, ऐसा होता रहेगा। जब तक देश की राजनीतिक पद्धति इन संस्थानों को संसद के विशिष्ट अधिनियमों के अधीन नहीं करती तब तक उनको अपने समय के आकाओं के इशारों पर नाचना ही पड़ेगा।

लेकिन मैं अब भी इंदिरा गाँधी का प्रशंसक था। इतिहास ने नेहरू-गाँधी परिवार से बाहर के नेताओं को मौका दिया था, पर उन्होंने जनमत को सत्ता और अधिकार के लाभ के लिए सड़क छाप लोगों की तरह झगड़ने में व्यर्थ गँवा दिया। वह अब भी बौनों में सब से ऊँचे कद वाली थीं।

त्रुटिहीनता तो एक वैचारिक स्थिति है। उसे कभी पाया नहीं जा सकता। मेरे दूसरी बार दिल्ली आने ने मुझे तकनीकी गुप्तचरी के रहस्यमय संसार के बारे में और सीखने का अवसर दिया। गुप्त सूचनाएँ एकत्र करने और विपक्षियों को इंटेलिजेंस पाने से रोकने में इलेक्ट्रानिक उपकरणों के उपयोग ने मुझे अभिभूत कर दिया।

आई.बी. के पास वीडियो, ऑडियो और रेडियो उपकरणों के अतिलघु मॉडल बहुत सीमित संख्या में थे। मेरे पास उपग्रह संचार, अवरोधन और प्रतिबिंबन की सुविधा न थी। हमें अभी भी सूक्ष्म कैमरों, स्कैनरो, कापी करने के उपकरणों और श्रवणयंत्रों से परिचित होना था। सरकार ने इंटेलिजेंस संकलन के इन उपकरणों पर जो रोक लगा रखी थी उससे हमारे पेशे के लोग हैरान थे। लेकिन केंद्रीय गृह और वित्त मंत्रालय मे बैठे बाबू और परिपाटी चलाने वाले उस्ताद समझते थे कि देश की सुरक्षा की आवश्यकताओं को उनसे बेहतर कोई नहीं समझ सकता। अधिकांश प्रस्ताव संयुक्त निदेशक से आगे नहीं जाते थे। इटेलिजेंस ब्यूरो के निदेशक को अपरिष्कृत धूर्त भले ही मान लिया जाए लेकिन जहॉ तक प्रशासनिक और वित्तीय अधिकारों की बात है वह बहुत असहाय होता है। राजनेताओं और शीर्ष प्रशासकों ने कभी उसके पर नहीं निकलने दिए।

लेकिन उपकरणों की सीमा मेरी नवाचार की प्रवृत्ति में बाधक नहीं बनी। किसी लक्ष्य के विरुद्ध तकनीकी इंटेलिजेंस संकलन के लिए पेचीदा नवाचार की आवश्यकता पडती है। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) के एक शीर्ष नेता के विरुद्ध इंटेलिजेंस संकलन में सबसे महत्वपूर्ण नवाचार की जरूरत पडी। वह बहुत चौकन्ने रहने वाले लोगों में से थे, साथ ही सोवियत संघ के एक इंटेलिजेंस संचालक के निरंतर संपर्क में भी थे। इस राजनयिक के साथ उनकी अधिकांश मुलाकातें उनकी व्यक्तिगत कार में होती थीं जो एक साधारण सी फिएट थी। उनके ड्राइवर ने दो घंटे के लिए कार हमारे हवाले कर दी। उसके बाद हम करीब तीन महीने तक उनके सोवियत राजनयिक के साथ वार्तालाप को निर्बाध रूप से सुनते रहे। लेकिन इंदिरा गाँधी उस राजनयिक को अवांछित व्यक्ति घोषित करने के पक्ष में न थीं। मेरे खयाल में उन्होंने किसी चोटी के मार्क्सवादी नेता से इस बारे में 'कुछ दोस्ताना 'बातचीत की। उसके बाद यह अप्रिय राजनयिक हरकत बंद हो गई।

1982 में एक समय इंदिरा सत्तारूढ दल के एक मंत्री के संसदीय कार्यालय में श्रवण यंत्र लगवाना चाहती थीं। वह अपने विरूद्ध तख्ता पलटने के षडयंत्र का पता लगाने के लिए इंटेलिजेंस एकत्र करवाना चाहती थीं। मैंने लोकतत्र के सिद्धांत की अवहेलना का तर्क देकर इस का विरोध किया। लेकिन मेरे आदेशकर्ता ने इसे नामंजूर करते हुए मुझे आदेश दिया कि पूरी सावधानी से इस काम को अंजाम दूँ। इस काम में कोई अधिक जटिलता न थी। एक आई.बी. अधिकारी सुरक्षा स्टाफ में प्रतिनियुक्ति पर था। उससे संपर्क कर के दफ्तर में घुसने का बंदोबस्त कर लिया गया। उसके बाद पास के एक कक्ष में रिसीवर लगा दिया गया। इस से बहुत महत्वपूर्ण सूचनाएँ मिलीं और इंदिरा को मेनका के साथ सहानुभूति रखने वालों को अपने आसपास से हटाने में सहायता मिली।

मुझे जिस दलदल में फेंका गया था और तैरने के लिए कहा गया था उसका मैंने पूरा आनंद लिया। इसने मुझे अपने इंटेलिजेंस के शिल्प को और पैना बनाने में मदद दी।

विभाजन के दर्द ने मुझे हिंदुत्ववादियो के करीब धकेल दिया था। मैं कभी शाखा में तो नहीं गया लेकिन मैंने कुछ आर.एस.एस. नेताओं और कम से कम बंगाल के दो जनसंघी

नेताओं से मैत्री संबंध बना लिए थे। मैंने अपने अंदर कहीं मुसलमानों से नफ़रत करो की झिल्ली बना ली थी। मैं अब भी मानता था कि इस्लामी कट्टरता के स्रोत पाकिस्तान को खत्म करना मेरा परम कर्तव्य है।

मेरे दिल्ली प्रवास ने मुझे मुस्लिम समुदाय को बेहतर तरीके से समझने का अच्छा मौका दिया। मै उनकी समस्याओं, आकांक्षाओं और निराशाओं को बेहतर समझ सका। मेरी दोस्ती तुर्कमान गेट के पास गली कब्रिस्तान के एक साधारण से मुस्लिम मौलाना से हो गई। इस ने मुझे जामा मस्जिद, निजामुद्दीन , ओखला व दक्षिण व पूर्वी दिल्ली के कई अन्य शहरी गॉवों के टोलों में बसे जडवत हो चुके मुस्लिम समुदाय में गहरे पैठनें का अवसर दिया। पुरानी दिल्ली का मुस्लिम समुदाय अशतः अतीत में डूबा हुआ था और अंशतः सामाजिक उत्थान की धारा से जुडा हुआ था। यह समुदाय पवित्र ग्रंथ के अकाट्य निर्देशों और फतवों का पूरी रह पालन करता था। अतीत के निर्देशो पर उसकी पूरी आस्था थी। सामाजिक-धार्मिक मान्यताओं मे परिवर्तन की बात का·अगर वे सीधी-सीधा विरोध नहीं करते थे तो कम से कम उस पर ना-कभौं तो चढाते ही थे।

मुझे ऐसा लगा कि इनमें से अधिकांश सामान्यजन ने बहुत सी सामाजिक रिवायतों को स्वीकार कर लिया है। ये रिवायतें अगर मूलतः हिंदू नहीं थीं तो स्पष्टतः भारतीय अवश्य थीं। इतना बता देना काफी होगा कि भारत की मिट्टी, हवा, पानी और यहॉ के लोग वेदों मे से नहीं निकले थे। यहॉ सभ्यताओं की तरंगें आती रहीं। वे यहॉ के लोंगों के रक्त और मज्जा में समाती रहीं। इसने अपनी ही तरह की भारतीयता को जन्म दिया। यह भारतीय जनता की साझी विरासत है। मैंने दिल्ली और उसके आस-पास के मुसलमानों द्वारा दैनिक जीवन में इन भारतीय रिवायतों को अपनाने के बारे में कोई परहेज नहीं देखा।

मै अपने गली कब्रिस्तान वाले तथा अन्य मुस्लिम दोस्तों का शुकगुजार हूँ। उन्होंने मुझे मुस्लिम समुदाय में गहरे पैठने का अवसर दिया। उस जनमानस को समझने का मौका दिया जो भारतीयता के विलक्षण एकात्मता वाले क्षेत्र और इस्लामी कट्टरपंथ की चट्टान के बीच निराधार से झूल रहा है।

❮19❯

मटमैले रंगों के बीच

कनाडा कभी भी एक कुठाली. सरीखा न था। बल्कि कुछ सलाद सरीखा ही रहा।

इर्नाल्ड एडिनबरा

विदेश मत्रालय के शीर्ष कर्ता-धर्ता मेरी इस प्रमुख पद पर नियुक्ति के लिए अचानक चुने जाने के प्रति उत्साहित न थे। वे प्रधानमंत्री के एक विशेष सुरक्षा सहायक को उपकृत करना चाहते थे, जो बाद में दिल्ली के उपराज्यपाल बने। उनमें से कई मेरे इस तरह चुने जाने का मतलब समझ नहीं पा रहे थे। प्रधानमत्री अपना निर्णय कैसे बदल सकती थीं? मैंने यह रहस्य उजागर नहीं किया। इससे कयास लगाने वाले और भी चिंता में पड गए। मैंने उन की परेशानी का लुत्फ लिया।

दिल्ली मे मेरे सबसे मोटे बैंक खाते में कुल 21,000 हजार रुपए थे जो मुश्किल से हमारे कनाडा जाने के लिए पूरे होते थे। मुझे अपने एक दोस्त से 20,000 रुपए उधार लेने पडे।

विदेश मंत्रालय का विवरण सत्र किसी विदेशी दूतावास के राजनयिक वातावरण के लिए मेरे जैसे बाहरी व्यक्ति को तैयार करने लायक न था। मुझे सिर्फ इतना बताया गया कि मुझे परामर्श के लिए संयुक्त निदेशक (कार्मिक) जी.एस. वाजपेयी पर निर्भर रहना है जो पहले कभी आई.बी. मे थे। मुझे सिर्फ बाहरी काम करने थे जैसे कि सुरक्षा के मामलों पर रॉयल कैनेडियन माउंटेड पुलिस से संपर्क रखना आदि। मुझे इंटेलिजेंस सकलन के झमेले मे नहीं पडना था। रॉ की कनाडा में काफी बडी इकाई थी।

दिल्ली एस.आई.बी. की चुभने वाली और हड्डियॉं कडकाने वाली नौकरी के बाद मैं यहॉं कुछ आराम की उम्मीद कर रहा था। मुझे वहॉं एक दिन भी छुट्टी नही मिलती थी। काम का दबाव इतना था कि सप्ताह के सातों दिन 18 घटे रोज जुटे रहना पडता था। इस तनाव ने मेरी सेहत पर भी असर डाला था और मुझे मधुमेह की शिकायत हो गई थी। तनावरहित कार्य और आधुनिक चिकित्सा सुविधा की संभावनाओं ने मुझमें आशा का सचार किया।

लंदन होकर टोरोंटो जाने वाली एयर इडिया की उडान हमारा अटलांटिक पार करने का पहला अनुभव था। 22 अक्तूबर 1983 को हम ओटावा पहुचे। हमें कनाडा की ससद के निकट ऐतिहासिक होटल चैतू लारियल में अस्थायी तौर पर ठहराया गया। बर्फ की शुरुआत से सुनंदा और बच्चे रोमांचित हो उठे पर साथ ही हमें यह भी याद आया कि हम लोग कनाडा के कडे जाड़े के लिए पूरी तरह तैयार नहीं हैं। उच्चायुक्त श्री शिवरामकृष्णन पत्रकारिता से विदेश सेवा में आए थे। उनको कैंसर था। मैं उनसे सिर्फ एक बार ही उनके निवास पर मिल पाया। अपने जीवन के अंतिम पडाव पर खड़े कृष्णन ने मुझे एक ही सलाह दी।

"आप इस उच्चायोग में एक नाजुक दौर में शामिल हुए हैं। सिख उग्रवाद सिर उठा रहा है। मैं रॉ अधिकारियों के काम से संतुष्ट नहीं हूँ। मुझे इस क्षेत्र में अपकी विशेषज्ञता के बारे में बताया गया है। अब एक और कठिन संघर्ष के लिए कमर कस लीजिए।"

"लेकिन सर,"मैंने उच्चायुक्त को स्मरण दिलाया,"मुझे तो खुलेतौर पर काम करने को कहा गया है। मैं इंटेलिजेंस संकलन में लिप्त नहीं हो सकता।"

"आप अपने पेशे को तिलांजलि नहीं दे सकते। मैं आपको सूचना और प्रचार का डेस्क दे रहा हूँ। आप इस ओट में काम करना शुरू कर दें।"

"कृपया मुझे मेरे काम के बारे में विस्तार से बताएं कि क्या करना होगा।"

"आपको विस्तार से बताने की आवश्यकता नही है। सिख समुदाय में अपनी पैठ बनाइए। गुरुद्वारों में अपने दोस्त बनाइए। समुदाय के प्रमुख नेताओं के विश्वासपात्र बन जाइए। अपनी ओट को सावधानी से बनाए रखिए।"

मेरी उनसे मुलाकात के कुछ दिन बाद ही उच्चायुक्त का देहांत हो गया। के.पी. फेबियन उप-उच्चायुक्त थे। वह मेरे कोर्स के साथी रहे थे। उन्होंने इस नई जगह पर स्थापित होने में हमारी बहुत मदद की।

अशोक अत्री हमारे कार्यालय प्रमुख थे। भारतीय विदेश सेवा के इस युवा अधिकारी ने शहर की सीमाओं से बाहर प्रेसकोट राजमार्ग पर कंट्रीप्लेस में हमारे लिए एक घर ठीक कर दिया। मुझे पता चला कि अशोक ने अपने एक साथी पजांबी सिख को लाभ पहुंचाने के लिए उस का घर किराए पर लिया है। यह पंजाबी था तो सिख पर दाढी-मूँछ मुंडाए था। असुविधा के अलावा मुझे सिख अलगाववाद के कट्टर समर्थक के घर पर रहने में भी कोफ्त होती थी। मैं कुछ महीने उस घर में रहा। फिर मैंने मिशन पर दबाव डाल कर एक चीनी का घर किराए पर लेने को बाध्य किया। यह घर मूनीज बे के किनारे हॉग्स बैक पर था।

काम करने का वातावरण कतई संतोषजनक न था। फेबियन भला मानुष था। उसकी दिलचस्पी सिर्फ व्यावहारिक कूटनीति में थी। भारतीय समुदाय में उसकी पहुंच ओटावा के पेशेवर लोगों और सामाजिक व्यवहार रखने वालों तक सीमित थी। भारतीय प्रवासियों का कुछ तबका आमतौर पर भारतीय राजनयिकों से वास्ता नहीं रखता था। वे कभी वीजा या पासपोर्ट के नवीकरण के लिए हमारे कार्यालय में आते थे। पर ऐसे सामाजिक प्राणी भी थे जो राजनयिकों के साथ मेल-जोल बढाने और विस्की की चुस्कियाँ लगाने में गर्व का अनुभव करते थे। वे राष्ट्रीय पर्व पर भी आते थे।

भारतीय एकजुट न थे। वे भाषा और प्रांतीयता के आधार पर अलग-अलग गुटों में संगठित थे। तमिल, तेलुगू, मलयाली, पंजाबी, बंगाली और हिंदी बोलने वाले भारतीयों ने अपने अलग घरौंदे बना रखे थे। वे अधिकाशतः अपने मामलों में व्यस्त रहते थे। 1983 के अंत तक पंजाबी समुदाय में अलगाव आ गया था। सिख अधिकतर अपने आपको गुरुद्वारों के इर्द-गिर्द संगठित किए हुए थे। उनमें पंजाब के अलगाववादी आंदोलन के प्रति समर्थन वाला रुझान था। हिंदू पंजाबी उत्तर भारतीय हिंदी बोलने वालों की तरफ रुझान रखते थे। उन्होंने सिख गुरुद्वारे के जवाब में वहाँ एक मंदिर बनाने का फैसला भी किया।

वहाँ एक भारतीय-कनाडियन असोसिएशन भी थी। यह ओटावा में बसे भारतीयों की शीर्ष संस्था समझी जाती थी। इसमें अधिकांशतः उस तबके के लोगों का दबदबा था जैसे कि भारत

में पैसे वाले जनसंस्थाओं पर कायम करते हैं। वे भारतीय राजनयिकों के आस-पास मंडराते रहते थे ताकि उनकी छवि में कुछ निखार आए जो वैसे कुछ खास चमक नहीं रखती थी।

कनाडा के अन्य प्रांतों में रहने वाले प्रवासी भारतीय भी इनसे भिन्न न थे। ब्रिटिश कोलंबिया में सिखों की बहुलता सदा से रही है। वे अधिकांशतः ब्रिटिश कोलंबिया के नगरों वैंकूवर, कैमलूप्स, विलियम्स लेक, प्रिंस जार्ज, बर्नेबी, सर्री, रिचमंड और अबोट्सफोर्ड में रहते हैं। प्राएरी के नगरों एडमोंटन, काल्गेरी, रेड डियर (अल्बर्टा), रेगीना, पास्कुआ, लम्सडेन (सस्काशेवान), विनीपेग, सेलकिर्क (मानीताबा) में उन की उपस्थिति शेष भारतीयों की अपेक्षा अधिक दिखाई देती है। ओंटेरियों के मुख्य नगरों ओटावा, टोरोटो, हैमिल्टन, लंदन, गोएल्फ और किचनेर में सिख बडी संख्या में विद्यमान हैं। टोरोंटो और वैंकू अर की 'छोटे भारत' के अलावा परिश्रमी सिख अनेक अंदरूनी नगरों और उपनगरों में भी फैल गए थे। उनकी जिंदगी व्यवसाय केंद्रों और गुरुद्वारों के इर्दगिर्द घूमती थी।

भारतीय समुदाय का संभ्रात वर्ग तो स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता था। लेकिन सेवा कार्यों में लगे सामान्य भारतीय, जैसे कि टैक्सी चालक, तेल, कृषि, वन व लकडी, इस्पात व अन्य उद्योगों में लगे कर्मी भारतीय मिशन को दिखाई नहीं देते थे। वे अपनी रोटी कमाते, गुरुद्वारों में जाते, लंगर छकते, शब्द-कीर्तन और गुरबानी सुनते, पंजाबी की पत्रिकाएँ पढते और जरनैल सिंह भिंडरांवाले के ऑडियो टेप सुनते थे। कुछ बाद मे यानी 1984 की शुरुआत में भिडरांवाले के वीडियो टेप भी पजाब, इंगलैंड और अमेरिका से वहाँ पहुँचा दिए गए। सिखों की यह जमात भारतीय राजनयिकों की उपस्थिति की कुछ खास परवा नहीं करती थी। वह इस बात की बहुत कम परवा करती थी कि वे वास्तविक स्थितियों के बारे में क्या कहते हैं। उनमें से कुछ तो अलग सिख होमलैंड के नारे में विश्वास करने लगे थे।

मेरे लिए अपने काम में लगना आसान न था। उप उच्चायुक्त सिख समस्या को लेकर कुछ ज्यादा ही संवेदनशील थे। वह पजाबी विदेश सेवा अधिकारी अत्री को दरकिनार करके रॉ के प्रतिनिधि सुंदर कुमार पर बहुत अधिक भरोसा करते थे। वास्तविक जीवन में सुंदर कुमार शर्मा किसी आवेशित स्थिति पर प्रतिकिया करने के अभ्यस्त न थे। मानव मस्तिष्क का मंथन करने और सामाजिक संपर्क बनाने का उनका तरीका अपरिष्कृत था।

अपने परिवार के शर्मा उपनाम को छोडने के अतिरिक्त सुंदर ने अपनी गुप्त कार्रवाइयों को छिपाने के लिए और कुछ नहीं किया था। उनकी बेटियां अपने स्कूलों और कॉलेजों में शर्मा उपनाम का इस्तेमाल करती थीं। कनाडा की माउंटेड पुलिस और बाद में कनाडा की सिक्योरिटी एंड इंटेलिजेंस सर्विस (सी एस आई.एस) को उनकी झीनी नकाब को हटाकर उनको पहचानने के लिए विशेष प्रयास नहीं करने पडे।

मुझे सौंपा गया काम काफी चुनौतीपूर्ण था। मेरे पास एक भारत से आया और दो कनाडा स्थित भारतीय स्टाफ थे। ये मेरी लाइब्रेरी और रीडिंगरूम को चलाने व इंडियन न्यूज'नाम का बुलेटिन निकालने में मेरी सहायता करते थे जो उच्चायोग में ही तैयार करके छापा जाता था।

भारत से आए तीन सुरक्षा सहायक भी मेरे मातहत थे। ये अर्द्धसैनिक बल के सिपाही थे जो प्रतिनियुक्ति पर आए थे। भारत में सिपाहियों की सामाजिक व पदीय स्थिति के कारण मेरी यह धारणा बन गई थी कि सरकारी तंत्र उनके साथ बंधुआ मजदूरों-सा व्यवहार करता है। मैं उम्मीद करता था कि कनाडा जैसे सभ्य देश में और उच्चायोग जैसे शीर्ष संस्थान में उनके साथ अधिक मानवीय व्यवहार होता होगा। लेकिन सच्चाई कल्पना से कहीं अधिक भयावह थी।

वे बिल जैसे घरों में रहते थे। मिशन के अधिकारी उनसे घरेलू नौकरों का-सा व्यवहार करते थे। मैंने अपने सहयोगियों की नाराजगी झेली। लेकिन अपने मातहतों की प्रशंसा भी पाई जब मैंने उनको घरेलू कामों से मुक्त कर दिया। केवल उच्चायुक्त के निवास पर वे इस तरह की सेवा देते थे।

टोरोंटो और वैंकूवर के वाणिज्यदूतावासों से अपेक्षा की जाती थी कि वे सामुदायिक संबध बनाए रखेंगे और एशियाई व कनाडियन भारतीयों में भारत का प्रचार करेंगे। लेकिन परस्पर मेल-मिलाप और संपर्क राष्ट्रीय व धार्मिक पर्वों तथा सास्कृतिक समारोहों तक सीमित रहते थे। एस.के. मलिक और जे सी. शर्मा के टोरोंटो और वैंकूवर सभालने के बाद स्थिति में सुधार हुआ।

दस मुख्य प्रांतों में भारतीय मूल के लोगों की सभी संस्थाओं की सूची तैयार करने में मुझे तीन महीने लग गए।

मेरे सामने बड़ा भारी काम था। भाषाई, स्थानीय व प्रांतीय विभाजन के अतिरिक्त भारतीय एशियाई समुदाय तीन तरह से विभाजित था। भिंडरावाले का डंका कनाडा में जोर से गूँज रहा था। सिखों की एक बडी सख्या ने इंगलैंड, महाद्वीपीय यूरोप और अमेरिका मे अलगाववादियों का एक तत्र स्थापित करना शुरू कर दिया था।

अक्सर कहा जाता है कि धर्मग्रथ का अनुसरण करने वाले जरा से उकसाने पर ही हठधर्मिता पर आमादा हो जाते हैं। सभ्यताओ का इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा पडा है। भारत में पंजाब के दोआबा, माझा और मालवा के अशिक्षित जाट सिख भिंडरावाले के घृणा प्रचार से आंदोलित हो उठे थे। मैं कनाडा और अमेरिका के उच्च शिक्षा प्राप्त सिखो का कायापलट देख कर दंग रह गया। उन्होंने अलगाववाद मे विश्वास करना शुरू कर दिया था और उनकी गतिविधियॉं गुरुद्वारो से चलती थीं। अशिक्षित ग्रंथियों और पाठियो ने सतगुरू की दैवी इच्छा की व्याख्या करने वालों की भूमिका निभानी शुरू कर दी थी। उनके अनुसार सतगुरू नए सत-सिपाही जरनैल सिंह भिंडरांवाले के माध्यम से आदेश दे रहे थे। दमदमी टकसाल के कुछ भाई तो भारत के अंतिम संत-सिपाही दशम गुरू गोविंद सिंह से रोडे गाव के इस संत की तुलना करने से भी नहीं हिचकिचाते थे।

अलगाववादी गतिविधियो के मुख्य केंद्र ये थे : रॉस स्ट्रीट, मल्टन रोड और पार्क स्ट्रीट के गुरुद्वारे टोरोंटो और सर्रे, रिचमोंड, कामलूप्स में, और ब्रिटिश कोलंबिया के न्यू वेस्टमिनिस्टर के गुरुद्वारे। कुलदीप सिंह कोहली पहले पश्चिम बंगाल में कोयले का व्यापार करता था। वह बंगाली बडी अच्छी बोल लेता था। वह मनीतोबा, विनिपेग मे आदोलनकारी सिख समुदाय का मुखिया था।

जगजीत सिंह चौहान निर्वास में तथाकथित खालिस्तान सरकार चला रहा था। उसके अलावा अमेरिका स्थित विश्व सिख संघ से संबद्ध सिख नेता मिलकर अटलांटिक के दूसरी तरफ खालिस्तान आंदोलन के तीन अन्य अंग स्थापित किए हुए थे।

कुछ और सिख अलगाववादी जिन्होंने भारत में जघन्य अपराध किए थे, कनाडा में सुरक्षित पनाह लिए हुए थे। बब्बर खालसा के तलविंदर सिंह परमार, इंदरजीत सिह रैयत और इंटरनेशनल सिख यूथ फेडरेशन के सतिदरपाल सिंह गिल व पुष्पिंदर सिंह सचदेवा ने कनाडा की अनभिज्ञता एवं सहिष्णुता को अलगाववादी गतिविधियों को बढावा देने के लिए बहुत

अनुकूल पाया। उन्होंने भारत में सिखों की भडकी भावनाओं का भरपूर फायदा उठाते हुए कुछ महत्वपूर्ण गुरुद्वारों का प्रबंध संभलने का जुगाड कर लिया।

फेबियन सिख जनमानस से अनजान था। उसे पंजाब में चलने वाले सिख विक्षोभ के मुद्दों की भी जानकारी न थी। कुछ गलत तरीके अपनाने पर विनिपेग में भडके हुए कुछ सिखों ने उसकी पिटाई भी कर दी। मुझे भी लंदन, हैमिल्टन (ओंटारियो) और मांट्रियल (क्वेबेक) में उग्र प्रदर्शनों का सामना करना पड़ा।

वरिष्ठ राजनयिक एस.जे.एस. छतवाल के ओटावा कार्यालय का कार्यभार संभालने के बाद स्थिति में काफी सुधार आया। दाढ़ी मुंडाए सिख छतवाल को पजाबी बोलने और सिख वातावरण में घुलमिल जाने का स्पष्टतः लाभ था। उनके निर्देशाधीन मैने गुरुमुखी लिखना व पढना और ठेठ पंजाबी बोलना सीख लिया। भाषाई बाधा दूर हो जाने पर मुझे अचानक पता चला कि टोरोंटो, वैंकूवर, न्यूयार्क और कैलिफोर्निया से प्रकाशित होने वाली पजाबी पत्रिकाओ व अन्य मीडिया सामग्री इंटेलिजेस से भरी पडी हैं। आखिरकार इंटेलिजेंस के पेशे से जुडे लोग जिन गुप्त सूचनाओं को संकलित करने का दावा करते हैं उनमे से 60 प्रतिशत तो इसी तरह एकत्र की जाती हैं। बाकी इनमें नमक-मिर्च भी लगाया जाता है।

मैंने छतवाल से उच्चायोग की वरीयताओं के बारे में चर्चा की। वह एक अनुभवी राजनयिक थे। उन्होंने मुझे सलाह दी कि अपने काम को निम्न वरीयताओ के अनुरूप करूँ:

- कुछ चुनिंदा गुरुद्वारों में पैठ बनाना।
- सिख समुदाय के सबसे मुखर लोगों में से कुछ को लक्ष्य बना कर उनसे संपर्क बढाना।
- पजाबी के इलेक्ट्रॉनिक और मुद्रित मीडिया में पैठ बनाना। साथ ही एशिया व भारतीय मूल के गैरसिखों के इलेक्ट्रानिक व मुद्रित मीडिया पर नियंत्रण बनाना।
- कनाडा के सिख कामगारों के भोले लोगों के तबके में कुछ एजेंट बनाना क्योंकि ये लोग अलगाववादी नेताओं और घृणा के प्रचारकों से अधिक प्रभावित थे।
- भारतीय समुदाय तक भारत की ताजा घटनाओं पर आधारित आडियो व वीडियो टेप पहुँचाना, खास तौर पर भिंडरांवाले के गुर्गों के अत्याचारों के टेप।
- 'इंडिया न्यूज'को नई छपाई / कॉपी मशीन की सहायता से बेहतर बनाना।
- कनाडा के विदेश कार्यालय के प्रमुख लोगों से समय-समय पर भेट करके उनको भारत मे हो रही घटनाओं की जानकारी देना और वे सारी सूचनाएँ भी देते रहना जो खुले तौर पर उपलब्ध होती हैं और खुले तौर पर दी जा सकती है।
- कनाडा के प्रमुख इलेक्ट्रॉनिक व मुद्रण मीडिया को लक्ष्य करके उनको भारतीय पक्ष की जानकारी वाली खबरें देते रहना।
- अपने छद्‌म स्वरूप को बनाए रखना। किसी भी हालत में यह पता न लगने देना कि मेरा इंटेलिजेंस से कुछ लेना-देना है।
- बंग्लादेश और श्रीलंका के उच्चायोगों के कुछ राजनयिकों के साथ मित्रता स्थापित करना। इसका उद्देश्य पाकिस्तानी उच्चायोग के कुछ लक्षित सदस्यों तक पहुँचना था।
- कनाडा की संसद में कुछ दोस्त 'पैदा' करना।

इस कार्यसूची को एम.ई.ए. के संयुक्त निदेशक को दिखाया गया। उन्होंने इसका अनुमोदन किया। रॉ से आए एक अधिकारी गौरीशंकर वाजपेयी अपनी पूर्व संस्था के साथ सूचना के आदान-प्रदान के विचार से खुश न थे। वह भी छतवाल की तरह अपना इंटेलिजेंस का निजी स्रोत बनाना चाहते थे और अपने हिस्से के केक को कोको और क्रीम से भरपूर देखना चाहते थे। जब तक मेरी खुफिया स्थिति बरकरार रहती मुझे इससे कोई एतराज न था। मैं इन सारी गतिविधियों और संकलित इंटेलिजेंस के बारे मे आई.बी. निदेशक को सूचित करता रहता था।

एक आदमी की टीम के लिए जिसका एक ही जनरल भी हो, यह सूची काफी लंबी-चौड़ी थी। छतवाल को न कहने की आदत न थी। काम के लिए मैंने भी कभी नकारात्मक भाषा का प्रयोग करना न सीखा था। छतवाल ने मेरी सहायता के लिए एक सेक्रेटरी और सूचना व प्रचार विभाग के लिए एक महिला क्लर्क का प्रबंध कर दिया। उन्होंने अपने विवेकाधीन फंड में से भी कुछ राशि मेरे साथ बॉटना स्वीकार कर लिया।

मेरी पत्नी सुनंदा ने भी इसमें काफी योगदान दिया। उसने लक्षित समुदाय के नेताओं की पत्नियों के साथ संपर्क बढा लिए। उसने इस देश के और तीसरे देशों के राजनयिको व मीडिया वालों और कनाडा के सांसदों की मेजबानी भी की।

हमने जो बहुत आमोद प्रमोद वाली नियुक्ति सोच रखी थी वह विचार गायब ही हो गया। हम फिर कडे संघर्ष में घिर गए। पंजाब में आपरेशन ब्लू स्टार और वूड रोज होने के बाद हमारा काम और भी मुश्किल हो गया।

कनाडा के राजनयिक और राजनीतिज्ञ पंज़ाब में मानवाधिकार के हनन को लेकर अधिक संवेदनशील हो रहे थे। उनके आतंकवाद के घिनौने खतरे को समझना अभी शेष था। कनाडा की नजरों में भारत अब भी संदिग्ध स्थिति में था। पाकिस्तान और उसके कुछ अन्य मित्र इस्लामी राष्ट्रों का प्रचार कनाडा के राय कायम करने वालों को प्रभावित करने में हमसे कहीं आगे था। उन्होंने अपने प्रचार तंत्र को चलाने के लिए काफी पैसा झोंका और कनाडा के आहत मानववादियों व गुमराह हो चुकी सिख जनसंख्या में अपने काफी हिमायती बना लिए।

अमेरिका और कनाडा अपने शीतयुद्ध के साथी पाकिस्तान के प्रति उदार रवैया रखते थे। वे सिख आतंकवाद और कश्मीर के नासूर को भारतीय राजनेतृत्व और कूटनीति की असफलता मानते थे। उनको अभी इस सच्चाई से अवगत होना था कि सिख उग्रवाद पाकिस्तान के विभाजन की अधूरे काम को अंजाम देने की एक कडी थी और जो पैसा अफगानिस्तान में लाल भालू को अपमानित करने के लिए दिया जा रहा था वह पंजाब के उग्रवादियों तक पहुँच रहा था।

रूस के लिए अफगानिस्तान को वियतनाम बनाने के लिए इस्लामिक देशों का प्रयोग करने में पश्चिम ने लापरवाही से काम लिया। सी.आई.ए., एम.16, नेशनेल द सिक्योराइट व अन्य संबद्ध संगठनों ने पाकिस्तानी आई.एस.आई. के साथ खुले दिल से सांठ-गांठ की। यही वह ऐतिहासिक धरती थी जिस पर अमेरिका ने अपने फ्रेंकेस्टीन ओसामा बिन लादेन के बीज बोए।

रीगन-मुलरोनी मेल-मिलाप सिर्फ मुक्त व्यापार आर्थिक विकास तक सीमित न था। कनाडा की कंजर्वेटिव सरकार ने अपने बड़े सहयोगी की शीतयुद्ध की पहल का लगभग आँखें मूंद कर अनुसरण किया। इसके अलावा कनाडा का बहुसांस्कृतिक समाज विरोध प्रदर्शन और

लोकतांत्रिक अवज्ञा सहने का आदी था। जैसी कि दिल्ली की अपेक्षा थी वे उस तरह की प्रतिक्रिया नहीं कर सकते थे। लेकिन इंदिरा गॉधी की हत्या और अटलांटिक पर एयर इडिया के बोइंग विमान 747 में विस्फोट के बाद स्थिति बहुत बदल गई। सिख उग्रवाद के बारे में भारतीय दृष्टिकोण शनै:शनै: कनाडियन सरकार और वहॉ की सुरक्षा व इंटेलिजेंस एजेंसियों के मानस में बैठ गया।

मैं कनाडा के बीहड़ में भटकने के लिए छोड दिया गया कोई अनजाना न था। मुझे रॉयल कनाडियन माउंटेड पुलिस और वहॉ की इटेलिजेंस एजेंसी की विदेशी राजनयिकों की गतिविधियों पर नजर रखने की क्षमता का भान था। आपरेशन ब्लू स्टार के बाद उनका यह काम और आसान हो गया था। क्योंकि तब वाणिज्यदूतावास के परिसर और हमारे घरों पर रॉयल कनाडियन माउंटेड पुंलिस प्रकट रूप से तैनात कर दी गई। हमारी कारों में भी सशस्त्र सुरक्षाकर्मी दे दिया गया। हमारे फोन भी वहाँ की सुरक्षा एजेंसिया और पुलिस टेप करती थीं। कनाडा की सुरक्षा व इंटेलिजेंस एजेंसियों से अपेक्षा की जाती थी कि वे हमारे सामाजिक संपर्कों पर भी नजर रखें।

मैंने ससेक्स ड्राइव स्थित विदेश मंत्रालय के अपने सुरक्षाकर्मी के साथ सहज भाव से संपर्क बनाए रखा। रॉयल कनाडियन माउंटेड पुलिस के अपने समकक्ष कार्य करने वाले से भी मैं एक निश्चित स्थान पर मिलता रहता था। बाद में जब मैं सूचना और प्रचार विभाग से राजनीतिक डेस्क पर आया तो मुझे भारतीय डेस्क के प्रमुख तथा सी.आई.डी.ए. अधिकारियों के साथ मेल-जोल और विचार-विमर्श करने का मौका मिला। लेकिन मेरी गुप्त कार्रवाइयॉ, जो कि मेरे कार्यक्षेत्र से बिलकुल बाहर थी, अबाध रूप से जारी रहीं।

मैंने प्रेसकोट राजमार्ग पर बन रहे गुरुद्वारे से शुरुआत की। मेरी भारतीय शास्त्रीय संगीत और वाद्ययंत्रो की शिक्षा यहॉ बहुत सहायक सिद्ध हुई। मैंने हर रविवार वहॉ जा कर कीर्तन में भाग लेने और सिख समुदाय के साथ लगर खाने का नियम बना लिया। विशेष रूप से आपरेशन ब्लू स्टार तथा भिंडरांवाले की मृत्यु के बाद से अरदास इंदिरा गॉधी की आलोचना से भरी होती थी। कुछ श्लोक तो बहुत आपत्तिजनक होते थे। पर मै यह सब झेल जाता था और उनके साथ सिखो के साथ अलग होमलैंड की मॉग व अकाल तख्त के टूटने के उनके गुस्से में सहभागी होने का स्वांग भरता था। भिंडरांवाले के उन्मादी प्रवचनों की ऑडियो टेप के साथ शहीदों (मारे गए आतंकवादियों) के चित्र भी दिखाए जाते थे।

पारस्परिक घृणा व सुरक्षा के विचार से हिंदू पंजाबियों ने गुरुद्वारे जाना बंद कर दिया था। उन्होंने अपर कनाडा विलेज के पास एक हिंदू मंदिर बनाने की भी पहल की। मैंने इस कार्य मे उनकी गुपचुप सहायता की और उनको चदा जमा करने में भी सहयोग दिया। पर मैंने उनके गुरुद्वारे जाना बंद करने और सिखों का बहिष्कार करने के विचार के साथ सहमति नहीं जताई। एस.जे.एस. छतवाल के मिशन में आने के बाद मेरी युक्ति बहुत काम आई। उन्होंने मेरे बुने कच्चे धागे को पकड़ा और अपने सिख होने का पूरा लाभ उठाया।

अपने पेशेगत कार्य में घृणा को बाधक न बनने देने के मेरे इरादे ने धीरे-धीरे रंग दिखाना शुरू किया। आखिरकार मैं मुखर सिख समुदाय का प्रिय बन गया। मुझे चरमपंथियों के नियंत्रण वाले गुरुद्वारों में जाने की भी अनुमति मिल गई। ये थे, टोरोंटो और सर्रे के रॉस स्ट्रीट व माल्टोन रोड स्थिति गुरुद्वारे तथा वैंकूवर के वेस्टमिन्सटर सिख मंदिर। एडमोंटन, रेगीना और विनिपेग के सिख समुदाय ने मुझे बेझिझक स्वीकार कर लिया। विनिपेग का बंगाली बोलने

वाला सिख कुलदीप सिंह कोहली भी, जो कि तलविंदर सिंह परमार का निकटवर्ती था, मेरे साथ दोपहर के भोजन पर मुलाकात करने से हिचकिचाता न था। तलविंदर, अजायब सिंह बागड़ी, सतिंदरपाल सिंह गिल, लाभ सिंह रोडे (भिंडरांवाले का भतीजा) और बीसियों दूसरे कट्टर अलगाववादियों के साथ मेल-मिलाप बनाना असंभव काम था। मैंने भी उतने ऊपर जाने का लक्ष्य नहीं रखा। सिख समुदाय के साथ सहज संपर्कों ने बब्बर खालसा, विश्व सिख संगठन और इंटरनेशनल सिख यूथ फेडरेशन के नेताओं के निकटवर्तियों को लक्ष्य बनाने के लिए पहचानने में बहुत सहायता की। कम से कम दो पंजाबी समाचारपत्रों के संपादक इस बात के लिए राजी हो गए कि सिखों में से पगलाए हुए तबके को अलग-थलग किया जाना चाहिए और कनाडा की समृद्ध सिख बिरादरी में भारत से अपराधी किस्म के सिख उग्रवादियों का आयात रोकना चाहिए। बाद में उग्रवादियों ने इनमें से एक संपादक को उसके आर.सी एम.पी. और सी.एस.आई.एस. के साथ संपर्क होने के संदेह में उसकी हत्या कर दी।

यह दावा करना गलत होगा कि भारतीय उच्चायोग ने सिख उग्रवादियों के आंतरिक केंद्र तक अपनी घुसपैठ बना ली थी। विदेश में भी तकनीकी कार्रवाई करना असंभव न था। लेकिन एम.ई.ए. रॉ को पीछे छोड कर आगे बढने के लिए सहमत न था। उनकी सलाह थी कि उच्चायोग केवल जन-गुप्तचरी तक ही अपनी गतिविधियाँ सीमित रखें। लेकिन मैंने आई.एस. वाई.एफ. के प्रमुख लाभ सिंह रोडे के एक निकटवर्ती पर लघु टेपरिकार्डर लगा दिया था। इससे मुझे ओटावा के सिख उग्रवादी संगठन तथा पाकिस्तान के टोरोंटो स्थित पाकिस्तान की इंटर सर्विसेस इंटेलिजेंस (आई.एस.आई.) के संचालकों के बीच गठजोड के साक्ष्य मिले। भारत सरकार ने बाद में इन में से कुछ सबूत कनाडा के अधिकारियों को दिए। नतीजतन लाभ सिंह को कनाडा छोडने को मजबूर किया गया। उसने अपने आई एस.आई आकाओ के पास पाकिस्तान में जा शरण ली।

बब्बर खालसा के कट्टरपथियों तलविंदर सिंह परमार, अजायब सिंह बागडी, रिपुदमन सिंह मलिक और सुरजन सिंह गिल की कहानी कुछ अलग थी। तलविंदर 1982 में जघन्य अपराधों में लिप्त होने के कारण अंततः भारत से भाग गया था। बब्बर खालसा ने पाकिस्तान को हमेशा अपना स्वाभाविक मित्र देश माना था। वे दमदमी टकसाल मार्का खालिस सिखवाद को नहीं मानते थे। वे इस्लामी कुर्द और फिदायीन विद्रोहियों से प्रेरणा ग्रहण करते थे। तलविंदर 1979 में पाकिस्तान गया था। उसने वहाँ आई.एस.आई. के साथ एक गुप्त सांठगांठ कर ली थी। बब्बरों ने आई.सी.आई. की सरपरस्ती में सितंबर 1981 में इंडियन एयर लाइंस के विमान के अपहरणकर्ताओं की सहायता के लिए ब्रिटिश कोलंबिया के कुछ सिखों को सगठित कर लिया था।

तलबिंदर के संगठन अंतर्राष्ट्रीय संगठन बब्बर खालसा की गतिविधियाँ सुजान सिंह गिल के माध्यम से चलती थीं। वह मलाया मूल का कनाडियन सिख था। उसने जगजीत सिंह चौहान (लंदन), गंगा सिंह ढिल्लों व डा. ए.एस. सेखों (अमेरिका) तथा ओटावा स्थित कनाडा सरकार के राजस्व विभाग के कर्मचारी करनैल सिंह गिल के साथ मिल कर अपना जाल फैला रखा था। बाद में सेवा सिंह लल्ली और तरसेम सिंह बब्बर जैसे अपराधी भी इस गुट में शामिल हो गए।

1984-85 के दौरान तलविंदर की गतिविधियों ने जघन्य रूप धारण कर लिया। ब्रिटिश कोलंबिया के देहाती इलाकों में उसके देसी बमों के साथ प्रयोगों के कारण रॉयल कनाडियन

माउंटेड पुलिस के भेदियों का ध्यान उसकी ओर गया। 23 जून 1985 को एयर इंडिया के बोइंग विमान कनिष्क को गिराना और जापान के नारतिया हवाई अड्डे पर बम विस्फोट उसकी मुख्य योजनाओं में शुमार थे। तलविंदर के दो और साथियों, विनिपेग का मनजीत सिंह कोहली तथा वेंकूवर के इंदरजीत सिंह रैय्त ने भी इन जघन्य अपराधों मे मुख्य भूमिका अदा की थी। बाद में भारतीय विमानों पर योजनाबद्ध तरीके से हमले करने से सबद्ध हेमिल्टन षडेयंत्र केस ने स्पष्ट कर दिया कि बब्बर कनाडा,अमेरिका और इंगलैंड में भारतीय ठिकानों पर हिंसात्मक कार्रवाइयॉं करने को कटिबद्ध थे।

मैं कालगेरी स्थित एक एजेंट के माध्यम से तलविंदर गुट के अंदर आंशिक पैठ बनाने में सफल रहा। उच्चायुक्त की सहायता से मैं कालगेरी के इस एजेट को अस्थायी तौर पर वेंकूवर के निकट बर्नबे स्थानांतरित करने में कामयाब रहा। उसने एक स्थानीय गुरुद्वारे में प्रमुख जगह बना कर तलविंदर का विश्वास जीत लिया। बाद मे तलविंदर ने उसे एक उडान का प्रशिक्षण देने वाले सिख से संपर्क साधने को कहा जो अंटारियो, सडबरी में कार्यरत था। मेरे पास यह माननें के पर्याप्त कारण थे कि इस विमान उडाने का प्रशिक्षण देने वाले का एयर इंडिया का बोइंग 747 गिराने से कोई संबंध न था। उसने मुझे बताया कि तलविंदर के एक निकटवर्ती ने उडान की प्रकिया और बडे विमानों के बारे में बहुत दिलचस्पी जाहिर की थी। जून 1985 के आकाश में हुए हादसे से बहुत पहले मैंने दिल्ली को यह खबर दे दी थी।

इसी आदमी ने मुझे 1986 के शुरू में यह जानकारी दी थी कि सिख उग्रवादियों द्वारा प्रधानमंत्री राजीव गॉधी के निकटवर्ती निवास पर विस्फोटको से लदा विमान गिराने के लिए सफदरजग हवाई क्लब का प्रयोग किए जाने की आशका है। इस जानकारी ने और इसकी पुष्टि करने वाली दूसरी जानकारी ने शौकिया विमान उडाने के ठिकाने को इस निकटवर्ती स्थान से हटवाया था।

* * * *

बंग्लादेश मिशन के राजनयिकों से दोस्ती बढाने मे कोई कठिनाई नहीं हुई। उच्चायुक्त बंगला देश की सेना में जनरल रह चुके थे और वे अपने देश के स्वाधीनता सग्राम में शामिल थे। लेकिन कछार-सिल्हट सीमा पर मुक्ति वाहिनी के प्रशिक्षण शिविरों में अपने आने-जाने के दिनो में मेरा उनका सामना नही हुआ था। पर उनका मेरे एक सहयोगी बंगाली बोलने वाले राजनयिक से काफी वास्ता पडा था। उन्होंने उपमहाद्वीप की सुरक्षा की स्थिति का अपना विश्लेषण मुझे बताया। वह बंग्लादेश में धार्मिक कट्टरता के प्रसार औरं आई.एस.आई. के फैलते जाल से बहुत चिंतित थे। उनके साथ दोस्ताना बातचीत मे पाकिस्तान के एक प्रमुख राजनयिक के बारे में काफी मालूमात हुईं। इसकी अत्यंत आकर्षक पत्नी असमिया मॉ और अंग्रेज पिता की संतान थी। उर्दू के अलावा वह बंगाली और असमिया भी धडल्ले से बोल सकती थी।

यह जानकारी मेरे बहुत काम की थी। सुनंदा ने उससे विश्वविद्यालय क्लब मे दोस्ती कर ली। मैंने उसमें गोहाटी और कलकत्ता की यादें जगाने के लिए अपनी धाराप्रवाह बंगाली और असमिया का इस्तेमाल किया। वह तन से जितनी सुदर थी उस का मन भी उतना ही सुंदरं और स्वच्छ था।

उसकी अनजाने में बताई बातों से मुझे दो आई.एस.आई. संचालकों का पता चला। इन में से एक ओटावा में और दूसरा टोरोंटो में सक्रिय था। उसके बाद मेरे लिए भारतीय मूल

के दो पत्रकारों की सेवाओं का लाभ उठाने में कोई कठिनाई नहीं हुई। इन्होंने राजनयिक के तौर पर काम कर रहे इन पाकिस्तानियों से संपर्क बढ़ा कर महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त कीं।

बंग्लादेश मिशन में मेरे दूसरे दोस्त भी मुक्तिवाहिनी के पुराने सेनानी थे। उनसे मेरी मुलाकात 1971 में सिल्चर में हुई थी। वह पूर्वी पाकिस्तान राइफल्स में युवा कैप्टन थे। उन्होनें पाकिस्तानी नरसंहार के विरुद्ध विद्रोह करते हुए मुजीबुर्रहमान की आवामी लीग के लिए वफादारी जताई। हमारी पुरानी जान-पहचान दोस्ती के रूप में पल्लवित हुई। कहने की जरूरत नहीं कि प्रशिक्षित पेशेवर होने के कारण मैं उसके अवचेतन मस्तिष्क को सरलता से पढ़ सकता था। मुझे इस मछलीमार दोस्ती से बहुत लाभ पहुँचा।

अक्तूबर 1983 में हम अटलांटिक पार जाने के लिए इस उम्मीद मे विमान पर बैठे थे कि कनाडा के जाड़े का भरपूर आनंद लेंगे। वहाँ की बर्फ, सुंदर रंगों और शांत वातावरण में रहेंगें। बच्चों का बेहतर खयाल रख सकेंगे। लेकिन वहाँ भी काम के कीडे ने हमारे निजी जीवन में घुस कर रंग में भंग कर दिया। मुझे एक बार फिर इंटेलिजेंस के भंवरजाल ने फॉस लिया जो कि मेरे रॉ के साथियों का काम था।

विदेश मंत्रालय से एक बहुत ही अच्छे दंपती मणिलाल त्रिपाठी और उनकी पत्नी शशि त्रिपाठी के आने से मेरी परेशानी काफी हद तक कम हो गई। नए उपउच्चायुक्त मणि ने मेरा बहुत सा काम संभाल लिया। शशि ने सूचना-प्रचार की जिम्मेदारी ले ली। मुझे राजनीतिक काउंसलर का काम सौंपा गया। पेशेवर राजनयिक अशोक अत्री को राजनीतिक डेस्क सौंपा गया। उसे इस नए प्रबंध से स्वभावतः ठेस पहुँची। लेकिन हमने कभी भी दफ्तर के छोटे-मोटे फेर-बदल को अपनी दोस्ती के आडे नहीं आने दिया। उसे चांसरी का प्रमुख बना रहने दिया गया।

इस नए कार्यभार के कारण अब मैं अपनी गतिविधियो के लिए अधिक समय निकाल सकता था। अब मैं समझ गया कि उच्चायुक्त ने यह फेर-बदल समझ-बूझ कर किया है। इससे मुझे कनाडा के सांसदों, बुद्धिजीवियों और राय कायम करने वालों के साथ मिलने-जुलने के बेहतर मौके मिलते थे। इसमें इंटेलिजेंस एकत्र करने का काम न था। यह नाजुक काम था कनाडा के नेतृत्व को सिख विद्रोह के बारे में भारत के दृष्टिकोण से अवगत कराना और उनको समझाना था कि भारत सिख उग्रवाद और पाकिस्तान के छद्मयुद्ध का शिकार हो रहा है।

जून का महीना दिल्ली, उसके आस-पास के हरियाणा के इलाकों और राजस्थान व पंजाब में भयंकर गर्मी, धूल भरी आँधियां और सूखे का मौसम ले कर आता है। लेकिन 1984 का जून इसके साथ भारतीय प्रशासनतंत्र, आंतरिक सुरक्षा तंत्र व धर्मनिरपेक्ष्य राजनीतिक प्रकिया की अभूतपूर्व असफलता ले कर आया।

सभी विकल्पों और अपने प्रसिद्ध अलौकिक युक्तिकौशल के चुक जाने पर इंदिरा गाँधी रक्तरंजित पंजाब की अंधी गली में फंस गई थीं। सिख राजनीति ने कई बार ऐसे कारनामे किए जिनसे हैरत होती थी। फिर भी भारत में किसी ने सिखों की देशभक्ति पर संदेह नहीं किया था। आपात्काल के बाद की राजनीतिक जोड़-तोड, उसी के समतुल्य अकाली कट्टरपंथियों की चालों, संजय गाँधी, जैल सिंह और इंदिरा के दूसरे दरबारियों के पैदा किए भिंडरांवाले किस्म के उन्माद के चलते एक ऐसी शक्ति उभरी थी जिसे पूरी तरह सिखों का मामला नहीं कहा जा सकता था। दिल्ली में बैठे कूटनीति के उस्ताद खिलाडी जनरल जिया उल हक, राष्ट्रपति रीगन व उनके पश्चिम व मध्यपूर्व में शीतयुद्ध के संधिकर्ताओं के इस्लामी

कट्टरपंथी शक्तियों को बढावा देने के प्रभाव का पूरी तरह आकलन नहीं कर पाए थे। 1979 में ही सैनिक सत्ता ने स्पष्ट कर दिया था कि पाकिस्तान सिख असंतोष को बढावा देगा और कश्मीर में अपनी हरकतें दोबारा शुरू करेगा। इस भू-राजनीतिक परिवर्तन की परवाह न करते हुए इंदिरा ने अपने निकटवर्तियों को आग से खेलने की अनुमति दे दी। राजीव की अगुआई में बनी उनकी नई टीम भी सिख आस्था के प्रतीकों के विरुद्ध लडाई का ऐलान किए बिना सिख विद्रोह को हल करने के लिए कोई युक्ति नहीं निकाल सकी। 2 जून को पंजाब की स्थिति पर काबू पाने में नागरिक प्रशासन की सहायता के लिए सेना को बुला लिया गया। भारत सरकार ने दूसरी बार अपनी ही जनता के विरुद्ध नियमित सेना को तैनात किया था। पहली बार उसने ऐसा उत्तरपूर्व में किया था।

मुझे अमृतसर में रहने वाले एक मित्र का फोन आया। वह स्वर्णमंदिर के पास गली जलियाँवाला बाग में रहते थे। इसी ऐतिहासिक स्थान पर एक अंग्रेज जनरल ने नरसहार की एक योजनाबद्ध कार्रवाई के तहत सैकडों भारतीय स्वाधीनता सेनानियों को गोलियों से भून डाला था। उन्होंने मुझे ब्योरेवार बख्तरबंद और घुडसवार दस्तो की तैनाती तथा तोपों की स्थिति के बारे में जानकारी दी और पूछा कि क्या स्वर्णमंदिर को बचाने के लिए कुछ किया जा सकता है? मैंने उनको प्रार्थना करने और अपने व अपने परिवार का ध्यान रखने की सलाह दी। मैंने उनको यह भी बताया कि नागरिक कार्रवाई के दौरान सेना अधे और घायल शेर की तरह होती है। वह अपने जंगल के नियमों के अनुरूप आचरण करती है।

मैंने फेबियन को इसकी जानकारी दी। मैंने उनसे कहा कि वह कनाडा के अधिकारियों से संपर्क करें। उनसे अनुरोध कर के वाणिज्यदूतावास और राजनयिकों के निवास की सुरक्षा की व्यवस्था करवाएँ। उन्होंने 7 जून तक इंतजार करना बेहतर समझा। दिल्ली ने राष्ट्र को एक खाई के मुहाने पर धकेल दिया था। कुछ समय के लिए हमारे सिख समुदाय के साथ संपर्क भी अवरुद्ध हो गए। हमारे साथ सहानुभूति रखने वाले कनाडियन भी दिल्ली द्वारा सैनिक विकल्प का प्रयोग करने पर हैरान थे। पर हम ने किसी तरह दोबारा कुछ गुरुद्वारों में पैठ बना ली और कुछेक सिखों से फिर से संपर्क स्थापित कर लिए।

लेकिन 31 अक्तूबर 1984 को इंदिरा गाँधी की उनके ही सिख सुरक्षा गार्डों द्वारा हत्या के बाद बहुत बडा गतिरोध पैदा हो गया। इससे स्तब्ध संसार को एक बार फिर और भी धक्का लगा जब दिल्ली और देश के अन्य भागों में इंदिरा कांग्रेस के समर्थक हिंदुओं ने हजारों सिखो की हत्या कर दी।

30 अक्तूबर की रात को साढ़े ग्यारह बजे के लगभग (कनाडा की तारीख और समय के अनुसार) मुझे दो फोन आए। पहला फोन इंदिरा गाँधी के 1, सफदरजंग रोड स्थिति कार्यालय में कार्यरत मेरे एक मित्र का था (आर.के. धवन नहीं)। उन्होंने बताया कि प्रातः दस बजे के लगभग इंदिरा गाँधी की मृत्यु हो गई है। यह 31 अक्तूबर का भारतीय समय था। दूसरा फोन सुबह साढे सात बजे 31 अक्तूबर (कनाडा का समय और तारीख) को आया। यह हमारे परिवार के डॉक्टर का था जो कि सिख थे। वह सराय काले खां के पीछे गुरुद्वारा बाला साहब के पीछे वाली एक गली में रहते थे। उनके पड़ोस में इंदिरा कांग्रेस की भीड ने हमला कर दिया था। मेरे डॉक्टर मित्र ने प्रार्थना की कि मैं दिल्ली पुलिस में किसी को फोन कर के उनके परिवार की रक्षा करने के लिए कहूँ। मुझे इस बात का भान न था कि दिल्ली पुलिस की नाक के नीचे उसकी मिली भगत से ऐसा शर्मनाक नाटक चल रहा है। अंततः मैंने अपने एक

मुस्लिम दोस्त को फोन किया। मैंने उनसे अनुरोध किया कि बुजुर्ग डॉक्टर और उस के परिवार को मुस्लिम बहुल इलाके जामा मस्जिद में ले जाएँ। इससे छ. बेगुनाह भारतीयों के प्राणों की रक्षा हुई जो अलग तरीके से आराधना करना पसंद करते थे।

इंदिरा गाँधी की हत्या और सिखों की नासमझी से की जा रही हत्याओं ने ओटावा के मिशन के काम करने को बिलकुल नए आयाम दे दिए। राजनयिक व गैर-राजनयिक कर्मियों का आना-जाना इससे बहुत सीमित हो गया। हमारे परिवारों से कहा गया कि वे सामाजिक हलकों में बहुत कम शिरकत करें। कुछ अरसे के लिए रॉयल कनाडियन माउंटेड पुलिस ने उन स्कूलों पर भी गुपचुप निगरानी रखी जहाँ हमारे बच्चे पढते थे। हमारे घरों पर सशस्त्र सुरक्षाकर्मी तैनात कर दिए गए।

ऐसा प्रतीत हुआ कि हिंदू और सिख मूल के भारतीयों को जबरन इकट्ठा करने की कोशिशों में एकाएक बडी दरार आ गई है। राजनयिक पार्टियों में अब बहुत कम सिख आते थे। हम में से अधिकांश को सिख घरों और गुरुद्वारों में नहीं आने दिया जाता था। सिख समुदाय और मिशन के बीच नए अवरोध पैदा हो गए थे।

उच्चायुक्त ने मुझे 3 नवंबर को मिशन में बुलाया। उस दिन शनिवार था। उपउच्चायुक्त मणिलाल और उनकी पत्नी और काउंसिलर शशि भी उपस्थित थे। जिन महत्वपूर्ण विषयों पर बात हुई उनमें मिशन की सुरक्षा-व्यवस्था को और मजबूत बनाना और इंटेलिजेंस एकत्रित करना शामिल था।

उच्चायुक्त ने खेदपूर्वक कहा कि ओटावा, टोरोंटो और वेंकूवर के रॉ प्रतिनिधि उनको इटेलिजेंस की जानकारी नहीं देते। उन्हें तो विदेश मत्रालय के माध्यम से मिलने वाले प्रपत्रों पर निर्भर करना पडता है। उन्होने कनाडा मे सिख उग्रवादी गतिविधियो की जानकारी पाने की अपनी पहली योजना को दोहराया और मुझसे अनुरोध किया कि इटेलिजेंस एकत्र करने की गति बढाऊँ।

मैं अतिरिक्त जिम्मेदारी लेने से हिचकिचाया। मैंने अनुरोध किया कि रॉ के प्रतिनिधि को अलग से बुला कर उच्चायुक्त की इटेलिजेंस सबंधी आवश्यकताएँ पूरी करने को कहा जाए। मेरी बात यह कह कर अस्वीकृत कर दी गई कि उनकी दी गई अधिकांश जानकारी फोकी होती है और उसमें ठोस इंटेलिजेंस का अभाव रहता है।

ओटावा स्थित रॉ के प्रथम सचिव की पेशेगत उपलब्धियों से मैं प्रभावित न था। टोरोंटो स्थित प्रतिनिधि सेना से सेवानिवृत्त थे। वह अपना काम इस तरह करते थे मानो उनको खंदक की लडाई में लगाया गया हो। वह रिटायर होने के बाद कनाडा या अमेरिका में रहने का बंदोबस्त करने में व्यस्त रहते थे।

गुरिंदर सिंह भारतीय पुलिस सेवा से आया एक युवा अधिकारी था। वह वेंकुवर में था। वह अपने पेशे में कार्यकुशल साबित हुआ। लेकिन पद्धति की खामी उसे भी अपनी इंटेलिजेंस सीधे काउंसिल जनरल और उच्चायुक्त के साथ बाँटने से रोकती थी। सौभाग्य से वेंकूवर में एक पेशे के प्रति समर्पित राजनयिक जे.सी. शर्मा ने कार्यभार संभाला। उनके आने से स्थिति में बहुत सुधार हुआ।

राजनयिक नयाचार का सम्मान करते हुए मैं उस इंटेलिजेंस गतिविधि का ब्योरा नहीं देना चाहता जिसका मैंने मणि और शशि के साथ आदान-प्रदान किया। हमने काफी कुछ किया और कनाडा के सिख बहुल नगरों में अपनी अच्छी पैठ बना ली।

राजीव गाँधी के सत्तारूढ होने के साथ ही दिसंबर 1984 में आम चुनाव हुए। कुछ समय के लिए तो वह एक युवा करिश्माई नेता की तरह उभरे। पश्चिमी गोलार्द्ध में तो कई बार उन की तुलना जान एफ. कैनेडी से भी की गई। लेकिन दिल्ली दरबार की बदला लेने और षडयंत्र करने की प्रवृत्ति के चलते इंदिरा गॉधी के शक्तिशाली सहायक आर.के. धवन को हटा दिया गया। उनको एक बार फिर अग्निपरीक्षा देनी पडी। उन पर तोहमत लगाई गई कि इंदिरा गॉधी की हत्या के षडयंत्र में शक की सुई कुछ उनकी तरफ भी घूमती है। भारत की न्यायपालिका में भी जोड-जुगत नई बात नहीं। न्यायमूर्ति ठक्कर राजीव के कुछ दरबारियों की उम्मीदों पर खरे उतरे। इनमे अरुण नेहरू और एम एल फोतेदार प्रमुख थे। इससे मुझे और मेरे परिवार को अत्यधिक पीडा हुई। हमारी उस'समस्याओ को हल करने वाले, गदे जोड-तोड करने वाले और भ्रष्ट 'आदमी से दोस्ती थी। धवन के कुछ आलोचक और मीडिया का एक वर्ग भी उनको इन्हीं पदवियों से नवाजता था। मै यह मानने को तैयार हो सकता हूँ कि वह कुछ भी कर सकते थे, पर यह मैं किसी हालत मे मानने को तैयार नही कि वह इंदिरा गॉधी की हत्या के षडयंत्र में किसी भी तरह सहभागी हो सकते थे। दिल्ली स्थित मेरे वरिष्ठ अधिकारियों ने मुझे सलाह दी कि मैं धवन से फोन पर बात करने से गुरेज करूॅ क्योंकि वह 'दूषित' हो चुके हैं। इसका अर्थ यह था कि उन पर जन-गुप्तचरी और तकनीकी इंटेलिजेंस के माध्यम से निगरानी की जा रही है।

अप्रैल 1985 के आरंभ में मुझे अकस्मात एक सूचना मिल गई। पता चला कि आई.एस वाई.एफ. की कनाडा शाखा और अतर्राष्ट्रीय बब्बर खालसा मिल कर कोई बडा धमाका करने की योजना बना रहे हैं। आई.एस वाई एफ. के सतिंदरपाल सिह गिल, अवतार सिंह कूनार और कुलवंत सिंह नागर तथा बब्बर खालसा के रिपुदमन सिह मलिक, तलविंदर सिंह परमार व अजायब सिह बागी के निकटवर्ती सूत्रो से चुपचाप खोजबीन करने पर सुरक्षा संबधी दो महत्वपूर्ण मामलो पर सदेह गहरा हो गया। पहला था ट्रक पर लगाई गई तीन इच की मोर्टार तोप से राजीव गॉधी के निवास पर आक्रमण करने का षडयत्र। दूसरी संदिग्ध योजना एक भारतीय नागरिक विमान मे विस्फोट करने की थी।

यह जानकारी दिल्ली भेजी गई। साथ ही उच्चायुक्त ने स्वय कनाडा के विदेश विभाग को इसकी जानकारी दी। कनाडा के अधिकारियो को एक विनम्र शब्दों वाला संप्रेषण भी भेजा गया। तब मिशन में हम लोगों को पता न था कि कनाडा के गुप्तचरो को भी एयर इडिया के विमानों को निशाना बनाने की आशंका की जानकारी थी। हमें लगता था कि कनाडा के सुरक्षा विशेषज्ञों को उनके राजनीतिक आकाओं ने अभी भी सिख उग्रवादियों के विरुद्ध कार्रवाई करने के लिए पर्याप्त प्रेरणा नहीं दी है। कनाडा के मानवाधिकारवादी और मीडिया के कुछ लोग भी अभी तक भारत में सिख उग्रवाद के स्वरूप और प्रसार के प्रति संदेह रखते थे।

लेकिन भारतीय सिखों के प्रति मानवाधिकार के हनन की यह काल्पनिक धारणा को उस समय जबरदस्त धक्का लगा जब कनाडा स्थित सिख उग्रवादियों ने तोड-फोड की जघन्य कार्रवाई करते हुए एयर इंडिया के 182 विमान को 23 जून 1985 को कोर्क आयरलैंड के ऊपर आकांश में ध्वस्त कर के उस में सवार सभी 329 लोगों की जान ले ली।

मुझे लंदन स्थित एक मित्र ने 23-6-85 को 04.45 बजे(कनाडा का समय) फोन कर के पूछा कि क्या मैंने बी.बी.सी. का एयर इंडिया के 182 विमान के गिरने का समाचार सुना

है? मैं तुरंत बिस्तर से उठ खडा हुआ। मैंने टीवी और रेडियो ऑन कर के संक्षिप्त-सी खबर पाई कि हीथ्रो के राडार के स्कीन पर से यह विमान अदृश्य हो गया है।

मैंने उच्चायुक्त और उपउच्चायुक्त को जगा कर उन्हें यह खबर दी। मुझसे कहा गया कि तुरंत उच्चायुक्त के निवास पर पहुंचूँ। बाद में मैं विस्फोट के बारे में आरंभिक पूछ-ताछ करने के लिए मांट्रियल, टोरोंटो और वेंकूवर भी गया। सकते में आया भारतीय-कनाडियन समुदाय और कनाडियन भी इस सच्चाई को अंगीकार नहीं कर पा रहे थे कि कनाडा में रह रहे भारतीय मूल के ही कुछ लोग ऐसा जघन्य काम कर सकते हैं।

बाद में इससे संबंधित जॉच का काम औपचारिक रूप से सी.बी.आई. और कनाडा की पुलिस ने अपने हाथ में लिया। मैंने कनाडा में अपने पद की सीमाओं के अंदर रहते हुए जितनी हो सकती थी उनकी सहायता की। उच्चायुक्त के आदेशानुसार मैंने समय-समय पर इस विस्फोट के बारे में रॉयल कनाडियन माउंटेड पुलिस को वह सब जानकारी दी जो खुले तौर पर दी जा सकती थी और वे सूचनाएँ भी दीं जो हमें दिल्ली से प्राप्त हुई थीं। मिशन में हम लोगों ने बब्बर खालसा तथा अन्य सिख उग्रवादियों का इस मे हाथ होने के बारे में काफी जानकारी जुटा ली थी।

अंतर्राष्ट्रीय बब्बर खालसा ने विस्फोट की कार्रवाई बडे योजनाबद्ध तरीके से की थी। 22 जून को कनाडियन एयरलाइन्स ने एम. सिह नाम के एक यात्री को वेंकूवर से दिल्ली के लिए बुक किया था। उसको टोरोंटो से एयर इंडिया की उडान पकडनी थी। उसका समान बुक कर लिया गया था। पर उसने यात्रा नहीं की। बाद में उसका सूटकेस एयर इंडिया 182 मे दिल्ली के लिए स्थानांतरित कर दिया गया। परं असली यात्री आया ही नहीं। अंततः गायब हो गए एम. सिंह का सूटकेस ले कर विमान 17.10 जी.एम.टी. पर मांट्रियल से उड गया। कोर्क आयरलैंड के ऊपर से वह विमान 18.30 बजे के लगभग राडार के स्कीन से लुप्त हो गया।

बब्बर खालसा ने एक और बम नरीता से दिल्ली आ रहे विमान में भी रखा। लाल सिंह का एक बैग कनाडियन एयर लाइन्स ने वेंकूवर से नरीता के लिए बुक किया था। इसे कुछ बाद में आगे जाने वाले एयर इंडिया के विमान में स्थानांतरित किया जाना था। लाल सिंह भी गायब हो गया। वह कनाडियन विमान में नहीं आया। बम नरीता में 07.13 जी.एम.टी. पर जमीन पर ही फट गया। इसमें दो जापानी सामान उठाने वाले मारे गए। अभागे ए.आई.182 से यह दुर्घटना सिर्फ एक घंटा पहले ही घटी।

मैंने इस साजिश के बारे में जो इंटेलिजेंस एकत्र की थी उसकी जानकारी उच्चायुक्त ने कनाडा के अधिकारियों को दी। इस बाबत मैं इतना ही बता सकता हूँ कि सन 2000 में कनाडा के अधिकारियों ने एक बार फिर मुझे बाकी बचे अपराधियों के संबंध में अपना विशेष परामर्श देने के लिए वहाँ बुलाया था। परामर्श इंगलैंड में बंदी बनाए गए इंदरजीत सिंह रियत और भारत में पुलिस मुठभेड़ में मारे गए तलविंदर सिंह परमार के अलावा बाकी अपराधियों के बारे में माँगा गया था। कनाडा की पुलिस को रिपुदमन सिंह मलिक, अजायब सिंह बागड़ी और हरदयाल सिंह जौहल को गिरफ्तार कर के उन पर ए.आई. विमान गिराने का आरोप लगाने में 15 साल लग गए। ये गिरफ्तारियाँ जून 2000 में मेरी कनाडा यात्रा के कुछ ही बाद हुईं। यह मेरे कनाडा का कार्यकाल समाप्त होने के 13 साल बाद की बात है। ए.आई. की उडान नं0 182 के 329 के शिकार हुए यात्रियों और मेरे वेंकूबर स्थित मित्र तारा सिंह हाएर

को यह मेरी अंतिम श्रद्धांजली थी। तारा सिंह को 1988 में सिख आतंकियों ने कौम के साथ गद्दारी करने और भारतीयों के साथ सांठ-गांठ करने के जुर्म में गोली मार दी थी। मेरी उस से नवंबर 1987 में आखिरी मुलाकात हुई थी। तब राजीव गाँधी के वेंकूवर में चोगम सम्मेलन में भाग लेने के लिए आने के मौके पर उच्चायोग ने इंटेलिजेंस एकत्र करने के लिए मेरी सेवाएँ चाहीं थीं। उस समय भी यह वीर भारतीय पीछे नही रहा था। लेकिन उसे भारत के विरुद्ध पाकिस्तान के छद्मयुद्ध का अभिन्न अग बन चुके मतिहीन आतंकवादियों का विरोध करने की बहुत बडी कीमत चुकानी पडी।

* * * *

1985 के जाडे में हम एक छोटी छुट्टी पर भारत आए थे। तब राजीव गाँधी लोकप्रियता के शिखर को छू रहे थे। कुछ देर को तो ऐसा लगा कि यही नेहरू-गाँधी इंदिरा कांग्रेस और भारत के लिए सर्वथा उपयुक्त हैं। मेरे मित्र धवन को जिस तरह परेशान किया गया और सताया गया उसकी मुझे जानकारी थी।

तब धवन दिल्ली मे सबसे अकेले व्यक्ति रह गए थे। भारत के राजनीतिक और प्रशासनिक लोगों ने उनका साथ छोड दिया था। उनके गोल्फ लिक वाले निवास पर निगरानी रखी जा रही थी। उनके फोन सुने जाते थे। मै उनसे एक सुबह की सैर के समय अपना चेहरा लबादे से ढक कर मिला। लेकिन मेरे इस नकाब से आई बी वाले बेवकूफ न बन सके। मुझे नॉर्थ ब्लॉक बुला कर हिदायत दी गई कि 'गाँधी परिवार के शत्रुओं' के साथ कोई वास्ता न रखूँ। मैंने इससे इनकार करते हुए अपने अधिकारियों को साफ तौर पर बता दिया कि मेरी दोस्ती का मेरे सरकारी काम से कोई सरोकार नहीं है। मेरे व्यक्तिगत संबंधों के कारण मेरी सरकार और देश के प्रति वफादारी पर कोई ऑच नही आती। यही बात मैंने विंसेट जार्ज से भी कही जब उसने बडे खुरदरे तरीके से मुझ से अपने पुराने मित्र से दूर रहने का 'अनुरोध' किया। सौभाग्य से उस के बाद निगरानी करने वालों ने मुझे परेशान नही किया। लेकिन ओटावा स्थिति रॉ के प्रतिनिधि ने जरूर परेशान किया।

कनाडा में मेरा इंटेलिजेंस एकत्र करना मेरी सेवा की शर्तों के अनुकूल न था। इससे थोडे से लोग खुश हुए लेकिन बहुत से नाराज भी हुए। सबसे हास्यास्पद मामला 1986 मे कनाडा के अधिकारियों के अनुरोध पर कनाडा से रॉ का सारा तामझाम हटाना था। यह भारत के प्रमुख इंटेलिजेंस सगठनों के आपसी तालमेल और अंतर्विभागीय संबंधों की पोल खोलने वाली घटना थी।

जुलाई 1985 में मुझे अपने काम में सहायता के लिए एक निजी सचिव प्रदान किया गया। यह भला आदमी कुछ ज्यादा ही भला था। इस लिहाज से यह विदेश मत्रालय के बाबू का काम संभालने के लायक भी न था। उच्चायुक्त ने मेरे आरभिक सदेह को कि शायद यह रॉ वालों का भेजा हुआ है, नहीं माना। लेकिन विदेश मंत्रालय की इस मेहरबानी का मतलब मेरी समझ से परे था। पिछले दो सालों से मैं कार्यालय के लिए स्टाफ की माँग कर रहा था जिसे हमेशा नामजूर कर दिया जाता था।

1985 के मध्य में यह स्पष्ट दिखाई देने लगा था कि रॉ ढह रहा है। विश्व सिख संगठन की कनाडा शाखा का एक महत्वपूर्ण नेता करनैल सिंह गिल ए.आई. वाली घटना से कुछ पहले एक दिन मेरे कार्यालय में आया। उसने भारतीय वीजा के लिए अनुरोध किया। मैंने उसे काउंसिलर ऑफिसर सुंदर कुमार के पास जाने को कहा। मैं उसे अपने सहकर्मी के कमरे

तक ले गया। करनैल जरा देर रुका। फिर एकाएक चहक उठा। उसने सुदर कुमार के साथ भारतीय वन सेवा की ट्रेनिग ली थी। दोनो की बातचीत कुछ इस तरह हुई

"तुम सुदर कुमार हो ना? तुम विदेश सेवा मे कब आए?

"क्या मैं आपको जानता हूँ?

'मजाक मत करो। तुम वही सुदर कुमार शर्मा हो । देहरादून वाले मेरे कोर्स के सहपाठी। तुम यहॉ क्या कर रहे हो? तुम रॉ मे हो क्या?

"माफ कीजिएगा। मै आपको नही जानता। मै शर्मा भी नही हूँ। मैंने कभी वन सेवा की ट्रेनिग नही ली। मै तो भारतीय विदेश सेवा के 1968 बैच का हूँ।

करनैल का वीजा स्वीकृत नही हुआ। क्योकि यह आरोप्य वर्ग का मामला था। उसका नाम काली सूची मे था। उसे वीजा नहीं दिया जा सकता था। लेकिन जो नुकसान होना था वह हो चुका था। सुदर कुमार की असलियत खुल चुकी थी। उसे एक रॉ अधिकारी के रूप मे पहचान लिया गया था।

टोरोंटो मे रॉ के प्रतिनिधि कर्नल ग्रेवाल ने एक और तरह की गलती की। ग्रेवाल सेना के अधिकारी रह चुके थे। भारत की परराष्ट्र इटेलिजेस के एक अर्द्धसैनिक सगठन से होते हुए वह रॉ मे पहुचे थे। अपने कैरियर के अतिम दिनो मे वह स्वय और अपने बच्चो को अमेरिका में बसाने के चक्कर मे थे। एक इटेलिजेस सचालक के तौर पर उनकी कार्यकुशलता के बारे मे मै निश्चित तौर पर कुछ नही कह सकता था। लेकिन उनके काम करने के तरीके से यह स्पष्ट था कि वे इस पेशे की बारीकियो से परिचित न थे। कनाडा की सिख बिरादरी किसी भारतीय ईसाई या मुसलमान को स्वीकृति देने को तैयार रहती थी। लेकिन हिदू और सरकार के समर्थक सिख उनसे उसी तरह भडकते थे जैसे साड लाल कपडे से भडकता है। ग्रेवाल को चुपचाप इटेलिजेस एजेट की तरह काम करने का प्रशिक्षण नही मिला था।

ग्रेवाल ने अपने एक लक्ष्य को जो पजाबी के एक साप्ताहिक के सपादक थे एक रेस्त्रॉ मे दोपहर के भोजन पर मुलाकात के लिए बुलाया। यह जगह वाणिज्य दूतावास से बहुत दूर न थी। काउसिनेट प्रमुख एस जे मलिक और मैने पहले देख लिया था कि यह व्यक्ति खालिस्तान का समर्थक है और इसके सपर्क आई एस आई के टोरोटो स्थित कुछ सचालको से हैं। उस होशियार सपादक ने ग्रेवाल के साथ भोजन का आनद लिया। उनके साथ हुई सारी बातचीत रिकार्ड कर ली और उसे अपने साप्ताहिक मे विस्तार के साथ प्रकाशित कर दिया। ग्रेवाल बेनकाब हो गए।

इन घटनाओं की जानकारी उच्चायुक्त व सयुक्त-सचिव (कार्मिक) को दी गई। 1986 के आरभ में जब मैं घर पर छुट्टी पर आया तो मैंने स्वय रॉ के सचिव को इस का ब्योरा दिया। आम तौर पर इन दोनों अधिकारियों को किसी न किसी बहाने कनाडा से बाहर तैनात किया जाना चाहिए था। लेकिन मत्रिमडल सचिवालय ने इन दोस्ताना सलाहो पर बिलकुल ध्यान नही दिया। उल्टा उच्चायुक्त के यह बताने पर मुझे हैरत हुई कि मेरी इटेलिजेस सबधी गतिविधियों से दिल्ली स्थित रॉ अधिकारी चितित हैं। बात यह थी कि मेरी और उच्चायुक्त की रिपोर्टों की प्रधानमत्री कार्यालय, विदेश मत्रालय और आई बी मे तारीफ हो रही थी।

फिर भी मैं उस बडे अश्चर्य के लिए तैयार न था जब कनाडा सरकार ने कनाडा स्थित रॉ की सारी टीम को ही अवाछित घोषित कर के उनको तुरत हटाए जाने का अनुरोध किया

गया। उस समय मुझे बडा झटका लगा जब मेरे निजी सचिव श्याम सुंदर को भी अवांछित व्यक्ति घोषित किया गया। अब मेरी समझ में आया कि या तो मेरे निजी सचिव को रॉ ने मुझ पर लगाया था या फिर उसे सुंदर कुमार ने खरीद लिया था। मैंने मामले का पता लगाया तो यह जान कर हैरानी हुई कि श्याम सुंदर को सुंदर कुमार ने 400 कनाडियन डालर प्रतिमास पर खरीद लिया था। मैं उसे जो भी इंटेलिजेंस की डिक्टेशन देता था वह उसकी प्रति उनको पहुँचा देता था। मेरे पास के कमरे में बैठने वाले मेरे रॉ के सहकर्मी का इंटेलिजेंस एकत्र करने का यह अनोखा तरीका था।

कनाडा के अधिकारियों ने श्याम सुंदर को अपने मूल विभाग विदेश मंत्रालय के साथ दगा करने की सजा नहीं दी। उसे उन्होंने कई बार सुंदर कुमार के साथ किसी एजेंट से मिलने जाने पर पकड़ा था। ये लोग मिलने की जगह का चुनाव होशियारी से नहीं करते थे। मिशन के सुरक्षा अधिकारी की हैसियत से मैंने श्याम सुंदर से पूछ-ताछ की। उसने आसानी से नकद पैसे और बोनस में स्कॉच मिलने की बात कबूल कर ली। जॉच के परिणामों की जानकारी उच्चायुक्त और दिल्ली में कुछ चुनिंदा अधिकारियों को दे दी गई।

मुझे बताया गया कि रॉ वाले अंततः इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि कनाडा में उनके प्रतिनिधियों का परदाफाश करने में मेरा हाथ था। इससे मुझे तकलीफ पहुँची। लेकिन यह देख कर मुझे और भी हैरानी हुई कि दिल्ली के शुतुरमुर्ग ने समस्या पर सीधे ध्यान देने के बजाय अपना सिर रेत में और भी अंदर धंसा लिया। रॉ के एक भी वरिष्ठ अधिकारी ने कनाडा आ कर इस विफलता के कारणों का विश्लेषण करने का कष्ट नहीं किया।

हम जुलाई 1987 में संपूर्णता के संतोष और पहले से भी खाली जेबों के साथ कनाडा से रवाना हुए। आम धारणा तो यह है के विदेशों में नियुक्ति से कम तनख्वाह पाने वालों की भी जेबें भर जाती हैं। पर मुझ पर ऐसी कृपावृष्टि नहीं हुई। कुछ पैसा हमने दिल्ली में एक फ्लैट लेने में लगा दिया। बाकी का बच्चों की परवरिश और राजनयिक की तरह रहने में खर्च हुआ। पैसे की कमी मुझे अखरती नहीं थी। मैं अपने काम की उपलब्धियों, बच्चों की पढाई में तरक्की और अपनी पत्नी के स्वास्थ्य में सुधार से प्रसन्न था।

मेरी बाहर नियुक्ति हो जाने से मेरे कनाडा से संबंधो का समापन नहीं हुआ। अक्तूबर 1987 के आरंभ में मुझे फिर वैंकूवर बुलाया गया। राजीव गॉधी चोगम सम्मेलन के लिए आने वाले थे। मुझे इस सिलसिले में इंटेलिजेंस एकत्र करने का काम सौंपा गया। मेरा खयाल है मैंने अपने कर्तव्य का पालन संतोषजनक ढंग से किया।

<20>

फिर से गलत राह पर

सडक का बीच का रास्ता हमवार होता है। दाएँ बाएँ के किनारे गटर मे होते है।

-- डिवाइट डी. आइजनहावर

आइजनहावर इतिहास के मच पर चोटी के कलाकार थे। उनको रास्ते को हर उस कोण से देखने का अधिकार था जिधर से वह अपनी जीत के लिए रुख कर सके। लेकिन मेरे जैसे एक हकीर बदे के लिए तो बीच सडक का रास्ता भी हमवार नही होता। गटर ही वह जगह होती हैं जहाँ इतिहास मेरे जैसे लोगो को धकेलना चाहता है। हम जहॉ समय के सगीत की धुन से परे बेसुरा राग अलाप सकते है।

मै ठीक से नही कह सकता कि कनाडा की कडाही से निकल कर भारत वापस आने पर मुझे दाहिने गटर मे फेका गया या बाएँ मे। मेरे जैसा कट्टर आशावादी भी इस दौरान भारत भूमि मे और उस पर अभिनय करने वालो मे आए परिवर्तन को लक्ष्य करने से चूका नही। टी वी राजेश्वर की जगह एम के नारायणन ने ले ली थी। आर के धवन को गुमनामी के गर्त मे धकेल दिया गया था। राजीव गॉधी अपनी कॉकपिट मे मजबूती से जमे हुए बैठे थे। नारायणन के लिए मैं नया न था। पर मैने कभी उनके अधीन काम नही किया था। मै उनकी कार्यशैली से भी परिचित न था। मै राजीव गॉधी को बहुत कम जानता था। उनके आस-पास की मडली के बारे मे भी मेरी जानकारी बहुत कम थी। इसलिए मै थोडा आशकित था।

जुलाई 1987 दिल्ली मे आने के लिए कोई उपयुक्त समय न था। झुलसाने वाली गर्मी और कम वर्षा के अलावा भारत को एक बार फिर राजनीतिक अस्थिरता के नारकीय अग्निपथ, भ्रष्टाचार की सडाध , जातीय असतोष तथा विद्रोह के रास्ते पर चलने को मजबूर होना पड रहा था। ऐसा लगता था कि गलत आकलन के विष का प्रभाव राजीव गॉधी पर पड रहा था। इस से उनकी स्वच्छ व्यक्ति वाली लोकप्रियता धूमिल होती जा रही थी। अपनी खीज मे उन्होने सहानुभूति का वह टोकरा खाली कर डाला था जो भारत की दुख मे डूबी जनता ने उनको भेट किया था।

बहुत से राजनीतिक विश्लेषको ने राजीव के विरासत मे सत्तारूढ होने पर प्रश्नचिन्ह लगाया है। वे यह भूल जाते है कि इदिरा काग्रेस को एक ऐसा नेता चुनने का अधिकार था जो उनकी मॉ की पार्टी को एकजुट रख सके, जो अधिकार की रेवडिया बॉट कर उसके चिपटुओ को खुश रख सके।

राजीव की शुरूआत सकारात्मक थी। वह अपनी मॉ की भस्मी और सिखों के पवित्र स्थानो के अवशेषों पर चलते हुए आगे बढ़े। उन्होने जुलाई 1985 मे शिरोमणि अकाली दल के नेता हरचद सिह लोंगोवाल से ऐतिहासिक समझौता कर लिया। इस समझौते ने भी सिखो की

आतंकवादी प्रवृत्ति को कम करने में मदद नहीं की। वे तो तब तक पाकिस्तान और उसके खतरनाक हथियार इंटरसर्विसेज इंटेलिजेंस के जाल में फंस चुके थे। प्रवासी सिखों ने भी समझौता स्वीकार नहीं किया। वे पाकिस्तानी व्यवस्था के साथ मिल कर आतंकवादी आदोलन की साजिश में लगे रहे।

संत लोंगोवाल की हत्या और उसके बाद राज्य विधानसभा चुनावों में शिरोमणि अकाली दल धडे की जबरदस्त जीत के कारण पंजाब समस्या का हल राजीव-लोंगोवाल समझौते के अनुरूप नहीं हो सका। पजाब का जख्म नासूर बन गया और पाकिस्तान का छद्मयुद्ध अबाध जारी रहा।

समझौते को लागू करने में असफल होने के कारण मुख्यमंत्री एस एस बरनाला की स्थिति अकालियो व आतकवादियों के लिए 'अवाछित व्यक्ति" की हो गई। उन्होंने स्वर्ण मंदिर पर दोबारा कब्जा कर लिया। दोबारा बनाए गए अकाल तख्त को तोड डाला। वे गुरुद्वारे में हथियार ले आए। मार्च 1986 तक उनका गुरुद्वारे पर पूरा नियंत्रण हो गया। सारा पंजाब हिंसा की चपेट में आ गया। आतकियों ने महाराष्ट्र तक जाकर भूतपूर्व सी.ओ ए.एस. जनरल वैद्य की हत्या कर दी।

बडे परिश्रम से किया गया असम समझौता भी बिखरने लगा था। हालांकि इसके कारण असम में अस्थायी रूप से हिंसा थम गई थी। उसने ऑल असम स्टूडेंट यूनियन के राजनीतिक संगठन असम गण परिषद को राज्य में प्रभुत्व में आने का मौका दिया था। इस समझौते ने कई राजनीतिक आंदोलनों को जन्म दिया। हिंसा और अलगाव इनके प्रमुख तत्त्व थे। बोडो जनजाति ने पृथक बोडोलैंड की मॉग उठाई। नेपालियों ने पश्चिम बंगाल में अलग गोरखालैंड मॉगा। इन नए विवादों ने यह सिद्ध कर दिया कि भारत के राजनीतिक भूगोल को आज भी उन जातीय अल्पसंख्यों को संतुष्ट करना था जो कभी बहुसख्यक जातीय , वंशीय व भाषाई समुदायों से जुडे हुए थे।

थके हुए लालडेंगा के साथ मिजो समझौता एकमात्र ऐसा समझौता था जिसने लुशाई कबीले की जातीय आंकाक्षांओं को संतुष्ट किया। नवंबर 1986 में डा. फारूख अब्दुल्ला की नेशनल कांफ्रेंस के साथ भी समझौता हुआ। इससे सत्ता में भागीदारी मिली। लेकिन 1987 के राज्य विधानसभा के चुनावों के दौरान हुई ज्यादतियो ने हिसा का एक और दौर शुरू कर दिया। तब तक पाकिस्तान अफगानिस्तान में अपने संकल्प से फारिग हो चुका था। उसने अपने हथियार और मुजाहिदीनों को पश्चिमी सीमा से पूर्वी सीमा पर लाने मे देर नहीं की। लाल रीछ के पराभव तथा शीतयुद्ध के लौह आवरण के लगभग पतन के कारण पाकिस्तान का हौसला बहुत बढ गया था। विभाजन के अधूरे रहे लक्ष्य को पूरा करने की उसकी आकांक्षा फिर जोर मारने लगी।

राजीव गाँधी यह नहीं समझ पाए कि समझौते थके हुए योद्धाओं पर थोपे गए हल होते हैं। इस युक्ति से मिले विश्राम के बाद वे फ़िर से अपनी हरकतें शुरू कर देते हैं। असम समझौता भी इस उपद्रवग्रस्त राज्य की सुलगती आग को बुझा नहीं पाया था। ऑल असम स्टुडेंट यूनियन का एक बडा धडा असम गण परिषद से अलग हो गया। प्रफुल्ल मोहंतो सरकार के निराशाजनक कार्यों और समझौते की प्रमुख धाराओ को लागू न किए जाने के कारण वे अप्रसन्न थे। नगालैंड व मणिपुर के चरमपंथी विद्रोहियों से प्रेरित होकर उन्होंने यूनाइटेड

लिबरेशन फ्रंट आफ असम (उल्फा) को दोबारा सक्रिय कर लिया। उन्होंने जल्दी ही दोबारा एक अलगाववादी हिंसात्मक आंदोलन छेड़ दिया।

समझौतों का सिलसिला राजीव की अच्छी नीयत का परिचय देता था। लेकिन वह और उनके सलाहकार केवल लक्षणों का उपचार करने में सफल रहे। पंजाब , कश्मीर , पश्चिम बंगाल व असम की दार्जीलिंग की पहाडियों के रोग व रोगियों का उपचार करने में वे असफल रहे। नगालैंड , मणिपुर व त्रिपुरा के उत्तरपूर्वी राज्यों के विद्रोही दल देश को रक्तरंजित करते रहे।

घोटालों की बाढ ने राजीव की परेशानियों को और बढ दिया। राजीव को घेरने वाले घोटालों की लपटें उनके राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह से बिगडते संबधों से पहले व उसके साथ भी जारी रहीं। समझौतों जैसे नाजुक मामलों में राजीव ने उन पर भरोसा नहीं किया। इससे भड़के इस राजनीतिज्ञ ने देश के निर्वाचित प्रधानमंत्री को अपदस्थ करने का लगभग षडयंत्र ही रच डाला। राजीव के रिश्ते के भाई धूर्त अरुण नेहरू , वी.सी. शुक्ल तथा भूखेप्यासे राजनीतिज्ञों व उद्योगपतियों की मंडली ने इसमें उनका भरपूर साथ दिया। इसका कुछ ब्योरा भी मिला कि धीरूभाई अंबानी की रिलायंस कपनी ने भी राजीव को हटा कर अरुण नेहरू को उनकी जगह देने की साजिश की थी।

ऑपरेशन ब्रासटैक्स की विफलता के बाद वी.पी. सिह को वित्त मंत्रालय से रक्षा मंत्रालय में स्थानांतरित करने के पीछे कहा जाता है कि धीरूभाई के रिलायंस उद्योग व नुस्ली वाडिया की बांबे डाइंग के भडके हुए विवाद की भूमिका भी थी। कुशल वित्तमंत्री व ईमानदार वी.पी. सिंह ने रिलायंस की नकेल कस दी थी.। हालांकि रिलायंस को इंदिरा कांग्रेस के अनेक दिग्गजों तथा शासन चलाने वाले प्रशासकों का समर्थन प्राप्त था।

1980 में धीरूभाई भारत के औद्योगिक व आर्थिक परिदृश्य पर एकाएक छा गए थे। इसी समय कांग्रेस पार्टी, उसके कुछ मंत्री व वरिष्ठ प्रशासक अंबानी के आकर्षण में आए और उन्होंने इस उभरते उद्योगपति की 500 बडे उद्योगपतियों के दायरे में शामिल होने में मदद की। 1986 में धीरूभाई अंबानी भारतीय व्यवस्था तंत्र को अभूतपूर्व रूप से प्रभावित करने की स्थित में आ चुके थे। उन्होंने इंदिरा प्रशासन में अपनी पैठ बना ली थी। इसका जरिया बने थे प्रणव मुखर्जी जैसे राजनीतिक प्रशासक और उनको लाभान्वित करने वाले अनेक पेशेवर प्रशासक जिन में गोपी अरोडा, नीतिश सेनगुप्ता तथा एन. के. सिंह प्रमुख थे। 1986 मे धीरूभाई समझ गए थे कि बोली लगाने और खरीदने से भारत उनका हो सकता है।

घोटाले का पहला धमाका था फेयरफैक्स मामला। बताया जाता है कि वी.पी. सिंह ने एक अमेरिकी जासूस कंपनी को कई भारतीय उद्योगपतियों और महत्वपूर्ण व्यक्तियों के बारे में जाँच करने का काम सौंपा था जिसमें अमिताभ बच्चन और उनके भाई अजिताभ बच्चन भी शामिल थे। एक मुख्य पत्र था जो वी.पी. सिंह का भिजवाया बताया जाता था। संदेह था कि इसे अंबानी के लोगों ने जालसाजी कर के बनाया था। इस घटना से राजीव भडक उठे। वी.पी. सिंह को वित्त मंत्रालय से स्थानांतरित कर के रक्षा मंत्रालय में भेज दिया गया। इसके बाद अंबानी के लिए राजीव के अंदरूनी दरवाजे खुल गए। वाडिया अंततः पीछे धकेल दिए गए, इंडियन एक्सप्रेस समूह के सत्य की खोज करने वालों के साथ के लिए।

राजीव को इसका अनुमान न था कि ईमानदारी और राजनीतिक महत्वाकांक्षा से ओत-प्रोत उनके रक्षामंत्री फेयरफैक्स की चोट चुपचाप सहन नहीं करेंगे। हवाल्ट दूशे बर्के (एच.

डी. डबलू.) पनडुब्बी सौदे का एक और घोटाले के रूप में धमाका हुआ। यह अनुबंध 1981 में इंदिरा गाँधी के रक्षामंत्री होने के जमाने का था। राजीव और उनकी मंडली इस बात की इजाजत कतई नहीं दे सकते थे कि इस सौदे की नए सिरे से जांच कर के इंदिरा की याद को धूमिल किया जाए। वे उपराष्ट्रपति वेंकट रमण का भी किसी विवाद में घसीटा जाना पसंद नहीं करते। आखिर वह इंदिरा कांग्रेस के राष्ट्रपति पद के भावी उम्मीदवार थे। इंदिरा गाँधी के निकटवर्ती सूत्रों में फुसफुसाहट थी कि इस सौदे की दलाली में वेंकटरमण भी शामिल थे। एच.डी.डब्लू. नैया डुबोने वाला आखिरी भार साबित हुआ। वी.पी. सिंह ने इंदिरा कांग्रेस से इस्तीफा दे दिया। राजीव को इससे कुछ राहत महसूस हुई होगी पर इससे उनकी बेदाग छवि पर हमेशा के लिए धब्बा पड गया।

अप्रैल 1987 राजीव के लिए अपने साथ नए घोटाले की ऑच लाया। इस बार इसका मूल स्वीडन में था। मामला था बोफोर्स हावित्जर सौदे का। इस मामले ने दबने का नाम नहीं लिया। हालाँकि इस पर जेपीसी की बदनाम रिपोर्ट और बाद की जॉच भी हुई। इस महाघोटाले ने न सिर्फ देश को हिला कर रख दिया बल्कि राजीव गाँधी और इंदिरा कांग्रेस की बुनियादें भी हिला कर रख दी। पार्टी ससद के अनेक उपचुनाव हार गई। इलाहाबाद से वी.पी. सिंह लोकसभा के लिए चुने गए। यह एक सशक्त राजनीतिक दल के रूप में इंदिरा कांग्रेस के पतन की शुरुआत थी।

बोफोर्स सौदा उस समय हुआ था जब राजीव रक्षामंत्री का पदभार संभाले हुए थे। दलाली को कई हाथों में घुमाफिरा कर पहुँचाने के किस्से ने मकडजाल की तरह राजीव को घेरा। न तो वह उस से बाहर निकल पाए न असली अपराधी को पकडने में सफल हुए। दुर्भाग्य से इस असफलता ने शक की सुई सीधे उनकी तरफ मोड दी। इसका साया अभी भी देश के कुछ तबकों की आत्मा पर पडा हुआ है (दिल्ली उच्च न्यायालय ने 2004 में राजीव को इस मामले में बरी किया)।

जो हो, आई.बी. के इंटेलिजेंस संचालक के तौर पर मेरा राष्ट्र को झकझोरने वाले इस महाघोटाले से कोई काम न था। पर मुझे व्यक्तिगत रूप से इस बात पर यकीन करना पसंद न था कि राजीव को इन सौदों से कोई सीधा लाभ पहुँचा था। मुझे धूल भरी दिल्ली में वापस फेंक दिया गया था। मेरी फौरी चिंता एक घर खोजने , अपने दूसरे बेटे के लिए कोई स्कूल ढूंढने और खुद अपने लिए इत्मीनान वाला डेस्क पाने की थी। मैं कनाडा के परेशानियों से भरे दिन भूल कर अपने परिवार के निकट रहना चाहता था।

लेकिन मेरे भाग्य और मेरे बॉस दोनों को कुछ और ही मंजूर था। मेरे दिल्ली में रिपोर्ट करने के सातवें दिन ही मुझे पंजाब संचालन डेस्क में शामिल होने का निदेश दिया गया। दो बहुत योग्य आई.बी. अधिकारी पहले से ही पंजाब के रक्तरंजित सरोवर में नौकाएँ खे रहे थे। मैं हैरान था कि मेरे बॉस ने मुझे उनके बीच में अपने चप्पू चलाने को क्यों कहा। मुझे अधिकारों के टकराव व काम करने की व्यक्तिगत शैली की विषमता की आशंका थी। पहले से इस सेल में जमे वरिष्ठ अधिकारियों के इसमें निहित स्वार्थ विकसित हो चुके थे। मेरा एकाएक बीच में आ धमकना उनको अच्छा नहीं लगा। बाद में इसके कुछ कडवे नतीजे सामने आए। पर मुझे वहाँ रहना था। अपनी पेशेगत हैसियत को बचाने की खातिर पंजाब की रक्तरंजित धरती पर इधर-उधर आना-जाना भी था।

* * * *

पंजाब की मारक भूमि पर लौटने से पहले थोडा विषयांतर करने के लिए पाठक मुझे क्षमा करेंगें।

मैं दिल्ली अपनी हताशा यात्रा के अतिम पड़ाव पर नहीं आया था। हालांकि देश की स्थितियाँ हताश करने वाली ही थीं। उनकी आखिरी समय की गलतियो के बावजूद मैं इंदिरा गाँधी का प्रशसक था। आपात्कालीन ज्यादतियों ने मुझ में गहरी खरोचे छोडी थीं। मुझ जैसा राजनीतिक रूप से सक्रिय व्यक्ति उसे सहन नहीं कर पाता। लेकिन जनता पार्टी के नेताओं की विदूषकता और भारत के जनसाधारण के प्रति उनकी उदासीनता के कारण मुझे यह भी गवारा हो गया।

राजीव गाँधी पहले अराजनीतिक प्रधानमत्री थे। वह न कातिकारी थे न द्रष्टा। फिर भी आशा की जाती थी कि वह भारत को 21वीं सदी की ओर ले जाने मे सचमुच अगुआई करेगे। इसमें सदेह नही कि उन्होंने नई साहसी दुनिया की ओर कुछ खिडकियॉ खोली थीं। पर उन्होने ही उद्योग जगत को देश की अस्थिमज्जा को प्रदूषित करने की अनुमति दी। सजय ने अपराध और राजनीति का संग साथ बना कर राजनीतिक पद्धति को इस हद तक प्रदूषित किया कि उसमें संशोधन असंभव हो गया। राजीव और उनके सलाहकारों ने देश की आत्मा उन डाकुओं और लुटेरों के हवाले कर दी जो खुद को औद्योगिक घराने बताते थे।

गुजरात ने भारत को बहुत से पौराणिक व ऐतिहासिक नायक दिए हैं। भगवान कृष्ण, मोहनदास करमचद गांधी सरदार वल्लभभाई पटेल और धीरूभाई अबानी उन मे शामिल हैं। ये सभी अपनी-अपनी गतिविधियों के क्षेत्र में अग्रणी रहे। कृष्ण ने महाभारत के युद्ध की योजना बनाई। गॉधी ने भारतीय स्वाधीनता का नेतृत्व किया। पटेल ने भारतीय स्वाधीनता की उपलब्धि को स्थायित्व प्रदान किया। धीरूभाई अबानी ने देश को सब से बडे औद्योगिक घरानो मे से एक दिया। इसके लिए उन्होने भारत की राजनीतिक व प्रशासनिक पद्धति को तोड-मरोड डाला। ये चारों ही अपनीअपनी जगह पर अनोखे थे। अनोखे तो उनसे बहुत बाद के गुजरात के मुख्यमंत्री भी हैं जिन्होंने राज्य विधानसभा का चुनाव जीतने के लिए साप्रदायिक हत्याकाड ही करवा डाला। बहरहाल गुजरात के सभी विख्यात पुत्रो में मैं धीरूभाई को आधुनिक चाणक्य के रूप में सर्वाधिक महत्व देता हूँ। अपनी विलक्षण प्रगति मशीन में उन्होंने अपने खास तरीके से मानव मूल्यों, संवैधानिक औचित्य तथा प्रशासन की कानूनी धारणाओं के टुकडे-टुकडे कर के हरेक को भ्रष्ट कर डाला।

घोटालों , निर्णय लेने की गलतियो और कथित भ्रष्टाचार के रास्ते से गुजरती राजीव की प्रगति ने मुझे निराश कर दिया था। इस बात पर विश्वास नही होता था कि जो व्यक्ति 21वी सदी की हवाओं के साथ उड़ान भरने का सपना देखता था वह अपनी कमियो की वजह से धरती से आ लगा था। इससे कई बार शक होता था कि ' गलतियों के शासन ' के लिए वह खुद ही जिम्मेदार थे। सुदृढ़ देश ने संजय की तुगलकशाही पर पलटवार कर दिखाया था। सूझबुझ वाले राष्ट्र ने इंदिरा को राजनीतिक प्रायश्चित करने का एक और मौका दिया था। पर उन्होंने ऐसा किया नहीं। राजीव भी देश को वापस ऊँची उडान पर ले जाने में असफल रहे हालांकि देश ने उनको भारी बहुमत के रूप में पर्याप्त ईंधन दिया था।

देश लगभग उसी स्थिति में आ गया था जब जयप्रकाश नारायण ने अपना सामाजिक आंदोलन छेडा था। इस बार कोई जे.पी. न था। वी.पी. (वी.पी. सिंह) उनका विकल्प हो सकते

हैं, इस बारे में संदेह था। इंदिरा कांग्रेस अंधेरे गर्त की एक और यात्रा पर चल निकली थी। विपक्ष में नए जे.पी., मॉडा नरेश वी.पी. सिंह के गिर्द घूमने वाला कोई तारक समूह न था। मौजूद थे तो अधिकतर भूखे सियार, जो देश की आत्मा और शरीर में अपने दांत गहरे तक गडा रहे थे।

मेरा वी.पी. सिह से कोई परिचय नहीं हुआ। उनका व्यक्तित्व निर्माण करने वाले तत्वों के बारे में पत्रकारिता के परिचितों के माध्यम से मुझे जानकारी मिली। इन में प्रभु चावला भी एक थे। अभी उन्होंने इंडियन एक्सप्रेस की जिम्मेदारी नहीं संभाली थी। वकील रियान करांजीवाला और स्वप्नद्रष्टा की-सी प्रवृत्ति वाले अदम्य प्रशासक भूरेलाल ने कुछ रिक्तियों को भरा। उनके बारे में मेरी स्पष्ट राय थी कि वी.पी. योद्धा थे। ऐसे योद्धा जो अपने युद्धक्षेत्र, , शत्रु का साथ देने वालों तथा अपने शास्त्रों से भी परिचित न थे। उनमें जे.पी सरीखी दार्शनिक प्रतिबद्धता का भी अभाव था।

यह संजय गॉधी के आतंकराज से भिन्न था। राजीव अपने औद्योगिक जगत के मददगारों, साथियों की चालबाजियों, तथा गलत राजनीतिक प्रबंधकों के हाथों परास्त हो गए थे। बज्रपात व सुनामी की दूर से आती गर्जना के प्रति सावधान करने के बजाए इटेलिजेंस मे उनके मित्रों ने उनको प्रसन्न करने का ही प्रयास किया। उन में अपने पिता के धैर्य और मॉ की विदग्धता का अभाव था। उनके सपनो में जवाहरलाल वाली गहराई थी लेकिन राजनीतिक व प्रशासनिक तंत्र की उनकी समझ नगण्य ही थी। इस वीर नायक के पराभव से मेरा मन करुणा से भर गया। मेरा विश्वास था कि और अधिक समय व अवसर मिलता तो वह भारत को नए युग की ओर ले जा सकते थे।

* * * *

इस नाजुक मौके पर मेरे आर.एस.एस. वाले बनारसी दोस्त ने मुझ से सपर्क किया। वह मुझे लालकृष्ण आडवाणी और प्रोफेसर राजेंद्र सिंह से मिलवाना चाहते थे। मैं आर.एस.एस. के केशव कुंज वाले सादे मुख्यालय में जा चुका था। लेकिन शाखा में भाग लेने के लिए नहीं, हिंदुत्व के पंडितों से ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से। हिंदुत्व में मेरा विश्वास जरा अलग किस्म का है। मेरे लिए इसका मतलब हिंदू समाज मे एकता और समानता है। हिंदुओं में मजबूत राष्ट्रीय आधार बनाना है। मेरी राय में किसी गैर-हिंदू भारतीय से घृणा किए बिना भी कोई कट्टर हिंदू हो सकता है।

मैंने आडवाणी से मिलने से इनकार कर दिया। बात यह थी कि वह आई.बी. की जन-गुप्तचरी और तकनीकी गुप्तचरी की निगरानी के तहत थे। मैं यह जोखिम नहीं उठा सकता था।

अपने आर.एस.एस. वाले मित्र से बात करने के बाद मुझे यकीन हो गया कि संघ परिवार ने कार्रवाई की एक और योजना तैयार की है। उसकी जे.पी. आंदोलन से संबद्धता , जनता सरकार में भागीदारी और बाद के घटनाक्रम से उसके सिद्धांतवादियों की समझ में आ गया था कि सत्ता से उनके थोड़े समय के संबंध से उनका वोट बैंक नहीं बढा। बी.जे.पी. व आर.एस.एस. का काडर भी अपने नेतृत्व से निराश ही था। सत्ता उन से कुछ अंगुल के फासले पर नहीं कुछ प्रकाश वर्षों के फासले पर थी। 1980 के संसदीय चुनावों में इंदिरा कांग्रेस ने इसका पूरा लाभ उठाया जब आर.एस.एस. व बी.जे.पी. काडर ने इस पराभूत दल का साथ दिया।

वी.पी. सिंह अस्थिर सहयोगी थ। वह बी.जे.पी. और आर.एस.एस. से सहयोग लेने के खिलाफ तो न थे लेकिन सविधान की मूल धारणा के विरुद्ध जा कर कोई समझौता करने को तैयार न थे। वह एक प्रतिबद्ध धर्मनिरपेक्ष नेता थे। वह स्वच्छ प्रशासन के हिमायती थे।

संघ परिवार की रणनीति स्पष्टतः एक निर्णायक हिंदू भावना को उभारने पर टिकी थी। इसके लिए लक्ष्य था अयोध्या की बाबरी मस्जिद। इस ऐतिहासिक नगरी का एक पौराणिक प्रभामंडल था। वहां विष्णु के अवतार भगवान राम ने दशरथ व कौशल्या के पुत्र के रूप में जन्म लिया था। इस नए अभियान को संचालित करने की योजना बडे ध्यान से बनाई गई थी।

मेरे आर.एस.एस. वाले मित्र ने मुझे यह जानकारी देते हुए इसमे परामर्श देने व सहायता करने का अनुरोध किया। मै अपने पंजाब के कार्यभार के कारण बहुत व्यस्त था। फिर भी मैंने आर.एस.एस. के प्रचारक के.एन. गोविंदाचार्य से मिलने के लिए हामी भर दी। पैंतालीस साल से अधिक उम्र के गोविंदाचार्य बडे गतिशील व्यक्तित्व के मालिक थे। संघ परिवार के एक और त्यागी स्वभाव के एवं दिग्गज किस्म के राजेंद्र शर्मा से भी मैं मिलने को राजी हो गया। मैं आर.एस.एस. नेताओ से मिलने के विरुद्ध न था। मैं सदा इस हिंदू सगठनके प्रति आकृष्ट रहा। हालांकि मैं कभी भी परिवार का औपचारिक सदस्य नही था। मेरा विश्वास था कि केवल यही छिन्न-भिन्न भारतीय समाज को एकता प्रदान कर सकता है।

1987-88 के दौरान उनसे मुलाकातों में राजनीतिक परिदृश्य का विश्लेषण, इंदिरा काग्रेस की रणनीति की जानकारी का आदान-प्रदान, संभावित वोट बैंको का अनौपचारिक सर्वेक्षण-विश्लेषण आदि हुआ। मैंने उनको वोट बैंक का हिसाब लगाने की तरकीबे सिखाई कि किस तरह सही सामाजिक कार्यक्रम , आर्थिक नीति व जाति समीकरणो का तालमेल बैठाया जाता है। कुछ बाद में 1988 के आखिरी महीनों में उमा भारती , वेद प्रकाश गोयल और उनके पुत्र पीयूश नियमित रूप से मेरे यहाँ आते रहते थे। मेरा घर आर.एस.एस और बी जे पी. की गतिविधियों का केंद्र बन गया था।

बी.जे.पी. के प्रति मेरे रुझान के लिए मेरा काग्रेस से मोहभंग ही जिम्मेदार न था। दरअसल मै सदा से ही राजनीतिक जीव था। हालाकि मैं अनुबंधित सेवा में था। राजनीति मेरे व्यक्तित्व का एक अभिन्न अंग बन चुकी थी। जहाँ तक मेरे राजनीतिक झुकाव का सवाल था मैं कई बार विभाजित व्यक्तित्व के पशोपेश में रहा। मेरे अतस की गिलहरियों ने कभी भी आपस में लडना बंद नहीं किया। मैंने कांग्रेस से नफरत करना इस लिए शुरू किया था कि मेरे कांतिकारी स्वाधीनता सेनानी पिता को अपमानित किया गया था। इसी नफरत ने मुझे आर. एस.एस. और जनसंघ की तरफ धकेला और मुझे मुसलमानों का विरोधी बनाया।

इंदिरा गाँधी की तरफ मेरा झुकाव इस एहसास के बाद हुआ कि केवल वही ऐसी प्रगतिशील नेता थीं जो देश की खिवैया बन सकती थीं। यह एहसास मुझे उस समय हुआ जब मैंने देखा कि कुछ जनता नेताओं ने जनमत का मखौल बनाते हुए ठगों के गिरोह के अवतार की तरह देश को लूटना शुरू कर दिया है। मैंने उनको इस बारे में सुझाव दिए थे कि निराश व हताश आर.एस.एस. कार्याकर्ताओं को चुनावी सफलत्ता के सीमित उद्देश्य के लिए किस तरह कांग्रेस के पक्ष में किया जा सकता है।

मै बी.जे.पी. के लिए मेहनत नहीं कर रहा था। राजनीति की दृष्टि से मैं वी.पी. सिंह और कांग्रेस के बीच के रिक्त स्थान का निरीक्षण-परीक्षण कर रहा था। क्या बी.जे.पी. इस खाली

जगह को भर सकती थी ? मेरा विश्वास था कि वी.पी सिह की अंतरवेला कम से कम पांच साल तक खिंच जाएगी। तब बी.जे.पी. सत्ता के लिए गंभीरता पूर्वक निर्णायक प्रयास कर सकती है। इस दौरान मैं पंजाब और इंटेलिजेंस ब्यूरो के नए माहौल के कारण बहुत व्यस्त था।

* * * *

इटेलिजेंस ब्यूरो किसी तरह से भी औद्योगिक घरानों की कार्यनीति या राजीव गॉधी की मंडली की संस्कृति का अनुकरण नहीं कर सकता था। उसे विरासत में पिरामिड के आकार का ढांचा मिला था। यह उसी का अनुसरण कर रहा था। निचले स्तरों पर और उनसे कुछ ऊपर भी उसे काम करने की काफी स्वायत्तता थी। हम इसे अराजकता भी कह सकते हैं। यह सदा से पुलिस तथा इंटेलिजेंस के आचरण का विचित्र मिश्रण-सा रहा जिस में इंटेलिजेंस कम पुलिसिया आचरण अधिक रहा। लेकिन इस परंपरावादी संगठन में बहुत से परिवर्तन भी हो रहे थे। राजीव गॉधी और उनके रिश्ते के भाई अरुण नेहरू ने साधनों के अभाव से पीडित इस सगठन की कुछ महत्वपूर्ण आवश्यकताओं की तरफ ध्यान दिया। इसके काउंटर-इटेलिजेंस अंग को कुछ साधनों से लैस किया गया। फिर भी इसके संसाधन संसार के दूसरे इंटेलिजेंस संगठनों , सी.आई.ए. , एम.15 , एम.16 , यहां तक कि पडोसी आई.एस.आई. की तुलना में भी बहुत कम रहे। तकनीकी इंटेलिजेंस के आधुनिकीकरण के लिए कुछ प्रयास किए गए। इसकी इलेक्ट्रॉनिक इंटेलिजेंस एकत्र करने की क्षमता में सुधार लाने की कोशिश भी की गई। लेकिन कुल मिला कर यह सब दर्शनीय ही रहा। ठोस वास्तविक धरातल पर तो कुछ वाहनों में बढोतरी के अलावा अल्फा न्यूमेरिकल पेजर व मॉटरोला के उच्च फ्रीक्वेंसी के हैंडसेट ही दिखाई दिए। राजनीतिक नस्ल अभी भी आई. बी. को अंदरूनी वा बाहरी खबरों से भरे जीवन के वास्तविक संघर्ष का मुकाबला करने वाले साधनों से लैस करने को तैयार न थी। मुझे अक्सर महसूस हुआ कि वे लोग संगठन को बहुंत शक्तिशाली बनाने के हक मे नहीं थे।

इन दर्शनी परिवर्तनों ने आई बी. की जन-गुप्तचरी पर निर्भरता को बिलकुल प्रभावित नहीं किया। डाइरेक्टर एम के. नारायणन ने पंजाब की समस्या से निबटने के लिए संचालन की पद्धति को दोबारा लागू किया। यह कोई नया विचार न था। इसका हम उत्तरपूर्व में सफलतापूर्वक इस्तेमाल कर चुके थे। लेकिन अब यह चलन में न थी। इस समय तक संचालन को विश्लेषण डेस्क से अलग कर के स्वाधीन बना दिया गया था। उसे पंजाब में पाकिस्तान द्वारा प्रायोजित उग्रवाद का मुकाबला करने के लिए परंपरागत व गैर-परंपरागत संचालन के अधिकार दिए गए थे।

उन्होंने ट्रेनिंग के स्वरूप में संशोधन किया। इंटेलिजेंस ब्यूरो के तकनीकी विभाग की सोच के क्षितिज को व्यापक बनाया। युवा प्रधानमंत्री की तरह नारायणन भी उत्साह से परिपूर्ण थे। उन्होंने सकारात्मक परिवर्तन का सदा स्वागत किया। पर कुछ वरिष्ठ सहयोगियों की राय में उन में कुछ कमियॉ भी थीं।

उनकी नीचे के स्तर की कमान अभी भी परंपरागत शृंखलाओं में जकड़ी हुई थी। वह इंटेलिजेंस एकत्र करने के पुराने ढर्रे पर चल रही थी। नीचे के स्तर पर अब भी कर्मी अपर्याप्त वेतन , ज़डता व बडे. अधिकारियों की मातहती से ग्रस्त थे। उनको अभी पुलिस की मनोदशा से बाहर निकालना बाकी था। उनको राष्ट्रीय व क्षेत्रीय गतिविधियों में सभी स्तरों पर काम करने

की क्षमता के साथ सक्रिय ह. ो के अधिकार मिलने बाकी थे। एजेंसी में अनुपयोगी मानव संसाधनों का अंबार लगा था। उनका मनोबल शोचनीय स्थिति तक गिरा हुआ था।

एम.के. नारायणन ने इस अस्तव्यस्त अस्तबल की साफसफाई के लिए पूरी ईमानदारी से कोशिशें कीं। अनुपयोगी मानव ससाधनों को बाहर निकाल कर के क्रातिकारी परिवर्तन लाना तो संभव न था। वह ऐसे अधिकारीयों पर निर्भर थे जो उनके लिए वफादारी का दम तो भरते थे लेकिन उनके प्रति वफादार न थे। इस से एक मंडली बन गई थी जिसने इंटेलिजेंस ब्यूरो के निदेशक के कई कामों को हथियाने की कोशिश भी की। इस मंडली ने नारायणन और कई स्वतंत्र चिंतन करने वाले अधिकारियों के बीच दरार पैदा कर दी।

मैं कभी आई.बी की किसी मडली या गुट में शामिल नही हुआ। इसके कारण थे मेरा बाहरी क्षेत्र में काम करना व मेरी असुविधाजनक सवाल पूछने की प्रवृत्ति। मैंने सदा अपनी स्वतंत्र संचालन की शैली अपनाए रखी। ताकतवर लोगों के सामने नतमस्तक होकर उनकी मातहती कभी नहीं की। मैं काम करने की नियंत्रित स्वायत्तता में विश्वास रखता था। निर्देशो के दायरे में रह कर भी लचीले तरीके से काम करना ही मुझे पसंद था।

मैं नारायणन की बौद्धिक कुशाग्रता का सदा प्रशसक रहा। पर मैं उनकी निकटवर्ती मंडली का कृपापात्र बनने में असफल ही रहा। मैं राजीव गाँधी के गलतियों भरे शासन के प्रति उनके उदासीन समर्थन का भी कभी अनुमोदन नही कर पाया। गृह मंत्रालय के अधीन होने के कारण आई.बी. को कभी भी काम करने की स्वतत्रता न थी। एजेंसी के सचालको की हैसियत से हम लोगों को उपभोक्ता के गैरकानूनी आदेशो का भी पालन करना पडता था। इंदिरा गाँधी जब अपनी सत्ता के शिखर पर थीं तब भी सगठनके कुछ उत्साही अगुआओ ने आई.बी. के आधार की रक्षा की थी। सजय ने उनको ध्वस्त कर दिया। इस दौर मे तो उन आधारभूत चीजों को स्वयं ही राजीव गाँधी की मंडली को समर्पित कर दिया गया।

मंडली के अधिकांश सदस्यों को मुझसे नफरत थी। कारण था मेरी स्वतत्र विचारधारा और उसका मंडली के अन्य सदस्यों से मेल न खाना। वे मुझ पर शक करते थे क्योंकि मैं अब भी इंदिरा गाँधी के समय के वफादार तत्वों का समर्थक समझा जाता था। उन्हे मेरे आर.एस एस. के साथ लगाव का पता चलना अभी बाकी था।

राजनीतिक व राष्ट्रीय जीवन में हो रही हलचलें और एजेंसी मे हो रहे परिवर्तन मुझे अपने सौंपे गए काम को निष्ठा से करने से कभी रोक नही पाए। पर मेरी शुरुआत बडी बाधा के साथ हुई। कल्याण रुद्र के नेतृत्व में एक कुशल टीम पजाब की कार्रवाई को देख रही थी। वे नारायणन की खास मडली के सदस्य थे। यह टीम वर्तमान नेतृत्व का आदेश मानने और उसी के अनुरूप काम करने की अभ्यस्त थी। मेरा आना नेतृत्व और इस सेल के सदस्यों को अच्छा नहीं लगा। आखिर कबाब में हड्डी किसे भाती है? मैंने वातावरण में विरोध की गर्मी और संदेह की बू का अनुभव किया। धीरे-धीरे सेल का विभाजन हुआ। मेरे हिस्से अपना काम चलाने के लिए कुछ अनुभवहीन कर्मी आए। यह अन्याय ही था। मैं पेशागत अपमान से तिलमिला उठा। एक ही समस्याग्रस्त क्षेत्र में दो अलग-अलग व्यक्तित्व वाले अलग-अलग सिद्धांतों के साथ क्या काम कर सकते हैं ? इस समस्या ने मुझे पशोपेश में डाल दिया।

उस समय मैं आई.बी. निदेशक की रणनीति को समझ नहीं पाया। कई बार दोनों सेल एकदूसरे के अनिर्णीत इलाके में आ कर जोड-तोड और एजेंट बनाने के काम को बिगाड देते थे। वातावरण की इस गर्मा-गर्मी का प्रभाव काफी दिनों तक मातहत काम करने वालों पर

पडता रहा। उनको अपने वरिष्ठ अधिकारियो की बताई लक्ष्मण रेखा का मजबूरन पालन करना पड़ता था। आमतौर पर हम अलग-अलग रह कर काम कर रहे थे। पर कई बार एक-दूसरे से टकरा भी जाते थे।

कार्रवाई करने वाले मेरे सेल के भागीदारों की मान्यता थी कि भूखे-प्यासे राजनीतिज्ञों की पैदा की गई या विरासत मे मिली खाई को मृत शरीरों से पाटा जा सकता है। ये मृत शरीर निरीह नागरिकों के हो सकते हैं या फिर निरीह से आतंकी बने नागरिकों के। मैं कानून-व्यवस्था के पालन या कानून के शासन की बहाली के नाम पर पथभ्रष्टता की इन खाइयों को मृत शरीरों से पाटने की सरकार की नीति से सहमत न था। मुझे उत्तरपूर्व और नक्सलबाडी का अनुभव था। मुझे समझ मे आ गया था कि इन खाइयों को सूझ-बूझ वाले आर्थिक, प्रशासनिक व राजनीतिक कदम उठा कर ही भरा जा सकता है। केवल सांस्कृतिक सबंधों में पडी सलवटों को सीधा कर के ही शवों की गिनती कम की जा सकती है।

मेरे कुछ साथियों की राय में सचालन का मतलब था ऐसी इंटेलिजेंस एकत्र करना जिसके आधार पर कार्रवाई की जा सके। पुलिस जिसे पा कर आतंकियो का खात्मा कर सके। कई बार बेकसूर नवयुवकों को पकड कर उन से पुलिसिया अदाज में पूछताछ की जाती थी। फिर उन्हे मार कर या दफना कर गायब का दिया जाता था। इस तरह की हरकतें करने के मैं बहुत खिलाफ था। मेरी राय में आई.बी को दो आधारों पर काम करना चाहिए था। पुलिस के लिए इंटेलिजेस एकत्र करना और ऐसा रास्ता निकालना जिससे इस मानवीय समस्या का कोई स्थायी हल निकाला जा सके। हमारा यह मतभेद पहले दिन से शुरू हो गया था।

मैं पंजाब के विपथमार्ग की खाइयों के बीच फंसा हुआ था। मुझसे सकारात्मक परिणामों की अपेक्षा की जाती थी। हालांकि खीची जाने वाली डोर के छोर मेरे हाथ में न थे। पर मुझे ' हाय मार डाला ' चिल्लाने की आदत न थी, जब तक कि सचमुच ही न मर जाऊँ। उत्तरपूर्व का पुराना दुस्साहसी अपनी सुषुप्तावस्था से फिर जाग गया था।

<21>

जलते पंजाब के अंदर

स्वाधीनता को सब से बडा खतरा अतिउत्साही लोगों के कपटपूर्ण कब्जे से होता है। वह अच्छा उद्देश्य तो होता है पर उसके पीछे समझ-बूझ नहीं होती।

न्यायमूर्ति लुई डी. बैंडिस

यहाँ जरूरी है कि अपरेशन ब्लू स्टार, इंदिरा गॉधी की हत्या और राजीव-लोंगोवाल समझौते के बाद के पंजाब के हालत पर एक नजर डाल ली लाए। पंजाब इस भ्रांत धारणा का उदाहरण है कि किसी पथभ्रष्टता का उपचार अकेले बल प्रयोग से किया जा सकता है। ब्लू स्टार भिंडरांवाले और उनके निकटवर्ती साथियों को मारने में सफल रहा। लेकिन इससे सिखों के दिलों में सुलगती आग शांत नहीं हुई। भिंडरांवाले के अनुयायी पंजाब में व भारत में अन्यत्र इधर-उधर बिखर गए। जो पाकिस्तान चले गए उनको खोज कर आई.एस.आई. ने आतंकवादी हरकतों के लिए तैयार कर लिया। यह कम खर्चे व कम तीव्रता वाला छद्मयुद्ध था। भारतीय प्रणाली ने पाकिस्तान को अपना छद्मयुद्ध भारत के उत्तरपूर्व से उत्तर-पश्चिम में स्थानांतरित करने का अवसर दे दिया।

सुरजीत सिंह बरनाला को पंजाब की सत्ता सौंपने के तुरंत बाद ही भिंडरांवाला के अनुयायी फिर से छोटे गुटों में प्रकट होने लगे। सेना व अर्द्धसैनिक बलों ने उग्रवादी युवकों को पकडने के लिए ऑपरेशन मांड आरंभ किया, पर इसके उल्टे परिणाम सामने आए। इसने बहुत से युवकों को पाकिस्तान में आई.एस.आई के सुरक्षित आधार में भागने को बाध्य कर दिया। बरनाला इसे रोकने में बुरी तरह असफल रहे। 1986 के आरंभ में राजीव गॉधी को अनेक उग्रवादी संगठनों का सामना करना पडा जिनके अस्थिर शीर्ष पर दमदमी टकसाल थी।

गुटबाजी में फंसी ए.आई.एस.एस.एफ. इनकी उपजाऊ भूमि थी। दूसरे प्रमुख गुटों में थे : बब्बर (पाकिस्तान में आधार बनाए सुखदेव सिंह दासो का दल, सुखदेव सिंह सखीरा और तलविंदर सिंह परमार का गुट), खालिस्तान कमांडो फोर्स (चहेरू), खालिस्तान लिबरेशन आर्मी (तरसेम सिंह कोहर), जरनैलसिंह बाबरा गिरोह (संत एच.एस. लौंगोवाल के हत्यारे); मथुरा सिंह का गिरोह (ललित माकन, जनरल वैद्य आदि के हत्यारे), रोशन लाल बैरागी गिरोह, खालिस्तान सशस्त्र पुलिस, खालिस्तान लिबरेशन फोर्स (तत खालसा-अवतार सिंह ब्रह्मा), भिंडरांवाले टाइगर फोर्स ऑफ खालिस्तान (मनोचहल), माई भागो रेजिमेंट (बीबी भाग कौर) और माता साहिब सिंह कमांडो फोर्स आदि। यह सूची काफी लंबी है। सिखों में परमाणु कणों के समान विभक्त होने की प्रवृत्ति है। इसी वजह से के.सी.एफ., बी.टी.एफ.के.,के.एल.एफ. आदि अनेक संगठन उपजे।

विदेशों में अड्डा जमाए डबलू.एस.ओ., आई.एस.वाई.एफ., इटरनेशनल बब्बर खालसा और उन सब को पाठ पढ़ाने वाली इटर सर्विसेज इंटेलिजेस ऑफ पाकिस्तान ने उग्रवादी गुटों के एक साझे राजनीतिक छत्र के तले आने की जरूरत पर जोर दिया। दमदमी टकसाल ने एक रणनीति के जरिए इसे संभव बनाया। 5-6 जनवरी को चौक मेहता के गुरुद्वारा गुरुदर्शन में शीर्ष उग्रवादी नेताओं की एक मीटिंग हुई। तख्त के कार्यवाहक जत्थेदार बाबा ठाकुर सिंह इसके अध्यक्ष थे। इसमें पांच सदस्यो की पंथक कमेटी बनाने का फैसला किया गया। तय हुआ कि यह कमेटी सिख पथ का मार्गदर्शन करेगी और उग्रवादी गुटों को राजनीतिक छत्र प्रदान करेगी। इस तात्कालिक फैसले को स्वर्णमंदिर मे हुई सरबत खालसा की मीटिंग मे मंजूरी दी गई। भारतीय सेना के सेवानिवृत्त मेजर जनरल नरिंदर सिह को इसमें सुरक्षा प्रमुख बनाया गया। एक सेवानिवृत्त पत्रकार दलबीर सिह को प्रस्तावों के मसौदे तैयार करने का काम सौंपा गया। इस मीटिग मे पथक कमेटी का पुनर्गठन भी किया गया। कृपाल सिंह की जगह पर जनरैल सिंह भिंडरावाले के भतीजे भाई जसबीर सिह रोडे को अकाल तख्त का जत्थेदार बनाया गया।

पंथक कमेटी रग-रग के उग्रवादियो का जमावडा थी। उनको राज्य शासन, भू-राजनीतिक विलक्षणताओं तथा गोरिल्ला युद्ध की कला या विज्ञान की जानकारी नाममात्र ही थी। उन्हीं दिनों में ए आई.एस.एम.एफ. का नेता गुरजीत सिह पाकिस्तान से वापस आया। उसने संदेश दिया कि पाकिस्तान उग्रवादी गुटो की प्रगति से संतुष्ट नही है। विदेशो में बसे जनोत्तेजकों ने भी पंथक कमेटी पर दबाव डाला कि वह सिखों के स्वतंत्र गृह राज्य के रूप में खालिस्तान की घोषणा करे। 28 अप्रैल 1986 को स्वर्णमदिर मे यह अहम फैसला किया गया। इसमें स्वास्थ्य सेवाओं के भूतपूर्व निदेशक डा. सोहन सिंह ने भी भाग लिया जो इंदिरा सरकार में कभी मंत्री रह चुके सरदार स्वर्णसिह के रिश्तेदार थे। औपचारिक घोषणा 29 अप्रैल को की गई। 1986 के आरभ की घटनाओं ने सिख आतकवादियो को फिर से स्वर्णमंदिर पर कब्जा जमाने और वहाँ की इमारतों को व्यवस्थित करने का मौका दे दिया। बरनाला सरकार इस तरह की सडन को रोकने में असफल रही। पवित्र स्थल यातनाएँ देने और हत्याओं के अड्डे बन गए। पंजाब की जनता न्याय पाने, सास लेने और जिंदा रहने के लिए आतंकवादियों पर निर्भर होने को बाध्य हो गई। वह दो पाटों के बीच आ गई थी। एक तरफ पुलिस व अर्द्धसैनिक बल थे जो बेतहाशा मार रहे थे। दूसरी तरफ उग्रवादी संगठन थे जो परेशान करते थे, यातनाएँ देते थे और फिरौती माँगते थे।

विपक्षी अकाली धडे की अलगाववादी गतिविधियो से त्रस्त व मनोबलहीन राज्य सरकार ने पुलिस व प्रशासन के पस्त हौसलों के बावजूद आतकी लहर का अच्छा मुकाबला किया। राजीव गाँधी ने भी पंथक कमेटी की खालिस्तान की घोषणा के बाद स्वर्णमंदिर के अदर एन. एस.पी. की कार्रवाई का आदेश दे कर फौरी कदम उठाया। उन्होंने मांड के दलदली इलाके से आतंकवादियों का खात्मा करने के लिए फिर से ऑपरेशन मांड आरभ करने के आदेश भी दिए। उन्होंने रागी दर्शन सिंह और जैन प्रचारक सुशील मुनि के जरीए शांति के प्रयास भी किंए। इन कोशिशों का शोर तो बहुत हुआ लेकिन परिणाम बहुत कम दिखाई दिया।

एक और सिख नेता केंद्रीय गृहमंत्री बूटा सिंह ने राजीव की परेशानियों को और बढा दिया। अपने विख्यात नेता ज्ञानी जैल सिंह की तरह वह भी पंजाब के तख्त पर विराजमान होने की महत्वाकांक्षा पाले हुए थे। वह छोटी जाति के सिख थे जिनसे ऊँची जाति के जाट

और खत्री घृणा करते थे। राजीव गाँधी पजाब मे जातियो के इन सबधो को समझ नही पाए थे।

हालाकि पजाब मे प्रशासनिक व पुलिस बल बहुत छिन्न-भिन्न सा हो गया था और न्यायपालिका लगभग ठप थी, फिर भी पुलिस के नए प्रमुख जे एफ रिबेरो ने सराहनीय काम किया। 1986 मे लगभग 80 शीर्ष आतकवादियो से मुठभेडे हुईं और 1525 आतकवादी गिरफ्तार किए गए। यह निडर पुलिस अधिकारी अपनी हत्या के प्रयास से बच निकला और इसके बावजूद उसने अपना कदम पीछे हटाने से इनकार कर दिया। रिबेरो ने कठोर पुलिसिया कार्रवाई और राजनीतिक रवैए के सुदर तालमेल से काम लिया।

राजनीतिक बल अस्त-व्यस्त थे। इदिरा काग्रेस, शिरोमणि अकाली दल और शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबधक कमेटी (एस जी पी सी) के अधिकाश नेताओ के किसी न किसी आतकी गुट से सबध थे। वफादारी को आकना तो असभव ही हो गया था।

मुझ जैसे नौसिखिए सचालक को दो काम सौपे गए। एक तो बिना गोली चलाए शाति स्थापित करने का प्रयास और आतकवादी नेताओं का पता लगा कर उनको निष्प्रभावित करना। दूसरा पाकिस्तान की इस मामले मे लिप्तता नेपाल मे आतकियो के शरणस्थल तथा भारत मे उनके अड्डो का परदाफाश करना।

किसी विद्रोह व आतक से ग्रसित इलाके मे इटेलिजेस सचालक का काम शौर्य विहीन नही होता। इस तरह के बहादुरी के कारनामो के दौरान अक्सर मारे गए आतकियो या फिर अग्रिम मोर्चे के सैनिको के ताबूत भी होते है।

मैं हत्याओ का बीभत्स ब्योरा नही देना चाहता। वह अन्यत्र उपलब्ध है। पर मै अपने पाठकों को इतना जरूर बताना चाहूँगा कि मेरी कार्रवाइयों मे बेगुनाह ग्रामीणो युवाओ की बिना सोचे-समझे हत्या करना या सदिग्ध आतकवादियो की सामूहिक कब्रे बनाना शामिल नही था। मैं अपने सहयोगियो या पुलिस बल के बहादुरी के कारनामो का जिक्र करने से भी परहेज करूँगा। मैं आतकवाद का मुकाबला करने के नाम पर अपने ही देशवासियो को मारने की उनकी नीति का समर्थक न था। खासतौर पर तब जबकि दूसरे विकल्प पूरी तरह चुक नही गए थे। मैं सदा देश की आतरिक समस्याओं का इलाज सवैधानिक तरीके से करने मे विश्वास करता रहा हूँ, न कि सैनिक बल से। हमने सदा सामाजिक विद्रोह को कानून-व्यवस्था की समस्या मान कर उसे कुचलने की भारी भूल की है।

मैंने मिटाने का रास्ता पकडने के बजाय शाति के रास्ते को तरजीह दी। मेरा पक्का विश्वास था कि पजाब मे आतकवाद रातोंरात पैदा नहीं हुआ था। यह राजनीतिक दुराग्रह और कट्टरपन का मुकाबला करने का अजाम था जो दो ऐतिहासिक रूप से विरोधी शक्तियो काग्रेस व अकाली दल के बीच हुआ। इदिरा काग्रेस के जैल सिह व बूटा सिह और सजय गाँधी जैसे दिग्गज जरनैल सिह को केंद्रीय मच पर लाने के लिए जिम्मेदार थे।

दिल्ली के बचकाने राजनीतिक लुटेरे, जो इदिरा गाँधी के दूसरे दौर मे और राजीव के समय में भी पंजाब के आग के गोले से खेल रहे थे और राजीव के आधुनिकता का बिल्ला लगाने वाले साथी पाकिस्तान के मुहाजिर सैनिक राष्ट्रपति की पजाब के लिए लालसा का अदाजा लगाने में असफल रहे। जिया का अरायन परिवार जालधर से था। उन्हे माझे के जाट पजाबी मुजाहिरों (शरणार्थियों) पर बडा भरोसा था। जरनल आरिफ उनके वाइस चीफ ऑफ स्टॉफ थे। उनके एक जालधरी साथी जनरल अख्तर रहमान इटर सर्विसेज इटेलिजेंस के

प्रमुख थे। एक और जालंधरी अरायन लेफ्टिनेंट जनरल फैज अली चिश्ती जिया के आपरेशन फेयर प्ले के प्रमुख थे जिसने जुल्फिकार अली भुट्टो की स्वेच्छाचारी लेकिन लोकतांत्रिक पद्धति से चुनी गई सरकार का अंत किया था। स्वभावतः आंदोलन की तीव्रता के दौरान पंजाब के माझा और दोआबा क्षेत्र पर विशेष ध्यान दिया गया जब कि ये हिंसा के पुजारी खुद मालवा के इलाके से थे।

1982 में मैंने भारत और इंगलैंड से ननकाना साहब गए कुछ सिख तीर्थयात्रियों की जनरल जिया से मुलाकात की रिपोर्ट दी थी। पंजाब डेस्क के प्रमुख ज्वाइंट डाइरेक्टर ने तब उस संवेदनशील रिपोर्ट को ठडे बस्ते के हवाले कर दिया था। इस बार भी मैंने अपने उच्च अधिकारियों का ध्यान जालंधर के इस विचित्र मुद्दे की ओर आकर्षित किया जो पंजाब की बिगडती स्थिति पर मंडरा रहा था। मेरे पास अपने उच्च अधिकारियों को सूचित करने का अधिकार तो था लेकिन यह जानने का अधिकार नहीं था कि उन्होंने इस बारे में नीति विषयक क्या निर्णय लिया। मुझे यह पूछने का अधिकार भी न था कि अगर कोई ऐसा निर्णय लिया गया है तो उसके लिए सारे उपलब्ध ब्योरे पर ध्यान दिया गया है या नहीं ?

* * * *

मेरे खयाल में अस्थिरचित्त होने के बावजूद राजीव गॉधी शांति व युद्ध दोनों की प्रक्रिया को साथसाथ चलाना चाहते थे। नवंबर 1987 के आरंभ में मुझे उनके आवास पर बुलाया गया। तब आपरेशन सेल में मेरी नियुक्ति को अभी केवल चार महीने ही हुए थे। पंजाब समस्या पर मेरी जानकारी के बारे में मुझसे पूछताछ की गई। प्रधानमत्री के लिए मेरा चेहरा अपरिचित न था। उन्होने मुझे ठीक से पहचान लिया और पूछा कि क्या मैं सुशील मुनि को जानता हूँ? मैंने न जानने का बहाना किया। मैं इन कथित मुनि को किसी और समय के अरुचिकर प्रसंग से जानता था।

नए प्रधानमंत्री ने मुझे उनसे मिलने का आदेश दिया।

मैंने मुनि से उनके शंकर रोड स्थित आश्रम में मुलाकात की। यह उन्होंने सरकारी जमीन पर गैरकानूनी ढंग से बनाया था (1996 में यही स्थिति थी)। केंद्रीय गृहमंत्री बूटासिंह के साथ साझेदारी में मुनि ने एक वरिष्ठ राजनीतिज्ञ तरलोचन सिंह रियासती को गांठ लिया था कि वह आतंकवादियों के एक धडे को प्रभावित करें। मुझे स्पष्ट हो गया कि सुशील मुनि न तो प्रधानमंत्री और न ही गृहमंत्री के प्रति वफादार थे। वह सिर्फ अपने प्रति वफादार थे। वह निर्वाण की तीन सीढियॉ चढने के चक्कर मे थे। पैसा, राज्यसभा की सदस्यता और पद्म अलंकरण।

मैं रियासती को जानता था। वह स्वाधीनता सेनानी थे। एक राजनीतिज्ञ के तौर पर भी उनका अच्छा नाम था। पंजाब उपद्रव के शुरुआती दौर में मेरा उनसे परिचय हुआ था।

अब फिर सुशील मुनि ने रियासती से मेरा परिचय कराया। मुझे एक नई शांति की पहल के बारे में बताया गया। दरअसल उस वरिष्ठ स्वाधीनता सेनानी ने अकेले ही इसकी पहल की थी। आपसी बातचीत में रियासती ने मुझे बताया कि वह युवा खालिस्तानियों के एक गुट के संपर्क में हैं। वे लोग प्रधानमंत्री से मिलने को तैयार हैं। मुझे जान कर हैरानी हुई कि रियासती ने इस कार्रवाई के बारे में प्रधानमंत्री से बातचीत नहीं की थी। असल में बूटा सिंह ने उनको प्रधानमंत्री से मिलने की इजाजत ही नहीं दी थी। उन्होंने इस बात पर जोर दिया था कि वह सुशील मुनि के जरीए ही अपनी कार्रवाई चलाएँ। मुझे आदेश मिला कि मैं उग्रवादी नेताओं को प्रधानमंत्री से मुलाकात के लिए दिल्ली ले कर आऊँ। सीधेसीधे कहूँ तो यह

ऑपरेशन आखिरी मौके पर मेरे हवाले किया गया था जब पंजाब सेल के मेरे दूसरे सहयोगियों ने अपने कारणों से उससे पल्ला झाड लिया था।

मैं विभाग के दो अधिकारियों और अपने पेशे के एक दोस्त के साथ रात को एक बजे के करीब भटिंडा पहुंचा। रियासती से मेरी मुलाकात सुबह साढ़े चार बजे एक पार्क में तय हुई थी। वहाँ हमने जॉगिंग करते हुए बात की। फिर एक कार के पास पहुंचे जो स्टार्क की हुई थी। गाडी में रियासती का निजी ड्राइवर मंगल सिंह बैठा था। वह हमें गुरुद्वारा नानकसर से दो ब्लॉक दूर एक घर तक ले गया। वहाँ सफेद और केसरिया चोले (सिखों का धार्मिक वेश) पहने कुछ युवक बड़े जोश में बातें कर रहे थे। नेपाली मूल के एक पत्रकार ' क ' थापा के नाम से मेरा परिचय कराया गया। उनमें से एक ने, शायद वह हरिंदर सिंह भटिंडा था, मेरे नेपाली ज्ञान की पुष्टि करने की कोशिश की। मैं टैस्ट में पास हो गया। जब मैंने प्रेस सूचना ब्यूरो का अपना नकली कार्ड दिखाया तो मुझे सचमुच का पत्रकार मान लिया गया। मेरे पास वक्त जरूरत के लिए डॉक्टर, मछली-पालक, उद्यान विज्ञानी और यहाँ तक कि बी. बी.सी. के फुटकर संवाददाता के कार्ड भी थे।

लेकिन सब लड़के मेरे इस परिचय से संतुष्ट नहीं हुए। छरहरे बदन और लहराती दाढी वाले एक लडके ने 45 माउजर निकाल कर मुझ पर तान ली। उसने मेरे कधे से लटके झोले की तलाशी ली। वह चकित रह गया। एक और लडके ने उसे पीछे हटने के लिए मनाया। उसने अपना नाम अतिंदरपाल सिंह बताया। वह पत्रकार से अलगाववादी बना था। वहाँ मौजूद बाकी युवकों में थे : दमदमी टकसाल समर्थित ए.आई.एस.एस.एफ. का प्रमुख गुरजीत सिंह, तत खालसा और खालिस्तान लिबरेशन फोर्स का प्रमुख अवतार सिंह ब्रह्मा और अकाल तख्त के उग्रवादी जत्थेदार जसबीर सिंह रोडे (अब बदी) का अनुयायी गुरदीप सिह भटिंडा। यह जमावडा काफी प्रभावित करने-वाला था। अतिंदरपाल पर इंदिरा गाँधी की हत्या में लिप्त होने का संदेह था। ब्रह्मा पंजाब के माझा-मालवा क्षेत्र के ' स्वाधीन ' इलाके मंड का बादशाह था। कई हत्याकांडों में उस की तलाश थी। जरनैल सिंह भिंडरांवाले का रिश्तेदार गुरजीत सिंह कई बार पाकिस्तान जा चुका था। उसे आई.एस.आई. और उग्रवादियों के बीच संपर्क सूत्र माना जाता था।

मुझसे आशा की जाती थी कि इन सब को प्रधानमंत्री से वार्ता के लिए दिल्ली ले जाऊँ। हमने मसालेदार चाय पी। फिर युवकों ने अरदास की और हम लोग अपनी यात्रा पर निकल पड़े। सुबह होने तक हम हरियाणा में सिरसा पहुँच गए थे। इंस्पेक्शन बंगले पर संचालन डेस्क के प्रमुख कल्याण रुद्र ने हमारी आगवानी की। हमने जल्दी में नाश्ता किया और तेजी से दिल्ली के लिए चल पडे।

युवकों को सुशील मुनि के सुरक्षित कमरों में ठहराया गया। मुनि अपनी महिला सचिव के साथ युवकों से बातचीत करना चाहते थे। पर उन लोगों ने मना कर दिया। फिर सुझाव आया कि वे केंद्रीय गृहमंत्री बूटा सिंह से मिलें। इससे भी उन्होंने इनकार कर दिया। गुरजीत सिंह ने मुझे और रियासती को जोरदार फटकार लगाई और गंभीर परिणाम भुगतने की चेतावनी दी। मैं उन उग्रवादी नेताओं के रंगबिरंगे गुट की प्रधानमंत्री से मुलाकात कराने के हक में न था। उनका आकलन नहीं किया गया था। उन्होंने बातचीत का तौरतरीका और शर्तें भी नहीं बताई थीं। सुशील मुनि ने मुझे एक तरफ ले जा कर कुछ नकद प्रोत्साहन देने की बात की। उन्होंने अनुरोध किया कि मैं युवकों को कम से कम बूटा सिंह से मिलने के लिए राजी कर

लूँ। अवतार सिंह ब्रह्मा ने आधे दिल से रखे मेरे प्रस्ताव को यह कह कर खारिज कर दिया कि उन लोगों का नीची जाति के सिख से मिलने का कोई इरादा नहीं है।

मुझे बताया गया कि प्रधानमंत्री युवकों से मिल कर शांति वार्ता आरंभ करना चाहते हैं। वह दिल्ली आए इन युवकों के साथ सीमित शांति समझौते के विरुद्ध न थे। मुझे इसमें संकोच था। ये युवक आतंकवादी आंदोलन के शीर्ष के प्रतिनिधि न थे। पुनर्गठित प्रथम पंथक कमेटी, खालिस्तान कमांडो फोर्स, बब्बर खालसा, भिंडरांवाले टाइगर फोर्स ऑफ खालिस्तान के शीर्ष नेता इस पहल में शामिल न थे। इसके अलावा दमदमी टकसाल के रवैए के बारे में भी निश्चित तौर पर कुछ कहा नहीं जा सकता था। ऊँचे धार्मिक पद पर प्रतिष्ठित जसबीर सिंह रोड़े और दूसरे उग्रवादी तिहाड या पटियाला की जेलों में बंद थे। टकसाल का एक शीर्ष हिमायती मोखम सिंह और अकाल तख्त का कार्यवाहक जत्थेदार गुरदेव सिंह कोंके भी सीखचों के पीछे थे। आंदोलन के जाने-माने सैद्धांतिकों से भी अभी संपर्क करना बाकी था। हिंसक आंदोलन भी अभी इस स्थिति में नहीं था कि शाति वार्ता चलाई जाए। आई.एस.आई. और उग्रवादी सिख प्रवासी उन पर संघर्ष को लंबा चलाने के लिए दबाव डाल रहे थे।

यह तय होने पर कि प्रधानमंत्री के सहायक सतीश शर्मा और आई.बी. के निदेशक उन से मिल सकते हैं, गतिरोध कुछ टूटता नजर आया। मेरे खयाल से इससे गृहमंत्री खुश नहीं हुए होंगे। मुझे इसमें कोई शक न था कि वह इन सिख युवकों को बदनाम करने और फंसाने के लिए अपने भूमिगत संपर्कों को हरकत में जरूर लाएंगे। आखिर उन्होंने उन से मिलने से हिकारत के साथ मना कर दिया था।

सुशील मुनि के सामने हुई बातचीत से भावी वार्ता की रूपरेखा स्पष्ट नहीं हो पाई। अतिंदरपाल सिंह ने कुछ शर्तें रखीं। ये शर्ते शिरोमणि अकाली दल के आनंदपुर साहब प्रस्ताव से अधिक भिन्न न थीं।

यह तय हुआ कि मैं और तरलोचन सिंह रियासती उन से किसी निश्चित दिन और स्थान पर मिलेंगे। गुरजीत सिंह ने आरंभिक सहायता के तौर पर 20 लाख रुपए की सहायता की मॉग भी रखी। तय हुआ कि लुधियाना में उनको यह रकम दे दी जाएगी।

मैं उन युवकों को मुक्तसर के पास उनके ठिकाने पर ले जाने वाला था। तभी सुशील मुनि ने मुझे अपने अंदर के कमरे में बुलाया। उन्होंने मुझसे अनुरोध किया कि मैं पद्म अलंकरण के लिए उनके नाम की जोरदार सिफारिश करूं। सफेद लिबास वाले इस आदमी के छिछोरेपन पर मैं दंग रह गया। मैंने जल्दबाजी में कुछ कहा और युवकों को दिल्ली और मुक्तसर के पुलिस और अर्द्धसैनिक बलों से भरे रास्ते से हो कर उनको उनके अड्डे पर पहुंचाने के लिए चल पडा।

हम आधी रात के करीब दिल्ली से रवाना हुए। दस घंटे लगातार गाडी चला कर हम पंजाब की सीमा में पहुँचे। लांबी गाँव के पास हमें खालिस्तानी कमांडो फोर्स के एक धड़े से संबद्ध कुछ हथियारबंद युवकों ने रोका। गुरजीत ने गाड़ी में कहीं छिपा कर रखी चार ए.के.47 राइफलें निकाल लीं। इसके बाद उसने उन कडक युवकों से बात की। इन युवकों ने काफिले की एक कार में ' हिंदुस्तानी कुत्तों ' की मौजूदगी के बारे में स्पष्टीकरण मॉगा था। रियासती ने मुझे धकेल कर गाड़ी के फर्श पर लिटा दिया। फिर अतिंदरपाल से कहा कि वह इस हथियारबंद गुट से बात करे। गुरजीत ने कहा कि हम लोग बी.बी.सी. के नुमाइंदे हैं। वह हमें कुछ चोटी के पंथक नेताओं के इंटरव्यू के लिए किसी गुप्त स्थान पर ले जा रहा

है। इस पर हमें जाने दिया गया। हम बाल-बाल बचे थे। अमृतसर, लुधियाना और अंबाला के रास्ते दिल्ली लौटने से पहले हम सारे पंजाब का चक्कर लगा चुके थे।

इससे पहले कि मैं राजीव गाँधी की शांति की एक और साहसपूर्ण पहल का जिक्र करूँ, मैं ऑपरेशन नीडल के छद्म नाम वाले शांति प्रयास के दुखद अंत की चर्चा करना चाहूँगा। मुझे इस बात का पूर्वाभास था कि राजीव गाँधी के गृहमंत्री पंजाब में अपना एजेंडा आगे बढाने में दिलचस्पी रखते थे। यह हमेशा उनके नेता के मार्ग के अनुरूप तो नहीं होता था। दिल्ली में उन से मुलाकात के प्रस्ताव को युवकों ने ठुकरा दिया था। इससे वह खुश तो न थे। दरअसल ब्राह्मण मूल के राष्ट्रवादी नेता तिरलोचन सिह रियासती के लिए उनके मन में कोई खास आदरमान न था।

मुझे और रियासती को गुरजीत के लिए 20 लाख रुपए ले कर लुधियाना जाना था। यह मुलाकात शहर की बाहरी सीमा पर तय की गई । इसकी हमें बाकायदा सूचना दे दी गई। हमें बताया गया कि इस मीटिंग मे पथक कमेटी के कुछ नेता और दमदमी टकसाल के कुछ प्रतिनिधि भी आ रहे हैं।

रियासती रकम लेने के लिए विमान से दिल्ली आए। हमने दो दिन इंतजार किया। मैं अपने उच्च अधिकारियों और रियासती के बीच भागता-दौडता रहा। अत मे मुझसे कहा गया कि सतीश शर्मा से मिलूं। वे मुस्करा कर बोले कि प्रधानमंत्री को ऐसे किसी सौदे की जानकारी नहीं है।

मुझे दाल में कुछ काला महसूस हुआ। मैंने रियासती के साथ लुधियाना जाने से इनकार कर दिया। तब तक मैं कुछ चोटी के आतकी नेताओ से वाकिफ हो चुका था। उनमे सिख देशभक्ति के बनिस्बत बदले की भावना और भौतिक लाभ की प्यास कहीं ज्यादा थी। रियासती के पास लुधियाना की बैठक मे शामिल होने के सिवा और कोई चारा न था। उनकी स्थिति सतलुज और व्यास के रक्तरंजित पानी मे एक छोटी सी मछली के समान थी। रियासती खोखले वादों के साथ दिल्ली से रवाना हुए। गुरजीत ने उनकी हत्या कर दी। उनको उनके ड्राइवर मंगल सिह के साथ उन्हीं की कार मे जिंदा जला दिया गया। मुझे बताया गया कि गुरजीत सिर्फ पैसो को ले कर ही पागल नही हुआ था। वह इस बात से भी पगला गया था कि दिल्ली के किसी ऊचे स्रोत ने उनकी दिल्ली यात्रा की पोल जानबूझ कर खोली थी। मैंने और रियासती के बेटे भीम ने थोडी पूछताछ की। इससे चौंकाने वाले तथ्य सामने आए। प्रधानमंत्री के आमंत्रण पर आतकी नेताओं के दिल्ली आने की विस्तृत जानकारी पथक कमेटी के कुछ सदस्यों को रंगरेटा दल के एक सदस्य ने दी थी। यह केंद्रीय गृहमंत्री का शुरू किया हुआ एक और भूमिगत गिरोह था। यह धोखेबाजी की इंतहा थी।

प्रधानमंत्री से स्थिति की जटिलता की बारीकी से चर्चा करना असंभव था। क्योंकि मेरी उन तक पहुँच न थी। मैंने उच्च अधिकारियों से अपनी चिंता प्रकट की तो मुझे अपने काम से मतलब रखने की सलाह दी गई। ऑपरेशन नीडल के मामले ने मुझे यकीन दिला दिया कि राजीव गाँधी भूखी शार्क मछलियों से घिरे हुए थे। उनके पास उनके साथ तैरने के सिवा और कोई चारा न था, जब तक कि उनके धूर्त सहयोगी उनको निगल न जाएँ। वह एक अच्छी नीयत वाले इन्सान थे पर वह भारतीय राजनीति से इतने परिचित न थे।

* * * *

लगभग उसी दौरान मुझे पता चला कि दिल्ली की तिहाड जेल में बंदी पंजाब का एक महत्वपूर्ण आतंकवादी मुझसे मिलना चाहता है। तिहाड़ मेरे लिए कोई नई जगह न थी। इस भीड़ भरी जेल में मैं नामी हत्यारे और बहुरूपिए चार्ल्स शोभराज से पूछताछ कर चुका था। अकाली दल आंदोलन के शीर्ष पर मुझे इसी जेल में प्रकाश सिंह बादल और जी.एस. तोहरा से भी बातचीत का अवसर मिला था।

मैं अपने तईं कुछ पडताल करने के इरादे से जेल पहुँचा। मेरे साथ वकील ए.के. वाली और मुनि सुशील कुमार के सचिव तेज प्रकाश कौशिक थे। हमारे बेरोकटोक घुसने में डिप्टी सुपिरिंटेंडेंट जोगेंद्र शर्मा ने सहायता की जिन्हें इस आशय के आदेश 'ऊपर' से मिले थे।

चाय की चुस्कियों के साथ हमने पंजाब की तत्कालीन स्थिति पर बातचीत शुरू की। औपचारिक अर्थों में अशिक्षित जसबीर मुझे सरल स्वाभाव का लगा। उसका विश्वास अपने चाचा के अलगाववादी विचारों पर कुछ घटने लगा था। जेल से भी वह तंग आ चुका था। वह वापस अपने घर और अकाल तख्त की गद्दी पर लौटना चाहता था।

थोडी प्रगति होने पर मेरे नियंत्रण अधिकारी कल्याण रूद्र भी मेरे साथ जाने लगे। वार्ता के तीन दौर हो जाने के बाद मैंने अपनी ऑपरेशन प्रोजेक्ट रिपोर्ट (ओ.पी.आर.) सौंपी। इसमें गुरबचन सिह मनोचहल की अध्यक्षता वाली पंथक कमेटी और बाबा ठाकुर सिंह की अध्यक्षता वाली दमदमी टकसाल से वार्ता करने की रूपरेखा थी। योजना को मंजूरी मिल गई। प्रधानमंत्री ने आई.बी. और लक्षित व्यक्तियों के संपर्क के लिए सतीश शर्मा को पॉइंटमैन मनोनीत किया। मुझे कल्याण रुद्र का कुशल निर्देशन और ताज कौशिक व अजय बाली से महत्वपूर्ण सहायता मिली। बूटा सिंह और सतीश शर्मा को इस मामले से अलग रखने के मेरे अनुरोध को निदेशक आई.बी. तथा प्रधानमंत्री कार्यालय ने स्वीकार कर लिया। लेकिन पी. चिदंबरम को पॉइंटमैन मनोनीत करने का मेरा दूसरा अनुरोध नहीं माना गया।

उसके बाद मैने जसबीर के मनौवैज्ञानिक आधार को ध्वस्त करना आरंभ किया। जसबीर के साथ निजी तौर पर बातचीत करके उसकी अलगाववाद की ज्वाला को शांत करने के लिए मैंने दो रातें साथ की कोठरी में गुजारीं। हमने एक कार्यसूची का खाका तैयार किया। इसके पहले चरण में प्रधानमंत्री कार्यालय ने उच्च धार्मिक पदों पर नियुक्त किए गए तीन आतंकवादियों को पटियाला जेल से तिहाड स्थानांतरित करने की अनुमति दे दी। इससे दमदमी टकसाल के नेताओं को आपस में बात करने की सुविधा मिल गई ताकि वे प्रधानमंत्री से शाति वार्ता के लिए एकमत हो सके।

इतना हो जाने के बाद हमारे सामने एक बडी समस्या थी बाबा ठाकुर सिंह तथा गुरबचन सिंह मनोचहल का आशीर्वाद प्राप्त करना। टी.पी. कौशिक और अजय बाली को जसबीर का एक पत्र ठाकुर सिंह के पास ले जाने का काम सौंपा गया। मनोचहल से मिलने की जिम्मेदारी मुझे सौंपी गई। विरोधी धड़ों के बडे विचार-विमर्श के बाद हमारे दूत ठाकुर सिंह से अनुमति पत्र पाने में सफल रहे। मोहकम सिंह के नेतृत्व वाले एक अत्यंत कटु अलगाववादी धड़े ने भारत सरकार से वार्ता का विरोध किया। उसने डा. सोहन सिंह, वासन सिंह जफरवाल, जनरल ' लाभ सिंह और कुछ दूसरे हथियारबंद उग्रवादी नेताओं को यह सब बता दिया। फिर भी उम्मीद यही थी कि ठाकुर सिंह और भिंडरांवाले के पिता बाबा जोगिंदर सिंह की इच्छा मानी जाएगी।

मनोचहल से सपर्क करना आसमानी फरिश्ते से मिलने जैसा नामुमकिन था। वह हथियारबद आतकवादियो के एक धडे के प्रमुख थे और अमृतसर /तरनतारन व पट्टी के बीच आते-जाते थे। मेरे एक पत्रकार मित्र बी बी सी के फुटकर सवाददाता थे। साथ ही वह स्वर्णमंदिर परिसर मे फोटो स्टूडियो भी चलाते थे। इस काम मे वह सहायक सिद्ध हुए। उन्होंने पथक कमेटी के इसनेता और भिडरावाले टाइगर फोर्स ऑफ खालिस्तान (बी टी एफ के) के प्रमुख से मेरे प्रत्यक्ष सपर्क की व्यवस्था की।

मुझे आखो पर पट्टी बाध कर एक कॉटेज तक ले जाया गया। यह जगह सिरहाली कला और पट्टी के बीच थी। उस समय रात के करीब दो बजे थे। इस खतरनाक आतकवादी से हमारी मुलाकात एक भूमिगत बकर मे हुई। वहाँ आई एस आई की दी हुई क्लाशनिकोव राइफले ग्रेनेड चलाने वाली राइफले और मशीनगने प्रचुर मात्रा मे मौजूद थी। हमने जसबीर की लिखी चिट्ठी पर बातचीत की। मनोचहल लिखित वचन देने के मूड मे न थे। उनके विचार स्पष्ट थे। उग्रवादी विभाजित थे। उनके प्रमुख अपने-अपने क्षेत्रो के हथियारबद गुटो पर नियत्रण रखते थे। कोई केद्रीय कमान न थी। हमने किसी विश्वस्त सूत्र के मुह से पहली बार सुना कि पाकिस्तान पथक कमेटी के काम से खुश नही था। वह चाहता था कि आदोलन की कमान कोई उन से बेहतर सिद्धातवादी सभाले। मैंने उनको इस बात के लिए राजी किया कि जसबीर के लिए एक गुप्त नोट लिख दे कि वह वार्ता करे इस शर्त के साथ कि बाद मे पथक कमेटी, दमदमी टकसाल तथा शीर्ष आतकी नेताओ का उसे अनुमोदन प्राप्त करना होगा।

हम करीब तीन घटे बाद विदा हुए। अपने पत्रकार मित्र द्वारा वापस अमृतसर लाए जाने तक मेरी ऑखो पर फिर पट्टी बाध दी गई थी। मै इससे पहले भी कई बार शीर्ष आतकियो के अड्डो पर जा चुका था। लेकिन तब 70 के दशक मे मैतेई और नगा विद्रोही कही अधिक शौर्यवान थे। वे अपने खुद के बनाए युद्ध नियमो का पालन करते थे। लेकिन पजाब के विद्रोही गिरोहो का कोई वीरतापूर्ण युद्ध नियम न था जिस का वे पालन करते। वे साप्रदायिक-धार्मिक घृणा व बदले की भावना से उन्मत्त थे जिस का अत्यत विषैला मारक प्रभाव था।

अकाल तख्त के जत्थेदार व उग्रवादी उच्च धार्मिक नेताओ जसबीर सिह रोडे कश्मीरा सिह सविदर सिह और जसवत सिह को रिहा करने की शर्ते तय करने का काम मुझ पर छोड़ा गया। लबी सौदेबाजी के बाद प्रधानमत्री की स्वीकृति के लिए निम्न शर्तें तय की गईं

- जोधपुर व दूसरी जेलो से बूढ़े, बीमार व किशोर सिख बदियो को रिहा किया जाए।
- जसबीर को अकाल तख्त का जत्थेदार नियुक्त करने का प्रबध किया जाए।
- स्वर्णमदिर की परिक्रमा तथा अन्य गुप्त अड्डों से हत्यारे गिरोहो को खदेड़ने के लिए उसे पर्याप्त हथियार दिए जाए।
- अकाल तख्त के कार्यवाहक जत्थेदार गुरदेव सिह कोके को रिहा किया जाए।
- शीर्ष उग्रवादी नेताओ से सलाह-मशविरे के लिए जसबीर को स्वतत्र रूप से घूमने-फिरने की सुविधा दी जाए।
- पथक कमेटी व सरकार द्वारा वार्ता के लिए कमेटियों का गठन किया जाए।
- आत्मसमर्पण करने वाले उग्रवादियो के लिए अस्थायी कैप लगाए जाएँ और उपयोगी पेशो मे उनके पुनर्वास की व्यवस्था की जाए।

- बैसाखी (13 अप्रैल 1988) के दिन भटिंडा में सरबत खालसा का आयोजन किया जाए। इसमें भारत सरकार के साथ अंतिम समझौते का ऐलान करते हुए खालिस्तान की घोषणा को विधिवत खारिज किया जाए।
- उग्रवादी गुटों का समयबद्ध आत्मसमर्पण, और
- पंजाब के लिए विशेष पैकेज की घोषणा तथा चंडीगढ को तत्काल पंजाब को सौंपना।

यह 10 सूत्री फार्मूला जनवरी 1988 को प्रधानमंत्री को पेश किया गया। मुझसे कहा गया कि मैं पंथक कमेटी के कुछ सदस्यों और दमदमी टकसाल के नेताओं से मिल कर फार्मूले पर चर्चा करूँ।

दमदमी टकसाल के अधिकाश नेताओं को फार्मूला मान्य था। मोहकम सिंह के नेतृत्व वाले एक अल्पसख्यक धडे ने इसे अस्वीकार किया। पंथक कमेटी के कम से कम तीन नेताओं, अतिंदरपाल सिंह, अवतार सिंह ब्रह्मा और गुरबचन सिंह मनोचहल जैसे उग्रवादी नेताओं ने भी इसे स्वीकृति दे दी। मनोचहल ने एक युद्धविराम समझौते पर भी जोर दिया ताकि सब नेता आपस में सलाह करने के लिए आजादी से आ जा सके। जरनैल सिंह भिंडरांवाले के पिता बाबा जोगिंदर सिंह ने भी फार्मूले पर अपनी सहमति जताई। लेकिन वासन सिंह जफरवाल और ' जनरल ' लाभ सिंह ने इसका विरोध किया। गुरजीत सिंह के विरोध करने पर जरूर आश्चर्य हुआ क्योंकि उसका विवाह भिंडरावाले परिवार में हुआ था। दरअसल गुरजीत का अडना अकारण नहीं था। वह आई.एस.आई. के संचालकों के सीधे सपर्क में था।

फिर भी जैसी उम्मीद थी बात उस तरह बनी नहीं। राजीव गॉधी ने फार्मूले पर अपने मंत्रिमडलीय व प्रशासनिक सहायकों से अवश्य चर्चा की होगी। सतीश शर्मा को पॉइंटमैन बनाना उनकी बहुत बडी भूल थी। पंजाब के बारे में उनकी जानकारी का हाल कुछ वैसा ही था जैसी टूटी-फूटी पंजाबी वह बोलते थे। मौके को हाथ में ले कर अपने दोस्त की मदद करने में उनकी जरा भी दिलचस्पी न थी। वह एक अराजनीतिक राजनीतिज्ञ थे। जब तक मौका है, ज्यादा से ज्यादा बटोरने मे उनकी दिलचस्पी थी।

बूटा सिंह को उनकी राजनीतिक चालबाजियों के लिए दोष नहीं दिया जा सकता। इसी के दम पर तो वह राजनीति के खेल में जमे हुए थे। उनको और सुशील मुनि को इस खेल से परे रखने की हमारी कोशिशें बेकार गई। इंटेलिजेंस ब्यूरो अपने बॉस गृहमंत्री को जानकारी देते रहने को बाध्य था। बूटा सिह को पता हो तो सुशील मुनि के सचिव ने कब तक अधेरे में रहना था।

मुझे गृहमंत्री के सरकारी आवास पर बुलाया गया। वहॉ उनकी पीठ पीछे एक खतरनाक कार्रवाई चलाने के लिए मेरी खबर ली गई। मेरा बचाव बिलकुल सीधा था। मुझे आदेश मेरे बॉस से मिलते थे। सरकार और इंटेलिजेंस ब्यूरो के बीच की सुनहरी कडी वह थे। वह मेरे जवाब से खुश नहीं हुए। उन्होंने आदेश दिया कि मैं सुशील मुनि को नियमित जानकारी देता रहूँ। मैंने इस का कडा विरोध किया। आखिर मैं पहले गलत तरीके से चलाई गई कार्रवाई का मूक दर्शक रह चुका था जिस में तरलोचन सिंह रियासती को अपनी जान गंवानी पड़ी थी। मैं अपनी गर्दन कटवाने को तैयार न था, खासकर उस वेदी पर जहॉ सेक्स, लालच और काले षड़यंत्रों को राष्ट्रीय हितों पर तरजीह दी जाती थी।

यह खेल बिगाड़ने के लिए सतीश शर्मा, बूटा सिंह और सुशील मुनि ही मानो काफी न थे। पंजाब के राज्यपाल सिद्धार्थ शंकर रे भी अपने कलकत्ता के दिनों के नक्सलियों का खात्मा

करने वाले प्रयोग दोहराने को बेचैन नजर आ रहे थे। राज्य पुलिस और प्रशासन का एक धडा भी मानव विपदा के मोल पर कुछ अतिरिक्त कमाई करने का मौका खोना नहीं चाहता था। इन में से कुछ ने दिल्ली के राजनीतिज्ञों से सांठ-गांठ कर के भिंडरांवाले के भतीजे के साथ वार्ता का जम कर विरोध किया। सरकार की परेशानियों को और बढ़ाने के लिए इंटेलिजेंस ब्यूरो के कुछ अधिकारियों ने भी इस संचालन का विरोध किया। वजह यह थी कि इसकी डोर उनकी मंडली के हाथों में न हो कर उस से बाहर के एक दुस्साहसी के हाथों में थी। ये लोग गृहमंत्री बूटा सिंह, राज्यपाल रे और पुलिस प्रमुख के.पी.एस. गिल की कार्रवाई योजना के समर्थक थे।

आई.बी. ही अंदर से विभाजित थी।

दरअसल भिन्न दिशाओं में जाने वाले तत्वों पर राजीव गॉधी का नियत्रण बहुत कम था। शांति की अपनी इस नई पहल के लिए उन्होंने किसी केंद्रीकृत रूपरेखा के तहत कार्रवाई नहीं की। उनके भरोसे के राजनीतिक या प्रशासनिक विचारक किसी एक कमान के अधीन काम नहीं कर रहे थे। इसलिए शांति के प्रयास कई बार अंदरूनी और बाहरी शक्तियो के चलते खटाई में पड जाते थे।

पंजाब की पुलिस और प्रशासन की बात करें तो वहॉ की सर्वोच्च कमान और बीच की अनेक कडियों का भी दृढ विश्वास था कि आतकवाद की कार्रवाइयों को रोकने का एकमात्र उपाय दमन ही होता है। लिहाजा वे निरीह युवकों की हत्या मे लग गए। वे गॉव वालो को अनाधिकृत तौर पर बंदी बना लेते और रिहाई के लिए उन से पैसा ऐंठते। औरतों को भी बख्शा न जाता।

प्रतिविद्रोह की कार्रवाई में बल प्रयोग अनिवार्य होता है। लेकिन उसके साथ ही विभिन्न स्तरों पर प्रशासन द्वारा घावों पर मरहम लगाने व राजनीतिक दूरदर्शिता की भी आवश्यकता होती है। पुलिस वाले तो अपनी दिहाडी बनाने और उसके अलावा और भी बहुत कुछ बनाने में जुटे थे। लेकिन राजनीतिज्ञों ने भी राजनेताओं की तरह व्यवहार नहीं किया। वे भी वक्त काटने में विश्वास रखते थे। वे किसी दीर्घकालीन योजना के तहत काम नहीं कर रहे थे जिस से घाव हमेशा के लिए भर सकें।

* * * *

सिख उग्रवादी आंदोलन में हर कोई भिंडरांवाले के परिवार पर मुग्ध न था। शाति की पहल में दमदमी टकसाल की चौधराहट एस.जी.पी.सी. और ए.एस.डी. को गवारा न थी। डा. सोहन सिंह के नेतृत्व वाले सिख बुद्धिजीवियों का एक कट्टर गुट और प्रवासी सिखों के अधिकांश नेता शांति समझौते के विरुद्ध थे।

असल में आधारभूत विरोध पाकिस्तान की इंटर सर्विस इंटेलिजेंस की तरफ से था। पाकिस्तान ने वासन सिंह जफरवाल (जिनको 2001 में प्रकाश सिंह बादल ने पुनर्स्थापित किया), डा. सोहन सिंह और के.सी.एफ. व बब्बर खालसा के कुछ नेताओं को संदेश भेजा कि वह सिखों को स्वतंत्रता संग्राम जारी रखने के लिए शस्त्रास्त्रों व आधुनिक संचार साधनों की मुफ्त सप्लाई देने को तैयार है। डा. सोहन सिंह के एक दूत (अब पुनर्स्थापित) से पाकिस्तान ने काठमांडू में संपर्क किया। उसे दिल्ली की शांति की पहल बिगाड़ने के लिए काफी रकम दी गई। पाकिस्तान ने प्रथम पंथक कमेटी का अतिलंघन करके दूसरी अधिक उग्र व कठोर द्वितीय पंथक कमेटी बनाने के विचार को भी उकसाया। डा. सोहन सिंह और दूसरे कट्टरपंथी पाकिस्तान के इस जाल में फंस गए।

जसबीर सिंह व अन्य उच्च धार्मिक नेताओं ने अनुरोध किया कि पंजाब के लिए रवाना होने से पहले उनके समर्थकों को उपयुक्त तरीके से हथियारबंद होना चाहिए। इस पर सरकार ने उन्हें 6 लाइसेंसी .9 मि.मी. की पिस्तौलें, एक .45 मि.मी. माउजर रिवाल्वर, करीब 15, .315 राइफलें एवं 6 दोनाली बंदूके दीं। तय हुआ कि स्थिति का जायजा लेने के बाद अतिरिक्त .9 मि.मी. पिस्तौलें, स्टेनगनें और जरूरी हो तो एक.के. 47 राइफलें भी उनको दी जाएंगी। उनको पर्याप्त गोली रोधक जाकेटें भी दी गईं। यह सब उनके निजी सामान के साथ पेटियों में रखा गया।

1988 आते-आते पंजाब के उग्रवादी आंदोलन का घोर अपराधीकरण हो गया। भिंडरांवाले की विषाक्तता की जगह आसानी से मिलने वाले पैसे के लालच, डकैती, सेक्स और जमीनें कब्जाने ने ले लिया। अधिकांश उग्रवादी नेताओं ने पंजाब में और उसके बाहर धनसंपत्ति जमा कर ली। कानून-व्यवस्था तंत्र के एक हिस्से को भी पैसे की चाट लग गई। हिंसा का सिलसिला खत्म करने में इन लोगों की कोई दिलचस्पी न थी।

मैं बहुत सी विरोधी धाराओं के विरुद्ध तैर रहा था। राज्य सरकार स्वर्णमंदिर परिसर मे अड्डा जमाए आतंकवादियों के विरुद्ध एक निर्णायक अभियान शुरू करने की तैयारी कर रही थी। पंजाब के देहातों की स्थिति को पुलिस की कठोर कार्रवाई ही सुधार सकती थी। के.पी. एस. गिल ने इस संघर्ष के लिए कमर कस ली थी।

राजीव गॉधी के शांति कपोत को बारूद के विस्फोट और चलती गोलियों की फिजा से हो कर उडान भरनी थी। परस्पर विरोधी शक्तियॉ आरंभ से ही इस कार्रवाई के पीछे थीं।

इस उदाहरण से स्पष्ट है कि देश के शीर्ष संवैधानिक संस्थान का प्रशासनिक संगठन पर नियंत्रण न होने पर देश को किस तरह हानि उठानी पडती है। इन आंतरिक व बाह्य विपरीत धाराओं ने प्रधानमंत्री तक को प्रभावहीन कर दिया था।

* * * *

जसबीर सिंह रोडे तथा तीन उच्च धार्मिक नेताओं को रिहा करने की हरी झंडी फरवरी,1988 के अंत मे दिखाई गई। उन्हें तीन मार्च को रिहा कर दिया गया। इसके साथ ही पी. चिदंबरम ने संसद में एक वक्तव्य दिया। इसमें उन्होंने कहा कि यह रिहाई शांति के लिए एक बडी पहल का हिस्सा है। इससे हमने आश्चर्य का तत्व खो दिया। विरोधी शक्तियों ने इससे अपनी युद्ध की तैयारियों को और सुदृढ कर लिया। पाकिस्तान शांति वार्ता को विफल करने के लिए पहले ही सक्रिय हो चुका था। उसने अपने जलकपाट खोल कर पंजाब में आधुनिक हथियारों और गोलाबारूद की बाढ़ ला दी।

मीडिया में जोरदार शोरशराबे के साथ जसबीर सिंह रोडे और उसके साथियों को एक विशेष डी.सी. 3 विमान से ले जाया गया। उनके साथ मैं और कल्याण रुद्र थे। अमृतसर हवाई अड्डे पर उनकी आगवानी ए.आई.एस.एस.एफ. के सदस्यों और उग्रवादियों की भारी भीड ने की। उनको सीधे कार द्वारा स्वर्णमंदिर ले जाया गया। वहाँ, उन्हें परिक्रमा के ऊपर के कमरों में ठहराया गया। चलने से पहले उनको अप्रतिबंधित बोर के पर्याप्त हथियार और गोलीबारूद दिए गए थे।

जसबीर के आगमन का स्वागत उग्रवादियों के विभिन्न गुटों ने स्वचालित हथियारों से हवाई फायर कर के किया। यह बताना मुश्किल था कि इन में से कौन सा गुट खुशी मना रहा था, कौन सा नाराजगी प्रकट कर रहा था। के.सी.एफ. और के.एल.एफ. के दो हत्यारे

प्रतिनिधि जागीर सिह और निर्वैर सि ह जसबीर के आने के विरुद्ध थे। उनका विरोध जसबीर के आवासीय कमरो पर हमले ने स्पष्ट कर दिया। इसे बब्बर खालसा के एक गुट दमदमी टकसाल तथा ए आई एस एस एफ के हथियारबदो की सयुक्त कार्रवाई से विफल कर दिया गया। मदिर परिसर मे होने वाली इन विचित्र कार्रवाइयो को ब्रह्मबूटा अखाडा व दूसरी बडी इमारतो पर तैनात पुलिस बलो ने देखा।

1988 की शुरुआत मे ही जागीर सिह ने 1983-84 के भिडरावाले जैसा व्यवहार शुरू कर दिया था। अपराधी से उग्रवादी बने निर्वैर सिह की मदद से वह बाकायदा दरबार लगाता था। वह न्याय करता था और विरोधियो को मौत की सजा देने का हुक्म जारी करता था। अधिकाश मृत शरीर या तो नाले मे फेंक दिए जाते थे या फिर नमक और चूना लगा कर तहखाने म डाल दिए जाते थे। जसबीर के स्वर्णमदिर मे आते ही जागीर सिह ने मलकेत सिह अजनाला गुरजत सिह और निशान सिह आदि की सहायता से एक विरोधी गुट बना लिया। उन्हे पाकिस्तान से हथियारो की एक बडी खेप भी मिल गई।

9 मार्च को एक भव्य समारोह मे जत्थेदार के रूप मे जसबीर सिह रोडे की ताजपाशी हुई। इसमे पथक कमेटी, दमदमी टकसाल ए आई एस एस एफ के सी एफ के एल एफ और बी टी एफ के के सदस्यो ने भाग लिया। प्रमुख अकाली नेता पी एस बादल भी इस मौके पर मौजूद थे। बब्बर खालसा ने इससे स्पष्ट दूरी बनाए रखी। वह टकसाली किस्म के सिखो की इजारेदारी पसद नही करते थे। एस जी पी सी और एस ए डी के कुछ सिख नेता नए जत्थेदार की ताजपोशी मे खुलेआम हाजिर थे। वैसे तो यह विजय दिवस था पर पराजय की शुरुआत का दिन भी यही था।

के सी एफ से सबद्ध एक खाडकू (उग्रवादी) मित्र ने मुझे जलियावाला बाग के एक सुनसान कोने मे बुलाया। वह मुझे एक फ़ैक्टरी मालिक सतनाम सिह कादा के घर तक ले गया। उसने मुझे बताया कि पाकिस्तान से दो सदेशवाहक अमृतसर आए है। वे पथक कमेटी और कुछ चुनिदा वरिष्ठ सिद्धातवादियो के लिए सदेश लाए है। उसने यह भी बताया कि डा सोहन सिह का एक दूत काठमाडू के लिए रवाना हो गया है। वहाँ वह आई एस आई के सचालको से नकद सहायता और निर्देश प्राप्त करने जा रहा है। उस की चेतावनी स्पष्ट थी। दिल्ली का जसबीर प्रयोग असफल होने वाला था। शाति समझौते के विरुद्ध बहुत सी शक्तियाँ काम कर रही थी। बराड परिवार का यह वशज निश्चय ही उद्धारक सिद्ध होने वाला न था।

जब हम जसबीर सिह रोडे और पथक कमेटी के दूसरे सदस्यो के बीच पक्का सपर्क बनाने के अगले काम मे लगे हुए थे तब के पी एस गिल की लगातार चौकसी की हरकतो और आई बी के सहयोगियो की साए की तरह पीछा करने की समस्या सामने आई। यह बडी बाधा थी। मुझे उनकी आखो मे धूल झोंकनी थी। लेकिन इसके साथ ही मुझे पुलिस की कार्रवाई के लिए सूचनाएँ भी देनी होती थी। यह एक निर्मम खेल था। मुझे निश्चित तौर पर पता था कि गिल मेरे शाति प्रयास वाले काम को जानते थे।

गोयिदवाल के पास के एक इलाके को सुरक्षित घोषित करने के लिए राज्यपाल और गृहमत्री दोनो ने इनकार कर दिया। सतीश शर्मा से सपर्क करना अचानक असभव हो गया। प्रधानमत्री मेरी पहुँच से परे थे।

आई बी सचालन सेल के एक वर्ग ने भी विरोधियों का-सा रवैया अख्तियार कर लिया। उनकी साजिशों का अदाजा लगाना मुश्किल न था। ऐसा नही कि मैंने आई बी निदेशक का

ध्यान इस ओर आकर्षित करने की चेष्टा न की हो। लेकिन श्री नारायणन राजनीतिज्ञों और प्रशासकों के लगाए अडंगे को हटाने की स्थिति में न थे।

उग्रवादी गुट स्वर्णमंदिर परिसर में जमे हुए थे। उन्होंने सभी संभव स्थानों पर मोर्चे व खंदकें बनानी शुरू कर दीं। परिक्रमा के तैनात कुछ एजेंटों से मिली रिपोर्टों के मुताबिक वहॉ हथियारों और गोलाबारूद की ताजा खेप आई थी।

हवाई चित्रों से स्थिति का जायजा लेने के बाद के.पी.एस. गिल ने भी अपनी मशीनगनें उपयुक्त ठिकानों पर लगवा दीं। उनकी रणनीतिक तैयारी ऑपरेशन ब्लू स्टार के हमले से बेहतर थी। प्रधानमंत्री भी स्वर्णमंदिर व पास के भवनों से आतंकवादियों का सफाया करने के ऑपरेशन ब्लैक थंडर की रूपरेखा में दिलचस्पी ले रहे थे।

अब यह आईने की तरह साफ था कि शांति प्रयासों का सत्यानाश हो चुका है। राजीव के सहयोगी और प्रशासनिक अमला शांति के पक्ष में नहीं थे, क्योंकि इससे उनकी जेबों में आने वाली काली कमाई बंद हो जाती।

लेकिन शांति प्रयासों को छोड देने के मेरे अनुरोध को भी स्वीकार नहीं किया गया। मुझे दो महत्वपूर्ण काम दिए गए : पंथक कमेटी के नेताओं और जसबीर की मुलाकातों की व्यवस्था करना और मंदिर परिसर में जमे कट्टर उग्रवादियों के विरुद्ध सशस्त्र प्रतिरोध का बंदोबस्त करना। क्या यह पुलिस की भावी कार्रवाई के प्रतिकूल न था ? बात तो ऐसी ही थी। लेकिन सरकार ने आत्मपराजय वाली प्रतिकूलता की राह पर चलने का फैसला कर लिया था।

पंथक कमेटी के नेताओं से मिलने के हमारे प्रयास अशतः सफल रहे। आतंकवादी और घात लगाने वाले पुलिस दल ने हमें कई बार गंभीर चुनौती दी। एक बार तो निचले माझा इलाके में बरवाला और घरयाला के बीच करनाल रोड पर हमारी सुजुकी वैन पर वरयाम सिंह भूरेनागल के नेतृत्व वाले गिरोह ने घात लगाई। जसबीर हिम्मत कर के वैन से बाहर निकला और उन से बात की। तब कहीं गोलीबारी थमी। हमें एक बंकर में ले जाया गया। वहॉ हमारी मुलाकात कंवरजीत सिह, गुरबचन सिंह मनोचहल और दलविंदर सिंह से कराई गई। ये तीनो पंथक कमेटी के सदस्य थे। ये कुछ शर्तों के साथ शांति वार्ता करने को राजी थे। उनकी शर्तों में शामिल था : तुरंत युद्धविराम, मंदिर परिसर के उग्रवादियों को निकलने का सुरक्षित मार्ग देना और हथियारबंद दस्तों के नेताओं से संपर्क के लिए सर्वसम्मति से एक टीम का गठन करना। मनोचहल ने स्पष्ट संकेत दिए कि वह सरकार से बातचीत के लिए पंथक शिष्टमडल का नेतृत्व करने को तैयार है।

मुझसे कहा गया कि सरकार के सोच-विचार कर फैसला लेने तक रुका रहूँ। खास तौर पर प्रधानमंत्री और गृहमंत्री के फैसले तक। मैं बेकार ही इंतजार कर रहा था। हथियारबंद उग्रवादी गिरोहों के कुछ सूत्रों ने मुझे बताया कि दिल्ली के एक शीर्ष नेता ने के.सी.एफ., के.एल.एफ. और ए.आई.एस.एस.एफ. के कुछ चुनिंदा दस्तों को शांति प्रयासों को अवरुद्ध करने के लिए कहा है। पजांब सूत्रों की शक की सुई बूटा सिह और राज्यपाल रे पर जाती थी।

मंदिर परिसर में जमे अडियल आतंकियों का मुकाबला करने के लिए जसबीर सिंह रोडे को हथियार भेजने का मेरा दूसरा काम भी दिल्ली के अनिर्णय वाले रवैए के कारण विलंबित हुआ। इसके लिए हरी झंडी मार्च के अंत में जा कर दिखाई गई। मैं हथियार ले कर एक विशेष उडान से अमृतसर गया। ये फल की टोकरियों में छिपा कर रखे गए थे। इन्हें मैंने और मेरे संचालन सहायकों ने जसबीर के स्वर्ण मंदिर ठिकाने तक पहुँचाया। हथियार 15 निष्ठावान

लोगों के शहीदी जत्थे को सौपे जाने थे। इन का इस्तेमाल सुरजीत सिह पेटा, मलकीत सिह, जागीर सिह और निर्वैर सिह आदि के नेतृत्व वाले गिरोहो के विरुद्ध कार्रवाई के लिए किया जाना था।

इससे पहले जसबीर से कहा गया कि वह मदिर परिसर से हथियारबद उग्रवादियो को निकालने के लिए एक कमेटी बनाए। इस कमेटी मे मलकीत सिह अजनाला (के सी एफ) स्वर्ण सिह खालसा (ए आई एस एस एफ) विशाखा सिह (बब्बर खालसा) और फौजा सिह (के एल एफ) शामिल थे। जागीर सिह और निर्वैर सिह ने इसका जबरदस्त विरोध किया। इस मौके पर मोहकम सिह मुझे परिक्रमा के ऊपर वाले खड मे ले गया। वहॉ उसने मुझे गभीर परिणाम भुगतने की धमकी ठडे लोहे के स्पर्श के साथ दी। गुरदेव सिह कोके ने मुझे उस से बचाया।

हथियारबद उग्रवादियो के विरुद्ध सीमित बल-प्रयोग की योजना को लागू किया गया। इसमे बब्बर खालसा के एक धडे से अप्रयाशित सहायता मिली। जसबीर के समर्थको और मोर्चा जमाए उग्रवादियो के बीच तीन बार गोलीबारी हुई। इसमे के सी एफ के तीन कट्टर खाडकुओ का खात्मा किया गया। हम एक ही हल्ले मे जीतने की उम्मीद नही रखते थे। लेकिन यह उम्मीद जरूर रखते थे कि भटिडा के निकट तलबडी साबो के दमदमा साहब मे बैसाखी के त्योहार से पहले पवित्र स्थल की सफाई हो जाएगी।

कल्याण रुद्र और मेरी जसबीर व दूसरे उच्च धार्मिक नेताओ से आनदपुर के केशगढ साहब गुरुद्वारा मे सविदर सिह के आवास पर मुलाकात हुई। इस बार हम उनके परिवार के लिए दो क्विटल गेहूँ ले कर आए थे। उस मे छ ए के 47 राइफले छिपी हुई थी। ये हथियार 'जनरल ' लाभ सिह के के जी एफ गिरोह के खिलाफ इस्तेमाल के लिए थे।

हमारी मुलाकात का मकसद अकाल तख्त के जत्थेदार के लिए एक भाषण तैयार करना था। इस समझौतापरक भाषण का उद्देश्य शाति वार्ता के लिए पृष्ठभूमि तैयार करना था। भाषण का मसौदा दिल्ली के कुछ राजनीतिक नेताओ ने भी देखा। उन्होने इस बात पर जोर दिया कि खालिस्तान की मॉग की खुल कर निदा की जाए और सशस्त्र प्रतिरोध वापस लेने की बात भी की जाए। उग्रवादी नेताओ को यह मजूर न था। वे उग्रवाद के उस शिखर से धीरे-धीरे नीचे उतरने के पक्ष मे थे जो पाकिस्तान और विदेश मे बसे उग्रवादी नेताओ के नियत्रण मे था।

कट्टर उग्रवादी नेताओ की अमृतसर मे सरबत खालसा आयोजित करने की योजना को जसबीर ने और हम लोगो ने विफल कर दिया। उसे बैसाखी पर्व पर भटिडा के तलवडी साबो गुरुद्वारे में अखिल विश्व सिख अधिवेशन करने को कहा गया।

हमने पजाब प्रशासन से अनुरोध किया कि वह एक सप्ताह तक तलवडी साबो व उसके आस-पास पुलिस कार्रवाई मे ढील दे। पर उसने इसमे सहयोग नही दिया। आई बी की ही समानातर रिपोर्टिंग के कारण यह कडा रुख अपनाया गया। इस दोहरे प्रबध के कारण कुछ शीर्ष उग्रवादी नेताओ के आने में बाधा पड़ी। उन्होने जसबीर सिह रोडे से समर्थन वापस लेने की धमकी भी दी। मुझे गुरजीत सिह का एक नोट मिला। उस मे मुझे यह पहल छोड कर अपने परिवार की सुरक्षा पर ध्यान देने की हिदायत दी गई थी। गुरजीत आई एस आई के बहुत अधिक प्रभाव में आया हुआ सिख युवक था। मुझे उस से यह उम्मीद कतई न थी कि वह

तलवंडी साबो में कोई नरम रुख अपनाएगा। मैंने उस की चेतावनी की परवाह नहीं की लेकिन अपनी सुरक्षा में भी कोई ढील नहीं दी।

हमने तय किया कि सिर्फ इस कारण से कि राजीव गाँधी के गृहमंत्री, पंजाब पुलिस व आई.बी. के शीर्ष अधिकारी उनके प्रयास में पलीता लगा रहे है, हम शाति प्रयत्नों को हाथ से निकलने न देंगे। ये लोग शांति के बजाय युद्ध के ज्यादा हिमायती थे। कल्याण रुद्र और मैं तलवंडी साबो गुरुद्वारे के पास एक गुप्त स्थान पर टिके थे। गुरुद्वारे की सुरक्षा जसबीर के वफादार समझे जाने वाले हथियारबंद युवक कर रहे थे। हमने पास में ही एक सशस्त्र बल को तैयार रखा हुआ था ताकि उग्रवादी अगर जसबीर की जान के लिए खतरा पैदा करें तो उसे बचा कर निकाला जा सके। निजी तौर पर हमने जसबीर से अनुरोध किया कि वह थोडा संतुलन बना कर रखे ताकि आतंकवादी नाराज न हों। हमने उसे सलाह दी कि वह खालिस्तान का जिक न करे। पंजाब की जनता के लिए शांति और खुशहाली बहाल किए जाने पर जोर दे। सिख गुरू साहबान के भूल जाने व माफी देने के उपदेश को प्रमुखता दे।

जत्थेदार जसबीर और गुरदेव सिह कोके ने अपनी नियत भूमिकाएँ अदा कीं। लेकिन गुरजीत सिंह ने सब से अधिक समझौते के विरुद्ध विचार प्रकट किए। ए.आई.एस.एस.एफ. के एक युवक ने उस का जो भाषण पढा उस में सिखों के लिए पृथक देश का प्रबल समर्थन किया गया था। तलवंडी साबो के प्रदर्शन से सामान्य सफलता हासिल हुई। हमने अधिवेशन कर के निचले दर्जे की कामयाबी हासिल कर ली थी जबकि आई.एस.आई., पंजाब पुलिस और आई.बी का एक धडा भी हमारे खिलाफ था। उधर आई.एस.आई. ने कुछ कट्टर आतंकवादियों को अपनी जगह अडे रहने को तैयार कर लिया था। पाकिस्तान भारतीय पंजाब में अपनी रणनीतिक लाभ की स्थिति को गंवाना नही चाहता था। दुर्भाग्य से भारत का शीर्ष नेतृत्व पाकिस्तान की पेचीदा चालों को समझ नही रहा था। कुछ राजनीतिक नेता, प्रशासक व इंटेलिजेंस संचालक पाकिस्तान के हाथों का खिलौना बने हुए थे।

उधर जागीर और निर्वैर सिंह ने बैसाखी के दिन स्वर्णमंदिर में जोरदार आयोजन किया। उन्होंने खालिस्तान का झंडा फहराया और तरह-तरह के हथियारो से अधाधुंध गोलियाँ चलाईं। इससे आस-पास के बाजार और रिहायशी इलाके में आतंक फैल गया।

अमृतसर और तलवंडी साबो की घटनाओं से स्पष्ट हो गया कि जसबीर को ले कर दिल्ली ने जो पहल की थी वह तयशुदा रास्ते पर नहीं चल पाई। जसबीर की ईमानदारी मे कोई कमी न थी। व भारत सरकार व पंजाब के शातिप्रिय लोगों के साथ मिलकर शांति स्थापना करना चाहता था। वह बिलकुल योजनाकारों के बनाए रास्ते पर ही चला था। राजीव व उनके विचारक एक अकेले क्षतिग्रस्त पंख और अपर्याप्त इंजन शक्ति के बलबूते पर उडान भरना चाहते थे। उन्होंने जसबीर की रिहाई से पहले आगे की कार्रवाई के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि तैयार करने का प्रयास नहीं किया था। जिस विमान को वे उडा रहे थे उस का दूसरा पंख औंर इंजन विपरीत दिशा में उडान भर रहे थे। राज्य पुलिस व प्रशासन को शांति की पहल के अनुरूप आचरण करने के अनुकूल नहीं बनाया गया। आई.बी. का एक हिस्सा भी विपरीत दिशा में उडने की कोशिश कर रहा था। राजीव के गृहमंत्री बूटा सिंह ने भी वैसी ही चालाकी भरी चाल चली जैसी उनके पूर्वज ज्ञानी जैल सिंह ने चली थी।

के.पी.एस. गिल जैसे योग्य पुलिस अधिकारी से यह उम्मीद नहीं की जा सकती थी कि वह दुम दबा कर हत्यारे गिरोहों का तमाशा देखते रहें। उन्होंने वही सब किया जिसकी उन

से उम्मीद की जाती थी। क़ट्टर आतंकवादियो के बढते दबाव से स्पष्ट था कि उनके सामने दो ही विकल्प हैं–शांति के लिए तैयार हो जाएँ या फिर निर्णायक युद्ध के लिए कमर कस लें। पाकिस्तान और विदेश मे बसे खालिस्तानी आदोलनकारियो की शह पाए अधिकाश हथियारबद गिरोहों ने युद्ध का विकल्प चुना।

पाकिस्तान की चाल को समझना कोई मुश्किल न था। अफगानिस्तान में निर्णायक जीत के बाद वह कश्मीर की हमारी गलत नीति का लाभ उठाना चाहता था। पाकिस्तान की रणनीतिक लाभ वाली स्थिति पर ध्यान न देते हुए दिल्ली ने एक और कुविचारित समझौता कर डाला -- राजीव-फारूख समझौता। इसके तहत नेशनल काफ्रेंस और इदिरा काग्रेस को सत्ता में भागीदारी मिलनी थी। राज्य विधानसभा के चुनावो मे खुलेआम धाधली हुई। फारूख भी उसी राह पर चलना चाहते थे जो पजाब में बरनाला ने अपने लिए चुना था। उनकी विश्वसनीयता समाप्त हो चुकी थी। उसे दोबारा बहाल भी नही किया जा सकता था। जुलाई 1988 में श्रीनगर मे आतंकवादियो के तरीके का बम विस्फोट हुआ। 17 अगस्त को जिया-उल-हक की मौत पर कश्मीरियों ने प्रदर्शन भी किया। सितबर के आरभ तक पाकिस्तान ने स्पष्ट कर दिया था कि कश्मीर ही उनके लिए मुख्य रणक्षेत्र है। पजाब तो उस की रणनीति के तहत एक दूसरा मोर्चा था। आई.एस.आई. के सयुक्त उत्तरी संचालन ने 1988 के आरभ मे भारतीय कश्मीर में सीधी घुसपैठ की शुरुआत कर दी। बेनजीर भुट्टो ने जिया के शुरू किए कार्यक्रम को जारी रखा। हालाकि भारतीय प्रधानमंत्री ने जुल्फिकार अली भुट्टो की बेटी के प्रति मैत्री का रवैया अपनाया था।

सीधे-सीधे गोलीबारी करने के बजाय शाति स्थापित करने मे कही ज्यादा जद्दोजहद करनी पडती है। शाति कई बार युद्ध के मुकाबले ज्यादा खून मॉगती है। इतिहास के सूक्ष्म ताने-बाने हमेशा शाति ने बुने हैं। हालाकि गुणगान हमेशा युद्ध का ज्यादा होता है।

युद्ध का जवाब युद्ध ही होता है। खास तौर पर जब वह युद्ध अपने ही लोगों के खिलाफ लडा जा रहा हो। एक शत्रु का नाम सदा के लिए अपनी युद्ध-सूची में रखा जा सकता है, लेकिन गुमराह हुए अपने ही नागरिको के साथ ऐसा नहीं किया जा सकता।

जसबीर सिह रोडे के गिर्द एक नई शक्ति एकत्र होनी शुरू हो गई थी। वह 25 कट्टर सिख युवको का एक गुट बनाने मे सफल हो गया था। उम्मीद थी कि 30 और भी जल्दी ही उसके साथ आ जाएँगे। लेकिन उसके पास अपने युवको को लैस करने के लिए आधुनिक हथियार न थे। उसके युवको को हथियार देने की बात विभिन्न स्तरो पर चलाई गई। अतत. तय हुआ कि राय और मजहबी (अनुसूचित जाति) के सिखों में से कुछ और को भर्ती किया जाए। उनको दलबीर सिंह दला के नेतृत्व में रखा जाए। दलबीर खालिस्तानी कमांडो फोर्स (के.सी.एफ.) का मान्य नेता और जसबीर का अनुयायी था।

मैं गंगानगर और फिरोजपुर के कुछ इलाको में गया। यह पाकिस्तानी सीमा का निकटवर्ती क्षेत्र है। यहाँ मैं कुछ सिख युवकों की भर्ती के उद्देश्य से गया था। दमदमी टकसाल के कुछ स्वयसेवकों ने मेरी मदद की। इन युवकों को आनंदपुर व लुधियाना के तीन गुप्त स्थानों पर ले जाया गया। उनको कुछ छोटे हथियार दिए गए और कहा गया कि क्लाशनिकोव राइफलो के आने का इंतजार करें। इस योजना को उस समय बहुत धक्का लगा जब दलबीर सिह को पुलिस ने रोपड बस स्टॉप पर पकड कर नकली मुठभेड़ में मार डाला।

मुझे शांति के लिए एक और युद्ध की तैयारी करने को कहा जा रहा था। लगता था कि दिल्ली दो विपरीत दबावों में आई हुई है। घोटालों, पार्टी के अंदर की सुगबुगाहट, मीडिया में खराब छवि और आर्थिक मंदी ने राजीव गांधी के लिए परेशानियॉं पैदा कर दी थीं। पंजाब में भेजे गए परस्पर विरोधी संकेतों ने उन्हें और भी बढा दिया। उन पर स्वर्णमंदिर को हत्यारे गिरोहों से मुक्त कराने का जबरदस्त दबाव था। हिंदू वोट बैंक उन से नाराज था। अपराधी बन चुके हथियारबंद गिरोहों से हिंदुओं और निरीह सिखों की सुरक्षा के लिए उनसे निर्णायक कार्रवाई की अपेक्षा की जाती थी।

पी. चिदंबरम की पंजाब यात्रा और उनकी अमृतसर, लुधियाना व चंडीगढ मे सभाओं ने स्पष्टतः युद्ध का झंडा बुलंद कर दिया था। के.पी.एस गिल अपनी युद्ध योजना के साथ तैयार थे ही।

इन्हीं हालात में आदेश हुआ कि मैं क्लाशनिकोव राइफलों की एक खेप ले कर विशेष विमान से लुधियाना जाऊँ। ये राइफलें मेरे और जसबीर के भर्ती किए रंगरूटों के लिए थीं। 8 मई की रात को तीन अन्य उच्च धार्मिक नेताओं और सुरक्षा गार्डों के साथ जसबीर नियत स्थान पर मेरा इंतजार कर रहा था। मुझे मॉडल टाउन क्षेत्र की एक जगह से लिया गया। वहॉं से घुमा-फिरा कर मुझे जसबीर के पास ले जाया गया। बातचीत सौहार्दपूर्ण वातावरण में हुई। तय हुआ कि मैं अगली रात (9मई) को हथियारों को एक और जगह ले जाऊँ। वहॉं से वे शिविरों में पहॅुंचा दिए जाएँगे। योजना बनाई गई कि 25 सशस्त्र युवकों को स्वर्णमंदिर के अंदर तैनात किया जाए और बाकी 25 का सराय क्षेत्र में प्रवेश कराया जाए।

सामान्य स्थिति के विपरीत जसबीर मेरी कार तक चल कर आया। उसने मेरे कान में कुछ कहा। उसकी जानकारी के मुताबिक पंजाब राज्य इंटेलिजेस का एक अधिकारी और इंटेलिजेंस ब्यूरो का एक अधिकारी बब्बर खालसा व के.सी.एफ. के आतंकवादियों से संपर्क साधे हुए थे। उन्होंने उनको पुलिस बल से मुठभेड के लिए उकसाया है। मुझे इस जानकारी का निहितार्थ समझने में थोडा वक्त लगा। अंदर जमा पुलिस और आतकवादियों मे झडप तो किसी समय भी हो सकती थी। सुरक्षा बल हमेशा घोडे पर उंगली रखे रहते थे। उधर आतंकी तो गोलियॉं चलाने में आनंद का अनुभव करते ही थे। उन्मादी हत्यारों के इस गिरोह को विश्वास दिलाया गया था कि खालसा पंथ के अनुयायियों के शरीर से टकरा कर अधर्मियों की गोलियॉं वापस लौट जाएँगी। इनमें से ज्यादातर मर्जुआना,अफीम और तीखी शराब के नशे में रहते थे। उनको गोलियां चलाने और हत्याए करने के लिए किसी उकसावे की जरूरत न थी।

जसबीर ने अपनी बात का खुलासा करते हुए कहा कि भडकाने वाले एजेंट बूटा सिंह की शह पर काम कर रहे थे। ये लोग दूसरे विकल्प को सफल होते नहीं देख सकते थे। मैंने कुछ कह कर उसे दिलासा दिया और शुभ रात्रि के साथ विदा ली।

9 मई की रात को साढे नौ बजे मुझे एक नियत स्थान पर ले जाया गया। वहॉं हमने हथियारों को शिविरों तक पहुॅंचाने की कार्रवाई को अंतिम रूप देना था। जब हम लोग ' बल ' को युद्धनीति के अनुरूप तैनात करने तथा आतंकवादियों का मुकाबला करने की योजना बना रहे थे तभी पौने बारह बजे के लगभग फोन बज उठा।

फोन सुविंदर सिंह ने उठाया। उसका चेहरा स्याह हो गया। उसने हमें बताया कि स्वर्ण मंदिर परिसर में सब जगह गोलीबारी शुरू हो गई है। बब्बर खालसा के एक आतंकवादी ने

पुलिस के डी.आई.जी. पर गोली चलाई है। खबर सुनकर मैं चकरा गया। मेरे एक सहयोगी के बब्बर खालसा गुट के संपर्क में रहने की बात मुझे पता थी। उम्मीद की जाती थी कि वे लोग वक्त आने पर के.सी.एफ., के एल.एफ. और बी.टी.एफ.के. के उन्मादी तत्वों का विरोध करेंगे।

प्रश्नों से भरी कोई आठ जोडी आंखें मेरी तरफ उठीं। उनमें मैत्रीभाव न था। दो हथियारबंद रक्षक चुपचाप आ कर मेरे अगल-बगल खडे हो गए। मेरे हाथ कमीज के नीचे छिपी पिस्तौल पर चले गए। जसबीर उठ खडा हुआ। उसने रक्षकों को आदेश दिया कि वे मुझे अकेला छोड़ दें। उसने सलाह दी कि हथियारों को कभी बाद में इस्तेमाल करने के लिए अमृतसर में कहीं छिपा कर रख दिया जाए और शिविर के युवकों को विसर्जित कर दिया जाए।

मैंने दिल्ली अपने डेस्क बॉस को फोन किया। उनका जवाब था कि वह इस बारे मे कोई जानकारी नहीं रखते। केंद्रीय आरक्षित पुलिस मे कार्यरत एक डी आई.जी. एम.एस. विर्क को मंदिर परिसर के पश्चिमी क्षेत्र में आतंकवादियों की गोली लगी थी। इस पर पुलिस बल ने भी गोलीबारी शुरू कर दी थी।

जसबीर तथा कुछ उच्च धार्मिक नेता उसी समय अमृतसर रवाना होना चाहते थे। मैने अनुरोध किया कि वे अभी घटनाक्रम को देखें और अगले दिन वहाँ जाएँ। मुझे जसबीर के अनुयायियों ने लुधियाना से सुरक्षित बाहर निकाला। अब मुझे राजीव गाँधी की शांति सेना के लिए लाए हथियारो के साथ अमृतसर जाना था। सारी कार्रवाई एक बडा मखौल बन कर रह गई थी। उसमें मैं सबसे बडा विदूषक था।

ऑपरेशन ब्लैक थंडर शुरू हो गया था। बात यह हुई थी कि एम एस विर्क ने अपने तईं एक बडा फैसला ले लिया था। वह मदिर के पश्चिमी हिस्से में एक जगह टोही दल ले गए थे। वहाँ आतंकवादी प्रसादघर के ऊपर नए सुरक्षा मोर्चे बना रहे थे। यह जगह मुख्य द्वार और अकाल तख्त की बाकी इमारतों के बीच है। केंद्रीय पुलिस बल के कमांडर ने यह हरकत किसी राजनीति के तहत नहीं की थी जिसने युद्ध की गोलीबारी शुरू कर के शाति प्रयासो को दफना दिया था। प्रसादघर के ऊपर सुरक्षा मोर्चा बनाने के आतकियों के प्रयास का प्रतिरोध करने का कोई आदेश दिल्ली से नहीं आया था। टोही दल का नेतृत्व करने का फैसला सी आर.पी.एफ. के डी.आई जी. ने खुद लिया था। यह सर्वे इटेलिजेस विभाग का कोई एजेट कर सकता था।

गिल एक कुशल जनरल थे। उन्होंने मौका हाथ से जाने नहीं दिया। बडी महारत से कार्रवाई करते हुए उन्होंने भारतीय पुलिस के इतिहास में एक स्वर्णिम अध्याय जोड दिया। आसपास के राजनीतिक व प्रशासनिक वातारण के असतोषजनक होते हुए भी उन्होंने अपनी पेशेवर कुशलता का शानदार उदाहरण पेश किया।

* * * *

पंजाब की उथल-पुथल से मेरा वास्ता सेवानिवृत्त होने तक किसी न किसी रूप में बना रहा। जसबीर, दमदमी टकसाल के कुछ नेताओं और कई आतंकी गिरोहों से मेरे संबंध पेशे की सीमाएँ लांघ कर आगे बढ़ गए थे। मैंने पाया कि जसबीर सिंह रोडे एक भला, सरल और विश्वसनीय इनसान है। वह अकालियों की राजनीतिक उलटबासियों के लायक न था। परंपरागत अर्थों में वह अनपढ़ था। पर उसका सिख धर्मग्रंथों का ज्ञान संपूर्ण और निर्दोष था।

शांति की इस पहल ने मुझे पंजाब के बारे में इतनी जानकारी दी जितना कि मैं बंगाल को नहीं जानता था। जाट सिख समुदाय ने मुझे आकर्षित किया। इस सीमावर्ती क्षेत्र के समृद्ध सभ्यता व धार्मिक विरासत वाले इन लोगों ने मुझे यह सबक सिखाया कि सभी जादूगर आग से खेलने की कला नहीं जानते। इसलिए कुछ जल जाते हैं। इंदिरा गाँधी आग के खेल के अपने सबक भूल गई थीं। उन्होंने अपने झक्की बेटे और जैल सिंह जैसे धन-दौलत के आकांक्षी को आग के एक गोले के साथ खेलने की इजाजत दे दी। इस गोले का नाम था जरनैल सिंह रोडे जिसे दमदमी टकसाल ने भिंडरांवाले की पदवी दी। राजीव गाँधी ने भी एक और सिख महत्वाकांक्षी को पंजाब के मामले में दखलंदाजी की इजाजत दे दी। उनके इस गृहमंत्री ने देश का बहुत अहित किया।

पंजाब के मामले में मेरी चुभने वाली उपस्थिति से वह काफी नाखुश थे। मुझे बुला कर उनके सामने खडा किया गया। मुझसे कहा गया कि जसबीर सिंह रोडे और उसके अनुयायियों को दिए गए हथियारों और गोली-बारूद का पूरा ब्योरा दूँ। सवाल का उद्देश्य एकदम स्पष्ट था। हमने उनको कुछ लाइसेंसी हथियार दिए थे। इन के अलावा कुछ मारक हथियार एक गुप्त स्रोत से हासिल कर के भी दिए थे। मैंने सिर्फ लाइसेंसी हथियारों की जानकारी दी। इनकी तो खुद मंत्री ने ही अनुमति दी थी। मैंने यह बात स्वीकार नहीं की कि सरकार ने किसी भी स्तर पर 'अनधिकृत' हथियारों की सप्लाई की है। उन्होंने मुझे कागज का एक पुर्जा दिखाया। उसके मुताबिक आई.बी. ने 69 मारक हथियार अपने आपरेशन के साथियों को सप्लाई किए थे। मैंने तुरंत कहा कि यह केंद्र सरकार के विरोधियों की मनगढंत कहानी है। उन्होंने कुछ खफा हो कर मीटिंग बर्खास्त कर दी। मैं समझ गया कि पंजाब डेस्क में मेरे दिन अब गिनती के ही रह गए हैं।

गृहमंत्री से मेरी मुलाकात के बाद दो विचित्र घटनाएँ घटीं। अपनी महिला सचिव और एक अनजाने सिख के साथ सुशील मुनि ने मेरा दरवाजा खटखटाया। उनका प्रस्ताव बडा आकर्षक था। उन्होंने गृहमंत्री से प्राप्त कथित अधिकार के साथ मुझसे कहा कि मैं अमृतसर के केंद्रीय कारागार में दो सिख आतंकवादियों की रिहाई की सिफारिश करूँ। मैं इस कुख्यात जेल में ऑपरेशन ब्लैक थंडर के बाद जसबीर सिंह रोडे और दूसरे बंदियों से मिलने जा चुका था। मुनि अपने अनुरोध के साथ नोटों का मोटा पुलिंदा भी लाए थे जो उनकी सचिव के पास था। उनका फैलाया जाल स्पष्ट था। सुशील मुनि ने जिन दो आतंकियों का नाम लिया था वे गृहमंत्री के बडे करीबी थे। वह आई.बी. निदेशक को बुला कर उन से यह काम करने को कह सकते थे। मैंने उनकी बात मानने से इनकार किया और विनम्रता का भरसक प्रयास करते हुए उनको उनकी कार तक छोड आया।

दूसरी घटना अधिक गंभीर किस्म की थी। सिख उग्रवादियों के पास मेरे परिवार को नुकसान पहुंचाने के हजारों कारण थे। मैंने कोई पुलिस सुरक्षा नहीं ली थी। बल्कि गुमनामी को अपना सब से अच्छा सुरक्षा कवच माना था। कुछ आतंकी नेताओं व दमदमी टकसाल के सदस्यों से मिलने के लिए जो आवरण मैंने ओढे थे वे अभेद्य न थे। एक बार तो बी.टी.के. एफ. के स्वयंभू लेफ्टिनेंट जनरल विरायाम सिंह भूरानांगल ने मुझे दो रातों तक भूरानांगल गाँव के पास किसी जगह कैद रखा। आतंकियों के नियुक्त किए उच्च धार्मिक नेता कश्मीर सिंह ने मुझे वहाँ से छुडाया। इतना तो मैं भी जानता था कि अगले मोर्चे पर होने के नाते बंदूक की नाल कभी भी मेरी ओर तन सकती है। यह तो पेशे का जोखिम था।

लेकिन मेरे बडे बेटे को कुचलने के आतकियो के दो प्रयासो ने मेरी हड्डियो को कपा कर रख दिया। सिख आतकी अपने निशाने पर हमला करने के लिए बहुत सफाई का इस्तेमाल नही करते थे। उनके पास मुझ पर और मेरे परिवार पर दागने के लिए क्लाशनिकोव थी। फिर यह उलटबासी किस लिए थी ? मुझ तक कोई सदेशा पहुचाने के लिए ? कौन था इस सदेशे के पीछे ? आतकी घोडा दबाने से पहले कभी कोई दोस्ताना चेतावनी नही देते थे। लिहाजा मै इस नतीजे पर पहुँचा कि मेरे कुछ दोस्त मुझसे ज्यादा ही नाराज थे। मैने फौरन बापा नगर मे एक अधिक सुरक्षित घर मे फौरन स्थानातरित होने का बदोबस्त किया। घर पर एक स्थायी गार्ड भी तैनात कर दिया। मेरे परिवार को व्यक्तिगत सुरक्षा अधिकारी भी प्रदान कर दिए गए।

इस दौरान मेरी तरक्की अगले ऊँचे ओहदे पर कर दी गई। मै कल्याण रुद्र की जगह लेने की आकाक्षा नही रखता था। वह एक बहुत ही कुशल अधिकारी थे। पहली बार मैंने पजाब सेल से बाहर तैनात किए जाने की प्रार्थना की। मुझे अतत वहॉ से मुक्त कर के पाकिस्तान काउटर-इटेलिजेस यूनिट मे भेज दिया गया। पर इसके साथ शर्त यह थी कि मै पजाब के कुछ सवेदनशील ऑपरेशनो मे सहायता करता रहूँगा। यह बहुत न्यायसगत था।

<22>

पहले प्यार के आमने-सामने

किसी चीते को संतुष्ट करने का अचूक नुस्खा यह है
कि हडपने के लिए अपने आप को उस के हवाले कर दो।

कोनराड एडेनूर

मैं पाकिस्तान से नफरत नहीं करता था। इस पडोसी से मैं त्रस्त भी न था। वह बाकायदा अपनी उपमहाद्वीपीय पहचान बचाने में व्यस्त था। वह सऊदी-वहाबी जामा पहनने में लगा था। उस के कुछ राजनीतिक दार्शनिक खुद को सिंधु के लोग कहते थे। ऐसा वे खुद को गंगा-यमुना की घाटियों के हिंदुओं से अलग करने के लिए कहते थे। यह पाकिस्तान की बडी जोड-जुगत से की गई खोज थी। इसके लिए वे हडप्पा की प्रागैतिहासिक सभ्यता के दिनों में गए जब कथित आर्यों ने वहाँ आक्रमण किया था। लेकिन हमारे पश्चिमी मित्र उनको इस तरह नहीं पहचानते कि वे आर्यों के वंशज थे या फिर स्थानीय लोगों अथवा 'अहुर महद 'के वंशज जो कि अग्नि के उपासक थे। जो भी हो, हमारे सिंधु के मित्रों का मूल सऊदी अरब के रेगिस्तान या नखलिस्तान से तो नहीं था। लेकिन इन्सान के दिमाग को कोई फल्सफा गढ़ने से रोका नहीं जा सकता। हिटलर का अपना फल्सफा था -- नफरत का फल्सफा। हमारे सिंधु के मित्रों का खयाल है कि सभ्यता का कोई फल्सफा गढ लेने से वे अपनी राष्ट्रीयता को पूरी तरह एक ऐसे धर्म का आधार दे सकते हैं जो इस उपमहाद्वीप में ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत बाद में आया।

मुझे पाकिस्तान की जनता से कोई नफरत नहीं जिनको आज भी विश्वास दिलाया जा रहा है कि धर्म नशा करने के लिए बेहतरीन अर्क या सोमरस है। यह उन्माद का सब से जबरदस्त जोडने वाला फेविकोल है। वे इस बात को मानने से इनकार करते हैं कि हम एक ही नाभिरज्जु से संबद्ध जुडवाँ है जिनको निर्मम इतिहास ने अलग-अलग पहचान दे डाली है। हमारे मजबूत स्थानीय व सांस्कृतिक बधन एक ही जल, वायु और भूमि से ओतप्रोत हैं। हमारा उत्पत्तिमूल एक ही है।

यह एक वास्तविक बयान है। इसका आधार ऐतिहासिक सत्य है। भारतीय, खासकर हिंदुओं में, यह खासियत है कि वे तात्कालिक इतिहास को भी पौराणिकता में बदल डालते हैं।

स्वाधीनता संग्राम को पौराणिक रंग देने के लिए इनमें से बहुतों ने ब्रिटिश साम्राज्य का दानवीकरण कर डाला था। स्वाधीनता संग्राम की अग्रिम पंक्ति के कुछ बाकी बचे लोगों को उन्होंने देवत्व प्रदान किया और एक परिवार को अमरत्व देने के गंभीर प्रयास किए। वे यह भी भूल गए कि 1947 के थके हुए और लोभी कांग्रेसी विभाजन के लिए उतने ही लालायित

थे जितने कि शक्की और धर्मांध मुस्लिम नेता। इतिहास का क्रूर घटनाचक्र विभाजन का औचित्य सिद्ध करता था लेकिन सीमा के दोनो ओर होने वाले नरसहार का नही। विभाजन कुछ मुसलमानो की इस धारणा का भी औचित्य सिद्ध करता था कि यह सभ्यताओ का सघर्ष था। इसने धर्मनिरपेक्षता के घिसे-पिटे नारे को रद्द कर दिया जिसे शासको ने सामाजिक भावशून्यता की हद तक घसीटा था।

विभाजन ने हिदू-मुस्लिम सबधो को और भी जटिल बना दिया था। ये सबध घृणा से ले कर आलिगन तक और दैवीकरण से ले कर दानवीकरण तक हिचकोले खा रहे थे। यही सबध भारत की पाकिस्तान की नीति और पाकिस्तान की भारत की नीति का आधार बने। हिदू विरोध और भारत विरोध पाकिस्तान को उसकी डगमगाती पटरी पर चलाने वाला अक्सीर बना। जब मुझे पाकिस्तान के काउटर-इटेलिजेस यूनिट (पी सी आई यू) मे तैनात किया गया तब अधिकाश भारतीयो की तरह मैं भी इन्ही ऐतिहासिक पूर्वाग्रहो से ग्रस्त था।

फर्क यह था कि मेरा कभी भी दैवीकरण या दानवीकरण मे विश्वास नही था। मै अब पाकिस्तान को हिदू-मुस्लिम मुद्दा कतई नही मानता था। पाकिस्तान ने भारत के विरुद्ध अनवरत युद्ध छेड रखा था। एक मुस्लिम देश के नाते नही बल्कि अपने अतर्राष्ट्रीय इस्लामिक वजूद की वजह से। भारत के अनेक इस्लामिक देशो से बहुत अच्छे सबध रहे हैं। पाकिस्तान से शत्रुता का आधार हिदू-मुस्लिम सघर्ष नही। बात यह है कि पाकिस्तान भी पौराणिकता के ससार मे भटक गया है। उसने विश्वास कर लिया है कि सऊदी अरब के राजपरिवार ने उसे सऊदी-वहाबी आज्ञापत्र से नवाजा है। उसका विश्वास था कि शकराचार्य की पहाडी और दिल्ली के लालकिले पर इस्लाम एक बार फिर अपना झडा फहरा सकता है। वह एक दूर-पार के सपने मे खो गया था। मै अपने आप को इतिहास का एक ऐसा सिपाही मानता था जिसका कर्तव्य उस बेहूदे सपने को ध्वस्त करना था।

यह भावना मुझ मे मेरे हिदुत्व सस्थानो के साथ सबधो के कारण नही पनपी थी। न ही मैंने कभी सोचा कि मैं उन्मादी राष्ट्रवादी बन सकता हूँ। यह तो इतिहास का एक सबक था जो मैंने बडी कीमत अदा कर के सीखा था।

मेरा काम बहुत सीधा और स्पष्ट था। पाकिस्तान काउटर-इटेलिजेस यूनिट को चलाना और उसके शासनतत्र को समुचित भू-राजनीतिक आलोक मे समझना। इसी मन स्थिति के साथ मैंने सी पी आई यू मे कदम रखा। मेरे उत्तरपूर्व और पाकिस्तान के छद्मयुद्ध के अनुभवो से यह मन स्थिति और सुदृढ हुई थी।

यह मेरे लिए एक और काम न था। यह मेरा सब से प्रिय काम था जिसे करने मे मैने भरपूर सतोष और आनद पाया।

* * * *

1988 मे भारत-पाकिस्तान सबध बहुत अच्छे न थे। पजाब और कश्मीर मे पाकिस्तान की गहरी लिप्तता ने राजनीतिक सबधो मे खटास पैदा कर दी थी। जनरल अख्तर अब्दुल रहमान की रहनुमाई वाली इटर सर्विसेज इटेलिजेस की विशेष यूनिटो की घुसपैठ सिख और कश्मीरी उग्रवादी गुटो मे थी। आई एस आई ने भारत को घेरने की अपनी नीति जारी कर दी थी। इसके लिए उसने नेपाल, श्रीलका और मालदीव मे अपने अड्डे कायम कर लिए थे। पाकिस्तान बाग्लादेश के अपने साधनो और साठ-गाठ को भी और मजबूत बना रहा था। वह राजीव गाँधी की सरकार के विरुद्ध अचानक हैरान कर देने वाली हरकतें करने पर आमादा था। इधर राजीव

'घोटालों,' उमडते राजनीतिक बादलों और गंभीर सूखे का सामना करने में व्यस्त थे, जिस ने देश की अर्थव्यवस्था को चौपट कर के रख दिया था।

17 अगस्त 1988 को एक नाटकीय विमान दुर्घटना में जनरल जिया की अचानक 'हत्या' हो गई। पाकिस्तान में और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कई और जगहों पर भारत की ओर संदेह की उंगलियाँ उठाई गईं। इसके अलावा जेड.ए भुट्टो के बेटे मुर्तजा भुट्टो के नौसिखिया आतंकी संगठन अल जुल्फिकार, अफगानिस्तान की गुप्तचर संस्था खाद और यहाँ तक कि सी.आई.ए. पर भी शक किया गया। यह निस्संदेह किसी अंदरूनी तत्व का काम था। साजिश करने वाले की पहुंच अमेरिका व सोवियत संघ जैसी महाशक्तियों की बनाई वी.एक्स. नर्व गैस तक थी।

जब मैंने पी.सी.आई.यू. मे काम सभाला तब तक बेनजीर भुट्टो ने राष्ट्रपति इसहाक खान और सेना के उच्च्य अधिकारियो से लोकतंत्र के फरिश्ते के तौर पर उभरने का आशीर्वाद पा लिया था, हालांकि उनके प्रतिद्वद्वियों को आई.एस.आई. का समर्थन प्राप्त था। राजीव गॉधी और उनके 'पाकिस्तान विशेषज्ञ' मित्र व भूतपूर्व राजनयिक मणिशंकर अय्यर पाकिस्तान की लोकतांत्रिक रीति से चुनी गई प्रधानमंत्री से नए सिरे से बातचीत करने की उम्मीद रखते थे। यह एक सच्ची ख्वाहिश थी, पर इसमें कूटनीति का तत्व न था। इसमे ऐतिहासिक विरोधाभासों के प्रति गहरी अतर्दृष्टि का अभाव था। भारतीय और पाकिस्तानी राजनीतिज्ञ अक्सर उस समय शांति के प्रस्ताव शुरू करते हैं जब सीमा पर छिटपुट गोलाबारी, मंदयुद्ध और राजनयिक कार्रवाइयों के अंतिम पडाव तक पहुॅच चुकते हैं। दोनों देश शाति को अक्सर एक आक्रामक हथियार की तरह इस्तेमाल करते हैं। सीमा के दोनो ओर के नेताओं में से किसी के मन में भी शांति स्थापित करने की सच्ची चाह नही होती।

215 के सदन में 92 सीटें ले कर बेनजीर की पी.पी.पी. अकेली सब से बडी पार्टी के रूप में उभरी। व्यवस्था के एक धडे और आई.एस.आई की पहल पर बनाई गई आई.जे.आई. को 54 सीटें मिलीं। सशस्त्र सेना लोकतांत्रिक पद्धति से चुनी गई सरकार को सत्ता सौंपने से पहले कुछ देर को छटपटाई। बेनजीर के लिए यह स्वाभाविक ही था कि वह एक और आक्रामक शांति प्रयास की शुरुआत करें। इससे उनके राजनीतिक आधार का एक हिस्सा खुश होता और अंतर्राष्ट्रीय धनदाताओं को भी सतुष्टि होती। जैसा कि पी.सी.आई.यू. में हम जानते थे, उनको भी इस बात का पता था कि पाकिस्तान भारत से प्रेम सबध बढाने की कोशिश नहीं कर रहा है।

मैं यकीन से नहीं कह सकता कि राजीव गॉधी को इस आक्रामक शांति की चाल के बारे में ठीक से जानकारी दी गई थी या नहीं। उनके प्रशासन की कुटिलता और उनके 'पाकिस्तान विशेषज्ञ' की अनुभवहीनता का प्रमाण निम्न घटना से मिलता है।

दिल्ली में इंटेलिजेंस ब्यूरो के माहिर संचालक आई.एस आई. के एक बडे जासूसी कांड का भंडा फोडने वाले थे। जन व तकनीकी-गुप्तचरी और निगरानी ने स्पष्टतः सिद्ध कर दिया था कि पाकिस्तानी उच्चायोग के मिलिटरी अटैची ब्रिगेडियर जहीर उल इस्लाम अब्बासी छद्म वेश में आई.एस.आई. के अधिकारी थे। वह खुद ही एक जासूसी का चक्र चला रहे थे। भारतीय सेना के एक भूतपूर्व कप्तान के साथ उनकी निजी मुलाकातों को स्थिर और वीडियो फोटोग्राफी में रिकार्ड किया जा चुका था। उनके मिलने के स्थान भी नोट कर लिए गए थे। अब सिर्फ उन्हें दबोचना बाकी था।

मेरे पी.सी.आई.यू. में शामिल होने के महज तीन दिन बाद ही मुझे बताया गया कि एक प्रमुख मिलने के स्थान पर पाकिस्तानी ब्रिगेडियर को दबोचने की योजना बना ली गई है। मैंने तथ्य-सूची पर नजर डालने के बाद कहा कि किसी वरिष्ठ राजनयिक को प्रमुख स्थान पर नहीं पकडना चाहिए। मैंने अपने सहयोगियों से यह भी कहा कि इसकार्रवाई के लिए जो समय निर्धारित किया गया है वह भी उपयुक्त नहीं है। पाकिस्तान में नवनिर्वाचित सरकार एक-दो दिन में सत्ता संभालने वाली है। इस समय भारतीय प्रधानमंत्री को पाकिस्तानी प्रधानमंत्री से मैत्रीभाव प्रकट करने का समय मिल जाएगा। मेरी बात नहीं मानी गई। मुझे बताया गया कि प्रधानमंत्री और उनके निकटस्थ सहायकों को इस की जानकारी है। उनके 'पाकिस्तान विशेषज्ञ' ने राय दी है कि बेनजीर के सत्तारूढ होने से पहले यह कार्रवाई हर हाल में हो जानी चाहिए। इससे राजीव को स्वच्छ माहौल में शुरुआत करने का मौका मिलेगा। यह तर्क निर्दोष न था। बेनजीर ऐसी मूर्ख तो न थी कि वह दिल्ली की इन घटनाओं को पाकिस्तान के भारत के साथ संपूर्ण संबंधों के साथ जोड कर न देख सके। वह परीक्षणिक प्रधानमंत्री थीं। वह किसी भी स्थिति में सेना को नाराज नहीं कर सकती थीं। ब्रिगेडियर अब्बासी पाकिस्तानी सेना के कट्टरपंथी धडे के नुमाइंदे थे।

पर आई.बी में किस में इतना दम था कि प्रधानमंत्री के दोस्त के खिलाफ जाए ? हमें तो आदेश का पालन करना था।

मुझे उस विज्ञप्ति का मसौदा दिखाया गया जो अब्बासी को दबोचने के फौरन बाद भारत के सरकारी मीडिया दूरदर्शन और आकाशवाणी को दिया जाना था। मैंने इसका भी विरोध किया। आमतौर पर काउंटर-इंटेलिजेंस के इस तरह के मामलों से मीडिया को दूर ही रखा जाता है। संदिग्ध लोगों से पूछताछ हो जाने और उनकी कारगुजारी से हुए नुकसान का अंदाजा लग जाने के बहुत बाद में कहीं दिल्ली पुलिस उसे इस की जानकारी देती है। आई बी. को तो पूरी सावधानी के साथ इससे दूर रखा जाता है। मुझे बताया गया कि प्रधानमंत्री के 'पाकिस्तान विशेषज्ञ' मित्र ने इसका भी आदेश दिया है।

मेरे बॉस प्रधानमंत्री कार्यालय/ प्रधानमत्री आवास की मंडली के बहुत निकट थे। उन्होंने सारी कार्रवाई पर शीर्ष व्यक्ति से चर्चा कर ली थी। मुझे बताया गया कि राजीव गॉधी शपथ लेने वाली प्रधानमंत्री को एक आश्चर्यजनक, मसालेदार तोहफा देना चाहते हैं। मेरे पास इसकार्रवाई को तुरंत करने की जल्दबाजी के बारे में सोचने की फुर्सत न थी। मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि इससे क्या राजनयिक लाभ होने वाला है। बाद में उसी रात मुझे बताया गया कि प्रधानमंत्री इस्लामाबाद की अपनी प्रतिकर्मी के मुकाबले हाथ ऊपर रखने के लिए अब्बासी को पकडना उपयोगी समझते थे। मेरे खयाल में इससे पहले कभी भी आई.बी. पर कोई कार्रवाई इतनी जल्दी करने के लिए इस तरह दबाव नहीं डाला गया था। एक ऐसी कार्रवाई जिससे प्रधानमंत्री को संदिग्ध राजनीतिक व राजनयिक लाभ होता। उनका उत्साह उनकी कुशलता की अपेक्षा कुछ अधिक ही दिखाई दे रहा था।

30 नवंबर 1988 को अब्बासी को रात को 7 बजे अमुक होटल में अपने संपर्क से कुछ संवेदनशील सैनिक दस्तावेज हासिल करने थे। पैसे देकर दस्तावेज लेते समय उसे पकड़ने के लिए एक जाल बिछाया गया। यह कार्रवाई सफल रही। मेरी राय में अब्बासी एक अनाडी गुप्तचर संचालक था। उच्चायोग में तीसरे नंबर का अधिकारी होने पर उसे न तो कोई संवेदनशील गुप्तचर कार्रवाई खुद करनी चाहिए थी न ही इस तरह की जोखिम भरी मुलाकातें

करनी चाहिए थीं। अब्बासी कुछ ज्यादा ही उत्साही था। उसने सोचा कि दिल्ली में उसकी यह कारस्तानी उसे उछाल कर और भी ऊँचे दायरे में पहुँचा देगी।

एक फूहड तरीके से बिछाए जाल में भी वह सीधा जा फंसा। उसे पकड कर पास ही इंतजार करती कार में ठूँस दिया गया। उसका गैरराजनयिक पाकिस्तानी साथी भी पकडा गया। उच्चायोग की गाडी का ड्राइवर बडी तेजी से अपने अधिकारी को बताने के लिए भागा कि कुछ गलत हो गया है।

ब्रिगेडियर अब्बासी ने भारतीय इंटेलिजेंस एजेंटों द्वारा पकडे जाने का जबरदस्त प्रतिरोध किया। उसने और उसके साथी ने छूट कर खुले में भागने के लिए खूब कस के हाथ-पांव चलाए। जवाब में उसे मेरे तगडे साथियों के कुछ घूंसे भी पडे। कम से कम बल प्रयोग करना आवश्यक था क्योंकि वह स्थान एक होटल का रेस्त्राँ था। वहॉ स्थान सीमित था। अब्बासी को खुले में भागने की इजाजत देने का मतलब था कार्रवाई की विफलता। हमारे पास 'शिकार ' को वहीं दबोचने के सिवा और कोई चारा न था।

कार्रवाई का संचालन करने वाले अधिकारियों की राय के विरुद्ध भी मैंने पकडने की कार्रवाई रिकार्ड करने के लिए एक वीडियो कैमरा लगा दिया था। अब्बासी ने कैमरामैन को कमांडो किक मार कर कैमरा तोडने की कोशिश भी की। उसे पकड कर दिल्ली पुलिस के पूछताछ केंद्र पर ले जाया गया।

दुर्भाग्यवश मेरे एक सहयोगी ने पुलिस चौकी के अदर भी अब्बासी के खिलाफ शारीरिक बल और अभद्र भाषा का प्रयोग किया। यह राजनयिक नयाचार का उल्लघन था।

मैं विदेश मंत्रालय को सूचना देने में व्यस्त हो गया कि वह पाकिस्तानी उच्चायोग को सूचित कर दे कि राजनयिक व अराजनयिक दृष्टि से अवांछित व्यवहार करते हुए उसके दो कर्मी पकडे गए हैं। यह काम पूरा करने के बाद मैंने दिल्ली पुलिस के एक वरिष्ठ अधिकारी को कहा कि वह पूछताछ करने और केस की प्राथमिकी दर्ज करने की व्यवस्था करें।

रात साढे सात बजे के टी.वी. प्रसारण ने सारे मामले को एक दिलचस्प मोड दिया। इस में एक वरिष्ठ पाकिस्तानी राजनयिक को गिरफ्तार करने की खबर प्रसारित की गई थी। प्रधानमंत्री कार्यालय से किसी की स्वीकृति पाई विज्ञप्ति को राजनयिक के पकडे जाने की खबर के वहॉ पहुंचते ही मीडिया को सौंप दिया गया था। इससे गंभीर उलझन और परेशानी पैदा हुई। अभी तो हम पूरी तरह उनकी तलाशी भी नहीं ले पाए थे, न ही पूछताछ पूरी हुई थी। तकनीकी दृष्टि से हम उन लोगों के वास्तविक परिचय के बारे में भी निश्चित न थे। उनके पास कोई परिचयपत्र नहीं मिले थे।

इस समाचार प्रसारण ने पाकिस्तानी उच्चायोग को मौका दे दिया। उन्होंने मेरे विदेश मंत्रालय के पाकिस्तानी डेस्क में किसी से सपर्क करने से भी पहले विदेश मंत्रालय में अपना विरोध दर्ज करा दिया। विदेश मंत्रालय की प्रतिक्रिया सुस्त थी। इससे पाक उच्चायोग को अपने राजनयिक को शारीरिक यातना देने की शिकायत करने का मौका मिल गया।

रात को दस बजे मुझे प्रधानमत्री और उनके सहायकों के सामने जवाब-तलबी के लिए प्रधानमंत्री आवास पर बुलाया गया। आई.बी.के निदेशक भी वहॉ मौजूद थे। यह एक महत्वपूर्ण लेकिन निर्मम घडी थी। मुझ से कार्रवाई के औचित्य, पाकिस्तानी राजनयिक के साथ कथित मारपीट, उसे बंदी बनाने की सूचना पाकिस्तानी उच्चायोग को न देने तथा इलेक्ट्रॉनिक मीडिया पर असमय प्रसारण को ले कर चुभते हुए सवाल पूछे गए। जवाब देने में मैं हकलाया

नहीं। मैंने बताया कि कोई मारपीट नहीं हुई। आई.बी. का काम केवल विदेश मंत्रालय को सूचित करना है। जहाँ तक पाकिस्तानी उच्चायोग को सूचित करने का सवाल है, उस के तो वह आसपास भी नहीं जा सकती।

मुझे उम्मीद थी कि मेज पर चुपचाप बैठे इंटेलिजेंस ब्यूरो के निदेशक बीच में बोल कर स्थिति को स्पष्ट करेंगे। उन्होंने ऐसा कुछ नहीं किया। जब कि कार्रवाई को अंजाम देने का आदेश उन्हीं का था। वह प्रधानमंत्री से अकेले में सारी स्थिति स्पष्ट कर सकते थे। इसके बजाय प्रधानमंत्री के सहायकों से भरे कक्ष में मेरी जवाब-तलबी हो रही थी। इंटेलिजेंस जगत में कहीं भी इस तरह का व्यवहार नहीं किया जाता।

इतने सालों से मैं एम.के. नारायणन को एक विशिष्ट पेशेवर मान कर उनका प्रशंसक बना रहा था। एक निश्चित दिन पर कार्रवाई करने का निर्णय उनका था। मेरे पी.सी.आई. यू. में शामिल होने के दो दिन बाद यह कार्रवाई किसी तरह की जाएगी, इस बारे में मुझे विस्तृत जानकारी न थी। नारायणन की चुप्पी ने मुझे आतंकित कर दिया। देश के प्रधानमंत्री के सामने खड़ा मैं ऐसा महसूस कर रहा था जैसे धरती मेरे पैरों के नीचे से खिसक रही है। उधर मेरा बॉस था जिसे मंडली में अपनी जगह बनाए रखने के लिए मेरी बलि चढाने से कतई गुरेज़ न था।

राजीव गाँधी बडी शांति से पेश आए। अपने सहायको की शब्दावली का उन पर कोई असर नहीं पडा था।

"आप ने जो भी किया उस के लिए धन्यवाद। पर मुझसे राय ले लेनी चाहिए थी।"

मैं देश के प्रधानमंत्री से इससे ज्यादा और क्या उम्मीद कर सकता था। अगर उन्होंने अंतिम आदेश नहीं दिया था तो किस ने दिया था ? क्या आई.बी. निदेशक ने प्रधानमत्री कार्यालय के भाडे के टट्टुओं के कहने पर यह कार्रवाई की थी ? गुजाइश कम थी। यह सोच कर मुझे झुरझुरी आ गई कि इन लोगो से घिरे प्रधानमंत्री को अपने आसपास होने वाली घटनाओं की कितनी कम जानकारी है। वह इतने अनाडी तो न थे कि यह मान कर चलें कि ऊँचे स्तर के किसी राजनयिक के पकडे जाने से बेनजीर भु.ट्टो की स्थिति कमजोर हो जाएगी। हां, सामान्य राजनीति व दावं-पेंच के चलते सैन्य शासन उनको सत्ता सौंपने में देर जरूर कर सकता था।

मैं फिर उनकी तरफ मुडा और इतना कह गया कि इस आदेश का एक हिस्सा उनके कार्यालय से ही जारी हुआ था।

राजीव गाँधी ने अपना सिर उठाया और बोले,"आप ने काम अच्छी तरह किया है।"

यह संकेत तसल्ली देने वाला था। मैं आई.बी. निदेशक के व्यवहार से क्षुब्ध था। अगर इसमें सिर्फ आई.बी. की गलती होती तो मैं सारा दोष अपने सिर लेने को तैयार था। पर मेरे यूनिट ने तो आदेश का अक्षरशः पालन किया था। फिर भी निदेशक आई.बी. ने ऐसे नाजुक मौके पर अपने सिपाही का साथ नहीं दिया जब प्रधानमंत्री के सहायक अपने मित्र और प्रश्रयदाता को धोखा दे रहे थे।

मैं अपने बॉस के व्यवहार से चिंतित हो कर और इंदिरा गाँधी के बेटे के लिए मन में दयाभाव लिए पुलिस स्टेशन लौटा। अब्बासी वाली घटना उनके 'गलतियों भरे शासन 'की एक और मिसाल पेश करती थी। कार्रवाई का समय, उसें अंजाम देने का तरीका, प्रधानमंत्री और उनके सहायकों तथा आई.बी. निदेशक के बीच संचार का अभाव -- इन सभी में गलतियों

के तत्व मौजूद थे। पाकिस्तान की नवनिर्वाचित प्रधानमत्री की इस घटना पर सभावित प्रतिक्रिया के बारे मे विदेश मत्रालय से जानने के भी कोई प्रयास नही किए गए।

मैंने पजाब ऑपरेशन के दौरान एजेसियो के बीच तालमेल का ऐसा ही अभाव देखा था। राजीव गॉधी प्रशिक्षित पायलट थे। उनसे समय और तालमेल बैठाने की विलक्षण समझ की उम्मीद की जा सकती थी। लेकिन जटिलता से भरे भारत राष्ट्र का विमान उडाने के लिए वह जिस सीट पर बैठे थे वहाँ उन्होने इस समझ का परिचय नही दिया।

* * * *

इससे पहले कि मै अपने पाठको को बताऊँ कि पाकिस्तान ने इन गलत नीतियो का भरपूर फायदा कैसे उठाया मै उनका एक और तूफान से सामना कराने की इजाजत चाहता हूँ। इसे भी राजीव गॉधी की निर्णय लेने की गभीर गलती ने शुरू किया था। दरअसल उनके दो तरफ चलने वाले प्रवचक सहायको ने उनको गलत सलाह दी थी।

आर एस एस और बी जे पी के कुछ दिग्गजो से अपनी निकटता की चर्चा मैं पहले कर चुका हूँ। मई 1988 आते-आते इन सपर्कों और सलाहो मे तेजी आ गई। के एन गोविदाचार्य के अलावा देवदास आप्टे स्वर्गीय राजेद्र शर्मा एस गुरुमूर्ति उमा भारती वेदप्रकाश गोयल और उनका बेटा पीयूष लगभग रोज मेरे घर पर आते थे। इसी दौरान मेरा ओ पी कोहली और सुषमा स्वराज से भी परिचय कराया गया। पर मै कुछ सुरक्षा कारणो से उनके निकट नही जा सका। इन्ही कारणो से मै केशव कुज से भी जान-बूझ कर दूर रहा।

मेरी पत्नी गोविदाचार्य युवा पीयूष और उमा को खासतौर पर पसद करती थी। ये लोग सप्ताह मे चार-पॉच बार हमारे साथ भोजन करते। हम लोग राजनीतिक विश्लेषण और रणनीति पर चर्चा करत। चुनावो मे बी जे पी के बेहतर परिणाम लाने के तरीको पर भी हम लोग चर्चा करते। आई बी द्वारा एकत्रित अदरूनी राजनीतिक इटेलिजेस तक मेरी पहुँच नही थी। मैंने कभी आई बी की सूचनाएँ नही चुराईं। मेरे अपने सपर्क थे जो मुझे महत्वपूर्ण सूचनाए और आकलन उपलब्ध करा सकते थे।

मैने भाप लिया कि आर एस एस और उसके परिवार के सदस्यो ने इदिरा गॉधी की अचानक हत्या व राजीव की कमियो के कारण बनी राजनीतिक रिक्ति को ठीक से पहचान लिया है। उन्होने विश्वनाथ प्रताप सिह (वी पी) के राजीव गॉधी के विकल्प के रूप मे उभरने और काग्रेस के 1969 से पहले की स्थिति मे लौटने को भी नजरअदाज नही किया था। पर वे काग्रेसियो के एक धडे की मोतीलाल जवाहरलाल और इदिरा के परिवार के प्रति गुलामी की प्रवृत्ति को ठीक से समझने मे चूक गए थे। किसी और अखिल भारतीय राजनीतिक व्यक्तित्व के अभाव मे उनका दिल्ली व राज्यो के सत्तागृहो तक पहुँचने के लिए नेहरू-गाँधी परिवार के रथ का चुनाव करना वाजिब ही था। दरअसल स्वाधीनता बाद नेहरू-गॉधी परिवार के बिना काग्रेस के वजूद की कल्पना ही कठिन लगती है।

आर एस एस और बी जे पी ने पहली बार एक कार्रवाई योजना का मसौदा तैयार किया था जिसके तहत वह एक शक्तिशाली राजनीतिक दल के रूप मे उभर सके। इसके लिए उसके पास सबसे आसान हथियार था हिदू भावनाओ को जगाना। जे पी आदोलन की लहर पर उनकी थोडी सवारी ने साबित कर दिया था कि सही माध्यम और व्यक्तित्व का चुनाव कर के सत्ता के निकट पहुँचना सभव है। वे वी पी सिह को नए जे पी के रूप मे देखते थे। हिदुत्व की रणनीति पर आरूढ होने के लिए उन्होने अपना खेल शुरू कर दिया।

राजीव गाँधी राजनीति की दृष्टि से बिलकुल कंगाल तो न थे। पजाब के ऑपरेशन ब्लैक थंडर ने हिंदुओं का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट किया था। वह राजीव को अपनी माँ की अपेक्षा बेहतर योजनाकार और उसे लागू करने वाले के रूप मे देख रहे थे। ब्लैक थंडर को बड़े निर्दोष तरीके से अंजाम दिया गया था। हालाँकि यह भी पाकिस्तान समर्थित आतंकवाद को खत्म करने में सफल नहीं रहा। पर इसने कुछ हिंदू समर्थन वापस पाने मे राजीव की मदद की।

राजीव गाँधी का अगला कदम मुस्लिम वोट बैंक को आकृष्ट करना था। पर यह सही राजनीतिक आकलन पर आधारित न था। शाहबानो के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा फैसला पलट देने और मुस्लिम वीमन (प्रोटेक्शन आफ राइट्स एंड डाइवोर्स) बिल पास करने का मकसद यही बताया जाता था कि इससे मुस्लिम वोट बैंक का तुष्टीकरण होगा। कई पर्यवेक्षकों का आरोप था कि राजीव ने यह कानून बनाने में जल्दबाजी की क्योंकि वह असम समझौते से आहत मुस्लिम जनमानस को तुष्ट करना चाहते थे । बात यह थी कि इस समझौते में असम से बग्लादेशियों को निकाल बाहर करने का प्रावधान था। शाहबानो मामले ने अंततः राजीव की धर्मनिरपेक्ष छवि को धूमिल ही किया। इससे हिंदू वोट बैंक का एक धडा भी नाराज हुआ। मध्यवर्गीय व प्रगतिशील मुसलमान भी उनसे खुश नही थे। राजीव ने एक बार फिर साबित कर दिया था कि कांग्रेस की धर्मनिरपेक्षता और अल्पसंख्यकवाद एक भावशून्य नीति थी। इसका उद्देश्य एक बडे धार्मिक समूह को देश की मुख्यधारा से अलग करना भर था। यह वही फलसफा था जिसके तहत मुस्लिम लीग और जिन्ना ने दो राष्ट्रो का फार्मूला बना कर पाकिस्तान की माँग की थी। क्या काग्रेस सभ्यताओं के विभाजन की इस नीति का अधानुकरण कर रही थी ?

इससे पहले फैजाबाद की निचली अदालत ने भी एक फैसला सुना दिया था। इसके तहत अयोध्या की विवादास्पद मस्जिद का ताला खोलने की आज्ञा दे दी गई थी ताकि हिदू विष्णु के अवतार भमवान राम की वहाँ पूजाअर्चना कर सकें। उनसे नाराज रिश्ते के भाई अरुण नेहरू के शब्दों में राजीव ने शाहबानो के मामले मे खेले मुस्लिम कार्ड के जवाब में जानबूझ कर यह हिंदू कार्ड खेला था। नंदलाल नेहरू के पोते के मुताबिक टी वी पर हिदुओं को अयोध्या मस्जिद में पूजा करते दिखाने का फैसला राजीव का था।

कुछ पर्यवेक्षको का कहना था कि अयोध्या की सारी विफलता के लिए अरुण नेहरू जिम्मेदार थे। इसके प्रमाण में कुछ दस्तावेज भी हैं (आई बी के पास गुप्त दस्तावेज) । इनसे इस विश्वास की पुष्टि होती है कि उद्योगसमूह का प्रबधक हिदू, सिख व मुस्लिम संबंधों का आकलन करने में अपनी अदूरदर्शिता के कारण गलत आकलन कर गया। तभी तो इतनी बडी गलती हो गई। वह तो उत्पादों के विक्रय की जानकारी रखते थे। वह रोज का खाता मिलाने के अभ्यस्त थे। राजनेतृत्व और राजनीतिक कौशल उनके बूते की बात न थी। राजीव गाँधी ने अपने रिश्ते के भाई की विक्रय की रणनीति पर भरोसा कर के बहुत बडी गलती की।

इससे सांप्रदायिक तनाव बहुत बढ गया था। उन्हीं दिनो में सरकारी टी.वी. ने महाकाव्य रामायण व महाभारत के सीरियलों का प्रसारण किया। इसका हिदू जनमानस पर जबरदस्त प्रभाव पड़ा। इससे हिंदू भावनाएँ तत्काल जाग उठीं। राम की भूमिका करने वाले अभिनेता ने इलाहाबाद के उपचुनाव में वी.पी. सिंह के समर्थन में प्रचार किया। सीता की भूमिका करने वाली अभिनेत्री को बी.जे.पी. समर्थक बताया गया।

1987 के आरंभ में मेरठ में जबरदस्त सांप्रदायिक दंगे भडक उठे। इससे सांप्रदायिक उथलपुथल और भी बढ गई। उत्तर प्रदेश की राजीव की कांग्रेस सरकार ने दंगों को शांत करने के लिए कुछ खास कोशिश नहीं की। हिंदुओं की भीड और प्रांतीय सशस्त्र बल ने करीब 300 मुसलमानों को मार डाला। अब तो तीन भारत राजीव के खिलाफ भडक उठे थे -- हिंदू, मुस्लिम और सिख भारत। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि जाएं तो किधर जाएं।

दो और बड़ी गलतियों ने राजीव की राष्ट्रीय नेता की छवि को धूमिल किया। वह और उनकी समस्याओं का हल निकालने वालों ने असमियों के विरुद्ध बोडो को भडका दिया कि वे असम और पश्चिम बंगाल में रहने वाले बोडो और कछारी लोगों के लिए पृथक बोडोलैंड की मांग करें। इनमें आई.बी. व मंत्रिमंडलीय सचिवालय की रॉ. (विशेष रूप से उसकी एस. एस.बी.शाखा) के उच्च अधिकारी शामिल थे।

इन्हीं समस्या समाधान करने वालों ने और एक लाभार्थी पत्रकार ने (जो बाद में दार्जीलिंग से सांसद बने) दार्जीलिंग के असंतुष्ट गोरखाओं के विद्रोह की आग को हवा दी। पटना के आई.बी. स्टेशन को समस्या समाधान के आधार के तौर पर इस्तेमाल किया गया। इसकी वजह यह थी कि स्टेशन का आई.बी. प्रमुख कभी दार्जीलिंग का जिला एस.पी. रह चुका था। वह कुछ कांग्रेसी मंत्रियों का करीबी भी था। (बाद में बी.जे.पी. सरकार ने उसे राज्यपाल बना दिया था।) पटना और वाराणसी का गोरखालैंड ऑपरेशन के लिए छद्म केंद्रों के रूप में इस्तेमाल किया गया।

हम में से कुछ ने बीच में दखल दे कर समझाने की कोशिश की कि बोडो और गोरखा की यह आग जंगल की आग की तरह फैलेगी और फिर इस पर काबू पाना असंभव हो जाएगा। मैं दार्जीलिंग को अच्छी तरह समझता था। आई.बी. के उन समस्या हल करने वालों से शायद कहीं बेहतर। मैंने कुछ गोरखा नेताओं से संपर्क करने और उनको समझाने-बुझाने के लिए अपनी सेवाएँ अर्पित करने की पेशकश की ताकि आंदोलन को सघर्षों से आहत राष्ट्र के हित में मोडा जा सके। लेकिन राजीव के बौद्धिकताग्रसित समस्या निवारक सहायक कोई अच्छी सलाह सुनने के मूड में न थे।

राजीव ने जो समझौते किए थे उन्होंने दो जातीय दानवों को पुनर्जीवित करने में मदद की। इनका खमियाजा बाद में गभीर आतरिक खतरों के रूप में भुगतना पडा। बोडो साजिशों का उत्तरदायित्व एक अन्य वी.आई.पी. अधिकारी और हितेश्वर सैकिया के नेतृत्व वाले राजनीतिक गुट के हवाले किया गया।

इन घटनाओं ने मेरे मस्तिष्क में गंभीर चिंतन छेड दिया। मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि राजीव ने सही सलाह के सारे दरवाजे बंद कर दिए हैं। उन्होंने अपने चारों तरफ चापलूस इकट्ठे कर लिए हैं जो देश की सेवा के बनिस्बत अपने फायदे में ज्यादा लगे हुए हैं। ऐसा लगता था कि राजीव भी आपात्काल के कुछ प्रेतों को फिर से जगाने की कोशिश में हैं। महत्वपूर्ण फैसलों में लगातार गलतियॉ कर के जनता में लोकप्रियता खो देने के बाद वह खाई के कगार पर पहुंच गए थे। जितनी ज्यादा गलतियॉ वह करते थे, उतने ही कठोर होते जा रहे थे। इस हताशा का अनुमान एक घटना से लगाया जा सकता है जिसने मेरे परिवार को झकझोरा। मुझे अपने बड़े बेटे के कार्टून बनाने की क्षमता की जानकारी न थी। वह सेंट स्टीफेंस में पढ़ रहा था। उसने राजीव गाँधी की खिल्ली उड़ाने वाले कुछ कार्टून बनाए और

उनको व्यवस्था विरोधी समझे जाने वाले अखबार इंडियन एक्सप्रेस में प्रकाशित करवाने में भी सफल रहा।

एक वरिष्ठ पत्रकार थे, शुभव्रत भट्टाचार्य। वह सत्ताधारी राजनीतिज्ञों के सदा करीबी रहे। उन्होंने मेरा ध्यान मेरे परिवार की इस उभरती प्रतिभा की तरफ आकर्षित किया। भट्टाचार्य हमारे लिए अनजान न थे। एस.आई.बी. दिल्ली के अपने जमाने से मैं उनको एक पेशेवर दोस्त की हैसियत से जानता था। मेरी पत्नी ने करोलबाग के एक मंदिर में एक भद्र महिला से उनकी दूसरी शादी भी करवाई थी। उन्होंने राय दी कि मैं अपने बेटे को रोकूँ। हालांकि उन्होंने बहुत बार मेरी पत्नी का बनाया अन्न और मेरे हाथ का नमक खाया था लेकिन फिर भी उन्होंने प्रधानमंत्री के एक सहायक को वे कार्टून दिखा कर मेरे और मेरे बेटे के खिलाफ कार्रवाई करने को कहा।

यह वही भट्टाचार्य हैं जिन्होंने बाद में सेंट किट्स मामले में राजीव की मदद करने की पेशकश की थी। इस में वी.पी. सिंह और उनके बेटे को फंसाने की कोशिश की गई थी। उनको और उनकी पत्नी को कथित हनीमून के लिए सेंट किट्स भेजा गया था। इसका खर्चा एक औद्योगिक घराने ने उठाया था। किट्स मामला इस बात का प्रत्यक्ष उदाहरण था कि राजीव किस तरह का बचकाना राजनीतिक खेल खेलते थे। वह अपने भाई से थोडे ही अलग साबित हुए। जहाँ तक भट्टाचार्य का सवाल था, मैंने यह सोच कर संतोष कर लिया कि चौथी दुनिया में इस तरह की तुच्छ टैक्सियाँ होती हैं। उनको कभी भी भाडे पर लिया जा सकता है।

भट्टाचार्य की चुगली ने अपना रंग दिखाया। मुझे प्रधानमंत्री के एक सहायक ने बुला भेजा। उसने निर्देश दिया कि मैं अपने बेटे को इंडियन एक्सप्रेस में राजीव की खिल्ली उडाने से रोकूं। मैंने इससे इनकार कर दिया। मैंने कहा कि मेरे बालिग बेटे को अपने राजनीतिक विचार प्रकट करने का पूरा अधिकार है। मैंने उनको यह भी याद दिलाया कि अगर उसे परेशान करने की कोशिश की गई तो कानूनी कार्रवाई हो सकती है। इस पर राजीव के उस बहादुर सहायक ने मेरा नाम अवांछित व्यक्तियो की सूची में डाल दिया। मैंने इस की कोई परवाह नहीं की। मैंने पी.सी.आई.यू.के प्रति अपनी पेशेवर प्रतिबद्धता की तरफ ध्यान दिया। यह थी पजाब की कार्रवाइयाँ और कश्मीर में आंतरिक सुरक्षा एव इंटेलिजेंस संचालन की अग्रिम जिम्मेदारी।

इन घटनाओं ने और प्रधानमंत्री के गैरजिम्मेदार सहायक के मेरे परिवार पर दबाव डालने ने मेरे अंदर के राजनीतिक जीव को परिवर्तन की शक्तियों की तरफ धकेला। ये थीं आर एस. एस. और बी जे.पी.।

मैं एक राजनीतिक जीव था। मैं अपने आप को इंदिरा के बेटे से अलग होने और फिर से संघ की सहायता करने का निर्णय लेने से रोक नहीं पाया। यह मेरा भारत के एक जागरूक नागरिक की हैसियत से सोच-समझ कर लिया गया निर्णय था। यह इंटेलिजेंस सचालक की हैसियत से लिया गया निर्णय नहीं था।

वी.पी. सिंह को मैं नहीं जानता था। मैं उनकी मसीहाई क्षमताओं से भी परिचित न था। उनकी राजनीतिक व आर्थिक दृष्टि से भी मैं अपरिचित ही था। पर उनके साहस और ईमानदारी से मैं प्रभावित था। मेरी स्वाभाविक प्रतिक्रिया अब तक न आजमाई गई एकमात्र राजनीतिक शक्ति बी.जे.पी. की ताकत बढाने की तरफ थी। मैं उम्मीद करता था कि वह भारत को स्वच्छ प्रशासन दे सकती है।

उपरोक्त घटनाओ के कारण मेरे आर एस एस और बी जे पी के मित्रो से सबध और भी प्रगाढ हो गए। हम लोग बी जे पी और उसके माने गए सहयोगी दल वी पी सिह के जनमोर्चा का वोट बैंक बढाने मे जुट गए। के एन गोविदाचार्य पीयूष गोयल उमा भारती देवदास आप्टे एस गुरुमूर्ति और राजेद्र शर्मा बी जे पी के नेतृत्व का प्रतिनिधित्व करते थे। भूरेलाल और वकील इयान कराजीवाला वी पी सिह की तरफ से अक्सर मुझ से मिलने आते। पर मैने उनके देश की बागडोर सभालन से पहल जनमोर्चा के नेता से मिलने या सपर्क बढाने से इनकार कर दिया। मुझे समझाया गया कि चुनाव से पहले की ऐसी मुलाकातो से बहुत लाभ हो सकता है। पर किसी कारण से मै वी पी सिह की निगाहो पर विश्वास नही करता था। वे कही टिकती दिखाई न देती थी।

मेर गणित का मकसद 1989 के चुनावो का एक परिभाषित निष्कर्ष निकालना था। इसके लिए मेरी गैरआई बी टीम सक्रिय थी। मुझे सूचना मिली कि राजीव की काग्रेस को 200 से अधिक सीटे नही मिलगी। जो जीव वी पी सिह के आसपास थे उनसे मै बहुत उत्साहित नही था। खासतौर पर देवीलाल और चद्रशखर जैस हठी व झक्की राजनीतिक जतुओ से। ये दानो ही दलबदल और गले मिलन की राजनीति के मजे हुए खिलाडी थे। दाना के दिलो मे भारत के टूट-फूटे ताज को हथियान की महत्वाकाक्षा की आग धधक रही थी। आपातकाल के गलघोटू वातावरण के बाद ताजा राजनीतिक बयार चाहन वाल देश के लिए जनता पार्टी का प्रयोग बडा भयावह रहा। मै इस बारे मे निश्चित न था कि अच्छी नीयत वाले माडा नरश भारत की जनता के स्पदना का ठीक स समझ पाएगे या नही।

* * * *

भारतीय राजनीति के प्रति मेरा लगाव निस्सदेह मेर सेवा नियमो और इटेलिजेस विभाग / ब्यूरा के लिए सरकार द्वारा बनाए गए नियमा के अनुरूप न था। मेरा फैसला मेरा खुद का था। यह किसी प्रलोभन के कारण न था। मै अपन स्थायी काम को समर्पित था। मैं उस रास्ते पर चल रहा था जो निश्चित रूप से मेरी एजेसी की सेवा के नैतिक मूल्यो के अनुरूप नही था। एक राजनीतिक जीव हान के कारण मैने वही किया जो मेरी अतरात्मा ने मुझे करने के लिए प्रेरित किया। देश के प्रति मेरी भावनाएँ मेरी अपने बॉस के प्रति वफादारी से बढ कर थी।

राष्ट्रीय राजनीति मे मेरी दिलचस्पी के कारण भारत व उस क आस-पास फैले पाकिस्तान के इटेलिजेस ततुओ का पीछा करन की मरी प्रतिबद्धता म काई बाधा नही आई। लेकिन जिस पी सी आई यू की जिम्मेदारी मैने सभाली थी उसक ढाच और कार्या-प्रणाली के साधनो ने मुझे निराश कर दिया था।

भारतीय मुस्लिम समुदाय के अध्ययन के एक भाग क रूप म इस्लाम क प्रसार का अध्ययन अखिल इस्लामवाद के सदर्भ म किया जाता था। यहाँ पाकिस्तान के लिए अलग विश्लेषण डेस्क न था। आज भी ऐसा डस्क नही है। पाकिस्तान पर रणनीतिक युक्तिपरक और भू-राजनीतिक अध्ययन का काम रॉ विदेश मत्रालय और जे आई सी व आई डी एस ए जैसे सगठनो पर छोड दिया गया था। विश्लषण व सचालन डस्को पर कश्मीर पजाब उत्तरपूर्व के सदर्भ मे पाकिस्तान व उस के सैन्य सगठना से सबद्ध बहुत कम ऐतिहासिक शोध सामग्री उपलब्ध थी। जो थी वह घटनाओ के विस्तृत ब्योरे जैसी ही थी।

अफगानिस्तान की घटनाओं ने कई इस्लामी जिहादी संगठनों को जन्म दिया। इनको अब भारतीय क्षेत्र के लिए तैयार किया जा रहा था। हमें इस बात की बहुत कम जानकारी थी कि ये लोग कौन थे और वे किस तरह छद्मयुद्ध का विस्तार करने का इरादा रखते थे। कश्मीर, पंजाब और उत्तर पूर्व के आई.बी. डेस्क बिलकुल अलग-थलग रह कर काम करते थे। इनमें से हरेक अपने इलाके की पहरेदारी बडे उत्साह से करता था। पाबंदियाँ लगा कर सुरक्षा करने के विचार का धार्मिक कट्टरपन जैसी कडाई के साथ पालन किया जाता था। आपस में डाक के आदान-प्रदान से इस तरह नफरत की जाती थी जैसे वह अश्लील सामग्री हो।

नतीजतन पाकिस्तान पर अध्ययन और निगरानी टुकडों में होती थी। इस राजनीतिक शत्रु के बारे में निगरानी क्षेत्रीय प्रमुखों की दिलचस्पी के दायरों के हिसाब से ही होती थी। पाकिस्तान का अध्ययन उस मूल स्रोत के हिसाब से नहीं किया जाता था जो विद्रोह और आतंकवाद को सहायता और संबल दे रहा था, जो साप्रदायिक वातावरण को उग्र बनाते हुए भारत में इस्लामी जिहाद को बढावा दे रहा था। यह न तो कूटनीति की समस्या थी, न ही सेना की। यह तो भारत की आंतरिक सुरक्षा से संबंधित एक अत्यत जटिल समस्या थी। फिर भी मुझे इस तरह की सामग्री नहीं मिल रही थी जो मुझे पाकिस्तान द्वारा उसके दिल्ली व मुंबई के मिशनों तथा पास के ऐसे ही मिशनों के माध्यम से चलाई जा रही विघटनकारी कार्रवाइयों, इंटेलिजेंस व तोड-फोड की हरकतों का विस्तृत ब्योरा दे सके।

पी सी.आई यू. का वास्ता मूलतः पी डी एस आई , पी ए.एफ आई , पी आई.बी और आई एस. आई की मिशन आधारित गतिविधियों से था। (इसे आज भी पाकिस्तान पर अध्ययन करने के मुख्य केंद्र के रूप में काम करने की अनुमति नहीं है)। डेस्क प्रमुखों का दावा था कि वे पाकिस्तान पर अध्ययन कर रहे हैं। मेरी राय में तो वह अंधगज न्याय वाला अध्ययन ही था। आई.बी., एस.आई.बी. और सी ई.ओ. के पास अव्वल तो सगठित इटेलिजेंस यूनिट थे ही नहीं, या फिर विशेष केंद्रित यूनिट थे जो अमेरिका, सोवियत संघ या चीन की कार्रवाइयों की निगरानी रखते थे। कश्मीर और पंजाब जैसे राज्यों मे आई बी के यूनिट मूलत पाकिस्तानी दबाव के अंतिम प्रारूप पर ध्यान देते हुए आतंकवाद का मुकाबला करने या उग्रवादियों का पीछा करने में लगे रहते थे। छद्मयुद्ध के मुख्य स्रोत को अवरुद्ध करने या इटेलिजेंस के लिए गहरी पैठ बनाने की कोई व्यवस्था न थी।

पंजाब व कश्मीर में उग्रवाद विरोधी कार्रवाइयो के चलते नेपाल और बंग्लादेश में आई एस.आई. समर्थित अड्डों के बारे में कुछ विचार सामने आए। लेकिन आई बी. के पास विदशों में कार्रवाई के लिए आधार स्थापित करने की कोई संगठनात्मक व्यवस्था न थी। आई.बी., रॉ और विदेश मंत्रालय के बीच सूचनाओं के आदान-प्रदान की वर्तमान स्थिति भी बहुत असंतोषजनक थी। पडोसी देशों में आई बी के छद्म रूप से काम करने में राजनयिक संवेदनशीलता आड़े आती थी। सार्क देशों में आई बी के अपने संचालक तैनात करने के प्रस्ताव को स्वीकृति नहीं मिली थी। हालांकि हाल ही में कुछ सार्क देशों में कुछेक आई बी. अधिकारी तैनात किए गए हैं। पर ये मुख्यत सुरक्षा सबंधी खुले कामों के लिए हैं, गुप्तचरी के लिए नहीं।

आई.बी. को इन देशों में अनौपचारिक छद्म एजेंट (यू.सी.ए.) रखने की भी अनुमति नहीं मिली। आंतरिक सुरक्षा की व्यवहारिकता का तकाजा तो यह था कि इंटेलिजेंस ब्यूरो को सार्क

देशों में कार्य संचालन की इजाजत दी जाए। लेकिन राष्ट्रीय सुरक्षा के योजनाकारों ने, अगर वे कहीं हैं तो, इस ज्वलंत प्रश्न पर ध्यान नहीं दिया।

ऐसे बहुत से क्षेत्र थे जो अंधेरों में घिरे थे। इनमें सब से महत्वपूर्ण थे :

- पाकिस्तान के गुप्तचर संगठनों के विधिवत अध्ययन की कमी जिसमें सेना इंटेलिजेंस यूनिट और एस.एस.जी. जैसे विशिष्ट यूनिट शामिल थे।
- भारत में आने वाले, अतिरिक्त समय तक रहने वाले/ यहाँ लुप्त हो जाने वाले पाकिस्तानी नागरिकों का पूरा लेखा-जोखा रखने का अभाव। ऐसे भारतीय इस्लामी संगठनों की पहचान करने का अभाव जिनके पाकिस्तानी/बंग्लादेशी इस्लामी कट्टरपंथी संगठनों से संपर्क थे। दिल्ली के क्षेत्रीय पंजीकरण अधिकारी और कलकत्ता, चेन्नई व मुंबई जैसे राज्यों की राजधानियों में उनके प्रतिनिधियों द्वारा पाकिस्तानी नागरिकों का लेखा रखने की व्यवस्था बहुत अपर्याप्त थी। अनेक स्थानों पर इस पद्धति से भ्रष्टाचार की बू आती थी।
- भारत-पाक की स्थल व समुद्री सीमा पर होने वाली हलचलों पर नजर रखने वाले इंटेलिजेंस उपकरणों का अभाव।
- नेपाल व बंग्लादेश सीमा पर निगरानी रखने की व्यवस्था का अभाव।
- देश के विभिन्न भागो में आई.एस.आई. द्वारा इंटेलिजेंस, तोडफोड, विघटन के लिए बनाए मॉड्यूल के आकलन, निगरानी व इंटेलिजेस परिकल्पना का अभाव, और
- पाकिस्तान में स्थित मुजाहिदीन संगठनों और अल कायदा जैसे अंतर्राष्ट्रीय इस्लामी आतंकवादी संगठनों द्वारा भारत के अदर स्थापित मॉड्यूल्स के लिए की जाने वाली गुप्तचरी का अभाव।

मैंने अपने चिंतन के बारे में अपने अधिकारी सुरेश मेहता से बात की। वह बडे संतुलित व संभ्रांत विचारों वाले इंटेलिजेंस टेक्नोक्रैट थे। वह उत्साहित हुए। पर उन्होंने मुझे फूंक-फूंक कर कदम रखने की सलाह दी, क्योकि इससे दिल्ली के कुछ विश्लेषण व संचालन डेस्कों व अधिकांश क्षेत्रीय इंटेलिजेंस प्रमुखों के विचलित हो जाने का अंदेशा था।

उच्चायोग स्थित पाकिस्तानी इटेलिजेंस संचालकों को निष्प्रभावित करने के लिए जो बहुत सी काउंटर-इंटेलिजेंस कार्रवाइयां की गईं, उनका वर्णन करना यहाँ संभव न होगा। 1989 में एक समय में मान्य राजनयिकों के तौर पर काम करने वाले पाकिस्तान के इंटेलिजेंस अधिकारियों की संख्या अनुमानतः नौ थी। इनके अलावा 18 गैरराजनयिक गुप्तचर अधिकारी भी थे। इन सब ने मुझे और मेरी टीम को बहुत व्यस्त रखा। पी.सी.आई.यू. मिशन स्थित पांच संचालकों का पता लगा कर उनको निष्प्रभावित करने में सफल रही। उनको हृष्ट-पुष्ट स्थिति में वापस उनके घर रवाना किया गया। पर पाकिस्तान ने सदा निर्मम हिंसा का व्यवहार दिखाया। वहाँ संदिग्ध भारतीय इंटेलिजेंस सचालकों को सदा निर्ममता से क्षत-विक्षत किया जाता था। वे ढेर सारी रुई और पट्टियों के साथ घर लौटते थे।

1990 में किसी समय गृह मंत्रालय और विदेश मंत्रालय ने पी.सी.आई.यू. को सलाह दी कि वह रंगे हाथों गुप्तचरों को पकड कर भडाफोड़ करने की अपनी कार्रवाई कुछ धीमी कर दें। मुझे बताया गया कि पाकिस्तान भारत की निष्प्रभाव करने की कार्रवाइयों का जवाब ईंट के बदले पत्थर वाले तरीके से देता है। इससे रॉ में इंटेलिजेंस का सूखा पड़ गया है। विदेश

विभाग ने भी उग्र प्रतिक्रिया का अनुभव किया था। बात यह थी कि नियमित राजनयिकों के साथ भी अराजनयिक तरीके का नृशंस व्यवहार किया जाता था।

मेरे पी.सी.आई.यू. के तीसरे साल के दौरान सरकार ने मुझे निष्प्रभावित करने की 'निष्क्रिय' नीति अपनाने को विवश किया। मतलब यह कि भारतीय गतिविधि के किसी भी क्षेत्र में पाकिस्तानी हरकतों का पता लगाने के लिए अपने कौशल का उपयोग करने का पी सी. आई.यू. को पूर्ण अधिकार था। लेकिन उसे अब धरपकड केवल भारतीय सपर्क की ही करनी थी। बाकी विदेश मंत्रालय पर छोड देना था कि वह पाकिस्तान से अपने दोषी अधिकारी को चुपचाप वापस भेजे जाने का अनुरोध करे। मैं नहीं समझता था कि भारत के विरुद्ध प्रत्यक्ष और परोक्ष युद्ध छेड़ने वाला देश इस तरह की राजनयिक शालीनता का हकदार था।

9/11/2001 के बाद की स्थिति में बी.जे.पी के नेतृत्व वाली एन.डी.ए. सरकार ने 'निग्रह की कूटनीति ' के नाम से नई नीति का प्रतिपादन किया। यह किनाराकशी की कोशिश-सी थी। ऐसा लगता था मानो यह अंतर्राष्ट्रीय समुदाय का भयादोहन करने की बचकाना चेष्टा है। इसका उद्देश्य पडोसी के चेहरे की अतिक्रमण की झिल्ली को उतार फेंकना न था। इसका उद्देश्य तो भारतीय जनसाधारण को बेवकूफ बनाना और 'भेडिया आया दौडियो' चिल्ला कर अंतर्राष्ट्रीय समुदाय का ध्यान आकृष्ट करना था। यह तो स्पष्ट ही है कि लंदन या वाशिगटन ने कभी भी इस चीख-चिल्लाहट को गभीरता से नही लिया।

कूटनीति की निष्फलता की पराकाष्ठा का प्रदर्शन 1994 में प्रधानमत्री के मुख्य सचिव ने किया। उन्होंने मुझे व्यक्तिगत रूप से बुला कर पूछने का कष्ट उठाया कि पी.सी.आई.यू. ने किस परिस्थिति में नगर के एक मुख्य सेतु के नीचे पाकिस्तानी उच्चायोग के एक गैर राजनयिक कर्मचारी को पकडा? मैंने उन परिस्थितियों का स्पष्टीकरण दिया जिन मे लबे अरसे तक उस पर नजर रखी गई, पाकिस्तानी अधिकारी को पहचाना गया, रक्षा सेवाओ के एक अंग से संबंधित उसके भारतीय संपर्क की भी पहचान की गई । मुख्य सचिव ने घटना का वीडियो प्रमाण माँगा। रक्षा संबंधी सवेदनशील दस्तावेजों का आदान-प्रदान सेतु के नीचे हुआ था, जहाँ आम जनता की बहुत आवाजाही थी। कोई भी भेदिया ऐसे मिलन-स्थल पर छिपा हुआ कैमरा नहीं लगा सकता था। प्रधानमंत्री के सचिव मेरे इस 'गैर राजनयिक ' तरीके से खुश नहीं हुए। मुझे रिकार्ड किए दस्तावेजों के साथ उनके कार्यालय में जाना पड़ा। इनमें भारत की पोखरण में संदिग्ध नाभिकीय गतिविधि और रूस से ली जाने वाली मिसाइल प्रणाली से संबंधित ब्योरा था। तब जा कर वह सतुष्ट हुए कि सही कार्रवाई की गई है। फिर भी कहा कि मुझे और राजनय-कुशल होना चाहिए था।

मैं सदा पाकिस्तान के विरुद्ध प्रखर व पहल करने वाली सक्रिय प्रति गुप्तचरी व इंटेलिजेंस का पक्षधर रहा हूँ। पर मेरी आवाज बहुत कम सुनी गई और अक्सर उसकी उपेक्षा की गई। पर मैं कभी कूटनीति के धुंधलके वाले दरवाजे पर जा कर ठिठका नहीं। मैंने पाकिस्तान की भारतीय एकता को छिन्न-भिन्न करने की कोशिशों के खिलाफ कड़ा रुख अपनाने की अपनी नीति को अबाध गति से जारी रखा। दरअसल मैंने रनवे से आगे बढ कर निषिद्ध क्षेत्र में उड़ान भरने का निश्चय कर लिया था।

क्या मैं पाकिस्तान के खिलाफ अकेले सिपाही की फौज की तरह लड़ने का इरादा रखता था ? बाद में कभी आई.बी. निदेशक ने मुझ पर वह बिल्ला चिपकाने की कोशिश की ? शायद नहीं। अपना काम मैंने महत्वपूर्ण राष्ट्रीय सेवा समझ कर किया जिसके प्रति व्यवस्था और

राजनीतिज्ञों ने लापरवाही और उपेक्षा का रवैया अपनाया था। पर्याप्त सहयोग मुझे वी.जी. वैद्य के आई.बी. निदेशक बनने पर ही मिला। नाटे कद के यह महानुभाव अत्यत सक्रिय और ऊर्जा से लबालब थे। हमने साथ मिल कर बहुत कुछ किया। इस बारे में विस्तृत चर्चा मैं बाद में करूँगा।

* * * *

पाकिस्तान के भारत मे अग्र-गुप्तचरी झोकने पर अनेक पुस्तकें लिखी जा सकती हैं। यहाँ मैं गुप्तचरी के हथकंडों और तौर-तरीकों की चर्चा तो नहीं करना चाहता लेकिन शक न करने वाले भारतीयों को यह बता देना आवश्यक है कि वे किस तरह पाकिस्तान के प्रशिक्षित संचालकों के जाल में फंस जाते हैं। पाकिस्तान के अग्रिम इंटेलिजेंस संचालक विभिन्न स्थानों से अपनी गतिविधियॉं चलाते है ·

- राजनयिक परिसर
- मीडिया और व्यावसायिक संगठनों में छद्म हैसियत
- छिछली पैठवाले अल्पकालीन एजेंट—पाकिस्तानी व भारतीय दोनों
- दीर्घकालीन निवासी एजेंट
- निवासी एजेंटों का फैलाया जाल
- भारत स्थित जातीय या धार्मिक संगठनों में सुसुप्त लोग, जिनको उपरोक्त पहली या चौथी किस्म के सचालक सक्रिय बना देते हैं या गृह स्थित सचालक लक्ष्य बडी सावधानी से तय किए जाते हैं। मुख्य लक्ष्य होते हैं :
- सुरक्षा संस्थान व प्रतिष्ठान
- वित्त मंत्रालय
- रक्षा संबंधी अनुसंधान, वैज्ञानिक सगठन व उत्पादन सुविधाएँ
- सैनिक हलचल—थल, वायु व नौसेना की स्थितियों का ब्योरा
- पूर्वी व पश्चिमी तट पर नौसैनिक अड्डे
- शस्त्रास्त्रों के परीक्षण स्थल
- गुप्तचर सगठन, नागरिक प्रशासन व सुरक्षा पद्धति मे प्रमुख पद
- मीडिया की हस्तियॉं
- ससद व विधानसभाओ के सदस्य तथा इन सम्माननीय सदनों के अधिकारी
- प्रमुख राजनीतिक हस्तियॉं
- बुद्धिजीवी, और
- सामाजिक लोग

यह सूची तो उदाहरण मात्र है। कार्रवाई तो और भी कई तरह से होती है। इस खेल में नित नए परिवर्तन होते रहते हैं। भारत के जातीय-धार्मिक विद्रोही व आतंकवादी गिरोहों में शामिल पाकिस्तान के सहयोगी अधिकाश जासूसी, तोडफोड व विघटनकारी हरकतों को अंजाम देते रहे हैं। इस स्थिति में उस समय बडा परिवर्तन आया जब पाकिस्तान ने अपने जासूस रंगरूटों को इन वारदातों के लिए लगाना शुरू किया और मुजाहिदीनों को लालकिला व संसद पर हमले जैसी बडी तोड-फोड व विघटन की वारदातें करने के लिए ट्रेनिंग देनी शुरू की। ये एजेंट स्थल व समुद्री मार्ग से विस्फोटक एवं हथियार लाने में भी पाकिस्तान की मदद करते हैं। ध्यान देने की बात है कि भारत में लगभग सभी मुजाहिदीन हमले या तो आई.एस.आई.

या फिर सैनिक शासन द्वारा प्रायोजित होते हैं। उस देश मे तो शीर्ष से या फिर निकट शीर्ष से आदेश के बिना पत्ता भी नहीं हिल सकता।

लिहाजा कार्रवाइयों का केंद्र बिंदु आई.एस.आई., पी.डी.एस.आई., पी.ए.एफ.आई., पी.एफ.ओ. (पाकिस्तान का विदेश विभाग) या फिर वहाँ के शीर्ष सैनिक, प्रशासनिक व राजनीतिक नेतृत्व से बने कट्टर गुट की कार्रवाइयों से ही निकला होता है।

* * * *

हालांकि हिंदुत्व के हिमायतियों ने मुख्यतः 1998 के बाद से पाकिस्तान के छद्मयुद्ध को लेकर 'भेडिया आया' चिल्लाना शुरू किया लेकिन हमारे पडोसी की विद्रोही व आतंकवादी गुटों से सांठगांठ 1956 से ही रही है।

उनका प्रेम सबंध नगा विद्राहियों के साथ शुरू हुआ था जो अभी तक चला आ रहा है। वे हमारे सहोदर के संचालक बांग्लादेश से अपना जाल फेंकते हैं। हालांकि 'विभाजन के एकीकृत एजेंडे' पर कश्मीर पर ही सारा जोर लगाया जाता है लेकिन छद्मयुद्ध असम, नगालैंड, मणिपुर और त्रिपुरा में भी जारी है। देश के शेष भागों में इस्लामी मुजाहिदीनों व अखिल इस्लामी कट्टरपंथियों को उकसाने का काम जारी रहता है। अतर्राष्ट्रीय इस्लामी मॉड्यूल्स ने देश में लगभग हर कहीं अपने अड्डे बना रखे हैं। पाकिस्तानी शासन ने भारत को एक युद्धभूमि बना दिया है। कुछ तो इसे सभ्यताओं की लडाई कहते हैं जो ईसा बाद की 8वीं शताब्दी में शुरू हुई थी। लेकिन वह ब्रिटिश राज में अस्थायी रूप से थम गई थी। मैं यहाँ जाहिल हिंदुओं और धर्मांध मुसलमानों की इस सभ्यताओ की लडाई वाली धारणा की चर्चा नहीं करना चाहता। इस उपमहाद्वीप के मानचित्र पर पिछले 52 साल से अंकित इस युद्ध से हम आगे बढते हैं।

पाकिस्तान की उग्र गुप्तचर-कार्रवाइयों का अदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि उस के वरिष्ठ राजनयिक (छद्म गुप्तचर अधिकारी नहीं) तक सूचना संकलन में सक्रिय रहते हैं। 1989 से 1995 के बीच मैंने पाकिस्तानी विदेश सेवा के कम से कम पांच सदस्यों को भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों में घुसपैठ करते पाया और उनके विरुद्ध रिपोर्ट की। इनमें से एक लंबे-तडंगे सीमाप्रांत के पठान ने संसद और मीडिया के अनेक सदस्यो से अच्छी गांठ कर रखी थी। इनमें से कुछ 'विजित' एजेंट पाकिस्तान के लिए काम करते रहे। इनमें से एक मेरे ही भाषाभाषी थे। इनको मदिरा से सराबोर कर दिया जाता था। नोटों की हरियाली से भी उनको भलीभांति तृप्त किया जाता था। वह आज भी सकिय हैं। आजकल वह कोलकाता के एक राष्ट्रीय साप्ताहिक के स्तंभों की शोभा बढा रहे हैं। गुप्तचर समुदाय के लिए चौथी दुनिया का अति संवेदनशीन होना हमारे हाथ बॉध देता हैं। भारत की जो बहुत सी पवित्र गाय हैं, ये भी उन में से एक हैं।

कई रंग के राजनीतिज्ञों ने मुझे बुला कर उत्तर प्रदेश के एक राजनीतिज्ञ पर टिप्पणी करने को कहा। उन्होंने मुझ से यह भी कहा कि मैं उनको पाकिस्तान की सूली पर चढाने लायक सामग्री उपलब्ध कराऊँ। मेरा तर्क बडा स्पष्ट था। भारत में राजनीतिक नस्ल को ऐसी किसी सूली पर नहीं चढ़ाया जा सकता। अनेक प्रकार के अमीबा की तरह वे भी कानून व संविधान के विभिन्न प्रावधानों के विरुद्ध अपनी प्रतिरोध क्षमता का विकास करते रहते हैं। इन जानेमाने राजनीतिज्ञ को अल्पसंख्यकों, दलितों व उत्पीडितों का मसीहा कहा जाता है। कई इस्लामी देशों के दूतावासों में नियुक्त गुप्तचर अधिकारियों के साथ उनके गुपचुप संबंध हैं। मेरे उच्च अधिकारियों को अपने उपभोक्ताओ को ये सूचनाएँ देने का मौका जरूर मिला होगा।

लेकिन कुछ विदेशी शक्तियों के साथ होने के कारण ही भारत में किसी राजनीतिज्ञ को सूली नहीं दी जा सकती। इसके अलावा मुझे अपने परिवार की सुरक्षा का भी ध्यान था। मुझे पंजाब या कश्मीर के आतंकियों से डर नहीं लगता था। लेकिन अपराधीकृत राजनीतिज्ञों के पिछवाडे बसे कातिलों का डर मुझे जरूर था। आतंकी किसी न किसी आदर्श में विश्वास रखते हैं, ये कातिल सिर्फ पैसे में।

जहाँ तक मान्य राजनयिकों के गुप्तचरी के खेल में दिलचस्पी लेने का सवाल है, मैं दिल्ली की महफिलों और मौजमस्ती से एक-दो उदाहरण दूँगा। दिल्ली के इस उच्च वर्ग के बारे में मेरी जानकारी सतही ही है। फिर भी मैं कुछ फुटकर उदाहरण देने की बेहतर स्थिति में हूँ। ये सत्य और केवल सत्य पर आधारित हैं।

पाकिस्तानी उच्चायोग के कुछ वरिष्ठ मान्य राजनयिक जनसाधन पाने के लिए मौजमस्ती वाला रास्ता अपनाते हैं। ऐसे जनसाधन जो किसी भी लक्ष्य महफिल या नवधनाढ्यों के पर्यंक तक घुसपैठ रखते हों। मेरी निगरानी टीम ने इनमें से कुछ आनंद-विलास में लिप्त हस्तियों की वीडियो रिकार्डिंग की जो दिल्ली के रात्रि ठिकानों, होटलों आदि को इद्रधनुषी रंगों से रंग दिया करती हैं। इनमें से अधिकांश का सबंध बहुत संपन्न घरों से था। कुछ नामी-गिरामी मीडिया की हस्तियों या राजनीतिज्ञों के संबंधी भी इनमे शामिल थे।

एक नामी पत्रकार प्रधानमंत्री (राजीव गॉधी) के निकट मित्र समझे जाते थे। उनकी बहन की पहुंच प्रधानमंत्री आवास से गुजरने वाली लगभग हर गोपनीय सामग्री तक थी। वे उत्तर-पश्चिम सीमाप्रांत मूल के एक पाकिस्तानी राजनयिक की ब्लैकमेलिंग का शिकार हो गईं। पी. सी.आई.यू. ने उनकी कई अंतरंग मुलाकातों की पर्याप्त ध्वनि व प्रकाश के साथ रिकार्डिंग कर ली। प्रधानमंत्री ने पी.एम.हाउस मे घुसपैठ के बारे मे जानकारी काफी खीज के साथ सुनी। मुझे उनको एक ऐसा टेप चला कर दिखाना पडा जो अधिक प्रच्छन्न न था। इस में भले ही कुछ लज्जा का अनुभव हुआ हो पर यह उनको विश्वास दिलाने के लिए जरूरी था कि वह ज्वालामुखी पर बैठे है जो कभी भी फट सकता है। प्रधानमंत्री ने ऐसे सभी छिद्रों को मूंदने में तत्परता दिखाई। उन्होंने जो भी कार्रवाई की उस का ब्योरा देशहित के कारण नहीं दिया जा सकता।

एक और पाकिस्तानी राजनयिक के मधुजाल का उदाहरण एक सेना के ठेकेदार व हथियारों के तस्कर की पुत्रवधू से संबंधित था। यह दो बच्चों की मॉ भावनात्मक दृष्टि से भ्रष्ट थी। उसे इस राजनयिक ने एक पाँच सितारा होटल में फांस लिया। दोनों की निकटता उनको लॉबी से कमरों में और कमरों से सुंदरनगर के एक गेस्ट हाउस तक ले गई। इस गेस्ट हाउस का मालिक उत्तर प्रदेश का एक नामी मुस्लिम परिवार था। पाकिस्तानी उच्चायोग इसके विशेष ग्राहकों में से था। आनंद की घडियॉ चुराने वालो के कार्यकलाप में विघ्न डालना अपराध है। पर मेरे काम ने मुझे उनकी कुछ अंतरंग मुलाकातों को सेलोलाइड पर उतारने को बाध्य कर दिया।

वह महिला इस एक कमजोरी के अलावा बहुत भली थी। इसलिए मुझे उस पर तरस भी आया। मैं उसके पति के गलत आचरण से भी परिचित था। यह महिला अपने आहत मनोवेगों की सच्ची शिकार बन गई थी। हमने इस मधुजाल से होने वाली हानि का आकलन किया तो इस निर्णय पर पहुंचे कि महिला ने रक्षा संबंधी कई संवेदनशील सूचनाएँ उसको दी हैं। उसने इस राजनयिक की भारतीय सेना के एक सेवारत मेजर जनरल (अब सेवानिवृत्त)

से दो मुलाकातें भी करवाईं। शीर्ष स्तर पर फैसला हुआ कि इस्लामाबाद से अनुरोध किया जाए कि वह चुपचाप इस राजनयिक को वापस बुला ले। उस महिला को भी एक व्यक्तिगत चेतावनी दी जाए। मुझे दूसरा अरुचिकर काम सौंपा गया।

उस महिला की पहली प्रतिक्रिया अनुकूल न थी। पर मुझे उसे उसके कारनामे की टेप दिखाने की जरूरत नहीं पडी। वह मेरी बात समझ गई और रोने लगी। मैंने उससे वादा किया कि उस वीडियो टेप को आई.बी. के संग्रहालय के हवाले कर दूंगा। उसके दो प्यारे बच्चों की खातिर उसका राज भी राज ही रखूँगा। मेरे वादे का सम्मान करते हुए उसने उस राजनयिक से संबंध भी समाप्त कर लिए। इतना ही नही उसने मुझे अपना राखीबंद भाई भी बना लिया। मैंने भी हिंदू समाज के इस स्नेहिल बंधन को निभाया।

'मधुजाल 'या 'प्रति मधुजाल' बिछाने की तरकीब पाकिस्तान के इंटेलिजेंस अधिकारियों या राजनयिकों के लिए नई नहीं है। दिल्ली के कुछ अन्य दूतावासो ने भी समय की कसौटी पर कसे जा चुके इस हथियार का रक्षा व इंटेलिजेस के महत्वपूर्ण लक्ष्यों के विरुद्ध भी इस्तेमाल किया है।

इंटेलिजेंस व्यवहार के इस पक्ष से मेरा वास्ता नहीं रहा। लेकिन मैं यहाँ एक ऐसे ही मधुजाल की चर्चा करुंगा। इसका प्रयोग पी.सी.आई.यू. ने पाकिस्तानी मिशन के एक अतिसक्रिय आई.एस.आई. संचालक के विरुद्ध किया था। इस संचालक ने रक्षा के कई लक्ष्यों में सफल घुसपैठ की थी। वास्तविक जीवन में वह पाकिस्तानी सेना का एक जे.सी.ओ था। इसके विरुद्ध पी.सी.आई.यू. के परंपरागत तरीके फेल हो गए थे।

उसके आचार-व्यवहार का विधिवत अध्ययन किया गया। पता चला कि वह पुरानी दिल्ली की एक महिला पर फिदा है। पी.सीआई.यू. ने उस महिला को अपनी टीम में भर्ती कर लिया। उसे पेशे के कुछ आवश्यक गुर सिखाए गए। साथियों को बिस्तर पर ले जाने के खुद के पेशे में तो वह माहिर थी ही। पहले से तय जगह पर एक जाल फैला कर आई.एस.आई के इस संचालक को सिलोलाइड पर भरपूर फिल्माया गया। बाद में भारत के हित के लिए उस का भरपूर इस्तेमाल किया गया। हमारी सिखाई-पढाई महिला अतिसुरक्षा वाले पाकिस्तानी उच्चायोग में कई स्तर भेद कर सूचनाएँ एकत्र करने में सफल रही। इटेलिजेंस ब्यूरो की यह एक बडी सफलता थी।

* * * *

भारत-पाकिस्तान इटेलिजेंस युद्ध का पूरा ब्योरा देना तो इस पुस्तक में संभव नही होगा। पर मैं यहाँ भारत सरकार और प्रशासनिक अधिकारियों के एक और क्षेत्र में कुप्रबंध की चर्चा करना चाहूँगा।

विदेशी नागरिकों के भारी संख्या में भारत आने के मामले ने कई बार पश्चिम बंगाल और असम में राजनीतिक तूल पकड़ा है। इसका विकृत स्वरूप भी देखने में आया है। इनमें बांग्लादेशी और नेपाली प्रमुख रहे हैं। वर्तमान बी.जे.पी. सहित हमारे बहुत से राजनीतिक नेता इस मामले में प्रमुख रहे हैं। लेकिन उन्होंने इसकी विसंगति को दूर करने के लिए लगभग कुछ नहीं किया। कुछ ईमानदार चेष्टाएँ भी हुईं। पर इनका 'धर्मनिरपेक्ष 'राजनीतिक ताकतों ने विरोध किया।

मेरा सरोकार उन पाकिस्तानी नागरिकों से है जो अपने संबंधियों से मिलने भारत आते हैं या कारोबार के लिए थोड़ी घुसपैठ करते हैं। पंजाब में मुख्य आव्रजन स्थल अटारी है। यह

बुरे हाल मे रहा हैं। इसके हर स्तर पर भ्रष्टाचार का बोलबाला था। पी सी आई यू ने अटारी मे अनुव्रजन की अनुमति का कप्यूटरीकरण करने पर जोर दिया। बहुत पीछा करने पर सरकारी सस्था एन आई सी ने एक सिस्टम लगाया। इसे इस्लामाबाद के भारतीय मिशन और दिल्ली के गृहमत्रालय से जोडने की कुछ कोशिशे की गईं। कुछ दिन काम करने के बाद यह ठप हो गया। कारण था प्रशिक्षित कर्मियो की कमी और प्रतिनियुक्ति पर आए पुलिस वालो की इसे चलाने की अनिच्छा। एन आई सी भी अपने किस्म के कप्यूटर लगाना चाहती थी जो मेरी और मेरे विशेषज्ञो की राय मे उपयुक्त न थे।

दिल्ली के डाटा एकत्र करने के केद्र को व्यवस्थित करने की भी कुछ कोशिशे की गईं। राज्यो के विदेशी पजीकरण केद्रो से इसे जोडने के प्रयास भी किए गए। हमने केद्र और राज्यो के बीच जानकारी के आदान-प्रदान को सुचारु बनाने की कोशिश भी की। लेकिन भारत मे कोई भी सिस्टम तभी तक ठीक चलता है जब तक ऑपरेटर उसे चलाना चाहे। अब इसका इस्तेमाल नही किया जा रहा।

अधिकृत तरीके से भारत आने वाले बहुत से पाकिस्तानी नागरिक अपने हितैषियो के बीच लोप हो जाते है। कुछ समय तक वे चुपचाप सोए रहते है। फिर एकाएक जाग कर निवासी एजेंटो के रूप मे काम करने लगते है। इस तरह से सोए से जागे एजेट आमतौर पर असम उत्तर प्रदेश दिल्ली पश्चिम बगाल मध्य प्रदेश राजस्थान गुजरात आध्र प्रदेश और कर्नाटक आदि के क्षेत्रो को अपना निशाना बनाते है। इनमे से कुछ को देश क सवेदनशील इलाको मे कट्टरपथी और इस्लामी मॉडयूल्स सगठित करने के लिए इस्तेमाल किया जाता है।

अधिकृत मार्ग से आकर लोप होने वाले इन पाकिस्तानी नागरिको के अलावा कुछ प्रशिक्षित पाकिस्तानी एजेटो या मुजाहिदीनो की स्थल सीमा या तीसरे देश के रास्ते से घुसपैठ कराई जाती है। 1992 के बाद जबकि पाकिस्तान के छद्मयुद्ध ने भारत की मुख्य भूमि को निशाना बनाया इस तरीके का ज्यादा इस्तेमाल होने लगा।

पी सी आई यू ने भारत के महत्वपूर्ण ठिकानो पर मौजूद प्रशिक्षित पाकिस्तानी एजेटो और मुजाहिदीनो को पकडने की पूरी निष्ठा के साथ कोशिश की लेकिन कुछ प्रमुख राजनीतिज्ञो ने इसे विफल कर दिया। मै यहॉ ऐसे तीन उदाहरण देना चाहता हूँ।

1994 के आसपास पी सी आई यू ने पाकिस्तान मे प्रशिक्षित एक इस्लामी उग्रवादी की पहचान की। वह उत्तर प्रदेश के एक जातीय सामत और धर्मनिरपेक्ष नेता के चुनाव क्षेत्र मे सुरक्षित पते पर रह रहा था। आई एस आई ने उसे देवबदी और वहाबी आस्था वाले भारतीय युवको की भर्ती कर के उनको प्रशिक्षण के लिए पाकिस्तान या पाक अधिकृत कश्मीर भेजने का काम सौप रखा था। काफी लबी निगरानी और जन-गुप्तचरी के बाद उस पाकिस्तानी नागरिक और पाकिस्तान प्रशिक्षित एक भारतीय रगरूट को दिल्ली पुलिस की सहायता से गिरफ्तार किया गया। उन्हे स्थानीय थाने मे ले जाया गया ताकि वहॉ से उनको दिल्ली पुलिस की हिरासत मे लेने की कार्रवाई पूरी की जा सके। उसी शाम प्रधानमत्री कार्यालय से एक ओ एस डी का फोन आया। उसने मुझसे सारी घटना की रिपोर्ट मॉगी। मैने उससे अपने बॉस से बात करने को कहा क्योकि मैं उसके पाकिस्तानी नागरिको से अघोषित सबधो की जानकारी रखता था।

उसी रात उस जातीय सामत और 'धर्मनिरपेक्ष नेता के भाई के नेतृत्व मे अपराधियो के एक गिरोह ने थाने पर धावा बोल कर आई एस आई के उन सचालको को छुडा लिया जिन

में से एक का पाकिस्तानी नागरिक होना सिद्ध हो चुका था। मैंने प्रधानमंत्री कार्यालय और गृहमंत्रालय में विरोध प्रकट किया। पर उसका कोई असर नहीं हुआ। मुझसे कहा गया कि इस मामले पर ज्यादा जोर न दूं क्योंकि ऐसा करना राष्ट्रहित में न होगा।

दूसरा मामला बिहार और पश्चिम बंगाल के सुन्नी-वहाबी मुसलमान युवकों के एक दल का था। इनको आई.एस.आई. और बांग्लादेश के इस्लामी छात्र शिविर द्वारा संयुक्त रूप से राजशाही जिले के निकट जयपुर हाट के एक शिविर में प्रशिक्षण दिया जा रहा था। पी.सी. आई.यू. की जन-गुप्तचरी ने इस्लामी प्रशिक्षकों की विस्तृत सूची सकलित की और बिहार व पश्चिम बंगाल के स्थानीय अधिकारियों से संपर्क किया। दोनों राज्यों की 'धर्मनिरपेक्ष' सरकारों ने हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया। पश्चिम बंगाल के एक वरिष्ठ पुलिस अधिकारी ने मुझे स्पष्ट रूप से सलाह दी कि मैं इस मामले पर जोर न दूँ। उन्होंने कहा कि पश्चिम बंगाल के एक वरिष्ठ मार्क्सवादी नेता अल्पसंख्यक-हितों के बहुत अधिक पक्षपाती हैं। पटना की प्रतिक्रिया भी बेहूदी-सी ही थी। उन्होंने संदिग्ध इस्लामी युवको को पहले से खबर कर दी ताकि वे बांग्लादेश खिसक जाएँ। उसके बाद बड़ी मेहरबानी कर के पी.सी.आई.यू. टीम के साथ जाने के लिए एक पुलिस दल को अनुमति दे दी कि वह उनको पूर्णिया जिले मे अररिया, जोकी हाट, राउता और कनकी के आस-पास के गांवों में ढूँढते फिरें। मुझे यह भी बताया गया कि पटना ने दिल्ली एक विशेष सदेश भेज कर शिकायत की कि आई.बी. की एक टीम ने बदले की भावना से अल्पसंख्यकों को परेशान किया है। मुझे खुद को और अपने साथियों को 'पृथकतावाद व अल्पसंख्यावाद' की राजनीति के पाश से छूटने में दो महीने लग गए।

जिस तीसरी घटना की मैंने अपने पाठकों से चर्चा करने का वादा किया था वह उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ के मंध्यभाग में घटी थी। यहाँ एक 'धर्मनिरपेक्ष नेता' और जातीय सामंत का शासन था। पी.सी.आई.यू. व आई.बी. के संचालन सेल ने सूचना एकत्र की थी कि कुछ पाकिस्तान-प्रशिक्षित विदेशी नागरिक इस्लामी अध्ययन के एक प्रसिद्ध केंद्र की सुरक्षित दीवारो के भीतर से अपनी कारगुजारियॉ जारी रखे हुए हैं। उत्तर प्रदेश की पुलिस और इंटेलिजेंस ब्यूरो की संयुक्त टीम ने वहॉं छापा मारा। उस जातीय सामंत राजनीतिज्ञ और प्रधानमंत्री कार्यालय से इसकी बहुत तीव्र प्रतिक्रिया हुई। बात यह थी कि प्रधानमंत्री कार्यालय भी अपने वजूद के लिए उस राजनीतिज्ञ के दल के सांसदों पर निर्भर था। लखनऊ स्थित मेरे आई.बी. के सहयोगी को उनके पद से हटा कर संगठन से उनकी सेवा अवधि समाप्त कर दी गई। कई अन्य इंटेलिजेंस व पुलिस कर्मियों को हमारे कुछ राजनीतिक नेताओं के पहने धर्मनिरपेक्षता के पवित्र कमरबंद को मलिन करने के अपराध में आग पर भूना गया।

ऐसे और भी बहुत से उदाहरण दिए जा सकते हैं जिन से सिद्ध होता है कि धर्मनिरपेक्षता के ऐसे मामलों ने राष्ट्रीय सुरक्षा को खतरे में डाला है। एक राष्ट्र की हैसियत से भारत को वोट बैंक की क्षुद्र राजनीति से ऊपर उठना होगा।

* * * *

अब बेहतर होगा कि मैं वापस 1988 की घटनाओं की चर्चा करूँ। समय के तूफान ने इनको तोड़-मरोड़ डाला था। घोटालों, बुरे चुनाव नतीजों से परेशान और अभी भी लाभार्थी व अनुभवहीन सलाहकारों के निर्देश में चल रहे राजीव गॉंधी दबाव में आ कर 'पिघलने' लगे थे। आधार के खिसकने से वह हताश होने लगे थे। यह हताशा अक्सर गुस्से में प्रकट होती। ऐसा लगता था कि प्रशिक्षित पायलट का अपने अंदर के दिशानिर्देश देने वाले राडार से संपर्क

टूट गया था। उनका राजनीतिक व प्रशासनिक तंत्र पर नियत्रण नहीं रहा था। जैसा कि गीता में कहा गया है, उनके गुस्से और निराशा ने उनका आत्मविश्वास हर लिया था। यह विनाशकारी बगूले के आने का निश्चित लक्षण था जो नेहरू-गॉधी परिवार के तीसरे वंशज को अपने साथ बहा ले जाने वाला था।

सामयिक घटनाओं के इतिहासकारों ने राजीव गॉधी को या तो सर्वोत्तम रंगों में चित्रित किया है या उनका चित्रण करने के लिए काले से काले रग तलाश किए है। यहॉ यह समझने की जरूरत है कि कुचक्री कांग्रेसियों का गुट नेहरू-गॉधी वंश परंपरा को बनाए रखना चाहता था। उसने इस विस्तृत और जटिल देश का उत्तरदायित्व राजीव के कधों पर डाल दिया। थोडे समय की सिखाई के बाद भारत की नाव खेने की योग्यता उन मे नही आ सकती थी। कोई भी देश एक जीवंत सरचना होती है। उसे चलाना परीक्षणिकों का काम नहीं है। राजीव को थोडे से राजनीतिज्ञों और प्रशासको ने क्लासे ले कर थोडे से पाठ पढाए थे। उनको इंदिरा गॉधी की मौत के बाद के उथल-पुथल वाले मौसम मे धरती से आ लगे लोकतंत्र का विमान उडाने की तरकीबें सीखने के लिए पर्याप्त समय नही मिला। उनको विरासत में कॉटों का ताज मिला था।

हड्डियों तक कंपकंपा जाने पर राजीव गॉधी के गिर्द के कुछ शुतुरमुर्गो ने उनको राय दी कि परिवार के पुराने वफादार आर.के. धवन को उसे वीराने से खोज कर फिर वापस बुला लें जहां उन्होंने धवन को प्रधानमत्री की शपथ लेते ही भेज दिया था। उनके सचिव ने मुझे बुला भेजा। उसने मुझे प्रधानमंत्री से उनके रेसकोर्स रोड के शिविर कार्यालय में मिलने को कहा। राष्ट्र के इस घिरे हुए नेता के लिए मेरा चेहरा अनजाना न था। उन्होंने जानना चाहा कि क्या मैं अब भी धवन के सपर्क में हूँ। मेरे हामी भरने पर उन्होने आगे पूछा कि इस समय धवन की मनःस्थिति क्या है और आने वाले लोकसभा चुनावों में उनकी उपयोगिता की क्या संभावना है ? मैंने प्रधानमंत्री को बताया कि धवन आज भी इदिरा गॉधी के वफादार कांग्रेसियों को जुटाने में उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। अगर उनको स्वतंत्र रूप से काम करने दिया जाए तो वह कुछ बेहतर परिणाम दिखा सकते हैं। मैंने अपने नियंत्रक अधिकारी को इसकी सूचना नहीं दी।

मै मिश्रित भावनाओं के साथ इस मीटिंग से बाहर आया। जनकार्य सचालन की राजीव की योग्यता पर से मेरा विश्वास समाप्त हो गया था। मैंने दूसरे विकल्प आर.एस.एस. की राजनीतिक अगाडी भारतीय जनता पार्टी की मदद करने का मन बना लिया था।

लेकिन इंदिरा गॉधी के बेटे की लिए मन मे उपजने वाली दया की लहर मुझे सदेह में डाल देती। क्या मैं उचित काम कर रहा था ? क्या 1977 के भ्रष्ट जनता प्रयोग को एक और मौका दिया जाना चाहिए ? क्या वी.पी. सिंह इतिहास का सही चुनाव थे ? संघ परिवार के मेरे मित्र क्या अपने चारों और घेरी गई सभ्यता की दीवार लाघ कर देश को स्थायी सरकार दे पाएंगे? क्या मुझे राजीव गॉधी को समर्थन जारी रखना चाहिए ? मेरी स्थिति एक विभाजित व्यक्ति की सी हो गई थी। घटनाएँ बहुत ही जीवंत हो उठी थीं। घटनाचक्र ने प्रधानमंत्री के गिर्द जो फंदा कसना शुरू कर दिया था उससे उनको मुक्त कराना उनके किसी भी हितैषी या संचालक के वश में नही था।

* * * *

इस बीच पी.सी.आई.यू. में मेरी बढती जिम्मेदारियों ने मेरी गतिविधियों को बहुत बढा दिया था। मैंने देश भर में पी.सी.आई.यू. के सेल का क्षेत्रीय गठन आरंभ कर दिया था। इस बारे में मैं कुछ बाद में चर्चा करना चाहूँगा। मेरी वरीयता राजस्थान और गुजरात में पाकिस्तान के साथ लगती सीमा के मार्गों पर ध्यान देने की थी। इन महत्वपूर्ण मार्गों का पाकिस्तान पूरा-पूरा फायदा उठा रहा था। यहाँ से वह प्रशिक्षित हथियारबंद सिख उग्रवादियों की घुसपैठ कराता था। पंजाब व राजस्थान की सीमा से लगे तेजेके, चट्टेके, नालियांनवाला, बहावलनगर, बाला एरिया, फकीराबाद, हारुनाबाद और फोर्ट अब्बास स्थित आई.एस.आई. व पाक डी.एम. आई. की यूनिटों ने हमारी राष्ट्रीय सुरक्षा पर कहर बरपाना शुरू कर दिया था। ये चौकियाँ सिख उग्रवादियों, प्रशिक्षित इस्लामी विघटनकारियों व गुप्तचरों को भेजने के अग्रिम अड्डों का काम करती थीं। हमारी भौतिक सुरक्षा बहुत कमजोर थी। इंटेलिजेंस की मौजूदगी भी न के बराबर ही थी। मैंने जयपुर के कई चक्कर लगाए। वहाँ मैंने राज्य पुलिस और इंटेलिजेंस तंत्र पर सीमा पर इंटेलिजेंस व पुलिस की मौजूदगी की आवश्यकता का एहसास दिलाया। केंद्रीय गृहमंत्रालय ने भी इसमें अपनी भूमिका निभाई। मैंने सीमावर्ती चौकियों की लंबी यात्राएँ कीं। मैंने देखा कि वहाँ साधनों और कर्मियों की बहुत जरूरत थी। इन यात्राओ ने मुझे नए इंटेलिजेंस लक्ष्य निर्धारित करने और सीमापार छिछली घुसपैठ करने वाले एजेंट बनाने का मौका दिया। हम पाकिस्तान की कुछ चौकियों में पैठ बनाने मे सफल रहे।

ऐसी ही एक यात्रा के दौरान मैं हिंदूमलकोट के सीमावर्ती क्षेत्र में अनूपगढ गया। रास्ते में मैं श्री करणपुर और रायसिहपुर भी रुका था। 12 फरवरी 1989 को रायसिंहपुर की सीमावर्ती इंटेलिजेंस चौकी पर था। वहाँ मुझे हारुनाबाद की आई.एस.आई. चौकी से एक सीमापार के एजेंट से मिलना था। उसने पहले सूचना दी थी कि चौधरी नाम के एक संचालक ने वहाँ 40 हथियारबंद सिख उग्रवादियों को जमा कर रखा है। वह देर रात आया। उससे तुरंत जानकारी ली गई और सुबह जल्दी ही उसे वापस भेज दिया गया।

मैं आगे अनूपगढ़ जाने की तैयारी कर रहा था। तभी दिल्ली से आए एक जरूरी फोन ने मुझे रोक दिया। मेरे बॉस ने मुझे तुरंत लौटने को कहा। एक बहुत आवश्यक काम के लिए मेरी जरूरत थी। आदेश पुरजोर था। मैंने गाडी के पहिए दिल्ली की तरफ मोड दिए। रेगिस्तान के रेतीले रास्तों, सूखे नदीतलों और ऊबड-खाबड रास्तों से होता हुआ मैं 12 घंटों में दिल्ली पहुँचा।

रात के 10 बजे के करीब मैंने अपने चीफ बॉस को रिपोर्ट किया। मुझे अगले दिन सुबह जल्दी ही जरूरी काम के लिए उनसे मिलने को कहा गया। सुबह की बात पाँच मिनट में खत्म हो गई। मुझसे कहा गया कि मैं राजेंद्र कुमार धवन से मिल कर उन्हें राजीव गाँधी के निजी स्टाफ में शामिल होने के लिए राजी करू।

आखिर मैं ही क्यों ? इसका भी स्पष्ट उत्तर मिला। फरवरी 1989 में धवन किसी एकाकी भिक्षुक की तरह रह रहे थे। वह सिर मुंडा कर पूरी श्रद्धा से पूजा-पाठ मे लग गए थे। वह गोल्फ लिंक के पिछवाड़े की गलियों में अकेले घूमा करते थे। राजनीति में सक्रिय लोग उनसे दूर ही रहते थे। उद्योग-व्यापार की बड़ी हस्तियाँ उन्हें प्लेग की तरह मान कर दूर भागती थीं। सेवारत प्रशासक अछूत की तरह उनकी खिल्ली उडाते। मेरे जैसे कुछ ही मूर्ख थे जो नियमित रूप से उनसे मिलते रहते थे। उच्च अधिकारियों और दोस्तों ने कई बार सावधान भी किया पर मैंने कभी परवाह नहीं की।

शाम को मैं जरा देर से उनके यहाँ पहुचा। धवन मुझे देख कर हैरान हुए। मैंने बडे उद्वेग के साथ उनको समाचार दियाँ। वह एक आहत व्यक्ति थे। राजीव के साथियों के कहने पर जस्टिस ठक्कर ने उन पर इंदिरा गाँधी की हत्या की जिम्मेदारी की तोहमत लगा दी थी। पहले तो उन्होंने साफ इनकार किया। मुझे भी इसी की उम्मीद थी। पर मैं उनको इस बात के लिए राजी कर सका कि राजीव के कार्यालय में लौटने से उनकी जस्टिस ठक्कर का लगाया दाग मिट जाएगा। वह इस शर्त पर राजीव के पास जाने को राजी होंगे कि प्रधानमंत्री सदन में उनको इस तोहमत से छुटकारा दिलाएंगे और संबद्ध मंत्रालयों की फाइलों से भी उनका नाम इस मामले से हटाया जाएगा। वह एक विश्वासघाती का कलंक ले कर क्यों मरना चाहते हैं। शायद उनको पैसे और ओहदे की परवाह नहीं थी। पर वह अपने नाम पर लगा कलंक जरूर धोना चाहते थे। अंततः धवन राजी हो गए जब मैंने उन से कहा कि मैं प्रधानमंत्री को उनकी तरफ से नोट भेजने का एक मसौदा तैयार करता हूँ। इस में मैं स्पष्ट करूंगा कि उनके प्रधानमंत्री का विधिवत सहायक बनने से पहले ठक्कर की लगाई तोहमत को साफ करना कितना जरूरी है। यह भी कि उनको भारत सरकार के अतिरिक्त सचिव का पद और अधिकार दिए जाने चाहिए। मुझे यकीन है कि धवन ने इस मामले में अपने अन्य मित्रों और विशेषज्ञों से भी सलाह की होगी।

राजीव गाँधी धवन से अपने शिविर कार्यालय मे मिले। कुछ दिनों बाद उनको प्रधानमंत्री के कार्यालय में फिर से स्थान मिल गया पर उनका ओहदा घटा दिया गया। धवन का अब वह प्रभाव या अधिकार न थे जो इंदिरा गाँधी के शांतिपूर्ण दिनों में उनके पास थे।

जैसी कि मुझे आशंका थी, छिपे शिकारियों ने छुरियाँ-कैंचियाँ ले कर धवन के डगमगती कुर्सी पर बैठते ही अपनी करतूतें शुरू कर दीं। सतीश शर्मा, एम.एल. फोतेदार और मणिशंकर अय्यर इस गुट के मुखिया बन गए। उनको अपने मैदान में 'स्टेनोग्राफर' का दोबारा आना नागवार गुजरा। जब तक धवन लौटे राजीव राज्य तंत्र पर से नियंत्रण खो चुके थे।

नवंबर 1989 के चुनावों के संभावित परिणामों की 'मार्ग' ने काफी सही भविष्यवाणी की थी। इस मार्केटिंग और रिसर्च ग्रुप ने इंदिरा कांग्रेस को 195 सीटें दी थीं। इंटेलिजेंस ब्यूरो के निष्कर्ष भी 'मार्ग' से भिन्न न थे। लेकिन आई.बी. के कुछ तत्व अभी भी आईने में देखना पसंद नहीं करते थे। उनमें से कुछ ने, जिनमें डाइरेक्टर आई.बी. के विश्वासपात्र शामिल थे, प्रधानमंत्री की मंडली को यह संख्या बढ़ा कर 273 सीटें बताई। इस तरह आंकडे बदलना कोई नई बात न थी। खासतौर से जब विश्लेषकों व संचालकों की आँखे सत्ता के बहुत पास रहने से चौंधियाँ गई हों और वे यथार्थ से दूर हो गए हों। वसंत साठे, गुलाम नबी आज़ाद और विश्वजीत पृथ्वीजीत सिंह जैसे राजीव के निकटवर्ती शुतुरमुर्ग मीडिया के कुछ शुतुरमुर्गों के साथ मिल गए और उन सब ने राजीव के गिरते मनोबल को संभालने की असफल चेष्टा की।

प्रधानमंत्री कार्यालय में उनके दोबारा आ जाने के बाद मैंने धवन को स्पष्ट कर दिया था कि मैं उनकी चुनाव के मामले में औपचारिक रूप से कोई सहायता नहीं कर सकूँगा। क्यों? उन्होंने मुझ से सवाल किया। मुझे अपने मित्र को जवाब देना जरूरी था जो एकदम स्पष्ट था। मुझे राजीव गांधी की काबिलीयत पर विश्वास नहीं रह गया था। उनके कुछ स्वार्थी मित्रों पर अंधविश्वास ने मेरा मोहभंग कर दिया था।

मेरा विश्वास वी.पी. पर भी न था। पर बी.जे.पी. की एक संभावित विकल्प के रूप में सहायता करने में मुझे कोई बुराई नजर नहीं आती थी। धवन मुझसे सहमत न थे। पर हम

मित्र बने रहने पर सहमत थे और मैंने व्यक्तिगत तौर पर उनको सहायता का वचन दिया। मैंने अपना वादा निभाया और धवन को अपने अनौपचारिक चुनाव अध्ययन की जानकारी दी। इसका निष्कर्ष चौंका देने वाला था। राजीव के 190 सीटों से आगे निकलने की उम्मीद न थी। धवन भी राजीव गाँधी के अन्य सहायकों की तरह आशा के विपरीत आस लगाए बैठे थे। वह अब भी उम्मीद लगाए थे कि वह वी.पी. सिह के नेशनल फ्रट व उस के बी.जे.पी. एवं मार्क्सवादी सहयोगियों के खिलाफ पासा पलट सकते थे। इंटेलिजेंस ब्यूरो को वी.पी. सिंह के नेशनल फ्रंट के साथियो को लक्ष्य बनाने को कहा गया। इनमें चंद्रशेखर, रामकृष्ण हेगडे, चौधरी देवीलाल व अन्य प्रमुख थे। राजीव गॉधी को उम्मीद थी कि इन नेताओं को फोडा जा सकता है, जैसा कि उनके छोटे भाई ने कभी जगजीवन राम चरण सिह और राजनारायण आदि के साथ किया था। राजीव के कुछ सहायक मेनका गॉधी व उनके मायके के दोस्त हेगडे तथा वीरेन शाह के संपर्क में भी थे। पर ये नेता राजीव गॉधी के विरुद्ध चल रही लहर के खिलाफ तैर नहीं सकते थे। इसलिए इन्होने तब तक वी पी सिह के साथ तैरना बेहतर समझा जब तक कि उस तरह की भूमिका निभाने लायक न हो जाएँ जो चरण सिह ने मोरारजी देसाई के साथ निभाई थी।

आई.बी. के निदेशक राजीव गॉधी के अच्छे मित्र थे। लेकिन उनके प्रधानमत्री की तरह ही उनके चारों ओर भी विश्वस्त सहायक न थे। कई वरिष्ठ व मध्यम श्रेणी के आई बी. अधिकारी गुपचुप तरीके से नेशनल फ्रट के नेताओं के सपर्क में थे। उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश और राजस्थान के कई ठाकुर नेता वी पी. सिह की तरफ हो गए थे, क्योंकि वह भी ठाकुर थे। उत्तर प्रदेश के एक उन्मादी ठाकुर वरिष्ठ प्रशासक भूरेलाल और विनोद पाडे से निरंतर संपर्क साधे हुए थे जो कि विद्रोही नेता के विश्वासपात्र थे। वह चौथी दुनिया के ऐसे कुछ सदस्यों के लिए सपर्कनली बने हुए थे जो वी पी सिह के लिए बडी मेहनत कर रहे थे। लेकिन आई. बी. मैं एन.एफ. के नेताओ आरिफ मुहम्मद खान, मुफ्ती मुहम्मद सईद और राजीव विरोधी विद्याचरण शुक्ल जैसे नेताओं के साथ सपर्क साधने वाले सब से सक्रिय अधिकारी xxxx थे। वह आई.बी के सब से संवेदनशीन डेस्क के प्रमुख थे। इसका काम सीधे निदेशक आई.बी. को रिपोर्ट करना और प्रधानमत्री कार्यालय की आवश्यकताओ की पूर्ति करना था। उनकी कश्मीर की पृष्ठभूमि ने उन्हे मुफ्ती मुहम्मद सईद से संपर्क साधने में सहायता की। उन्होंने उनके साथ आई.बी की जानकारी का खजाना चुपचाप बाटा। यह संगठन की उच्च कोटि की राजनीतिक इंटेलिजेंस थी। वी पी. सिह के गृहमत्री मुफ्ती मुहम्मद सईद ने उनकी सेवाओं का फल उन्हें जम्मू-कश्मीर का पुलिस महानिदेशक बना कर दिया।

पी.सी.आई.यू. और पंजाब के मामलो मे अपनी व्यस्तता के बावजूद मैं निस्संदेह अपने आर.एस.एस. और बी.जे.पी. के मित्रो के संपर्क मे रहा। मुझे इस बात का एहसास था कि व्यक्तिगत तौर पर भी मुझे राजनीति में लिप्त नहीं होना चाहिए। मैं हमेशा किनारों पर रहा। मैं हमेशा अपने भीतर लडने वाली दो गिलहरियों में से एक से हारता रहा हूँ। मैं ऐसा ही हूं। मैंने सोचा कि देश में बेहतरी के लिए शासन परिवर्तन में सहायक होना मेरा कर्तव्य है। इंदिरा गांधी के बेटे के लिए मेरे मन में पूरा आदर भाव था। पर मैं यह भी जानता था कि वह अभी भारत जैसे जटिल देश के नेतृत्व के लिए पूरी तरह परिपक्व नहीं हुए थे।

अक्सर के.एन. गोबिंदाचार्य उमा भारती के साथ हमारे यहाँ आते थे। हम इकट्ठे भोजन करते और जानकारी का आदान-प्रदान करते। हमने ऐसे चुनाव क्षेत्रों की विस्तृत सूची तैयार

की जिन में बी.जे पी. इंदिरा कांग्रेस और एन एफ के उम्मीदवारों से पिछड रही थी। जाति और वर्ग के आधार पर एक और सूची भी तैयार की गई। यह हिदी क्षेत्रों, राजस्थान, गुजरात व दक्षिणी प्रायद्वीप के कुछ प्रमुख क्षेत्रो से संबंधित थी। हमने इंदिरा कांग्रेस की प्रत्यक्ष और संभावित रणनीति पर चर्चा की। विशेष रूप से महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, कर्नाटक व आंध्रप्रदेश के उस के मजबूत गढों के संदर्भ में। यह काम मैंने आई बी के रिकार्ड देखने और धवन से इस बारे में चर्चा किए बिना किया। इसके लिए मेरे अपने ही साधन पर्याप्त थे।

एस. गुरुमूर्ति, वेदप्रकाश गोयल, राजेद्र शर्मा, देवदास आप्टे और पीयूष गोयल भी गोविंदाचार्य और उमा के अतिरिक्त आते रहे। पीयूष तो हमारे घर के पॉचवें सदस्य की तरह माना जाता था। उसके लिए एक बिस्तर और अतिरिक्त प्लेट लगभग रोज तैयार रखी जाती थी। 1989 में पीयूष आर एस एस या बी जे पी का सक्रिय सदस्य नही था, पर उसकी प्रतिबद्धता सघ परिवार के किसी सदस्य की प्रतिबद्धता से कम न थी। मैं आज भी पीयूष और उसकी पत्नी सीमा की मित्रता को पसद करता हूँ जो स्नेह से परिपूर्ण है।

गोविंदाचार्य के साथ मेरा सैद्धातिक विकास हुआ। वह मुझे इन सब में सब से अधिक सुस्पष्ट और बहुमुखी लगे। वह आर एस एस. की राजनीतिक अगाडी को सत्ता तक पहुँचाने के लिए अति उत्साहित थे। उनकी आशावादिता, बुद्धि की कुशाग्रता और काम करने की अदम्य क्षमता एक प्रकार की कारुणिकता के पर्दे मे छिपी थी जो बहुत प्रच्छन्न न था। कोई महिला किसी आदमी के अदर प्रेम के लक्षणो को पहचानने मे बहुत दक्ष होती है। सुनदा ने मेरा ध्यान इस ओर आकृष्ट किया कि गोविदा और उमा एक-दूसरे से प्रेम करते हैं। हम ने इस ओर ध्यान दिया तो उनकी नजरो और मुस्कान की कोमलता व स्त्री-पुरुष के आचरण को पहचानने मे देर न लगी जो उनके आदर्श व राजनीतिक संबधो से भिन्न था।

उमा ने अनेक बार मेरी स्वर्गीय पत्नी से कहा कि वह गोविंदा से विवाह करना चाहती हैं। पर इसके लिए उसे आर एस एस के शीर्ष अधिकारियों से अनुमति लेनी होगी और संन्यासिन का चोला विधिवत त्यागना होगा। हम आशा करते थे कि कभी वह दिन आए जब ये दो शुद्ध आत्माएँ विवाह के पवित्र बधन मे बध जाऐं।

निकट भविष्य में तो ऐसा होना नहीं था। गोविदाचार्य प्रचारक थे। उनको विवाह की अनुमति नहीं मिली। आर एस एस ने उनको एक मिशन पूरा करने को दिया हुआ था। उनको बी जे पी के राजनीतिक उत्थान के लिए काम करना था। उमा को राजनीतिक भूमिका तो निभानी ही थी। एक विशेष काम भी उनके जिम्मे था -- हिदुत्व का प्रसार तथा अयोध्या राम मंदिर के लिए प्रचार करना। इस बहुत भले युगल की भावनात्मक मॉंग पर सैद्धातिक व राजनीतिक मॉग हावी रही। यह देख कर मेरा और मेरी पत्नी का चित्त खिन्न हो गया।

नवंबर 1989 के चुनावो से थोडा पहले गोविदाचार्य और गुरुमूर्ति ने आग्रह किया कि मैं बी.जे.पी. अध्यक्ष लाल कृष्ण आडवाणी से मिलूँ। हम उनके पडारा पार्क निवास पर दो बार मिले। यह हमारी बापू नगर की सरकारी आवासीय कालोनी से सडक पार ही था। मैं सफेद बालों और मूंछों वाले नेता की कुशाग्रता से प्रभावित हुआ। संघ परिवार के जिन नेताओं से मैं मिला था, वह उनसे आगे थे, केवल गोविंद को छोड कर। मुझे यकीन हो गया कि एक दिन वह धर्मनिरपेक्ष सरकार में नेता बनेंगे। उन्होंने मुझे बताया कि उनकी धर्मनिरपेक्षता की सोच राज्य की मुक्त नीति के रूप में है न कि पृथकतावाद के रूप में। यह मेरे विचारों से मेल खाती थी।

1989 के चुनाव परिणाम ने सिद्ध कर दिया कि गोविंदाचार्य और संघ परिवार के अन्य नेताओं के प्रयास और परिश्रम सफल रहे हैं। मैंने अपने प्रयत्नो को भी नज़रअंदाज नहीं किया। पर मैं अपने विनम्र सहयोग की खुलेआम चर्चा नहीं कर सकता था। यह वह राजनीतिक शक्ति थी जिसके साथ मैं अपने शैशव से ही निकट संबंध रखता था। संघ परिवार के कुछ प्रमुख सदस्य, जो स्मृतिलोप से ग्रस्त न थे, उन्होंने इस बात की सराहना की कि मैंने अपनी प्रतिबद्धता के चलते अपनी नौकरी और पारिवारिक सुरक्षा को जोखिम में डाल दिया था। यह सेवा मैंने इस विश्वास के कारण की थी कि इस समय यह एक राष्ट्रीय आवश्यकता है।

कोई भी व्यक्ति बिल्कुल कोरा नहीं होता। राजीव गॉधी भारत जैसे देश को चलाने में चाहे कितने अक्षम रहे हों, उन में रणनीतिक कल्पनाशीलता की कमी न थी। उन्होंने देश का उतना अहित नहीं किया जितना उनका स्वयं का अहित किया गया। कश्मीर मे उन्होंने जरूर गलती की जब गॉधी-नेहरू परिवार की परंपरा के अनुरूप सारे अंडे एक टोकरी में डाल दिए। इस उथल-पुथल से ग्रस्त राज्य की जनता को उनके सभी तरह के तौर-तरीकों में अविश्वसनीयता की बू आती रही है। जब राजीव नेहरू-गाँधी परिवार के सिंहासन पर बैठे और उन्होंने फिर एक बार सारे अंडे अब्दुल्ला परिवार की टोकरी के हवाले किए, उस समय तक उपमहाद्वीप व पड़ोस में भू-रणनीतिक स्थितियॉ बहुत बदल चुकी थीं। अब दिल्ली की ओछी जोडतोड के लिए वहाँ गुंजाइश नहीं बची थी।

इंटेलिजेंस संचालकों सहित प्रशासकों की एक पूरी पीढ़ी नेहरू-गॉधी-अब्दुल्ला परिवार के एक टोकरी वाले सहजीवन के साथ बडी हुई थी। उनमें से अधिकाश अब कश्मीर के बारे मे किसी और नई सोच को अवरुद्ध करने के आदी हो चुके थे। वे वहाँ कोई नवीन प्रयोग नहीं करना चाहते थे। उस समय तक पाकिस्तानी शासन अपना ध्यान अफगानिस्तान से हटा कर पंजाब और कश्मीर पर केंद्रित कर चुका था। छद्मयुद्ध अब संहारक रूप ले चुका था।

राजीव को कश्मीर में नया प्रयोग करने की अनुमति नहीं मिली। अलबत्ता उन्होंने पंजाब में कुछ नयापन दिखाया। हालांकि मैं पी.सी.आई.यू. और पाकिस्तान के मामलों मे व्यस्त था, मेरी सेवाएँ पंजाब में भी ली गईं।

संसदीय चुनाव लडने वाले कुछ उग्रवादी छवि के नेताओं को मनाने के संभावित प्रभाव को लेकर एक प्रयोग किया गया जिसमें मेरा पूरा सहभाग रहा। मैंने ए.आई.एस.एस.एफ. के धडे, एस.एस. मान के निकटवर्ती कुछ लोगों, दमदमी टकसाल,शिरोमणि अकाली दल (जे.) जगदेव सिंह तलवंडी व जसबीर सिंह रोडे आदि नेताओं से सपर्क साधने का काम किया। इस प्रयोग का उद्देश्य शिरोमणि अकाली दल की मुख्य धारा को सीमित करना और उग्रवादियों द्वारा प्रायोजित नेताओं को मुख्यधारा की लोकतांत्रित पद्धति से परिचित कराना था। राजीव ने असम में इसकौशल को आजमाया था और वहाँ उनको ए.ए.एस.यू. की गतिविधियों को सीमित करने में आंशिक सफलता भी मिली थी। लेकिन पंजाब का खेल तो इससे अलग ही था। पाकिस्तान अब भी भारत की गर्दन के पीछे फुफकार रहा था और डा. सोहन सिंह की अध्यक्षता वाली दूसरी पंथक कमेटी का रवैया बहुत कठोर था। हिंसा का दौर तेजी से बढ़ रहा था। भारतीय पंजाब में घटनाएँ पाकिस्तान और आई.एस.आई. के इशारे पर घट रही थीं।

जो तस्वीर उभर कर आई वह काफी भ्रमित करने वाली थी। मान, बाबा जोगिंदर सिंह (भिंडरांवाले के पिता) और जसबीर सिंह इस गर्व में चूर थे कि दिल्ली उनके सामने टाट ओढ़े भस्मी लगाए, घुटने टोकने को बेताब है। मान बिहार की एक जेल में बंद थे। उन से बात

करना मुश्किल था। उनके चारो ओर जो मध्यस्थ थे, उनकी दिलचस्पी रुपयो की थैलियो मे ज्यादा और राज्य मे शाति बहाल करने मे कम थी। सिमरनजीत सिह मान मेरी तरह भारतीय पुलिस सेवा मे थे। वह एक आहत व्यक्ति थे। पर वह इस भ्रम के भी शिकार थे कि किसी भी रूप मे प्रतिरोध करना शहीद के दर्जे तक पहुँचा सकता है। वह नही समझते थे कि कब समझौता न करने वाला प्रतिरोध त्याग कर कब सकारात्मक बातचीत के लिए राजी हो जाना चाहिए। इस वीर नायक की एक त्रासदी यह भी थी कि उन्हे युद्ध कला का ज्ञान न था और वह शाति के लिए रास्ता खुला रखना भी नहीं जानते थे। उनका आचरण ऐसा था मानो पजाब के फीजो हो।

राजीव गॉधी चाहते थे कि उग्रवादी चुनाव प्रक्रिया मे भाग ले। पजाब के कई नेताओ ने मान की तरफ से मध्यस्थता की। मेरी दिलचस्पी दमदमी टकसाल के जसबीर सिह रोडे की अगुआई वाले गुट, प्रथम पथक कमेटी से सबद्ध उग्रवादिया के एक धडे जिसे अतिदरपाल सिह के खालिस्तान लिबरेशन आर्गनाइजेशन और दूसरी पथक कमेटी मे उसके साथियो का भी गुपचुप सर्मथन प्राप्त था इन सब की पहल मे थी। दमदमी टकसाल द्वारा उनकी कोठरी मे भेजे कुछ लोगो से मान ने स्पष्ट कर दिया था कि वह चुनाव का खेल खेलने को तैयार हैं।

परपरागत अकाली दल के अलावा पजाब के चुनाव मैदान मे प्रमुख दलो मे इदिरा काग्रेस जनता दल बी जे पी मान अकाली दल शामिल थे। दूसरी पथक कमेटी के प्रमुख धडे और मुख्य उग्रवादी गुट चुनाव मे हिस्सा लेने को तैयार न थे। पाकिस्तान से मिलने वाली सूचनाओ से पता चला कि आई एस आई चुनाव प्रक्रिया मे विघ्न डालना चाहती है। लोकतात्रिक चुनाव अक्सर राजनीति के ऊबड-खाबड मार्ग को समतल करने और खलबली मचाने वाली भूलो को सुधारने मे मदद करते है। कश्मीर मे दिल्ली की भूलो को सुधारने के लिए इसके हस्तक्षेप की तैयारी पूरी हो चुकी थी। आई एस आई बेनजीर भुट्टो की लोकतात्रिक सरकार को बदनाम करने पर आमादा थी। वह भारतीय प्रधानमत्री की आरभ की गई शाति प्रक्रिया को भी विफल करना चाहती थी। जिया अब नही थे। लेकिन सैनिक शासन का भूत ज़ुल्फिकार की बेटी के सिर पर अब भी मडरा रहा था जो शासन तत्र के साथ चलने को राजी न था।

इन हालात मे राजीव ने पजाब के उग्रवादियो के एक धडे को लोकतात्रिक प्रक्रिया मे भाग लेने को प्रोत्साहित किया था। यह उनकी पजाब की जनता की समस्याओ को समझते हुए दीर्घकालीन युक्तिकौशल दर्शाने का एक विरल उदाहरण था। इस सीमावर्ती राज्य के बिगडे राजनीतिक माहौल मे गहरी दिलचस्पी रखने वाले बूटा सिह और दूसरे पजाब विशेषज्ञो ने उनका विरोध किया। लेकिन राजीव को पजाब मे एक लाभ था जो कश्मीर मे न था। नए राज्यपाल अपने कलकत्ता वाले पूर्ववर्ती की तरह पूर्वाग्रहग्रस्त न थे। पुलिस महानिदेशक के पी एस गिल उनके बारे मे आम धारणा के विरुद्ध लोकतात्रिक पद्धति की आतरिक शक्ति मे विश्वास रखते थे। अपनी माँ से विरासत मे मिली एक टोकरी मे सब कुछ रखने की प्रवृत्ति ने भी यहाँ उनके हाथ नही बॉधे थे। इटेलिजेस अधिकारियों सहित प्रमुख प्रशासक, जो कश्मीर के मामले मे हर सभव जानकारी रखने का दम भरते थे वे भी यहाँ राजीव के दिमाग में पूर्वाग्रह भरने को हाजिर न थे। उनके लिए सारा मैदान खाली था जिस मे वह अपने नियमानुसार खेल खेल सकते थे।

एक मौके पर मुझे दिल्ली और उग्रवादियो के एक धडे के साथ समझौता करने के लिए बुलाया गया। जसबीर सिह रोडे ने मेरी इस लबी वार्ता मे सहायता की। उसके अलावा अन्य सहायता करने वालों मे थे, उग्रवादियो के नियुक्त किए उच्च धार्मिक नेता, दमदमी टकसाल के कुछ नेता, राजदेव सिह बरनाला (जो बाद मे लोकसभा के लिए निर्वाचित हुए) और हरजिदर सिंह (रामदास)। रामदास ऊर्जावान व निस्वार्थी युवा था जिसने मेरे और कई उग्रवादी नेताओ और मेरे बीच सपर्कसूत्र का काम किया। राजीव की मुहैया कराई एक तयशुदा रकम उग्रवादी और उग्रवाद समर्थक गुटो के उम्मीदवारो को चुनाव लडने के लिए नकद प्रदान की गई। यह बडी रकम दो किस्तो मे पजाब के एक गुप्त स्थान पर लाई गई। वहाँ से राजीव के साथ वार्ता करने वाले मध्यस्थो को दे दी गई।

यहाँ मैं कुछ शब्द बूटा सिह के प्रति राजीव की प्यार-मुहब्बत के बारे मे भी लिखना चाहूँगा। बूटा सिह पजाब के अपने प्रिय क्षेत्र को छोड कर राजस्थान के एक सुरक्षित चुनाव क्षेत्र मे खिसक गए थे। उनके विरुद्ध कैलाश मेघवाल बी जे पी के उम्मीदवार थे। राजीव गाधी ने मुझे कुछ रकम उनको पहुँचाने का काम सौपा ताकि उस सिख नेता की हार सुनिश्चित की जा सके। मेघवाल एक अनजाने व अप्रत्याशित स्रोत से धन मिलने से आश्चर्य मे पड गए। अदने मेघवाल अतत दिग्गज को चित करने मे सफल रहे। बूटा सिह नही जानते थे कि उनके अनजाने से विरोधी के पास अचानक इतना धन कहाँ से आ गया। राजीव गाँधी की इस एक राजनीतिक चाल ने मेरे मन मे उनके लिए जगह बना ली।

चुनाव परिणाम आशा के अनुरूप ही आए। मान गठजोड की छ सीटो के मुकाबले इदिरा काग्रेस को दो ही सीटे मिली। जनता दल को एक बी एस पी को एक और निर्दलीय उम्मीदवारों को तीन सीटे मिली। मुझे कुछ सिख मित्रो के चेहरे नई ससद मे देख कर खुशी हुई। इनमें से एक अतिदरपाल सिह भी था। मै इस इधर जाऊँ कि उधर जाऊँ के पशोपेश में पडे अनिच्छा से क्रातिकारी बने व्यक्ति के बारे मे बाद मे चर्चा करूँगा।

राजीव गाँधी ने अपने युक्तिकौशल के तहत ही राजनीति के मैदान मे पीछे हटने की नीति अपनाई थी। उनकी पार्टी संसदीय चुनाव हार गई। लेकिन निश्चय ही पजाब के मोर्चे पर उन्होने विजय चिन्ह छोडे थे।

<23>

कमज़ोर मसीहा

प्रतिभासम्पन्न कभी गलती नही करते। उनकी भूले
साकल्पिक होती है जो नई खोज के द्वार उदघाटित करती है।

जेम्स जॉयस

राजीव गॉधी ने अपने काम के पांच वर्षो की उडान किसी स्टट पायलट की तरह भरी। उनके राजनीतिक जीवन ने 9वी लोकसभा के चुनावो मे गभीर किस्म का झटका खाया जो अप्रत्याशित नही था। हालाकि इदिरा काग्रेस को 195 सीटे मिल गई थी लेकिन राजीव दावा प्रस्तुत करने की स्थिति मे नही थ। क्योकि अब तक नेहरू-गॉधी परिवार के लिए वफादार वाम दलो ने राजीव गॉधी के नेतृत्व वाली काग्रेस सरकार को समर्थन देने से इनकार कर दिया था। 137 सीटों वाला जनता दल बी जे पी (86) के बाहर से समर्थन और वाम दलो के समर्थन से सरकार बनाने की स्थिति मे था। चद्रशेखर और देवीलाल को धता बताते हुए वी पी सिह को प्रधानमत्री बनाने की बाजीगरी मुह मे राम बगल मे छुरी के रोगटे खडे करने वाले कारनामे से कम न थी। आर एस एस और बी जे पी गुट ने चद्रशेखर और देवीलाल जैसे जमीनी लोगो के मुकाबले अव्यवस्थित वी पी सिह के लिए प्रयास किया। शुरुआत मे ही पता चल गया था कि वी पी सिह के गिर्द कई विभीषण हे। वह जनसेवको का भेस धरे सत्तासामतो की चालबाजियो का मुकाबला करने लायक नही है।

वी पी सिह ने कभी भी मुझे प्रेरित नही किया था। वह कोई द्रष्टा न हो कर तगनजरिए वाले प्रतिशोधी थे। वह ईमानदार थे पर राजनीतिक कुशलता का उन मे अभाव था। उनका तत्र बहुत कमजोर सपर्क साधनो पर टिका था। कमजोर बाहरी सपर्को वाला कोई व्यक्ति अच्छा भिक्षुक तो बन सकता है लेकिन किसी जटिल देश का प्रधानमत्री नही बन सकता। मैने कभी भी नही सोचा था कि वह दो साल से अधिक समय निकाल सकेगे।

फिर भी मै बी जे पी की सफलता से प्रसन्न था। हिदुत्व की भावनाओ का कुछ लाभ उठाते हुए और राजीव के प्रति नकारात्मक वोटो की बदौलत उसने अच्छा हाथ मारा था। उन्होने जे पी जैसी स्थिति का अपने लाभ के लिए अच्छा इस्तेमाल किया। इससे आर एस एस और बी जे पी के विचारको का हौसला बुलद हुआ। वे और बडा जोखिम उठाने की तैयारी मे लग गए।

राजीव गाँधी की हार के साथ ही आई बी के शीर्ष स्तर पर परिवर्तन के सकेत भी मिल गए थे। एम के नारायणन एक माने हुए इटेलिजेस विशेषज्ञ थे पर वे राजीव की मडली के बहुत निकट समझे जाते थे। उनकी वफादारी अडिग थी। इटेलिजेस का शीर्ष अधिकारी प्रधानमत्री और गृहमत्री के प्रति व्यक्तिगत रूप से वफादार होता है। उसका वजूद ही उनकी

वजह से होता है, किसी संवैधानिक संस्थान की वजह से नहीं। अतः यह स्वाभाविक ही है कि इंटेलिजेंस के शीर्ष स्तंभों का झुकना जब जरूरी हो, उनको झुकना ही होता है।

उनका उत्तराधिकारी वी.जी. वैद्य को होना चाहिए था, जो बहुत योग्य थे। 31 साल के सेवा अनुभव के बावजूद उनके अपेक्षाकृत कनिष्ठ ओहदे के कारण उनके नाम पर विचार नहीं किया गया। इस के अलावा जनता दल के एक धडे को शक था कि इस मराठा अधिकारी के आर.एस.एस. के साथ गुप्त संबंध हैं। एजेंसी के अंदर और बाहर ठाकुर व कायस्थ लॉबी ने इस आरोप को खूब हवा दी। वह उत्तर प्रदेश के किसी विश्वस्त अधिकारी को चाहते थे। अंततः राजेंद्र प्रसाद जोशी को चुना गया। वह पहले भी आई.बी. में थे पर करीब 20 साल पहले उनको संगठन से बाहर भेज दिया गया था क्योंकि उनके कोर्स के साथी एम.के. नारायणन का आई.बी. प्रमुख बनना पहले से तय था। जोशी की सुलभता , अपने कनिष्ठ अधिकारियों के साथ जिम्मेदारी बॉटने की क्षमता और विनम्रता के कारण बहुत प्रशंसा होती थी। उनकी एक और योग्यता यह थी कि वह विनोद पांडे के संबंधी थे। विनोद पांडे वी.पी. सिंह के विश्वस्त थे और उनका नई व्यवस्था में कैबिनेट सेक्रेटरी बनना तय था।

गौमाता के क्षेत्र के एक और जोशी थे, मुरली मनोहर जोशी। ये महत्वाकांक्षी आर.एस. एस./बी.जे.पी. नेता थे। इन्होंने भी जोशी की वकालत की। राजेंद्र प्रसाद और मुरली मनोहर जोशी के संबंध सजातीय होने के अलावा और भी थे। जोशी वरिष्ठ इंटेलिजेंस ब्यूरो अधिकारी के अच्छे मित्र थे। वह एल.के. आडवाणी की कार्यावधि समाप्त होने के बाद पार्टी की बागडोर संभालने के कगार पर थे। मुरली मनोहर चाहते थे कि उनका अपना आदमी आई.बी. प्रमुख हो। यह संगठन उनके लिए इंटेलिजेंस के खजाने का मुंह खोल सकता था। उन्हें आशा थी कि राष्ट्र के आंख व कान पर आधिपत्य उनकी स्थित को अपराजेय बना देगा। उधर राजेंद्र प्रसाद ने अपने प्रधानमंत्री के हित के लिए इस मैत्री का लाभ उठाने की चेष्टा की। आर.एस. एस./बी.जे.पी. को इस बात की भनक न थी कि आई.बी. का लाभ उठाने की अपनी आतुरता में मुरली मनोहर जाने-अनजाने में इस हिंदुत्ववादी संगठन की आगामी भूकंप लाने वाली रणनीति की जानकारी दे रहे हैं।

मेरे जोशी परिवार से बहुत अच्छे संबंध थे। उनकी पत्नी तारा जोशी को हमारे परिवार में बडी बहन के समान माना जाता है। 9 तुगलक रोड में उनके आने से हमारे लिए अनौपचारिकता का मौसम आ गया।

* * * *

संघ परिवार की भारतीय राजनीति के केंद्रीय मंच तक पहुँचने में सहायता करने के अपने सही या गलत कर्तव्य को पूरा करने के बाद मैंने अपने पुराने प्रिय कार्य पर ध्यान केंद्रित किया। यह था पी.सी.आई.यू. और पंजाब के मामले।

एक मौके पर मुझे एक बी.जे.पी. नेता ने बुला कर प्रधानमंत्री कार्यालय में एक पद ग्रहण करने की पेशकश की। यह पार्टी की चुनावी सफलता में मेरे सहयोग का पुरस्कार था। इस बारे में मेरी भूरेलाल के साथ दो बैठकें हुईं। उनके विचार से मेरे लिए नया काम होता , इंदिरा कांग्रेस के नेताओं के भ्रष्टाचार के मामलों को उजागर करना। इसमें राजीव गाँधी तक शामिल थे। मैंने यह स्वीकार नहीं किया। मैं कभी कब्र खोदने वाले की भूमिका पसंद नहीं कर सकता था। प्रधानमंत्री और भूरेलाल के पास गड़े मुर्दे उखाड़ने वाले पेशेवरों की कमी न थी। उनके पास केंद्रीय जाँच ब्यूरो था, राजस्व इंटेलिजेंस महानिदेशालय था और दूसरे भी कई ऐसे संगठन थे।

राजीव की कार्यपद्धति से भले ही मेरा मतभेद रहा हो, उनको घेरने वाले घोटाले के काले बादलों ने भले ही मेरा मोहभंग किया हो, पर मैं उनको गच्चा दे कर किसी कब्र के मुहाने तक ले जाने की सोच भी नहीं सकता था। मैं इंदिरा गॉधी के बेटे के साथ ऐसा नहीं कर सकता था। मैं अपने आप को राजनीति के मुर्दाघर मे ले जा कर वहॉ शवों व कंकालों का शवछेदन नहीं कर सकता था। यह पेशकश मैंने ठुकरा दी। मेरे खयाल से ऐसा कर के मैंने प्रधानमंत्री के आसपास की मंडली की नाराजगी भी मोल ली।

* * * *

इससे पहले कि मैं इस प्रसंग से आगे बढ़ूं, मैं अपने कश्मीर से थोडे से साबके की संक्षिप्त चर्चा करना चाहूँगा।

जैसा कि बहुत से भारतीय जानते ही हैं , कश्मीर को नेहरूजी के जमाने से ही एक टोकरी में सारे अंडे रखने वाला मामला बनाया जाता रहा है। यह सिलसिला तब से चला है जब नेहरूजी कमला नेहरू के साथ अपने हनीमून पर आए थे और पूर्व के इस स्विट्जरलैंड पर फिदा हो गए थे। स्वाधीनता-बाद के कश्मीर का इतिहास थोडे में नेहरू-गॉधी और शेख अब्दुल्ला परिवार के संबंधों के घटने या प्रगाढ होने का इतिहास रहा है। पाकिस्तानी शासन ने सदा मामला गर्म रखा और दो युद्ध कर के इस इलाके को जबरदस्ती हथियाने की कोशिश की।

दोनों परिवारों के प्रेम सबंधों को बढावा देने में कुछ कश्मीरी मुस्लिम , कुछ प्रमुख पंडित और कुछ इंटेलिजेंस प्रशासक थे। ये लोग अपने आप को प्यार मुहब्बत की बारीकियों में दक्ष समझते थे। दोनों परिवारों ने कभी भी इस मामले में खुली नीति नहीं अपनाई। उन्होंने कभी भी कश्मीर की जनता को इसमें शामिल कर के पुराने नासूर का इलाज करने की कोशिश नहीं की। भारतीय लोकतंत्र ने कभी भी कश्मीरियों के हितों के लिए पूरी निष्ठा से प्रयास नहीं किया। पाकिस्तान ने सदा विभाजन के अधूरे एजेंडे को पूरा करने के लिए युद्ध को प्रभावी साधन समझा। दिल्ली ने कूटनीति , सीमित लोकतांत्रिक प्रयोग व रक्षात्मक सैनिक युक्तिसंचालन के रहस्यमय मिश्रण में विश्वास प्रकट किया।

इस तरह की युक्तियों से युद्ध और शांति के बीच कुछ दिनों तक लटका जा सकता है, लेकिन हमेशा के लिए नहीं। अतर्राष्ट्रीय संबंध और भू-राजनीतिक तकाजे किसी समूचे जनसमूह को इस तरह अनिश्चित काल तक सलीब पर लटकाए रखने की इजाजत नहीं देते। फिर भी दिल्ली और श्रीनगर दोनों अंतर्राष्ट्रीय भू-राजनीति की इस साधारण सी सच्चाई को समझने में असफल रहे। युद्ध या शाति को टाला जा सकता है लेकिन उनको लटका कर नहीं रखा जा सकता। खास तौर पर तब, जब शत्रु तेजी से अपनी शक्ति बढा रहा हो। इस तरह के लटकाए मामले अक्सर असाध्य नासूर बन जाते है।

1988-89 में कश्मीर पर भारत-पाक वार्ता फिर जिच की स्थित में आ गई जब बेनजीर भुट्टो ने जनमत संग्रह की आवश्यकता को दोहराया और राजीव गॉधी ने इस तरह की मॉग की अव्यावहारिकता का ऐलान कर दिया। स्वाधीनता की आबोहवा में पले-बढ़े ये दोनों युवा नेता इतिहास के पूर्वाग्रहों से ग्रस्त थे। वे तोपों के दहाने दूर हटाने में असफल रहे। सितंबर 1989 में आसपास कश्मीर घाटी में फिर आग लग गई। उग्रवादियों ने बी.जे.पी. नेता जे.एल. टापलू की हत्या कर दी। इसके बाद जे.के.एल.एफ. की गतिविधियों में सक्रिय मकबूल बट्ट को मौत की सजा सुनाने वाले न्यायाधीश एन.के. गंजू की भी हत्या कर दी गई।

जे.के.एल.एफ. के उग्रवादियो ने जनता दल सरकार के उद्घाटन का स्वागत वी.पी. सिंह के गृहमंत्री मुफ्ती मुहम्मद सईद की बेटी डा. रुबैया सईद का अपहरण कर के किया। दिल्ली ने राज्य सरकार को उग्रवादियों के साथ एक समझौते पर हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य करते हुए घुटने टेक दिए। वी.पी. सिंह सरकार की इस कार्रवाई ने भारत को आने वाले वर्षों में अप्रत्याशित स्तर की उग्रवादी हरकतें झेलने को विवश कर दिया। जे.के.एल.एफ. की कार्रवाई दबाव डालने की एक चाल थी। एक छल जो सफल रहा (*द डान*, पाकिस्तान)।

इसके बाद कहानी ने एक विचित्र मोड लिया। गॉधी परिवार के वफादार रह चुके जगमोहन को राज्यपाल बना कर दोबारा श्रीनगर लाया गया।

दूसरी सनसनीखेज वारदातों के अलावा पाकिस्तान समर्थित उग्रवादियों ने योजनाबद्ध तरीके से इंटेलिजेंस ब्यूरो के अधिकारियों को अपना निशाना बना कर उनमें से कइयों की हत्या कर दी। इस तरह उन्होंने राज्य से अपना बहुत सा स्टाफ हटा लेने को ब्यूरो को बाध्य किया। श्रीनगर में कुछ स्टाफ रखा गया, लेकिन इंटेलिजेंस उत्पादन पूरी तरह ठप हो गया।

कश्मीर के मामले से वास्ता रखने वाले संभ्रांत लोग मुझे नाक पर बैठी मक्खी तो नहीं मानते थे पर खेलबिगाडू जरूर समझते थे। पर सकट की उस घडी में मुझे बुला कर घाटी में कुछ ह्यूमिंट एजेंट भर्ती करने में अपने सहयोगियों की मदद करने को कहा गया। हमारी चेष्टाओं ने आई बी को घाटी मे फिर से कुछ जगह बनाने में मदद की। मैने बडी कुशलता से दिल्ली स्थित एक मुस्लिम महिला की सेवाएँ कुछ कश्मीरी मुस्लिम एजेट बनाने में लीं। ये लोग फल और कालीन के व्यवसाय में लगे थे। वे लाजपतनगर और ओखला की मुस्लिम बस्तियों में रहते थे। मेरे खयाल में इस साधारण-सी शुरुआत के बाद मेरे सहयोगियो ने बाद में नए सिरे से एक सशक्त गुप्तचर जाल बना लिया था। सचालन की गोपनीयता मुझे इसका विवरण देने की अनुमति नहीं देती।

मुझसे कहा गया कि मैं पाकिस्तान और पाक-अधिकृत कश्मीर में मुजाहिदीन शिविरों मे घुसपैठ बनाने को स्वतंत्र हूँ। उपरोक्त एजेंट की सहायता से जो एजेंट भर्ती किए गए वे मुर्जीखना (मुजफ्फराबाद), चेलापुल मुख्यमार्ग (मुजफ्फराबाद), छपरियान (पाक-अधिकृत कश्मीर) और लाल हवेली फतेहजग (रावलपिडी) के मुजाहिदीन शिविरो में घुसपैठ करने में सफल रहे। इन एजेंटों की सेवाएँ काफी सतोषजनक रही। वे अच्छे दिन थे। तब राजनीतिज्ञ प्रति-सक्रियता की बात कम करते थे। वे पाकिस्तान के अंदर साहसपूर्ण पैठ व सीमापार कार्रवाइयों की अनुमति दे देते थे। विशेष रूप से इटेलिजेंस ब्यूरो के शेरदिल डाइरेक्टर वी जी.वैद्य के जमाने में ऐसा ही था।

कश्मीर तथा अन्यत्र पाकिस्तान के छद्मयुद्ध के बारे में भारत की अत्यंत शोचनीय सीमित प्रतिक्रिया का उदाहरण देने के लिए मैंने यह संक्षिप्त चर्चा की है। दिल्ली पाकिस्तान समर्थित उग्रवादियों को अपनी 'सैनिक' श्रेष्ठता के बल पर कश्मीर मे जननियंत्रण करने की अनुमति देने को बाध्य थी। ऐसा वे अपनी अबाध उग्रवादी गतिविधियो से कर रहे थे। इस पर भारत की प्रतिक्रिया इस प्रकार थी :

- प्रभावित क्षेत्रों में अर्द्धसैनिक बलों की संख्या बढाना।
- सामाजिक आर्थिक व राजनीतिक समस्याओं के जवाब में पुलिस बल का प्रयोग।
- सैन्य बल पर अधिक निर्भरता। इसने सैनिक व प्रशासनिक प्रतिक्रियाओं के गहन विरोधों का स्वरूप और भी विकृत कर दिया, और

कूटनीतिक पहल। इसने 11 सितबर 2001 के बाद कुछ सकारात्मक रुख दिखाया जब अफगानिस्तान के युद्ध में अमेरिका लिप्त हुआ और पाकिस्तान के अंदर उग्रवाद विरोधी कार्रवाइयों को वाशिंगटन की सीमित वरीयता मिली।

लंबी राजनयिक तू-तू, मैं-मैं और भारत के रक्षात्मक रवैए ने पश्चिम की इस धारणा को एक प्रकार से वैधता दे दी कि कश्मीर भारत और पाकिस्तान के बीच ' विवादित ' मामला है। विश्वसनीय राजनीतिक कार्रवाई और विकास कार्यक्रम के बिना की गई सुरक्षात्मक प्रतिक्रिया ने भारत के जननियंत्रण तंत्र को विफल कर दिया।

1988-89 में दिल्ली के सकारात्मक कार्रवाई कर के और बेहतर आर्थिक व राजनीतिक पैकेज देकर जन-नियंत्रण लागू करने में असफल होने के कारण जनसाधारण अलग-थलग हो गए। जम्मू के कथित हिंदू बहुसंख्या वाले क्षेत्रों में जनसांख्यिकी की दृष्टि से विषद् परिवर्तन हो रहे थे। हिंदुओं पर योजनाबद्ध हमले हो रहे थे ताकि मसले को सांप्रदायिक रंग दिया जा सके। इसका उद्देश्य डिक्सन के पुराने चयनित जनमत सग्रह का गुर आजमाना था। पाकिस्तान के इस शैतानी खेल को विशेषज्ञों ने जरा देर से समझा।

दिल्ली ने इस मामले में पर्याप्त प्रतिक्रियात्मक कार्रवाई नहीं की हालांकि बी.जे.पी. के नेतृत्व वाले राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन की सरकार के मंत्रियों ने इस बारे में काफी कुछ कहा। उन्होंने कर्कश वाणी का प्रयोग तो बहुत किया लेकिन शत्रु के मर्म पर प्रहार करने में असफल रहे। 9/11 की घटनाओं के बाद से इस क्षेत्र में अमेरिका की बढती दिलचस्पी के साथ स्थिति में कुछ सुधार दिखाई पडा। उम्मीद है कि पूर्व एन.डी.ए. सरकार की शांति की पहल और अमेरिका के उसको समर्थन के चलते सशस्त्र संघर्ष अस्थायी रूप से कम हो जाएगा, जब तक कि अधिक उग्रवादी कट्टरपंथी शक्तियॉं वाशिंगटन के मित्र जनरल मुशर्रफ को हटा नहीं देतीं।

बहरहाल एक रणनीतिक व सामरिक नीति के तहत यह भी सभाव्य है , और यह अमेरिका व इसरायल जैसे 'स्वतंत्र विश्व' के देशों के मान्य मानकों के अनुरूप भी है कि मुजाहिदीनों के प्रशिक्षण शिविरों पर प्रच्छन्न और प्रत्यक्ष हमले किए जाऍं। यह गुप्तचरी और कमांडो की संयुक्त कार्रवाई से किया जा सकता है। इस तरह की त्वरित कार्रवाई नियुक्त किए गए निर्देशित एजेंटों , प्रशिक्षित आत्मघाती दस्तों , गहरी घुसपैठ करने वाले कमांडो यूनिटों व अर्द्ध-कमांडो यूनिटों तथा पर्याप्त अध्ययन के साथ अंशांकित हवाई हमलों की मदद से की जा सकती है।

तथ्यों से अवगत राजनीतिज्ञों व युक्ति-विनियोजकों के ठीक से न समझने के कारण दिल्ली ने सदा निष्क्रिय व रक्षात्मक रवैया अपनाया। पाकिस्तानी शासन एक भू-राजनीतिक धौंसिया है। इस तरह के धौंसिए को जवाब देने का सब से अच्छा तरीका लडाई को उसके घर के अंदर ले जाना है। भारत ने तो पाकिस्तान को तब भी भयादोहन की अनुमति दी जब वह आणविक शक्ति नहीं बना था।

दीर्घकालीन निष्क्रियता और सुरक्षात्मक कार्रवाई के बल पर इतिहास को बनाना या मिटाना संभव नहीं। शत्रु की गलतियों का लाभ उठाते हुए अंशांकित कार्रवाई करने से खुली लड़ाई के जोखिम को कम किया जा सकता है। पाकिस्तान ने भारत के विरुद्ध कम खर्चीला सीमित छद्मयुद्ध लंबे समय तक सफलतापूर्वक चला कर यह सिद्ध भी कर दिया है।

पाकिस्तान को काबू करने के लिए भारत का अमेरिका पर आश्रित होना कश्मीर के जटिल मसले में किसी तृतीय देश के हस्तक्षेप की संभावनाओं को बढा सकता है।

कश्मीर के मामले में राजनीतिक कार्रवाइयों पर नियंत्रण तो मेरे लिए संभव न था ज़हाँ विशेष परिस्थितयों मे मेरी सेवाएँ ली गई थीं। अचानक ध्वस्त हो जाने के बाद इंटेलिजेंस ब्यूरो के पैर जमाने के लिए जो कुछ मुझ से बन पडा , मैंने किया। नए शासन द्वारा भी अपनाए गए एक ही टोकरी वाले रवैए का अनुकरण तो मैं कर नहीं सकता था। राष्ट्रीय सुरक्षा के इस महत्वपूर्ण क्षेत्र में भारत नई रणनीतिक व युक्तिपरक नीति अपनाने में असफल रहा। एक विज्ञ नागरिक की हैसियत से मैं घटनाक्रम के शोचनीय रुख अख्तियार करने से चिंतित था। यह सब इंदिरा और राजीव के अविचारित कारनामों और पाकिस्तान के छद्मयुद्ध के कारण हो रहा था। राष्ट्र अपनी ही बनाई दलदल में जा फंसा था।

असल में वी.पी. सिंह की सरकार गृहमत्री की बेटी के अपहरण के छल से इतनी विचलित हो गई थी कि उसने अपना चश्मा बदलने से ही इनकार कर दिया। उसने इस उपद्रवग्रस्त राज्य की स्थितियों पर नए सिरे से नजर ही नहीं डाली। नई सरकार को भी कश्मीर की गलत नीतियों की ज्वालाओं ने आत्मसात कर लिया। पाकिस्तान गोलीबारी करता रहा, भारत केवल प्रतिक्रिया में पुलिस/सैनिक बल से जवाब दे कर गुस्सा उतारता रहा। जार्ज फर्नांडिस जैसे राजनीतिक दिग्गज को भी अंडों को नई टोकरी में स्थानांतरित करने का मौका नहीं मिला। वह उन्हीं प्रशासनिक , सुरक्षा व इंटेलिजेंस के नौकरशाहों से घिरे थे जो नेहरू-गाँधी परिवार के हनीमून राज्य के मामलों के ' विशेषज्ञ ' माने जाते थे। सकट की यह घडी कुछ अभिनव कार्रवाई माँगती थी।

मुझे भारत की गलत नीतियों के बारे में कोई संदेह नहीं था। इनमें से कुछ विरासत में मिली थीं, कुछ बडे बच्चों की उपजाई हुई थीं जिनको राजनीतिज्ञ कहा जा रहा था। इसमें कुछ प्रशासकों का भी सहयोग था। मैंने नक्सलबाडी और उत्तरपूर्व में दरारें देखी थीं। अब मैं पंजाब के अव्यवस्थित रक्तरंजित सरोवर में निरुद्देश्य तैर रहा था। मैं पी.सी.आई.यू. में अपर्याप्त साधनों के साथ उस योद्धा की तरह था जिससे उम्मीद की जाती थी कि थोडे से घोडों और टूटे-फूटे बल्लमों से पाकिस्तान के शक्तिशाली शासन के पैशाचिक आघातों का मुकाबला करे।

❮24❯

फिर पंजाब को

कार्रवाई और विश्वास चिंतन को गुलाम बना लेते हैं,
ताकि विचारणा, आलोचना और संदेह परेशान न करे।

हेनरी फ्रेडेरिक एमिल

इससे पहले कि मैं अपने प्रिय स्थल पाकिस्तान की चर्चा करूँ, मेरे विचार में मुझे पंजाब के बारे में गलत नीतियों के विषय में कुछ बात करनी चाहिए जिसके प्रति मैं भावुक भी हूँ। संसदीय चुनावों में निरादर से पहले राजीव ने उग्रवाद को कमजोर करने के उद्देश्य से कुछ सार्थक कदम उठाए थे। 1989 के मध्य तक पजाब में पाकिस्तान के इरादे बहुत स्पष्ट हो गए थे। पाकिस्तानी शासन समझ गया था कि कुलीन जाट सिख एकजुट हो कर भारत के विरुद्ध मोर्चा नहीं ले सकते। उनके गुरुओं की समतावादी शिक्षा और सिख पंथ को एक सर्वथा नए धर्म के रूप में पेश करने की कुछ नेताओं की बनावटी कोशिशों के मुकाबले उनकी हिदुत्व की जडें कहीं अधिक गहरी थीं। उनकी जडें भारतीय सभ्यता की पहली क्रीडाभूमि सप्तसिधु की माटी में बहुत गहरे जमी हुई थी।

बहरहाल दिल्ली ने एक भिंडरांवाले का निर्माण कर के और सिखो के वैटीकैन को नष्ट कर के अपने लिए काफी मुसीबते खडी कर ली थी। इस प्रक्रिया मे उसने अपना एक गौरवशाली प्रधानमंत्री खो दिया था। परंपरा से एकजुट पंजाबी समाज मे इसके कारण सांप्रदायिक अलगाव खतरनाक हद तक आ गया था। लेकिन पाकिस्तान के भडकाने के बावजूद अपेक्षित सांप्रदायिक विस्फोट नहीं हुआ। सिख समुदाय का बहुमत कट्टरपंथ के रास्ते पर चलने को तैयार नहीं हुआ जिसका दौर ईरानी क्रांति, जिया उल हक और अफगान जिहाद ने शुरू किया था।

इस मोहभंग के बाद इस्लामाबाद सिखों की एक हद से आगे मदद करने का इरादा नही रखता था। उसने अफगानिस्तान के बचे-खुचे हथियारों व विस्फोटकों की सप्लाई और एकत्रित उग्रवादियों को प्राथमिक प्रशिक्षण का सिलसिला जारी रखा जिनका विश्वास कौम के हितचिंतन की अपेक्षा बलात्कार और लूट में ज्यादा था।

इस्लामाबाद की दिलचस्पी उथल-पुथल बनाए रखने में थी ताकि भारत का ध्यान कश्मीर से हट जाए जहाँ वह नया छद्मयुद्ध छेड कर भारत को हजारों जख्म देना चाहता था।

राजीव गाँधी को विश्वास था कि पंजाब आंदोलन को कुछ प्रमुख नेताओं को साध कर विखंडित किया जा सकता है। उन्होंने आई.बी. निदेशक को शामिल किए बिना मुझसे इस विषय में दो बार चर्चा की। यह नीति उग्रतंत्र को रोकने के लिए परंपरागत और गैरपरंपरागत बल के प्रयोग की नीति (जरूरी नहीं दिल्ली की नीति) के विरुद्ध प्रतीत होती थी। के.पी.एस.

गिल के नेतृत्व में पुलिस और अर्द्धसैनिक बलों के योजनाबद्ध परंपरागत बल प्रयोग ने इन गतिविधियों को एक संकीर्ण भौगोलिक क्षेत्र तक सीमित करने में सफलता पा ली थी।

पुलिस, अर्द्धसैनिक बलों और कुछ मसीही इंटेलिजेंस संचालकों द्वारा गैरपरंपरागत बल प्रयोग ने नागरिकों में भय की कंपकंपी पैदा कर दी थी। उन्होंने इसका जवाब उग्र हिंसा से दिया। राज्य बलों ने इसका प्रतिउत्तर उतने ही उग्र रूप में दिया। वे लूटखसोट, अमानवीय उत्पीडन और निरीह लोगों की हत्या पर उतर आए। एक समय ऐसा भी आया जब शासन की कार्रवाई और उग्रवादियों की कार्रवाई में भेद करना मुश्किल हो गया। यह उग्रवादी हिंसा का जवाब न था। राज्य शासन के दमनचक्र ने जनसाधारण को अलग-थलग कर दिया। उसने संविधान में संरक्षित कानून के शासन पर से उनका विश्वास उठा दिया।

मेरा इरादा राज्य प्रणाली और केंद्रीय इंटेलिजेंस तंत्र की हर ज्यादती का विवरण प्रस्तुत करने का नहीं है। राष्ट्र को इन करतूतों का पता लगाना चाहिए था जिनके तहत राज्य प्रणाली ने उस के नागरिकों के एक भाग को यातनाएँ दीं और उनकी हत्याएँ कीं। राष्ट्रीय अंतरात्मा के संरक्षकों की निष्क्रियता के कारण कुछ दर्जन अधिकारी लूट की मोटी रकम बटोरने और महत्वपूर्ण सम्मान हासिल करने में सफल रहे। यह एक शर्मनाक अध्याय था। शांति स्थापित हो जाने पर पंजाब के लोगों और अन्य भारतीयों को मानवाधिकार के तहत जवाब-तलबी करने का हक बनता था।

बहरहाल प्रधानमंत्री कार्यालय से मुझे जो काम मिला था वह बहुत स्पष्ट था। यह था आपस में झगड रहे उग्रवादी गुटों व नेताओं के बीच चतुराई से और अलगाव पैदा करना।

इनमें से एक मुख्य लक्ष्य हरविंदर सिंह संधु था। वह ए.आई.एस.एस.एफ. (मंजीत) का महासचिव था। उससे आशा थी कि वह सिख छात्र महासंघ को दो फाड कर के कुछ उग्रवादी धडो को अपने साथ मिला लेगा। वी.पी. सिंह के सत्ता में आने के बाद संधु को कुछ अन्य बंदियों के साथ जोधपुर से रिहा कर दिया गया था। एक स्वयंभू राजनीतिज्ञ के भोंडे हस्तक्षेप के कारण इस नाजुक योजना में कुछ व्यवधान पडा। 24 जनवरी 1990 को द्वितीय पंथक कमेटी से संबद्ध कुछ उग्रवादियों ने संधु की हत्या कर दी। वी.पी. सिंह के कुछ अति उत्साही संचालकों के साथ मैं तालमेल बैठाने में विफल रहा। इससे कई बार कुछ कार्रवाइयों को सफलतापूर्वक संपन्न करने में बाधा आई। वी.पी. सिंह और उनके कुछ दूत समझते थे कि पंजाब की आग बुझाने के लिए अच्छी नीयत का होना ही पर्याप्त है। इनमें से कुछ ने मूर्खों जैसा नहीं तो कम से कम नौसिखियों जैसा व्यवहार जरूर किया।

मेरा दूसरा लक्ष्य गुरबचन सिंह मनोचहल था। वह भिंडरांवाले टाइगर फोर्स आफ खालिस्तान (बी.टी.एफ.के.) का स्वयंभू प्रमुख और प्रथम पंथक कमेटी का सदस्य था। इस दौरान वह पाकिस्तान से हथियारों की एक खेप और झोली भर हताशा ले कर लौटा था। जसबीर सिंह रोडे की रिहाई से पहले मेरा उससे पहला संपर्क शेरों गाँव के एक चावल मिल मालिक के माध्यम से सुदृढ हुआ। विश्राम सिंह नाम का यह विलक्षण स्वभाव का व्यक्ति हमारा बिचौलिया बना।

विश्राम सिंह छोटानागपुर का एक आदिवासी था। पटना साहिब (बिहार) के एक सिख धर्मप्रचारक ने उसे धर्म बदल कर सिख बना दिया और धार्मिक दीक्षा के लिए दमदमी टकसाल के हवाले कर दिया था। अपनी दीक्षा पूरी करने के बाद उसने अमृतसर जिले के कई गुरुद्वारों में सेवा की। ऑपरेशन ब्लू स्टार के बाद वह पटना चला गया। मेरे पटना के सहयोगियों ने

उसे भर्ती करने, दोबारा दमदमी टकसाल में पहुँचाने और अतत सिरहाली कला गुरुद्वारे मे उसे काम दिलाने में मेरी मदद की। विश्राम अपनी तरह का अकेला ही न था। टकसाल के कुछ दूसरे भूतपूर्व शिष्यो को भी नादेड साहब (महाराष्ट्र) और पाउंटा साहब(हिमाचल प्रदेश) से पजाब ला कर इसी तरह भर्ती किया गया था ताकि वे इटेलिजेंस ब्यूरो की ऑख-कान के रूप में काम कर सकें।

मनोचहल का पाकिस्तान से मोहभंग हो गया था। उसे यह जान कर धक्का लगा कि उसके आई एस.आई संचालको की दिलचस्पी सिखों की अलग होमलैंड खालिस्तान बनाने में मदद करने में नहीं है, उनकी दिलचस्पी सिर्फ पजाब की कडाही के खौलते रहने में है। पंजाब पाकिस्तान के छद्मयुद्ध का अविभाज्य अग न था। यह तो भारत की स्वय बनाई गलत नीतियों का लाभ उठाते हुए ध्यान बंटाने की एक चाल भर थी। पजाब की घटनाएँ इस लिए घटी कि भारत ने गलती की और इस्लामाबाद ने उसका फायदा उठाया।

मनोचहल से मेरी मुलाकातों और जसबीर सिह रोडे के साथ बातचीत ने एक नई धुरी बनाने मे मदद की। इस में बी टी एफ के.(मजीत), के.सी एफ.(गुरजत सिह राजस्थानी) और ए.आई एस एस.एफ.(मंजीत) शामिल थे। मनोचहल से मिली एक जानकारी के आधार पर अमृतसर जिले में भुल्लर गॉव के निकट पुलिस और साघा मे एक मुठभेड भी हुई।

मनोचहल ने प्रशसनीय भूमिका निभाई और वह भूमिगत आदोलन के तालमेल में स्पष्टता लाया। उसके विरोधी बलो में एस एस.एफ (बिट्टू), के सी एफ (पजवार), के सी एफ (जफरवाल),बी. टी.एफ.के (रछपाल), के एल एफ (बुद्धसिहवाला) और बब्बर खालसा थे।

एक और तरफ जहॉ मैंने काम किया वह था बब्बर खालसा। बब्बर खालसा आंदोलन का प्रादुर्भाव सिखों की खालिस के लिए खोज के साथ हुआ था। यह शुद्धतम की खोज गुरुओ की वाणी और दशम गुरु गोविदसिह के बताए मार्ग के अनुसार थी। इसे एक और खालिस सगठन अखड कीर्तनी जत्था से प्ररणा मिलती थी जिसके प्रमुख भाई फौजा सिह थे। बहरहाल हमें बब्बरों की धार्मिक और कर्मकाडी विशेषज्ञता मे नही पडना चाहिए। कई मामलों में वह एस.जी.पी.सी. और दमदमी टकसाल की मान्यताओ और धार्मिक अनुष्ठानो के अनुरूप न थे। वे अन्य उग्रवादी गुटो के साथ चलने को तैयार थे लेकिन अपना अलग नजरिया बनाए रखना चाहते थे। बब्बर उन में से थे जिन्होने शुरूआत मे ही इटर सर्विसेज इटेलीजेंस और प्रवासी सिखों के साथ संपर्क साधा। ये लोग सिखो के एक सभ्रात वर्ग द्वारा स्वाधीन सिख होमलैड की स्थापना की आकाक्षा रखने के हिमायती थे। बब्बर आधुनिक किस्म के देसी विस्फोटक बनाने में भी माहिर थे।

बब्बरों ने पहली पंथक कमेटी से अपनी स्पष्ट अलग पहचान बनाए रखी। उन्होंने दमदमी टकसाल और जसबीर सिंह रोडे के साथ सशंकित शाति समझौता कायम कर रखा था। ऑपरेशन ब्लैक थंडर और एस.जी.पी सी द्वारा अकाल तख्त का नया जत्थेदार नियुक्त किए जाने के बाद जसबीर सिंह रोडे ने ऐलान किया कि वह और उग्रवादियों द्वारा नियुक्त अन्य उच्च धार्मिक नेता ही असली जत्थेदार हैं। इससे पथक कमेटी में विभाजन हो गया। अगस्त और सितंबर 1988 में अनेक गर्मागर्म मुबाहिसों के बाद 4 नवबर 1988 को दूसरी पंथक कमेटी की स्थापना का ऐलान किया गया। वधावा सिंह और मेहर सिंह इस कमेटी में बब्बर खालसा का प्रतिनिधित्व करते थे। बब्बर को आई.सीआई. के कहने पर इस में शामिल किया गया था।

1990 के अंत के निकट भारत सरकार द्वारा शांति वार्ता की पहल करने पर उग्रवादी गुटों में मिश्रित प्रतिक्रिया हुई। पाकिस्तान इस नाजुक मौके पर नहीं चाहता था कि उग्रवादी भारत

सरकार के साथ शांति की बात करें। दिसंबर 1989 में जर्बे मोमिन (आस्तिकों का आघात) अभ्यास के बाद पाकिस्तानी सेना इस नतीजे पर पहुँची कि वह अब भारत के साथ परंपरागत युद्ध करने में सक्षम है।1990 के आरंभ में अफवाहें थीं कि एक और भारत-पाक युद्ध होगा। परिवर्तन के तौर पर वी.पी. सिंह ने भी युद्ध की बात कर डाली। इसे जनरल असलम बेग ने दोहराया। राष्ट्रपति के साथ साठ-गांठ के तहत पाकिस्तानी सेना बेनजीर भुट्टो को दरकिनार कर के अपनी हरकतें कर रही थी। अगस्त 1990 में अंतत उनको हटा दिया गया। आई.एस आई. ने इन घटनाओं में बडी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

पाकिस्तान दिल्ली के कमजोर गठबधन को दबावों में डगमगाता देख रहा था। कांग्रेस ने देवीलाल और चंद्रशेखर से संपर्क जोड लिया था। बी.जे.पी. ने लालकृष्ण आडवाणी की सोमनाथ से अयोध्या तक की रथयात्रा आरंभ कर के हिंदू भावनाएँ उकसाने का खतरनाक खेल शुरू कर दिया था। वी.पी सिंह ने इस आसन्न संकट का जवाब जातीय घृणा का भूत छोड कर दिया। अब इसका निर्णय इतिहास को करना है कि लालकृष्ण आडवाणी की रथयात्रा और वी.पी. सिंह के मंडल कमीशन में से किस बडी भूल ने भारतीय समाज को अधिक हानि पहुँचाई।

दिल्ली में हो रहे इन परिवर्तनों के प्रति पाकिस्तानी रणनीतिज्ञ आँखें मूँदे हुए न थे। उन्होंने आनंदित हो कर कश्मीर में और आदमी व साज-सामान झोंका। उन्होंने डा. सोहन सिह जैसे स्थूल बुद्धि वालों को और कडा रुख अपनाने के लिए उकसाया।

लिहाजा बब्बरों के एक धडे को मनाने का जो समय चुना गया वह उपयुक्त न था। मैंने बब्बर खालसा के दो नेताओं से संपर्क के लिए एक सिख पत्रकार की सेवाएँ लीं। एक बिचौलिए को अच्छी रकम पहुँचाने के बाद संपर्क स्थापित किया गया। इसकाम मे एक अप्रत्याशित तरफ से भी मदद मिली। पत्रकार से उग्रवादी बना सांसद अतिदरपाल सिह बब्बर खालसा के एक धडे का रवैया नरम करने के लिए आगे आ गया। पटियाला की एक महिला सांसद से भी काफी मदद मिली।

इसके वांछित परिणाम मिले। डा. सोहन सिंह ने वधावा सिंह और मेहल सिंह को दूसरी पंथक कमेटी से निकाल दिया। उन्होने दलजीत सिंह बिट्टू (एक प्रसिद्ध कृषिविज्ञानी के पुत्र) और शहबाज सिंह को उनकी जगह नियुक्त किया। पंजाब के कुछ पर्यवेक्षकों और ' विशेषज्ञो ' ने इसे बब्बर खालसा और दूसरी पंथक कमेटी में आदर्शात्मक असमानता बताया है। उन्होंने यह भी कहा कि इससे पाकिस्तान बब्बरों से नाखुश हुआ।

ये दावे सच्चाई से कहीं दूर थे। बब्बरों ने कभी भी आई एस आई. और पाकिस्तान का विश्वास खोया नहीं। उनमें दरार राजीव गाँधी की पहल के कारण और मुझे विभिन्न स्रोतों से मिलने वाली सहायता के कारण पडी जिसमें जरनैल सिंह भिंडरांवाले के परिवार से मिलने वाली सहायता भी शामिल थी।

इस बीच बब्बर खालसा ने शिरोमणि बब्बर अकाली दल और बब्बर अकाली स्त्री दल के नाम से अपने राजनीतिक मोर्चे भी बना लिए थे। इसने लदन स्थित अपनी ' निर्वास में खालिस्तान सरकार ' को भंग करने से इनकार कर दिया।

मेरा काम दूसरी पंथक कमेटी में फूट डालने और भारत सरकार के साथ बातचीत के लिए पृष्ठभूमि तैयार करने तक सीमित था। यह सीमित काम सौजन्यपूर्ण ढंग से पूरा हो गया। लेकिन इस में मेरी बहुत बडी व्यक्तिगत हानि भी हुई। मेरे सिख पत्रकार मित्र की के.सी.एफ. के एक दस्ते ने हत्या कर दी। उनको शक था कि उसने दूसरी पंथक कमेटी और बब्बर खालसा में फूट डालने में भारत सरकार की मदद की है।

बाद में मुझे आई.बी. के एक बहुत विश्वस्त सूत्र से पता चला कि संगठन के एक मेरे विरोधी (व्यक्तिगत रूप से और पेशे से भी) गुट ने ही मेरे पत्रकार मित्र का नाम बता दिया था। मैं आज भी इसे एक अत्यंत जघन्य कृत्य मानता हूँ। मेरा दुख उस समय और भी बढ गया जब आई.बी. ने उस मित्र के परिवार को मुआवजा देने से भी इनकार कर दिया। इंटेलिजेंस बिरादरी में किसी तरह का काम खत्म होने पर मुआवजा देने का रिवाज ही नहीं है।

अतिंदरपाल सिह ने उग्रवादी आंदोलन को बातचीत कर के समझौता करने की ओर मोडने में बडी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वह दिल से कवि था। 1982 से 1984 के मध्य दिल्ली द्वारा सिख मामलों पर गलत निर्णय लेने से इस मध्यवर्गी पत्रकार में उग्रवाद की चिंगारी भडक उठी थी। क्रांतिकारी विचार अधिकांशतः विस्फोटों मे प्रकट होते हैं। पंजाब मे रचा गया आंदोलन इसका अपवाद न था। अपने आरभिक दौर में इन्होंने बहुत खून बहाया और ताबूत दिए जिसके लिए उग्रवादी और राज्यतंत्र दोनो समान रूप से जिम्मेदार थे। अनेक हत्याओं में अतिंदरपाल का भी हाथ था। लेकिन वह बिना सोचे-समझे किसी की जाने लेने वाला हत्यारा न था। युद्ध में हारने वालों को अपराधी करार दिया जाता है, जीतने वाले ट्राफियॉ पाते हैं। मैं यह समझने से चूका नहीं कि अतिंदरपाल को अपराधी के ठप्पे से नफरत थी। वह पूरी निष्ठा से इसे एक शांति चाहने वाले के सम्माननीय चिन्ह मे बदलना चाहता था।

अतिदरपाल से मेरी मुलाकात पहले 1987 मे हुई थी जब मैं उग्रवादियो के गुट को प्रधानमंत्री से बातचीत के लिए भटिंडा से दिल्ली ले कर आया था।

मेरी उससे दोबारा मुलाकात कही करतारपुर के निकट हुई। तब दूसरी पंथक कमेटी नहीं बनी थी। उस समय उसने अपना खुद का उग्रवादी सगठन खालिस्तान इंडिपेंडेंट आर्गनाइजेशन बना लिया था।

अतिंदरपाल और उस की युवा पत्नी नॉर्थ एवेन्यू के एक फ्लैट में रहते थे। इससे उनकी आर्थिक दुर्दशा का पता चलता था। मुझे मेरे कमान से आदेश मिला कि इस जरूरतमंद को पैसे से अपनी तरफ कर लूँ। मुझे यह जान कर हैरत हुई कि अतिंदर जरूरतमंद तो था लेकिन लोभी न था। एक मौके पर उसने मेरे लाए एक मोटे पुलिदे को लेने से इनकार कर दिया। मैंने उसे नोटों का यह पुलिंदा इस तर्क के साथ देना चाहा था कि उसे प्रधानमंत्री और पंथक कमेटी के एक धडे व एस.एस. मान के बीच शांति का मध्यस्थ बनने के लिए कम से कम दो कारों की जरूरत है। उसकी गरिमामयी पत्नी को मनाने की मेरी कोशिशें भी बेकार गईं। उसने सिर्फ एक पेशकश मंजूर की। वह थी हमारे घर पर खाने के लिए आना।

अतिंदरपाल की शांति स्थापित करने की कोशिशे बहुत सफल नहीं हुईं। अपने घमड में चूर बनावटी सिख स्टूडेंट्स फेडरेशन, पथक कमेटी के अलावा बदूकधारी उग्रवादी और एस. एस. मान जैसे महाघमंडी, सरकारी प्रतिनिधियो के साथ वार्ता में नरम-गरम पडते रहे।

इसके अलावा दिल्ली के राजनीतिज्ञों की दूसरी वरीयताएँ भी थीं। पुराने और बचकाने राजनीतिज्ञों ने फिर छुरे निकाल लिए थे जिन्हें भोंक कर वे राष्ट्र की आत्मा पर हजारों घाव करने लगे थे। भारत एक बार फिर लोभी राजनीतिक ठगों के शिकंजे में आ गया था। पंजाब और कश्मीर में शांति बहाल करना दिल्ली या इस्लामाबाद के वरीयता सूची में शामिल नहीं था।

दिल्ली में राजीव गाँधी, चंद्रशेखर, देवीलाल और एल.के आडवाणी अपना धैर्य खो चुके थे। उधर इस्लामाबाद में पाकिस्तान के राष्ट्रपति व सी.ओ ए एस महसूस कर रहे थे कि

बेनजीर भुट्टो जनादेश से आगे निकल गई थीं। 10 नवंबर 1990 को शासन ने जनरल जिया के एक पिट्ठू नवाज शरीफ को कुर्सी पर बैठा दिया। वह आई.एस.आई. के एक पूर्व महानिदेशक हामिद गुल के बनाए हुए आदमी थे।

दिल्ली की नौटंकी का पर्दा भी कुछ ऐसे ही अंदाज में खुल रहा था। फर्क सिर्फ इतना था कि यहाँ सेना के उच्चाधिकारी, उनके बूट और दारू का बोलबाला न था और न ही संवैधानिक रूप से पुंसत्वहीन राष्ट्रपति थे। चंद्रशेखर 6 नवंबर को राजीव गाँधी से मिले। 9 नवंबर को उन्होंने राष्ट्रपति से भेंट की। फिर उनको कांग्रेस के समर्थन से सत्तासीन कर दिया गया। इस तरह भारतीय लोकतंत्र के इतिहास में एक और शर्मनाक पृष्ठ जुड गया।

लेकिन इन दोनों परिवर्तनों में एक बडा अंतर था। नवाज शरीफ को शासन की ढाल बना कर लाया गया था। राजीव गाँधी ने चंद्रशेखर को हटा कर वापस कुर्सी पर आने के लिए बूढ़े यंग टर्क को उस के सपनों का सिंहासन सौंपा था। उनकी मां ने भी तो कई बार इस युवा तुर्क का इस्तेमाल किया था। संजय ने कभी मुख्य संचालक बन कर चरण सिंह के साथ यही खेल खेला था। यह उसी की पुनरावृत्ति थी।

* * * *

वी.पी. सिंह को हटाने के लिए चंद्रशेखर और देवीलाल का इस्तेमाल करने का विचार राजीव गाँधी की मंडली का था। धवन को 1989 में श्वानगृह से वापस बुला लिया गया था। उन्होंने इसमें राजीव गाँधी की सहायता की। संघ परिवार के अहाते और राजीव गाँधी के पिछवाडे के कार्यालय मे जो चालें चली गईं, मैं उन दोनो का साक्षी था।

भारतीय राजनीति के पदाति चंद्रशेखर समाजवाद की नकली आग मे तपाए गए थे। उन में दुनियाबी राजनीति के जो अणु थे, उनमें उनके समाजवादी भट्ठी में तपने से कोई खास फर्क नहीं आया। उनकी कुछ विलक्षण महत्वाकाक्षाएँ थी। अलिफलैला की एक रात के लिए ही सही, प्रधानमंत्री की कुर्सी पाना, अकूत पैसा जमा करना और दिखावे की ऊंची मौलिक भंगिमा बनाए रखना उन्हीं में शामिल थीं। वह राजनारायण या चरणसिंह जैसे साधारण रंग बदलने वाले गिरगिट न थे।

आहत जाट चौधरी देवीलाल के लिए राजीव गाँधी ने अपने सहायकों धवन और भजनलाल का इस्तेमाल किया।

राजीव गाँधी और उनकी पिछवाडे की टीम ने अपना काम जून 1990 में ही शुरू कर दिया था। अगस्त 1990 में कलकत्ते की 'संडे मैगजीन ' में उनका एक इंटरव्यू छपा था। इस में उनकी सोच की कुछ झलक मिलती थी। इससे एक बात तो स्पष्ट थी कि वह राजनीति के कम से कम एक पहलू में महारत रखते थे -- द्विअर्थी संभाषण में।

वी.पी. सिंह को सत्ता में लाने वाले हाथ को जादू की छडी की तरह अदृश्य होना ही था। वी.पी. सिंह को प्रधानमंत्री की कुर्सी पर बैठाने वाले स्थूल कॉरपोरेट मैनेजर अरुण नेहरू के करिश्मे को चंद्रशेखर ने कभी भी स्वीकार नहीं किया था।

वी.पी. सिंह अपनी ही भड़काई मंडल कमीशन की आग की लपटों के हवाले हो गए। यह वहीं मंडल कमीशन की सिफारिशें थीं जिनको इंदिरा गाँधी ने धूल चाटने के लिए अलग रख दिया था। उत्तर प्रदेश के जातिग्रस्त इलाके के ठाकुर ने चंद्रशेखर, देवीलाल और अपने ही भागीदार बी.जे.पी. की हिंदुत्व की गतिविधियों की चुनौती के चलते घबरा कर यह कदम उठा लिया था। उन्होंने जातिवाद का पत्ता चला और छोटी जाति के लोगों को शिक्षा व रोजगार

आदि में आरक्षण दे दिया। उनका गणित फेल हो गया। दिल्ली में और अन्यत्र विद्यार्थियों ने 'मंडल फार्मूले' के विरुद्ध लगातार हिंसा जारी रखी।

पिछडी जातियों को 27 प्रतिशत आरक्षण देने वाले मंडल फार्मूले को ठंडे बस्ते से दो निश्चित उद्देश्यों से निकाला गया था। एक तो वी.पी सिंह पिछडी जातियों में अपना वोट बैंक सुरक्षित करना चाहते थे, दूसरे वह जाट चौधरी के मुंह पर मंडल की चुनौती फेंक कर दिल्ली की तरफ मार्च करने वाले देवीलाल के समर्थकों को निष्प्रभावित करना चाहते थे।

वी.पी. सिंह की राजनीतिक, प्रशासनिक व इंटेलिजेंस मशीनरी उस नफरत की थाह लेने में असफल रही जो प्रधानमंत्री के लिए देवीलाल के मन में थी। देवीलाल ने राजीव गाँधी से जो गुपचुप सांठ-गांठ कर रखी थी उसका अंदाजा भी वह नहीं लगा सके। देवीलाल के गुर्गों के दिल्ली आने से चार दिन पहले हरियाणा के दो महत्वपूर्ण जाट नेता शमशेर सिंह सुरजेवाला और बीरेंद्र सिंह मुझसे मिले। उन्होंने जो सूचना दी वह कपा देने वाली थी। इसके अनुसार वी.पी. सिंह के मंडल कार्ड का जवाब देवीलाल दिल्ली की सडकों पर खूनखराबा कर के देने वाले थे। राजीव गाँधी के नेतृत्व में कांग्रेस ने देवी लाल का वही लाभ उठाया था जो उनके भाई ने दूसरे जाट चरण सिंह का उठाया था।

मैंने यह महत्वपूर्ण सूचना आई.बी. में दी, हालाकि मेरा वास्ता ' आतरिक राजनीतिक आसूचना' से न था। उस दिन शाम को 5 बजे मैं आर पी. जोशी से मिला। मैंने उनको बताया कि देवीलाल के नशे में धुत हजारों समर्थक तरह-तरह के हथियारों से लैस हो कर मोटरों से दिल्ली में प्रवेश कर रहे है। यह जान कर जोशी हैरान रह गए। हरियाणा और दिल्ली की पुलिस ने इन नशे मे धुत बदमाशो को सीमा पर रोकने के लिए लगभग कुछ नहीं किया। कांग्रेस के कार्यकर्ताओं ने रास्ते में जगह-जगह स्टॉल लगा कर उनको खूब खिलाया 'पिलाया'। दिल्ली की अपनी विजय यात्रा के दौरान उन्होंने सुबह घूमने के लिए निकली महिलाओं के साथ अभद्र व्यवहार किया और विरोध करने वाले नागरिकों को खदेडा।

आर.पी. जोशी की राजीव गाँधी, देवीलाल और चंद्रशेखर की चालबाजियों के बारे में सटीक इंटेलिजेंस एकत्र करने में असफलता विषयक मेरी टिप्पणी से यह नहीं समझना चाहिए कि उनकी पेशागत कुशलता में कोई कमी थी। वी.पी. सिंह जब मडल की रेत में धंसे थे, उस समय तक शीर्ष व निचले स्तर के प्रशासनिक तंत्र के लोग उनका साथ लगभग छोड चुके थे। ' राजीव गाँधी के भ्रष्ट शासन के विरुद्ध जिहाद छेडने वाले ' की पुलिस और इंटेलिजेंस ने भी सहायता करनी बंद कर दी थी। प्रशासनिक तंत्र में उच्चवर्ण के हिंदुओं का बोलबाला था। उनमें से अधिकांश ऋग्वेद (पुरुष सूक्त) में दी गई जाति की धारणा पर पूरी श्रद्धा रखते थे।

समाज की दलित और दमित जातियों को आरक्षण देने पर उन्हें बहुत नाराजगी हुई। वी.पी. सिंह के इन जातियों को आरक्षण देने के नेक लेकिन गलत समय पर लिए गए निर्णय ने ऊँची जाति के हिंदुओं का क्रोध भडका दिया। इसकार्रवाई से उनका युक्तिपूर्वक बनाया गया ऊंची जाति का किला हिलने लगा। वह किसी भी तरह के परिवर्तन के लिए तैयार हो गए। उनके पास दो विकल्प थे—या तो राजीव गाँधी को एक और मौका दें या फिर अभी-अभी राष्ट्रीय मंच पर आई बी.जे.पी. को चुनें। इन अधिकारियों ने वी.पी. सिंह की सरकार के साथ सहयोग करना बंद कर दिया। कुछ वरिष्ठ प्रशासकों की पत्नियां तो खुलेआम बी.जे.पी. और राम जन्मभूमि की मुहिम में शामिल होने लगीं। उन्हें अब भी राजीव गाँधी पर विश्वास न था।

आर.पी. जोशी संगठन के अंदर की एक समस्या में फंसे हुए थे। वह एक नेक और मिलनसार इन्सान थे। उन्होंने महत्वपूर्ण विश्लेषण और संचालन डेस्कों से पुराने वफादारों को हटाने का फैसला नहीं लिया। वे अभी भी अपने पुराने नेता से जुड़े थे और जोशी को एक अस्थायी बंदोबस्त समझते थे। वे उम्मीद लगाए हुए थे कि वी.पी. सिंह के पतन के तुरंत बाद नारायणन को वापस बुलाया जाएगा। अधिकांश पुराने वफादार अधिकारी नारायणन को महत्वपूर्ण सूचनाएँ पहुंचा देते थे। नारायणन संयुक्त इंटेलिजेंस समिति के अध्यक्ष होने के साथ-साथ राजीव गॉधी के अनौपचारिक डी.आई.बी. भी थे।

मैंने जोशी को संगठन के अदर चल रहे इस षडयंत्र की जानकारी दे कर आगाह करने का प्रयास किया। लेकिन वह इतने शरीफ थे कि अपने ऊपर मंडराने वाले बाज के भी पर कतरने को तैयार न थे। उनके विश्वासी स्वभाव ने उनके कुछ अन्य गुणों को बेकार कर दिया। मंडल मामले के बाद उनको यकीन हो गया कि वह अपने ' मित्र ' राजीव गॉधी का अनुसरण करते हुए नॉर्थ ब्लॉक के अपने कमरे में लौटने वाले हैं।

देवीलाल की विशाल किसान रैली का समापन अनियंत्रित हिंसा और पुलिस की गोली चलाने के साथ हुआ। भागते हुए पियक्कड बदमाशों ने इंडिया गेट के निकट के आवासीय क्वार्टरों पर धावा बोला। इसमें मेरा घर भी शामिल था। उन्होंने हमारी खिडकियों पर पत्थर मारे और हमारे लान व फूलों की क्यारियों को तहस-नहस कर दिया। यह देवीलाल, ओम प्रकाश चौटाला और राजीव गॉधी के पिछवाडे के सिपहसालारों की योजनाबद्ध बदले की कार्रवाई थी। वी.पी. सिंह को गिराने की असली लडाई शुरू हो चुकी थी।

* * * *

वी.पी.सिंह अपने मंडल के जाल मे बुरी तरह फंस चुके थे। यह दूरगामी असर करने वाला सामाजिक कदम उन्होंने राज़नीतिक बदहवासी में उठा लिया था। वह यह समझने में बुरी तरह असफल रहे कि उनकी छोटी हिंदू जातियों के लिए ' चिंता ' पहले से ही जातियों में विभाजित हिंदू समाज में सदा के लिए एक और फूट पैदा कर देगी। हिंदू समाज सदा से और आज भी जातीय भेदभावों से बुरी तरह ग्रस्त है। वी.पी. सिंह ने नासमझी के साथ अल्पसंख्यक और बीच के हिंदू वोट बैंक को संतुष्ट करने की चाल चली। वह उस तरह के मसीहा कतई न थे जिसका इंतजार स्वाधीनता के बाद से भारत कर रहा था।

मंडल विरोधी आंदोलन पिछडी जातियों के लिए आरक्षण के विरुद्ध त्वरित उठा विरोध नहीं था। यह कांग्रेस द्वारा प्रेरित, निर्देशित व आविष्कृत था। कांग्रेस के समस्या सुधारक इसका संचालन कर रहे थे। आंदोलन चलाने पर खर्च हो रही भारी रकम कांग्रेस के काले भंडार से आ रही थी।

कांग्रेस में मेरे स्रोतों ने राजीव गाँधी के सहायकों द्वारा ' छात्र आंदोलन ' चलाने के लिए खर्च की जा रही रकम का पूरा ब्योरा मुझे दिया। अकेले दिल्ली में ही लगभग 20 लाख रुपये खर्च किये गये थे। कुछ छात्र नेताओं, शिक्षकों और जिला स्तर के कांग्रेस पदाधिकारियों को धन दिया गया। आंदोलन में जो जानें गईं उनका बलिदान ऊंची जाति के हिंदुओं की हितरक्षा के लिए नहीं हुआ था। ये जानें इस लिए गईं क्योंकि कांग्रेस नहीं चाहती थी कि वी.पी. सिंह जरूरत से ज्यादा एक दिन भी सत्ता में बने रहें। यह ऐसा नृशंस प्रयोग था जैसे राजीव के छोटे भाई ने किए थे। आपात्काल में संजय ने तुर्कमान गेट पर जो नरसंहार किया था, छात्र आंदोलन उसी का एक रूप था। कांग्रेस के नेताओं ने बची-खुची संजय ब्रिगेड का बड़ी होशियारी से इस्तेमाल किया था।

यह बात मेरी जानकारी मे है कि दिल्ली मे आत्मदाह करने वाले एक छात्र की दरअसल काग्रेस के गुडो ने हत्या की थी। गरीब घर के इस लडके को पहले खूब नशा कराया गया। फिर उसे तीन पतलूने पहनने को कहा गया और विश्वास दिलाया गया कि उसके कपडो मे लगी आग को फौरन बुझा दिया जाएगा। आला कमान के एजेटो ने उसे कुछ रुपयो का लालच दिया था। नशे मे धुत वह बेचारा लडका उनकी चाल मे आ गया। जैसा कि बाद मे हुआ उसके कपडो की आग नही बुझाई गई। उल्टे उस पर और भी मिट्टी का तेल छिडका गया ताकि वह 80 प्रतिशत जल जाए। जातिवाद क इस पहले शहीद की दरअसल काग्रेस के षडयत्रकारियो ने हत्या की थी।

मै इस आयोजित छात्र आदोलन मे सघ परिवार के सदस्यो के भाग लेने के कोई ठोस प्रमाण नही जुटा पाया।

मैंने काग्रेस के इस जघन्य कारनामे से सबद्ध इटेलिजेस को आई बी तक पहुँचाया। हालाकि मेरी आर के धवन से मित्रता जारी थी। जिस तरह राजीव गॉधी के चालबाजो ने जन भावनाओ के साथ खिलवाड किया था वह मुझे कतई पसद न आया। यह सिर्फ उस एक आदमी के साथ विद्वेष के कारण था जिसने राजीव और उनके मित्रो को कुछ घोटालो मे लपेटने की कोशिश की थी।

वी पी सिह की सरकार तब तक अपना प्रभाव खो चुकी थी। कानून-व्यवस्था तत्र ने सिर्फ ज्वलत घटनाक्रम पर प्रतिक्रियात्मक कार्रवाई की और बुरी तरह विभाजित जनता दल का राजनीतिक ढॉचा डूबती नाव की तरह तडक गया। अनेक मोर्चो पर वह पूरी तरह विफल रहे थे। राजीव गॉधी ने मडल असफलता का पूरा लाभ उठाया। उन्होने वी पी सिह की नैया को ऐसा तूफानी झोका दिया कि वह दोबारा सुधरने लायक न रही।

* * * *

सघ परिवार और उसके सहोदर सगठन बी जे पी व विश्व हिंदू परिषद ने वी पी सिह के लिए स्थिति और भी खराब कर दी। राजीव गॉधी के विरुद्ध पडे नकारात्मक वोटो की बदौलत मिली 86 सीटो से वे सतुष्ट न थे। उन्होने वी पी सिह का साथ इस उम्मीद से दिया था कि जब वे हिंदू एजेडे को आगे बढाएँगे तो राज्य प्रशासन का रुख मुड जाएगा। तब उसे लगेगा कि यह आगामी लोकसभा चुनाव मे जीत हासिल करने का अमोघ अस्त्र है। जयप्रकाश आदोलन के दौरान सघ परिवार ने जो रणनीति अख्तियार की थी यह उसका सशोधित रूप था। परिवार वी पी के क्षुद्र वाहन से उतर अपने जगी घोडे पर सवार हो कर आक्रमण करने के मूड मे था।

दरअसल एल के आडवाणी ने नेशनल फ्रट की सरकार को समर्थन देने की अपनी कुछ शर्तें पहले ही बता दी थी। आर एस एस और परिवार के सदस्य राष्ट्रीय मोर्चा सरकार की भगुरता से परिचित थे। इसलिए उन्होने अपने एजेडे को आगे बढाने मे देर नही की।

प्रत्यक्ष बाधा की शुरुआत वी पी सिह की मुस्लिम-तुष्टि नीति से शुरू हुई। इस आरोप का मुख्य मुद्दा एक अनावश्यक राजनीतिक कार्रवाई थी। इसके तहत सिह ने पुरातत्व विभाग सरक्षण के अतर्गत सभी मस्जिदो को रमजान के दिनो मे मुसलमानो के लिए खोलने का आदेश दे डाला था। इस अदूरदर्शी नेत्रहीन द्रष्टा ने इतना भी नही समझा कि इस तरह की घातक रियायत देने के क्या नतीजे होगे। इसके बाद जामा मस्जिद की मरम्मत के लिए एक बड़ा अनुदान भी दिया गया और यह ऐलान भी किया गया कि पैगबर मोहम्मद साहब के जन्मदिन पर सार्वजनिक अवकाश रहेगा। सघ परिवार ने अल्पसख्यको को तुष्ट करने की इस

खोखली कार्रवाई का जवाब रामनवमी आदि हिंदू त्योहारों पर अवकाश घोषित करने की मॉग से दिया।

वी.पी. सिंह और राजीव गाँधी दोनों ही संघ परिवार द्वारा हिंदू संगठन को मजबूत करने की कार्रवाई का जवाब देने में असफल रहे थे। इसकी शुरुआत 1979-80 के चुनावों के दौरान ही हो गई थी। तब कांग्रेस ने धीरेंद्र ब्रह्मचारी और अपने राजनीतिक वफादार डा. कर्णसिंह के माध्यम से हिंदू कार्ड खेला था और आर.एस.एस. का सक्रिय समर्थन प्राप्त किया था। 1984 के ऑपरेशन ब्लूस्टार से पहले ही विश्व हिंदू परिषद ने शिला पूजन आरंभ कर दिया था। उसने धार्मिक यात्राएँ करना और राम जन्मभूमि मुक्ति योजना भी शुरू कर ली थी। इससे हिंदुत्व की मुहिम चल निकली थी। 1988-89 में के बी हेडगेवार के शताब्दी समारोह तथा 24 मार्च 1989 को गुजरात (अहमदाबाद) में सघ परिवार की एक महत्वपूर्ण बैठक से भी यह स्पष्ट हो गया था। दिल्ली और प्रमुख राज्यों में सत्ता पर अधिकार करने की रणनीति को इस बैठक में अंतिम रूप दिया गया। गुजरात का चुनाव प्रतीकात्मक था। एल.के आडवाणी ने गुजरात में अपना राजनीतिक आधार बना लिया था। सोमनाथ मंदिर (जिसे मुस्लिम आक्रमणकारियों ने कई बार नष्ट किया) को हिंदू मर्यादा का प्रतीक माना गया। निस्संदेह अनेक दशकों के बाद एक बार फिर गुजरात को संघ परिवार ने सांप्रदायिक राजनीति की प्रयोगशाला बना लिया था।

लालकृष्ण आडवाणी ने टोयोटा रथ पर गुजरात में सोमनाथ से अयोध्या तक रथयात्रा निकाली। इसने हिंदू लहर को अभूतपूर्व आरोह तक पहुंचा दिया। इसने हिंदु-मुस्लिम भावनाओं को भडकाया और वी पी. सिंह के मंडल कार्ड को काफी हद तक भोथरा कर दिया। आडवाणी अपनी यात्रा के अंतिम पडाव में बिहार में बंदी बना लिए गए। उत्तर प्रदेश के 'धर्मनिरपेक्ष' मुख्यमंत्री मुलायम सिंह यादव ने विवादास्पद बाबरी मस्जिद पर धावा बोलने के कार सेवकों के प्रयास को विफल कर दिया। इस प्रक्रिया में संघ परिवार के 50 से अधिक अनुयायी मारे गए।

कोई कारण न था कि आई.बी. संघ परिवार की आंतरिक सोच और व्यावहारिक रणनीति तक न पहुँचती। आई.बी ने इस हिंदू संगठन में अच्छी घुसपैठ बना ली। राजीव गाँधी के निकटवर्ती मुंबई के कुछ उद्योगपतियों ने कुछ बी.जे पी /आर.एस.एस. के नेताओं को सफलतापूर्वक अपनी तरफ मिला लिया। इनमें से तीन पत्रकार और एक केशव कुंज का कार्यकर्ता था। इन में से दो पत्रकारों को बी.जे.पी. के राज में राज्यसभा में सीट दी गई थी। कुछ कारणों से मैं केशव कुंज के कार्यकर्ता का नाम नहीं बता सकता। पर उसका वहाँ बहुत शीर्ष स्थान था। एक उद्योगपति महाराष्ट्र के एक अनुदार क्षुद्रदेशभक्त नेता के व्यक्तिगत रूप से बहुत निकट थे। इस उद्योगपति का दिल्ली कार्यालय निरंतर राजीव गाँधी के संपर्क में था और वह उनको संघ परिवार के बारे में महत्वपूर्ण 'इंटेलिजेंस' उपलब्ध कराता रहता था। एक मौके पर तो इस उद्योगपति के एक संचालक को राष्ट्रीय कार्यालय में बी.जे.पी. के ' गुप्त ' दस्तावज़ों को कुछ घंटों तक देखने की मोहलत दी गई। बी जे.पी. की महत्वपूर्ण बैठकों की कार्रवाई तथा अंदरूनी संचार की प्रतियाँ निकालने के लिए एक हाथ में लिए जाने वाले छोटे इलेक्ट्रानिक कॉपियर का इस्तेमाल किया गया। इस तरह की बहुमूल्य अपरंपरागत इंटेलिजेंस राजीव गाँधी को पहुँचाई गई।

मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि आर.एस.एस. के जिस एजेंट ने मुंबई के उद्योगपति की पहुँच यहां तक बनाई वह महाराष्ट्र का था। वह संघ परिवार के मेरे मित्रों में से नहीं था।

आर.पी. जोशी व्यक्तिगत रूप से मुरलीमनोहर जोशी के संपर्क में थे जो कि एल.के. आडवाणी के स्थान पर बी.जे.पी. के अध्यक्ष बनने वाले थे। इंटेलिजेस की कमी न थी। कमी थी देश में एक ऐसी समन्वित सरकार की जो एक विषद योजना बना सके।

1980 और 1990 के बीच जो हिंदू लहर आई वह अनिवार्य थी, लगभग एक ऐतिहासिक आवश्यकता। इंदिरा कांग्रेस ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का स्थान ले लिया था। राजीव की कांग्रेस देश को एकजुट रखने में असमर्थ थी। क्षेत्रीय मनसबदारों का प्रभाव बढ रहा था। राजनीति में जातीय धुव्रीकरण हो रहा था। सांप्रदायिक स्तरीकरण ने स्थिति को और भी बिगाड़ दिया। हिंदुत्वादी तत्वों के लिए यही वह ऐतिहासिक अवसर था जब वह कांग्रेस के राष्ट्रीय विकल्प के रूप में उभरने का दृढ प्रयास करें।

यहाँ इस बात का जिक्र करना भी जरूरी हो जाता है कि एक के बाद एक आने वाली कांग्रेसी सरकारों और वी.पी. सिंह की सरकार ने ' अल्पसंख्यकों के तुष्टीकरण ' की नीति अपनाई थी। हिंदुओं और मुसलमानों में जातिगत पृथकता लाने के लिए जितनी जिम्मेदार मुस्लिम लीग और दूसरे मुस्लिम संगठन थे, कांग्रेस उसके लिए इससे कम जिम्मेदार न थी। अधिकांश प्रमुख मुसलमानों का स्वाधीनता आंदोलन से बहुत कम वास्ता था। वे कांग्रेस के आंदोलन को हिंदुओं का आंदोलन बताते थे। हिंदुत्ववादियों ने मुसलमानों की इस मनोवृत्ति का विरोध किया।

हिंदुओं की तरफ से प्रतिलहर आनी स्वाभाविक थी। संघ परिवार ने कांग्रेस और अन्य कथित धर्मनिरपेक्ष दलों के ढांचे के चरमराने का फायदा उठाया और हिंदू सर्वोच्चता में विश्वास रखने वाले भारतीयों की भावनाओं के पुनरुत्थान का प्रयास किया। हिंदू बहुसंख्यक राष्ट्र में यह कोई अनुचित राजनीतिक स्वप्न न था। स्वाधीनता बाद के शासक हिंदुओं की भावनाओं की थाह लेने में असफल रहे। वह समझ नहीं पाए कि अल्पसंख्यकवाद को बढ़ावा देने के नाम पर हिंदू हितों की बलि नहीं दी जा सकती। कांग्रेस के पतन और वी.पी. सिंह की हिंदू और मुस्लिम आकांक्षाओं में संतुलन बनाए रखने में असफलता ने ' नव हिंदू जागरण ' को अनिवार्य बना दिया।

उपमहाद्वीप की ऐतिहासिक लहर को मैंने कुछ इस प्रकार समझा। मैं अपनी एजेंसी के उच्च अधिकारियों के सामने अपने यह विचार सदा रखता रहा। अपने सब तरह के राजनीतिक मित्रों को भी मैंने अपने इन विचारों से अवगत कराया। वैसे मैं गलत भी हो सकता था।

मैंने संघ परिवार के अपने मित्रो से हिंदुत्व की सारी रणनीति की विस्तृत चर्चा की। मुझे इसमें कोई संदेह न था कि आने वाले दशक में हिंदुत्व की शक्तियों का बोलबाला रहेगा। भारत को आंतरिक अशांति, जातीय व साप्रदायिक ध्रुवीकरण तथा क्षेत्रीय सघर्षों की ज्वाला में से घिसट कर निकलना पडेगा। कालचक्र अनिवार्यतः घूम गया था। मुझे लगता था कि भारत को अब नए सामाजिक-राजनीतिक प्रयोगों में से गुजरना होगा। एक ऐसे वातावरण में जहाँ केंद्र और राज्यों में सत्ता की अधिक भागीदारी होगी, जो गठबंधन की सरकारों का एक लंबा दौर होगा।

मैंने बी.जे.पी. और संघ परिवार के अपने मित्रों के साथ संबंध बनाए रखे। मैं उग्र इस्लाम विरोधी तत्वों को नकार नहीं सकता था। मेरा हिंदू समाज की एकता के सार में विश्वास था। मैं महसूस करता था कि हिंदू पुनरुत्थान की आवश्यकता है। हिंदुत्व भारतीय राष्ट्रीयता का निर्माण करने वाली एकमात्र शिला तो नहीं लेकिन इसी पर राष्ट्र की नींव टिकी है।

मेरे आर.एस.एस के मित्रों ने मुझे बताया कि कट्टरपंथी इस्लाम की प्रधानता वाले भू-राजनीतिक क्षेत्र में ' स्वतंत्र विश्व ' की शक्तियाँ हिंदू पुनरुत्थान के विचार को पसंद करेंगी। सियोनवादी, ईसाई और मुसलमान अपने धर्म का झडा फहराते थकते नहीं, ऐसे में अगर हिंदू अपना परचम लहराएँ तो इसमें क्या बुराई है? ' मैं हिंदू हूँ ' यह कहना क्या जुर्म है? मैं जानता था कि ऐतिहासिक दृष्टि से यह तर्क सही है। पर क्या यह गलत तर्क न था ? क्या हम भारतभूमि पर सभ्यता की लडाई लडने का प्रयोग फिर से दोहराना चाहते थे? क्या 1946-47 काफी न था ? मैं यह भी जानता था कि इसके पक्ष-विपक्ष में जवाब भी उतने ही अनंत होंगे जितना कि इतिहास ।

अपने मित्रों की जो थोडी बहुत सहायता मैं कर सकता था, मैंने की। वी.पी. सिंह की राजनीतिक कुशलता और देश को दलदल से बाहर निकालने की राजीव गाँधी की क्षमता पर से मेरा विश्वास उठ चुका था। राजीव अपने अंतिम पड़ाव पर पहुँच चुके थे। दैवी शक्तियां भी अब उनको वापस सत्ता में नहीं ला सकती थीं। उनका गलतियों भरा शासन ही उनके राजनीतिक पतन का मुख्य कारण था। दूसरी विफलताओं के साथ-साथ वह नई हिंदू लहर के आने की अनिवार्यता को भी समझने में असफल रहे थे। इंदिरा गाँधी की मृत्यु ने नई राजनीतिक शक्तियों और समीकरणों को जन्म दिया था। यह समय था जब सभी राजनीतिक और सामाजिक शक्तियों को हिंदू तापांश को सावधानी से नापने की कोशिश करनी चाहिए थी। राजीव गाँधी और आई.बी., दोनों ही इस बढ़ते तापांश को मापने में असफल रहे।

❮25❯

प्रागैतिहासिक राज्य को लौटना

जातिवाद इन्सान से इन्सान को सब से बडा खतरा है।
यह न्यूनतम कारणों से अधिकतम घृणा है।

अब्राहम जोशुआ हेशेल

मेरा असम से गहरा भावनात्मक संबध रहा है। ब्रह्मपुत्र घाटी के लोग इसे ओसोम कहते हैं जिसका उच्चारण आहोम भी किया जाता है। आर्य इतिहासकार इसे प्राग्ज्योतिषपुर (प्राग्ऐतिहासिक स्थान) कहते थे। यह प्राग (पूर्व) ज्योतिष (कैलेंडर) का स्थान था। यानी आर्यव्रत में आर्य कैंलेंडर आरभ होने से पहले से ही इस क्षेत्र की सभ्यता ने उनको प्रेरित किया था। मैंने असम मे कभी सेवा नहीं की थी। यह अवसर अचानक ही आया।

दिल्ली मे राजनीतिक अनिश्चितता की स्थिति मे मेरी सेवाएँ पजाब और पाकिस्तान संचालन से हटा ली गई। मुझसे कहा गया कि मै असम के मामलों मे सहायता करूँ। उत्तरपूर्व के एक विशेषज्ञ ओ.एन. श्रीवास्तव इसके प्रमुख थे। उनका विवाह एक रमणीय अंगामी नगा महिला से हुआ था। वह नगालैंड के भूतपूर्व मुख्य सचिव एच. जोपियांगा की पुत्री थी। असम के खतरनाक और नाजुक मामलों के सचालन के लिए वह सब से योग्य व्यक्ति थे।

असम की व्यथा पिछले 75 वर्षों से घनीभूत होती रही थी। इसका कुछ कारण ब्रिटिश प्रशासन और मुस्लिम लीग रही है, पर अधिकाशतः इस की जिम्मेदार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और इंदिरा कांग्रेस रही है। अब वहा की जनता के सब्र का बॉध टूट चुका था। 1988-89 में असम को गैरकानूनी तौर पर बसने वाले लोगो के झुड के झुंड झेलने पडे। उसे अपना जातीय भूगोल फिर से लिखे जाने की आशंका नजर आने लगी। असम असल मे राष्ट्रीय कुप्रबध की एक मिसाल है । यह राज्य जातीय अतिक्रमणो से घिरा रहा है। इस पर पाकिस्तान की नजर हमेशा रही है। वह इसे अपने पहले के क्षेत्रीय दावे का हिस्सा मानता रहा है।

असम और उत्तरपूर्व में अन्यत्र हमारे राष्ट्रीय नेताओ ने जो गलतियां की हैं उनका विवरण देने के लिए मैं इतिहास का नश्तर ले कर उसकी परतें उधेड़ना नहीं चाहता। इतना कहना काफी होगा कि नेहरू और पटेल जैसे वरिष्ठ काग्रेसी नेताओं ने मुहम्मद अली जिन्नाह की पूर्वी बंगाल और असम की मॉग को लगभग मंजूर कर लिया था। गोपीनाथ बार्दोलोई और महात्मा गाँधी सरीखे राष्ट्रीय नेताओं ने भारत के लिए असम और उत्तरपूर्व को बचा लिया। पिछले सात दशकों से भी अधिक समय से असम ने जो क्षेत्रीय असंतुलन झेला है और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, इंदिरा कांग्रेस व धर्मांध मुस्लिम राजनीतिक व धार्मिक संगठनों ने यहां जो दोहरी चालें चली हैं उनका निष्पक्ष विश्लेषण करने की बहुत गुंजाइश है। असम के मामले में जो गलत नीतियॉं अपनाई गईं, उनको न पाकिस्तान ने अनदेखा किया न उस के उत्तराधिकारी बंग्लादेश

ने। भारत, पाकिस्तान और बंग्लादेश के मुस्लिम संगठनों के लिए ' असम मुसलमानों का है,' यह एक महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम रहा है।

असम में तैनात किया जाना मुझे पसंद न था। उत्तरपूर्व में मैंने काफी सेवा कर ली थी। दिल्ली,शिलांग और गौहाटी के कांग्रेसी नेताओ ने जो गलत नीतियाँ अख्तियार की थीं उन के चलते असम एक ज्वालामुखी बन चुका था जो कभी भी फट सकता था। इसके अलावा मैं आल असम स्टूडेंट यूनियन (ए.ए.एस.यू.), और असम गण परिषद (ए. जी. पी.) के कुछ नेताओं के साथ अपने पारिवारिक संबंधों को बिगाड़ना नहीं चाहता था।

मुझे एक और भी एतराज था। असम में आई.बी. के महत्त्वपूर्ण संचालन जिनमें ए.ए.एस. यू. का आंदोलन, असम समझौता और उल्फा के विरुद्ध हाल की कार्रवाई, ये सभी हितेश्वर साइकिया (उच्चारण हाइकिया) से संबद्ध थे। वह इंदिरा कांग्रेस के वरिष्ठ नेता होने के साथ-साथ असम के भूतपूर्व (भावी भी) मुख्यमंत्री थे।

हितेश्वर और मैं अपरिचित न थे। मेरी पत्नी के मामा असम के लोक कल्याण विभाग के सचिव थे। जनवरी 1980 में चुनाव आयोग द्वारा असम में चुनावों की घोषणा के तुरंत बाद उनके साथ साइकिया ने मेरे दिल्ली आवास पर डेरा डाला था। इंदिरा गाँधी और उनके महत्वपूर्ण सहायक आर.के. धवन के साथ मेरी निकटता की जानकारी उनको मिल गई थी।

संघर्षो से क्षतविक्षत राज्य में इंदिरा गाँधी और चुनाव आयोग के चुनाव कराने के निणर्य के सही-गलत होने पर टिप्पणी करने की मुझ में योग्यता नहीं है। लोकतंत्र के बारे मे एक नारा है कि यह समतल कर देता है। यह नारा नीली के नरसंहार के बाद खोखला प्रतीत होता था। यहां दंगाई असमिया हिंदुओं, नेपालियों व लालुंग आदिवासियों की भीड ने एक हजार से अधिक मुसलमानो को मौत के घाट उतार दिया था। इन में अधिकांश महिलाएँ और बच्चे थे। अन्यत्र बोडो और असमियों में भीषण संघर्ष हुआ था। अंततः 30 प्रतिशत से कुछ अधिक मतों ने लोकतांत्रिक प्रक्रिया को संपन्न किया।

इंदिरा कांग्रेस की असम शाखा के अध्यक्ष हितेंद्रनाथ तालुकदार ने हितेश्वर को चुनौती दी। हितेंद्रनाथ संजय के निकटवर्तियों से संपर्क बनाने में सफल हो गए थे। हितेश्वर आर. के. धवन,धीरेंद्र ब्रह्मचारी और एम.एल. फोतेदार की तिकडी से काम चला रहे थे।

मैं अपनी पत्नी के मामा के प्रति क्षोभ और दयाभाव के कारण उनको आर.के. धवन के पास ले गया था। हितेश्वर ने ऐलान कर दिया था कि जब तक मैं उनकी सहायता नहीं करता, वह मेरे घर पर अड्डा जमाए रहेंगे। उस समय इंदिरा गाँधी मुझे अनौपचारिक रूप से मिलने की अनुमति दे देती थीं। एक शाम मैं हितेश्वर को साथ ले कर प्रधानमंत्री के यहाँ चला गया। उन्होंने सारी बात ध्यान से सुनी और उनको संजय व धवन के पास भेज दिया।

अपनी चतुराई से हितेश्वर ने असम में आई.बी. के प्रमुख ओ.एन. श्रीवास्तव को प्रभावित कर लिया। निदेशक आई.बी. ने भी उनकी सिफारिश की। असल मे हितेश्वर और आई.बी. ने इंदिरा गाँधी को इस बात के लिए प्रभावित कर लिया कि वह 30 से अधिक मुस्लिम उम्मीदवारो को चुनाव के लिए नामज़द करें। इस फैसले से ए.ए.एस.यू. और सामान्यतः ओहामी हिंदू चिंतित हुए। ऊपरी असम के मटोक हिंदुओं को टिकट बाँटने का यह तरीका पसंद नहीं आया।

हितेश्वर मृदुभाषी अहोम होने के साथ-साथ कुशल प्रशासक भी थे। उन्होंने गोहाटी में सर्वोच्च कुर्सी पर कब्जा पा लिया। अब वह ए.ए.एस.यू.,ए.ए. जी.एस.पी., प्लेन्स ट्राइबल

काउंसिल आफ असम (पी.टी.सी.ए.) और अब तक प्रबल यूनाइटेड लिबरेशरन फ्रंट आफ असम के साथ लंबे सधर्ष के लिए तैयारी में लग गए।

मुझे यह भी बता देना चाहिए कि शपथ लेने के बाद हितेश्वर मेरे घर पर आए । उन्होंने मेरी पत्नी को एक टसर सिल्क की साडी और मुझे नोटों से भरा ब्रीफकेस देने की पेशकश की। हमने साड़ी स्वीकार कर ली पर ब्रीफकेस वापस कर दिया। मेरी पत्नी के मामा को अपनी नौकरी में तरक्की मिल गई।

हितेश्वर की सहायता के लिए मुझे जो करना चाहिए था वह मैंने किया। पर मुझे इस में कोई शक नहीं था कि उन्होंने ही संतोष मोहन देव जैसे इंदिरा कांग्रेस के नेताओं को मदद दे कर उनको मुसलमानों को उकसाने, उत्तरी कछार के आदिवासियों और बोडो से ए.ए.एस. यू. व ए. जी.पी. के खिलाफ गंदी चालें चलवाने के काम पर लगाया था। 1979 में उल्फा के गठन के पीछे हितेश्वर का स्पष्ट हाथ था। हितेश्वर जाति के अहोम थे। इसने उनकी अहोम मटोक (थाई-अहोम मूल) के अरोबिंदो राजखोआ,गोपाल बरुआ (अनूप चेटिया),प्रोदीप गोगोई और परेश बरुआ जैसे नेताओं से तालमेल बैठाने में मदद की। उल्फा का गठन करने वाले कुछ ए.ए.एस..यू. से फूटे नेताओं से हितेश्वर के संबंधों के रोमहर्षक विवरण मुझे 1981 में अपनी दिल्ली की गुप्त यात्रा के दौरान समीरन ने सुनाए थे। उस समय मैं उसकी कहानी को इंदिरा गाँधी की आंतरिक मंडली की एक और चाल समझा था।

इंदिरा गॉधी के अनवरा तैमूर को असम की मुख्यमंत्री बना देने के बाद मेरी समीरन से एक बार फिर भेंट हुई। उनकी मुस्लिम समर्थक नीतियों के कारण कांग्रेस के गैरमुस्लिम नेता भी उनसे और उनके खास मंत्री ए.एफ.गुलाम ओस्मानी से नाराज थे। इन दोनों नेताओं ने बड़ी संख्या में बंग्लादेशी मुसलमानों को असम में आने को प्रोत्साहित किया। उन दिनों में हितेश्वर साइकिया और ललित दूबे जैसों ने ए.ए.एस.एस.यू./ए.ए. जी.एस.पी. के उल्फा धड़े की सहायता की। उन्होंने ऑखें मूंद कर अहोम राष्ट्रवादिता के कार्ड का मुसलमानों के खिलाफ इस्तेमाल किया। हितेश्वर ने कोई नया काम नहीं किया था। पडोस के नगालैंड और मणिपुर के विद्रोही गिरोहों को भी तथाकथित लोकतांत्रित व मुख्यधारा की पार्टियों से सहायता मिलती थी। कांग्रेस पार्टी का तो अपने राजनीतिक लाभ के लिए उत्तरपूर्व में विधटनकारी तत्वों की सहायता करने का इतिहास था ही।

एक बार फिर मैं यह काम बुद्धिजीवियों पर छोड देता हूँ कि वे भारतीय शासकवर्ग और प्रशासकों द्वारा उत्तरपूर्व के आदिवाासियों की अपने लिए नया राजनीतिक भूगोल गढ़ने की उपराष्ट्रवादी आकांक्षाओ के साथ किए खिलवाड का लेखा लें। उनसे मैं विशेष रूप से यह चाहूँगा कि वे राजीव के गृहमंत्री बूटासिंह की उन गंदी चालों का पर्दाफाश करें जो उन्होंने असम के आदिवादियों को ' उदयाचल ' की मांग के लिए उकसाने के लिए चली थीं। आई. बी. के कई वरिष्ठ अधिकारी राजीव गॉधी के समस्यानिवारकों के साथ गठजोड में उत्तरपूर्व में भी एक नया फ्रेंकस्टीन गढ़ने में लगे थे। मुझे हैरानी है कि पंजाब के फ्रेंकस्टीन का इतना विच्छेदन क्यों किया गया और उत्तरपूर्व के फ्रेंकस्टीनो की तरफ ध्यान क्यों नहीं दिया गया।

बारूदी सुंरग में चलने में मेरी दिलचस्पी न थी। असम विषयक मेरे संकोच को अस्वीकृत कर दिया गया। मैं आर.पी. जोशी को नाराज भी नहीं करना चाहता था।

असम में मैं बड़ी आशंकाओं के साथ आया। सत्तारूढ राष्ट्रीय मोर्चा सरकार अपने गठबंधन के साथी ए.जी.पी. पर उल्फा के विरुद्ध निर्णायक कार्रवाई करने के लिए दबाव बनाने को

फडफडा रही थी। कथित गठजोड ने उल्फा को ऊपरी और निचली ब्रह्मपुत्र घाटी में अपना आधार मजबूत करने और बर्मा के कचिन विद्रोहियों से प्रशिक्षण व हथियारों के लिए संपर्क साधने का हौसला दे दिया था। उल्फा ने असम प्रशासन की धमनियों-शिराओं और कोशिकाओं में प्रवेश कर लिया था। अपने विनाशकारी शासन के अंतिम दिनों में वी.पी. सिंह इस उपद्रवग्रस्त राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करने को राजी हो गए थे। राज्य के राज्यपाल जमीनी वास्तविकताओं से कोसों दूर थे। उनकी देर रात तक पीने की लत उन के दिन को धुंधलाए रहती थी। आई.बी के एक वयोवृद्ध अधिकारी को किसी कोने से निकाल कर राज्यपाल का सलाहकार बनाया गया। उत्तरपूर्व के अनुभवी इस अधिकारी का भी जमीनी वास्तविकता से तालमेल नहीं बैठता था। बात यह थी कि राज्य प्रशासन इंटेलिजेंस एकत्र करने या प्रभावी पुलिसिया कार्रवाई करने में असमर्थ हो चुका था।

मेरी गिनती जोखिम उठाने वाले क्षेत्रीय संचालकों मे की जाती थी। लिहाजा मुझे समस्या के उस क्षेत्र में धकेला गया जहाँ उल्फा के गुप्त ठिकानों और उनके जघन्य कारनामों के खिलाफ सैनिक कार्रवाई की जरूरत थी। ओ.एन श्रीवास्तव ने मुझे दो एजेंट दिए। इसके बाद नलबाडी,हाउलीघाट,चपरमुख, नवगाव,जाखलबांथा,हाथी खुली,तेंगापानिया और बाडबाडा के उल्फा प्रभावित इलाको में नए एजेंट बनाने का दुष्कर काम मुझ पर छोड दिया गया। कुछ मुसलमान, नेपाली और बंगाली मित्रों ने राज्य मे स्थिति सामान्य होने की सच्ची आकांक्षा से प्रेरित हो कर मेरी मदद की।

श्रीवास्तव ने इसकाम की रूपरेखा तैयार कर रखी थी। मैंने कलकत्ता और शिलांग में सेना कमान को इस बारे में जांनकारी देने मे उनकी सहायता की। उल्फा शिविरों के सही-सही पते-ठिकानों,जंगलों व नदी, नालों से हो कर जाने वाले मार्गों को ले कर सेना कमान का चिंतित होना स्वाभाविक था। उनको अपने दस्तो के लिए पथ-प्रदर्शकों की जरूरत थी। जन-सूचना के आधार पर तैयार किए गए नक्शों की मदद से इस बारे में विस्तृत चर्चा की गई और इन नक्शों को सामान्य नक्शों पर चस्पां कर दिया गया।

ऑपरेशन बजरंग की तफ्सील हितेश्वर साइकिया और उनके दिए कुछ प्रमुख एजंटो के साथ मिल कर तय की गई। इस अहोम नेता ने अधिकांशत नेपाली, बंगाली और मुसलमान समुदायों से एजेंट मुहैया कराए थे। वह इन रास्तों को अपने घर के लॉन से भी बेहतर जानते थे। इन एजेंटों से कलकत्ता तथा मेघालय के कुछ देहाती स्थानों पर संपर्क किया गया। असम और मेघालय के बीच घने गिरिपाद में एक जगह है खानापाडा। ऑपरेशन बजरंग शुरू होने से थोडा पहले वहाँ कहीं हमारे मिलने का स्थान तय हुआ था जिसने मेरे प्राणों को संकट में डाल दिया। हम एक भाडे की जीप में जा रहे थे। कुछ आदिवासी पुरवों से गुजरने के बाद हम लोग एक सूखे झरने पर पहुंचे। हम रात को ठीक सवा आठ बजे आने वाले एजेंट का इंतजार करने लगे। आठ बजे के लगभग पहाडी के जंगल से दो गोलियाँ चलने की आवाज आई। इसने हमें चट्टानों की आड लेने को विवश कर दिया। इस इलाके में उल्फा का कोई गुप्त ठिकाना न था। असम पुलिस भी शहर की सीमाओं से बाहर कम ही निकलती थी।

मेरे नेपाली गाइड ने फुसफुसा कर बताया कि यहाँ कुछ गैरकानूनी खनिक फिरते हैं। वे पीली चट्टानें खोदा करते हैं। इनमें रेडियोधर्मी यूरेनियम पाया जाता है। हो सकता है गोलियाँ उन्होंने चलाई हों। भोंडे तरीके से परिष्कृत कर के इस खनिज को कोलकाता और काठमांडू के कुछ व्यवसायियों को बेचा जाता है। इसका कुछ हिस्सा बंगलादेश और संभवतः पाकिस्तान

को भी जाता है। कुछ देर स्थिति का जायजा लेने के बाद मैंने अपनी पिस्तौल से जवाबी फायर किया। गैरकानूनी खनिकों के पैरों में पर लगाने के लिए इतना काफी था। उन में से ज्यादातर के पास एकनली बंदूकें थीं। एजेंट से मिलने का कार्यक्रम रद्द कर दिया गया और हम ने रात एक नेपाली गाँव में गुजारी।

सैनिक कार्रवाइयों का ब्योरा देना मेरे लिए उपयुक्त न होगा। ऑपरेशन बजरंग का हमें मिश्रित परिणाम मिला। असम प्रशासन के प्रभावित स्तरों ने होने वाली सैनिक कार्रवाई की जानकारी पहले से दे दी थी। उल्फा ने अधिकांश शिविर छोड दिए थे। उनमें से कुछ जल्दबाजी में भारी नकदी (पांच करोड रुपए से अधिक) और सोने के पांसे छोड़ गए थे। कुछ प्राप्त सामग्री से यह पता चला कि उल्फा नेता और काडर या तो परिवार नियोजन में विश्वास रखते थे या फिर एड्स से बचने के लिए पूरी सावधानी बरतते थे। पर वे सेक्स का भरपूर आनंद लेते थे।

उल्फा नेता और उनका अधिकांश काडर नदी क्षेत्र में आवागमन के लिए नौकाओं का प्रयोग करते थे। शीर्ष नेता तो बंग्लादेश खिसक गए। अधिकांश काडर ने अरुणाचल प्रदेश और नगालैंड के जंगली रास्ते पकडे। उनमें से अधिकांश गॉवों में गायब हो गए।

* * * *

ऑपरेशन बजरंग और विश्वनाथ प्रताप सिंह के नेतृत्व वाले राष्ट्रीय मोर्चे का पतन लगभग एक ही समय में हुआ। वे अच्छी नीयत वाले और ईमानदार व्यक्ति थे। वह बडेबड़े आदर्शों से प्रेरित थे। पर वह वास्तविक राजनीति की भट्ठी में तप कर इस्पात नहीं बने थे। वह राजीव से बेहतर पायलट साबित नहीं हुए।

भारतीय राजनीति के पुराने कलाकार देवीलाल और चद्रशेखर पहले ही राजीव गॉधी से मिले हुए थे। राजीव को सत्ता में लौटने की अपेक्षा वी.पी. सिह का राजनीतिक मृत्युलेख लिखने की अधिक व्यग्रता थी। राजीव जानते थे कि वी.पी. सिंह को हटाने के तुरंत बाद संसद में बहुमत प्राप्त करने की संभावनाएँ क्षीण थीं। कलाकारो से कहा गया कि वे कुछ अंतर्वेला का प्रबंध करें। राष्ट्रपति के पास चंद्रशेखर को प्रधानमत्री की शपथ दिलाने के सिवा और कोई विकल्प न था। इस ताज का कोई दूसरा दावेदार न था। क्योंकि वह तो मंडल, राम जन्मभूमि, आंतरिक सुरक्षा की असंख्य समस्याओ तथा गिरती अर्थव्यवस्था के कई फंदों में फंसा हुआ था। चंद्रशेखर को पता था कि उनको अस्थिर सिहासन मिला है पर इस सिंहासन का सपना तो वह अपने सारे राजनीतिक जीवन में देखते रहे थे।

संयोग से उसी दौरान पाकिस्तानी तंत्र नवाज शरीफ को देश का प्रधानमंत्री बनाने में सफल हो गया। लेकिन रणनीति के विश्लेषक ऐसा माहौल नहीं देख रहे थे जो भारत-पाक संबंधों में शांति लाए। चंद्रशेखर विदेश मंत्रालय के उन 11 पदाधिकारियों की गिरफ्त में थे जिन को 1985 में राजीव ने तैनात किया था। उनके लिए भारत-पाक संबंधों को समतल धरातल पर लाना संभव न था।

दिल्ली में नई सरकार के सत्तारूढ होते ही मेरा असम की कार्रवाइयों से संबंध अचानक खत्म हो गया। मुझे फोन पर फौरन दिल्ली लौटने का आदेश मिला। वापस आने पर पता चला कि गृह राज्यमंत्री सुबोधकात सहाय मुझसे मिलना चाहते हैं।

बिहार के राजनीतिज्ञ सुबोध कांत से मिलने का मुझे कभी अवसर नहीं मिला था। इंदिरा गांधी के खिलाफ जयप्रकाश नारायण के आंदोलन ने उनको बिहार की राजनीति में ऊपर आने

का मौका दिया। राजीव गाँधी के खिलाफ वी.पी. सिंह का आंदोलन उनको संसद में लाया। वे अपने समाजवादी विचारों के लिए जाने जाते थे। इस से वह चंद्रशेखर के निकट आए।

मैंने सुबोधकात को बिहार के छः अधिकारियों से घिरा पाया। इनमें से कुछ आई.ए.एस, कुछ आई.पी.एस. और कुछ अन्य सेवाओं से थे। उन्होंने अपने इन सहायकों को खास काम सौप रखे थे। एक के जिम्मे राम जन्मभूमि/बाबरी मस्जिद विवाद था।बाकियों का काम उन के संसदीय क्षेत्र में विकास की कार्रवाइयों की देख रेख, अधिकारियों के तबादले व तैनाती और केंद्रीय पुलिस बलों के साथ संपर्क बनाए रखना था। मुझसे अपेक्षा थी कि उन के निजी कार्यालय से जुडने वाला सातवॉ व्यक्ति बनूँ।

सुबोध ने सीधे सीधे बात की। उन्होंने कहा कि वह सच्चे दिल से पंजाब और असम की समस्या हल करना चाहते हैं। इस मिशन की कामयाबी के लिए वह मेरी सेवाएँ चाहते थे। इस प्रस्ताव पर मुझे आश्चर्य हुआ। इंटेलिजेंस ब्यूरो केंद्रीय गृहमंत्रालय के साथ संलग्न विभाग है। अगर वह मेरी सेवाएँ चाहते थे तो मैं उनकी पंजाब और असम की कार्रवाइयों के लिए उपलब्ध था ही। पर उन्होंने मुझसे उनके निजी स्टाफ में शामिल होने का आग्रह किया। मैंने इस पर विचार करने के लिए एक दिन का समय मॉगा।

आर पी. जोशी को ज्वाइंट इंटेलिजेंस कमेटी में स्थानांतरित होने का आदेश मिल चुका था। एम.के. नारायणन उनका स्थान ग्रहण करने वाले थे। जोशी निरापद व्यक्ति थे। जिस तरह नारायणन राजीव गाँधी के साथ जुडे माने जाते थे, जोशी ने कोई राजनीतिक बाना नहीं पहना था। जोशी ने मुझे सलाह दी कि जब तक राजनीतिक परिवर्तनों वाले हालात हैं, मैं आई. बी. से बाहर रहूँ।

दो दिन मैं ठोकरें खाता रहा। केंद्रीय गृह सचिव और उनके अतिरिक्त सचिव मंत्री के स्टाफ में सातवां सहायक जोडने के विरुद्ध थे। अंततः मुझसे कहा गया कि मैं प्रतिनियुक्ति पर संयुक्त सचिव की हैसियत से गृहमंत्रालय में आ जाऊँ। मैंने इसका विरोध किया। चंद्रशेखर सरकार रात भर की मेहमान थी। वह राजीव गाँधी की मेहरबानी से बनी हुई थी। अगली सरकार मेरी प्रतिनियुक्ति रद्द कर सकती थी। वह मुझे या तो ओ.ओ.सी. डब्लू. के कूडेदान में डाल सकती थी। जिसे ऑफिसर आन कंपलसरी वेटिंग कहते हैं। या फिर वह मुझे अपने राज्य काडर में वापस भेज सकती थी जिसे मैं 1967-68 में सी.पी.एम. के पीछे पडने के कारण छोड आया था।

मेरे आग्रह करने पर मंत्रिमंडलीय सचिव ने एक सहमति वाला फार्मूला तैयार किया। इस से मैं आई.बी. में रह कर गृह राज्यमंत्री के कार्यालय में काम कर सकता था। मुझे अपना वेतन और भत्ते इंटेलिजेंस ब्यूरो से लेने की अनुमति दे दी गई।

मैंने जानबूझ कर ऐसा किया था। मैं यह साबित करना चाहता था कि मैं किसी डर से आई.बी. से भागा नहीं हूँ। 23 साल तक चिन्हित अधिकारी के तौर पर रहने के बाद मैं आई. बी. में बने रहने के नैतिक अधिकार का दावा जताना चाहता था। आई.बी. के कुछ अधिकारियों ने इसे मेरी मूर्खता समझा। कुछ और छुरे लेकर शाइलाक की तरह मेरा एक पाउंड मांस और कुछ आउंस खून निकालने को पार्श्व में इंतजार करने लगे क्योंकि वे सोचते थे कि मैं बडा चंट हूँ। उन के लिए आई.बी. या तो नारायणन के साथ थी या नारायणन के विरुद्ध थी। भारत या तो राजीव के साथ था या फिर शैतान के साथ था। वी.पी. सिंह से धोखा खाने के बाद उनको कोई अन्य विकल्प नजर ही नहीं आता था। आर.पी. जोशी के स्थान पर एम.के.

नारायणन के आने से एक दिन पहले मैंने गृह राज्यमंत्री के कार्यालय में रिपोर्ट किया। मुझे गृहमंत्री के विशेष सहायक का लंबा-चौडा पद दिया गया। नॉर्थब्लॉक के कमरों की चारदीवारी में मैं अपने आप को खोया-सा महसूस कर कर रहा था जहां अनुकंपा पाने वाले और नोट बनाने वालों का जमघट था। पेशे के लिहाज से भी मैं अपने आप को निर्बल पा रहा था क्योंकि मैं अपने प्रिय कार्यक्षेत्रों पंजाब, पी.सी.आई.यू. और असम से अलग कर दिया गया था। मैं किसी मंत्री के साए की तरह रह कर काम करने का अभ्यस्त न था। ऐसे पद तो भारतीय प्रशासनिक सेवा के ' ले दे काम करा ' किस्म के अधिकारियों को प्रिय थे। वही इनके पीछे दौडते थे।

इस तरह की जगहों के अनुपयुक्त होने की मेरी ख्याति कुछ विचित्र घटनाओं से प्रकट हो गई। गलियारों में जमावडा लगाने वाले कुछ लोगों ने मुझे ऐसी स्थितियों में डाल दिया था।

पंजाब का एक सिख था बानू (असली नाम नहीं)। उसे दुनिया में कहीं भी राजदूत का पद चाहिए था। उसके पास चंद्रास्वामी और सिमरनजीत सिंह मान की सिफारिश थी और वह नोटों से भरे मोटे बैग तैयार रखता था। वह प्रधानमंत्री कार्यालय और गृहमंत्रालय के करीब जमा रहता था। किसी गलत गणना के तहत वह मेरे दफ्तर के कमरे में आ गया। उस का खयाल था कि राजीव गॉधी के अंदरूनी कक्ष के खिडकी-दरवाजे मेरे लिए खुले रहते हैं। मैं एवजी प्रधानमंत्री से उसकी सिफारिश कर सकता हूं। उसने अपना दिल मेरे सामने खोल दिया और ब्रीफकेस भी जिसमें से उसने दो लाख रुपए की रकम देने की पेशकश की। मैंने उसे समझाना चाहा कि तुम सूअर के आगे मोती बिखेर रहे हो। तुम्हें राजीव गॉधी के किसी सहायक के पास जाना चाहिए। उसने झट से बैग बंद कर लिया। बाद में उसने प्रधानमत्री और केंद्रीय गृह राज्यमंत्री के फंड में उदारतापूर्वक सहयोग दे कर किसी अफ्रीकी देश में राजदूत का पद हासिल कर लिया। प्रसंगवश वह चंद्रास्वामी की कृपा से पी वी नरसिंहराव का भी कृपापात्र बन गया।

मैं अपने पाठकों को इस तरह के खिलाने-पिलाने और हथियाने वालों के बहुत से उदाहरणों से बोर नहीं करना चाहता। वह तो अनगिनत हैं। पर मैं भारतीय पुलिस सेवा के एक वरिष्ठ अधिकारी की कहानी जरूर सुनाना चाहता हूँ। वह केंद्रीय पुलिस संगठन में एक चोटी का पद चाहते थे। चंद्रशेखर के देश की बागडोर सभालने तक इस तरह के पदों की बोली लगती थी और वे सब से ज्यादा बोली बोलने वाले को दिए जाते थे। अधिकांश बिचौलिए प्रधानमंत्री के दो सहायकों के जरीए काम करते थे। कुछ चंद्रास्वामी और उनके साथी मामाजी यानी के.एन. अग्रवाल के जरिए काम करते थे। एक सहयोगी की बोली से मात खाने के बाद यह पुलिस अधिकारी मेरे पास आए। मत्री के एक और सहायक ऐसे मामले देखते थे। मुझे इनसे दूर ही रखा जाता था। निराश अधिकारी मेरे कमरे में आए। उन्होंने मुझे एक बडी रकम देने की पेशकश की ताकि मैं गृह राज्यमत्री के हस्ताक्षर उनकी फाइल पर करवा दूँ। अब तक मेरा इस तरह की पेशकश से हैरान होना बंद हो चुका था। मैं इन घटनाओं का मज़ा लेता पर उनकी प्रस्तावित दक्षिणा का नहीं। मुझे उस वरिष्ठ अधिकारी पर तरस आ गया। मैं मंत्री के कक्ष में गया। उनसे कहा कि पुलिस अधिकारी फिर से उस पद का सौदा कऱने को तैयार हैं। मंत्री ने एक मुसकान के साथ कहा कि मैं गृह सचिव से उनकी फाइल आगे बढ़ाने को कह दूँ।

* * * *

इससे पहले कि मैं पंजाब की हत्यारी धरती के बारे में चर्चा करूँ मैं थोडी सी चद्रास्वामी और मामाजी के बारे में बेबाक चर्चा करूँगा। राष्ट्रसंचालन में उनकी विलक्षण भूमिका रही। देश के उच्च और शक्तिशाली लोगों के लिए वे एक सुविधाजनक सप्लाई पाइप का काम भी करते थे। चंद्रशेखर को राजीव गॉधी ने जिंदगी भर का एक मौका दिया था। उसमें वह जो कुछ भी सौदे कर सकते थे, उनमे से लगभग हरेक को स्वामी ही तय करते थे। अलबत्ता कुछ रक्षा, पेट्रोलियम और भारी उद्योग के सौदे चंद्रशेखर के निजी सहायक तय करते थे।

दूसरी और अंतिम बार मेरी मामजी से मुलाकात गृह राज्यमंत्री के कार्यालय के कक्ष में हुई। उन्होंने बताया कि वह मेरी आर्थिक कठिनाइयॉ जीवन भर के लिए दूर करना चाहते थे। उन्होंने बताया कि प्रधानमंत्री की दिलचस्पी दो आयात सौदो मे है। लेकिन वे इस मामले को आगे बढाने में हिचक रहे हैं। क्योकि वह जानते हैं कि इन मे राजीव गॉधी की गहरी दिलचस्पी है। क्या मैं कृपा कर के राजीव गॉधी के किसी सहायक से इस बारे में बात कर सकता हूँ कि वह मध्यस्थ बन कर वर्तमान और पूर्व प्रधानमंत्री के बीच इस विषय मे एक सम्मानजनक हल निकालें। इस सेवा के लिए मेरे मुलाकाती मुझे 50 लाख रुपए का प्रतिफल देने को तैयार थे।

मैंने प्रस्ताव पर विचार किया और अपनी नाडी की धडकनों को गिना। बैक में जमा मेरी 18000 रु. की राशि किसी वक्त जरूरत के लिए काफी थी। मै एक फ्लैट खरीदने के लिए किसी बैंक से कर्जा लेने की बात चला रहा था। मैं इस नतीजे पर पहुॅचा कि 50 लाख मेरी दिल की धडकन को काबू से बाहर बढा देगा और मैं किसी अस्पताल के गहन चिकित्सा कक्ष में पहुंच जाऊँगा। मामाजी उदारतापूर्वक उस रकम को 70 लाख तक बढाने को तैयार हो गए ताकि मैं अपनी वर्तमान आर्थिक कठिनाइयों से छुटकारा पा सकूँ। मेरी आर्थिक स्थिति के बारे में उन के ज्ञान से मैं हैरान रह गया। मैंने किसी तरह अलादीन का मन बहलाया। बाद में एक नाजुक सूत्र से मुझे पता चला कि सचमुच कुछ अनजाने वित्तीय सौदो को ले कर चंद्रशेखर और राजीव गॉधी के बीच हाल ही में कुछ तनाव पनप रहे थे। उस समय मैंने गरमागरम आलू हडपने से इनकार कर दिया। मैंने यथासभव विनम्रता से अलादीन से माफी मांगी और उन के सिर पर बचे चंद बालों में से एक को भी बाका नही किया। जाते-जाते उन्होने भविष्यवाणी की, " तुम गरीब ही मरोगे।"

यह तो सभी जानते हैं कि राजीव गॉधी चद्रशेखर के मंत्रालय मे मेनका गॉधी और सजय सिंह को शामिल करने पर बहुत नाराज थे। काग्रेस के चद्रशेखर सरकार से समर्थन वापस लेने के और भी कारण थे। अतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से ऋण लेने के बारे में चंद्रशेखर को राजीव गॉंधी के पत्र, उनकी पंजाब के उग्रवादियों से सीधी वार्ता, विदेश नीति के मामले, तमिलनाडु में राष्ट्रपति शासन लागू करना और देवीलाल के बेटे ओम प्रकाश चौटाला के ' गुर्गों ' द्वारा राजीव गॉधी पर नजर रखने का जटिल मामला इन में प्रमुख थे।

इन भूमिगत झडपों की स्थिति को आई.बी. के निजी अध्ययन ने और बिगाड़ दिया जिसमें राजीव गॉधी को बताया गया था कि अब चुनाव करा के 280 सीटें पाने का समय आ गया है। एक बार फिर राजीव को गलत सलाह दी गई थी। मैंने यह बात धवन को बताई पर इस मामले में उनका बहुत कम दखल था। राजीव अपने इंटेलिजेंस वाले साथियों के मार्गदर्शन में अधिक चलते थे। इसने एक बार फिर साबित कर दिया कि मुख्य कार्यकारी और उस के ' मुख्य गुप्तचर ' की ' मित्रता ' के परिणाम बरबाद करने वाले ही होते हैं।

मेरे खयाल से यह वर्तमान भारत के इतिहास के हित मे होगा कि कुछ वित्तीय सौदों को लेकर कठपुतली और कठपुतली नचाने वाले के बीच हितों के टकराव का अध्ययन किया जाए। कालीन को एकाएक हटा लेने के पीछे इसे फौरी वजह बताया गया था।

मंत्री सुबोधकांत चंद्रास्वामी के सफदरजंग निवास पर बराबर जाते रहते थे। उनके असम और पंजाब के पुलिस बलों व केन्द्रीय बलों के लिए कुछ खरीद सौदे चंद्रास्वामी के मार्फत हुए थे। असम के लिए एक विशेष सौदा लक्षित विक्रेता और मंत्री के बीच स्वामी के घर पर हुई बैठक के बाद ही तय हुआ था।

बार-बार उनके यहाँ जाने से मना कर के मैंने मंत्री को लगभग नाराज कर लिया था। जब कभी मैं उनके साथ गया मैंने कार में बाहर ठहरना ही बेहतर समझा। राम जन्मभूमि के मामले में उनकी कथित मध्यस्थता के मामले में भी मैंने उनसे मिलने से मना कर दिया था। मैंने मंत्री को यह भी बता दिया था कि चंद्रास्वामी राजीव गॉधी के विरुद्ध बहुत कटु भावनाएँ रखने के लिए मशहूर हैं। इसे सुरक्षा विशेषज्ञ अच्छा नही समझते। मंत्री ने मेरी बात ध्यान से सुनी पर इस बात से सहमत नहीं हुए कि स्वामी की ओर से सुरक्षा संबंधी कोई खतरा हो सकता है। इसके बाद सुबोध कांत ने मुझे अपने निजी मामलों से दूर ही रखा। लेकिन कभी उन्हें पंजाब और असम के नाम पर आई बी. के गुप्त कोष से कोई मोटी रकम चाहिए होती थी, तब मुझे नॉर्थ ब्लॉक के इन दो गलियारों के बीच आना-जाना होता था। इस प्रक्रिया में मुझे अक्सर आई.बी. प्रमुख की नाराजगी झेलनी पडती थी। मुझे अच्छी तरह मालूम था कि गुप्त रकम का इस्तेमाल जिसकाम के लिए वह ली जाती हैं,उस में नहीं होता।

मेरे चारों ओर जो कुछ हो रहा था उस में खुश होने वाली कोई बात न थी। ऐसी निराशाजनक हालत का कुछ अच्छा इस्तेमाल करने के लिए मैंने फिर से पंजाब के माहौल पर ध्यान देना शुरू किया। पर अब यह पहले वाला पंजाब न था जिसे मैं जानता था। 1990 के पहले छः महीनों में हिंसा की घटनाएँ बहुत तेजी से बढी थीं। नर-संहार की कुल संख्या 1989 के 1396 से बढ कर 1990 में 2841 हो गई थी। एक बडी घटना फिरोजपुर के पास रेलवे लाइन उडा देने की थी जिसमें सेना की एक विशेष रेलगाडी पटरी से उतर गई थी। बाद में उग्रवादियों ने गोलियाँ चला कर कुछ जवानों को मार डाला था। आई.एस.आई. और दूसरी पंथक कमेटी के निर्देश के अनुसार उग्रवादियों ने सांप्रदायिक विद्वेष फैलाने का प्रयास किया। आई.एस.आई. की शह पाए वासन सिंह जफरवाल, परमजीत सिंह पंजवार और गुरजंत सिंह बुधवाल की अगुआई वाले उग्रवादी संगठन ने अनेक हिंदू ठिकानों पर हमले किए।

आंदोलन की बागडोर अब नए लोगों के हाथ मे थी। जसबीर सिंह रोडे अब लगभग गुमनामी में खो गया था। अब तो केंद्रीय मंच पर डा. सोहन सिंह, वासन सिंह जफरवाल, एस. एस. मान और दलजीत सिंह बिट्टू तथा अन्य थे। पुलिस और अर्द्धसैनिक बल अपनी तरह का उग्रवाद लागू कर के नए उग्रवादियों का मुकाबला कर रहे थे। आतंकवाद विरोधी कार्रवाइयों में अक्सर बेगुनाह ग्रामीणों की हत्या की जाती थी। बदले में वांछित उग्रवादियों के संबंधियों को अगवा किया जाता था। महिलाओं की आबरू और युवकों की जान बख्शने के बदले भारी रकम वसूली जाती थी। कुछ अरसे तक तो ऐसा लगता था कि पंजाब मानव खोपडियों से फुटबाल खेलने वालों के लिए खेल का मैदान बन गया है। जान बचाने के इस गंभीर खेल में सामाजिक, नैतिक और पेशेवर धारणाएँ कहीं खो गई थीं। केंद्रीय इंटेलिजेंस के कुछ वरिष्ठ संचालक भी इस में खुल कर खेले। उन्होंने ने भी जल्लादों की भूमिका निभाई। उग्रवादी जो

कुछं कर रहे थे, शासन की ओर से जो जवाबी कार्रवाई हो रही थी, सही सोच वाला कोई भी व्यक्ति उस का समर्थन नहीं कर सकता था।

राजीव गाँधी के काम में रचनात्मक तत्व थे, पर उनका काम अधूरा रह गया था। वी.पी. सिंह उसे जटिल स्थिति में थोडा डगमगा कर चले लेकिन इससे पहले कि उनकी किसी पहल का कुछ स्वरूप सामने आता, वह बाहर हो गए। इसमें उनकी अतिंदरपाल के साथ मिल कर शांति स्थापित करने की कोशिशों वाली पहल भी शामिल थी जिसमें मैंने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

इनमें सब से अक्खड चंद्रशेखर थे। उनकी दृढता जमीनी सच्चाई को समझने पर आधारित न थी। उन्होंने सत्ता को तो बालों से पकड लिया था पर शांति को मूंछों से पकडना उनके नसीब में न था। सत्ता में आने के कुछ ही बाद उन पर कुछ लोगों ने प्रभाव डाला कि दिसंबर 1990 में सिमरनजीत सिंह मान से व्यक्तिगत तौर पर वार्ता करें। मेरे खयाल से उनको यह सलाह इंटेलिजेंस ब्यूरो जैसे किसी संगठन या राज्य पुलिस प्रमुख ने नहीं दी थी। चंद्रशेखर पुराने आंदोलनकारी राजनीतिज्ञों में से थे। उनमें दो कमिया थीं स्व-न्यायसंगतता की गलतफहमी और इंटेलिजेंस व रणनीतिक जानकारी का अपनी राजनीतिक योजनाओं के साथ तालमेल बैठाने की अक्षमता।

कांग्रेस से संबंधित राजनीतिक शासनों को विषद और जटिल राज्य को चलाने की तकनीक विरासत में मिली थी। बाकी 40 वर्षों से अधिक समय तक विरोध की राजनीति और आंदोलनों में व्यस्त रहे। उनको भारतीय शासन के ईंट-गारे की भी जानकारी न थी।

लिहाजा चंद्रशेखर ने 26 दिसंबर को फतेहगढ साहब में विभिन्न अकाली दलों द्वारा एक सम्मेलन में पास किए प्रस्ताव की भी अनदेखी कर डाली। इसमें मान को दिल्ली से वार्ता करने का अधिकार इस शर्त के साथ दिया गया था कि भारत या तो सिख कौम के बारे में अतिम रूप से निर्णय ले या फिर उग्रवादियों को अपनी कार्रवाई करने की छूट दी जाए। मान न तो सिख कौम का सिद्धांती था न ही वह टुकडों में बंटी पंथक कमेटी या हथियारबंद गिरोहों का प्रमुख था। वार्ता आरंभ होते ही वह उग्रवादी और आतंकवादी गुटों की आलोचना का शिकार हो गया। डा. सोहन सिंह, गुरबचन सिंह मनोचहल और वासन सिंह जफरवाल के नेतृत्व वाली पंथक कमेटियों ने वार्ता से अपने आप को अलग कर लिया। हथियारबद आतंकवादी गुट मान को समर्थन देने के अनिच्छुक थे।

उस समय की इंटेलिजेंस जानकारी के मुताबिक पाकिस्तान कतई नहीं चाहता था कि पंजाब में उसके अनुयायी शांति के लिए राजी हों। आई.एस.आई. और सेनाध्यक्ष जनरल असलम बेग ने यह बिलकुल स्पष्ट कर दिया था कि उनके सामने दो मुख्य उद्देश्य हैं : ' क्षेत्रीय मुस्लिम देशों की संयुक्त सुरक्षा व्यवस्था को सुदृढ़ करना ' और ' कश्मीरी महल्ला (पड़ोस) के सेनानियों के स्वाधीनता संघर्ष को बढ़ावा देना।' पंजाब को वे सैनिक और अर्द्धसैनिक बलों को उलझाए रखने के लिए रणनीतिक भूमि मानते थे। 'उलझाए रखने वाली भूमि ' के इस सिद्धांत को वे काफी सफलता के साथ उत्तरपूर्व में आजमा चुके थे। पाकिस्तान की ' राजनीतिक सरकार ' खाडी युद्ध में तल्लीन थी। ' दूसरी सरकार ' जो व्यवस्था चला रही थी, पंजाब में छद्मयुद्ध को तीव्र करना चाहती थी।

प्रधानमंत्री और सिख उग्रवादियों में सीधे संपर्क से राजीव गाँधी भी प्रसन्न न थे। 24जनवरी 1990 को प्रधानमंत्री को लिखे अपने पत्र में उन्होंने यह बिलकुल स्पष्ट कर दिया था। उन्होंने

लिखा था," मुझे खेदपूर्वक कहना पडता है कि मेरी जानकारी के अनुसार पिछले कुछ दिनों में स्थिति में सुधार होने के बजाय वह बिगडी ही है आदोलनकारियों और आतकवादियों के साथ इंटेलिजेंस व पुलिस के स्तर पर संपर्क रखना और बात है जबकि देश के विघटन में लगे दलों के साथ बिना किसी पूर्व शर्त के सरकार के प्रमुख का वार्ता करना एकदम जुदा बात है। "

चंद्रशेखर को उपदेश देने का बहुत शौक था। लेकिन उनमें दूसरों से सुनने का धैर्य न था। वह बदहवास तो नहीं हुए पर यह स्पष्ट हो गया कि थके हुए इस समाजवादी के विकल्प भी चुक गए थे।

उनके गृह राज्यमंत्री सुबोधकांत सहाय ने उनकी परेशानी को और बढा दिया। उन्होंने मुझे निर्देश दिया कि मैं एआईएसएसएफ के प्रधान मजीत सिह से संपर्क करूँ ताकि समानांतर वार्ता की संभावनाएँ बन सके। खयाल बुरा नही था। पर मैंने कनिष्ठ मंत्री को प्रधानमंत्री की दूसरी पहल की याद दिलाई। मजीत और मान विरोधी शिविरों में थे। मान को अधिक कटु उग्रवादियों का समर्थन प्राप्त न था। सुबोधकात नहीं माने। मैंने स्थिति में इस नए मोड के बारे में आईबी मे पंजाब के लिए नियुक्त वरिष्ठ अधिकारी को सूचित किया और इसकाम में लग गया। डी.आईबी का इस तरह की पहल से परेशान होना अनुचित न था। वे अच्छी तरह जानते थे कि कुछ ही महीनो मे राजीव गॉधी वापस आ रहे हैं। आईबी. के कुछ धडे तो राजीव गॉधी के घर लौटने की तैयारी के लिए अतिरिक्त समय भी लगा रहे थे।

भारत में सब से अधिक जानकारी रखने वाले व्यक्ति होने के बावजूद निदेशक आई.बी. भारतीय जनता के मूड का अनुमान लगाने मे चूक गए। जनता राजीव गॉधी को एक और मौका देने के मूड में अभी नहीं थी। आईबी कर्मी पजाब के देहातो में अराजकता दूर करने या सीमित करने के काम में पुलिस की सहायता कर रहे थे। वे नेपाल, बाग्लादेश और भारत के मध्यभागों में आईएसआई की चौकियो का पता लगाने मे भी जुटे हुए थे।

मंजीत से मेरा सपर्क कादा के संपर्क से हुआ। वह छोटे व्यापारी लेकिन बडे दिल के देशभक्त थे। मंजीत यह खेल खेलने को तैयार हो गया लेकिन इसके लिए उसने एक व्यक्तिगत मुआवजा पैकेट की मॉग की। मैने यह बात मत्री को बता दी। इसके बाद आई. एस.एसएफ के प्रधान ने केद्र सरकार की प्रतिक्रिया जानने के लिए कोशिशें शुरू कर दीं।

पहल के अभिन्न अंग के तौर पर मैने पहली पथक कमेटी के नेता और भिडरांवाले टाइगर फोर्स ऑफ खालिस्तान के प्रमुख गुरबचन सिंह मनोचहल से भी संपर्क साधा। यह मुलाकात हरीके के पास कहीं हुई। हरजिदर सिंह रामपाल ने पहले राजीव गॉधी की पहल वाले जसबीर सिंह रोडे आपरेशन मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। इस मुलाकात का प्रबंध भी उन्होंने ही किया। इसी सिलसिले में मैंने जरनैल सिंह भिंडरांवाले के पिता और टुकडों में विभाजित अकाली दल के वरिष्ठ नेता बाबा जोगिंदर सिह से भी मुलाकात की।

मनोचहल से मुलाकात कुछ असामान्य स्थितियों में हुई। मुझसे कहा गया कि मैं सिरहाली कलां गाँव के पास एक नाव में सवार हो जाऊँ। फिर ब्यास नदी के बहाव के साथ हरीके की तरफ चलूँ। मैंने हरजिंदर सिंह पर विश्वास और अपने नसीब पर यकीन करते हुए यह बात मान ली क्योंकि मेरे नसीब ने अब तक कभी मुझे धोखा नहीं दिया था। यह एक जुआ था। लेकिन इसका परिणाम सही निकला। हमारी छोटी-सी मछली पकडने वाली नौका का रास्ता एक झील के टापू के पास एक और छोटी नौका ने रोका। उस नाव पर वह भयंकर आतंकवादी

नेता सवार था। यह हमारी तीसरी मुलाकात थी। मनोचहल शाति के पक्ष में था। लेकिन उसे डर था कि पहले हथियार डालने वाला उसे ही बनाया जाएगा। इस की तीव्र प्रतिक्रिया प्रतियोगी उग्रवादियों में और पाकिस्तान की ओर से हो सकती थी। पर उसने पजाब में चुनाव कराने के केंद्र सरकार के किसी भी प्रयास में सहयोग देने का वादा किया।

इस बार मुझे आतंकवादी नेता के एक व्यक्तिगत अनुरोध को स्वीकार करना पडा। उस के दांतों में बहुत तकलीफ थी। असल मे वह अमृतसर जिले में सहोल के पास पुलिस के जाल और घात से बच निकलने में गिर पडा था। चोट लगने से समस्या पैदा हुई। उसे एक दांतों के डाक्टर की बडी जरूरत थी। बाद मे उससे चौथी मुलाकात के दौरान मैं अपने साथ अमृतसर से शेरो के पास के एक गांव के छोटे से गुरुद्वारे में दांत का डाक्टर और उसका साज-सामान ले गया। डाक्टर ने पजाब के सब से भयानक आतकवादी के दांतो का इलाज किया । इस इलाज से उसे पूरी तसल्ली हुई। डाक्टर के चेहरे पर ऐसे भाव थे मानो उसे शेर के मुंह में सिर देने को कहा गया हो। इस छोटे से उपकार ने मुझे मनोचहल से मनमाने समय में मिलने की हमेशा के लिए छूट दिला दी जब तक कि पुलिस ने उसे अपनी गोलियों का निशाना नहीं बना डाला।

इस वार्ता के दौर में दो और 'उग्रवादी ' नेताओ को शामिल किया गया। ये थे पूर्व सासद अतिंदरपाल सिंह और पाकिस्तान स्थित अकाली फाउडेशन के नेता कवर सिह धामी। अतिंदरपाल तो तैयार बैठा था। वह भारतीय ससद का सदस्य होने का स्वाद चख चुका था।राजनीतिक प्रक्रिया में उस का विश्वास लौट आया था।

कंवर सिंह धामी सदा से ही लोमडी की तरह चालाक था। एक बिचौलिए (नाम नहीं दिया जा रहा) के जरिए उससे लाहौर के मॉडलटाउन के एक आई.एस.आई. के गेस्ट हाउस मे संपर्क किया गया। मैं अकेले कंवर से ही बातचीत नही करना चाहता था। मैंने आई एस.आई. के मेहमान कुछ और सिख आतकवादी नेताओं को संदेश भेजने की संभावना का पता लगाने की कोशिश की। अपने आप मे कंवर एक खत्म हो चुकी ताकत था। लेकिन सुबोधकात ने मेरी बात काट कर बिचौलिए को कवर को गुपचुप तरीके से अमृतसर लाने को कहा। इस पहल की शुरुआत और अत बहुत गडबड रहा। एक मनोनीत राजनीतिक सहायक (ओ.एस. डी.)को धामी से बातचीत करने का अधिकार दिया गया। मै यह देख कर आतकित हो गया कि उस धूर्त उग्रवादी नेता को मुझसे और मत्री से मिलने के लिए नॉर्थ ब्लॉक ले आया गया। मैंने सहायक की इस लापरवाही के विरुद्ध कडा विरोध प्रकट किया। लेकिन वह सहायक प्रधानमंत्री का भी विश्वस्त था।

धामी तो भिखमंगे का बेपेंदी का कटोरा था। उसने सजा से माफी के साथ-साथ पुनर्वास की सुविधा और दस लाख रुपए की नकदी की मांग की। मंत्री और सहायक उसकी माँग मानने को तैयार थे। उन्होंने मुझसे कहा कि मैं आई.बी. के गुप्त सेवा कोष से यह रकम निकालूं। मैंने एम.के. नारायणन के कमरे तक जाने से इनकार कर दिया क्योंकि मैं एजेंट की क्षमता और रकम के सही उपयोग के प्रति आश्वस्त न था। मेरे खयाल में मंत्री ने बाद में अपने अन्य छः सहायकों में से किसी की मदद से रकम ले.ली थी।

धामी विश्वास के लायक नहीं निकला। उसका शीर्ष उग्रवादी नेताओं से वास्तविक संपर्क नहीं था। बाद में उस ने मीडिया में मेरे विरुद्ध विषवमन किया कि मैंने उसे धोखा दिया है

और पंजाब में शांति बहाल करने के उसके सहयोग की कद्र नहीं की। उसके विश्वासघात के फलस्वरुप दूसरी पंथक कमेटी के नेताओं तथा पाकिस्तान में रह रहे दूसरे उग्रवादी नेताओं के सामने मेरे छद्मवेश की वास्तविकता खुल गई। उन्होंने आई.एस.आई. के संचालकों को भी यह जानकारी दे दी। एक सहायक संगठन ने आई.बी. को चेतावनी दी कि कुछ उग्रवादी गिरोह मेरी हत्या करने की योजना बना रहे हैं। आई.बी. ने मेरे आवास पर एक सशस्त्र रक्षक तैनात कर दिया और मेरी गतिविधियो को बहुत सीमित कर डाला। फिर भी मैंने दिल्ली में और दिल्ली से बाहर जाने के लिए अपने साथ एक निजी सुरक्षा गार्ड रखने से मना कर दिया।

धामी ने मुझे कुछ बेशकीमती सबक सिखाए। पहला सबक था आई.एस.आई. की संचालन नीति के बारे में। पाकिस्तान मे रहने वाले सिख उग्रवादी नेताओं को न सिर्फ सिद्धांतों की घुट्टी पिलाई जाती थी बल्कि मानव जीवन की कुछ और नर्मनाजुक सुविधाएँ भी मुहैया कराई जाती थीं। उनमें से अधिकांश को पेशेवर औरतों के पास जाने और ऐश की जिंदगी जीने को उकसाया जाता था। सादे व साधारण गॉव के माहौल से आने वाले 'खालिस्तानी' नेता ऐशपरस्ती में आसानी से फंस जाते थे। उन मे से अधिकांश में अपने ध्येय के लिए लड़ने का जोश खत्म हो जाता था। वे आई.एस.आई. के साथ मिल कर भडकाऊ बयान देते और पंजाब में हथियार व गोलीबारूद लाने में उसकी मदद करते थे।

1991 के शुरू में ही आई.एस.आई ने सिख उग्रवादियो को मुफ्त हथियार देने की अपनी नीति को लगभग समाप्त कर दिया था। हथियारबंद जत्थेबंदी को अपने साज़-सामान की कीमत चुकानी पडती थी। कुछ कारणो से आई.एस.आई. ने अफगानिस्तान के मुजाहिदीनों और पाकिस्तान के अपने यहॉ प्रशिक्षित आतंकवादियों से सिख आतंकवादियों को मिलवाने की अपनी पहली योजना में भी कटौती कर दी। असल मे आई.एस.आई. ने अपनी मुख्य कार्रवाइयाँ कश्मीर में करनी शुरू कर दी थीं और ध्यान बंटाने की अपनी चाल को असम और उत्तरपूर्व व उसके समीपवर्ती क्षेत्रों की तरफ मोड दिया था।

धामी और तीन अन्य पाकिस्तान से आए आतंकवादियों से बातचीत के बाद मेरे इस संदेह की पुष्टि हो गई कि पाकिस्तानी सिखों पर विश्वास नहीं करते थे जिन्हें वे केशधारी हिंदू कहते थे। सत्ता हस्तांतरण से पहले और बाद मे सीमा के दोनों ओर मुस्लिम समुदाय और सिखों में जो भयंकर दुश्मनी नजर आई थी उसे वह भूले न थे। पंजाब और सीमाप्रांत में सिख आतंकवादियों के विरुद्ध वहाबी संप्रदाय के जिहाद को सिख भी नहीं भूले थे। इस जानकारी से यह स्पष्ट हो जाता था कि जरनैल रिह भिंडरांवाले और बेसुरा राग अलापने वाले प्रवासी सिखों के शुरू किए गए अलगाववादी आंदोलन का पतन अब दूर न था। पुलिस प्रमुख के. पी.एस. गिल की शानदार सुरक्षा कार्रवाइयों और इंटेलिजेंस ब्यूरो के कुछ नाजुक कारनामों के चलते यह प्रक्रिया और भी तेज हो गई थी।

दूसरा सबक जो मेरे हलक से नीचे उतरा वह यह था कि पंजाब जैसे क्षेत्र में इंटेलिजेंस तथा सुरक्षा कार्रवाइयों के दौरान सब से मूल्यवान तत्व होता है राजनीतिक सरकार का परिपक्व सहयोग। चंद्रशेखर और सुबोधकात, दोनों में इस परिपक्वता का अभाव था। इसके अलावा जिस राजनीतिक सरकार के वे प्रमुख थे वह संवैधानिक तो थी पर उसके साथ नागरिकों का अनुमोदन न था।

फिर भी पंजाब मामलों में मेरा धावा मारना बेकार नहीं गया। ए.आई.एस.एस.एफ. (मंजीत), पंथक कमेटी (मनोचहल), पूर्व सांसद अतिंदरपाल सिंह, एस.ए.डी.(एम.) के पूर्व सचिव गुरतेज

सिंह ने अमृतसर,लुधियाना और जालंधर में नागरिक चुनावों का समर्थन करने का निर्णय लिया। इनमें शहरी क्षेत्रों में सिख उग्रवाद के विरुद्ध हिंदू प्रतिक्रिया के फलस्वरूप बी.जे.पी. सफल रही। दमदमी टकसाल से संबद्ध कुछ उग्रवादी गुटों ने तथा के.सी.एफ. व के.एल.एफ. से संबद्ध कुछ फुटकर गुटों ने भी शहरी नागरिक चुनावों का समर्थन किया।

जून 1991 में भेदकारी अकाली दलों और नरम पडे उग्रवादी गुटों ने पंजाब विधानसभा और संसद के चुनावों की घोषणा होने पर पहले से अधिक उत्साह दिखाया। ए.आई.एस. एस. एफ. (मंजीत) और पंथक कमेटी (एम.) ने निर्णय लिया कि वह रिकार्ड संख्या में अपने उम्मीदवार खड़े करेगी। बब्बर खालसा के एक धडे ने भी उनका समर्थन किया। मारे गए या बंदी उग्रवादियों के रिश्तेदार भी चुनावों में खडे होने के लिए बडी संख्या में आगे आए। यह स्वच्छ राष्ट्रीय लाभ कुछ पृथकतावादी गुटों और राजनीतिक सरकार के प्रतिनिधियो के बीच समझौता वार्ताओ से संभव हुआ।

पाकिस्तानी समर्थन पाने वाली दूसरी पंथक कमेटी और इसके साथ रही और बब्बर खालसा ने चुनाव का विरोध किया। वे चुनावी उम्मीदवारो का खात्मा करने के अपने ऑपरेशन में लग गए और उन में से 22 की हत्या करने मे सफल रहे। उनके दबाव में आकर कुछ उग्रवादी और उन से संबंधित राजनीतिक शक्तियों ने ऐलान किया कि चुने जाने पर वे खालिस्तान बनाने की मॉग का प्रस्ताव पारित करेंगे। डा सोहन सिंह के संगठन ने लोगो से अपील की कि वे चुनाव वाली तारीखों पर ' जनता का कर्फ्यू ' लागू करें। जो गुट पाकिस्तान के प्रभाव में थे उन्हें आई.एस.आई. ने हिदायत दी कि किसी भी कीमत पर चुनावो की नैया डुबोऐं। उनका विचार था कि चुनावी सफलता कश्मीर मे आतकवाद की महावृष्टि मे बाधक होगी।

दिलचस्प बात यह है कि डॉ. सोहन सिह ने कांग्रेस के साथ गुपचुप सपर्क भी बनाए रखा। यह काम उन्होंने भारतीय प्रशासनिक सेवा में लगे अपने एक पुत्र और कांग्रेस की सरकार में मंत्री रह चुके सरदार स्वर्ण सिंह के परिवार के माध्यम से किया। वह कौन-सा खेल खेल रहे थे और राजीव गॉधी का खेल क्या था, इसका निश्चित उत्तर देना कठिन है। पंजाब स्वास्थ्य सेवाओं के भूतपूर्व निदेशक डा. सोहन सिंह ने प्रशासनिक अधिकारियों और प्रशासनिक समुदाय के प्रमुख सदस्यों के बीच अपना काफी बडा जाल फैला लिया था। उनकी इच्छा थी कि बचे मुद्दों पर समझौता वार्ता जसबीर सिह रोडे, अतिदरपाल सिंह और मजीत सिह जैसे हाशिए पर पहुंचे लोगों के बजाए किसी अधिक विश्वसनीय व स्वीकार्य जाट सिख के साथ की जाए।

इस दौर की सबसे विचित्र घटना थी सुबोधकांत सहाय का लुधियाना चुनाव क्षेत्र से संसद के लिए फिर से चुनाव लडने का फैसला। वी.पी. सिंह के 'भ्रष्ट' राजीव गांधी के विरुद्ध निंदा अभियान के दौरान रांची (झारखंड)से संसद में चुन कर आए सुबोधकांत अपने क्षेत्र में विश्वसनीयता खो चुके थे। लुधियाना से चुनाव लडने का विचार उनको मंजीत सिंह ने दिया जिसके साथ मेरी बातचीत चल रही थी। इसका समर्थन ट्रक लॉबी ने किया। ये लोग बिहार के खनिज क्षेत्र और औद्योगिक केंद्रों से बहुत से ट्रक बिहार मे कई जगहों पर और पडोसी पश्चिम बंगाल में चलाते थे। कैलाश नाथ अग्रवाल (मामाजी) और गुरु चंद्रास्वामी भी मुंबई के फिल्म वालों तथा केंद्रीय गृह मंत्रालय को सप्लाई देने वालों से एकत्र कर के पैसे की सहायता करने को तैयार हो गए।

राय माँगने पर मैंने उनके पजाब से चुनाव लडने का विरोध किया। पर सुबोधकांत ने मेरी बात नहीं मानी। वे संसद की सीट पाने की अपनी जीतोड कोशिश में जुट गए। उन पर हिंसा के वातावरण ने भी अपनी छाप छोडी। जिसकार में वह यात्रा कर रहे थे वह एक देसी बारूदी सुरंग की चपेट में आई। पजाब के छलनी-छलनी हुए चुनावी माहौल के लिए यह आखिरी हरकत थी। इसके बाद गभीर हिंसा को देखते हुए पजाब मे चुनावों को मुल्तवी कर दिया गया।

चंद्रशेखर और सुबोधकांत सहाय की पजाब में शाति बहाली की पहल का मजाक उडाना अनुचित होगा। राजीव गॉधी इन पहलों से अप्रसन्न थे। क्योंकि उनकी एजेंसी आधारित पहल को इस आश्रित सरकार ने दो कारणों से बिगाड दिया था। चंद्रशेखर को विश्वास था कि उनकी कांग्रेस विरोधी पृष्ठभूमि के कारण वह असंतुष्ट सिख समुदाय के साथ बातचीत के नए आयाम खोल सकेंगे। सुबोधकांत को यह विश्वास भी था कि सिखो को खुश कर के वे अधिक मत बटोरने में कामयाब होंगे। पाकिस्तान के प्रभाव में आई शक्तियों ने बाद की गणना को विफल कर दिया। लेकिन सिख जनसमुदाय इस खेल को अब तक समझ चुका था। आंदोलन का तेजी से अपराधीकरण हुआ था। इससे इसका जनता से सपर्क टूट गया। वे पहले से ही तीन बडी त्रासदियों की वजह से टूट चुके थे। ऑपरेशन ब्लू स्टार दिल्ली के हत्याकांड और ऑपरेशन ब्लैक थंडर। वे अब शांति और आर्थिक खुशहाली चाहते थे।

नेहरू-गॉधी परिवार के लिए असहमति का रवैया बना चुके पजाब के अलगाववादियों के लिए चंद्रशेखर का एक स्वीकार्य राजनीतिक चेहरा था। पहले से अधिक सवर्धित सुरक्षा उपायों के साथ -साथ की गई इन नई पहलों ने राज्य के सुरक्षा वातावरण मे काफी गुणात्मक सुधार किया।

लेकिन नई सरकार की असम मे की गई पहल मे कोई प्रगति नही हुई। ऑपरेशन बजरंग (नवंबर '90) और 1991 ग्रीष्म के चुनावों मे हितेश्वर साइकिया के सत्ता मे लौटने से उल्फा को कुछ जबरदस्त चोटें पहुँची थीं।

उल्फा के शीर्ष नेतृत्व ने बांग्लादेश मे जा शरण ली थी। वहॉ इसे आई.एस.आई. संचालकों के अलावा बंग्लादेशी सेना के प्रभुत्व वाले आई.एस.आई की ही किस्म के संगठन डाइरेक्टर जनरल ऑफ फोर्स इंटेलिजेंस का संरक्षण प्राप्त था। लेकिन उस का व्यापक संगठन असम में ही जमीनी समर्थन पा कर अपने आप को मजबूत करने मे कामयाब हो गया था। उनके कुछ शीर्ष नेताओं को पाकिस्तान और अफगानिस्तान में प्रशिक्षण दिया गया। हितेश्वर सैकिया के कुर्सी पर बैठते ही इनको नई हिंसात्मक कार्रवाइयो के लिए उकसाया गया।

सुबोधकांत गौहाटी, डिब्रूगढ व असम में अन्य स्थानों की यात्रा पर गए थे। उस दौरान राज्यपाल डी.डी.ठाकुर ने संकेत दिया कि अपने प्रचार सचिव सुनील नाथ की अगुआई में उल्फा का एक धडा सरकार से समझौता वार्ता करने को तैयार है। दरअसल यह संकेत कुछ गलत सूचनाओं पर आधारित था। केंद्रीय गृह राज्यमंत्री को मैंने यह राय दी थी कि इन हाशिए पर आए तत्वों को और नरम करने के लिए कडी सशस्त्र कार्रवाई का एक और दौर चलाया जाना चाहिए। इनका कट्टर गुट अब भी संघर्ष जारी रखने को कटिबद्ध था। विदेशी संपर्क को कम करने और उल्फा के बनाए जन प्रभाव ' को कमजोर करने के लिए ' सैन्य विकल्प ' के प्रयोग का यही उपयुक्त अवसर था।

चंद्रशेखर सरकार के सत्तात्याग के बाद सितंबर 1991 में सेना के ऑपरेशन रिनो आरंभ करने के कुछ समय बाद इन सिफारिशों को अंशत· लागू किया गया।

राजीव गाँधी और चंद्रशेखर के बीच के समझौता करार को तोड़ने वाला अंतिम धमाका भी उतना ही अचानक हुआ था जितनी कि उनकी अशोका हॉल में ताजपोशी। हरियाणा पुलिस के दो सिपाहियों द्वारा राजीव के निवास पर कथित हास्यास्पद निगरानी रखने ने संबंधों को अंतिम रूप से तोडा।

यह सही है कि आई.बी तथा अन्य सुरक्षा एजेंसियाँ राजीव गाँधी व उनके परिवार के सदस्यों को पंजाब के आतकवादियो, कश्मीर के विद्रोहियो और उत्तरपूर्व के विद्रोही गुटो से सुरक्षा संबंधी खतरे की स्थिति की रिपोर्ट नियमित रूप से देती रहती थीं। यह आमतौर पर सावधान करने के सामान्य संकेत होते थे। इनमें निश्चित ठोस सूचनाओं का अभाव रहता था। फिर भी इनमें ऐसी कोई जानकारी नहीं थी कि हरियाणा के कुछ लोग पूर्व प्रधानमंत्री को हानि पहुँचाने की योजना बना रहे हैं। हरियाणा के दो अनगढ पुलिस अधिकारी आई बी. को भनक लगे बिना राजीव गाँधी के गिर्द बने सुरक्षा और इटेलिजेंस चक्र को भेदने में असमर्थ थे। पर 6 मार्च 1991 को वे वहां थे। उनको सुरक्षा और इंटेलिजेंसकर्मियों ने पहचान लिया। सारी घटना से किसी गंदी साजिश की बू आ रही थी।

ओमप्रकाश चौटाला इस तरह की गंवारू कारस्तानियो के लिए मशहूर हैं। उन्होने ही नशे में धुत देवीलाल के हजारों समर्थकों को दिल्ली भेजा था ताकि वी पी. सिह बदनाम हों और उनका पतन जल्दी हो। सुबोधकात सहाय ने मुझसे इस मामले की छानबीन करने को कहा। मैंने आई.बी. और दिल्ली पुलिस में अपने सपर्कों को साधा। पता यह चला कि राजीव के आई. बी. के कुछ मित्रो और उनकी मंडली के कुछ सदस्यो ने घटना को बढाचढा कर पेश किया है। इस मामले को एक मजाक समझ कर खत्म कर देना चाहिए था। तब राजीव और चंद्रशेखर के बीच लंबी फोन वार्ता भारतीय राजनीति मे एक और धुधला अध्याय न जोडती।

इस बडे राजनीतिक धमाके के दौरान किसी ने भी राजीव को अगले चुनाव में अपनी किस्मत आजमाने के लिए दिए जाने वाले इस बहाने में आई बी की भूमिका की छानबीन करने की कोशिश नहीं की। उन्होंने राजीव को सलाह दी थी कि अच्छे दिन आने ही वाले हैं। यह गलत राय थी। राजीव गाँधी इस नतीजे पर पहुंचे कि जनादेश लेने का यह सही समय है।

ओमप्रकाश चौटाला ने अपने खास जाटों वाले अंदाज मे चद्रशेखर की अल्पसंख्या वाले कठपुतली सरकार के साथ संबधों की डोर काटने को राजीव के हाथ में कैंची थमा दी। राजीव गाँधी ने संवैधानिक अंतराल को समाप्त करने में जल्दबाजी कर के एक और गलती की। प्रारब्ध ने उनको कार्रवाई के ऐसे रास्ते पर डाल दिया जिसका अंत 21 मई को 10. 20 बजे के करीब तमिलनाडु में श्रीपेरंबुदूर में हुआ।

* * * *

किस्मत राजीव को श्रीपेरंबुदूर ले गई। यह दुर्भाग्यपूर्ण यात्रा उडीसा में भुवनेश्वर से शुरू हुई थी जिसे दो पूर्व प्रधानमंत्रियों जवाहरलाल नेहरू और इंदिरा गाँधी को अलविदा कहने की विशेषता प्राप्त थी।

पूर्व प्रधानमंत्री की सुरक्षा में इंटेलिजेंस एजेंसियों की असफलता पर टिप्पणी करना मेरे लिए उचित न होगा। जाँच एजेंसियों और आयोगो ने पहले ही राजीव गाँधी को लिट्टे से खतरे के प्रति आगाह करने की ठोस इंटेलिजेंस के अभाव पर टिप्पणियाँ की हैं। राजीव गाँधी की

हत्या पर जॉच कर रहे जैन आयोग पर अलग-अलग रग के चश्मे पहनने वाले दो लोगो ने अलग-अलग टिप्पणी की है। नीचे जैन आयोग के पर्यवेक्षण को अत्यत सक्षेप मे दिया जा रहा है

" 24 5 राजीव गॉधी की जान को नए अत्यत गभीर खतरे के प्रति इटेलिजेस ब्यूरो की यह प्रतिक्रिया स्पष्टत अत्यत अपर्याप्त और असगत थी।

ऐसा लगता है कि नए खतरे की जानकारी श्री राजीव गॉधी को दी गई थी। राजीव गॉधी के निजी सचिव वी जार्ज ने 13 फरवरी 1991 को दिल्ली के उपराज्यपाल को एक पत्र लिखा था जिससे यह प्रकट होता है। इसमे उन्होने दिल्ली प्रशासन से इटेलिजेस ब्यूरो द्वारा दी गई जानकारी के मद्देनजर राजीव गॉधी की सुरक्षा व्यवस्था को बढाने का अनुरोध किया था। (अनुलग्नक -एस075)। इस पत्र से पता चलता है कि इटेलिजेरा ब्यूरो ने राजीव गॉधी के लिए नए खतरे को देखते हुए निम्न कदम उठाने की सलाह दी थी

आई बी ने श्री राजीव गाधी तथा उनके परिवार के सदस्यो के सुरक्षा प्रबधो के विषय मे जो नवीनतम रिपोर्ट दी है वह अत्यत चिताजनक है। आई बी ने सुरक्षा प्रबधो मे वृद्धि करने की कुछ सिफारिशे की है

(आई बी के गुप्त ज्ञापन-पत्र सख्या 32/वी0एस0 /90(3) - ।। दिनाक 23 जनवरी 1991 मे दी गई इटेलिजेस रिपोर्ट मे कहा गया है कि पर्याप्त स्थायी हथियारबद रक्षक, पी एस ओ घेरा बनाए रखने वाली टीमो अलग रखने वाली घेराबदियो पायलट व एस्कॉर्ट गाडियो तथा पर्याप्त परपरागत व स्वचालित अस्त्रो से युक्त अन्य सुरक्षा उपायो के अतिरिक्त तलाशी लेना सशस्त्र सेवा मे तैनात होने वाले लोगो की विश्वसनीयता की पुष्टि करना और भोजन की शुद्धता की जॉच करना भी आवश्यक है।)

इससे स्पष्ट हो जाता है कि इटेलिजेस ब्यूरो क सुझाव इस बात को दोबारा दोहराने वाले थे कि वर्तमान सुरक्षा व्यवस्था का कडाई से पालन किया जाए।

जो भी हुआ नसीब ने एक और आदमी नरसिह राव को सत्ता के केंद्र मे आगे भेजा। वह तो लिट्टे द्वारा राजीव गॉधी की हत्या से लगभग महीना भर पहले शातिपूर्वक अवकाश लेने की तैयारी कर रहे थे। राजीव की मडली के अनेक सदस्यो ने नए सत्तालोलुपो के लिए रास्ता छोड दिया। पर नए प्रधानमत्री ने अभी भी ससद मे स्पष्ट बहुमत न होने के कारण इटेलिजेस ब्यूरो के नेतृत्व मे कोई परिवर्तन नही किया। बहुतो ने लिट्टे की साजिशो के बारे मे सही-सही जानकारी न जुटा पाने के लिए इटेलिजेस की आलोचना की है। इस बारे मे रॉ पर भी प्रहार किए गए।

निकट से देखने वाला होने के कारण मै इतना और कहना चाहूँगा कि लिट्टे की राजीव गॉधी की हत्या करने की साजिश के बारे मे इटेलिजेस ब्यूरो सपूर्ण और भेदक ' इटेलिजेस जुटाने मे असफल रहा। आई बी और रॉ के पास लिट्टे अपने भारत स्थित केंद्रो को जो वायरलेस सदेश भेजता था उन गूढ सकेतो के अर्थ निकालने की क्षमता नही थी। यह आश्चर्य की बात है कि सरकार के बैठाए आयोग और समितियो ने अतिविशिष्ट लोगो की सुरक्षा से सबधित आई बी और रॉ के कार्यकलाप का विवेचन नही किया।

राजीव गॉधी की परिवार के तीसरे सदस्य के तौर पर त्रासद मृत्यु हुई। वह एक नेक इन्सान थे। अपने आस-पास वालो से कही ऊँचे। लेकिन लगातार निर्णय सबधी गलतियॉ करने के कारण उनको गलत समझा गया। वह अपनी मॉ की तरह अपने आस-पास वाले गीदडों

से निबटना नहीं जानते थे। वह यह नही समझ पाए कि मूल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जो बचा-खुचा रूप देश भर मे विद्यमान है, वह अपने सत्ता के आधार को मजबूत बनाने के लिए उनका इस्तेमाल करना चाहता है।

इंदिरा गॉधी के बेटे के प्रति मेरे मन मे गहरा व्यक्तिगत आदर भाव था। उनको मैं अपने समय का एक प्रमुख नेता मानता रहा हूँ। पर दुर्भाग्य से उनको राजनीति की भट्ठी में तप कर पकने का समय नहीं मिला।

<26>

अग्रिम मोर्चे पर वापस

अगर आप मानते है कि अपने विरोधी को चुप कराने से एक बौद्धिक तर्क जीता जा सकता है तो आप लोगो को बलात चुप कराने के अधिकार से सहमत है।

हेंस इजेंक

चद्रशेखर सरकार के कुर्सी छोडने क तुरत बाद मै वापस इटेलिजेस ब्यूरो मे आ गया। राज्यमत्री ने मुझसे गृह मत्रालय अथवा सूचना व प्रसारण मत्रालय मे प्रतिनियुक्ति पर जाने की पेशकश की। मैने मुख्य रूप से यह सिद्ध करन के लिए इनकार कर दिया कि मै निदेशक के डर से आई बी से बाहर नही गया था जो यह सोच कर नाराज थे कि मै उनके निजी विरोधियो से मिला हुआ हूँ और मैने उनके मित्र राजीव गाधी के विरुद्ध काम किया हैं। डर स्वस्थ विचार प्रक्रिया को आच्छादित कर लेता है। असुरक्षा किसी व्यक्ति को निश्चित रूप से आक्रामक बना देती है। मै भयभीत न था। मैने लोगो की निजी धारणाओ से डराए जाने से इनकार कर दिया।

एम के नारायणन के आर पी जोशी के स्थान पर आने के कुछ दिन पहले से ही फुसफुसाहट हो रही थी कि गृह राज्यमत्री के साथ चले जाने के कारण मेरे विरुद्ध कडी अनुशासनात्मक कार्रवाई की जाएगी। मै इसके सबसे बुरे परिणाम के लिए तैयार हो गया। यह था मुझे अपने मूल काडर पश्चिम बगाल मे वापस भेजा जाना। घर पर हमने बच्चो को नई शिक्षा के लिए तैयार करने पर ध्यान दिया। एक को आई आई एम अहमदाबाद भेजने के बारे मे और दूसरे की दिल्ली कॉलेज मे पढाई के बारे मे। हमने अपने परिवार के बजट मे कटौती कर के बच्चो की उच्च शिक्षा का प्रबध किया।

लेकिन मुझ पर गाज गिरी तो एक अप्रत्याशित ओर से। निदेशक मुझसे बाह्य कारणो से नाराज थे। उनको मेरी इटेलिजेस सचालन मे अतिसक्रियता पसद नही आई। कोई भी परपराप्रेमी बॉस अपने अधिकारियो मे ये चार बाते पसद नही करता-पहल करना, कल्पनाशील होना, नवधारणाएँ रखना और आक्रामक तरीके अख्तियार करना। इसलिए अधिकाश पिटी-पिटाई लकीर पर चलना पसद करते है। ब्यूरो की बाइबिल मे यही नियम सुनहरे अक्षरो मे लिखे हैं।

हालाकि वह मुझसे खफा रहते थे पर मै यह जरूर कहूँगा कि इस पुरातन ढर्रे पर चलने वाले सगठन मे आधुनिकता का सचार करने वाले पहले निदेशक नारायणन ही थे। उन्होने तकनॉलॉजी के क्षेत्र में विकास किया तथा उन्होने आतरिक सुरक्षा सहित बहुत से मामलो में आकलन की आधुनिक पद्धति लागू की। आई बी ने थोडे समय के लिए ही सही, देश मे विपथगमन के विधिवत अध्ययन का सिलसिला शुरू किया। लेकिन यह अध्ययन सिर्फ कानून-

व्यवस्था के पहलू से ही किया जाना था। इसमें सामाजिक-आर्थिक, ऐतिहासिक व भू-राजनीतिक पहलुओं को शामिल नहीं किया गया। किन्हीं कारणों से पाकिस्तान, आई एस आई, एशिया में अमेरिका के बढते चिंताजनक प्रभाव, शीतयुद्ध के बाद की भू-राजनीतिक स्थितियॉं, अफगानिस्तान में इस्लामी बढत और भारत पर उस के प्रभाव व राजनीतिक व सामाजिक पद्धति में माफिया सरगनाओं के प्रवेश जैसे मामलो पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। वी.जी. वैद्य के आने पर स्थिति में थोडा सुधार हुआ था। बी एन मलिक और टी.वी. राजेश्वर के बाद नारायणन आई.बी. में तीसरे महत्वपूर्ण द्रष्टा थे। उन्होने दूसरी नई महत्त्वपूर्ण शुरुआत की।

अपने राज्य काडर में वापस भेजने के बजाय मुझे आई बी के तकनीकी विभाग का प्रमुख बना कर वहॉं भेज दिया गया। इंटेलिजेंस ब्यूरो के इतिहास में पहली बार ऐसा हुआ था कि भारतीय पुलिस सेवा के किसी अधिकारी व इटेलिजेस सचालक को 'तकनीकी विभाग ' का प्रमुख बनाया जाए। अधिकारियो की अवज्ञा करने के दडस्वरूप मुझे इटेलिजेस की मुख्यधारा से हटा दिया गया था।

मुझे हिदायत दी गई कि इस आदेश का विरोध करने के लिए मै अपने राजनीतिक संपर्कों का उपयोग न करूँ। फोतेदार और वी.एस त्रिपाठी की चालबाजियो के चलते जब मुझे एस. आई. बी. दिल्ली से हटाया गया था तब भी मैंने ऐसा कुछ नही किया था। इस बार भी मैंने भाग कर कोई शरण नहीं ली। बल्कि अपना सिर ऊँचा कर के और खुले दिमाग के साथ अतिगुप्त तकनीकी विभाग मे आया। मैं जानता था कि मुझे बहुत कुछ सीखना मै बहुत सी विरोधी नजरें झेलने और गुपचुप वार सहने को तैयार था।

* * * *

मैं इंटेलिजेस ब्यूरो के तकनीकी विभाग का पूरी तरह पर्दाफाश नही कर सकता। इस से शायद पाठकों को निराशा होगी। यह इटेलिजेंस शिल्प का अतिम मोर्चा है। इसका अनावरण इसके अभ्यंतर को हानि पहुंचाए बिना नही किया जा सकता।

इंटेलिजेंस ब्यूरो का तकनीकी विभाग बडी मशक्कतो के साथ आगे बढा है। 117 वर्ष (2..4) पहले अपने युवाकाल मे इटेलिजेंस ब्यूरो की धारणा ब्रिटिश साम्राज्य ने एक मातहत जॉच और इंटेलिजेंस एकत्र करने वाले तत्र के रूप मे की थी। कुछ विशेषज्ञो की राय है कि इसकी शुरुआत 1857 के बाद के कर्नल स्लीमन के ठगी विभाग से हुई। इसकी उत्पत्ति एम. 15 और एम 16 से पहले की है। इसका सबंध ब्रिटिश साम्राज्य के विकास के साथ जुडा हुआ हैं।

इस संगठन का स्वरूप अधिकांशत: पुलिसिया था। यह मूलत· जन-गुप्तचरी पर निर्भर था। यह जिला प्रशासन की आपराधिक और राजस्व प्रबंधन मे सहायता करता था। यह असंतुष्टों, अभी तक गुलामी मे न जकडे भारतीय नरेशो तथा नवजात राष्ट्रीय राजनीति में सक्रिय लोगों के विरुद्ध अपना मसाला तैयार रखता था। उस जमाने में जिन साधनों का इस्तेमाल होता था उन में एक ऑख से देखने वाली दूरबीन, कोकोडाइल क्लिप्स और तारों की मदद से फोन सुनने तथा रेलवे व डाक विभाग द्वारा प्रयुक्त संचार माध्यम ही थे। इसके बाद पहले विश्वयुद्ध के अनगढ़ वायरलेस आए। साम्राज्य के भारी जूतों तले दबे, बिगड़े राजाओं व नवाबों से घिरे,असहाय असुरक्षित भारतीयों के विरुद्ध तकनीकी गुप्तचरी के लिए इससे अधिक परिष्कृत साधनों की जरूरत भी क्या थी।

आपराधिक जांच-पडताल और सुराजियों के खिलाफ जॉच के लिए पुलिस फोटोग्राफी आरंभ करने से तकनीकी गुप्तचरी में क्रांति आ गई। ये भारी-भरकम और मजबूत कैमरे इंटेलिजेंस ब्यूरो के साज-सामन में भी शामिल कर लिए गए। इनकी मदद से ' बदमाशों की सूची ' बनाए रखने में मदद मिली। इस सूची में राष्ट्रीय नेता और वे ' आतंकवादी ' शामिल थे जो विदेशी हुकूमत को हिंसा के बल पर खत्म करना चाहते थे। छिप कर फोटो खींचने वाले कैमरों का इस्तेमाल बहुत बाद में शुरू हुआ। वह भी इन्हीं बडे कैमरों को चालू करने की क्रिया में परिवर्तन कर के। अति लघु इलेक्ट्रॉनिक गुप्त कैमरों का प्रयोग तो बहुत ही बाद में 1985 के आसपास कहीं जा कर शुरू हुआ।

चिप वाले डिजिटल माइक्रो कैमरों का प्रयोग तो अभी हाल ही में शुरू हुआ है। '70 के दशक के आरंभ में कहीं गुप्त फोटोग्राफी के लिए टेलीफोटो लेसों का इस्तेमाल शुरू किया गया था। इस तरह के कुछ उपकरणों का प्रयोग भारत-चीन सीमा और पाकिस्तान के साथ लगी सीमा पर भी किया गया। अरुणाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर, सिक्किम के आई.बी. के सीमावर्ती केंद्रों ने शत्रु सेना की पहचान करने, उसकी स्थिति तथा मोर्चाबंदी का मानचित्रण करने में इन उपकरणों का बडी कुशलता से इस्तेमाल किया है। कुछ युवा अधिकारियों ने दूसरे महायुद्ध की पुरानी हाई रेजोल्यूशन दूरबीनो की मदद से चीनी मोर्चाबंदी के बहुत अच्छे रेखाचित्र तैयार किए। 1975 में मैंने एक अधिकारी को त्रिपाद पर लगी एक पुरानी दूरबीन (जिसे आमतौर पर शौकिया लोग इस्तेमाल करते हैं) की मदद से दोंगकुंग (सिक्किम) के दूरदराज इलाके में लुंगजांग, चांगलुंग, गैबोक्सी में चीनी मोर्चाबंदी का मानचित्रण करते हुए देखा। आई.बी मे मैंने कई युवा रंगरूटों को इस तरह के कारनामे करते देखा है।

फोटोग्राफी का एक और रूप – वीडियो फोटोग्राफी आठवें दशक के आरंभ में शुरू किया गया। राजनीतिक महत्व के खुले कार्यक्रमों में इसका सीमित प्रयोग किया जाता था। तकनीकी डिवीजन के पास दो कैमरे होते थे। इनका इस्तेमाल ज्यादातर सामाजिक अवसरों पर उच्च अधिकारियों को खुश करने के लिए होता था। कैमकॉर्ड्स 1984 के बाद आए। पिनहोल वीडियो कैमरे और गुप्त वीडियो ट्रास्मीटर 1990 के बाद। इटेलिजेंस ब्यूरो ने अभी भी बटनहोल वीडियो ट्रांस्मीटरों और दूसरे बहुत छोटे वीडियो रिकार्डरों व ट्रास्मीटरों का इस्तेमाल शुरू नहीं किया है। तकनॉलॉजी में क्रांति कच्छप गति से आई। ऐसा अनेक कारणों व प्रतिबंधों के चलते हुआ। इस पर चर्चा मैं कुछ बाद मे करूँगा। इससे पहले मैं आई.बी के इस डरावने समझे गए विभाग का वर्णन करना चाहूँगा। उतना ही जितना मैं अपनी एजेंसी के प्रति प्रतिबद्धता के नाते कर सकता हूँ।

* * * *

आई.बी. के तकनीकी विभाग में दो तरह के अधिकारी होते हैं। एक सीधे भर्ती किए गए जूनियर इंटेलिजेंस ऑफिसर (ग्रेड-। टेक्नीकल) और दूसरे असिस्टेंट इंटेलिजेंस ऑफिसर (ग्रेड-।। टेक्निकल)। इसका प्रमुख आमतौर पर कोई प्रख्यात वैज्ञानिक होता था। इसे भारत सरकार के किसी वैज्ञानिक संगठन से प्रतिनियुक्ति पर बुलाया जाता था। वह एक सामान्य इंटेलिजेंस टेक्नोक्रैट की नाममात्र देखरेख में काम करता था। वैज्ञानिक सलाहकार कुछ महत्वपूर्ण लोगों की सिफारिश पर रखा जाता था। इंटेलिजेंस एकत्र करने या एकत्र होने से रोकने के लिए वैज्ञानिक कार्यप्रणाली पर धूल चढी परतों से आगे निकलने के लिए किसी खास वैज्ञानिक कौशल का इस्तेमाल नहीं किया जाता था। ऐसा नहीं है कि नियुक्त किए गए

वैज्ञानिक तकनीकी विभाग को उन्नत बनाने के लिए कुछ सोचते ही नहीं थे। लेकिन ऐसा कोई भी प्रस्ताव सिरे नहीं चढता था। कारण था सामान्य इटेलिजेस अधिकारियों मे जागरूकता का अभाव, मध्य और उच्च स्तर पर पुलिस अधिकारियो में पहल करने का अभाव तथा वित्त एव गृह मंत्रालय में नियत्रक प्रशासको मे उसे समझने की कमी। राजनीतिक व प्रशासनिक व्यवस्था ने इंटेलिजेस एकत्र करने व अन्य आतरिक सुरक्षा कार्यो मे (सामान्य पुलिस कार्यों सहित) सहायता के लिए वैज्ञानिक उपकरणो के प्रयोग का महत्व बहुत बाद मे समझा। यह पंजाब की गाज उनके सिर पर गिरने और 1984 मे हत्यारो की गोलियो से छलनी हो कर देश की सबसे विख्यात प्रधानमत्री को खो देने के बाद ही सभव हुआ। प्रमुख इटेलिजेंस एजेंसी और उस पर नियत्रण रखने वाले सवेदनहीन राजनीतिज्ञो व प्रशासको के बीच के गर्त का यह भी एक घृणित उदाहरण है। अपरिपक्व कर्मी सगठन के सुरक्षा आवरण की तरह काम करते थे। सामान्य इटेलिजेस के उनकी तरह भर्ती किए गए अधिकारियो के साथ इन कर्मियों को कडा पुलिसिया किस्म का प्रशिक्षण दिया जाता था। इनको इटेलिजेस कौशल की बुनियादी बातें भी सिखाई जाती थी। अधिक गहन प्रशिक्षण वायरलेस रेडियो की पारश्रवण पद्धति, रख-रखाव और मरम्मत का होता था। उनको मोर्स की कुजी के सचालन का प्रशिक्षण भी दिया जाता था। एक जमाने मे, खास तौर पर बी के मलिक के वक्त मे देश मे ही ट्रास-रिसीविंग सेट बनाने के प्रयास किए गए ताकि पहले और दूसरे महायुद्ध काल के समाप्तप्राय उपकरणो और जापान के विरुद्ध प्रयोग मे आने वाले कुछ अमेरिकी उपकरणो का ये सेट स्थान ले सके। 1985 के बाद कुछ अच्छे जर्मन और अमेरिकी सेटो के आने तक ये पुराने सेट ही आई बी के काम आते रहे। इनसे कहीं छोटे जापानी सेट तो 1990 के बाद ही प्रयोग मे आए। हालाकि तब तक सचार की दुनिया मे बहुत बडी क्राति आ चुकी थी। मैने भी उत्तरपूर्व मे मतेई, नगा और मिजो विद्रोही दलो को पाकिस्तान और चीन जाने या वहाँ से लौटने की हलचलो का पता लगाने के लिए इन पुराने लेकिन मजबूत सेटो का इस्तेमाल किया था। मेरा मन होता था कि मेरे पास पाउड के आकार के रेडियो ट्रासमीटर और आधुनिक वीएसएटीएस किस्म के तथा अन्य लघु सचार उपकरण हों।

सीधी भर्ती वाले अधिकारियो का चयन विश्वविद्यालय के सर्वश्रेष्ठ छात्रो मे से किया जाता था। इनमें अधिकतर विज्ञान के प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण स्नातक या स्नातकोत्तर होते थे। अगर भाग्य थोडा साथ दे तो उन मे से अधिकाश का अखिल भारतीय सेवाओ मे चयन हो सकता है। लेकिन आई.बी. का कल्पनाहीन मानव ससाधन विकास कार्यक्रम इस श्रेष्ठ मानव ससाधन को ठोक-पीट और घिस-घिसा कर आज्ञाकारी, दब्बू और तगनजर वाले असिस्टेंट सेंट्रल इंटेलिजेस आफिसर (ग्रेड-।। टेक्निकल) बना लेता था।

पुलिस प्रशिक्षण के और भी कई पहलुओं की जानकारी पा लेने के बाद, खासतौर पर डिजाइन किए गए इंटेलिजेंस कोर्स कर लेने के बाद इन युवकों को वायरलेस व अन्य सचार उपकरणों के प्रयोग का प्रशिक्षण दिया जाता था। साथ ही दूसरे तकनीकी उपकरणों के इस्तेमाल की जानकारी भी इन्हें दी जाती थी। फिर इन में से अधिकाश को बी.सी.पी. (बार्डर चेक पोस्ट) मे भेज दिया जाता था। वहाँ पर और दूसरे कठिन केंद्रो में ये वायरलेस संचार पद्धति का संचालन करते थे। सामान्य इंटेलिजेस और तकनीकी इटेलिजेस की मुख्यधारा से कटे ये युवक अधिकांशतः अमानवीय परिस्थितियों मे अधिकतर परिवार रहित केंद्रों पर तैनात रहते थे। लिहाजा बहुत कम समय में ही इन अधिकारियो के मन में क्रोध, हताशा और

झक्कीपन भर जाता था। पुलिसिया प्रतिष्ठाहीन अनुशासन और अभावों से ग्रस्त इन अधिकारियों का उच्च शिक्षा का मुलम्मा जल्दी ही उतर जाता था। वे नए विचारों का भी प्रतिरोध करने लगते थे। उन में से कुछ भ्रष्ट हो जाते थे।

हृदयहीन सोपान के स्तर, दूसरे विभागो में जा कर ऊपर उठने की संभावनाओं का अभाव, तथा अनुसंधान व विकास की सुविधाओ का बिलकुल न होना इनका मोहभंग और बढा देता था। आधुनिक उपकरणो से परिचित न कराने और उनको आगे सीखने की सुविधा न देने के कारण इनके दिमाग बोरियत के मकडजाल मे उलझ कर जाम हो जाते थे। इन अधिकारियों को जबरन 17 से 20 साल तक इसी तरह एक ही पद पर जड बने रहने को मजबूर किया जाता था।

तकनीकी यूनिट के धर्मपिताओ के लिए अपने दास चुनने की यह आदर्श स्थिति थी। जिन दासों पर कम अनुकपा होती थी वे बेचारे नए धर्मपिता की तलाश में इधर से उधर भटकते फिरते थे। पक्षपात, भाई भतीजावाद, गुटबाजी और भ्रष्टाचार अनियंत्रित रूप से फल-फूल रहा था। इससे परपीडा का आनद लेने वाले बॉस और व्यथित हृदय अधीनस्थों की बढोत्तरी हो रही थी।

मैं उस विस्तृत परिसर मे द्वेषी मुस्कानों और उपेक्षाभरी निगाहों का सामना करता हुआ आगे बढा। वहॉ के ' विशेषज्ञ अधिकारी ' यह नही समझ पा रहे थे कि किसी एकदम बाहरी आदमी का वे मजाक उडाएँ या स्वागत करे। वह मुझे एक इटेलिजेंस संचालक के तौर पर तो जानते थे लेकिन ट्रांजिस्टरों, डायोडों, वाहक तरगों, एनालॉगों व डिजिटल संचार मोड्स के बारे में मेरी जानकारी पर उनका विश्वास न के बराबर ही था। इसके अलावा नारायणन की मंडली के धर्मपिता के वफादार गुट को इसमे शक न था कि मुझे ज्यादा हौसला दिखाने के लिए मुख्यधारा से हटा कर तकनीकी विभाग मे पटका गया है।

मैंने तय कर लिया था कि उनको इस द्वेष का आनद नहीं लेने दूँगा। तकनीकी-इंटेलिजेंस विभाग को अकुशलता और भ्रष्टाचार की उर्वर भूमि बनाने वाले शोषकों से यथासंभव अच्छा काम लूँगा।

मेरे निकट आने वाले पहले कुछ अधिकारियो मे दो प्रकार के थे। एक तो धर्मपिताओं के गोद लिए बच्चे। दूसरे धर्मपिताविहीन अनाथ। पहले किस्म के बच्चो ने मुझे बताया कि उनकी संगठन मे क, ख, ग, घ, से निकटता है। दूसरो के पास अकुशलता की कहानियॉ और गलत नीतियों के प्रति संकेत थे।

मैंने विस्तृत तकनीकी यूनिट की चोटियो, गलियो, नाले-नालियों का भ्रमण करने का मन बनाया। इसके लिए मैंने विभिन्न विभागो को आदेश दिए कि वे सात दिन के अंदर-अंदर अपने कर्मियों और साज-सामान के साथ अपने काम का प्रदर्शन करे। इससे एक बहुत बडा भूचाल आ गया। कूढमगज तो समय में प्रदर्शन के लिए आए नहीं। सिर्फ इलेक्ट्रॉनिक विभाग से प्रतिनियुक्ति पर आए एक प्रतिभाशाली अधिकारी वाई.वाई. बॉस और दूरसंचार विभाग से प्रतिनियुक्ति पर आए एक और अधिकारी जेड.जेड.' कौशिक ही निर्धारित समय में प्रदर्शन के लिए आए। बॉस अभी विकसित हो रहे उपग्रह संचार को और थोडा बहुत कंप्यूटर विभाग को देखते थे। कंप्यूटर विभाग पर एक आई.पी.एस. अधिकारी कब्जा जमाए बैठे थे जिनकी कंप्यूटर विज्ञान की जानकारी व क्षमता संदिग्ध थी। कौशिक दूरसंचार का काम कुशलता से चला रहे थे।

सात दिन बीत जाने पर मैंने यूनिट प्रमुखों को बुला भेजा। मैंने उनको स्पष्ट कर दिया कि उनका तबादला दिल्ली से बाहर होने वाला है। मैं आने वाले दस दिनों में विभाग में उलटफेर करने जा रहा हूँ। इसने जादू का असर दिखाया। जिन चीजों पर उन्होंने कब्जा जमा रखा था, वे सब सामने आ गईं। मैंने जो कुछ देखा उससे हैरानी भी हुई और आघात भी पहुँचा। तकनीकी-इंटेलिजेस के ढॉचे की जड़ता,विकृति, वहॉ के भंडारों का कुप्रबंध और अस्वच्छ रखरखाव देख कर मेरा मन खिन्न हो गया। मुझे इसमें से भ्रष्टाचार की दुर्गंध आने लगी।

सबसे पहले तो मैंने कैंची ले कर धर्मपिताओं और उनके गोद लिए बच्चों के बीच की डोर काटी। मैंने उनको समझा दिया कि मेरे सिवा उनकी देख-रेख करने वाला और कोई है नहीं। इसका प्रतिरोध हुआ। कुछ धर्मपिताओं ने तो मुझसे अनुरोध भी किया कि मैं उनके वफदारों को ' संरक्षण ' दूँ, उनकी ' मदद ' करूं और उनका 'खयाल ' रखू। इस प्रक्रिया से एक और लाभ हुआ। मैं तकनीकी यूनिट के करीब 18 सुरक्षा सहायको को कुछ धर्मपिताओं के घरों की गुलामी से मुक्त करा सका।

दूसरा काम था अनुभाग के प्रमुखों को पीछे छोड कर कर्मियों से सीधे संपर्क बनाना। यूनिट के सबसे निचले स्तर के सेल के साथ बैठकों ने मुझे जमीनी स्तर के तकनीकी कर्मियो के साथ संपर्क बनाने में सहायता की।

शुरुआती झटका देने के बाद मैंने अपने बॉस के लिए परियोजना आकलन पत्र तैयार किया। इसमें मैंने कबाड साज-सामान को तेजी से हटाने की जरूरत पर जोर दिया। आधुनिक उपकरण मंगाए जाने की बात की। शोध व विकास का स्तर सुधारने, मॉनीटरिंग सेवाओं, साइफर अनुभाग और कंप्यूटर डिवीजन के आधुनिकीकरण पर भी बल दिया। मेरे दो सुझावों की तारीफ हुई। एक था उपग्रह संचार का अधिकतम प्रयोग। दूसरा यह कि इंटेलिजेंस ब्यूरो और संचार, बीच में सुनने, कूटलिपि को समझने व तकनीकी इटेलिजेंस के उपकरण बनाने में विशेषज्ञ प्रमुख वैज्ञानिकों का एक संयुक्त वैज्ञानिक सलाहकार संस्थान बनाना।

एक भव्य सम्मेलन का आयोजन किया गया। इसमें देश के प्रमुख वैज्ञानिकों और इंटेलिजेंस ब्यूरो के अधिकारियों ने भाग लिया। इसमें इंटेलिजेंस संकलन के लिए अनेक प्रकार के उपकरणों को देश में बनाने की आवश्यकता को उजागर करने का बडा अच्छा अवसर मिला। इस संयुक्त वैज्ञानिक सलाहकार सस्थान ने दो वर्ष तक बहुत अच्छी तरह काम किया। इंटेलिजेंस ब्यूरो को इस से डी.आर.डी.ओ., भेल, डी.ओ.ई. आई.आई.टी. दिल्ली व चेन्नई के विशेषज्ञों के अनुभवों का लाभ मिला। लेकिन मेरे तकनीकी विभाग का कार्यभार छोडने के तुरंत बाद ही तकनीकी इंटेलिजेंस यूनिट के तकनीशियनों और निरीक्षण करने वाले पुलिस अधिकारियों की दिलचस्पी भी इसमें खत्म हो गई। तकनीकी इंटेलिजेंस के तकनीशियन कुछ संवेदनशील उपकरणों को आयात करने में ज्यादा दिलचस्पी रखते थे, क्योंकि इन सौदों में उनको मोटा कमीशन मिलता था। एक दो को छोड़ कर निरीक्षण अधिकारियों ने भी उपकरणों के स्वदेशीकरण में कोई रुचि नहीं दिखाई। एजेंसी की धमनियों और शिराओं में प्रवाहित होने वाला पुलिसिया रक्त उसे वैज्ञानिक समुदाय के लिए अपने दरवाजे खोलने से रोक रहा था।

हालांकि मुझे सूचना संकलन व विश्लेषण की मुख्यधारा से अलग कर दिया गया था फिर भी मेरे पास प्रस्ताव आया कि मैं भारत में और भारत के बाहर पड़ोसी देशों में गलत नीतियों पर शोध करने के लिए प्रसिद्ध विद्वानों को आई.बी. की सहायता करने की अनुमति दे सकता

हूँ। लेकिन यह प्रस्ताव भी काम नहीं कर सका। मेरा सुझाव था कि कुछ विश्लेषण डेस्कों के प्रमुखों के रूप में खुले क्षेत्र से प्रतिभाओं को लिया जाए। इसमें सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र और परराष्ट्रीय सुरक्षा परिमापी शामिल थे जो उत्तरपूर्व एशिया, पाकिस्तान, अफगानिस्तान, मध्य एशिया के देशों और कुछ मध्यपूर्व के इस्लामी देशों से परे के अर्द्धवृत्त को भी अपने अध्ययन की परिधि में समेटे हों। पुलिसिया संस्कृति के शिकंजे में कसे (यह स्थिति आज भी है) आई. बी. के निहित स्वार्थों ने शैक्षणिक,मीडिया और वैज्ञानिक समुदाय से प्रतिभाओं को नियुक्त करने के विचार से सहमति नहीं जताई। इस बारे में चर्चा मैं निष्कर्ष वाले अध्यायों में करूँगा।

* * * *

अपने आप को एक ईमानदार काम का कीडा साबित कर लेने के बाद मैं तकनीकी विभाग के वरिष्ठ अधिकारियों और उनमें से कुछ के आकाओं के पूर्वाग्रह को दूर करने में सफल हो गया। इससे इंटेलिजेंस ब्यूरो के बाबा आदम के सामान और सिलसिले को सुधारने में मदद मिली। एक बडी सफलता तो बाहरी स्रोत से बहुउपयोगी उच्च आवृत्ति और अतिउच्च आवृत्ति के ट्रांस-रिसीवर उपलब्ध करने में मिली। संकेत इंटेलिजेंस शाखा के लिए कुछ अति आधुनिक सेट भी उपलब्ध किए गए।

वाई.वाई. बॉस और कुछ अन्य उत्साही सहयोगियों ने स्वदेशी दिशासूचक बनाने में मदद की। इनका उपयोग पंजाब और कश्मीर में बडी कुशलता से किया गया। यहाँ यह बता देना अप्रासांगिक न होगा कि पूरे संकेत इंटेलिजेस यूनिट को 1969 में रॉ ने अपने अधीन कर लिया था। भारत-पाक स्थ्रल सीमा तथा तमिलनाडु व उत्तरपूर्व के कुछ अन्य सवेदनशील क्षेत्रों में संकेत इंटेलिजेंस में सुधार करने के मेरे प्रयासो के उत्साहजनक परिणाम सामने आए।

भारतीय वायुमंडल खुले और गुप्त, स्पष्ट और कूट भाषा वाले प्रसारणो से भरा पडा था। ये प्रसारण अफगान मुजाहिदीनों,आई एस आई. समर्थित इस्लामी गुटों एवं मध्य एशिया के जनतंत्रों के रूसी नियंत्रण वाले रेडियो स्टेशनों से आते थे। इंटेलिजेंस ब्यूरो की इंटेलिजेंस के इस विशाल भंडार तक पहुंच न थी। रॉ और सेना इंटेलिजेंस महानिदेशालय सामयिक महत्व की संकेत इटेलिजेस सामग्री का आदान-प्रदान बहुत कम ही करते थे। आई.बी. की अपनी साइफर शाखा जरूर थी, लेकिन वह केवल देश के अंदर के कूट संकेतों को पकडने का काम करती थी और उसी को संरक्षित रखती थी। पकडे गए कूट संकेतों को समझने की इसमें क्षमता न थी। ये संकेत तोडने के लिए या तो रॉ के पास भेजे जाते थे या फिर संयुक्त कूट-ब्यूरो को। 99 प्रतिशत मामलों में वे महीनों बाद वापस लौटते । वह भी नकारात्मक जवाब के साथ।

कूट संदेशों को तोडने की दयनीय स्थित का एक उदाहरण उस द्वीप देश से तमिलनाडु को आने वाले कूट संदेशों का है। कुछ तमिल जानने वाले अधिकारियों ने तमिल में आने वाले संकेतों का अर्थ जानने के लिए परिश्रम किया। लेकिन वे लोग भी अल्फान्यूमेरिक, न्यूमेरिक, अल्फाबेटिक व चिन्ह कूटों का अर्थ निकालने में विफल रहे। लिट्टे हाईकमान और दक्षिणी प्रायद्वीप में उसके सुरक्षित ठिकानों को आने वाले बहुत से महत्पूर्ण संकेत महीनों तक आई. बी.,रॉ और जे.सी.बी. के बीच धक्के खा कर अनबूझ बने रहे।

अगर आई.बी. के पास लिट्टे के कूट तोडने की क्षमता होती तो शायद राजीव गांधी का मूल्यवान जीवन बचाया जा सकता था। आई.बी. और रॉ दोनों के पास ऐसे शक्तिशाली आधुनिक कंप्यूटरों और साफ्टवेयर का अभाव था जिसकी मदद से शत्रु के कूट को तोडा जा सके। मैंने व्यावसायिक तौर पर कंप्यूटर उपलब्ध करने के लिए इजरायल, जर्मनी व अमेरिका

से सहयोग की व्यवस्था करने का सुझाव दिया था। लेकिन गृहमंत्रालय के नवरत्नों ने वित्त और विदेश मंत्रालय से लंबी मंत्रणा करने के बाद उसे खारिज कर दिया। मेरे जर्मनी से गोपन व अनावरण के लिए स्वचालित डिजिटल मॉड्यूल मंगाने के प्रयास भी मंत्रालय के महारथियों ने विफल कर दिए। तकनीकी विशेषज्ञों व इंटेलिजेंस संचालकों की अपेक्षा बाबुओं का हाथ ऊपर होने का यह एक और उदाहरण था।

बहरहाल कुछ ऊँचे पद वालों के विरोध के बावजूद मैं दिल्ली, अहमदाबाद, जोधपुर, गंगानगर और अमृतसर में उच्च आवृत्ति के बीच में सुनने के केंद्र स्थापित करने में सफल रहा। इसके बाद आई.बी. के कूट यूनिट को पूरी तरह से सुधारने का काम किया गया। कूट के इस मसले पर मैं बाद में चर्चा करूँगा।

आई.एस.आई. ने पंजाब के उग्रवादियों को उच्च आवृत्ति और अतिउच्च आवृत्ति के जापानी और चीनी श्रवण व प्रसारण उपकरण दिए थे। इससे वे पंजाब पुलिस और अर्द्धसैनिक बलों के ध्वनि संदेश सुन सकते थे। ग्रामीण फोन व्यवस्था भी स्थानीय क्षेत्रीय रेडियो प्रसारण व्यवस्था (एल.ए.आर.टी.) पर निर्भर थी। इन आधुनिक उपकरणो के कारण उग्रवादी स्थानीय पुलिस और प्रशासन दलों की फोन पर अमृतसर से होने वाली बातचीत भी आसानी से सुन लेते थे।

ग्रामीण फोन व्यवस्था की समस्या से टेलीफोन अधिकारियों को अवगत कराया गया। अमृतसर,तरनतारन, खेमकरण, माखू और पंजाब की अन्य सीमावर्ती चौकियों पर लगाए गए अति उच्च आवृत्ति सेटों की बदौलत इंटेलिजेंस व सुरक्षा बिरादरी को बडी महत्व की जानकारियाँ हासिल हुईं। बीच के रिले स्टेशनो की क्षमता बढाने और उनमे सुधार करने से अमृतसर में बैठा तकनीकी इंटेलिजेंस संचालक पाकिस्तानी सीमा से लगे डेरा बाबा नानक पर हो रही बातचीत भी आसानी से सुन सकता था। इतना ही नहीं वह कसूर, रामपुरा, भसीन,पधाना, उप्पल और कादीविंद जैसे पाकिस्तान के अंदर के अड्डो की बातचीत भी सुन सकता था। कादीविंद से पकडा गया इस तरह का एक सकेत सुरक्षा बलों के बहुत काम आया। उन्होंने इसकी वजह से पाकिस्तान से पाकिस्तानी रेंजरो की गोलीबारी की आड में भारत में घुसपैठ का प्रयास करता एक उग्रवादी गिरोह पकडा।

मेरे खयाल से मेरे सहयोगियों ने अब इन सुविधाओं में और सुधार किया है। उन्होंने संचार व अनुश्रवण में नए आयाम जोडे हैं। जहाँ तक आतरिक सुरक्षा का सवाल हैं संकेतों को बीच में पकड़ कर सुनना सुरक्षा कार्रवाइयों का रोज का काम बन गया है।

1990-91 के दौरान हमारे पास फैक्स, टेलेक्स और इंटरनेट के लिए इस्तेमाल होने वाले संचार चैनलों को पकड़ने वाले उपकरण नहीं थे। कुछ महीनों तक मेहनत करने के बाद हमने फैक्स संचार को पकडने के लिए एक देशी जुगाड बना लिया। दिल्ली और इस्लामाबाद के बीच होने वाले फैक्स संवाद को पकड़ने के कारण विदेश मंत्रालय और केंद्रीय गृह मंत्रालय को अपनी रणनीति के रवैए में संशोधन करने मे सहायता मिली। इस तरह पकडे गए एक संदेश से बी.जे.पी. व संघ परिवार के अन्य संबद्ध संगठनों द्वारा राम जन्मभूमि आंदोलन छेडने संबंधी महत्वपूर्ण सूचना मिली जिससे स्थिति का आकलन किया जा सका।

इन शुरुआती उपकरणों की जगह अब तो आधुनिक आयातित उपकरणों ने ले ली है। 1991 में हमारे लडकों ने आई.बी. को इंटेलिजेंस संकलन का एक नया उपकरण दिया। इस नई उपलब्धि के साथ कुछ और उपकरणों को जोडने के बाद आई.बी. लक्षित टेलेक्स संवाद को पकड़ सकती थी। इसकी सहायता से उसेने विदेशी दूतावासों,दिल्ली स्थित विदेशी

संवाददाताओं और लक्षित देशों के साथ व्यावसायिक संबंध रखने वाले व्यावसायिक घरानों के टेलेक्स संवाद पकडने में कामयाबी हासिल की।

हमारा मुंह चिढाने वाली एक और समस्या थी देश भर में एस.टी.डी. व आई. एस.डी. सुविधा का प्रसार। आई बी. की स्थानीय व अंतर्राष्ट्रीय कालों की अनुश्रवण-क्षमता दयनीय रूप से सीमित थी। पंजाब,कश्मीर और उत्तरपूर्व के आतंकवादी गिरोह और उनके साथ सांठ-गांठ करने वाले आई.एस.डी. का प्रयोग बेखौफ करते थे। महानगरों में पी.एस.टी.एन. केंद्रों का पता लगाना मुश्किल न था क्योंकि इनकी कॉल सुनने वालो को लक्ष्यों की सूची व उनके नंबर उनको मुहैया कराए जाते थे।

विदेशों से आने वाली और वहॉ जाने वाली कॉलें मुंबई, देहरादून और जालंधर में बने गेटवे से हो कर निकलती थीं। विदेश सचार निगम (वी.एस एन एल.) आई.बी.की अपने हब तक पहुॅच के लिए आसानी से तैयार न था। इसके अलावा वी एस.एन.एल और आई.बी. किसी के पास भी कॉल करने वाली और सुनने वाली पार्टियो के नंबर जानने का साफ्टवेयर न था। बहुत दिन की कोशिशो के बाद एक भौडा-सा तरीका निकाला गया। इसके तहत गेटवे के हब्स मे एक कंसोल फिट कर दिया जाता था। इस तरह लक्षित नंबरो का अवरोधन कर के स्थानीय एक्सचेंज में उन नबरों का प्रिंटआउट प्राप्त कर लिया जाता था। यह एक साधारण शुरुआत थी। यह जितना अच्छा काम कर सकती थी करती रही। मै समझता हॅू कि अब तक मेरे सहयोगियों ने इस भौडी शुरुआत में बहुत अधिक सुधार कर लिए है। अब उनके पास काफी तेज कप्यूटर और सक्षम साफ्टवेयर है। अब उनके पास मोबाइल और उपग्रह टेलीफोनों के अवरोधन की क्षमता भी है।

मुझे अल्फान्यूमेरिक,न्यूमेरिक और अल्फाबेटिक कूटो के प्रयोग का प्रशिक्षण नहीं दिया गया था। गुप्त संदेशों को पढने के लिए जिस जटिल गणित प्रक्रिया से गुजरना पडता है उस का ज्ञान भी मुझे नही था। जब मैं उत्तरपूर्व मे था तब इंटेलिजेस ब्यूरो व जे.सी.बी. के दिए पैड की मदद से मैं सदशों को साइफर और डीसाइफर कर लेता था। कुछ तकनीकी अधिकारी कूट संदेशों की आधारभूत विशेष बातों और उनके लॉगरिथम को समझने में मेरी मदद करते थे। मेरे यूनिट के निरीक्षण का आदेश देने पर साइफर यूनिट (सी यू.)के अधिकारियों को बहुत आश्चर्य हुआ। मैं यह जानकर सकते में आ गया कि वहॉ के ' विशेषज्ञ' पाकिस्तानी रेंजरों और पुलिस बल के इस्तेमाल किए गए निम्न श्रेणी के कूट को भी तोडने की क्षमता नहीं रखते थे। सारे संवाद रॉ और जे.सी बी. को भेज दिए जाते थे। वे इन पुलिंदों पर महीनों बैठे रहते थे। इसके बाद अपनी असमर्थता जता देते थे। मैंने इसे राष्ट्रीय शर्म माना और तय किया कि सी.यू. में कुछ नए मूल्यों का संचार किया जाए तथा सफाई अभियान चलाया जाए।

मैंने सुझाव दिया कि कुछ अधिकारियो को कूट का प्रशिक्षण दिलाने के लिए एम.16,सी. आई.ए. और मोसाद में भेजा जाए तथा तीव्रगति वाले कप्यूटरों व साफ्टवेयर का आयात किया जाए। इसकी मंजूरी न मिलने पर मैंने इसके बाद वाले बेहतर विकल्प पर काम करने का मन बनाया। तकनीकी इंटेलिजेंस से उन युवाओ को चुना गया जो गणित में माहिर थे। इन को कंप्यूटर के संक्षिप्त कोर्स में लगया गया। इसके अलावा इन को बीजलेखन के लागरिथम, क्रम परिवर्तन, संयोजन तथा अल्फान्यूमेरिक प्रतिस्थापन की तकनीक भी सिखाई गई। इसका परिणाम बहुत जल्दी सामने आया। अब हम लोग सिंध व पाकिस्तान के रेंजरों, सियालकोट, लाहौर, मुलतान, बहावलपुर, रहीमयार खान, सुकूर और हैदराबाद के पुलिस बलों के निम्न

श्रेणी के कूट को आसानी से तोड़ने की क्षमता रखते थे। लेकिन हम उच्च श्रेणी के कूट को तोड़ने की क्षमता अर्जित करने मे सफल नही हो सके।

शोध व विकास यूनिट बनाने के मेरे निर्णय का तकनीकी इटेलिजेस के सहायको ने कडा विरोध किया। ज्वाइट एडवाइजरी साइटिफिक बोर्ड के गठन के साथ इसका सहायक यूनिट 2के तौर पर होना आवश्यक था। बोर्ड का गठन तो डी आर डी ओ तथा आई आई टी के प्रमुख वैज्ञानिको की सहायता से पहले ही किया जा चुका था। मैने अडियल वरिष्ठ अधिकारियो पर अपना निर्णय जबरन लागू किया। फिर कुछ प्रतिभाशाली युवकों को लघु रेडियो ट्रास्मीटरो व छोटे रिसीवरो के निर्माण कार्य मे लगाया। उनको मैने फैक्स के अवरोधन व उपग्रह सचार श्रवण मे सुधार करने का काम भी सौपा। युवा अधिकारियो ने इसका स्वागत किया। कुछ युवको ने तो बहुत ही अच्छा काम किया।

हमने चल-निगरानी के लिए दो गाडियॉ तैयार की जिनमे सारा साज-सामान था। इन मे वी एच एफ रेडियो ट्रासरिसीवर स्टिल /वीडियो फोटोग्राफी क्रोकोडाइल क्लिप्स की मदद से तुरत टेलीफोन टेप करने की सुविधा व दिशासूचक थे।

एक और नई चीज थी, गुप्त डिजिटल अतिउच्च आवृत्ति सचार उपकरण। इसे निगाह रखने वाली कारो और मोटरसाइकिलो मे लगाया जाता था। मर्करी बैटरी से चलने वाले रेडियो के छिपे हुए ईयरप्लग और उनके साथ छिपे हुए माइक्रोफोन भी बनाए गए। ये पैदल चल कर और एक स्थान पर स्थिर रह कर की जाने वाली निगरानी के लिए बहुत उपयोगी थे।

टी वी टॉवर पर एक मास्टर ट्रासरिसीवर लगाने का प्रयोग किया गया ताकि सारी दिल्ली और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र मे सचार व्यवस्था मे वृद्धि हो। यह बहुत कामयाब रहा। शोध और विकास यूनिट के युवको ने एक चल रेडियो टेलीफोन यूनिट बनाया। इसके साथ एक बपर पर फिट होने वाला उच्च ग्रेड का एटीना था। इससे दिल्ली से अलीगढ सहारनपुर और आगरा आदि स्टेशनों पर आसानी से बात की जा सकती थी। यह उन युवको की साधारण उपलब्धियॉ न थीं जो अब तक सीमाओ की चौकियो पर सड रहे थे और अपमानजनक जडता सह रहे थे।

राजीव गॉधी की कोशिशों के बावजूद सरकारी विभाग कप्यूटर सस्कृति को अगीकार करने को तैयार न थे। आई बी ने डाटा प्रोसेस करने और सकलित करने के लिए कुछ ए टी और एक्स टी कप्यूटर मगाए थे। कुछ प्रशिक्षित क्लर्को ने रेमिगटन के टाइपराइटरो की तरह सीमित मेमॅरी के कप्यूटरो का इस्तेमाल करना भी शुरू किया। शीर्ष अधिकारियो ने अपने कमरो मे कप्यूटर इसलिए लगावा लिए क्योकि इनके साथ एयर कडीशनर भी लगाए जाते थे। इन पवित्र बक्सो पर से कभी कवर उतारे नहीं जाते थे। ठडी करने वाली मशीने प्राकृतिक व मशीनी दोनो दिमागों को शीतल रखती थीं ताकि सरकार का काम चलू रहे। लेकिन उच्च अधिकारियो मे से बडे बॉसेस के कुछ कृपापात्रो को ही कप्यूटरो और एयरकडीशनरो से नवाजा गया।

1984 मे जब मैं कनाडा मे था तब मैंने एक प्राइमेट पी सी एक्स टी लिया था। इसे बच्चे इस्तेमाल करते थे। मैं इस जादू के पिटारे का इस्तेमाल करने और साधारण वर्ड प्रोसेसिग करने से भी घबराता था। लेकिन मेरे बेटों ने मुझे फुसला कर उस मशीन की विशद सभावनाओं को सीखने को राजी कर ही लिया। धीरे-धीरे मैंने इस कृत्रिम मस्तिष्क की अपार सभावनाओ को समझा और इटेलिजेस के काम मे कप्यूटर का इस्तेमाल कर के अध्ययन सामग्री जुटाने की खातिर ब्राउजिग भी शुरू की। मुझे आई बी निदेशक को कप्यूटर के इस्तेमाल पर एक

प्रपत्र पेश करने का अवसर मिला। इसमें शामिल थे : क. डाटा प्रोसेसिंग और संकलन। ख. आव्रजन नियंत्रण। ग. आन लाइन संचार। घ. समाकलित डाटा और ध्वनि संचार, जिस में फैक्स और उपग्रह संचार शामिल था। ङ. कूटलेखन। च. प्रोजक्ट प्रेजेंटेशन।छ. मानव संसाधन उपलब्धियाँ। इस प्रोजेक्ट आकलन रिपोर्ट को तैयार करने में एक्स.एक्स. कौशिक ने मेरी बहुत सहायता की।

मैंने यह भी कहा कि वर्तमान उपग्रह संचार सुविधा एक सफेद हाथी है। इसका दिल्ली स्थित मुख्य केंद्र निपट अकेला है। इसका विश्लेषण और संचालन डेस्कों से कोई संपर्क नहीं है। बैंगलौर स्थित दूसरे केंद्र का संगठन की संचार सुविधा में बहुत कम योगदान है। मैंने दिल्ली के केंद्र को वहाँ से हटा कर उसे केंद्रीय संचार कमान मॉड्यूल (3 सी.एम.) के साथ जोड़ने का सुझाव देने का हौसला भी कर डाला।

संगठन में मुझसे ऊपर और नीचे के मेरे सहयोगी 200 दिनों बाद मेरे एम.के. नारायणन के कमरे में जाने और उनके साथ चाय पीने से हैरान-परेशान हो गए। हमने दोनों प्रोजेक्ट प्रपत्रों पर चर्चा की। मुझसे कहा गया कि एक विशेष बैठक में आई.बी. के शीर्ष अधिकारियों के सामने अपने विचार स्पष्ट करूं। उत्साही उपनिदेशक वाई.वाई. बॉस और व्यावहारिक सहायक निदेशक एक्स.एक्स. कौशिक ने इस जटिल योजना का कंप्यूटर पर प्रदर्शन तैयार करने में मेरी सहायता की। बहुत से वरिष्ठ अधिकारी मुंह छिपा कर मुस्कराए। उन्होंने सलाह दी कि मैं उनको अपने विचित्र विचारों से भ्रमित न करूँ। नारायणन कुछ दिनों तक सारे मामले पर चुप्पी साधे रहे। फिर एक दिन मुझे बुला कर दिल्ली के केंद्रीय हब और उनके मुख्य शिविर के बीच संपर्क बनाने की संभावनाओं के बारे में पूछा। मैंने उनको बताया कि 18 किलोमीटर की दूरी तक के संचार के लिए लीज पर पी.एस.टी.एन. लाइन लेने का खर्चा एक करोड़ दो लाख रुपए आएगा। अगर यू.एच.एफ. संपर्क बनाएंगे तो इसका खर्चा एक करोड़ पांच लाख रुपए बैठेगा। 3 सी. एम. लेंगे तो इसका खर्चा बीस लाख रुपए से कुछ ऊपर बैठेगा। उन्होंने मेरे सामने चुनौती रखते हुए कहा कि मैं उनके सेवानिवृत्त होने से पहले तीन महीनों के अंदर यह काम कर के दिखाऊँ। लगभग उसी दौरान मुझे आई.बी. के उभरते कंप्यूटर प्रभाग की कमान भी सौंप दी गई।

तकनीकी इंटेलिजेंस के हमारे जवानों ने नारायणन के रिटायर होने के कुछ दिनों पहले यह करिश्मा कर डाला। 3 सी.एम. को केंदीय गृह मंत्रालय के मुख्य केंद्र के पास ही कहीं स्थापित कर दिया गया। अब यह सारे भारत मे फैली आई.बी. की क्षेत्रीय टुकड़ियों से संपर्क कर सकता था। निदेशक के कक्ष में एक विशेष एक्सटेंशन दिया गया था। इससे वह चाहें तो सारी पद्धति पर नजर रख सकते थे। मेरे ' प्रमुख शत्रु ' नारायणन खुशी से नाच उठे। उन्होंने कहा कि समाकलित डाटा और संचार के क्षेत्र में यह एक नई उपलब्धि है।

दूसरा काम था पुरानी उपग्रह संचार पद्धति को विखंडित कर के समाप्त करना। इसके प्रमुख एजेंसी के 'सुरक्षा ' विभाग को देखने वाले एक अधिकारी थे। लेह में छुट्टी मना कर लौटने के बाद मैंने उपग्रह पद्धति को विकेंद्रित कर के उसे इंटेलिजेंस एकत्र करने वाले यूनिटों के साथ समेकित करने का इरादा किया। नियंत्रण रेखा, सियाचिन युद्धभूमि और चीनी सीमा के पास का यह दूरवर्ती स्थान श्रीनगर और दिल्ली से संपर्क के लिए उच्च आवृत्ति वायरलेस पर निर्भर था। पी.एस.टी.एन. पद्धति अधिकांशतः काम नहीं करती थी। असल में सेना भी अधिकतर उच्च आवृत्ति और सिग्नल कोर की लाइन संपर्क पद्धति पर ही निर्भर करती थी।

दिल्ली लौटने पर मैंने फैसला किया कि दो उपग्रह सब-हब श्रीनगर और लेह भेजे जाएँ। इनके साथ ही जम्मू में भी एक डिश लगाई जाए। मैंने दबाव देकर इस प्रस्ताव को मनवा लिया। फिर मनाली, रोहतांग दर्रे, द्रास और कारगिल के रास्ते होकर लेह वाले उपकरण को ले गया। यह बडा साहसपूर्ण कदम था। इस दुर्गम इलाके की यात्रा में लडकों ने कष्ट तो पाया लेकिन वह रोमांचित भी कम नहीं हुए। यह फिर एक और जश्न मनाने का मौका था। श्रीनगर और लेह के एकाकी स्टाफ को 3 सी.एम. के साथ पैच करने की सुविधा दे कर हमने उनको अपने घरों के फोन से मुफ्त बात करने की अनुमति दे दी। अब सूचनाएँ पहले की अपेक्षा तेजी से और सुरक्षित तरीके से पहुचाई जाती थीं। बाद में इस सुविधा का विस्तार गौहाटी, ईटानगर, कलकत्ता और चेन्नई को भी किया गया। विशेष लीज पर ली गई पी.एस.टी.एन. लाइनों की मदद से गोहाटी हब को इम्फाल, कोहिमा और शिलांग से भी जोड दिया गया।

आई.बी. के उपग्रह संचार विभाग ने अचानक एक बडी छलांग लगाई थी। इसके अलावा 30 और स्टेशन बनाने के मेरे प्रस्ताव पर गृह व वित्त मत्रालयों के नवरत्नों ने अपनी आदत के मुताबिक सावधानी, देरी और नाटकीयता दिखाई। मेरा खयाल है कि अंततः यह मंजूर हो चुका है और जल्दी ही आई.बी. के गले में इसकामयाबी का हार पडेगा।

1992 में जब मैंने टेक्नॉलॉजी का भार संभाला था तब से अब तक उस में क्रांति आ चुकी है। उस समय भारत सरकार ने मेरे ध्वनि और डाटा सचार का सेटेलाइट हब्स के जरिए डिजिटलीकरण करने का प्रस्ताव नामंजूर कर दिया था। असल में उनको दूरदराज के स्थानों के लिए वी.एस.ए.टी व ब्रीफकेस में समाने वाले सैटकाम सिस्टम उपलब्ध कराने चाहिए थे। दूरदराज के और दुर्गम स्थानों के साथ जल्दी से जल्दी संपर्क बनाने का विकल्प सैटफोन, वीडियोफोन और वी एस ए.टी उपकरण के जरिए इंटरनेट ही है। मंत्रालय के नवरत्नों को अपनी खोपडियों की क्षमता को बढा कर सूचना टेक्नॉलॉजी और सैटकाम तक पहुँचाने में शायद अभी 50 साल और लगेंगे।

मैंने कोशिश की कि चीनी और पाकिस्तानी उपग्रह सचार का कुछ अंश उड़ाया जाए। अमेरिका के गुप्तचर उपग्रहों का भी कुछ पीछा किया जाए। लेकिन मत्रालय ने यह कह कर इसमें रोडा अटकाया कि यह रिसर्च और एनालेसिस विंग के एकाधिपत्य का क्षेत्र है। इस प्रतिरोध के बाद मैंने यह विचार त्याग दिया। लेकिन हमारे लडके इस दौरान इंटर सर्विस इंटेलिजेंस के इस्लामाबाद स्थित हब के कुछ संचार पकडने में कामयाब रहे। मैं आज भी इस हक में हूँ कि आई.बी., रॉ और एम.आई. संकेत इंटेलिजेंस के मामले में अपने प्रयासों की साझेदारी बनाएं। फिर राष्ट्रीय सुरक्षा समिति के स्तर पर इनके परिणामों को एकत्रित किया जाए। एक ही जगह पर काम करने से कई बार टेक्नॉलॉजी और मानव दृष्टिहीनता की स्थिति आ जाती है। कारगिल की विफलता से यह अच्छी तरह साबित हो चुका है। मेरी राय में राष्ट्रीय सुरक्षा को किसी एक एजेंसी के भरोसे नहीं छोडना चाहिए। संयोजन के साथ विविधता के अक्सर अच्छे परिणाम मिलते हैं।

सैटकाम की समस्याओं से निबटना आई.बी. के कंप्यूटर विभाग की समस्याओं से निबटने की अपेक्षा कहीं आसान था। हार्डवेयर और साफ्टवेयर की कमी के अलावा मुझे दो दुष्कर अड़चनों का सामना करना पड़ा। एक बडी अडचन नेशनल इन्फार्मेटिक सेंटर (एन.आई.सी) थी। इस सार्वजनिक उपक्रम के जिम्मे कंप्यूटर नेटवर्किंग था। कंप्यूटरों की सप्लाई, लगाना, हार्डवेयर और साफ्टवेयर पर इसकी इजारेदारी थी।

दूसरी अडचन थी आई बी के वरिष्ठ अधिकारियो की कप्यूटर सस्कृति को अपनाने की अनिच्छा। कार्यालय के स्टाफ से भी मुझे ऐसे ही रवैए का सामना करना पडा। वे अपना अज्ञान का पर्दा हटाने को राजी नही हुए। एक और अप्रत्याशित खड ने सगठन मे समाकलित कप्यूटर पद्धति का ही विरोध किया। पजाब के मामलो को देखने वाले एक सक्रिय लेकिन बद दिमाग वाले अधिकारी और कश्मीर मे उन जैसे ही अन्य ने अपने निजी ' सिस्टम की मॉग कर डाली जो मुख्य पद्धति से अलग हो। मै उनको समझा कर हार गया कि प्रस्तावित समाकलित पद्धति में उनके कार्यक्षेत्र का डाटा गुप्त ही रहेगा। वे अपने साफ्टवेयर के मालिक होगे। पर मैं उनको समझाने मे पूरी तरह असफल रहा। उनके जैसे कुछ आज भी है।

दिल्ली,मुबई, कलकत्ता और चेन्नई के आव्रजन नियत्रण केद्रो के लिए हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर के चुनाव के लिए मुझे एनआई सी से लडाई लडनी पडी। मै शक्तिशाली सी पी यू आधरित कप्यूटर चाहता था जो अनेक गिगाबाइट डाटा सकलित कर सके और दिल्ली के मुख्य कप्यूटर से सपर्क बनाए रख सके। एनआई सी मुझे क्रम-विन्यास वाला सिस्टम भेडना चाहती थी जो 4/6 की निम्न क्षमता रखता था और जिसका मुख्य कप्यूटर के साथ सपर्क नहीं जोडा जा सकता था। किसी भारतीय तत्र के साथ असहमत हो कर बिना खरोच लगे बच निकलना बहुत मुश्किल है। एनआई सी ने सरकारी विभागो के अदर कई रपटीले गलियारे बना रखे थे। इनमे अपना जमावडा रखने वालो ने मेरे विरोध को विफल कर दिया। फिर भी मै कुछ न कुछ रियायते पा ही गया।

भारत-पाक आवागमन की देखरेख करने वाले अटारी रेलवे स्टेशन के आव्रजन सिस्टम के कप्यूटरीकरण मे मुझे सबसे ज्यादा दिक्कते पेश आई। हार्डवेयर बिलकुल नया था और साफ्टवेयर पूरी तरह सक्षम, पर इन मशीनो को चलाने वाले पुलिस अधिकारियो को यह रास नही आ रहा था। आव्रजन सिस्टम का उल्लघन करने वालो से उनको जो ऊपरी आमदनी होती थी,यह उस मे बाधक था। बहुत से कप्यूटर जानबूझ कर बिगाडे जाने के कारण, गलत इस्तेमाल के कारण या डाटाबेस पच न किए जाने के कारण बेकार पडे रहते थे।

प्रमुख वायु और समुद्री बदरगाहो के आव्रजन कद्रो को मुख्य कप्यूटर से जोडने मे भी मैं असफल रहा। वहॉ के डाटाबेस को मुख्य कप्यूटर मे फीड करन के लिए उठा कर दिल्ली लाया जाता था।

आने वाले और जाने वाले पाकिस्तानी नागरिको के डाटाबेस के कप्यूटरीकरण मे भी असफलता ही हाथ लगी। दिल्ली आई बी यूनिट मे बैठे पुराने दकियानूसो ने कप्यूटर सस्कृति अपनाने से इनकार कर दिया। हालाकि दिल्ली मे एक छोटी शुरुआत कर ली गई लेकिन राज्यो के विदेशी नागरिको का पजीकरण करने वाले अधिकारियो के पास कप्यूटर न थे, जिन मे वे डाटा जमा कर के सुरक्षित रखत। आई बी ओर राज्यो के बीच डाटा का आदान-प्रदान बहुत ही धीमी गति से होता था। सिस्टम की इस खराबी के कारण सैकडो पाकिस्तानी और बाग्लादेशी नागरिक यहा आ कर गुम हो जाते। जमीनी स्तर पर रिसर्च करने के बाद इस स्थिति से उपजने वाले सुरक्षा सबधी खतरे की जानकारी केद्र सरकार को दे दी गई। लेकिन नरम रवैए वाले लोकतत्र ने जो अक्सर अराजकता की स्थित तक जा पहुँचता है, इस गभीर मामले मे भी प्रतिक्रिया जताने मे बहुत सुस्ती दिखाई।

दोषपूर्ण आव्रजन नियत्रण प्रणाली किसी देश की सुरक्षा के लिए कितना बडा खतरा पैदा कर सकती है, इसका उदाहरण 11 9 2001 को अमेरिका मे इस्लामी ,आतकवादियो के

मानवता के प्रति किए गए जघन्य अपराध से बढ कर और क्या हो सकता है।भारत ने भी अपनी राजनीतिक शक्ति के प्रतीक पर ऐसा हमला झेला जब इस्लामवादियों ने संसद भवन पर आक्रमण किया। प्रमुख नवरत्नों और राजनीतिज्ञों को यह समझाना बडा मुश्किल है कि आतंकवाद का मुकाबला करने के लिए आव्रजन नियंत्रण भी उतना ही बडा हथियार है जित्ना कि वर्दीधारी जवान और उन के क्लाशनिकोव।

दो और महत्वपूर्ण क्षेत्रों में भी मैं असफल रहा। मेरा इंटेलिजेंस संकलन व इंटेलिजेंस विश्लेषण करने वाले अधिकारियों (जी.आफिसर्स) और तकनीकी विभाग के अधिकारियों (टी. आफिसर्स) को संश्लिष्ट करने का प्रयास कामयाब न हो सका। उन का पद चाहे कुछ भी हो, अधिकांश जी. अधिकारी तकनीकी इंटेलिजेंस को सेवा करने वाला यूनिट मानते थे। जब कभी तकनीकी कार्रवाई करनी होती थी तो उन को बुला लिया जाता था। तकनीकी अधिकारियों को काम से कोई भावनात्मक लगाव नहीं होता था और वे दोनो प्रभागो के सही तालमेल की परवाह नहीं करते थे। सौतेले व्यवहार के कारण टी अधिकारी जी अधिकारियो से दूर ही रहते थे। इन दो शाखाओं को प्रशिक्षण और कार्रवाई के स्तर पर समेंकित करने के मेरे प्रस्ताव को संगठन के नीति निर्धारकों ने खारिज कर दिया।

दूसरी असफलता मिली तकनीकी इटेलिजेंस यूनिट को कुछ सवेदनशील उपकरण मगा कर आधुनिक बनाने की कोशिश मे। आई बी की इस ज्वलत आवश्यकता पर बाबू आग की दीवार की तरह अड कर खडे हो गए। उन में से ज्यादातर की राय यह थी कि आधुनिक तकनीकी इंटेलिजेंस उपकरणें का ज्यादा से ज्यादा उतना ही व्यावहारिक महत्व है जितना कि उन की मेज पर पडी एशट्रे का। फिर भी नारायणन मत्रालयो की रेत से कुछ तेल निकालने में सफल हो गए और मुझे कुछ संदेवदनशील उपकरण मगाने की अनुमति मिल गई। बाद में मैं दक्षिणपूर्व एशिया, अमेरिका, इगलैंड, जर्मनी और फ्रास के बाजारो में गया तो यह देख कर दग रह गया कि वहां अतिलघु उपकरणों की भरमार है और उन्हे विदेशी नागरिक धडल्ले से खरीद रहे हैं। इन खरीदारों में बग्लादेशी और पाकिस्तानी भी थे।

मैं उम्मीद करता हूं कि पाठक उन संवेदनशील उपकरणों के बारे मे कुछ जानने की उत्कंठा रखते होंगें जो मैंने उस दौरान मंगाए। मुझे इन का नाटकीय विवरण देने का लोभ संवरण करना चाहिए। लेकिन कुछ निरीह किस्म के विवरण देने से राष्ट्रीय सुरक्षा का अहित न होगा।

एक मित्र को दिल्ली में कहीं एक दूतावास के भवन और आवास के निर्माण का ठेका मिल गया। उस से मुझे बडा अच्छा अवसर मिला। उस ने मुझे निर्माण स्थल की मुफ्त सैर करा दी। उस देश ने दूतावास और आवास के भवनों की सुरक्षा तथा इटेलिजेंस के लिए जो प्रारूप निर्धारित किए थे उन्हें देख कर मैं दग रह गया। सुरक्षा के मुख्य केंद्र राजदूत, उन के दो सहायकों के कक्ष तथा सचार कक्ष थे। इन में सीसे की मोटी चद्दर और दूसरे ध्वनिरोधक पदार्थों का इस्तेमाल किया गया था ताकि संचार उपकरणो से निकलने वाली ऊर्जा बाहर न जा सके। संबंधित देश ने बिजली के अधिकांश स्विच, सर्किट और पेच व बोल्ट तक आयात किए। वे भारतीय सप्लायरों पर विश्वास नहीं करते थे।

मुझे कुछ लक्षित स्थानों पर बिजली के मुख्य स्रोत के साथ तीन सूक्ष्म रेडियो माइक्रोफोन लगाने का अवसर मिल गया। मिशन के केंद्र में सदा के लिए श्रवण उपकरण लगाने के प्रस्ताव को विदेश मंत्रालय और प्रधानमंत्री कार्यालय ने स्वीकृति नहीं दी। इस से आई.बी. ने

एक अत्यंत महत्वपूर्ण अवसर खो दिया जिससे भारत मे इस्लामी हरकतों के बारे में बहुत जानकारी मिल सकती थी।

मुरली मनोहर जोशी की एकता यात्रा की विफलता के तुरंत बाद फरवरी 1992 में मुझे बी.जे.पी./संघ परिवार की एक महत्वपूर्ण बैठक का तकनीकी ढंग से विवरण प्राप्त करने का आदेश मिला। मुझे बताया गया कि इस बैठक मे लालकृष्ण आडवाणी, एम.एम. जोशी, राजू भैया, के.एस. सुदर्शन, विजया राजे सिंधिया, एच.एस. शेषाद्रि, विनय कटियार, उमा भारती, चंपत राय आदि भाग लेंगे।

मैंने मीटिंग की कार्रवाई की रिकार्डिंग के लिए आवश्यक कदम उठाया। जो ऑडियो और वीडियो टेप मिले उन्होंने हिंदुत्ववादी संगठनों के प्रति मेरे भावनात्मक लगाव को झकझोर कर रख दिया। फरवरी की बैठक के इन टेपो ने मेरा मोहभंग कर दिया। इसकी सामग्री ने निस्संदेह सिद्ध कर दिया कि हिंदुत्व के उच्च धार्मिक घृणावादियों ने इंदिरा गांधी की हत्या के बाद कट्टर हिंदुत्व वाला रवैया अख्तियार करने मे पूरी मदद की थी। राजीव के अंतराल ने उनको राजनीतिक गुमनामी में भेज दिया था। लेकिन जे.पी. आंदोलन और राजीव विरोधी अभियान से उन्होंने जो सबक सीखे थे उस से परिवार के नेताओं को विश्वास हो गया था कि अब इतिहास की वह उपयुक्त घडी आ गई है जब हिंदुत्व की ताकतें राजनीतिक सत्ता के लिए दृढ़ प्रयास कर सकती हैं। फरवरी बैठक ने निस्संदेह सिद्ध कर दिया कि उन्होंने आने वाले महीनों में हिंदुत्व का अभियान छेडने की रूपरेखा तैयार कर ली है और दिसंबर 1992 में वे अयोध्या में ध्वंस के तांडव के लिए तैयार हैं जिसने कि भारत का स्वरूप ही विकृत कर दिया था। आर.एस.एस., बी.जे.पी., वी.एच.पी. और बजरगदल के बैठक मे मौजूद नेता पूरे तालमेल के साथ काम करने को सहमत हो गए। उमा भारती को एक विशेष सलाह दी गई कि जब तक यह कार्य संपन्न नहीं हो जाता वह गोविंदाचार्य के प्रति अपनी भावनाओं पर संयम रखें।

छोटी-सी सेंध लगा कर मैंने दो दिन बाद टेप निकाल लिए थे और उनको अपने बॉस को सौंप दिया था। मुझे इसमें जरा भी शक नही कि उन्होने ये प्रधानमंत्री और गृहमंत्री को भी दिखाए होंगे।लेकिन भारतीय कांग्रेस के अगुआ अनिश्चयी स्वभाव के थे। उनमें जीवन के प्रति कुछ उत्साह लौट आया था। वह समय के पटल पर अपना नाम उकेरने के सपने देखने लगे थे। वह थरथरा कर रह गए। एल.के. आडवाणी और उनके साथी इतिहास का परकोटा फलांग गए। उन्होंने जबरदस्त उन्माद पैदा किया। इसने एक महत्वहीन मस्जिद को ढा दिया जिसे हिंदुत्व और इस्लाम के बीच सभ्याताओं के संघर्ष का प्रतीक बना दिया गया था, जिस की जडें 1200 साल पुरानी थीं।

हाल ही में हुए गुजरात हत्याकांड ने भी मेरी हड्डियों को कंपा दिया था। मैंने सोचा कि काश कोई मेरे जैसा पागल होता जो तीसरे लौह पुरुष नरेंद्र मोदी की अल्पसंख्यकों का संहार करने की योजना का वीडियो और ऑडियो सुबूत तैयार कर लेता। आखिर इतिहास भी किसी फिल्म के अटके पूल की तरह अपने आप को दोहराता रहता है।

मैं संयोगवश एक और तकनीकी इंटेलिजेंस के मामले तक जा पहुँचा। जनवरी 1992 में मुझे प्रधानमंत्री कार्यालय को श्रवण यत्रों का पता लगाने वाले उपकरणों की सहायता से स्वच्छ करने का काम सौंपा गया। तभी एक श्रवण यंत्र और सूक्ष्म रेडियो मॉनीटरिंग मशीन मेरे हाथ लग गई। यह सूक्ष्म श्रवण यंत्र प्रधानमंत्री के एक सहायक के फोन में लगाया गया था। इसे वी.पी. सिंह के जमाने में आई.बी. ने लगाया था। इससे प्रधानमंत्री कार्यालय की गतिविधियों

के बारे मे आई बी को महत्त्वपूर्ण सुराग मिल जाते थे। इनका निष्कर्ष मेरे खयाल से राजीव गॉधी को पहुचाया जाता था। जब चद्रशेखर प्रधानमत्री बने तब भी यह वहॉ काम कर रहा था। तेजी से होने वाले राजनीतिक व प्रशासनिक फेरबदल की आपाधापी मे लोग प्रधानमत्री कार्यालय से इस गुप्तचरी के यत्र को हटाना भूल गए थे। इलेक्ट्रॉकनिक बग हटाने के अपने प्रयास के दौरान मैंने प्रधानमत्री कार्यालय को इससे मुक्त किया।

तो यह है असलियत देश के सर्वोच्च कार्यालय की पवित्रता की।

एक और उपकरण उस समय लगाया गया था जब राजीव गॉधी और जैल सिह मे वैर-विरोध पैदा हो चुका था। प्रधानमत्री कार्यालय के ऊपर कही लगाया गया यह उपकरण राष्ट्रपति भवन के कुछ टेलीफोनो की बातचीत पकड लेता था। इसके द्वारा रिकार्ड किए गए टेप नियमित रूप से राजीव गॉधी को पहुँचाए जाते थे। इससे उनको उस भव्य भवन की दीवारो की अदर होने वाली साजिशो का पता चलता रहता था। षडयत्रकारियो द्वारा प्रयोग मे लाए गए कुछ चुनिदा विशेषणो की चर्चा करने से मै बाज आना चाहूँगा।

सौभाग्य या दुर्भाग्य से कुछ टेप प्रधानमत्री कार्यालय के कुछ विशिष्ट लोगो की बातचीत के भी थे। इनमे रूपए-पैसे का लेन-देन अच्छी तरह उजागर होता था। कुछ रीले एक सक्षम लेकिन बदनाम तोप के बारे मे भी थी जिसने बहुत दिनो तक राजनीति के गडे मुर्दे उखाडे।

जहॉ तक मुझे मालूम है ये अतिसवेदनशील टेप इटेलिजेस ब्यूरो के लेखागार के हवाले कर दिए गए थे।

एक और तकनीकी इटेलिजेस का काम मुझे काग्रेस के गुप्तदल द्वारा नरसिह राव को गद्दी पर बैठाने के कुछ ही पहले सौंपा गया। मुझसे कहा गया कि एक महिला पत्रकार के बारे मे तकनीकी इटेलिजेस एकत्र करूँ। उनकी प्रधानमत्री पद की शपथ लेने वाले से दोस्ती गर्मागर्म चर्चा का विषय थी। यह एक गदा आदेश था।

उन मौहक ऑडियो और वीडियो टेपो का क्या किया गया इसका मुझे ठीक-ठीक पता नही। पर मैं इतना अदाजा लगा सकता हूँ कि काग्रेस की अदरूनी मडली ने उन का इस्तेमाल किसी न किसी मौके पर उस आदमी के खिलाफ जरूर किया होगा जिसे नसीब ने उछाल कर देश की सबसे ऊँची गद्दी पर बैठा दिया था।

इन घटनाओ से यह स्पष्ट है कि सत्तारूढ दल ने अक्सर इटेलिजेस तत्र का दुरुपयोग किया है। इस तत्र का इस्तेमाल बहुधा राजनीतिक विरोधियो के खिलाफ किया न कि राष्ट्रीय सुरक्षा की वरीयता के लिए। व्यवस्था इस गलत रास्ते चलती रही है। आज तक कोई ऐसा तेजस्वी राजनीतिज्ञ या न्यायविद् नही हुआ जो देश के इटेलिजेस सगठनो को ससद के किसी अधिनियम के अधीन ला कर उनको इन वैधानिक सस्थानो के प्रति जवाबदेह बनाने की माँग उठाए। शक्तिशाली आतरिक व बाह्य इटेलिजेस सगठनो का व्यक्तिगत उपयोग देश के लोकतात्रिक व सवैधानिक स्वरूप के प्रतिकूल है। मैने राय बनाने वालो से इस बारे मे कुछ प्रतिक्रिया प्रकट करने के प्रयास किए तो जवाब यही मिला कि अपनी नीद क्यो हराम करते हो ' या फिर ' हम अपनी घर की नौकरानी को बेहतर अधिकार देने के लिए तो कानून नही बनाते '। तो यह है किसी गुप्तचर सगठन की हैसियत।

<27>

वापस अपने प्यार को

जो फांसी चढने के लिए पैदा हुआ है उसे कभी डुबो कर मारना नहीं चाहिए।

थॉमस फुलर

मार्च 1992 में वी.जी. वैद्य के एम.के. नारायणन से इंटेलिजेंस ब्यूरो की बागडोर संभालने के तुरंत बाद ही मेरा तकनीकी इंटेलिजेंस यूनिट से नाता समाप्त हो गया। वैद्य नाटे कद के और जरा भरे हुए बदन के थे। अपने पेशे की वह गहरी समझ रखते थे। वह चुपचाप काम करने वाले पेशेवर थे। कुछ बाद में मुझे पता चला कि वह जोखिम उठाने और पाकिस्तान के अंदर प्रखर इंटेलिजेंस कार्रवाइयॉ करने के खिलाफ न थे।

1975 में मेरी वैद्य से पहली मुलाकात हुई थी। तब वह मेरे कार्यालय में आए थे और मुझसे कहा कि उनको उत्तरपूर्व की स्थिति के बारे में जानकारी दूं। वह कोहिमा में अपनी नई जिम्मेदारी संभालने जा रहे थे। हमने कुछ घंटे साथ बिताए। इस दौरान हमने संचालन के बारे में बातचीत की।

वैद्य ने मुझे अपने कार्यालय में बुला कर पूछा कि क्या मैं तबादला चाहूंगा। मैं तकनीकी इंटेलिजेंस के यूनिट में अपने काम से खुश था। लेकिन मेरा पहला प्यार तो संचार इंटेलिजेंस ही थी, विशेष रूप से आतंकवाद, विद्रोह और पाकिस्तान के विरुद्ध संचार में।

हमने खुले दिल से मेरी आर.एस.एस. और बी.जे.पी. के कुछ नेताओं से घनिष्ठता तथा इंदिरा कांग्रेस के कुछ नेताओं से निकटता पर चर्चा की। उन्होंने जानना चाहा कि क्या मेरे लिए अपने राजनीतिक मित्रों से संबंध विच्छेद करना सभव होगा। मैंने स्वीकार किया कि मैं बचपन से ही विरोधी खिंचावों का शिकार रहा हूॅ। मैं एक बंदूकधारी कांग्रेसी का बेटा हूँ। वे अहिंसावादी सत्याग्रही नहीं थे। एक मुख्यधारा के राजनीतिक प्रवाह वाले संगठन के रूप में मैं कांग्रेस के प्रति स्वभावत: आकर्षित रहा हूॅ। विभाजन का शिकार होने के कारण मैं मुसलमानों से घृणा करने लगा। तब से आर.एस.एस. और जनसंघ मेरे आदर्श बन गए ताकि सभ्यता के नराधमों से मैं बदला ले सकूॅ। मैं अक्सर अपने आप को बॅटा हुआ पाता था।

अधिकांश महाराष्ट्रवालों की तरह वैद्य का भी किशोरावस्था में भगवा ब्रिगेड से वास्ता रहा था। उन्होंने मेरी दुविधा को समझ कर इन के साथ संबंध विच्छेद करने की मांग नहीं की। लेकिन स्पष्ट रूप से कहा कि मैं उन को निजी तौर पर इन संगठनों में होने वाली संवेदनशील घटनाओं के बारे में जानकारी देता रहूँ। खास तौर पर उन घटनाओं की जिन का संबंध राष्ट्रीय सुरक्षा से हो।

मुझे तुरंत पाकिस्तान काउंटर-इंटेलिजेंस यूनिट (पी.सी.आई.यू.) में भेज दिया गया। इस के साथ ही पंजाब के कुछ संचालनों की जिम्मेदारी भी मुझे सौंपी गई। इसके अतिरिक्त कंप्यूटर और उपग्रह संचार विभागों के निरीक्षण का काम भी मेरे पास था।

* * * *

जब मैं अपने प्रिय यूनिट में वापस आया, भारत की युद्धभूमि में सिलसिला काफी बदल चुका था।

कांग्रेस के गुप्त दल ने पी.वी. नरसिंहराव को निर्देश दिया कि वह अपना बोरिया-बिस्तर खोलें और साउथ ब्लॉक की प्रधानमंत्री की कुर्सी संभालें। उनका काम रात की चौकीदारी का था। उसके बाद उनको सोनिया गाँधी या गुप्तदल के किसी क्षत्रप के लिए आसन खाली करना था जो सत्ता के क्षेत्रीय सौदागरों को ज्यादा भाता हो। नरसिंहराव कुछ असाध्य समस्याओं के साथ कुर्सी पर बैठे। संसद में उनके पास स्पष्ट बहुमत नहीं था। उन को सहयोगियों और दलबदलुओं की बडी जरूरत थी।

अपने ही नागरिकों के विरुद्ध पंजाब में लडी जा रही भारत की लडाई अभी जीती नहीं जा सकी थी। पाकिस्तान अभी भी हथियार भेज रहा था और दिशाहीन आतंकवादियों को प्रशिक्षण दे रहा था। पंजाब अभी भी सुलग रहा था। के.पी.एस. गिल की निष्ठुर पुलिसिया कार्रवाइयाँ कानून की सीमा तक ही नहीं रह गई थीं। पुलिस, सेना और इंटेलिजेंस एजेंसियाँ भी आतंकवादियों की ही तरह हत्या, बलात्कार,लूटपाट, अमानवीय यातनाएँ देने और धन इकट्ठा करने में लगी हुई थीं।

कश्मीर का अखरोट भी धधकती आग में ही था जिसमें पाकिस्तान और उस के शासन का भयावह संगठन इंटर सर्विसेज इंटेलिजेंस और ईंधन झोंक रहा था। पुरानी गलत नीतियों को इंदिरा गाँधी और राजीव गाँधी ने और भी गलत तरीके से लागू किया। नतीजा यह हुआ कि राजीव गाँधी के अपने विरोधी वी.पी. सिंह को सत्ता सौंपने से बहुत पहले ही हालत और खराब हो चुकी थी। कश्मीरी उग्रवादियों ने नई इंतिफादा छेड़ दी थी। आई.एस.आई. समर्थित इस मुहिम से पाकिस्तान की राजनीतिक विजय साफ उजागर होती थी। इस इस्लामी देश ने अफगान अनुभव से सीख लिया था कि गहरा धार्मिक पुट देकर चलाया जाने वाला कम तीव्रता का छद्मयुद्ध कश्मीर को प्राप्त करने का कम खर्चीला तरीका है।

असम और पंजाब में राजनीति प्रेरित हिंसक आंदोलन के बीच इंदिरा गाँधी ने 1983 में कश्मीर विधानसभा चुनावो को व्यक्तिगत प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया था। फारूख अब्दुल्ला की नेशनल कांफ्रेंस ने 75 सीटों में से 46 ले कर कांग्रेस को बुरी मात दी थी।इंदिरा गाँधी ने इस हार को शालीनता पूर्वक स्वीकार नहीं किया। गुल-ए-कर्फ्यु के नाम से मशहूर जी.एम. शाह की अंतर्वेला ने इंदिरा गाँधी के अपरिष्कृत राजनीतिक व्यक्तित्व को उजागर दिया। इससे गलत नीतियों की दरार बढ़ कर और भी चौड़ी हो गई। 1987 के चुनावों में राजीव गाँधी और फारूख अब्दुल्ला ने चुनावों में खुली धांधली मचाई। इस से अलगाव की भावना और भी भड़की।

नरसिंह राव की सरकार निश्चय ही पाकिस्तान के छद्मयुद्ध की चुनौतियों का सामना करने लायक न थी। वहाँ की जनता और रणनीतिक भूमि की समस्याओं का जवाब सिर्फ सैन्यबल तो न था।

पाकिस्तान ने भी बेनजीर भुट्टो और नवाज शरीफ के तौर पर लोकतांत्रिक अंतराल के प्रयोग किए थे। लेकिन जिया उल हक के शासन ने पाकिस्तान की आत्मा के स्वरूप को सदा के लिए बदल डाला था। पाकिस्तान की नागरिक प्रशासनिक सेवा, सशस्त्र सेना और आई. एस.आई. ने देश का अपहरण कर लिया। बेनजीर या नवाज शरीफ की इतनी ताकत नहीं थी कि वे पाकिस्तानी समाज के विभक्तीकरण की प्रक्रिया को उलट सकते या भारत के साथ संघर्ष का रुख मोड पाते।

जिया उल हक ने आई.एस.आई को समानांतर शासन के रुतबे तक पहुँचा दिया। इस से जिया का अफगानिस्तान को अपना अनुयायी बनाने का मकसद पूरा होता था। उन्होंने इस संगठन को यह छूट भी दे दी कि वह पंजाब और कश्मीर की गलत नीतियों का लाभ उठाते हुए आग की तपिश का रुख भारत की ओर मोड दे। एक अनुमान के अनुसार आई.एस.आई. ने अकेले पश्चिमी क्षेत्र में ही छद्मयुद्ध चलाने के लिए प्रतिवर्ष 50 लाख अमेरिकी डालर खर्च किए। इस में से अधिकांश पैसा अफगानिस्तान से बचा हुआ था या फिर ड्रग्स की कमाई थी।

नरसिंह राव उस समय कुर्सी पर बैठे जब हिंदू उग्रवाद पनप रहा था। इसका उद्देश्य संघ परिवार को एक वैकल्पिक राजनीतिक मंच प्रदान करना था। अंधेरे के ये चौकीदार धन के कथित घोटालों के बीच हिचकोले खाते हुए, हिदुत्व के हिमायतियों के प्रति अनिर्णय की स्थिति बना कर और राजीव गॉधी की विधवा के प्रति विरोध बना कर समय गुजारते रहे। वह स्वामियों-संतों और जोड-तोड के माहिर सलाहकारों पर निर्भर थे।

बी.जे.पी. ने जून 1989 में पालमपुर (हिमाचल) में राम जन्मभूमि पर एक प्रस्ताव पास किया था। उसके बाद संघ परिवार और उनके सहयोगियों ने पीछे मुड कर नहीं देखा। 1989 के चुनावों में उस ने एक बडी छलांग लगाई। 1992 मे कुल वैध मतों का 20 प्रतिशत और 120 सीटें ले कर उसने नाटकीय सफलता हासिल की। अब यह सचमुच कांग्रेस के एक राष्ट्रीय विकल्प के तौर पर उभर कर सामने आई थी। हिदू उत्थान स्पष्ट दिखाई दे रहा था। किसी करिश्माई राष्ट्रीय नेता के अभाव में काग्रेस भारत को वापस सवैधानिक पटरी पर लौटाने के लिए लडखडा रही थी। वी पी के मंडल कार्यक्रम और संघ परिवार के कमंडल कार्यक्रम के कारण जो क्षति हुई थी उस ने भारत की अंतर्रात्मा के लिए खतरा पैदा कर दिया था। पी. वी. नरसिंहराव तो राजनीति की रेल में सवार एक यात्री की तरह थे। वह इस सडांध को मिटाने में असमर्थ थे।

अपनी आंतरिक राजनीतिक नीतियों को आगे बढाते समय कांग्रेस और बी.जे.पी. दोनों ही क्षेत्रीय रणनीतिक मुद्दों और और विश्व की रणनीतिक हलचलों को समझने में असफल रहीं। नई दरारें पैदा करने से पहले वे वर्तमान भारतीय विपथगमन का लाभ उठा कर पाकिस्तान द्वारा किए जा रहे हस्तक्षेप की तीव्रता का अनुमान लगाने में भी असफल रहीं। भारत के राजनीतिक नेताओं ने इस बात पर विचार तक नहीं किया कि इस्लामी जिहादी शक्तियों ने पाकिस्तान के अंदर एक राष्ट्र जैसा स्तर ही पा लिया था और अंतर्राष्ट्रीय इस्लामी आतंकवादी शक्तियों ने विश्वस्तर पर इस्लाम के शत्रु जाहीलिया के विरुद्ध एक बृहद योजना तैयार कर रखी थी।

हिंदुत्व का आवेश बढ़ने और सघ परिवार के राजनीतिक एजेंडे की देश भर के मुस्लिम सगठनो में तीव्र प्रतिक्रिया हुई। इसने पाकिस्तानी व्यवस्था को धर्मनिरपेक्ष भारतीय मुसलमानो को भी कट्टर बनाने की अपनी योजना को लागू करने का मौका दे दिया। आई एस आई ने अपने बनाए कट्टर सगठनो को निर्देश दिया कि वे भारतीय मुसलमानो मे पैठ बना कर भारत और नेपाल, बाग्लादेश जैसे उसके पडोसी देशों मे विध्वस व विघटन के माड्यूल स्थापित करे। दरअसल यह पाकिस्तानी व्यवस्था द्वारा खुफिया घेराव करने की कार्रवाई थी।

सघ परिवार और बी जे पी के अपने मित्रों के साथ चर्चा करने से मुझे स्पष्ट हो गया कि वे लोग चुनावी लाभ के लिए राम जन्मभूमि कार्ड का इस्तेमाल करने को कटिबद्ध है। मैंने अयोध्या मे मस्जिद तोडने का बहुत विरोध किया और उनको समझाने की चेष्टा की कि ध्यान आकर्षित करने के हथकडो की अपनी सीमाएँ होती है खास तौर पर तब जब कि आप धर्म और प्रेम जैसी मानव भावनाओ के साथ खेल रहे हो। उन मे से अधिकाश, विशेषत के एन गोविंदाचार्य वेद प्रकाश गोयल राजेंद्र शर्मा एस गुरुमूर्ति और सुषमा स्वराज आदि का खयाल था कि अयोध्या की जोर पकडती मुहिम की परिणति मस्जिद गिराने मे नही होगी। इस से केवल हिंदू भावना बनेगी जिसका चुनावी लाभ पार्टी को होगा।

मैंने आई बी निदेशक को अपनी चिंता जताई। मैंने कम से कम एक बार राजेंद्र शर्मा के सामने यह तर्क रखा कि मस्जिद गिराने से निश्चय ही साप्रदायिक भावनाए भडकेगी और पाकिस्तान की अस्थिर सरकार जरूर बदले की कार्रवाई करेगी।

सघ परिवार के दिग्गजो से बातचीत होने पर मुझ अदाजा लग गया कि उन्होने परिवार के हर भाग को अलग-अलग काम सौंप कर कई तहो की योजना बनाई है। वी एच पी, बजरग दल और दूसरे सबधित सगठनो को विवादित ढाचे को गिराने का काम सौपा गया। उनके स्वयसेवको को विशेषज्ञो ने अलग अलग स्थानो पर इसका प्रशिक्षण दिया।

बी जे पी के नेताओ को धार्मिक उन्माद से मिश्रित अपील वाले शब्दाडबर का राजनीतिक मुखौटा ओढने का काम सौंपा गया। अटल बिहारी वाजपेयी और एल के आडवाणी जैसे नेता योजना के नरम स्वरूप की अभिव्यक्ति को ले कर चले। पर इनमे से अधिकाश को एक विशेष हिंदू पर्व के निकट की तारीख पर ढॉचे के विध्वस वाली योजना की जानकारी थी। सघ परिवार मुस्लिम शासन वाली जूनागढ रियासत मे स्थित सोमनाथ मदिर को महमूद गजनवी द्वारा सात बार तोडे जाने का बदला लेने पर आमादा था। परिवार के मेरे मित्रो का कहना था कि अगर सभव हो तो वे भी बाबरी मस्जिद को सात बार तोडे। जब मैने उन मे से कुछ से इस पागलपन के खेल को रोकने की अपील की तो वे बोले कि यह तो आस्था का मामला है।

इस बीच उमा भारती और गोविंदाचार्य मनोभावनाओ के गभीर दबाव से ग्रस्त थे। उन के व्यक्तिगत सबध पूर्ण रूप से प्रेम और स्नेह के रूप मे पल्लवित हो चुके थे। मैं और मेरी स्वर्गीय पत्नी इन दोनो के निकट सबधो के साक्षी थे। यह उनके लिए दुर्भाग्य की बात ही थी कि दक्षिण भारत का ब्राह्मण और मध्यप्रदेश की आदिवासी नारी निकट भविष्य मे वैदिक मत्रोच्चार के साथ पवित्र अग्नि के सात फेरे ले कर एक नही हो सकते थे। आर एस एस ने इस सबध की अनुमति नहीं दी थी क्योंकि गोविंद प्रचारक थे। बी जे पी ने इस नाजुक घड़ी में जब कि पार्टी सत्ता के लिए निर्णायक प्रयास कर रही थी किसी और तरफ ध्यान देने की

इजाजत नही दी थी। उमा भारती को साध्वी ऋतभरा के साथ मिल कर राम जन्मभूमि आंदोलन को और सबल बनाने का काम सौपा गया था। इस युगल की पीडा से हमे भी दुख पहुँचा था।

एक और बात जिसने मुझे उन दिनो आश्चर्य मे डाल दिया वह थी मुरलीमनोहर जोशी और गोविदाचार्य के बीच विरोध की कटुता। उनके सबध अटल बिहारी वाजपेयी के साथ भी बहुत अच्छे न थे। गोविदाचार्य की जमीनी राजनीतिक के प्रति सूझ-बूझ को एल के आडवाणी भी कई बार नही समझ पाते थे। मेरी समझ मे यह आया कि शीर्ष नेता इस आदमी की विलक्षण प्रतिभा से खिन्न थे। उन्हे मौका मिलता तो वह उन नेताओ की तरह वयोवृद्ध होने से पहले ही उन का स्थान ले सकते थे। लेकिन उन्होने इस बारे मे मेरे सूक्ष्म सकेतो को यह कह कर नकार दिया कि सघ एक परस्पर गुथा हुआ परिवार है और उनको किसी तरफ से कोई अदेशा नही है। बाद की घटनाओ ने सिद्ध कर दिया कि उनके पतन का कारण उनकी प्रतिभा ही थी।

इटेलिजेस ब्यूरो ने सघ परिवार और उसके सहयोगिया की असली मशा के बारे मे पर्याप्त सबूत इकट्ठे कर लिए थे। सारे सभव परिदृश्य क बारे मे नरसिह राव और उनके गृहमत्री को निरतर जानकारी दी जाती रही। अपने समझौते के मुताबिक जो कुछ भी जानकारी या आकलन मै जुटा पाता उसे अपने निदेशक को बताता रहता। मुझे सघ परिवार या उसके हिदू आदर्शो से विरक्ति न थी। मै तो उन आक्रामक नेताओ की उस योजना से असहमत था जो उन्होने केवल राजनीतिक सत्ता हथियाने के लिए बनाई थी। मुझे इस मे तनिक भी सदेह न था कि हिदू उग्रवाद के भडकने की प्रतिक्रिया इस्लामी ताकते देश के अदर से भी दिखेगी। यह देश के लिए दुर्भाग्य का दिन होगा।

उस उकसाने वाली धटना के कुछ ही पहले मै वेद प्रकाश गोयल के बेटे पीयूष गोयल के साथ एल के आडवाणी से मिला। वह एक चतुर राजनीतिज्ञ तो है ही। उन्होने अपने अंतर्भूत इरादो और मेरे जिज्ञासापूर्ण प्रश्नो के मध्य एक महीन रेखा खीचते हुए अयोध्या मे प्रतीकात्मक कार सेवा के जन-नारे का राग अलापने की कोशिश की। उन्होने आश्वासन दिया कि सयमित आवेश का उद्देश्य हिदू चेतना जागृत करना है। निस्सदेह इस ईधन का प्रयोग बी जे.पी. के राजनीतिक रॉकेट को दागने के लिए किया जाएगा। उनके धीमे शब्द उनके और सघ परिवार के असली इरादे को छिपा नही पा रहे थे। उनकी आखे सब राज खोल रही थी। मै इस निष्कर्ष के साथ लौटा कि आडवाणी भी दूसरे राजनीतिज्ञो की तरह किसी बात को छिपाने की कला मे माहिर है। मुझे इस मे सदेह न रहा कि सघ इदिरा गॉधी के आपात्काल लागू करने और स्वर्ण मदिर मे सेना भेजने से भी बडी गलती करने जा रहा है। इस सदमे ने मुझे उदास कर दिया और मै एक और दुर्भाग्यपूर्ण घटना देखने के लिए तेयार हो गया।

<28>

सार तत्व की तलाश में

यह उक्ति कि सत्य की उत्पीडन पर सदा विजय होती है,
एक मीठा मिथ्याचरण है जो लोग एक दूसरे को देते रहते हैं
लेकिन सभी अनुभव जिसके विरुद्ध जाते है।

-- जॉन स्टूअर्ट मिल

पाकिस्तान काउंटर-इंटेलिजेंस यूनिट (पी सी आई यू.) के साथ मेरा दोबारा संबंध काफी तप्त अनुभव रहा। इससे पहले कि मैं इस विषय पर चर्चा करूँ, उस समय उपमहाद्वीप व क्षेत्र की स्थिति पर एक नजर डालना बेहतर होगा।

राजीव गॉधी की हत्या से देश मे एक राजनीतिक शून्य उत्पन्न हो गया था। काग्रेस को उत्तर भारत ने एक बार फिर अस्वीकार कर दिया था। लेकिन राजीव के दुखद निधन के कारण मिले सहानुभूति वोट ने उसे कुछ जीवनदान दे दिया। कुछ देर को ऐसा लगा कि कांग्रेस सहानुभूति या नकारात्मक वोटो के दम पर जीत सकती है। बहरहाल बुरी तरह विभाजित और पतवारहीन पार्टी ने दक्षिण के एक वरिष्ठ अवकाश लेते राजनीतिज्ञ पी वी नरसिह राव को राजीव का उत्तराधिकारी स्वीकार कर लिया। पुराने नेहरू-गॉधी अनुयायियो ने सोचा कि यह एक अस्थायी समझौता है। वे चाहते थे कि सोनिया गॉधी आगे आएँ। लेकिन उस समझदार महिला ने इसके विरुद्ध निर्णय लिया। वह जानती थी कि भारत और यहॉ तक कि कांग्रेस के क्षेत्रीय नेता भी किसी विदेशी मूल के व्यक्ति को भारत का प्रधानमत्री मानने को तैयार नही है। जो भी स्थिति थी। थोडे से अल्पमत वाली काग्रेस सरकार ने राव के नेतृत्व में केंद्र की कमान संभाली। हालाकि लडने व झगडने वाले धडे अब भी चाहते थे कि सोनिया गाँधी पार्टी का नेतृत्व करें।

एक वरिष्ठ नेता और विद्वान राव राजनीतिक साजिशो से खूब परिचित थे। वह सत्ता की दलाली और भारतीय किस्म के लोकतंत्र के विपणन से भी परिचित थे। वह लोकसभा में आंकड़ों की कमी से चिंतित थे। उसे पूरा करने के लिए उन्होने अपनी दूरबीन झारखंड मुक्ति मोर्चा जैसी छोटी पार्टियों की तरफ घुमाई। उन्होने अजीत सिह और उनके सगी साथी जन्मजात दलबदलुओं पर भी ध्यान केंद्रित किया। तात्रिक चद्रास्वामी और एक अन्य ज्योतिषी एन.के. शर्मा ने इस काम में उनका साथ दिया। इनको राव का राजज्योतिषी भी बताया जाता था। असल में शर्मा भी चंद्रास्वामी की तरह समस्यानिवारक ही थे। राव के बूटा सिंह, सतीश शर्मा तथा उनके सरीखे दूसरे सहायको को यह काम सौंपा गया कि वह इधर-उधर सूघें, चारा डालें और आयाराम-गयाराम की तलाश करें।

कांग्रेस के मेरे एक करीबी दोस्त ने मुझ से कहा कि मैं अजीत सिंह के एक संग्रहकर्ता से अपनी निकटता का लाभ उठाते हुए उसका काम करवा दूँ। मैंने उसे दो कारणों से मना कर दिया। एक तो वह सोनिया गाँधी को गच्चा देना चाहता था। दूसरा राव की खुशामद कर के मंत्री की कुर्सी पाने के चक्कर मे था।

मुझे प्रधानमंत्री की प्रवंचक प्रवृत्ति पसंद नहीं आई। उन्होंने असम के एक राजनीतिबाज को जिस तरह मुझ पर दबाव डालने के लिए लगाया वह मुझे कतई अच्छा नहीं लगा। मैंने शायद कभी किसी राजनीतिक छुटभैये के हाथों खुद को इतना अपमानित महसूस नहीं किया। मैंने उस धौंसिए को सीधे-सीधे झिडक दिया कि वह अपनी दादागिरी असम में जा कर किसी को दिखाए। राव घोटालों से घिरे थे। उनकी चंद्रास्वामी से निकटता ने उनकी छवि को खराब कर दिया था। इसके बाद शेयर बाजार के लुटेरे हर्षद मेहता का मामला सामने आया। व्यक्तिगत तौर पर मेरा राव के बारे में आकलन यह था कि वह भारतीय राजनीति में सब से बढ़कर बटोरने वालों मे से थे। उनके कथित भ्रष्टाचार के कारनामों से उनकी अपनी जेब भरती थी न कि पार्टी का कोष। उनकी विद्वता में चमक तो थी लेकिन काले नाग की सी।

हालांकि राव के लिए मेरे मन में वितृष्णा थी लेकिन अपने मित्र के नैतिक दबाव में आ कर मैंने उसका पश्चिमी उत्तर प्रदेश के इस सग्रहकर्ता से सपर्क स्थापित करवा दिया। लेकिन सतीश शर्मा और चंद्रास्वामी ने मेरे मित्र को इस जोड-तोड से बाहर कर दिया। जब तक मैं उस अनौपचारिक समझौते की बातचीत में था, मुझे बताया गया था कि अमेरिका में पढा दलबदल में माहिर जाट चौधरी 50 करोड से कम में राजी नहीं होगा। मैंने प्रधानमंत्री के दूत के इस अनुरोध और इस बारे में मैं जो रवैया अख्तियार कर रहा था, वह सब निदेशक आई. बी. को बता दिया था। मेरी बात सुन कर वह खुश नहीं हुए। उन्होंने मुझे आगाह किया कि मैं नए प्रधानमंत्री से व्यवहार करते हुए बहुत चौकस रहूँ। वह ' फासी पर चढाने वाले दोस्त ' वाली ख्याति रखते हैं। उनका विश्वास करना उचित नहीं। वैद्य महाराष्ट्र से थे। उनको बेहतर जानकारी होनी ही चाहिए थी। क्योंकि राव ने अपने आरंभिक वर्ष महाराष्ट्र में गुजारे थे और वहां उनकी आर.एस.एस. वालों के साथ काफी खीचतान हुई थी।

राव झारखंड मुक्ति मोर्चा और कुछ दूसरे फुटकर गुटों व व्यक्तियों का समर्थन खरीद कर संसद में बहुमत जुटाने में कामयाब हो ही गए। बहुत से रसोइयों ने मिल कर राव के लिए यह शोरबा तैयार किया था। उन मे से कुछ ने बाद में राव के साथ संवैधानिक औचित्य को क्षति पहुंचाने के लिए कानूनी कार्रवाई का सामना किया।

अनेक वित्तीय घोटालों और घूसखोरी के आरोपों से घिरे रहने के बावजूद राव डावांडोल स्थिरता बनाए रखने में कामयाब रहे। उनके समय मे किन्हीं कारणों से पंजाब में सिख आतंकवाद में भी कमी आई। दरअसल यह एक प्राकृतिक मृत्यु थी न कि शासन तंत्र की दी तत्काल मृत्यु।

1992 तक सिख आतंकवादी गिरोहों से पाकिस्तान का मोहभंग हो गया था। उसने समझ लिया था कि पंजाब की उथल-पुथल को सैद्धांतिक रूप से अधकचरे,गुस्सैल,भूखे और अपराधीकृत युवकों को प्रशिक्षण दे कर बरकरार नहीं रखा जा सकता। वह किसी ऐसे क्षेत्र में सीधा हस्तक्षेप भी नहीं करना चाहता था जहाँ मुसलमानों की संख्या नगण्य हो। जरनैल

सिंह भिंडरांवाले ने जो नफरत की ज्वाला भडकाई थी वह करीब-करीब ठंडी पड गई थी। पाकिस्तान की सरपरस्ती में स्वतत्र पंजाब की पेंचदार राजनीति वाला सिद्धांत सिखों की समझ से बाहर था जो अभी तक विभाजन के घावों को भूले न थे। आंदोलन कुछ समय तक घिसटता रहा जब तक कि उसे एक काबिल पुलिस प्रमुख और उनके दृढसंकल्प राजनीतिक आकां ने सख्ती से कुचल नहीं दिया। तब तक पाकिस्तान को भी कत्ल और खूनखराबे के काम के लिए जम्मू-कश्मीर के रूप में एक बेहतर मैदान मिल गया था।

भारतीय कश्मीर में पाकिस्तान की नई मुहिम उसके अफगानिस्तान में लिप्त होने और सिख उग्रवाद के साथ खींचतान के जमाने में ही शुरू हुई। इस मुहिम को इंटर सर्विसेज इंटेलिजेंस के बनाए मुजाहिदीन सगठनों के कारण और भी बल मिला। ये संगठन दरअसल अफगानिस्तान में अमेरिका के शीतयुद्ध के शत्रु का मुकाबला करने के लिए गठित किए गए थे। इनका मकसद रणनीतिक और आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण अफगानिस्तान पर पाकिस्तान का शिकंजा कसना भी था।

जिया के शासन के दौरान पाकिस्तान का तेज़ी से इस्लामीकरण हुआ और शिया व सुन्नियों के बीच मतांतर की लडाई भी बढी। इन दो संप्रदायों की सशस्त्र दलबंदियों को सऊदी अरब (वहाबी), इराक (सुन्नी) और ईरान (शिया) ने बढावा दिया। कुछ समय के लिए तो पाकिस्तान इराक और ईरान के बीच युद्ध का एवजी मैदान बन गया था। अफगान युद्ध के परिणाम और संप्रदायों का यह संघर्ष लोकतांत्रिक शक्तियो के लिए समस्या बन गया। बेनजीर भुट्टो (1990-92 और 1997-98) तथा नवाज शरीफ (1990-93 और 1997-99) दोनों ही लोकतांत्रिक शक्तियों को सगठित करने मे असफल रहे। पाकिस्तानी सेना, पाकिस्तानी शासन के पाले तालिबान तत्व, अल कायदा, अल अस्सुबह और आई.एस.आई. ने मिल कर एक लोमहर्षक वातावरण बना दिया था। उनकी मंशा अफगानिस्तान में मध्यकालीन इस्लामी राज्य की पुनर्स्थापना करने, अपने यहॉ संप्रदायों के सघर्ष को और तेज करने तथा भारत के विरुद्ध छद्मयुद्ध को और बढ़ावा देने की थी।

1992 के बाद ओसामा बिन लादेन के नेतृत्व वाले अंतर्राष्ट्रीय इस्लामी बलों ने सुन्नी मुजाहिदीन संगठनों के साथ पक्के रिश्ते जोड़ लिए थे। ये थे हिजब-उल-मुजाहिदीन, हरकत-उल-अंसार, सिपह-ए-सहबां, मर्कज अल-दावा-अल इरशाद, लश्करे तोएबा तथा बीसियों दूसरे फुटकर जिहादी संगठन। आई.एस.आई. ने अपनी कार्रवाइयों का दायरा चेचन्या, बोस्निया, कोसोवो और फिलीपीन्स तक बढा लिया था। चीन के जिंग्यांग प्रांत में ईगूर ईस्ट तुर्किस्तान इस्लामी आंदोलन (ई.टी.आई.एम.) और उजबेकिस्तान के इस्लामी आदोलन में इसकी लिप्तता ने अंतर्राष्ट्रीय समुदाय का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। डब्लू.टी.ओ. के बमकांड ने अमेरिकी निशानों के विरुद्ध ओसामा बिन लादेन की करतूतों को स्पष्ट कर दिया था। इस ने वाशिंगटन को यह कहने को प्रेरित कर दिया कि वह पाकिस्तान को आतंकवादी देश घोषित करने पर विचार कर रहा है।

भारत कश्मीर की हत्यारी भूमि पर सेना व पुलिस की कार्रवाइयों में बुरी तरह उलझ गया था। नरसिंह राव के नेतृत्व वाली नई सरकार कश्मीर की आंतरिक समस्याओं के समाधान के लिए राजनीतिक निर्देश देने में विफल रही। पाकिस्तानी कार्रवाइयाँ पंजाब में उग्रवाद और

कश्मीर में छद्मयुद्ध के चरम पर थीं। ज्वाइंट इंटेलिजेंस नॉर्थ, ज्वाइंट इंटेलिजेंस मिसलेनियस और ज्वाइंट इंटेलिजेंस एक्स. – आई.एस.आई. के ये तीनों अंग नए क्षेत्रों में फैल गए। वे उत्तरपूर्व के आतंकवादी गुटों (एन.एस.सी.एन.आई.एम., उल्फा, बोडो और टी.एन.एल.एफ. आदि) को अपने बांग्लादेश, नेपाल और पाकिस्तान के अड्डों से सहायता प्रदान कर रहे थे।

लेफ्टिनेंट जनरल शमसुर रहमान कुलूए (मई 1989-अगस्त 1990), लेफ्टिनेंट जनरल असद दुर्रानी (अगस्त 1990-मार्च 1992), लेफ्टिनेंट जनरल जावेद नसीर (मार्च 1992-मई 1993) और लेफ्टिनेंट जनरल जावेद अशरफ खान के नेतृत्व में इंटर सर्विसेज इंटेलिजेंस, बेनजीर भुट्टो और नवाज शरीफ के लोकतांत्रिक शासन के तले खूब फली फूली।

लेफ्टिनेंट जनरल जावेद नसीर मे कठमुल्लापन कूट-कूट कर भरा हुआ था। वह जमात-ए-इस्लामी और तबलीगी जमात के सदस्य थे। वह आई.एस.आई. की अंतर्राष्ट्रीय कार्रवाइयों के लिए जिम्मेदार थे। पाकिरतान के जिहादी गुटो के अल कायदा, अल अस्सुबह व अन्य गुटों से संबध जोडने का काम उन्होंने ही किया।

दरअसल जेड.ए. भुट्टो से ले कर जिया उल हक तक पाकिस्तानी व्यवस्था के इस अत्यंत महत्वपूर्ण संगठन ने पीछे मुड़ कर कभी नहीं देखा। जिया के शासन में यह एक छद्म राजनीतिक संस्था बन गया। राजनीतिक जवाबदेही के न होने और अमेरिकी सरपरस्ती ने इसे अजेय होने की छवि दे दी थी। सेना के एक रहस्यमय नेता जनरल हामिद गुल ने आई.एस. आई. के अफगान कारनामे की योजना तो बनाई ही थी, उसने सैनिक शासन की भारतीय पंजाब और कश्मीर में कार्रवाई करने की रणनीति का प्रारूप तैयार करने में भी मदद की थी।

* * * *

मेरा डेस्क तो मुख्यतः पाकिस्तान काउंटर-इंटेलिजेंस का था। पर मैंने सारे उपमहाद्वीप व उस के निकटवर्ती भूराजनीतिक क्षेत्र में आई. एस.आई. की कारगुजारियों का अध्ययन करने की योजना तैयार की। इसके अंतर्राष्ट्रीय संपर्को व शाखा विस्तार को भी इस अध्ययन में शामिल किया गया। मैंने पाकिस्तान की भारत का ' इंटेलिजेंस घेराव ' करने की धारणा और भारत, बांग्लादेश व नेपाल में इस्लामी जिहादी आंदोलन को बढावा देने में इसकी सीधी लिप्तता के बारे में विस्तार से जानने पर बल दिया। आई.बी. निदेशक वी.जी. वैद्य को मेरे विचार पसंद आए। उन्होंने मुझे प्रोत्साहित किया कि तीन दशक पहले बनाए गए प्रपत्र से आगे गतिविधियों का दायरा बढाया जाए।

वरिष्ठ अधिकारियों के एक धडे ने आई.बी. के एक केंद्रीकृत यूनिट द्वारा पाकिस्तान की इंटेलिजेंस, विध्वंस और विघटनकारी गतिविधियों का अध्ययन करने की मेरी योजना का विरोध किया। क्षेत्रीय शाखाओं के प्रमुख इसके विरुद्ध थे कि काउंटर-इंटेलिजेंस वाला यूनिट क्षेत्रीय और विश्व स्तर पर होने वाली आई.एस.आई. की कार्रवाइयों का अध्ययन व विश्लेषण कर के उनको विफल करने के तरीके निकालने का भार संभाले। वे चाहते थे कि मैं दूतावास के गुप्तचरों को यदाकदा पकडने के पुराने रास्ते पर चलने तक अपने आप को सीमित रखूँ। उनको किसी ऐसी केंद्रीकृत यूनिट की आवश्यकता का भान नहीं था। वे तो इस बात का विरोध कर रहे थे कि कोई होशियार इस तरह का काम कर के उसका श्रेय न ले ले। मैं उनके आगे झुका नहीं। वे खुद भारत के सब से बडे दुश्मन के मुकाबले के लिए बहुत कम कुछ कर रहे

थे। मैं उनको आई.एस.आई. का संपूर्णता में अध्ययन करने की आवश्यकता के बारे में समझा नहीं पाया। लेकिन मैं उनके दबाव में भी नहीं आया। मै इस तरह के अंधेरे पाइप में रहने वाले चूहों को खूब जानता था जो सूरज की तेज रोशनी से डरते थे। मैंने आई.एस.आई. की कार्रवाइयों पर एक विस्तृत प्रपत्र तैयार करने का मन बना लिया। मैं जानता था कि मैंने कई भारी-भरकम हस्तियों को नाराज कर लिया हैं। मेरे विवेकसम्मत विचार का प्रतिरोध करने में विफल होने पर वे बुझे दिल से सहमत हो गए। वे उस दिन का इतजार करने लगे जब प्रतिकूल राजनीतिक दबाव पडने पर मैं कमजोर पड जाऊँ और वे मेरी पीठ में छुरा भोंक सकें। वी.जी. वैद्य के नेतृत्व में मैंने काउटर-इंटेलिजेस यूनिट के सचालन कौशल को नए सिरे से परिभाषित किया। मैंने उस में तकनीकी इटेलिजेंस प्रभाग से बहुत कुछ नया जोडा जिस का कि मैं कुछ समय पहले प्रमुख था। तकनीकी इटेलिजेंस के आधुनिकीकरण और अतिसक्रिय इंटेलिजेंस के तरीके अपनाने के कारण हम आई.एस आई. व एम.आई के आधा दर्जन दूतावास स्थित सचालकों को निष्क्रिय करने में सफल रहे। यूनिट सचालक गुजरात, राजस्थान,महाराष्ट्र और उत्तर प्रदेश में आई.एस आई के कई जालों का पता लगाने में सफल रहे।

दूतावास के संचालकों पर दबाव बढ गया। इसके बदले मे आई एस आई. ने पाकिस्तान में भारतीय राजनयिक कर्मियों के विरुद्ध कार्रवाई की। आई एस आई अक्सर पी.सी आई.यू. की कार्रवाइयो का बदला बर्बरता से देती थी। एक सहयोगी इटेलिजेस सगठन ने प्रधानमंत्री कार्यालय से अनुरोध किया कि मुझ से अपने काम को धीमा करने को कहा जाए। इस्लामाबाद में एक सदिग्ध भारतीय इटेलिजेस अधिकारी के साथ बर्बरता का व्यवहार होने के बाद प्रधानमत्री कार्यालय की ओर से मुझ से कहा गया कि मै धीमा पड जाऊँ और आई.एस आई. /पी.एम.आई. के संचालको के निष्क्रिय किए जाने पर उन्हे खुलेआम अवाछित व्यक्ति घोषित किए जाने की मांग न करूं। उनको चुपचाप देश से बाहर भेज दिया जाएगा। लेकिन भारतीय पक्ष पर लगाए गए इस सयम की पाकिस्तान ने अनुकूल प्रतिक्रिया जाहिर नहीं की। आई एस. आई. ने अपनी बर्बरता जारी रखी।

कुछ सीमाओं के कारण मै कतिपय महत्वपूर्ण काउटर-इटेलिजेस कार्रवाइयों की चर्चा नहीं कर सकता। पर एक भारतीय पत्रकार ने मुझे बताया कि पश्चिमी देश के एक राजनयिक के विचार से ' भारत ने बहुत समय बाद पाकिस्तान को तप्त किया है । वह सचमुच इटेलिजेंस के लिए तडप रहा है। '

इसका श्रेय मेरे उन सहयोगियों को जाता है जिन्होंने बिना किसी शिकवे के कडी मेहनत की और मेरे ' जिहादी ' रवैए को मुसकराहट के साथ सहन किया। इन युवा अधिकारियों के साथ काम करते हुए मुझे बहुत सतोष हुआ।

दिल्ली में जो प्रक्रिया लागू की गई उसके कारण भारत ही नहीं पडोसी बांग्लादेश और नेपाल में भी नई चुनौतियाँ उभरीं। आई एस आई ने भारत के लगभग सभी राज्यों में विशिष्ट इंटेलिजेंस का जाल बिछा लिया था और नेपाल व बाग्लादेश में अपने इटेलिजेंस के अड्डे कायम कर लिए थे। इसके अलावा आई.एस.आई. ने सारे उपमहाद्वीप में एक और जाल भी बिछा लिया था। इसके तहत वह भेद्य भारतीय मुस्लिम समुदाय का इस्लामीकरण कर रहा था। कट्टर मुसलमानों के मन में इस्लामी जिहाद का जज्बा वह पूरी तरह भर देना चाहता

था। इस काम में आई.एस.आई. को जिहादी मुजाहिदीन मुस्लिम संगठनों का पूरा सहयोग मिल रहा था जो पाकिस्तानी मदरसों और आई.एस.आई. के सहयोग से चलने वाले विशेष तंजीम प्रशिक्षण शिविरों से प्रस्फुटित हुए थे। भारत, नेपाल और बांग्लादेश में इस्लामी ताकतों को उग्रवादी बनाने के काम के लिए अल कायदा और उससे संबंधित संगठनों से भी लोगों को भर्ती किया गया।

* * * *

मैंने आई.बी. की पाकिस्तान काउटर-इंटेलिजेंस यूनिटों को संवेदनशील बनाने और उनको पुनर्गठित करने के प्रयास किए। इसका सहायक यूनिटों से मिश्रित सहयोग मिला। अधिकांश सहायक यूनिटों के लिए राजनीतिक इटेलिजेस उनकी असली कमाई है। उत्तरपूर्व, पंजाब और कश्मीर के उपद्रवग्रस्त राज्य इस का अपवाद हैं। राजीव गाँधी की हत्या से झकझोरे जाने के बाद तमिलनाडु लिट्टे और उसके अंतर्राष्ट्रीय संपर्कों के प्रति सचेत हो गया। लेकिन बाकी सहायक यूनिटें अपने साधनों को काउटर-इंटेलिजेंस यूनिटों को सुदृढ बनाने के लिए लगाने में दिलचस्पी नहीं रखती थीं। उनके लिए काउंटर-इटेलिजेंस की धारणा सी.आई.ए. के प्रेत और कुछ मामलों में के.जी बी के सदिग्ध मामलों तक सीमित थी। पाकिस्तान दक्षिणी राज्यों के लिए वरीयता नहीं था। काउटर-इटेलिजेंस का मतलब उनके लिए लिट्टे से होने वाले खतरे से ही वास्ता रखना था। उन में से अधिकाश ने मेरे इस तर्क पर ध्यान नहीं दिया कि पाकिस्तान अब दक्षिणी प्रायद्वीप मे तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक और आंध्रप्रदेश पर ज्यादा ध्यान दे रहा है।

मैंने सहायक यूनिटों का निरंतर दौरा किया और वहाँ अधिकारियों से बातचीत की। इसके असम, गुजरात, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र मे अच्छे परिणाम मिले। बिहार के महत्वपूर्ण यूनिट की प्रतिक्रिया बहुत धीमी थी। उसने राज्य के अदर और नेपाल में अपना जाल फैलाने में काफी समय लगाया। पश्चिम बगाल के यूनिट ने कुछ देर तो झोंके खाए फिर बांग्लादेश और नेपाल से आई एस आई. की कार्रवाइयों के प्रति उसे भी सचेत किया गया।

तमिलनाडु,आंध्रप्रदेश,कर्नाटक और केरल की सहायक यूनिटों से मुझे निराशा हाथ लगी। कुछ यूनिट प्रमुखों ने आई.एस.आई संचालकों का पता लगाने और इस्लामी उग्रवाद का अध्ययन करने के लिए कक्ष स्थापित करने के विचार की ही खिल्ली उडाई।

मैं अपने मूलभूत सिद्धांत पर डटा हुआ था। मेरे पास पर्याप्त सुबूत थे कि आई.एस.आई. ने केरल, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और महाराष्ट्र के रक्षा प्रतिष्ठानों में संदिग्ध घुसपैठ बना रखी है। मैंने इस बारे में भी महत्वपूर्ण विवरण इकट्ठा कर लिया था कि आई.एस.आई. प्रायोजित कुछ जिहादी गुटों ने आंध्र प्रदेश, केरल और तमिलनाडु के कुछ मुस्लिम बहुल क्षेत्रों में अपने सैल बना लिए हैं। उन्होंने इस्लामिक स्टूडेंट्स मूवमेंट आफ इडिया (सिमी), अल उम्मा और इस्लामिक डिफेंस कमेटी जैसे संगठनों की आड में अपना काम भी शुरू कर दिया था। इन्होंने आई.एस.आई. प्रायोजित शिविरो में प्रशिक्षण के लिए अपने स्वयंसेवकों को पाकिस्तान भेजना भी शुरू कर दिया था। 1992 के बाद की घटनाओं ने सिद्ध कर दिया कि आई.एस.आई.,अल कायदा और इस्लामी उग्रवाद ने दक्षिणी प्रायद्वीप को अपना लक्ष्य बना लिया था और उन से राष्ट्रीय सुरक्षा को गंभीर खतरा था।

नेपाल और बांग्लादेश में पाकिस्तान की सफलता ने उस के लिए भारत में अपने संचालन के लिए एजेंट और सामग्री भेजने के लिए राजमार्ग खोल दिया। बांग्लादेशी सेना व इंटेलिजेंस एजेंसियाँ पाकिस्तान की हितरक्षा में लगी रहती थीं। पी.आई.बी. ने उत्तरपूर्व भारत के विद्रोही गुटों के साथ आरंभिक संपर्क अपने ढाका के केंद्र से बनाया। लेकिन 1960 के बाद आई.एस. आई. ने यह संचालन अपने हाथ में ले लिया। नगा, मैतेई, उल्फा, मिजो, बोडो और त्रिपुरा के विद्रोही / आतंकवादी गुटों के साथ पाकिस्तानियों और चीनियों की साठ-गांठ भलीभांति उजागर हो चुकी है और उसे कुछ हद तक निष्क्रिय भी किया गया है। विद्रोहियों के साथ आई.एस.आई. की सांठ-गांठ में शामिल रहे हैं : पूर्वी पाकिस्तान / बंग्लादेश में सुरक्षित आवास दिलाना, गोरिल्ला युद्ध का प्रशिक्षण देना, आधुनिक शस्त्रास्त्र देना, यात्रा व बैकों की सुविधा,साठ के दशक के आरंभ में चीनी अधिकारियों के साथ संपर्क बनाने में मदद करना और 90 के दशक के अंत में पश्चिम के कई मानवाधिकार संगठनों से संपर्क साधने में सहायता करना। इन दिनों ये कार्रवाइयाँ बाग्लादेश के डी.जी.एफ.आई.,एन.एस.आई. और बी.डी.आर. के सहयोग से चलाई जा रही है।

* * * *

जे.आई.एम. के बांग्लादेश में जमाते इस्लामी, इस्लामिक छात्र शिबिर (आई.सी.एस.), इस्लामिक ओइकियो जोते (तीसरी महत्वपूर्ण राजनीतिक शक्ति),अल बदर,हरकत उल जिहाद अल इस्लामी (एच.यू.जे.आई.), और अल कायदा से संबद्ध अल जिहाद जैसे शक्तिशाली मित्र हैं। इनके अलावा रोहिंगिया विद्रोहियों के दो गुट(म्यांमार के अराकान मुसलमान) बाग्लादेशी व पाकिस्तानी संचालकों के साथ खुलेआम मिल कर चलते हैं। रोहिंगिया की आकांक्षा म्यांमार के अराकान क्षेत्र में स्वतंत्र मुस्लिम राज्य कायम करने की है।

आई.सी.एस. को आई.एस.आई खुले हाथों पैसा देती है। इस्लामी छात्र शिबिर छः क्षेत्रीय डिवीजनों और 200 सब डिवीजनों में सक्रिय है। यह इटरनेशनल इस्लामिक फेडरेशन आफ स्टूडेंट्स ऑर्गनाइजेशन (आई.आई.एफ.एस.ओ.) से सबद्ध है। इसके भारत के सिमी से भी मज़बूत भाईचारे वाले संबध हैं।

हूजी का 20000 का जबरदस्त दस्ता है। इसे आई.एस.आई. और अल कायदा का सब से शक्तिशाली सहयोगी माना जाता है। बडी संख्या में इसके स्वयसेवक असम और पश्चिम बंगाल में घुसपैठ कर चुके हैं। इनका उद्देश्य वहां इस्लामी मॉड्यूल स्थापित करना और भेद्य स्थानीय मुसलमानों को सशस्त्र संघर्ष के लिए तैयार करना है। कुछ वर्षों में जिम और जिक्स को असम में उल्लेखनीय सफलता मिली है। वहाँ आधा दर्जन से अधिक उग्रवादी व जिहादी गुट सक्रिय हैं। इनको अक्सर नागरिक व राजनीतिक गुटों का समर्थन मिलता रहता है।

बांग्लादेशी हूजी रंगरूटों को नेपाल के रास्ते पाकिस्तान ले जा कर उनको गुरिल्ला व आतंकवादी बनाने के लिए प्रशिक्षण दिया जाता है। इन में से बहुतों को बहुराष्ट्रीय इस्लामी ताकतों आई.एस.आई. और अल कायदा के अफगानिस्तान, बोस्निया और चेचन्या के संचालन क्षेत्रों में भेजा जाता है।

दक्षिणपूर्व एशिया के विश्लेषकों की हाल की रिपोर्टों से पता चलता है कि बांग्लादेश ने अल जवाहिरी सरीखे अल कायदा के महत्वपूर्ण सरगनों को पनाह दी है। अनुमान है कि

बांग्लादेश में अल कायदा के पाँच शिविर हैं। ये सिल्हट, चिटगाँव और कोमिल्ला जिलों में हैं। इसी तरह मलेशिया और इंडोनेशिया के जिमाह इस्लामिया के तथा मोरो इंडिपेंडेट लिबरेशन आर्मी (एम.आई.एल.ए.) के अनेक सचालकों को बांग्लादेश में शरण मिली है। उन्होंने पाकिस्तान और अफगानिस्तान जाने के लिए ढाका को पडाव की तरह इस्तेमाल किया है। इस की विश्वसनीय रिपोर्टे मिली है कि अल कायदा के रोहिंगिया मुसलमानों से संबंध हैं और उत्तरी थाइलैंड के मुस्लिम विद्रोहियों को बांग्लादेश ने पनाह दी है।

* * * *

1985 और 2001 के बीच आई.एस.आई. ने नेपाल में रणनीतिक प्रगति की। भारत के नेपाल के साथ उत्साहहीन राजनयिक संबंधों ने पाकिस्तान को इस हिंदू हिमालय राज के साथ मजबूत राजनयिक व आर्थिक रिश्ते जोडने में मदद की। आई एस.आई., विशेषरूप से जे.आई. एम. और जे.आई.एक्स. संचालक सिख आतंकवादियों और कश्मीर के इस्लामी संचालकों को सहायता करते रहे हैं। नेपाल और भारत के इंटेलिजेंस सचालकों ने कई कार्रवाइयों के दौरान इनकी करतूतों का पर्दाफाश किया है। इन में एक राजनयिक के घर से आर.डी.एक्स. का बरामद होना, भारत की जाली मुद्रा का बरामद होना और राज्य की राजधानी में आई.एस.आई. के कई सुरक्षित घरों को निष्क्रिय करना शामिल है। एक विश्वसनीय साप्ताहिक 'इंडिया टुडे' के 12 जून 2001 के अंक में आई.एस.आई. की नेपाल में गतिविधियों तथा इस हिंदू राज में इस्लामी कठमुल्लापन के पनपने के बारे में कई रहस्योद्घाटन किए गए। नेपाल के झापा, इलाम, तापले गंज और पंचथार को सुरक्षित अड्डों के रूप में इस्तेमाल करने वाले आतंकवादी संगठनों में उल्फा, एन.डी.एफ.बी., पश्चिम बंगाल का के.एल.ओ. और त्रिपुरा का एन.एल.एफ. टी. हैं।

नेपाल के माओवादी आंदोलनकारियों के बारे में पता चला है कि उन्होंने पश्चिम बंगाल, बिहार और उड़ीसा के एम.सी.सी. और पी.डब्लू. गुटों से संपर्क जोड रखे हैं। आंध्र प्रदेश, झारखंड और महाराष्ट्र को आक्रांत करने वाले वाम-आतंकवादी धीरे-धीरे नेपाल के माओवादियों से अपने संबंध बढा रहे हैं। असल में नेपाल, भारत, बांग्लादेश और श्रीलंका के माओवादियों की एक बैठक में ही माओवादी दलों व संगठनों की समन्वय समिति का गठन किया गया था।

हाल ही में मिली कुछ रिपोर्टों से पता चलता है कि जिम और जिक्स माओवादियों की आर्थिक व हथियारों से सहायता कर रहे हैं। उनका उद्देश्य वहाँ और अधिक मैत्रीपूर्ण सरकार को स्थापित करना तथा वहाँ की निष्ठवान हिंदू जनसंख्या का अहिंदूकरण करना है। नेपाल के सी.पी. गुरेल (विदेशी मामले), कृष्ण बहादुर महारा (सशस्त्र गुटों का प्रमुख) व हिसिला यानी जैसे माओवादी नेताओं और कराची, ढाका व पटना के आई. एस.आई. संचालकों की गुप्त बैठकों की खबरों को अत्यंत गंभीरता से लिया जाना चाहिए। नेपाल के माओवादियों तथा भारतीय एम.सी.सी. व पी.यू. के पेरू के सेंडेरो लूमीनिसो और चीन समर्थित अंतर्राष्ट्रीय क्रांतिकारी आंदोलन (आर.आई.एम.) से संपर्कों की सुरक्षा व इंटेलिजेंस संगठनों द्वारा गहन जाँच की जानी चाहिए।

नेपाल के कुछ प्रशासकों व राजनीतिज्ञों की इंटर सर्विस इंटेलिजेंस से सांठगांठ के आरोप बेबुनियाद नहीं हैं। भारतीय इंटेलिजेंस के पास इस बात के प्रमाण हैं कि आई. एस.आई. भारत

के विरुद्ध अपनी कार्रवाइयों को बढ़ाने और राजशाही पर अपनी पकड मजबूत करने के लिए नेपाल के कुछ प्रभावशाली लोगों का इस्तेमाल कर रही है।

काठमांडू से कारोबार कर रहे पाकिस्तान के कुछ बैंकिंग व वित्तीय संस्थानों का इस्तेमाल भारत के कुछ आतंकवादी गुटों को धन देने के लिए किया जाता रहा है। एक पाकिस्तानी निर्माण कंपनी को पोखरा के पास सड़क बनाने का ठेका दिया गया था। उसने महत्वपूर्ण इंटेलिजेंस एजेंट बनाने के लिए आस-पास के गाँवों में बसे भारतीय सेना के सेवानिवृत्त जवानों में घुसपैठ की। इसी तरह नेपाल में काम पाने वाली कुछ और पाकिस्तानी कंपनियों में भी आई. एस.आई. ने अपनी पैठ बनाई।

आई.एस.आई. ने सबसे महत्वपूर्ण पैठ नेपाल के तराई क्षेत्र में बढ़ती मुस्लिम आबादी में की है। हाल की जनगणना से पता चला है कि वहाँ हिंदू जनसंख्या 6 प्रतिशत कम हुई है जबकि भारतीय सीमा से लगे दक्षिणी क्षेत्र में मुसलमानों की जनसंख्या में 15 प्रतिशत की आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है। इसकी वजह बहुत बडी सख्या मे बच्चे पैदा करने के अलावा भारत और बांग्लादेश से खुलेआम मुसलमानों का आना भी है।

जनसंख्या में वृद्धि के साथ-साथ मदरसों की सख्या में भी तेजी से बढ़ोत्तरी हुई है वहाँ जामिया मुहमदिया (तुलसीपुर), जामिया सिराजुल उलूम (बुंधियार),जमाइतुल बनातुन सालेहत, जामिया इत्तिहादे मिल्लत और दारुल उलूम फाजिए रहमानिया जैसे संस्थानों और संगठनों ने कट्टर इस्लामवाद का प्रचार करने का काम जारी कर रखा है। इस बात के पुष्ट समाचार मिले हैं कि इन सीमावर्ती मुस्लिम गाँवों में काठमांडू से नियमित रूप से पाकिस्तान व दूसरे इस्लामी देशों के राजनयिक आते रहते हैं। इन संस्थानों और मदरसों को पाकिस्तान, भारत के इस्लामी संस्थानों, सऊदी अरब व दूसरे इस्लामी देशो से उदारता पूर्वक धन दिया जाता है। हाल ही में बांग्लादेश की हूजी ने नेपाल के तराई क्षेत्र में बसी मुस्लिम बस्तियों में अपनी जड़ें जमा ली हैं।

पिछले एक दशक में 300 से अधिक नेपाली मुस्लिम युवकों को पाकिस्तान और बांग्लादेश में धार्मिक अध्ययन के लिए छात्रवृत्तिया दी गई हैं। भारत के इस्लामी तालीम देने वाले संस्थानों में अधिक छात्र नहीं आए। वजह यह है कि धार्मिक अध्ययन के लिए छात्रवृत्तियाँ पाकिस्तान, सऊदी और ईरानी संगठनों से आती हैं। वापस होने पर इन छात्रों का काम स्थानीय मदरसों में शुद्ध वहाबी सुन्नी शिक्षण देना और पाकिस्तानी जिहादी तंजीम के लिए संपर्क सूत्र का काम करना होता है।

उपरोक्त संगठनों के अलावा वहाँ नेपाली इस्लामी युवा संघ, जमाते इस्लामी नेपाल (1990), नेपाल मुस्लिम सेवा समिति, जमाते मिल्लते इस्लाम, नेपाल मुस्लिम इत्तिहाद एसोसिएशन, मुस्लिम डेमोक्रेटिक वेलफेयर एसोसिएशन, जमाते अहले हदीस जैसे संगठन भी हैं। ये सब तेज़ी से मदरसों का तालिबानीकरण कर रहे हैं।

गौरतलब है कि आई.सी. 814 का अपहरण कर के उसे काठमांडू से कंधार ले जाने के योजनाकारों को हूजी और पाक दूतावास स्थिति संचालकों से गुपचुप समर्थन मिला था। बांग्लादेश की तरह ही नेपाल भी जिम और जिक्स की भारत विरोधी हरकतों के लिए सुविधाजनक अड्डा बन गया है। भारत और अमेरिका की इंटेलिजेंस व जांच एजेंसियों ने जैश

ए-मुहम्मद के नेताओं के अफगानिस्तान की पूर्व तालिबानी शासकों, आई.एस.आई. और अल कायदा से संपर्कों के पर्याप्त सबूत इकट्ठे किए हैं।

सी.पी.आई.यू के आरंभिक अध्ययन से कुछ प्रमुख राजनीतिज्ञों और प्रशासकों की सोच में गुणात्मक अंतर आया। फिर भी देश की सुरक्षा आवश्यकतांओं में सुधार करने में राजनीतिक व प्रशासनिक व्यवस्था ने बहुत धीमी प्रतिक्रिया दिखाई।

उन दिनों एन.एन. वोहरा केंद्रीय गृह सचिव थे। उन्होंने इन रिपोर्टों और पाकिस्तानी नागरिकों के आव्रजन उल्लंघन की रिपोर्टों पर समुचित प्रतिक्रया व्यक्त की। उन्होंने सुझाव दिया कि नेपाल व बांग्लादेश के साथ द्विपक्षीय वार्ता आरंभ की जाए। इसके अतिरिक्त उन्होंने राज्यों व केंद्र सरकार की प्रवर्तन एजेंसियों से कहा कि वे पडोसी देशों के साथ सीमाओं पर सुरक्षा व्यवस्था को बढाएं। इन्हीं दिनों कलकत्ता की वाममोर्चा सरकार ने भारत-बांग्लादेश सीमा पर तारों की बाड़ लगाने का निर्णय लिया।

दरअसल मैंने राजनीतिक व राजनयिक अनुमति के बिना अनौपचारिक रूप से नेपाल व बांग्लादेश के अंदर एजेंट नियुक्त करने के लिए कदम उठाने आरंभ कर दिए थे। चुनिंदा व उपयोगी जानकारी देने वाले एजेंटों के साथ संचार की भी उपयुक्त व्यवस्था कर ली गई थी। इन कदमों से नेपाल व बांग्लादेश में आई.एस.आई. की घुसपैठ की थाह लेने में सहायता मिली। आई.बी. के नेपाल व बांग्लादेश के मामले देखने वाले डेस्क ने मेरी इस अग्रिम कार्रवाई पर एतराज किया। मैंने इसकी उपेक्षा कर डाली। वे खुद तो कुछ कर नहीं रहे थे और दूसरों को राष्ट्रीय सुरक्षा जैसे गंभीर मसले पर कुछ करने पर टोकते थे।

इस तरह की सीमा पार की जाने वाली कार्रवाइयों के लिए संबद्ध मंत्रालयों से अनुमति नहीं ली जा सकती। वजह यह कि इन में से हरेक की दिलचस्पी और परिप्रेक्ष्य अत्यंत सीमित है। विदेश मंत्रालय और रॉ कभी भी आई.बी. को किसी पडोसी देश में कार्रवाई करने की इज़ाजत नहीं देते।

मैंने पाकिस्तानी व बांग्लादेशी नागरिकों के आव्रजन के मामलों में अनियमितताओं व कमियों से संबद्ध कुछ ज्वलंत मामलों का अध्ययन कर के रिपोर्टें तैयार की थीं। एन.एन. वोहरा इन पर प्रतिक्रिया जाहिर करने वालों में सब से आगे थे। विधिवत अध्ययन से सिद्ध हो गया कि कुछ किस्म के पाकिस्तान से आने वाले :

- भू-मार्ग व वायुमार्ग से बारबार आने वाले।
- भू-सीमा से बार-बार आने वाले सवारी (तस्कर) आगंतुक।
- अनेक स्थानों पर जाने वाले दीर्घ अवधि के आगंतुक।

ये सब आई.एस.आई. व मुजाहिदीन की गतिविधियों से संबद्ध थे। इन में से कुछ आगंतुक भ्रष्ट अधिकारियों की मुट्ठी गरम कर के भारत में ही रुक जाते थे। अधिक अवधि तक रुकने के अलावा इन में से कुछ तो लोप हो जाते थे और कभी अपने देश लौटते ही नहीं थे। इस तरह के आगंतुकों पर आई.एस.आई. के संचालकों से संबद्ध होने का शक सब से गहरा होता था। इन में से कुछ तो पाकिस्तान के भारत में रहने वाले एजेंटों का काम करते थे।

सरकारी तंत्र में आखिरकार कुछ हलचल हुई। पाकिस्तान के साथ अपर्याप्त ही सही, आव्रजन नयाचार को सुदृढ बनाने के कुछ प्रयास किए गए। उन दिनों तक आव्रजन ब्यूरो

ने काम करना शुरु कर दिया था। उसने इटेलिजेस ब्यूरो को यह जिम्मेदारी सौंपी कि वह आव्रजन नियत्रण मे सुधार व आधुनिकीकरण लाए।

मुझे श्री वोहरा का व्यावहारिक रवैया बहुत पसद आया। जब मुझे उनके साथ मिल कर राजनीतिज्ञो व अपराधियो के बीच साठ-गाठ सिद्ध करने के लिए सामग्री सकलन का काम सौपा गया तो मुझे बहुत खुशी हुई। थोडे मे कहे तो यह राजनीति की अपराधीकरण का तथ्यपरक अध्ययन ही था। उनके इस अथक परिश्रम का परिणाम अतत एक रिपोर्ट के रूप मे सरकार को पेश किया गया जो रवायतो के मुताबिक अब नॉर्थ ब्लॉक के किसी अधेरे कोने में धूल फाक रही होगी।

लेकिन विदेश मत्रालय और प्रधानमत्री कार्यालय के कुछ अधिकारियो के मामले मे मैं इतना भाग्यशाली साबित नही हुआ। एक मौके पर मुझे नेपाल पर अपनी रिपोर्टों के बाबत स्पष्टीकरण देने के लिए बुलाया गया। मुझ से कहा गया कि मै 'सीधे इटेलिजेस हस्तक्षेप' से बाज आ जाऊ क्योकि भारत के नेपाल और बाग्लादेश दोनो से सबध बडे नाजुक है। मुझे मामला समझते देर न लगी। एक सहयोगी इटेलिजेस सगठन मेरे इस प्रस्ताव से नाखुश था कि नेपाल व बाग्लादेश के अदर से इटेलिजेस सकलन के लिए आई बी के गुप्त सचालक तैनात किए जाए। इस प्रस्ताव को नामजूर कर दिया गया। लेकिन सहायक सगठन के इटेलिजेस सकलन मे कोई गुणात्मक सुधार नजर नही आया।

एक बार तो प्रधानमत्री कार्यालय के सर्वोच्च अधिकारी का फोन आया। वह मेरी एक काउटर-इटेलिजेस कार्रवाई पर नाखुशी जाहिर कर रहे थे। बात यह थी कि मेरे कुछ लड़कों ने पाकिस्तान उच्चायोग के एक अराजनयिक कर्मी को एक भारतीय सपर्क से सुरक्षा सबधी दस्तावेज लेते हुए पकड लिया था। पहले कुछ ऐसे मामलो मे मैं गुप्त कैमरे की मदद से सारी कार्रवाई की वीडियो रिकार्डिंग करने मे सफल रहा था। पाकिस्तानी उच्चायोग मे नियुक्त ब्रिगेडियर जहीर उल इस्लाम अब्बासी को पकडने के मामले मे राजीव गॉधी की उपस्थिति मे उनके कुछ सहायको द्वारा परेशान किए जाने के बाद मैंने यह तरीका इस्तेमाल करना शुरू कर दिया था।

उच्च अधिकारी ने जानना चाहा कि क्या मैंने सारी घटना का वीडियो टेप तैयार किया था ? मैंने ऐसा नहीं किया था। कार्रवाई का स्थान ऐसा था कि मैं वीडियो टीम को असफलता का जोखिम उठा कर ही वहॉ ले जा सकता था। प्रधानमत्री कार्यालय के अधिकारी ने मुझे अपशब्दो के साथ कहा कि उनके सामने पेश होऊ। मै वहॉ गया। इटेलिजेस की कार्रवाइयो के बारे मे उनकी जानकारी मे वृद्धि की गई। उनको स्पष्ट किया गया कि इनकार्रवाइयों की तफसील का काम पेशेवर लोगो पर छोड दिया जाना चाहिए। वह यह सब सुन कर खुश नहीं हुए। मेरे खयाल से ऐसे प्रशासक समझते हैं कि धरती पर सर्वशक्तिमान परमात्मा के सीधे उत्तराधिकारी वही हैं।

ऐसे अधिकाश अवसरो पर मैं इस तरह के प्रशासको की बात चुपचाप सुन लिया करता था। लेकिन मैंने कभी दोनो पडोसी देशो मे इटेलिजेस लक्ष्यो मे पैठ बनाने और अपने काम की दूसरी जिम्मेदारियो में कमी नही की।

❮29❯

गलत नीतियों के गड्ढे में

मुसलमानो के इमाम का फर्ज है कि वह काफिर मुल्कों की तरफ साल में एक या दो बार अपनी फौजें भेजे। आम मुसलमानों का भी फर्ज है कि वे इसनेक काम में इमाम का साथ दें। अगर इमाम फौज नहीं भेजता तो वह गुनहगार माना जाएगा।

फतवा शामी (हमलावर जिहाद के बारे में)

पाकिस्तान के सत्तारूढ प्रशासन ने सारी दुनिया नहीं तो कम से कम हमारे भू-राजनीतिक क्षेत्र में अपने आप को सारे उम्माह का इमाम बना रखा है। वर्तमान अध्ययन आई.एस.आई. और पाकिस्तान स्थित जिहादी तजीम की राष्ट्रपारीय कार्रवाइयो की विस्तार से चर्चा करने का अवकाश नहीं देता। पाकिस्तान ने भारत के मुसलमानो के सिरों पर इस्लामवाद का भूत सवार करने में कोई कोर-कसर बाकी नहीं रखी।

भारत के अंदर ' मुस्लिम उग्रवाद ' और ' इस्लामी आतकवाद ' का विस्तार पाकिस्तानी शासन और आई.एस.आई. के चलाए शैतानी चक्र का अभिन्न अग है। जिम और जिक्स ने भारत में एक और सफलता प्राप्त की है। ईरानी क्रांति और अफगानिस्तान के मुजाहिदीन युद्ध ने भू-राजनीतिक राष्ट्रवाद की धारणा का विस्तार किया है। इसने उम्माह और काफिर देशों को अपने प्रभाव में ले लिया है। ये फिलिस्तीनियों के राष्ट्रीय सघर्ष और बाल्कन व मध्य एशिया के मुसलभानों में राष्ट्रवाद के सुलगते जज्बे से नितांत भिन्न था। इसके अलावा कश्मीर की हत्यारी धरती पर पाकिस्तान की नई मुहिम, जो कि आई.एस.आई. और जिनका छेडा छद्मयुद्ध है, वह गैर कश्मीरी भारतीय मुसलमानों के अंदर जिहाद का जहर भर रहा है। यह मुहिम उम्मा की एकता के विचार तक सीमित नही है। इसकी उपज तो पाकिस्तान के बहुराष्ट्रीय जिहादी स्वरूप की उर्वर भूमि से हुई है। 9/11 के बाद और अफगान युद्ध के पश्चात पाकिस्तान के अमेरिका के साथ राजनयिक सहयोग का मतलब पर्यवेक्षकों को यह नहीं निकालना चाहिए कि बिल्ली शाकाहारी हो गई है। पाकिस्तान अब भी ' स्वाधीन विश्व ' के मुंह पर विस्फोट करने की कुव्वत रखता है। नाभिकीय तकनॉलॉजी के गुपचुप हस्तांतरण का हाल का रहस्योद्घाटन इसका सजीव उदाहरण है कि किसी असफल और अस्थिर देश से कितना खतरा हो सकता है।

पी.सी.आई.यू. के विशेष सैल ने भू-राजनीतिक उम्माह के पाकिस्तान नामक इस इमाम की नई इस्लामी मुहिम को समझने की पूरी गंभीरता से कोशिश की। यह कोई आसान काम न था। धर्मनिरपेक्षता की तंग, पृथकतावादी व्याख्या के चलते मुस्लिम समुदाय मुख्य धारा से

अलग-थलग हो गया था। भारतीय मुसलमानों ने हमेशा अपने राजनीतिक हितों को बढ़ावा देने के लिए धर्म का आसरा लिया है। वे आज भी ऐसा ही कर रहे हैं। हालाकि भारत धर्मनिरपेक्ष नीति की दुहाई देता रहता है। भारतीय मुसलमानो के एक वर्ग मे इस्लामी उग्रवाद की वृद्धि का अध्ययन करते समय मुझे मुस्लिम समुदाय के अलावा' धर्मनिरपेक्ष ' हिंदू नेताओं के प्रतिरोध का भी सामना करना पडा। राजनीतिज्ञ यह सहन नही कर पाते कि कोई उनके वोट बैंक के हरम में झांकने की कोशिश करे।

कुछ लोगों का खयाल है कि भारत में उग्रवादी इस्लाम ने तब पदार्पण किया जब हिंदू उन्माद ने बाबरी मस्जिद ढहा दी या जब यहाँ मुबई के शृखलाबद्ध बम विस्फोटों की प्रतिक्रिया हुई। तथाकथित ' धर्मनिरपेक्ष ' इतिहासवेत्ताओं के इस पर्यवेक्षण में अधूरा सच है। असल में अखिल इस्लामी शक्तियों द्वारा भारत के ' धर्मनिरपेक्ष ' मुसलमानों का इस्लामीकरण देश के विभाजन के साथ रुका न था। भारत का विभाजन भारतीय मुसलमानो के इस्लामीकरण का परिणाम था जिनको सिखाया गया था कि मुसलमानो की तरह जीएँ और सॉस लें। कठमुल्लो को भारतीय मुसलमानों की घुलने-मिलने की प्रवृत्ति नापसद थी। वह समझते थे कि हिंदुओ के सामाजिक-धार्मिक रीति-रिवाज इनकी खालिस पहचान मे मिलावट कर रहे हैं।

पाकिस्तान का नया ' युद्ध ' भारतीय मुसलमानों की ' राष्ट्रीयता को पारअरबी ' इस्लामवाद ' में परिवर्तित करने के उद्देश्य से है। इस्लाम की यह धारणा सऊदी वहाबी किस्म के कट्टर सुन्नी मूल्यों से संबद्ध है। कट्टर इस्लामवादियों ने उस दिन से ही अपनी हरकतें जारी रखीं जब ब्रिटिश भारतीय प्रजातंत्र में ही उन्होंने समझ लिया था कि जिन पर कभी हम ने हुकूमत की थी, वही हिंदू हम पर हुकूमत करेंगे। ' फिरंगी राज ' की जगह पर 'हिंदू राज' उनको मंजूर नहीं था। 1898 के आस-पास बनी इस धारणा ने ही अंतत· पाकिस्तान की शक्ल अख्तियार की। 1925 से ही ईस्लामवादियो ने उपमहाद्वीप के मुसलमानों के 'भारतीयकरण' को धोना शुरू कर दिया। वे उनको सिधु किस्म की इस्लामी पहचान के साथ जोडने के प्रयास करने लगे। यह गंगा-यमुना-नर्मदा-कावेरी और ब्रह्मपुत्र किस्म की भारतीय पहचान से अलग थी। उनका कहना था कि सिधु के लोग गगा के लोगो से अलग थे।

पाकिस्तान की ज़िया पूर्व शक्तियो ने इस नीति को दृढता से लागू करने की कोशिश की। जिया ने तो पाकिस्तान को एक धर्मतात्रिक राष्ट्र मे बदल दिया। उन्होने भारतीय मुसलमानों के इस्लामीकरण के प्रयत्नों को और भी बल दिया। इसके लिए उन्होंने कुछ पुराने अफगानी मुजाहिदीन संगठनो से मदद ली। इनके अतिरिक्त कुछ नए पनपे कट्टर जिहादी गुट भी थे जिनको कश्मीर के भावी ' मुक्ति सघर्ष ' के लिए तैयार किया जा रहा था। अपने लोकतांत्रिक मुखौटे के बावजूद बेनजीर भुट्टो ने भी आई.एस.आई को पूरी छूट दी कि वह भारत, नेपाल व बांग्लादेश के मुसलमानों में उग्रवाद फैलाने के लिए पुराने अनुभवी अफगान इस्लामवादियों का रुख उधर करे।

1987 के मध्य से हिंदू क्षुद्रराष्ट्रवादियों ने जो धार्मिक रंग में रंगी राजनीतिक गतिविधियाँ आरंभ कीं उनसे झीने आवरण में ढका गलत नीतियों का रास्ता फिर से उघड़ गया। पाकिस्तानी जिम और जिक्स ने इसका पूरा फायदा उठाया। अपने कांग्रेसी पूर्वजों की तरह ही हिंदू धर्मोन्मादी यह समझ नहीं पाए कि अफगान अनुभव ने सारी दुनिया के कट्टर मुसलमानों

में एक नई इस्लामी पहचान भर दी है। इस मामले में भारतीय मुसलमान भी उतने ही आसान लक्ष्य हैं जितने कि इंडोनेशिया या फिलीपीन्स के मुसलमान। थोडे से भारतीय मुसलमानों ने आई.एस.आई. और अलकायदा के चलाए शिविरों में प्रशिक्षण लिया था। वे अफगानिस्तान में लड़े। मलाया और इंडोनेशिया के जिहादियों की तरह वे भी विश्वव्यापी जिहाद फैलाने के लिए भारत लौटे। पाकिस्तान अब सामान्य पडोसी शत्रु राष्ट्र नहीं रह गया था। वह इस्लामी कठमुल्लापन के इमाम के रूप में उभरा था। पाकिस्तान के भू-राजनीतिक हितों का अल कायदा अल-अस्सुबह और उनके दुनिया भर में फैले संगी-साथियों की नई इसलामी मुहिम के साथ तालमेल बैठता था। ' हिंदू शक्तियां ' यह नही समझ पाईं कि पाकिस्तान की जिहादी मुहिम की रोकथाम केवल संतुलित व यथार्थवादी राष्ट्रीय नीतियॉं अपना कर ही की जा सकती है न कि हिंदू शक्तियों के पुनर्जागरण से ।

19वीं सदी के मध्य में हिदुत्ववादी शक्तियों का उदय एक ऐतिहासिक आवश्यकता थी। यह वह युग था जब भारतीय राष्ट्र के अंदर विभिन्न राष्ट्रीयताएँ पनप रही थीं। हिंदुत्व की पहचान पर बल देना देश की नींव मजबूत करने वाली एक आवश्यक आधारशिला है। लेकिन जिहादी मुहिम का मुकाबला करने का काम राष्ट्र के धर्मनिरपेक्ष तंत्र पर छोड देना बेहतर होगा।

इस घनपते विरोधाभास का जिम और जिक्स ने पूरा फायदा उठाया। उनके अथक प्रयास के कारण इस्लामी रंग में रंगे जिहादवाद की भारत की भूमि में जडें जम गईं। इसके विनाशकारी परिणाम निकलने की आशंका है। जिहादी सक्रमण के लक्षण इनसे प्रकाश में आए:

- बहुराष्ट्रीय जिहादी शक्तियों के साथ संपर्को का तेजी से बढना और गुप्त मॉड्यूल्स व सेलों की सख्या में वृद्धि।
- अलग इस्लामी पहचान के दावे को बल देने के लिए हिंसा का प्रयोग करने के साधनों की प्राप्ति।
- अन्याय समझी जाने वाली कार्रवाइयों या बहुसख्यकों की विरोधी कार्रवाइयों के प्रतिउत्तर में त्वरित या पूर्वक्रमिक कार्रवाई।
- भूमिगत तंजीम या सशस्त्र गुटों की स्थापना।
- अंगीकृत भारतीय रवायतों व प्रतीकों से देश के मुसलमानों को विलग करना।
- इस्लाम के विशुद्ध पाठ पढाने के लिए तबलीगी संस्थानों व मदरसों को फिर से सुसंगठित करना।
- गुप्त घृणा प्रचार।

आई.एस.आई. के फैलाए इस जिहादी वायरस का रंग उस से भिन्न है जिसे आम तौर पर ' छद्मयुद्ध ' या ' सांप्रदायिक फूट ' कहा जाता है। भारत के विरुद्ध पाकिस्तान का छद्मयुद्ध 1958 में उत्तरपूर्व में आरंभ हुआ था। इसने एक तूफान की तरह पंजाब को झकझोरा। यह आज भी कश्मीर में देश को कष्ट पहुंचा रहा है। हिंदू-मुस्लिम सांप्रदायवाद तो उतना ही पुराना है जितना कि भारत पर मुसलमानों का आधिपत्य।

अनुसंधान कर के पी.सी.आई.यू. इस निष्कर्ष पर पहुँची कि भारतीय मुसलमानों में से अधिकांश हिंदुओं से धर्मांतरित हुए थे। उन्होंने अपने-अपने प्रांतों की गैरइस्लामी सामाजिक,

सास्कृतिक व धार्मिक रिवायतो को आत्मसात कर लिया। बगाल महाराष्ट्र और बिहार के मुसलमानो ने अनेक सामाजिक रिवाजो को अपनाया। इस्लामी प्रचार के बावजूद वे आज भी पहले बगाली या महाराष्ट्रियन है, फिर मुसलमान। अखिल इस्लामवादी फिरगियों के प्रभाव से भी ज्यादा इन प्रदूषित करने वाले तत्वो से आतकित रहे है। इन शक्तियो ने उपमहाद्वीप के मुसलमानों को इन प्रदूषणो से मुक्त कर के उनका पवित्रीकरण ' करने का प्रयास सदा जारी रखा।

गुजरात, जम्मू, उत्तर प्रदेश के हिदू मदिरो पर हमले और पश्चिम बगाल, तमिलनाडु, कर्नाटक, आध्रप्रदेश गुजरात राजस्थान व दिल्ली की हिसात्मक घटनाएँ दार उल काफिल और जाहीलिया हिदू समाज के विरुद्ध इस्लामी युद्ध की प्रतीक हैं। इस नए युद्ध का उद्देश्य उस गलत धार्मिक नीति की ज्वाला को फिर से भडकाना है जिसके कारण देश का विभाजन हुआ।

इतिहास एक सेकड मे बन जाता है। कई बार ऐसी घटनाओ का अबार लगाने में अनेक दशक लग जाते हैं जो ऐसी भूकप लाने वाली शक्तियॉ पैदा करती है जिन से एक नई राष्ट्रीय पहचान जन्म लेती है। बाल्कन मे ऐसा हो चुका है। मध्य एशिया के जनतत्रो मे भी यही प्रकिया विस्फोट के कगार पर है। पाकिस्तानी व्यवस्था और आई एस आई ने काफी शोध के बाद अपने इटेलिजेस सचालन कार्यक्रम बनाए हैं। इस्लामाबाद मे कोई भी सरकार सत्ता मे हो ये उस से सहायता ले ही लेती है। इसके अलावा इनको इस्लामी मुस्लिम लीग व अलकायदा या अल अस्सुबह जैसे अतर्राष्ट्रीय सगठनो से भी सहायता मिलती है। उनकी कार्रवाइया पाकिस्तान के मुजाहिदीनो मदरसो से भर्ती किए गए मुजाहिदीनो और भारत बाग्लादेश व नेपाल मे स्थापित 5000 इस्लामी मॉडयूल तथा सहयोगियो से लिए गए मुजाहीदीनो द्वारा अजाम दी जाती हैं।

भारत जैसे देश मे जहॉ मुसलमान धर्मनिरपेक्ष व लोकतात्रिक पद्धति का अभिन्न अग हैं, वहॉ पाकिस्तानी व्यवस्था व अल कायदा की किस्म के जिहादी अभियान का मुसलमानो पर अधिक प्रभाव पडता है। मलेशिया इडोनेशिया सिगापुर थाइलैड और फिलीपीन्स के परपरा से धर्मनिरपेक्ष रहे मुसलमानो मे भी ऐसी ही अलगाव वाली प्रवृत्तियॉ भरने की कोशिशे की जा रही हैं। भारत मे आई एस आई की कार्रवाइयो के लक्षण बहुत स्पष्ट और प्रखर हैं। ये लक्षण छद्मयुद्ध का हिस्सा नहीं हैं। ये तो आई एस आई की दक्षिण व दक्षिणपूर्व एशिया मे बहुराष्ट्रीय व भू-राजनीतिक भूमिका का अभिन्न अग है।

सरकार को यह राय दी गई थी कि भारत की जनता को पनपती प्रवृत्तियो के बारे मे जानकारी दी जाए और पाकिस्तान व उसेके सहयोगियो के इस्लामी विस्तारवाद के विरुद्ध मनोवैज्ञानिक युद्ध छेड़ने की कोई योजनाबद्ध रणनीति तैयार की जाए। लेकिन धर्मनिरपेक्षता के पवित्र प्रेत के डर से इस दिशा मे कोई ठोस कदम नही उठाया गया।

एक बुनियादी शोधार्थी के तौर पर मैं महसूस करता हूँ कि अब भारतीय समाजविज्ञानियो, राजनीतिक नस्लो और राजनीतिक-धार्मिकों को यह समझ लेना चाहिए कि जिया उल हक के पाकिस्तान को धर्मतत्रीय राष्ट्र मे बदलने उनके अफगानी अनुभव व स्पर्धात्मक धार्मिक मताधता व कट्टरपने से सपर्कों के चलते भारतीय इस्लाम मे कैसे क्षयकारी परिवर्तन आए हैं।

आई.एस.आई. तथा अन्य अखिल इस्लामी शक्तियों ने जो आंधी चलाई है उस के गर्द-गुबार के ज़र्रों को भारत एकत्र करने लगा है। यही प्रवृत्ति बांग्लादेश, मलेशिया, फिलीपीन्स और इंडोनेशिया के कथित प्रदूषित मुसलमानों में भी दिखाई पडने लगी है। इस तरह के प्रदूषणकारी गर्द-गुबार को सिर्फ अच्छे राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक प्रबंधन से ही धोया जा सकता है।

* * * *

1992-93 से ही ' इस्लामीकरण ' की प्रक्रिया और भारत के हृदयप्रदेश में सशस्त्र माड्यूल प्रतिस्थापित करने का काम शुरू हो गया था। असम, पश्चिम बंगाल, बिहार,उत्तर प्रदेश, दिल्ली, राजस्थान के कोटा/अजमेर क्षेत्र गुजरात, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश और केरल में ऐसे कुछ सेलों की पहचान की गई थी। स्टूडेंट्स इस्लामिक मूवमेंट आफ इंडिया (सिमी) ने पहले ही मुजाहिदीन, तालिबान और अल कायदा काडर के साथ प्रशिक्षण के लिए अपने स्वयंसेवकों को पाकिस्तान भेजना शुरू कर दिया था। उन्होने बांग्लादेश के इस्लामी छात्र शिबिर, अलकायदा से संबद्ध हरकत उल जिहाद अल इस्लामी (हूजी), अल बदर, अल जिहाद और दूसरे संगठनों के नेताओं से सपर्क बढाने शुरू कर दिए थे। आंध्र प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल और असम के कुछ गुमराह मुसलमान युवकों को बांग्लादेश में डी.जी.एफ.आई. और बी.डी.आर. की नाक के नीचे प्रशिक्षण दिया गया।

1980 के बाद इस्लामवाद के विस्तार से मेरा जो वास्ता पडा उससे समझ में यह आया कि इस बारे में इंटेलिजेंस एकत्र करना निम्न बातों पर निर्भर करता है :

- दिल्ली में तथा सहायक यूनिटों में इंटेलिजेंस अधिकारियों को इस बारे में जागृत करने से।
- लक्ष्य संगठनों में एजेंट बनाने से।
- दिल्ली व राज्यों की तत्कालीन सरकारों को विश्वास दिलाने से कि इस विषय में इंटेलिजेंस एकत्र करने और पाकिस्तान के अनर्थकारी अभियान की रोकथाम के लिए प्रशासनिक कदम उठाने की बडी जरूरत है।
- प्रबुद्ध व धर्मनिरपेक्ष मुसलमानों का चरमपंथियों के शुद्धीकरण के लिए सहयोग लेना।

सरकार ने इस बारे में बहुत धीमी प्रतिक्रिया दिखाई। आई.बी. के अपने सहयोगियों व अन्य राज्य इंटेलिजेंस ओपरेटिव्ज को समझाने का काम मैने अपने जिम्मे लिया। मुझे पता चला कि यह एक दुष्कर ही नहीं अप्रीतिकर काम भी है। मैंने उनको परेशान करने वाले उपदेश देकर अपने सहयोगियों को पीठ पीछे मेरा मुंह चिढाने को मजबूर जरूर किया होगा। पर मुझे यह तो मानना ही होगा कि मेरे सहयोगियों ने मुझे हतोत्साहित नहीं किया। हालांकि उन की प्रतिक्रिया बहुत धीमी थी। बंबई के बम विस्फोट के बाद वे जैसे सोते से जगे। यह घटना आई. एस.आई. का पुरजोर ऐलान थी कि उस ने छद्मयुद्ध और मुजाहिदीन हरकतों को भारत के मुख्य भागों तक ले जाने की तकनीक में महारत हासिल कर ली है।

राजस्थान,गुजरात,महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश और असम की राज्य सरकारों से बातचीत करने में मुझे कोई कठिनाई नहीं हुई। लेकिन पश्चिम बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश की सरकारों ने

मेरे प्रस्ताव के प्रति सदाशयता नहीं दिखाई। वाममोर्चा सरकार पर अभी भी अल्पसंख्यक वोट बैंक के साथ प्रेम संबंधों का खुमार बाकी था। बिहार और उत्तर प्रदेश की भी कुछ ऐसी ही हालत थी। कुछ अधिकारियों ने अपने तईं सहयोग किया लेकिन वह खतरे का मुकाबला करने के लिए अपर्याप्त था। एक मौके पर तो वाममोर्चा सरकार ने बांग्लादेश शिविरों में प्रशिक्षण पाए कुछ संदिग्ध युवकों को गिरफ्तार करने की अनुमति भी नहीं दी।

बिहार में तो गद्दीनशीन मुख्यमंत्री से मुझे प्रताडना ही मिली। उन्होंने मुझे हिंदू संप्रदायवादी तक करार दिया। जातिगत राजनीतिक के इस नए स्वरूप के चलते उनके वोट बैंक के खिलाफ कोई भी कानूनी कार्रवाई महापाप ही होती। वह आधुनिक भारत के उन कुछ महात्माओं में से थे जो राजनीतिक हितों की वेदी पर लोकतंत्र और संवैधानिक स्वाधीनता की बलि चढ़ाने से भी हिचकते नहीं।

उत्तरप्रदेश की कहानी भी इस से अलग न थी। उनकी तरह का एक जाति सामंत अपने वोट बैंक की रक्षा के लिए कानून के रास्ते में अड़ कर खडा हो गया। पाकिस्तान में प्रशिक्षित एक संदिग्ध व्यक्ति को छुड़ाने के लिए एक शीर्ष राजनीतिक नेता के भाई ने थाने पर धावा ही बोल दिया था। वोट बैंक के इस दबाव ने राष्ट्रीय सुरक्षा की चिंता को भी आच्छादित कर लिया था। धर्मनिरपेक्षता की यह परिभाषा तो जानेमाने विध्वंसकारियों और आई.एस.आई. के प्रशिक्षित एजेंटों को सुरक्षा देने का पर्याय बन गई थी। उन्होंने अल्पसंख्यक समुदाय के चारों तरफ अलगाववाद की चारदीवारी खडी कर दी थी। अगर वे 1991-92 में इंटेलिजेंस ब्यूरो और राज्य इंटेलिजेंस शाखाओं को इस्लामी मॉड्यूल्स में पैठने की अनुमति दे देते तो भारत आई. एस.आई. से पहले ही बाज़ी मार लेता।

इस बारे में इंटेलिजेंस संकलन के लिए कोई विशिष्ट यूनिट न थी। लिहाजा पी.सी.आई. यू. ने यह जिम्मेदारी संभाली। उसने ध्वंस और विघटन के सेलों में पैठ बनाने के लिए अपने वर्तमान संसाधनों को फैलाया। इस्लामी उग्रवादी गुटों के इर्द-गिर्द मंडराने वाले तत्वों को काबू करने के लिए कुछ कदम उठाए गए। ऑल इंडिया मिल्ली काउंसिल, जमाते इस्लामी और कुछ इस्लामी अध्ययन के संस्थान इस में शामिल थे।

मैं आई.बी. का अधिकारी था जिसके संचालकों में हिंदुओं की संख्या बहुत अधिक थी। पर मुझे अपनी स्थिति उस मोसाद एजंट से भी कठिन लगी जो फिलिस्तीनी आतंकवाद के केंद्र में पैठ बनाने समय महसूस करता है। मुझे यह जानकर आश्यर्च हुआ कि ब्राह्मण पंडितों ने तो अपने हिंदू अनुयायियों पर नियंत्रण खो दिया है लेकिन मुस्लिम इमामों का अपने अल्लाह के बंदो पर अंकुष न सिर्फ बरकरार है बल्कि वह पहले से ज्यादा कस गया है।

मेरे एक मुसलमान दोस्त दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रोफेसर थे। उनके नौकर ने उनका टू-इन-वन म्यूजिक सिस्टम चुरा लिया। यह नौकर भी मुसलमान था। मैंने दोस्त को सलाह दी कि वह नौकर के खिलाफ पुलिस में रिपोर्ट करें। मेरे दोस्त जब इसके लिए राजी नहीं हुए तो मैं बहुत हैरान हुआ। पुलिस बुलाने को ले कर बहस हो जाने पर मेरे दोस्त ने बताया कि उनका नौकर उस मस्जिद के ' दारोगा ' को जानता है जहाँ वे दोनों नमाज पढ़ने जाते हैं। उसने धमकी दी है कि वह इमाम साहब से दो बातों की शिकायत कर देगा। पहली यह कि मैं रोज पांच वक्त नमाज नहीं पढ़ता। दूसरी यह कि मैं रमज़ान के दिनों में रोजों का पाबंद

नहीं हूं। उन्होंने बताया कि इस तरह की शिकायत पर मोटा जुर्माना तो होगा ही सारी बिरादरी के सामने मेरी फजीहत भी होगी। यह मेरे लिए नई जानकारी थी। मैंने नौकर को अपना पुलिसवाला परिचय दिया। इससे डर कर उस ने म्यूजिक सिस्टम लौटा दिया।

मस्जिदें और मदरसे मजहब के पाबंद लोगों पर इस तरह नियंत्रण रखते थे। इमामों के अलावा मदरसों के उलेमा भी इस बात को सुनिश्चित करते थे कि मजहबी लोग कुरान शरीफ में बताए कायदे कानूनों का पालन करें। मुसलमान आमतौर पर बंद समाज में रहते हैं। उनके खिड़की दरवाजे दूसरी जाति या समुदाय के लिए खुले नहीं होते।

मुझे मालूम था कि मेरा काम बहुत कठिन है। लेकिन सुरक्षा संबंधी इंटेलिजेंस संकलन के लिए इस समुदाय में पैठ बनाने के मामले में मैं बहुत भाग्यहीन नहीं रहा। मुख्य सहायता कुछ इस विषय में ' चिंतित ' मुसलमान मित्रों से मिली। उनके पाकिस्तान, अखिल इस्लामवाद और कठमुल्लापन के बारे में विचार इतने स्पष्ट थे जितने किसी हिंदू के स्वदेश के बारे में नहीं होते। इन में से कुछ अच्छी तरह समझते थे कि मध्य भारत, बिहार, बंगाल, महाराष्ट्र के उर्दू बोलने वाले मुस्लिम नेताओं ने मूलत: मुस्लिम लीग के आदोलन की अगुआई की थी और वे दो राष्ट्रों के सिद्धांत के हिमायती रहे हैं। वे अपने प्रिय वतन को चले गए। वहां वे अपना आर्थिक व राजनीतिक संघर्ष पजाबियों, पख्तूनों और सिधियों के हाथों हार गए। अब उनका भारतीय मुसलमानों के जीवन में हस्तक्षेप करने का भी कोई हक नहीं था जिन्होंने भारत को अपना राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक घर मान लिया था। मैं उनकी इस विचारधारा से प्रभावित हुआ। मैंने इसका लाभ उठाते हुए उनको समुदाय के प्रमुख क्षेत्रों में पैठ बनाने के लिए राजी कर लिया।

कुछ मुसलमान छात्रों को प्रमुख मदरसों में भेजने का काम किया गया। कुछ लड़कों को जिहादियों से संबद्ध संगठनों में शामिल होने को कहा गया। इसके परिणाम बूंद-बूंद कर के आए। जो हो कम से कम एक अच्छी शुरुआत तो हो ही गई।

मुसलमानों का संबंध कुछ बडे अपराधी गिरोहों और माफिया से भी था। वे महाराष्ट्र, गुजरात,दिल्ली, उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल और असम में सभी जगह सक्रिय थे। मुझे यह जानने के लिए किसी शोध की जरूरत न थी कि अपराधी और माफिया के सदस्य एक और भी बड़े धर्म के अनुयायी होते हैं : पैसे के धर्म के। अपराध और लाभ का लक्ष्य उनको धर्मनिरपेक्षता से भी बढ़ कर एकजुट रखता है। बंबई के बम विस्फोटों के बाद भी, जिसके लिए आई.एस.आई. ने भूमिगत डॉन का इस्तेमाल किया था,माफिया के सदस्यों ने अपनी बिरादरी की एकजुटता बनाए रखी। वे सांप्रदायिक विभाजक रेखाओं को लेकर विभक्त नहीं हुए। भारतीय मुसलमानों के भेद्य वर्ग में चल रही आई.एस.आई. की मुहिम को चलाने वाले जिहादियों में घुसपैठ बनाने के लिए मुंबई , अहमदाबाद, दिल्ली, गोरखपुर, पटना और कलकत्ता के कुछ अपराधी गिरोहों के सदस्यों ने मेरी सहायता की। हालांकि दाऊद इब्राहीम और छोटा राजन आपस की रंजिश के चलते एक दूसरे के खून के प्यासे हो रहे थे लेकिन मुझे विशेषतौर पर गुजरात, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश और बिहार में मुस्लिम और हिंदू अंडरवर्ल्ड से सहयोग पाने में कठिनाई नहीं हुई।

शुरुआत बुरी न थी। लेकिन सहायक यूनिटों की प्रगति से मैं निराश था। वे मेरे बार-बार समझाने पर भी राजी न हुए कि इस्लामी और जिहादी आंदोलन आई.एस.आई. और अल कायदा के चलाए छद्मयुद्ध व अतर्राष्ट्रीय जिहादी आदोलन के ही चरण थे। कुछ वरिष्ठ सहयोगी तो अपनी आस्तीन में मुह छिपा कर नही, सामने ही हसे। कुछ ने तो इस बात पर मुझे झिडकियाँ तक दे डालीं जब मैंने उनको समझाना चाहा कि कश्मीर में जो आतंकवादी सक्रिय हैं वे अलकायदा से प्रशिक्षण पाए हुए हैं और ओसामा के सगठन व आई.एस.आई. में गहरी सांठ-गांठ है। एक ने तो मुझे मनोरोगी ही करार दे दिया। शायद मैं अपने वक्त से बहुत आगे था।

आई.बी. के निदेशक वी जी. वैद्य पाकिस्तान के विरुद्ध अतिसक्रिय योजना की तैयारी का जोखिम उठाने के खिलाफ न थे। मुझे पाकिस्तान के अदर सीमित कार्रवाई करने की अनुमति दे दी गई। ये विशेष योजनाएँ कराची, इस्लामाबाद, लाहौर और पेशावर में कुछ निशानों पर घुसपैठ बनाने से संबधित थी। अगस्त 1992 से अक्तूबर 1993 तक का समय बहुत फलदायक रहा। इन कार्रवाइयो का उद्देश्य पाकिस्तान स्थित कुछ जिहादी संगठनों के साथ आई.एस.आई. की साठ-गांठ के सुबूत इकट्ठे करना था। ये सगठन अफगानिस्तान की लडाई में लिप्त थे और अब इन का रुख भारत की ओर मोडा जा रहा था। इनमे से एक एजेंट तो आई.एस.आई. और अलकायदा द्वारा सम्मिलित रूप से पूर्वी अफगानिस्तान मे चलाए जा रहे एक शिविर मे प्रशिक्षण प्राप्त करने में भी सफल रहा।

कानूनी बाध्यता मुझे इन में से कुछ कार्रवाइयों का विवरण देने से रोकती है। अक्तूबर 1993 के बाद ये कार्रवाइयॉ बंद कर दी गईं।शायद सहयोगी सगठन, विदेश मंत्रालय और प्रधानमंत्री कार्यालय के दबाव के कारण ऐसा हुआ। देश का राजनीतिक व इटेलिजेस ढॉचा पाकिस्तान को उसी के तरीकें पर चल कर जवाबी टक्कर देने को तैयार न था। वे पाकिस्तान को भारत की गलत नीतियों का लाभ उठाने का अवसर देने को तैयार बैठे थे। यह बहुत हताश करने वाली स्थित थी। मुझे वास्तविकता स्वीकार करनी ही थी। यह तो टाल-मटोल वाली कूटनीति और प्रच्छन्न युद्ध का मामला था। मुझे तो पहले से ही एक अक्खड़ इंटेलिजेंस अधिकारी करार दे दिया गया था। मैं शीर्ष अधिकारियों, विदेश मत्रालय और मंत्रिमंडलीय सचिवालय की नाराजगी मोल लेना नहीं चाहता था।

<30>

राष्ट्रीय शर्म का एक अध्याय

सिद्धात किसी आदमी की सूझ-बूझ के अदर घुस जाते है। वे उसे अपने ही विरुद्ध धोखा देते है। सभ्य लोगो ने इन्ही सिद्धातो के लिए सब से गभीर युद्ध लडे है।

-- विलियम ग्राहम समनर

अब समय आ गया है कि मैं पाठको से उस राजनीतिक विस्फोट की चर्चा करूँ जो 1988 के अतिम दिनो से अदर ही अदर घुमड रहा था। जैसा कि मै पहले बयान कर चुका हू, सघ परिवार ने इदिरा गॉधी की मृत्यु से उत्पन्न राजनीतिक शून्य और राजीव गॉधी व उनके विद्रोही वी पी सिह के देश के मामलो को अकुशलता से चलाने का लाभ उठाने का एजेडा बना लिया था। भारतीय जनता पार्टी ने पहली बार बाबरी मस्जिद (मुगल सम्राट बाबर के कथित आदेश से निर्मित मस्जिद) को ले कर एक प्रस्ताव पारित किया था। यह प्रस्ताव उसने अपने जून 1989 के हिमाचल प्रदेश के राष्ट्रीय कार्यकारिणी के अधिवेशन मे पारित किया। बाबरी मस्जिद धार्मिक आस्था का नया प्रतीक बन गई क्योकि यह कहा जाता था कि इस का निर्माण भगवान राम के जन्मस्थल के ध्वसावशेषो पर किया गया था।

1971 के लोकसभा चुनावो मे हिदू कार्ड के बहुत अच्छे परिणाम मिले थे। उसके बाद सघ परिवार और उसके अग्रणी विश्व हिदू परिषद व बजरग दल आदि ने एल के आडवाणी की रथ यात्रा व बाद के साप्रदायिक उपद्रवो से उत्पन्न हलचल को बहुत आगे बढाया। इस का चरमोत्कर्ष उस समय हुआ जब करीब 50 कार सेवक मुख्यमत्री मुलायम सिह यादव के आदेश पर पुलिस कार्रवाई मे मारे गए। नरसिह राव के नेतृत्व वाली काग्रेस इस प्रवाह को रोक नही पाई, न ही वह सघर्षरत दलो को बातचीत के लिए राजी करने मे सफल हुई। प्रधानमत्री के कुछ आलोचक उनके आर एस एस से पुराने सबधो को ले कर उन्हे ' खाकी निक्कर वाले से बना काग्रेसी पुकारते थे।

राम जन्मभूमि वाले उपद्रव से मेरा वास्ता न था। हालाकि मै अपने आर एस एस. और बी जे पी के मित्रो के निरतर सपर्क मे था। पाकिस्तान मे मेरी व्यस्तता से भी राष्ट्रीय राजनीति मे मेरी दिलचस्पी मे कमी नही आई।

12 नवबर के करीब एक काग्रेसी मित्र मेरे पास दो अनुरोध ले कर आए। एक यह कि मैं उनकी जामा मस्जिद के इमाम से मुलाकात करवाऊँ। दूसरा सघ के सर्वोच्च नेता सरसघचालक से प्रधानमत्री की मुलाकात का बदोबस्त करूँ। मेरे दोस्त की इमाम से मुलाकात कराना कोई बड़ी बात न थी। यह इमाम के निजी आवास पर हो गई। मेरी उपस्थिति में ही उन्होंने मुसलमानो के उग्र नेताओ को रोकने के बारे मे बातचीत की। यह एक अच्छा उद्देश्य

था। मैंने अपने मित्र को मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड और मिल्ली कांउंसिल के अपने कुछ मित्रों से भी संपर्क बनाए रखने के लिए उत्साहित किया।

लेकिन मैं आर.एस.एस. मोर्चे पर अपने पत्ते खोलने से हिचकिचाया। इसके अलावा मेरी पहुंच संघ के शीर्ष नेता तक नहीं थी। मुझे मालूम था कि प्रधानमंत्री संरसंघचालक स्वर्गीय राजू भैया से मिलने की दूसरी संभावनाओं को आजमा चुके हैं। एक मौके पर तो उन्होंने एक पुलिस वाले को ऊँचा ओहदा देने की पेशकश भी की जिसकी वी.एच.पी. नेता अशोक सिंघल से रिश्तेदारी थी।

मेरी हिचक का नतीजा यह हुआ कि मेरे मित्र मुझे घसीट कर प्रधानमंत्री के पास ले गए। मैंने देखा कि प्रधानमंत्री अपने चेहरे पर हताशा के भाव लिए बैठे हैं। वह मधुमेह के पुराने रोगी तो थे ही, उनको दिल की बीमारी भी थी। उनको देख कर लगता था कि वह एक अल्पकालीन सौदागर हैं जो अपना माल बेच कर सूरज डूबने से पहले घर चला जाना चाहता है। मुझे उनके चेहरे पर कोई दृढ़ निश्चय या आंखों में किसी तरह का संकल्प नजर नहीं आया। उन्होंने मुझ से कहा कि मैं उनकी आर.एस.एस. के सरसंघचालक से मुलाकात का बंदोबस्त करूं। मैंने कहा कि वह तो मेरी पहुँच से बाहर हैं। पर मैं उनकी मुलाकत एक अन्य शीर्ष नेता से करा सकता हूं। यह उनको पसंद नहीं आया। उनका अनुरोध आदेशात्मक था। हालांकि मेरे लिए उस का पालन करना जरूरी न था। पर मैं जानता था कि अगर नहीं मानूंगा तो क्या मुसीबत आएगी।

मैंने एक गैर आर.एस.एस., गैर बी.जे.पी. मित्र की मदद ली। उन्होंने सरसंघचालक को केशवकुंज से लिया और वहाँ छोड़ दिया जहां मेरे कांग्रेसी मित्र अपने विशेष अतिथि का इंतजार कर रहे थे। बाद में मुझे पता चला कि आर.एस.एस. नेता और प्रधानमंत्री की मुलाकात बहुत सफल रही। मुझे बताया गया कि प्रधानमंत्री जब विद्यार्थी थे, तब महाराष्ट्र में उनका संघ से संबंध था। उनके कार्यालय का एक मुख्य कार्यकारी भी खाकी निक्कर ब्रिगेड का भूतपूर्व सदस्य था। प्रधानमंत्री को समझाया गया कि संघ परिवार का विवादास्पद मस्जिद को गिराने का कोई एजेंडा नहीं है। लेकिन वे सरकार से उम्मीद रखते हैं कि वह जल्दी से जल्दी मंदिर निर्माण के लिए सुविधाएँ दे। कहा जाता है कि उन्होंने यह आश्वासन भी दिया कि इलाहाबाद कोर्ट का फैसला आने तक संघ इंतजार करेगा। उन्होंने प्रधानमंत्री से विनती की कि वह कानूनी प्रक्रिया को तेज करवाएं।

बैठक के नतीजों में मेरी दिलचस्पी न थी। राजनीतिक व प्रशासनिक वातावरण का अध्ययन करने के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा था कि नरसिंह राव एक अच्छे प्रांतीय नेता थे। पर उनमें एक ऐसे राष्ट्र के जटिल मामलों से निबटने की कुशलता न थी जो इतिहास के बड़े संगीन मोड़ पर आ पहुँचा था। वह स्वामियों और धंधेबाजों की सोहबत ज़्यादा पसंद करते थे न कि इतिहास बनाने वाले और उसे झकझोरने वालों की।

नरसिंह राव और उनके दागी शासन की वजह से मैं संघ परिवार की ओर आकृष्ट नहीं हुआ। मुझे इसमें कोई संदेह नहँ था कि ये लोग देश को मुसीबत के भंवर में फंसाने जा रहे हैं। संघ से अपने संबंधों के कारण मैंने भारत के इतिहास व भूगोल की अनिवार्यताओं से आंखें नहीं मूंद रखी थीं। इस सहस्राब्दि के दौरान भारत टैगोर के शब्दों में 'मानवता का महासमुद्र' बन गया था। भारत की अस्तित्व रक्षा यथार्थपरक धर्मनिरपेक्षता के रास्ते पर चल कर ही हो सकती है। उसके राष्ट्रीय ढाँचे को हिंदू एकता मजबूती दे सकती हैं, हिंदू उग्रवाद नहीं।

25 नवंबर को मुझे के.एन. गोविंदाचार्य का फोन मिला। वह खुद को और अपने दो साथियों को हमारे घर पर भोजन के लिए आमंत्रित कर रहे थे। सुनंदा ने भरपूर शाकाहारी भोजन बनाया। हम ने गोविंदाचार्य, एस. गुरुमूर्ति और वी.पी गोयल के साथ इस का आनंद लिया। उसके बाद की चर्चा आधी रात से भी आगे चली। मेरे दोस्तों ने जो कुछ बताया उस से मुझे सिहरन सी हो गई। उन्होंने पर्यात सकेत दिए कि 6 दिसंबर 1992 को संघ परिवार मस्जिद को गिराने और उसके स्थान पर मंदिर का ढॉचा खडा करने के विरुद्ध नहीं है। मैंने कहा कि ऐसी घिनौनी हरकत के बडे विनाशकारी परिणाम सामने आएगे। सोमनाथ के विध्वंस का जवाब 1992 में नहीं दिया जा सकता। इतिहास को विध्वंस से दोबारा नहीं लिखा जा सकता। मेरे मित्र मेरे अंदेशे से सहमत नही हुए। उन्होंने कहा कि कार सेवकों को ढॉचा गिराने से रोकने के लिए मस्जिद के चारो ओर स्वयसेवको को लगा दिया जाएगा। मुझे आशंका थी कि इस तरह बाड लगाने से भावनाओ की अनियत्रित सुनामी लहरें उमड पडेंगी। क्या वे उन्माद में आई भीड को नियत्रित कर सकेगे ?" जरूर," उन्होंने कहा। इस तरह के नट के रस्सी पर चलने वाले संतुलन से मुझे बेचैनी महसूस हुई। इसका नतीजा विनाशकारी हो सकता था।

उन्हें उम्मीद थी कि सारे देश से करीब 1 लाख कार सेवक आएँगे। उन्हें उम्मीद थी कि अयोध्या के कार्यक्रमों से हिंदू एकता को बल मिलेगा।

उनका बहुत कठोरता से विरोध करने का कोई फायदा न था। मैने पाकिस्तान की अंदरूनी नाजुक राजनीतिक स्थिति की चर्चा की। अफगानिस्तान की लोमहर्षक घटनाओं की ओर उनका ध्यान खींचा। उत्तरपूर्व, पजाब व कश्मीर की कानून व्यवस्था की खराब हालत की चर्चा भी की।

मेरे मित्र मुझ से सहमत नहीं हुए। गोविंद चुप थे। शायद यह उनका व्यवहारकौशल था। भू-राजनीतिक पडोस के क्षेत्र और विश्व की सामान्य परिस्थितियों से भी वे अनजान-से थे। भारत में कई निशानों पर हमला करने वाले और भारतीय जनता के एक बडे हिस्से को जानमाल की हानि पहुंचाने वाले इस्लामी बलों की ताकत का वे अनुमान नहीं लगा रहे थे। मेरे दोस्तों ने मुझे बताया कि अध्योध्या में एकत्रित जनसमुदाय शक्ति प्रदर्शन का प्रतीक होगा।

दिसंबर ही क्यों ? मैंने पूछा। इस पर गुरमूर्ति ने जवाब दिया कि मुझे इतिहास को दोबारा पढना चाहिए। क्या महमूद गजनवी ने सोमनाथ मंदिर दिसंबर 1025 में नहीं तोडा था ?

मुझे तसल्ली हुई कि भीड जुटाना सचमुच प्रतीकात्मक था। मुझ पर हिंदुओं के प्रिय सोमनाथ मंदिर के विध्वंस का असर था। यह राष्ट्र के लिए कितना शर्मनाक था। इसी कारण आडवाणी ने अपनी रथयात्रा इस ऐतिहासिक नगरी से आरंभ की थी। यह प्रतीकात्मता स्पष्ट थी। मैंने सोचा कि देश को एक जबरदस्त भूकंप का झटका लगने वाला है।

मैंने यह जानकारी अपने तक नहीं रखी। अगली सुबह ही मैं निदेशक आई.बी. से मिला और उन से 6 दिसंबर 1992 को होने वाली सभावित घटनाओं के प्रति अपनी आशंका जताई। वह मेरे आकलन से सहमत थे। उन्होंने मुझे भरोसा दिलाया कि सरकार सारी स्थिति से अवगत है। इंटेलिजेंस में भी कोई कसर नहीं है। मैंने उनका ध्यान एक और हिंदू संगठन शिव सेना के बाल ठाकरे व मोरेश्वर सावे की गतिविधियों की ओर आकृष्ट किया। इस बात के संकेत मौजूद थे कि शिव सैनिक हिंदू क्षुद्रराष्ट्रवाद की प्रतियोगिता में आर.एस.एस. और वी.एच.पी. स्वयसवकों को पीछे छोडते हुए कानून अपने हाथों में लेने के उन्माद से ग्रस्त हैं। निदेशक

मेरी इस बात से भी सहमत हुए। उन्होने सलाह दी कि मै अपनी तकनीकी जानकारी का इस्तेमाल करते हुए उस दिन अयोध्या मे होने वाली घटनाओ की वीडियो कवरेज का इंतजाम करूँ। मैंने आई बी द्वारा आधिकारिक तौर पर लगाई गई एक टीम के अतिरिक्त एक और टीम इस काम पर लगा दी। मेरी टीम एक लोकप्रिय अग्रेजी दैनिक के तौर पर काम कर रही थी और वह भीड के ऐन बीच मे थी। आई बी की औपचारिक टीम मनोवैज्ञानिक दबाव मे थी। वह अधिकाशतः टेलीफोटो लेसो पर निर्भर थी और सारे घटनाक्रम के स्थिर फ्रेम ले रही थी।

कुछ लेखकों ने एक षडयत्र का सिद्धात प्रतिपादित किया है। इसके अनुसार आर एस एस.वी एच.पी, बी जे पी और शिवसेना के नेताओ ने मिल कर यह साजिश रची थी। उन्होने और सरकारी एजेंसियो ने इस बाबत केशव कुज मे 5 दिसबर को हुई एक बैठक का उल्लेख भी किया है। इसमें एल के आडवाणी, एम एम जोशी व अन्य सम्मिलित हुए थे। मुझे इस बैठक की अच्छी जानकारी थी। वहॉ स्पष्ट रूप से किसी साजिश की घोषणा नही की गई थी। वहा यह मौन सहमति और सकल्प था कि अयोध्या राजनीतिक लाभ के लिए हिदुत्व की भावनाओ को शिखर तक पहुँचाने का एक अनोखा अवसर था। लोहा गरम था और यही मौका था चोट करने का।

इस बैठक मे अयोध्या के जमावडे के व्यावहारिक पक्ष पर चर्चा हुई थी। इसमे सपष्टत तय हुआ था कि कार सेवको को काफी अदर तैनात किया जाएगा ताकि वे परिवार के फुटकर सदस्यो, और भडकाने वालो को मस्जिद को नुकसान पहुचाने से रोक सके। ढॉचे को गिराने का कोई औपचारिक या अनौपचारिक निर्णय नही लिया गया था। असल मे मैने इस बारे मे निदेशक को एक विस्तृत रिपोर्ट भी सौपी थी। इसमे मैने यह जोडा था कि सघ के नेता शायद उन्मत्त भीड पर काबू पाने मे सफल न हो सके। मै केवल यह कहना चाहता हू कि आर एस एस / बी जे पी नेताओ का इरादतन ऐसा कुछ करने का विचार न था। लेकिन यह सवाल तो उठाया ही जा सकता है कि वे अपनी इस घेराबदी की कुशलता के प्रति इतने आश्वस्त किस तरह थे? वे कैसे इतने निश्चित थे कि इस तरह की उन्मादी सुनामी लहरे उठा कर उनको अपनी आवाज से थम जाने का हुक्म दे सकते है? मेरा सदा से विश्वास रहा है कि लहरे किसी भी तरह की हो उनको ऐसी कार्रवाइयो से रोका नही जा सकता।

बाद मे वीडियो फुटेज ने मेरी आशका को सच साबित किया। मुझे इसमे कोई शक नही रहा कि शुरुआत शिवसैनिको ने की। उन्होने स्वयसेवको और पुलिस का घेरा तोडा। उत्तर प्रदेश के बी जे पी मुख्यमत्री, जिन्होने बाद मे अपने आप को धर्मनिरपेक्षता के दूध में धो डाला और अब हाल ही मे जिन की सगठन मे वापसी हुई है, चुपचाप वहॉ तमाशा देख रहे थे। स्वेच्छा से या फिर आर.एस एस के उच्च नेताओ के निर्देश से। उन्होने यह सब केद्र सरकार के निर्देश से नही किया। मेरे खयाल से उस दुग्ध क्षेत्र का सारा दूध भी उनकी इस सोची-समझी निष्क्रियता को धो नही सकता। शिवसेना के स्वयसेवको ने आरभ मे जो बाड को तोडा तो उस से मानो मुख्यद्वार खुल गया। फिर तो बाकी की घटनाऍ उस भीड़ की मनमानी पर निर्भर थी जिसे संघ परिवार के नेता अपने उत्तेजनात्मक भाषणो से और भी उकसा रहे थे। आर एस एस. का सारा अत्मविश्वास धराशायी हो गया। इससे सिद्ध हो गया कि आग की लपटें अक्सर आग लगाने वाले के नियत्रण से बाहर हो जाया करती है। एल के आडवाणी ने मच से आग उगली। पर वह लपटो पर काबू न पा सके। वीडियो टेपो से साबित हो गया कि सुनामी लहरें

उठाने वाले वही थे। पर बाद मे नाजुक घडी मे उन पर काबू नही पा सके। इस जान-बूझ कर छेडे गए सभ्यताओं के सघर्ष का खमियाजा भारत आज भी भुगत रहा है।

उस मौके पर हिदू समाज के एक तबके ने जो खुशी जाहिर की वह उस खुशी से कम बीभत्स नहीं थी जो सिखो के एक वर्ग ने इदिरा गॉधी की हत्या पर प्रकट की थी। मुसलमानों को इस से जो अपमान का अनुभव हुआ वह उस से कम न था जो हिंदुओ को सोमनाथ मंदिर के टूटने या मथुरा अथवा काशी के पवित्र स्थानो के विध्वस से हुआ होगा। लेकिन इतिहास की किसी घडी में किए गए गलत काम को किसी दूसरी घडी मे गलत काम कर के सुधारा नही जा सकता। हम लौट कर वक्त मे वापस तो नही जा सकते। एक समुदाय की शर्मिंदगी को दूसरे समुदाय पर शर्म थोप कर धोया नही जा सकता। कट्टर हिंदू तत्व और आहत मुस्लिम इस सबक को भूल गए। भारत एक बार फिर साप्रदायिक हिसा की चपेट में आ गया।

ध्वस के बाद जो हिदू-मुस्लिम हत्याकाड हुआ वह विभाजन के खून-खराबे से कम उग्र न था। 9 जनवरी 1993 को मै मुबई के जोगेश्वरी इलाके मे हिदू मुसलमानो की उन्मादी भीड में फस गया। दोनो पक्षो ने मेरी चिन्ह रहित सरकारी कार को आग लगाने की कोशिश की। एक कुशल अधिकारी मुझे सुरक्षित कोने मे ले जाने मे सफल रहा। उसने सलाह दी कि जब तक सशस्त्र पुलिस बल आ कर मुझे यहा से निकालता नही, छिपने वाले स्थान से बाहर न आऊँ।

शिव सैनिकों और हिदू धर्माधो ने दिल्ली सरकार की ढुलमुल नीति व महाराष्ट्र कांग्रेस के महारथियों की राजनीतिक बाजीगरी का पूरा फायदा उठाया। नरसिह राव ने एक बार और साबित कर दिया कि वह भारत जैसे जटिल समस्याओ से घिरे देश पर शासन करने लायक न थे। उनको घटनाओ के जटिल ताने-बाने की जानकारी तक न थी। अयोध्या में विध्वंस के खंडहर थे। सांप्रदायिक आग की लपटे चारो ओर फैल रही थी। पर वह सोनिया गॉधी को दरकिनार कर के पार्टी मे अपनी स्थिति मजबूत करने मे लगे थे। मानो इसमें कामयाब हो जाने से उनको राजनीतिक अमरत्व हासिल हो जाएगा। जिसे अदर का आदमी समझा जाता था अततः वह बाहरी साबित हुआ।

* * * *

जनवरी 1993 मे मुंबई मे छोटे पैमाने पर जो बम विस्फोट हुए थे मै उनकी चर्चा करना चाहूँगा। बाद में पता चला कि इनका सबध अहले हदीस गुट से था। इसके सरगना डा जलीस अंसारी थे जो पेशे से डॉक्टर थे। दिसबर 5/6 1993 को पाच महत्वपूर्ण रेलगाडियों मे शृंखलाबद्ध बम विस्फोट हुए थे। ये थे कोटा (राजस्थान के निकट), सूरत (गुजरात), कानपुर (उत्तर प्रदेश) और हैदराबाद (आध्र प्रदेश) मे। पॉच आपराधिक मामले दर्ज किए गए और जांच के लिए सी बी.आई को सौपे गए। असारी के एक साथी अब्रे रहमत असारी उर्फ कारी ने पाकिस्तान में आई एस आई सचालको से बम बनाने का प्रशिक्षण लिया था। 2003 में मुंबई के निकट घाटकोपर में जो बम विस्फोट हुआ था उस मे भी इसी गुट का हाथ बताया जाता है।

अहले हदीस (धर्मग्रंथ के लोग) आंदोलन एक कट्टर इस्लामी आदोलन है। ये अपने आप को वहाबियों से भी बढ कर शुद्धीकरण वाले समझते है। अहले हदीस गुट का एक मुख्य केंद्र दारुल उलूम जमीअत उस्सलेहत मे है। यह महाराष्ट्र में मालेगॉव में स्थित है। इस आंदोलन के चंगुल सारे भारत, बांग्लादेश और पाकिस्तान में फैले हुए है। इस्लाम के चारों प्रमुख मत

– हनफी सलाफी हबाली और मालिकी–शुद्धीकरण वाले इस सगठन से सबध रखते हैं। यह समय-समय पर खालिस इस्लाम के अनुयायियों के लिए फतवा जारी करता रहता है। यह अल कायदा और अरब जगत से शुद्धतम सार तत्व उपलब्ध करता रहता है। बताया जाता है कि पाकिस्तान की आई एस आई ने अहले अदीस को भारत के जम्मू-कश्मीर मे कुछ जिहादी सगठन खडे करने के लिए मदद दी है।

* * * *

मेरे लडको के लाए वीडियो टेप और करीब 70 स्थिर चित्रो ने इस बात के पर्याप्त सुबूत दे दिए कि अयोध्या मे शिवसैनिको व सुनामी से प्रभावित भगवान राम के भक्तों ने काफी हुडदग किया था। मैंने अपने घर पर निजी तौर पर वह वीडियो चलाया। इसे राजेद्र शर्मा के एन गोविदाचार्य और उमा भारती ने देखा। वह मुझसे सहमत थे कि मस्जिद पर हमले की शुरुआत शिवसेना वालों ने की। बाद मे इस टेप को एक महत्त्वपूर्ण रिकार्ड के तौर पर उपयुक्त अधिकारी को सौंप दिया गया।

बहुत बाद मे एन डी ए सरकार के दिल्ली मे सत्ता मे आन के बाद लिब्राहन आयोग ने बी जे पी के शीर्ष नेताओ को बयान देने के लिए अपने सम्मुख तलब किया था। तब राजेद्र शर्मा के माध्यम से एल के आडवाणी ने दो बार मुझे बुलाया। उन्होने वीडियो टेप का विवरण जानना चाहा। वह यह भी चाहते थे कि मैं उसे सबूत के तौर पर पेश करूँ। पर मेरे पास टेप की कोई कॉपी नहीं थी। उसकी एकमात्र कॉपी सभवत दिल्ली से बाहर कहीं आई बी के अभिलेखागार मे जमा कर दी गई थी। मैंने मौखिक रूप से उनको टेप का विवरण दिया और अनुरोध किया कि वह टेप को इटेलिजेस ब्यूरो के निदेशक से प्राप्त कर ले।

निदेशक आई बी ने आडवाणी को वह टेप दिया या नही यह मुझे नही मालूम। इटेलिजेस सगठन आमतौर पर अपने अभिलेखागारो मे से कोई चीज खोज कर निकालते नही। भले ही उसकी जरूरत राष्ट्र के इतिहास की गलती सुधारने के लिए ही क्यो न हो। तत्कालीन निदेशक ने प्रधानमत्री कार्यालय के कुछ अधिकारियो से निकट सबध बना लिए थे। मुझे पता चला कि उन्होने उनको सलाह दी कि वह टेप न दे जो आडवाणी को इस समस्या से छुटकारा दिलाने मे मदद करे। सघ परिवार कोई बहुत सतुष्ट परिवार न था। आडवाणी को अभी भी प्रधानमत्री पद का प्रबल दावेदार माना जा रहा था।

इस कहानी का एक और रूपातर है जिस पर मै कोई टिप्पणी नही करना चाहता

निदेशक ने आडवाणी और वाजपेयी को वह प्रमाण दे दिया था और पुरस्कार में राज्यपाल का पद माग लिया था। इस मामले मे बहुत सिर खपाने की जरूरत नही है। राज्यपालो को सरकार का आकस्मिक वेतनभोगी सेवक माना जाता है। इस तरह के मामले सरकार मे आए दिन होते रहते हैं। यह सब चलता है।

❮31❯

आतंक का पलटवार

कोई भी समूचे राष्ट्र को आतंकित नहीं कर सकता जब तक कि हम सब की उसके साथ मिलीभगत न हो।

एडवर्ड आर. मुरो.

अयोध्या की घटना के तुरत बाद मैंने अपनी खुद की पहल पर आई.बी. की सहायक यूनिटों को एक अनुरोध पत्र भेज दिया था कि वे आई.एस.आई. प्रायोजित इस्लामी उग्रवादियों के संभावित पलटवार से सचेत रहें। आई.बी.,गृहमंत्रालय या अन्य सरकारी विभागों द्वारा जारी सुरक्षा चेतावनियों से यह भिन्न था। दुर्भाग्य से आई.बी. की चेतावनी सांप्रदायिकता को ले कर थी। इसका परिणाम केवल आर.एस.एस., बी.जे.पी. और वी.एच.पी. के कुछ नेताओं की गिरफ्तारी और इन संगठनों पर प्रतिबंध के रूप में सामने आया। बाग्लादेश और पाकिस्तान व अन्य इस्लामी देशों में विरोध का जो ज्वार उठा उसे विभाजन बाद की हिंदू-मुस्लिम शत्रुता और घृणा-प्रचार मान लिया गया। मेरी चेतावनी विशिष्ट थी। इसका आधार पाकिस्तान में मेरे एकमात्र नाजुक संपर्क से मिली इंटेलिजेंस थी। बांग्लादेश से निश्चित इटेलिजेंस उपलब्ध हुई कि आई.सी.एस.,हूजी व अल जिहाद के आई.एस.आई. से संबद्ध कुछ विध्वंसकारी भारत में योजनाबद्ध तरीके से घुसे हैं।

सब से अधिक संवेदनशील इंटेलिजेंस मिली सीमा पार के एजेंट से। वह मेरे सरकारी अनुमति के बिना बनाए एजेंटों मे से एक था। इसमे कहा गया, " यहां और दुबई में आई. एस.आई. ने भारत में विस्फोटक व हथियार भेजने के लिए कदम उठा लिए हैं। ये गुजरात व महाराष्ट्र के समुद्र तटों पर उतारे जाएँगे। इन को वे मुसलमान ग्रहण करेंगे जिनका इरादा अयोध्या में मस्जिद तोडे जाने का बदला लेना है। "

निदेशक के साथ सलाह कर के मैंने एजेंट से वापस सपर्क साधने की कोशिश की। लेकिन मेरे बिचौलिए ने बताया कि वह स्टेशन से बाहर चला गया है। उससे तत्काल संपर्क करना सुरक्षित न होगा। हमारे पास उस तरह की सूचना देने वाला पाकिस्तान में कोई दूसरा एजेंट नहीं था। रॉ को क्या जानकारी मिली थी उसके बारे में हमें कोई सूचना न थी।

मैं उस सूचना की सच्चाई के बारे में पूरी तरह आश्वस्त न था। यह भी पता न था कि एजेंट को यह जानकारी किस स्तर से मिली है। इंटेलिजेंस के लिहाज से यह कच्चा माल था जिसे सरकार तक नही पहुँचाया जा सकता था।

इसे दाखिल दफ्तर किया जाना था। फिर भी मैंने गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, राजस्थान और पंजाब के सहायक यूनिटों को 23 दिसंबर 1992 के आसपास टेलीप्रिंटर पर एक चेतावनी भेजी। पश्चिम बंगाल और असम के यूनिटों को भी चौकन्ना कर दिया गया। मेरे पास निश्चित

सूचना तो नहीं थी। पर मैंने गुजरात और महाराष्ट्र मे तस्करों के माल उतारने के ठिकानों की सूची भेज दी। ये उथले समुद्र में छोटे बंदरगाह थे या फिर ऐसे ठिकाने थे जहां रक्षक नहीं होते। बबई के शृंखलाबद्ध बम विस्फोटों द्वारा देश मे विध्वस का ताडव होने से पहले आई.बी. नौका अवतरण के उथले समुद्री ठिकानो के प्रति अनभिज्ञता मे मगन थी। उसे इस ओर से होने वाले खतरे और पाकिस्तान की इस मार्ग से चोट करने की क्षमता का आभास तक न था। ये ठिकाने राज्य पुलिस व केद्रीय उत्पादन शुल्क व सीमाशुल्क विभाग की कल्पना पर छोड दिए गए थे।

मैंने करीब एक दर्जन ऐसे पोत या नौकाएँ ठहराने के ठिकानो की सूची दी थी। ये ठिकाने गुजरात में भुज में जाखू से काठियावाड मे जाम सलाया तक और गुजरात- महाराष्ट्र सीमा पर वलसाड तक थे। महाराष्ट्र मे बबई, थाने, दिवा, अलीबाग, भालगाव, डाडी,रत्नागिरि, जैतपुर और उन के आसपास के अवतरण ठिकानो पर जोर दिया गया था।

चेतावनी प्रपत्र में सहायक यूनिटो से यह अनुरोध भी किया गया था कि वे राज्य प्रशासन को भी यह सारी जानकारी दें और उनसे रोकथाम की समुचित कार्रवाई करने को कहें। मैंने भारत सरकार को कोई चेतावनी नहीं भेजी क्योकि मेरे वरिष्ठ अधिकारियों की राय में मैं एकमात्र सूचना के आधार पर अतिसक्रिय हो रहा था जिस की पुष्टि किसी अंदरूनी या बाहरी एजेंट द्वारा नहीं की जा सकती थी। निदेशक ने सिर्फ दफ्तर की प्रति पर अपने हस्ताक्षर किए और उसे फाइल के हवाले कर दिया गया। कायदे से उन का फैसला सही था। लेकिन अगर इस जानकारी को देश में और बाहर की घटनाओं की पृष्ठभूमि मे देखा जाता तो उसके भिन्न अर्थ निकलते।

जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं, इटेलिजेंस ब्यूरो को आई एस आई का मुकाबला पंजाब, कश्मीर, उत्तरपूर्व और साप्रदायिक विषाणु को इन अलग-अलग परखनलियों में करने की आदत-सी प्रड गई थी। जब वें इस मिश्रण का मंथन करते अलग-अलग परिणाम सामने आते। मेरे लिए अपने वरिष्ठ और कनिष्ठ सहयोगियो को यह समझाना मुश्किल हो रहा था कि वे आई.एस.आई को एक सपूर्ण भू-राजनीतिक कैसर के तौर पर जानने की कोशिश करे जो आक्रामक हो गया है।

13 जनवरी 1993 को या उसके आसपास मुझे पाकिस्तान स्थित उसी मित्र का एक और संदेश मिला। इसमें उसने मुझसे कहा था कि मैं उससे भुज के उत्तर में मिलूँ। यह स्थान रणकच्छ के कुछ किलोमीटर अंदर की तरफ था। यह महत्वपूर्ण मुलाकात आधी रात के बाद हुई। मित्र ने मुझे भारत भेजे जाने वाले विस्फोटकों व हथियारों के बारे मे विस्तृत जानकारी दी। उसने बताया कि यह सामान वाणिज्यिक पोत मे गोथ खिरसर और क्राटी बंदर से रवाना हो रहा है। ये दोनों स्थान दक्षिणपूर्व सिंध के निचले इलाके में है। हथियार और विस्फोटक लाने वालों के बारे में निश्चित जानकारी उसे नहीं थी। लेकिन एक आम जानकारी यह थी कि इसे भारतीय तट तक पहुँचाने के लिए आई.एस.आई ने कुछ बडे मछुआरों को राजी कर लिया है। उसे भारत में सामग्री उतारे जाने के संभावित ठिकानों की निश्चित जानकारी न थी। पर वह इतना जरूर जानता था कि इसकाम को अंजाम देने के लिए खाडी के किसी भारतीय अपराधी गिरोह को लगाया गया है।

मेरे दिल्ली लौटने पर एक और चेतावनी प्रपत्र जारी किया गया। इसमें आसन्न खतरे की चर्चा करते हुए इस संभावना का जिक्र किया गया कि कोई मुस्लिम अपराधी / सांप्रदायिक

गुट बंबई और गुजरात में अहमदाबाद, जामनगर और जोदिया बंदर में लिप्त हो सकता है। सरकार को इस बार भी सूचना नहीं दी गई। यह मैं बॉस की अनुमति के बिना नहीं कर सकता था। नियम यह था कि केवल आकलित व संशोधित सूचना ही उपभोक्ता को देनी चाहिए।

अधिकांश सहायक यूनिटों ने नित्यक्रम के तौर पर इस पर कार्य किया। अपने इलाके के मुसलमान बडे अपराधियों को सूचीबद्ध करने में उन्होंने ढुलमुल रवैया अपनाया। उन की इस नस्ल के प्राणियों तक पहुंच ही न थी। ये मामले मौटे तौर पर सीमाशुल्क व उत्पादन शुल्क के अधिकारियों व राज्य पुलिस की कृपा पर छोड दिए गए। उन्होने भी इसमें विशेष दिलचस्पी नहीं दिखाई। हालांकि उन को इस की जानकारी दे दी गई थी। जिन दिनों में यह विध्वंसकारी सामग्री भारत भेजी जा रही थी, न तो केद्र सरकार और न ही राज्य सरकार की एजेंसियों के पास आई.एस. आई. या किसी अन्य की शत्रुतापूर्ण हरकत का पता लगाने के साधन मौजूद थे। राजीव गाँधी की लिट्टे द्वारा हत्या के बाद तमिलनाडु के आसपास के कुछ भेद्य ठिकानों को तोपने का कुछ काम किया गया था। यह भी दिखावटी ही ज्यादा था।

आज के तटरक्षको का उद्घाटन 18 अगस्त 1978 को हुआ था। इसका काम देश की समुद्री सीमा की रक्षा करना, तस्करी व अतिक्रमण व गेरकानूनी तरीके से मछली का शिकार करने को रोकना था। पर इसने अधिक ध्यान गहरे समुद्र पर केद्रित किया। उथले पानी की तरफ इसका ज्यादा ध्यान नही था। इसने भारत, पाकिस्तान व खाडी क्षेत्र से आने वाले लघुपोतों की रोकथाम और पडताल का काम नही किया। रक्षा-व्यवस्था की इस खामी का आई एस.आई. ने भरपूर फायदा उठाया। बंबई, कराची और दुबई के बीच अपनी गतिविधियां चलाने वाले दाऊद इब्राहीम के मार्फत उसने महाराष्ट्र व गुजरात के अवतरण ठिकानों पर विस्फोटक व हथियार उतारे। खेद है कि केरल, कर्नाटक, महाराष्ट्र व गुजरात के छोटे अरक्षित अवतरण स्थलों के प्रति सुरक्षा या इटेलिजेंस की सम्यक व्यवस्था आज भी नहीं है।

* * * *

दाऊद इब्राहीम और आई एस.आई के सहयोगियो के अग्रिम पजे ने 12 मार्च 1993 को बंबई पर आघात किया। इसमें 257 जाने गई और 713 घायल हुए। इसमें कोई शक नहीं रहा कि आई.एस. आई. और इस्लामी जिहादी भारत में कही भी, कभी भी चोट कर सकते हैं। भारतीय इंटेलिजेंस समुदाय को तब भी यह समझ मे नही आया कि 1992 तक आई.एस.आई. और अलकायदा इस्लामी आतंकवाद मे पूरे साझेदार बन चुके थे। भारत के हिंदू क्षुद्र राष्ट्रवाद पर जवाबी हमला करने के लिए उन्होंने पर्याप्त क्षमता अर्जित कर ली थी। इस बात को संघ परिवार ने भी नहीं समझा। वे नही समझ पाए कि अयोध्या व बबई की घटनाओ ने छोटे पैमाने के सांप्रदायिक उपद्रवों को विश्वस्तरीय इस्लामी जिहाद मे बदल दिया है। भारतीय मुसलमानों के भेद्य वर्ग को योजनापूर्वक निशाना बनाया जा रहा था ताकि छद्मयुद्ध को सीमावर्ती राज्यों और जातीय गडबडी वाले स्थानो से भारत की हृदयभूमि तक लाया जा सके।

बंबई के शृंखलाबद्ध बम विस्फोटों के बाद यह शोर भी उठा कि इंटेलिजेंस में कमी रह गई थी। इंटेलिजेंस ब्यूरो को एक अक्षम्य स्मृतिलोप ने ग्रस लिया था। मैंने वे रिपोर्टें और पत्र निकाले और निदेशक को बताया कि पहले से चेतावनी दी गई थी और इस की जानकारी मुख्य राज्य सरकारों को भी दे दी गई थी। मेरे खयाल से मैंने जो ये फुटकर और 'अनधिकृत' सूचनाएँ एकत्रित की थीं उन्होंने कम से कम एजेंसी की कुछ चमडी तो बचाई ही।

किसी को भी दोष नही दिया जा सकता था। आई बी आई एस आई और अन्य जिहादी ताकतो का मुकाबला करने के लिए तैयार नही हो पाई थी। ऐसा कोई परियोजना प्रपत्र तक न था। इटेलिजेस के वछित ढाँचे का अभाव था। आई बी अधिकारियो को इतना प्रशिक्षण और प्रोत्साहन नही मिला था कि वे आई एस आई और उसके सहयोगियो को पाकिस्तानी व्यवस्था के एक अग और अल कायदा जैसे अतर्राष्ट्रीय जिहादी सगठनो के एक अग के तौर पर पहचान कर उस का मुकाबला करने की क्षमता अजित करे। मेरे ख्याल से एजेसी के मेरे मित्रो ने अब अधिक सगठित तौर पर इन शक्तियो का मुकाबला करने के साधन और तरीके निकाल लिए है।

जहा तक रॉ का सवाल है उसके बारे मे मै कुछ टिप्पणी नही करना चाहता। लेकिन मैं इतना तो कह ही सकता हूँ कि हमे सहयोगी सगठन से सीधे या किसी भी सरकारी स्रोत से कोई इटेलिजेस नही मिली थी। राष्ट्रीय स्तर की कोई जाच ही इस सच्चाई का ठीक-ठीक पता लगा सकती है। लेकिन उस देश मे सच्चाई जानने की उत्सुकता किस होगी जिस का नारा 'सत्यमेव जयते' है। नारे तो जनता को विमोहित करने के लिए होते हे। वे तथ्यपरक नही होते।

* * * *

शृखलाबद्ध विस्फोटो के कुछ दिन बाद मेरी निदशक के साथ बातचीत हुई। मैने पूछा कि क्या मै आई एस आई के इस जबरदस्त आघात की आपराधिक साजिश का पता लगाने मे कुछ मदद कर सकता हूँ ? मैंने बबई और अहमदाबाद स आने वाली सूचना सामग्री को देखने की माग भी की। इस पर उन्होने बताया कि जा रिपार्ट उनक पास आई है वे अपुष्ट जानकारियो तथा घटना के बाद क ब्योरे तक सीमित हे। ये विवरण मात्र थे ठोस इटेलिजेस नही। जो जन-इटेलिजेस या तकनीकी-इटेलिजेस उपलब्ध थी वह बबई के माफिया गुटो और आई एस आई के बीच के जटिल सपर्को पर बहुत कम प्रकाश डालती थी। आई बी या राज्य पुलिस इटेलिजेस ने आई एस आई या पाकिस्तान स्थित जिहादी सगठना के किसी सेल की स्पष्ट पहचान नही की गई थी। मैने तर्क दिया कि यह तो आई एस आई की एक प्रायोजित कार्रवाई थी। एजेसी ने अपनी घृणित योजना को अजाम देने के लिए जरूर किसी मुस्लिम अपराधी की मदद ली होगी। बात समझ मे आने वाली थी। लेकिन टाइगर मेमन परिवार के साथ कुछ सबध होने के अलावा स्पष्ट तोर पर कुछ अधिक सामने नही आया।

मैने निदेशक से कोई वादा नही किया। लेकिन इस बात की तह तक जाने के लिए अनिश्चितता के जल को खगालने का फैसला कर डाला। आई बी की सहायक यूनिट और राज्य पुलिस के साथ कुछ आरभिक बातचीत के बाद मैने अपरपरागत मार्ग का अनुसरण करने का निश्चय किया।

मेरा पहला पडाव किसी समय के भयावह तस्कर हाजी मस्तान का सोफिया स्ट्रीट वाला आवास था। उस तक पहुच का रास्ता उसके एक चेन्नई स्थित सहयोगी ने करीब एक साल पहले मेरे लिए खोला था। उस व्यक्ति के बबई के अडरवर्ल्ड गुजरात के चमडे का कारोबार करने वाले तमिल मुसलमानो तथा श्रीलका के कुछ सदिग्ध तमिलो से बहुत फलते-फूलते सपर्क थे। कुछ सुरक्षा कारणो से मै उस का नाम नही लेना चाहता। वह मित्र विमान से बबई आया। उसने हाजी मस्तान से मेरी मुलाकात का बदोबस्त किया। कुछ मुलाकातो के बाद हाजी थोडा खुले। उन्होंने बताया कि ध्वसक सामग्री आई एस आई ने उरान /अलीबाग क्षेत्र के पास

कहीं उतारी थी। बहुत जोर देने पर उसने मुझे बांद्रा रेलवे स्टेशन के पास की एक मुस्लिम बहुल बस्ती बहरामपाडा में एक आदमी के पास भेजा।

एक हिंदू के लिए बहरामपाडा में घुसना और उससे बाहर निकलना किसी भयकर दुस्वप्न से कम न था। जनवरी के दंगों और शृंखलाबद्ध बम विस्फोट के बाद से खासतौर पर हिंदुओं ने इस गंदी बस्ती के कुछ इलाकों से हो कर जाना बंद कर दिया था। हाजी मस्तान ने जिस आदमी के पास मुझे भेजा था (नाम गुप्त रखा गया है) उसने एक और आदमी से मेरी मुलाकात तय करवा दी। यह व्यक्ति दाऊद इब्राहीम का सहयोगी था। वह मुसलमान था लेकिन उसने एक हिंदू कोली औरत से शादी की थी। वह दक्षिणा ले कर बात करने को राजी हो गया। तीन मुलाकातों के बाद उसने जानकारी दी। उसने आई एस आई. और उसके बंबई स्थित सहयोगियों की योजना की सारी रूपरेखा स्पष्ट रूप से बताई। ये लोग हिंदुओं को अयोध्या मस्जिद तोडने व बाद के सांप्रदायिक दंगे की सजा देने के लिए आई एस.आई. के साथ मिलने को तैयार हो गए थे। यह अच्छी शुरूआत थी।

दाऊद का यह अंडरवर्ल्ड सहयोगी पहला व्यक्ति था जिसने टाइगर मेमन परिवार की तरफ उंगली उठाई थी। उसके अनुसार संभावित अवतरण स्थल (बाद में इस की पुष्टि भी हुई) रायगढ जिले में शेकाडी था। उसने यह भी बताया कि कुछ विस्फोटक माहिम क्रीक में दबा कर रखा गया है। इसे बाद में निकाल कर चुंनिदा निशानों के लिए इस्तेमाल किया जाएगा।

यह आगे बढने के लिए काफी जानकारी थी। मैं बंबई आई.बी. के संचार माध्यम का उपयोग किए बिना निदेशक को निरंतर इसकी सूचना देता रहा। मैं दरअसल अपने तईं खतरा मोल ले कर एक अंग्रेजी दैनिक के लिए स्वतत्र पत्रकार के तौर पर काम कर रहा था। वैसे मेरे पास प्रमुख पत्रों के कम से कम तीन नकली परिचय पत्र थे। एक टीवी चैनल का जाली परिचय पत्र भी था। तकनीकी विभाग के हमारे लडकों ने ये बडी खूबी से तैयार किए थे।

जिस दूसरे व्यक्ति से मैंने संपर्क किया वह थे अरबपति उद्योगपति धीरूभाई अंबानी। उन को मैं कुछ अर्से से दिल्ली के एक मित्र के माध्यम से जानता था। अपेक्षाकृत कनिष्ठ अधिकारी को उसके लिए शिव सेना प्रमुख बाल ठाकरे, गुजरात के बी.जे.पी. नेता केशूभाई पटेल और गुजरात के तत्कालीन मुख्यमंत्री छबीलदास मेहता से मुलाकात के रोडे दूर करने का अनुरोध ले कर उनके पास आने से अंबानी थोडे हैरान हुए।

धीरूभाई दिल्ली के अधिकारियों के साथ पैसा, व्यापार और लेन-देन के मामलों के अभ्यस्त थे। मुझे आश्चर्य हुआ जब इतने सम्माननीय उद्योगपति ने बहुत अधिक सहयोग किया। मैंने देखा कि देशभक्ति की भावना उन में बहुत बलवती थी। वह पश्चिमी क्षेत्र की स्थिरता के प्रति भी चिंतित थे जहाँ उनके मुख्य उद्योग थे।

कठिनाई में देश की सहायता करने की धीरूभाई की स्वेच्छा का मैंने फायदा उठाया। जहाँ तक उनके देशप्रेम का सवाल था, इस बडे उद्योगति ने मुझे शिकायत का कोई मौका नहीं दिया। उन्होंने और उनके सारे परिवार, कोकिला बेन, मुकेश,अनिल, नीता और टीना–ने मुझे अपने परिवार के सदस्य की तरह माना। कुछ मौकों पर तो उन्होंने सुनंदा और मेरे दोनों बेटों को भी उसी रूप में स्वीकार किया। मैं कोकिला बेन की सादगी से अचंभित रह गया।

धीरूभाई ने बंबई और अहमदाबाद में प्रमुख व्यक्तियों से मेरी मुलाकात तो कराई ही, उन्होंने अपने निजी माध्यम से दुबई से मेरे लिए जानकारी भी हासिल की। मैं सरकार के किसी

पैसा बनाने वाले विभाग से न था। पर कोकिला बेन के अनुरोध पर मैंने समुद्रतटवर्ती उनके सारे परिसर का मुआयना किया और उसकी सुरक्षा तथा उनके सारे परिवार की व्यक्तिगत सुरक्षा के बारे में सुझाव दिए।

* * * *

सदा की भांति शिवसेना प्रमुख के आवास को बंदूकधारी व्यक्तिगत सुरक्षाकर्मियों ने कई घेरों में ले रखा था। अपने सामान्य विलक्षण व्यवहार को त्याग कर वे मुझ से बड़ी सहृदयता से मिले। चार मुलाकातों में उन्होंने मेरी पहचान राजन और गावली गैंग के सदस्यों से करवाई। ये लोग मुझे बंबई अडरवर्ल्ड के गहरे तलों तक ले गए। वहॉ मुझे सलीम कुट्टा, दादाभाई अब्दुल गफ्फार पारकर, भाई ठाकुर,मुहम्मद दोसा, पप्पू कलानी और जावेद चिकना जैसे नामों का पता चला। उनसे मुझे पता चला कि 12 मुस्लिम युवकों का एक दल पाकिस्तान और अफगानिस्तान के शिविरों में आई.एस आई. से प्रशिक्षण लेने के लिए रवाना हुआ था और 17 मार्च 1993 को मेनन परिवार पाकिस्तान के एक स्थान पर सकुशल पहुंच गया था।

उन में से एक ने मुझ से कहा कि वह मेरे साथ चल कर शेकादी के पास का वह रास्ता भी दिखा सकता है, पर मैंने मना कर दिया। एक तो उस स्थान का तापमान बहुत अधिक था। दूसरा बंबई के अंडरवर्ल्ड के सदस्य के साथ देखा जाना निरापद न था। बहरहाल मेरी बंबई के उन भयावह चरित्रों से अल्पकालीन मुलाकातें काफी दिलचस्प रहीं जिन को बॉलीवुड की फिल्मों में बहुत बढा–चढा कर पेश किया जाता है। उन मे से कुछ उतने ही भयावह और सम्मानित हैं जितने कि भारतीय तंत्र का प्रबधन करने वाले जो देश के उच्च पदों पर आसीन होने के लिए मतदान की पद्धति को तोडने-मरोडने की महारत रखते हैं।

बाल ठाकरे के स्वभाव की दो विशेषताओं ने मुझे प्रभावित किया। संकीर्ण महाराष्ट्रीय हितों और हिंदू राष्ट्रवाद के प्रति उनकी दृढ प्रतिबद्धता और अडरवर्ल्ड व अपराधियों के संगठित गिरोहों पर उन का प्रभाव। परं उन में जो असहिष्णुता का भाव था वह मुझे बहुत नहीं भाया। पर वह वैसे ही हैं। आप किसी चीते से नही कह सकते कि वह अपनी धारियाँ बदल ले। बालासाहब के बारे मे विधिवत अध्ययन करने से समसामयिक समाज विज्ञानियों को भारतीय राजनीति में राजनीतिक-अपराधी संबंधों की उत्पत्ति को समझने में मदद मिलेगी। इसके लिए चारा चोरों और ब्रीफकेस पकडने वालों का पीछा करने की जरूरत नहीं पडेगी।

मुख्यमंत्री छबीलदास मेहता ने अहमदाबाद के कुछ अपराधी किस्म के मुसलमानों तक पहुँचने में खासी मदद की। इन लोगों ने सिंध पाकिस्तान के छोटे अनाम बंदरगाहों से गुजरात तक चलने वाले गैरकानूनी लघुपोतों के बारे में बडी रोमांचक जानकारी दी। एक मुझे जाम सलाया ले गया। वहाँ उसने मुझे भारत, पाकिस्तान और खाडी के बीच इन पोतों की वास्तविक आवाजाही दिखाई। उसने बताया कि जाम सलाया के पास ही कही विस्फोटक उतारे गए थे, तकरीबन उन्हीं दिनों में जब दाऊद इब्राहीम और आई.एस.आई. ने शेखडी में अपनी विध्वंसक सामग्री पहुँचाई।

मैं अपनी निजी हैसियत से जिस गेस्ट हाउस में ठहरा था, केशूभाई पटेल वहाँ आए। उन्होंने मुझसे अहमदाबाद की चारदीवारी वाली नगरी के अंदर से कार्रवाई करने वाले कट्टरपंथियों के बारे में चर्चा की और कच्छ से ले कर सौराष्ट्र तक के समुद्रतट के मछुआरों से अपने संपर्कों के बारे में बताया। उन्होंने मेरा परिचय अथवाले से करवाया जो गुजरात व महाराष्ट्र के तटवर्ती इलाके के मछुआरों का बेताज बादशाह था। मेरी मुलाकात मछुआरा

समुदाय के कुछ प्रमुख लोगों से करवाई गई। इन में से अधिकांश हिंदू थे। वे तस्करों, मानव व्यवसायियों और मुस्लिम धर्मांधों की आपत्तिजनक गतिविधियो की रोकथाम में सहायता करने को तत्पर थे।

मैंने महसूस किया कि गुजरात में अंडरवर्ल्ड मे सांप्रदायिक आधार पर फूट पडनी शुरू हो गई है। अंडरवर्ल्ड में जातीय या पेशे की एकजुटता थी। लेकिन पाकिस्तान के सतत् प्रयत्नों तथा अयोध्या की दुर्भाग्यपूर्ण घटना के कारण उस में बडी दरार पड गई थी। कुछ समय के लिए अपराध अंडरवर्ल्ड का लाल रक्तकण नहीं रह गया था।

भारत सरकार के एक विशेष टास्क फोर्स बनाने तक मैं इस मोर्चे पर काम करता रहा। इसमें आई.बी.,सी.बी.आई.,रॉ और राज्य पुलिस शामिल थी। इसे विस्फोट की घटनाओं की जांच का काम सौंपा गया। मेरे एक योग्य सहयोगी को इस टीम मे लगाया गया। मैं फिर अपने पी.सी.आई.यू. के प्रीतिकर कार्य में लग गया।

* * * *

बंबई के बम विस्फोटों से संबंधित मेरे काम और उसके बाद की घटनाओं से एक और नग्न सत्य सामने आया। गुजरात से ले कर पश्चिम बंगाल तक फैली विशाल समुद्री सीमा के बारे में देश की प्रमुख इटेलिजेंस एजेसियों को कुछ जानकारी न थी।

मैंने निदेशक से परामर्श कर के अपने ऊपर एक और जिम्मेदारी ले ली। यह थी सारी समुद्री सीमा के प्रमुख व छोटे बदरगाहों का विधिवित अध्ययन। इसमें नामित व अनामित अवतरण स्थलों, संकरी खाडियों व अवतरण की छोटी गुजाइशों तक का अध्ययन भी शामिल था। इसके साथ ही वहां की जनसख्या व राजनीतिक जटिलताओं का अध्ययन भी शुरू कर दिया। इसमें बहुत से तस्कर गुटों व अपराधी गिरोहों की पहचान भी की गई। तटवर्ती इलाकों से तस्करों, हवाला कारोबारियों व अंडरवर्ल्ड वालों के देश के अंदरूनी भागों में ठिकानों तक परिवहन के साधनों का भी पता लगाया गया। इस नए काम गें मेरे योग्य सहयोगी वी.के. जोशी ने बहुत सहायता की।

आरंभ में तटवर्ती राज्यों के आई बी यूनिटों ने इसका प्रतिरोध किया। अधिकांश मामलों में उनके पास पर्याप्त जन संसाधन नहीं थे। इसके अलवा उनको उथले समुद्र को प्रभावित करने वाली गतिविधियों की इंटेलिजेंस एकत्र करने का अनुभव न था जो बाहरी शत्रुओं का नाता अंदरूनी विध्वंसकों से जोडती थीं। मैने आई.बी. अधिकारियों के लिए समुद्री सीमा की सुरक्षा संबंधी एक आरभिक प्रशिक्षण पुस्तिका तैयार की। मेरे खयाल से अब तक इसमें सुधार किया जा चुका होगा और समुद्री सीमा की सुरक्षा आई.बी. के नित्यकार्य में शामिल हो चुकी होगी।

मुझे यह स्वीकार करना ही चाहिए कि विभिन्न यूनिटों के आई.बी. अधिकारियों ने इसमें तत्परता दिखाई। जल्दी ही पी.सी.आई.यू. के पास आधारभूत जानकारी पहुचने लगी। उसके आधार पर समुद्री सीमा की इटेलिजेंस एकत्र करने के लिए कुछ ढॉचा तैयार किया जाने लगा। 1993 के अंत तक राज्य सरकारों के पास उथले समुद्र के लिए कुछ आरंभिक किस्म के गश्तीदल बन गए थे। हालांकि ये बहुत ही अपर्याप्त थे। तटरक्षकों ने भी कुछ समय के लिए उथले समुद्र पर ध्यान देना शुरू कर दिया था। लेकिन पुलिस की कोशिशें अक्सर व्यर्थ जाती थीं, क्योंकि उन की सुस्त रफ्तार से चलने वाली गश्ती नौकाओं और तस्करों की जी.पी.एस. व उपग्रह संचार से लैस तीव्रगामी नौकाओं का कोई मुकाबला न था। पुलिस वाले बडे मछुआरों

के लघुपोत किराए पर लेते थे। इन मछली पकड़ने वालों और तस्करों की गुपचुप सांठ-गांठ अक्सर पुलिस कार्रवाई की गोपनीयता भंग कर देती थी।

स्थल पुलिस की कार्रवाई भी बेकार साबित होती थी, क्योंकि उसकी जिम्मेदारी अंदरूनी भागों की सामान्य व असामान्य कार्रवाइयों में अधिक केंद्रित रहती थी। मेरे खयाल से संबद्ध राज्यों के पुलिस संगठनों में यह प्रकिया ठीक से समाहित नहीं की गई। कई इलाकों में यह काम सीमा सुरक्षा बल को सौंपा गया। बहुत से इलाकों में इसे क्रमशः उल्लंघनकर्ताओं, समुद्रों और ईश्वर के जिम्मे कर दिया गया।

असल में एक केंद्रीय तटीय सुरक्षा बल संगठित किया जाना चाहिए। उसके पास आधुनिक नौकाएँ, संचार व निगरानी के उपकरण होने चाहिए। यह बी.एस.एफ., तटरक्षकों व राज्य पुलिस से पृथक होना चाहिए। यह भी अनिवार्य कर देना चाहिए कि वह नियमित रूप से तटरक्षकों व स्थल सुरक्षा बलों से संपर्क बनाए रखे। इसकी तत्काल आवश्यकता है कि राज्य पुलिस तंत्र को इसकाम में लगाया जाए। उनकी क्षमता बढा कर उन्हें समुद्री सीमा के भेद्य ठिकानों की रक्षा करने योग्य बनाया जाए। मैं उम्मीद करता हूँ कि इससे पहले कि देश को कोई और ध्वंसकारी आघात लगे, सुरक्षा आयोजक इस आवश्यकता पर ध्यान देंगे।

मेरे पास यह मानने के पर्याप्त कारण हैं कि मेरे एजेंसी छोड़ने के बाद आई.बी. की समुद्री सीमा सब एजेंसियाँ निष्क्रिय हो कर विस्मृति के गर्त में समा चुकी हैं। आई.बी की अन्य वरीयताओं ने उसे परंपरागत रास्ते पर लौटने को बाध्य कर दिया। वे फिर से पंजाब, कश्मीर और देश में अन्यत्र आग बुझाने के काम में लग गईं। उन्होंने मान लिया कि बंबई के शृंखलाबद्ध बम विस्फोटों के बाद पाकिस्तान और दूसरी अमित्र शक्तियों की समुद्री सीमा से भारत की सुरक्षा का अतिक्रमण करने की भूख शांत हो गई है। हमारी राष्ट्रीय इंटेलिजेंस एजेंसी के स्मृतिकोश का यह हाल है।

<32>

सपनों का सौदागर

मूर्खों पर मेरी बडी गहरी आस्था है, मेरे मित्र जिन्हे आत्मविश्वासी कहते हैं।

एडगर एलन पो

पी.सी.आई.यू. में मेरी स्वप्नलोक की यात्रा ने मेरे विवेक को कुंद करना शुरू कर दिया था। मैं इस विभ्रम से ग्रस्त हो गया था कि व्यवस्था के शेर की पीठ पर स्थिर बने रहने के लिए केवल प्रतिभा और कठोर परिश्रम पर्याप्त हैं। यह किसी मूर्ख की स्वप्नलोक की यात्रा से कम न था।

विख्यात और कुख्यात घटनाओं का पीठ पर बोझा लादे 1993 की विदाई निकट आने तक मैं भी कुछ मामलो में उलझने लगा जिनका मेरे कर्तव्य से सीधा वास्ता न था।

वी.जी वैद्य सेवानिवृत्त होने वाले थे। उनके नेतृत्व में सगठन मे विवेक और खुलापन लौट आया था। एम.के. नारायणन के जमाने में जो मडली वाला रिवाज बन गया था, वह कहीं पिछवाडे चला गया था। आत्मबल और कार्यकौशल ने सगठन पर प्रतिष्ठा की कुछ परतें चढा दी थी। किसी अधिकारी का मूल्यांकन करते समय वैद्य केवल कार्यक्षमता को मानदंड मानते थे। यह राजीव गॉधी के किस्म के मडली राज्य से भिन्न था।

इटेलिजेंस ब्यूरो का पिरामिड वाला ढॉचा है। इसमें शीर्ष स्तर पर ही नीतियां निर्धारित होती हैं। इसमें अपने तुरत नीचे वाले अधिकारियों से परामर्श भी कम ही लिया जाता है। नेतृत्व परिवर्तन से रोजमर्रा का काम प्रभावित नहीं होता। लेकिन संचालन नीतियॉ, विशेष परियोजनाएँ और संवेदनशील संचालन शीर्ष अधिकारी की प्रवृत्तियों और रुझान पर बहुत निर्भर होते हैं। ऐसे में थोडे से जोखिम उठाने वाले अधिकारी ही अतिसक्रिय संचालन वाली योजनाएँ बनाने का साहस करते थे और आस्था व प्रतिबद्धता के साथ उस पर काम करते थे। मेरी गिनती भी ऐसे मूर्खों में ही होती थी।

नेतृत्व में होने वाले परिवर्तन ने अनेक इंटेलिजेंस कार्रवाइयों को रोक दिया था। मैंने 'मुस्लिम उग्रवाद' की निगरानी के लिए जिस यूनिट की परिकल्पना की थी वह मुझसे इस बहाने ले ली गई थी कि मुझ पर काउंटर-इंटेलिजेंस की भारी जिम्मेदारी थी। निस्संदेह एक कुशल अधिकारी ने यह जिम्मेदारी संभाली। लेकिन मेरी पीठ पीछे एक पुराने सहयोगी ने जिस तरह यह साजिश रची उस से मन खिन्न हो गया। संचालन की नीति के बारे में किसी तरह का सलाह-मशविरा भी नहीं किया गया। जिस अधिकारी को यह काम सौंपा गया था उसे इस्लाम और इस्लामवादियों के बारे में बहुत कम जानकारी थी। मुझे बताया गया कि आई.बी. में कुछ प्रमुख लोग समझते थे कि मैं आई.एस.आई. और मुस्लिम भ्रांति से ग्रस्त हूँ। मेरे खयाल में

अब कुछ प्रगतिशील सहयोगियों ने इंटेलिजेंस संकलन के नाजुक काम की धार को संवारा है और उसमें सुधार कर के इंटर सर्विस इंटेलिजेंस की मुहिम को विफल करने में उल्लेखनीय सफलता हासिल की है।

* * * *

अपने कर्तव्य का पालन करते हुए मैंने कुछ वरिष्ठ प्रशासकों की केवल इस लिए सहायता की थी कि उस में मुझे आनंद का अनुभव होता था और मैं इस स्थिति में था कि उनके लिए कुछ कर सकूं। इन्हीं में कर्नाटक काडर के एक आई ए.एस. अधिकारी जफर सैफुल्लाह भी थे। वह मुझसे बहुत वरिष्ठ थे। इंदिरा गॉधी और राजीव गॉधी के दिनो मे सैफुल्लाह और मेरा साथ रहा था। उन पर आरोप था कि उन्होंने सेवा के नियमों और नियमितताओं का कुछ उल्लंघन किया था। वह कुछ सी बी आई के मामलों में फसा गए थे। कम से कम इन में से दो केस उनके खिलाफ एक पख्तून राजनीतिज्ञ ने बनवाए थे जो इदिरा गॉधी परिवार के निकटवर्ती थे। ये मामले निजी कारणों से बनाए गए थे। मैं निदेशक सी.बी आई. तथा प्रधानमंत्री कार्यालय के दो महत्वपूर्ण कार्यकारियों को सारी परिस्थिति से अवगत कराने में सफल रहा। वे मुझसे सहमत हो गए कि किसी व्यक्ति को केवल इस बात की सजा नहीं दी जानी चाहिए कि वह इंदिरा परिवार के निकटवर्ती किसी व्यक्ति के कार्यालय में काम करने वाली महिला से विवाह करना चाहता है। कुछ कोशिशों के बाद उन्हे इस झमेले से मुक्ति मिल गई। बाद में मैंने उनकी मुलाकात एक दोस्त से करा दी। उसने उनके सेवा आलेख को दुरुस्त करने और फिर भारतीय प्रशासन के शीर्ष पद तक पहुचने मे उनकी सहायता की। हमारी दोस्ती पारस्परिक विश्वास और मेल-मिलाप पर आधारित थी हालाकि मैं सेवा मे उन से कई स्तर नीचे था।

आई.बी. में जब ऐसा नाजुक मुकाम आया तो जफरउल्लाह ने मुझसे राय मांगी कि मैं वैद्य के स्थान पर किसी का नाम सुझाऊँ। वह शीर्ष प्रशासक थे। मुझसे सलाह लेने की उनको कोई जरूरत नहीं थी। लेकिन उन्होंने ऐसा किया। क्योकि उनको विश्वास था कि मैं उन्हे गलत राय दे कर गुमराह नहीं करूंगा।

सैफउल्लाह ने मुझसे एक बहुत मुश्किल सवाल पूछा था। सगठन के अंदर ऊपर के उत्तराधिकार की लाइन का संतुलन बडा नाजुक था। वरिष्ठता कम में दूसरा स्थान एस.डी. त्रिवेदी का था। वह 1960 की वरिष्ठता के अधिकारी थे। वह आई.बी के पुराने कर्मी थे। पर वह अपनी कुशलता या एजेंसी के प्रमुख अधिकारियों से व्यक्तिगत घनिष्ठता इंटेलिजेंस के लिहाज से लोकप्रिय न थे। ज्यादातर लोग उनको बंदोबस्ती आदमी कहते थे जिसे संचालन या विश्लेषण में खास महारत न थी। यह आरोप भी था कि उन्होंने निकट अतीत में कुछ विलक्षण सामाजिक व्यवहार भी नहीं दर्शाया। मुझे भी अपने सहयोगियों से सहमत न होने का कोई कारण समझ में नहीं आया।

मुझे बताया गया कि त्रिवेदी को इस शीर्ष पद पर न लेने का निर्णय दो कारणों से हुआ: स्वर्गीय वी.एस. त्रिपाठी के निर्देश पर उन का राव के विरुद्ध जॉच करना जिसके कारण राव पूर्वाग्रहित थे। और एक दुर्घटना। उनकी सरकारी कार उस समय गंभीर रूप से दुर्घटनाग्रस्त हो गई थी जब वह उस में उत्तर प्रदेश की एक महिला कांग्रेस कार्यकर्ता के साथ कहीं जा रहे थे।

जो हो। दूसरा विकल्प डी.सी. पाठक थे। वह उसी बैच में त्रिपाठी से कनिष्ठ थे। पाठक एक अविवादित अधिकारी थे। संचालन या विश्लेषणात्मक इटेलिजेंस में उनकी उपलब्धि बहुत कम थी। उनके व्यक्तित्व में वे गुण नहीं थे कि भेदियों की अनुभवी व विशाल टीम का कुशल नेतृत्व कर सकें। प्रशासकों व राजनीतिज्ञों के साथ उच्च स्तर पर विचारों के आदान-प्रदान की काबिलीयत भी उन में कम ही थी। लेकिन वह ऐसे भी न थे कि अपने किसी कृत्य से एजेंसी को हानि पहुंचाएँ। अपनी अकर्मण्यता के कारण वह अहानिकर थे। सोचा गया कि इसमें कम खतरा है।

उत्तराधिकार के इस मसले पर मैने अपने कुछ सहयोगियों से चर्चा की थी। आई.बी. के एक छोटे वर्ग और उत्तरप्रदेश की उच्च जातीय लॉबी को छोड कर सभी वरिष्ठ अधिकारी वैद्य के स्थान पर त्रिवेदी के आने के विरुद्ध थे। वे नही चाहते थे कि एजेंसी पर उत्तर प्रदेश का ब्राह्मण सामंतवाद हावी हो। उनको इसका भी भरोसा न था कि पाठक ऐसी नाजुक घडी में एजेंसी का नेतृत्व कर सकेंगे। फिर भी वरिष्ठ अधिकारियों का बहुमत त्रिवेदी के मुकाबले पाठक को प्राथमिकता देता था। इसके पीछे सोच यह थी कि पाठक जैसे अनगढ को हर संभव सहायता दे कर एजेंसी का नेतृत्व करने लायक बनाया जा सकता है। उन में से कोई भी इस हक में नहीं था कि किसी बाहरी व्यक्ति को निदेशक बनाया जाए जैसा कि कुछ वर्षों बाद हुआ जब अरुण भगत जैसे एक सीधे और त्रुटिहीन पुलिस अधिकारी को कुछ समय के लिए एजेंसी में भेज दिया गया था।

मैंने जफर सैफुल्लाह को इस विश्लेषण और राय से अवगत करा दिया।

लेकिन उस शीर्ष प्रशासक के सामने एक और कठिनाई आई। पाठक को कोई जानता न था। न तो उन्हें राजनीतिज्ञ जानते थे, न ही वरिष्ठ प्रशासक। दरअसल वह पिछवाडे के कमरे में काम करने वाले एक अधिकारी थे। उनको खुद भी यकीन न था कि कभी शीर्ष पर पहुंचेंगे।

मैं पाठक को सैफुल्लाह से मिलवाने ले गया। वे पहली बार मिले। उन्होंने इंटेलिजेंस ब्यूरो के प्रबधन के विभिन्न पहलुओ पर चर्चा की। सैफुल्लाह इस चुनाव से संतुष्ट नहीं हुए। पर उनको उम्मीद थी कि नए प्रमुख अपेक्षा के स्तर तक पहुँच जाएंगे। उन्होंने एस.डी. त्रिवेदी का भी अलग से साक्षात्कार लिया था। कहते हैं उनकी उपलब्धियों के प्रति उनका मोहभंग हो गया था। सैफुल्लाह ने ही पाठक के नाम की सिफारिश प्रशासन के अपने सहयोगियों से और गृहमंत्री व प्रधानमंत्री से की।

इस तरह आई.बी. के नए निदेशक का जन्म हुआ।

मुझे भी बहुत इत्मीनान न था। पाठक अपने दुनियादारी वाले रवैए की वजह से न तो नाजुक इंटेलिजेंस संचालन के निर्देश देते हुए संगठन का संचालन कर सकते थे और न ही स्पष्ट संगठित सहयोग ही उनको उपलब्ध था। यह एहसास मुझे बार-बार परेशान कर रहा था कि ऐसी नाजुक घड़ी में एक बहुत कमजोर कडी इस मुकाम पर आ गई है। मैं केवल आशा कर सकता था कि इसमें कुछ बेहतर हो जाए।

किसी बाहरी व्यक्ति को इंटेलिजेंस ब्यूरो अखंडित प्रतीत हो सकता है। पर ऐसा है नहीं। दुनिया भर की दूसरी गुप्तचर एजेंसियो की तरह आई.बी. मे भी धडे हैं। मैंने इस संगठन में रह कर इन धड़ों के प्यार और नफरत का खेल देखा है। फर्क सिर्फ यह था कि मैं किसी

गैंग मे शामिल न था। मै तो पैदाइश से ही आजाद पछी था। एजेसी मे मेरा कार्यकलाप मेरे अपने स्वभाव की विशिष्टता और समय-समय पर मिलने वाले काम को मिशन समझ कर निबटाने की मेरी आदत पर आधारित था। मुझे व्यक्तियो या गुटो की परवाह नही थी। मुझे सपनो और शेर की सवारी का चस्का लग गया था। हालाकि मुझे सपने साकार करने या शेर से नीचे उतरने का इल्म नही था। मेरी इस ताकत और कमजोरी का मेरे प्रशासक या राजनीतिक दोस्तो से कुछ वास्ता नही था। यह तो मेरे अदर से उपजी थी। मै सुविधाजीवी न था। मै प्रतिबद्धताजीवी था। अपने काम के प्रति इस तरह का रवैया आमतौर पर विरोधी परिस्थितयो को जन्म देता था। पहले दिन से ही मै उस शेर पर सवार था। अब बिना खराच खाए उस से नीचे उतरना तो सभव न था।

* * * *

वी जी वैद्य के जाने के बाद सगठन पिछड कर महत्वहीनता को पहुँच गया। सगठन का आकलन केवल उसकी इटेलिजेस की गुणवत्ता से ही नही नापा जाता था। वह तो निदेशक की उच्च पदस्थ प्रशासको गृहमत्री व प्रधानमत्री से निकटता से भी नापा जाता था। इटेलिजेस ब्यूरो गृहमत्रालय से जुडा एक विभाग है। इसके उपभोक्ता निदेशक से सकलित इटेलिजेस के अलावा निजी भेट की भी अपेक्षा रखते है।

डी सी पाठक की कमजोरी यह थी कि वह भारत सरकार के अधिकारसम्पन्न सचिवो रक्षा सेवाओ के अध्यक्षो और महत्वपूर्ण राजनीतिज्ञो स अपरिचित थ। गृहमत्री और प्रधानमत्री के दरबार मे उनकी अक्सर होने वाली अनुपस्थिति ने दिल्ली के सत्ता मे स्थिति का आकलन करने वालो को गलत सकेत दिए। इसके अलावा सी बी आई निदेशक विजय रामाराव और मत्रिमडलीय सचिवालय के रिसर्च एड एनालिसिस विग के प्रमुख रजन राय क साथ भी पाठक की पटरी सही नही बैठी। दरअसल सी बी आई प्रमुख से उनकी बोलचाल तक न थी जो प्रधानमत्री के गृहराज्य से थे और समझा जाता था कि उनके करीबी है। साफ-साफ कहे तो बात यह थी कि प्रधानमत्री को एक वफादार सी बी आई प्रमुख की जरूरत थी क्योकि वह एक के बाद एक घोटालो मे फसते जा रहे थे।

वी रामाराव एक अच्छे इनसान और श्रेष्ठ अधिकारी थ। लेकिन सी बी आई के अधिकाश प्रमुखो की तरह उनको भी प्रधानमत्री और गृहमत्री की इच्छाओ का पालन करना होता था। आज तक कोई सी बी आई निदेशक स्वतत्र रूप से काम नही कर सका। इस सगठन का भी राजनीतिक लाभ के लिए उसी तरह इस्तेमाल होता रहा है जैसे आई बी का। उच्चतम न्यायालय के निर्देशानुसार हाल ही मे कुछ नियम बनने के बाद सभवत सी बी आई को सतर्कता आयोग के पर्यवेक्षण के अधीन किया गया है। मुझे इस बारे मे टिप्पणी नही करनी चाहिए क्योंकि सी बी आई राजनीतिक आकाओ के निर्देशानुसार ही चल रही है। इस महिमामडित सगठन की छवि जरूर एक निष्पक्ष जाच करने वाले सगठन की है। लेकिन इसके दामन पर राजनीतिक आकाओ के इशारो पर चलने के दाग भी है।

इसलिए अगर वी रामाराव एक अन्य आध्रा गुरु आध्रभूमि के सपूत प्रधानमत्री नरसिह राव के साथ साठ-गाठ बनाए हुए थे तो इसमे नया कुछ नही था। हर कोई कहता ही है कि यह सब चलता है। हम मे से अधिकाश उसके आदी हो चुके है।

प्रधानमत्री के इर्द-गिर्द जो लोग थे वे जानते थे कि तुक्के से सब से ऊँची कुर्सी पर पहुचे राजनीतिज्ञ एक के बाद एक घोटाले मे फस रहे है और वह अपने पूर्वजो की अपेक्षा अधिक

असहिष्णु हैं। वह स्वामियों और सौदेबाजों के प्रभाव में ज्यादा रहते थे। उनके लिए सी.बी.आई. का निदेशक आई.बी. या रॉ के प्रमुख से कहीं महत्वपूर्ण था। पाठक प्रधानमंत्री की मूलभूत जरूरत को समझने में असफल रहे।

* * * *

प्रधानमंत्री कार्यालय की बडी हस्तियों से मेरा शुरुआती वास्ता पेशे की एक मामूली घटना से पड़ा। मेरे निगरानी यूनिट ने एक पाकिस्तानी पत्रकार के बारे में पता लगाया। यह अक्सर दिल्ली आया करता था। कई मौकों पर वह प्रधानमत्री के एक सहायक ZZZ बक्षी के घर पर ठहरा था। राजीव गांधी के वफादार सतीश शर्मा ने उसे प्रधानमंत्री कार्यालय में किसी राजनीतिक पद पर लगवा दिया था।

सी.पी.आई.यू. के लडकों ने इस संदिग्ध व्यक्ति का पीछा किया। वह पाकिस्तान के कुछ वरिष्ठ राजनयिकों के घर पर जाया करता था। चुपचाप पता लगाया गया तो भेद खुला कि बक्षी की एक बहन उस पाकिस्तानी पत्रकार को ब्याही थी। प्रधानमत्री कार्यालय और गृहमंत्रालय में पडताल की गई तो पता चला कि बक्षी ने अपनी किसी बहन की किसी पाकिस्तानी नागरिक से शादी की जानकारी सरकार को नहीं दी थी। प्रधानमंत्री कार्यालय में काम करने वाले एक जनसेवक के लिए इस तरह की जानकारी देना कानूनन अनिवार्य है।

मैंने इस मामले की जानकारी निदेशक को दी। उनसे अनुरोध किया कि वह प्रधानमंत्री से मिल कर बक्षी को अपने निजी कार्यालय में रखने पर पुनर्विचार करने को कहें। शीर्ष पद पर आसीन होने के बाद भी पाठक ने सरकार को अपने हस्ताक्षर कर के रिपोर्टें भेजने की आदत नहीं छोडी थी। यह आदत उनको डेस्क विश्लेषक होने के समय पडी थी। इस नाजुक मामले में भी उन्होंने प्रधानमंत्री से निजी तौर पर मिलने के बजाय मुझसे कहा कि मैं प्रधानमंत्री कार्यालय और गृहमंत्रालय को एक यू.ओ. नोट जारी कर दूँ। थोडा विरोध करने के बाद मुझे उनकी बात माननी पडी।

मंत्रालयों का चलन छलनी जैसा होता है। इसका फायदा उठा कर औद्योगिक घराने पद्धति के अंदरूनी केंद्र तक जा पहुँचते हैं। वहाँ से वे ऐसे महत्वपूर्ण दस्तावेज चुरा लेते हैं जिनसे उनके व्यापार को लाभ होता है और जो उनको राजनीतिज्ञों का भयादोहन करने में मदद करते हैं। ZZZ बक्षी के बारे में यह दस्तावेज भी सभवतः गृहमंत्रालय से चुरा लिया गया। इसका विवरण एक अंग्रेजी दैनिक मे छपा। इसका मकसद समझना कोई मुश्किल काम न था। नरसिंहराव ने पाकिस्तान के जनक मुहम्मद अली जिन्ना के पोते नुस्ली वाडिया और रुइया घराने पर मेहरबान हो कर उस बडे उद्योगपति को नाराज कर लिया था।

रिपोर्ट के छपते ही कहर बरपा हो गया। मुझ पर तो नरक की आग के शोलों की वर्षा हो गई। प्रधानमंत्री कार्यालय ने उनसे पूछताछ की तो आई.बी. निदेशक ने दोष मेरे मत्थे मढ़ दिया। मुझे प्रधानमंत्री के एक वरिष्ठ सहायक के सामने पेश किया गया। मुझ पर राष्ट्र विरोधी गतिविधियों का इल्जाम लगाया गया। कभी न रिटायर होने वाले इस प्रशासक ने सोचा था कि मैं दब जाऊंगा और रिपोर्ट वापस ले लूँगा। मैं अपनी बात पर जमा रहा। मैंने उनको बताया कि राष्ट्रविरोधी जैसे शब्दों का प्रयोग बहुत ही आपत्तिजनक है। मुझे मजबूर हो कर अपनी हितरक्षा के लिए संवैधानिक और कानूनी उपायों का सहारा लेना पडेगा। वह दब गए। मैंने सारी बात का खुलासा किया और उन से पूछा कि क्या वह इस मामले में लिप्त व्यक्ति को प्रधानमंत्री कार्यालय से संबद्ध रखने पर पुनर्विचार करेंगे ? उन्होंने त्योरी चढ़ा कर मुझे विदा

कर दिया। ZZZ बक्षी ने यह लिखित जानकारी दे दी कि उनकी एक बहन का विवाह पाकिस्तान के एक मीडियाकर्मी से हुआ है और वे प्रधानमत्री कार्यालय मे बने रहे।

मै जानता था कि मैने ' प्रधानमत्री और राष्ट्र के विरुद्ध ' यह दूसरा अपराध किया है। पहला अपराध मैंने तब किया था जब पश्चिमी उत्तर प्रदेश के दलबदलू जाट नेता अजीत सिह का समर्थन खरीदने मे उनकी मदद नही की थी।

एक बिना रीढ के नेता की सेवा करने का खतरा मै भॉप गया था। पेशे की गतिविधियों के दौरान मैंने इससे भी अधिक विपरीत परिस्थितियो का सामना किया था जिन मे से कुछ गैरकानूनी और असवैधानिक थी। लेकिन तब मुझे अपने उच्च अधिकारियो का ' सरक्षण ' मिलता था। अब मैंने महसूस किया कि पाठक मे अपने जूनियर सहयोगियो का समर्थन करने का नैतिक बल नही था।

मुझे इस बात का एहसास हो गया कि नरसिह राव के नेतृत्व मे भारतीय व्यवस्था सवैधानिकता, विधिसम्मतता और राजनीतिक बाजीगरी के बीच हिचकोले खाती रहेगी। रास्ते के मुसाफिर सरीखे प्रधानमत्री मौका रहते अपना फायदा करने के फिराक मे थे। उन्होने व्यवस्था को ऐसा बना दिया था कि वह बाहरी साजिशो के दबाव मे धसक जाए।

बक्षी मामले के प्रधानमत्री कार्यालय और 28 साल के मेरे इटेलिजेस सचालन के आधार को झकझोरने के कुछ ही समय बाद मुझे एक और अप्रत्याशित घटना का सामना करना पडा। केद्रीय गृहमत्रालय के एक वरिष्ठ अधिकारी ने मुझसे एक राजनीतिक-सपर्कवादी दलाल से मिलने को कहा। उन्होने यह भी कहा कि दलाल केद्रीय गृहमत्री का करीबी है और मुझे उससे बहुत सहृदयता से मिलना चाहिए। मैं उससे अपने कार्यालय मे नही मिला। पी सी आई यू के अतिसुरक्षा वाले परिसर मे मुझे आगतुको से मिलने की अनुमति न थी। बडे लोगो का दलाल मुझे एक पॉच सितारा होटल के रेस्त्रॉ मे मिला।

उस व्यक्ति के साथ एक और सज्जन भी थे। मुझे बताया गया कि वह ZZZ रुइया हैं। वे रुइया उद्योग समूह के खानदान से है। औपचारिकता के बाद रुइया मतलब की बात पर आ गए। उन्होने आरोप लगाया कि मैंने सरकार से उनके जहाजरानी यूनिट के खिलाफ सरकार से रिपोर्ट की है। उन्होने कहा कि यह शिकायत चीनी की एक गायब हुई खेप को लेकर थी जो भारतीय तट तक नही पहुँची। सरकार ने देश मे कमी के कारण चीनी आयात का ओपन जनरल लाइसेस जारी किया था। मैने ऐसी कोई रिपोर्ट भेजने से इनकार किया। मैने उनको बताया कि इटेलिजेस ब्यूरो को आर्थिक अपराधो या खुले सागर मे चलने वाले पोतो के बारे मे रिपोर्ट करने का काम नही सौंपा जाता।

रुइया को मेरा उपदेश हजम नही हुआ। उन्होने एक अनौपचारिक रिपोर्ट की फोटोकॉपी मुझे दिखाई जो मैंने प्रधानमत्री कार्यालय, गृहमत्रालय और वित्तमत्रालय के सचिवों को भेजी थी। इसमे एक औद्योगिक घराने द्वारा एक चीनी से भरे जहाज को डुबोने का जिक्र था जिस का तटरक्षको से सत्यापन होना था। ऐसा इसलिए किया गया क्योकि देश मे चीनी के भाव अतर्राष्ट्रीय बाजार से नीचे आ गए थे। सदेह था कि रुइया साम्राज्य की एक शाखा ने यह आर्थिक अपराध किया था। मैं अपने हस्ताक्षर वाले उस कागज को देख कर हैरान रह गया। उसे प्राप्त करने वालो में से किसी एक के दफ्तर से उडाया गया था।

यह सूचना आई.बी के पास तटीय इंटेलिजेंस के माध्यम से पहुंची थी। सरकार को यह सूचना इस अनुरोध के साथ भेजी गई थी कि वह आरोप के बारे में आगे जॉच कराए।

मुझे यकीन दिलाया गया इस तरह भडकने का कोई कारण नहीं था। मुझे स्पष्ट तौर पर बताया गया कि केंद्रीय वित्तमंत्री और प्रधानमंत्री दोनों चाहते हैं कि मैं इस आशय की एक और रिपोर्ट भेजूँ कि आई.बी की दी हुई पहली सूचना गलत थी। यह गलत रिपोर्ट करने का मामला था। मुझे एक मोटी रकम देने का आश्वासन दिया गया। बिचौलिए ने कहा कि वह मेरी पसंद के किसी खाते में जमा करा दी जाएगी या नकद भी दी जा सकती है। यह रकम नौकरी के सारे समय में तंगी में रहने वाले मेरे जैसे आदमी के लिए बहुत बडी और आकर्षक थी। मैंने प्रस्ताव और उसके दोधारे अंजाम पर विचार किया। फील्ड की सूचना पर आधारित रिपोर्ट को वापस लेने का मतलब था मेरी कार्यकुशलता का अंत करना। मेरे मना करने का मतलब था प्रधानमंत्री की सहनशक्ति की तीसरी सीमा लाघना, शायद गृहमंत्रालय और वित्तमंत्रालय की भी।

स्थिति पर विचार करने के बाद मैंने उन से कहा कि वे मुझे मोटी रकम देने के बजाय प्रधानमंत्री कार्यालय और गृहमत्रालय से प्रार्थना करे कि वह निदेशक आई.बी. से कह कर रिपोर्ट वापस करवा लें। यह फैसला करने का अधिकार केवल उनको है। मोटी रकम और सेवानिवृत्त होने पर उनके यहा नौकरी के आश्वासन दोनों से मेरे इनकार करने पर दलाल और उद्योगपति दोनों बहुत निराश हुए।

प्रधानमंत्री कार्यालय के एक प्रमुख कार्यकारी और एक भूतपूर्व वित्तमंत्री ने लगभग तत्काल अपनी नाराजगी प्रकट की। मुझे अच्छी झाड पडी। मुझे ' सनसनी फैलाने वाला ' करार दिया गया जो इंटेलिजेंस बिरादरी में प्रमुख पद के लायक नही था। मुझे याद दिलाया गया कि मेरी नौकरी प्रधानमंत्री की इच्छा पर टिकी हुई थी। मुझे इस अडियल रवैए का खमियाजा भुगतने के लिए तैयार रहना चाहिए।

मेरा मन इस बात की रिपोर्ट निदेशक को देने का नहीं हुआ। लेकिन ' संवेदनशील सरकारी दस्तावेजों की सुरक्षा ' के बारे में सूचित करना मेरा कर्तव्य था। मैंने एक नोट लिख कर उनसे अनुरोध किया कि वे उपयुक्त शाखा को निर्देश दें कि वह आई.बी. से सरकार को भेजे गए एक महत्वपूर्ण संचार के बाहर जाने की घटना की जॉच करे।

* * * *

उस शक्तिशाली औद्योगिक घराने के साथ इस झडप के बाद एक और घटना घटी। इस का संबंध बड़े थैलीशाहों की सरकारी तंत्र के साथ मिल कर की गई घिनौनी साजिश से था। यह तो सभी जानते थे कि रिलायंस उद्योग समूह की बॉम्बे डाइंग के अध्यक्ष से कटु शत्रुता थी। पिछले अध्यायों में मैं इसकी चर्चा कर चुका हूँ कि किसी तरह इन दोनों औद्योगिक घरानों के परस्पर विरोध के कारण राजीव गॉधी और वी.पी सिंह में टकराव हुआ।

जून 1994 के लगभग रिलायंस ग्रुप का एक समस्यानिवारक मेरे पास एक विचित्र अनुरोध ले कर आया। रिलायंस ग्रुप यह साबित करने पर तुला हुआ था कि नुस्ली वाडिया के पास तीन पासपोर्ट हैं। उनके पास भारतीय पासपोर्ट के अतिरिक्त एक ब्रिटिश और एक पाकिस्तानी पासपोर्ट भी है। वे चाहते थे कि केंद्रीय गृहमंत्रालय पासपोर्ट एक्ट के तहत बॉम्बे डाइंग के विरुद्ध एक आपराधिक मामला चलाए।

मुझसे कहा गया कि मैं यह स्त्यापित करूँ कि पाकिस्तानी पासपोर्ट की कथित फोटोकॉपी असली पाकिस्तानी पासपोर्ट की असली कॉपी है। मेने विनम्रतापूर्वक बताया कि विदेश मत्रालय की एक विशेष शाखा इस तरह का सत्यापन करती है, न कि इटेलिजेस ब्यूरो। समस्यानिवारक मेरे इस जवाब से सतुष्ट नहीं हुआ। उसने आग्रह किया कि पाकिस्तान डिवीजन का प्रमुख होने के नाते मैं इस तरह का सत्यापन कर सकता हू।

नुस्ली वाडिया से मेरी दोस्ती थी, न दुश्मनी। उनको तो यह भी पता न रहा होगा कि मेरे जैसा कोई प्राणी कही है। अलबत्ता मुझे पता था कि नुस्ली वाडिया होने का अर्थ क्या होता है। अपने कुछ मित्रो के माध्यम से मुझे दोनो ग्रुपो के औद्योगिक सघर्ष की अदर की बातो की भी जानकारी थी। असल मे इनके इस सघर्ष ने भारतीय राजनीति को प्रभावित करने और सघ परिवार के सत्ता मे आने मे बडी भूमिका निभाई थी।

मैंने उनका अनुरोध नही माना क्योकि यह सरासर जालसाजी का मामला था।

मेरे खयाल मे मैंने कुछ अति ही कर डाली थी। इन्ही दिनो मे काग्रेस पार्टी के मेरे एक पुराने दोस्त और नेहरू-गाँधी परिवार के पुराने सहयोगी ने बीच मे हस्तक्षेप किया। उनकी राय बहुत स्पष्ट थी। रूइया घराने को नाराज करने से प्रधानमत्री चिढ गए थे। अब रिलायस ग्रुप को ' सहयोग देने से मना करने से मेरा भविष्य चोपट होना निश्चित था। कैरियर ही एक कम वेतन पाने वाले सार्वजनिक सेवक की रोजी-रोटी होता है। मेरी तनख्वाह से ही मेरा परिवार चलता था और बच्चो की परवरिश होती थी। मेरा चितित होना स्वाभाविक था। शायद मैं पहली बार इतना चितित हुआ था।

निजी तौर पर मेरे चितित होने के और भी कारण थे।

मैंने धीरूभाई अबानी से जो सबध बनाए थे वे लेन-देन आधारित नही थे। इस बडे उद्योगपति के आवास पर मेरा और मेरे परिवार का अच्छा स्वागत होता था। मै भी उनको समुचित आदरमान देता था।

मेरा बडा बेटा इडियन इस्टीट्यूट आफ मैनेजमेट अहमदाबाद, से 1994 मे बहुत अच्छे अको मे उत्तीर्ण हुआ था। उसने अचानक एक अमेरिकन बहुराष्ट्रीय कपनी को छोड कर रिलायस ग्रुप मे काम करने का निर्णय ले लिया। उसका कहना था कि बडे अबानी की ऑखो की चमक और उनके अदम्य उत्साह से वह बहुत प्रभावित हुआ था। उसका खयाल था कि वह इस कपनी मे अच्छा कैरियर बना सकता है। लेकिन हम निराश हुए। आखिरकार रिलायस ग्रुप एक परिवार की मिल्कीयत ही थी। इसमे एक सीमा से अधिक उन्नति की सभावनाएँ नही हो सकती थी। असल मे 1994 मे उसने जो नौकरी वहां की उस की योग्यताएँ उस के लिए बहुत अधिक थी। मुझे शक था कि वह अबानियो की चमक-दमक और एक बहुत अच्छी गुजराती लडकी के ईश्क के चक्कर मे यहाँ फस गया था। वह लडकी भारत के सर्वोच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश की बेटी थी।

मैं और मेरी पत्नी अपने बेटे को अबानी ग्रुप छोड़ने पर राजी करने मे सफल रहे। उस ने प्रॉक्टर एड गैंबल में नौकरी कर ली। वह उससे अधिक वेतन व भत्तो पर जेद्दा चला गया। बड़े अंबानी को मेरे बेटे का यह निर्णय अच्छा नही लगा। इसके बाद मुझे महसूस हुआ कि हमारे संबधो मे ठडक आने लगी है।

❮33❯

साम्राज्य का पलटवार

दुनिया मे सदा से आम धारणा रही है कि किसी त्रुटि का उद्घाटन सत्य की खोज के समतुल्य है। सत्य और त्रुटि एक-दूसरे के विलोम होते हैं, ऐसा कुछ नही है। एक त्रुटि के सुधारे जाने पर दुनिया दूसरी त्रुटि की तरफ जाती है। हो सकता है वह पहले वाली से भी बदतर हो।

एच.एल. मनकेन

जोखिम उठाने की प्रवृत्ति ने मुझे आस-पास की जमीनी सच्चाइयो से अधा नही कर दिया था। अपनी रोज की रोटी से आगे की न सोचने वाले बौने सरकार और इटेलिजेंस ब्यूरो के प्रमुख पदों पर आसीन थे। वे सुविधाजीवी थे प्रतिबद्धताजीवी नही।

एक बडी घटना ने यह कडवी सच्चाई मेरी अतरात्मा मे भर दी।

आई एस आई के भूत और इस्लामी उग्रवादियो के साथ उसके सबधो का पीछा करते-करते हम एक सुराग तक जा पहुचे। उसने एक ऐसी सुरग का पता दिया जो भारत के हृदय प्रदेश से चल कर नेपाल की राजधानी काठमाडू तक जाती थी। आई बी ने पता लगा लिया था कि आई एस आई की गतिविधियॉ दूतावास से और होटल कारनाली से सपन्न होती थीं। नवीनतम सुराग ने हमे उत्तर प्रदेश मे एक जगह पहुँचाया। इसे बीच के आधार की तरह इस्तेमाल किया जा रहा था। यहॉ से भारतीय मुसलमानो के भेद्य वर्ग मे उग्रवाद का प्रचार किया जा रहा था।

हमें किसी पराए देश मे सचालन का अधिकार न था। यह काम रॉ के जिम्मे था कि वह इटेलिजेंस एकत्र कर के देश के सुरक्षा सगठनो को दे। यह कभी नहीं हुआ। मैंने नेपाल में कुछ एजेंट बनाने की पेशकश की लेकिन उसे नामजूर कर दिया गया । फिर मैंने समस्या का किसी और ढंग से सामना करने का मन बनाया।

मैंने एक प्रसिद्ध मुस्लिम विश्वविद्यालय से दो मुसलमान युवको को भर्ती किया था। उन से तीन महीने तक चर्चा के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि उन्हे प्रशिक्षित कर के मुस्लिम युवा संगठन स्टूडेंट्स इस्लामिक मूवमेट आफ इडिया मे भेजा जा सकता है। उसके बाद उनको नेपाल भेज कर आई. एस.आई के जाल मे उनकी घुसपैठ कराई जा सकती है। इन युवकों को सिमी में भेजने की योजना काफी कहने सुनने के बाद मजूर की गई। योजना का बाकी हिस्सा नामंजूर हो गया।

मैंने नेपाल के काम को आगे बढाया। मैं अनौपचारिक तौर पर नेपाल गया। वहॉ मैंने महाराजगंज मार्केट क्षेत्र के पास एक सुरक्षित मकान खोजने की कोशिश की। इसमें जो खर्च आया वह मैंने विभाग से नही लिया। बाद में इन में से एक युवक को काठमांडू के एक सुरक्षित

घर में ठहराया गया। उसने यह सनसनीखेज जानकारी दी कि आई एस आई ने अलीगढ़ के पास एक मुसलमान के घर के घास के लॉन मे बहुत सा विस्फोटक और हथियार छिपा रखे हैं। इस गुप्त भंडारण का मकसद दिल्ली और उसके आस-पास जबरदस्त आतकवादी हमला करना था। हमने रात को उस घास के लॉन की खुदाई करवाई और खतरनाक सामग्री को वहाँ से बरामद किया। इस कार्रवाई ने एक मुसलमान राजनीतिज्ञ के काठमाडू स्थित आई एस आई के एक संचालक से सपर्क के बारे मे भी काफी कुछ पता चला। लेकिन अदृश्य राजनीतिक आदेशों ने मेरे हाथ बाध दिए और मै उस देशद्रोही को निष्क्रिय नही कर सका। वह आज भी मौजूद है और एक राजनैतिक दल का झडा फहराता फिरता है।

कुछ समस्याएँ एक अप्रत्याशित तरफ से आईं। आई बी की एक और यूनिट पजाब की कार्रवाई देख रही थी। वहाँ से विरोध हुआ कि पी सी आई यू ऐसे मामलो मे पड रही है जो काउटर-इटेलिजेंस से संबद्ध नही है। मैने तर्क दिया कि काउटर-इटेलिजेस का मतलब सिर्फ यह नही होता कि विदेशी राजनयिको पर नजर रखो और उनके फोन सुना करो। लेकिन इस से बॉस लोग सतुष्ट नही हुए। एजेटो की नई कार्रवाइयो की परिकल्पना करना और दूसरे तरीके अख्तियार करने का विचार बडे लोगो को नही भाया। मत्रिमडलीय सचिवालय के एक प्रमुख कार्यकारी ने मेरी अच्छी खबर ली और मेरे बॉस के साथ मेरे सबधो मे भी खटास आई।

मुझे अगारो पर भूना गया और आदेश हुआ कि मै अपनी ऐसी कार्रवाइयो को फौरन बद कर दूँ। मै ऐसा करने मे असमर्थ था। युवको से कुछ वादे किए गए थे। वे विश्वविद्यालय के स्नातक थे और उन्होने कप्यूटर सॉफ्टवेयर मे विशेषज्ञता हासिल की थी। मै उनको एकदम से निकाल बाहर नही कर सकता था जहाँ वे राज फाश होने पर सिमी की साजिशो और आई एस.आई के निशानेबाजो के हवाले हो जाएँ। इटेलिजेस ब्यूरो ने एम 15 या सी आई ए से एजटो की सुरक्षा नही सीखी थी। एजेटो की सुरक्षा आई बी की पेशेवर नैतिकता मे शामिल न थी।

काफी कोशिशो के बाद मै उनके लिए एक सार्वजनिक उपक्रम मे कप्यूटर सॉफ्टवेयर की आगे की ट्रेनिग के लिए जगह बना पाया। बाद मे इन दोनो युवको को एक अरब देश मे काम मिल गया जहाँ उनकी पहचान कप्यूटर विशेषज्ञों के तोर पर बन गई।

* * * *

कोई पैदाइशी धावक भी हमेशा 100 मीटर की दौड नही लगा सकता। उसे भी ऊर्जा क्षय होने के सिद्धात के तहत अपनी रफ्तार कम करनी ही पडेगी। मै इस सिद्धात से परिचित होते हुए भी रफ्तार कम करने को तैयार न था। किस्मत ने यही राजनीतिज्ञ और प्रशासक कहलॉने वाले अलौकिक प्राणियो के प्रति मेरी दुस्साहसी प्रवृत्ति का पीछा किया। मैंने यह समझने मे भूल की थी कि समय और व्यक्ति बदल गए है। काम करने के पुराने आचार के स्थान पर नए आचार बन गए हैं। बॉस लोग अपनी चमडी बचाने मे लगे रहते थे। उनको अपने कनिष्ठों की सुरक्षा की परवाह न थी। इन मे से अधिकाश का परिणाम और उपलब्धियो से वास्ता न था। वे भेंट-पूजा की ज्यादा अपेक्षा रखते थे।

कुछ ने मेरे खिलाफ उस हथियार का इस्तेमाल किया जो एक विचित्र मामले से निकला था। इस में मालदीव की दो औरते लिप्त थी। यही मामला बाद मे ' इसरो गुप्तचरी काड ' के नाम से कुख्यात हुआ।

भारत सरकार के आर्थिक अपराधों की जॉच करने वाले संगठन केंद्रीय जाँच ब्यूरो में कुछ वर्षों में ढेर सारी थेगलियॉ लग गई थीं। इंदिरा गांधी के शासनकाल में इसका अधिकार क्षेत्र व्यापक हो गया था। इसे राजनीतिक, आपराधिक तथा कई अन्य मामलों की जांच के अधिकार भी मिल गए थे। उन दिनों के आकाओं का यह विरोधियो का पीछा करने और उन्हें परेशान करने का अच्छा साधन बन गया था। आई.बी और रॉ तो परोक्ष तरीके से नारियल तोडने वाले थे, जब कि सी.बी.आई. सरकार के हाथ मे सीधा हथौडा था। महत्वपूर्ण व्यक्तियों और मुद्दों से संबंधित मामलों का व्यापक प्रचार करने के लिए सी.बी.आई का हौसला बढाया जाता था। यह प्रचार ही इन मुद्दों या व्यक्तियों को बदनामी के गर्त मे गिराने के लिए काफी होता था। एक संस्था के तौर पर सी.बी.आई. को इसके लिए दोष नहीं दिया जा सकता। सरकार के दूसरे हथियारों की तरह सी.बी.आई. भी अपने आकाओं की सेवा पूरी वफादारी से करती थी जो अक्सर संवैधानिक स्वाधीनता और वैधता को भी अवरुद्ध करने वाली होती थी।

इसरो गुप्तचरी कांड का केरल के अंग्रेजी और मलयाली समाचारपत्रों ने खात्मा ही कर डाला था। विभिन्न राजनीतिक हस्तियो और दलो से सबद्ध वहॉ के प्रिंट मीडिया ने इस मामले का अपना ही विवरण पेश किया। यह प्रचार उन पुलिस अफसरो द्वारा जानबूझ कर दी गई जानकारी पर आधारित था जो किसी न किसी राजनीतिज्ञ के प्रति वफादार थे। सी.बी.आई. ने भी राष्ट्रीय मीडिया को प्रेरित वृत्तात दे कर इसका व्यापक प्रचार करवाया। उसने यह काम या तो सीधे-सीधे या फिर अपने कानूनी प्रतिनिधि के माध्यम से किया। आई.बी. ने हमेशा की तरह अपना वृत्तांत जाहिर नहीं किया था। आई.बी. कभी भी बाजार में अपना रोना-धोना या कहानियों का सौदा ले कर नहीं जाती।

आई.बी. का ब्योरा मेरे पास न था। जो वर्तमान ब्योरा है वह इंटेलिजेंस बिरादरी से मेरी निकटता से उपलब्ध है। यह एजेंसी में मेरे सहयोगियों ने जो बताया उसी पर आधारित है जिससे तथ्यों को सही परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है। यह मेरे उन सहयोगियों से उपलब्ध तथ्य हैं जिनको सी.बी.आई. की ' जॉच ' के आधार पर गलत तरीके से सताया गया और सज़ा दी गई। उन में से कुछ पर ऐसे आरोप लगाए गए जो उन्होंने कभी किए ही नहीं। विभागीय कार्रवाई अभी भी जारी है। उनको इस लिए कष्ट उठाना पडा क्योंकि सी.बी.आई. उनको उस समय सुरक्षा नहीं दे पाई जब वे अपने कर्तव्य का पालन कर रहे थे। ' इसरो गुप्तचरी कांड ' की काउंटर-इंटेलिजेंस जॉच का जो आई.बी. विवरण है, वह मुझे उनसे ही प्राप्त हुआ।

<34>

धराशायी हुआ रॉकेट

न कुछ अच्छा है न बुरा,
यह तो है इन्सानों के अपने दिमाग की सनक।
जो मुझे फायदा कराए, वह है अच्छा,
जिस से नुकसान या कष्ट पहुंचे उसे कहता हूँ मैं बुरा।

सर रिचर्ड बर्टन, ' कसीदा '

जहाँ तक सरकार चलाने का सवाल है, तत्कालीन राजनीतिक आकाओं के लिए कुछ भी अच्छा या बुरा न था। अगर कुछ महत्वपूर्ण था तो वह था शासको का फायदा। अगर निहित स्वार्थ के आडे आते हों तो राष्ट्रीय सुरक्षा के मामले भी ' बुरे ' की श्रेणी मे आते थे। सरकार की राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रति इसी संवेदनहीनता का एक उदाहरण था इसरो गुप्तचरी काड।

एक मालदीवी नागरिक मरियम रशीदा के पकडे जाने से इसरो गुप्तचरी काड प्रकाश मे आया। मरियम को केरल पुलिस ने वीजा की अवधि के बाद भी रहने के अपराध में पकडा था। उसके विरुद्ध केस नं. 225/94 20-10-1994 को दर्ज किया गया। उससे पूछताछ करने पर 13-11-94 को आधिकारिक गोपनीयता कानून के तहत भारतीय दड संहिता की धारा 3, 4, 5 और 34 के अंतर्गत मामला दर्ज किया गया। मरियम रशीदा और एक अन्य मालदीवी नागरिक फौजिया हसन से केरल पुलिस और इटेलिजेस ब्यूरो की केरल यूनिट ने पूछताछ की। इससे पता चला कि मरियम मालदीव की सेक्योरिटी एड इंटेलिजेंस सर्विस मे काम करती है। उसने वलियामारा,त्रिवेंद्रम स्थित इसरो के एक सवेदनशील खड फेब्रिकेशन एड तकनॉलॉजी डिवीजन एल.पी.एस.सी. के कुछ वरिष्ठ वैज्ञानिकों के साथ आपत्तिजनक संपर्क बना रखे थे। इन वैज्ञानिकों में डी. शशिकुमारन और एल.पी.एस.सी के उपनिदेशक नांबिनारायण के नाम मुख्य रूप से सामने आए। आगे पूछताछ हुई। इससे इंस्पेक्टर जनरल पुलिस रैंक के एक आई.पी. एस. अधिकारी रमन श्रीवास्तव, भारतीय व सोवियत अंतरिक्ष एजेंसियों से संबंध रखने वाले बैंगलौर स्थित व्यवसायी चंद्रशेखर, मंगलौर स्थित एक डॉक्टर तथा कुछ और लोगों पर भी आरोप आया।

आरंभिक पूछताछ की प्रक्रिया में हैरानी में डालने वाली और बात थी कोलबो स्थित पाकिस्तान की इंटर सर्विसेज इंटेलिजेंस के कोलंबो स्थित कुछ संदिग्ध एजेंटों का इसमें लिप्त होना। इनमें माली स्थित जहीरिया बैंक की एक कर्मचारी जुहेरिया मुहीयुद्दीन, सऊदी अंतर्राष्ट्रीय हथियारों के सौदागर अहमद फऊद जिजावी, श्रीमती एन.एस. हनीफा, श्रीमती एन. एच. गफूर और मुहम्मद हालमिल प्रमुख थे। ये सभी मालदीव के नागरिक थे। पूछताछ रिपोर्ट में एक और रहस्यमय व्यक्ति का नाम उभर कर आया। यह मुहम्मद पाशा था जिस पर आई. एस.आई. का संचालक होने का संदेह था।

शुरू में आई.बी ने आई बी निदेशक के एक निजी सहायक रतन सहगल और रॉ के के. आर. राव को मामले की जॉच के लिए माली भेजने का इरादा किया। इन उच्च अधिकारियों ने इस बात की पुष्टि की कि मरियम के मालदीव सरकार के सुरक्षा व इंटेलिजेंस संगठन से संबंध थे। उनकी रिपोर्ट से पता चला कि मरियम रशीदा भारत एक विशेष मिशन पर आई थी। यह था राष्ट्रपति गयूम का तख्ता पलटने की संदिग्ध साजिश का पर्दाफाश करना। रॉ और विदेश मत्रालय के मालदीव के अधिकारियों के साथ सपर्क संबंध बदस्तूर जारी रहे।

दरअसल इस मामले की जॉच पडताल रॉ को करनी चाहिए थी। आई.बी. भारत के अंदर जाँच में उसकी मदद कर सकती थी। लेकिन आई.बी. के निदेशक डी.सी. पाठक ने यह फैसला नहीं लिया। मामला केरल का था। लिहाजा उन्होंने इसे केरल के एक वरिष्ठ अधिकारी एम के. रथिंद्रन के हवाले कर दिया। वह उस क्षेत्रीय डेस्क के प्रमुख थे।

शुरुआत से ही मामले की कुछ खास बातें उभर कर सामने आई :

- आई.बी. निदेशक डी सी. पाठक इसकाउटर-इटेलिजेंस के मामले से इस कदर अभिभूत हो गए कि उन्होने स्थिति को अपने जिम्मे ले लिया और सरकार को अपने हस्ताक्षरो के साथ रिपोर्टे भेजनी शुरू कर दीं। (कुल 10, जहॉ तक मुझे याद है।) उन्होंने संबद्ध काउंटर-इंटेलिजेंस यूनिट, एफ आर आर ओ. (विदेशियो के पंजीकरण अधिकारी),सामान्य सुरक्षा से सबंधित शाखा और पी सी आई.यू से इस बारे में सलाह भी नही की। जब-जब त्रिवेंद्रम से पूछताछ की रिपोर्टे आतीं, वह उनके आधार पर अपनी रिपोर्ट तैयार कर लेते। इनका आकलन रथिंद्रन ने और पाकिस्तान काउंटर-इंटेलिजेंस यूनिट प्रमुख की हैसियत से मैंने भी कभी नहीं किया।
- केरल यूनिट के वरिष्ठ आई बी. अधिकारियों और पुलिस ने खुद कभी भी केंद्रीय पूछ-ताछ करने वालों को वृत्तांत नही दिया न ही कुछ पूछताछ की। पूछताछ करने वालों को दिल्ली से भेजा गया था। उन की कोई स्थानीय पृष्ठभूमि न थी। उनकी वस्तुनिष्ठता असदिग्ध थी। फिर भी पेशे का तकाजा था कि पूछताछ करने वालों से विस्तार से जवाबी पूछताछ की जाए और क्षेत्रीय आधार पर जॉच कर के उनकी रिपोर्टों की पुष्टि की जाए। लेकिन आई बी. निदेशक को तो प्रधानमंत्री और गृहमंत्री को रोजाना होने वाली घटनाओं की रिपोर्ट नियमित रूप से दे कर शाबाशी लेने भर से मतलब था।
- केरल के मलयाली और अंग्रेजी प्रिट मीडिया ने तो रोज होने वाली जॉच के तथ्यों की रिपोर्टे छापने का जिम्मा ले लिया था। उनको मसाला केरल पुलिस से मिल जाता था।
- केरल का राजनीतिक वर्णक्रम बुरी तरह विभाजित था। कांग्रेस के वरिष्ठ नेता और मुख्यमंत्री के. करुणाकरण के निकटवर्ती प्रशासक और मीडिया वाले रमन श्रीवास्तव और इसरो के वैज्ञानिकों की तरफदारी कर रहे थे। दूसरे रंग के राजनीतिज्ञ और प्रशासन के लोग जो करुणाकरण विरोधी थे, और वामपंथी मिल कर आई.जी.पी. और वैज्ञानिकों का सिर चाहते थे।
- केस की शुरुआत से ही न्यायविदों का ध्यान पुलिस के विभिन्न धडों की लडाई की ओर आकृष्ट हुआ था।

रॉ को जमीनी स्तर की जॉच से बाहर रखा गया था। मालदीव श्रीलका और रूस से जो सुराग मिले थे उनके बारे मे भी उनको समय से नही बताया गया था। किन्ही कारणो से रॉ ने भी इस मामले से कुछ ठडी दूरी बनाए रखी। सभवत विदेश मत्रालय और प्रधानमत्री कार्यालय के निर्देशो के कारण ऐसा हो रहा था। मालदीव के राष्ट्रपति गयूम भारत के असदिग्ध मित्र थे। दिल्ली की इच्छा नही थी कि उनका तख्ता पलटे।

* * * *

केरल मे मामला दर्ज हो जाने के करीब दो हफ्तो बाद आई बी निदेशक ने मुझे बुलाया। उन्होने मुझसे कहा कि इस केस की जिम्मेदारी सभालूँ। इसे औपचारिक रूप स स्वीकार करने से पहले मैं त्रिवेद्रम गया। वहॉ मैने स्थानीय आई बी अधिकारियो, केरल पुलिस के अधिकारियो जिन मे महिला अधिकारी भी शामिल थी इन सब की उपस्थिति मे मरियम रशीदा व फौजिया हसन से लबी पूछताछ की। इसकी वीडियो रील भी बनवाई गई। मैने राज्य पुलिस इटेलिजेस के प्रमुख से भी इस बारे मे चर्चा की। इन दो गिरफ्तार सदिग्धो से मेरी बातचीत से ऐसा लगा कि काउटर-इटेलिजेस सबधी छानबीन करने से पहले मालदीव की इन सदिग्ध महिलाओ इसरो के वैज्ञानिको व बगलौर के व्यवसायी से विशेषज्ञो द्वारा लबी पूछताछ करना आवश्यक है। निदेशक ने इस की अनुमति दे दी और पूछताछ मे महारत रखने वालो की एक टीम त्रिवेद्रम भेज दी गई।

सावधानी के तौर पर मैने आई बी की तकनीकी डिवीजन से अनुरोध किया कि वह पूछताछ की पूरी प्रकिया की चुपचाप कवरेज के लिए गुप्त वीडियो-आडियो उपकरण लगाए। मैं नही चाहता था कि आई बी राजनीतिक कपटजाल की चपेट मे आए या मीडिया की चमक उस पर भी पडे। टेलीकास्ट करने वाले लडको ने कुल 71 श्यामश्वेत और 1 रगीन वीडियो टेप फिल्माए। इसमे सभी प्रमुख संदिग्धो से पूछताछ को टेप किया गया।

निदेशक के मागने पर केरल यूनिट के प्रमुख मैथ्यू जॉन रोज पूछताछ का साराश टेलेक्स से भेज देते थे।

पाकिस्तान काउटर-इटेलिजेस डेस्क के मेरे योग्य सहयोगियो ने पूछ-ताछ के विवरण का प्रसस्करण आरभ किया ताकि सदिग्ध जासूसी के मामले की कोई निश्चित तस्वीर उभर सके। उधर आई बी निदेशक प्रधानमत्री कार्यालय, गृहमत्रालय विदेशमत्रालय तथा सरकार के अन्य सबद्ध विभागो को विशेष रिपोर्टे भेजने मे लगे रहे। उनको सरकार के साथ सपर्क बनाए रखने का शौक था। वह समझते थे कि उनकी क्षमता का आकलन उनकी खुद हस्ताक्षर कर के भेजी गई रिपोर्टों के आधार पर ही होगा। एक नाजुक मौके पर मैने बताना चाहा कि ये रिपोर्टे पूछ-ताछ की रिपोर्टों के विश्लेषण के बाद ही बनाई जानी चाहिए जब अनाज के दाने सावधानी से भूसे से अलग कर लिए गए हो। उन्होने मुझे समझाया कि वह अपनी रिपोर्टे रॉ की रिपोर्टे आने से पहले भेजना चाहते हैं। यह बचकाना तर्क था। जॉचे-परखे बिना कच्ची सामग्री राजनीतिज्ञो को रोमाचित करने के लिए भेजते रहना एक भौंडी हरकत थी। मैंने कहा कि इस तरह की अपरिपक्व रिपोर्टे देने से राजनीतिज्ञो व प्रशासको की अपेक्षाएँ बढ जाएगी। पूछ-ताछ के दौरान जो सबध बनते नजर आ रहे हैं उनकी पुष्टि करने की स्थिति में हम लोग नही हैं। सदिग्धों ने पूछताछ के दौरान जो ब्योरा दिया है, उसकी सत्यता की जॉच हमे अभी करनी है। इस के लिए पर्याप्त समय चाहिए।

मेरी बात को अस्वीकार कर दिया गया।

इंटेलिजेंस ब्यूरो में इस तरह का प्रचलन पहले किसी ने नही देखा था।

बॉस को मनाने में असफल होने के बाद मैंने चेन्नई, त्रिवेंद्रम और बंगलौर की सहायक यूनिटों से अनुरोध किया कि वे मिले सुरागों के आधार पर आगे जॉच शुरू करें। संपर्क के मुख्य बिंदुओं की पुष्टि करें, ताकि जासूसी के मामले का पुख्ता आधार बन सके। इतने विषद् मामले की छानबीन के लिए मेरे सहयोगियों के पास साधन नहीं थे। फिर भी उन्होंने पूरी निष्ठा के साथ काम करना शुरू कर दिया। उन्होने मरियम रशीदा, फौजिया हसन, शशिकुमार और चंद्रशेखर आदि के रहस्योद्घाटनो की पुष्टि करने वाले तथ्य भेजने आरंभ कर दिए। मेरा अनुरोध काउटर-इटेलिजेस के मामले की स्पष्ट उभरती रूपरेखा के कारण था। मरियम और फौजिया मालदीव की मामूली सचालक थी। उनमे भारतीय अतरिक्ष योजना से संबधित जानकारी को समझने-सहेजने की क्षमता न थी।इसरो परियोजना अंतरिक्ष संबधी वैज्ञानिक शोध के लिए है। लेकिन इसमें जो आधारभूत रॉकेट टेक्नॉलॉजी इस्तेमाल होती है वह सैनिक उपयोग के लिए भी उतनी ही उपादेय है। उस समय तक पाकिस्तान ने चीन और उत्तरी कोरिया से एम।। रॉकेट लेने शुरू कर दिए थे। पाकिस्तानी अपने यहा रॉकेट टेक्नॉलॉजी, ईधन और निर्देश प्रणाली का विकास करने में लगे हुए थे। वे क्रायोनिक इंजन के बारे में जानकारी चाहते थे, भारत जिसका विकास करने की दहलीज पर था। पाकिस्तान के लिए यह स्वाभाविक था कि वह इसरो के आस-पास मडराए और भारतीय डिजाइन व रॉकेट इजन की टेक्नॉलॉजी चुराने की कोशिश करे। अन्य अंतर्राष्ट्रीय एजेसियॉ भी यह जानने की इच्छुक थीं कि अंतरिक्ष कार्यक्रम की आड में भारत कही एम.टी सी आर. का उल्लघन तो नहीं कर रहा ? आई.बी. निदेशक को ये बाते बता दी गई थी। लेकिन आई.बी. ने सरकार को पाकिस्तान और दूसरे देशो से होने वाले इस सभावित खतरे से आगाह नहीं किया। जॉच व पूछताछ की प्रक्रिया मे पाकिस्तान की रॉकेट टेक्नॉलॉजी की जानकारी हासिल करने की उत्कठा और उसकी तरफ से होने वाले खतरे को आकने वाले कोण को भी शामिल किया जाना चाहिए था।

मुझे इस बात की जानकारी नही है कि इसरो ने सरकार के संबद्ध विभागों को इस मामले की बारीकियों से अवगत कराया था या नही।

यह भरोसा हो जाने पर कि मालदीव व श्रीलंका के अपने अड्डों से पाकिस्तानी साजिश का पर्दाफाश करने की सभावना है, मै एक बार फिर त्रिवेंद्रम गया। वहॉ मैंने राज्य इंटेलिजेंस प्रमुख, जॉच के प्रमुख अधिकारी डी.आई.जी. सेबी मैथ्यू व इंटेलिजेंस ब्यूरो के अधिकारियों से बातचीत की। मैं इस विश्वास के साथ लौटा कि यह काउटर-इटेलिजेंस का स्पष्ट मामला है। केरल पुलिस और आई बी. को रॉ से मिल कर इस की जॉच करनी चाहिए।

जो कोलाज उभरा वह कम दिलचस्प न था :

> मरियम रशीदा, फौजिया हसन और इसरो के वैज्ञानिकों डी. शशिकुमार व नांबिनारायण के बीच गुपचुप संबंध प्रमाणित हो गए। अब यह गुत्थी सुलझानी बाकी रही कि उन दोनों में किस किस्म का लेन-देन हुआ। अगर कोई लेन-देन हुआ था तो उसमें राष्ट्रीय सुरक्षा को किस प्रकार की क्षति पहुँची तथा इसरो की कितनी गोपनीयता विदेशी एजेंटों के हाथ लगी।

- मालदीव की इन नागरिको के साथ चद्रशेखर के सबध भी प्रमाणित हो गए। बगलौर के एक और सपर्क से पता चला कि मरियम और फौजिया राष्ट्रपति गयूम का तख्ता पलटने की साजिश का सुराग लगाने के काम से आईं थी। इस सरकारी काम के अलावा वे निश्चिय ही त्रिवेद्रम के इसरो केद्र के आस-पास पाकिस्तान प्रायोजित जासूसी की हरकतो मे भी लिप्त थी।
- क्या वे अपने तईं ऐसा कर रही थी या फिर मालदीव की सुरक्षा एजेसी के किसी शीर्ष अधिकारी को आई एस आई ने अपने साथ मिला कर उसे इसकाम का 'ठेका' दिया था ?
- क्या इसरो के वैज्ञानिको को कोई आर्थिक लाभ भी हुआ था ? अगर हुआ था तो उस धन का एव उसके उपयोग का पता लगाना।
- वलियामारा के इसरो केद्र मे और किसे इसकाम मे लगाया गया था? क्या कोई अमेरिकी एजेसी को भी कुछ बता रहा था ?
- ये दोनो महिलाएँ कोलबो स्थित मालदीव के नागरिक जुहेरिया तथा कोलबो स्थित ही एक सदिग्ध आई एस आई सचालक मोहीयुद्दीन के सपर्क मे थी। मोहीयुद्दीन का पता लगाना जरूरी था कि वह कोलबो या माली मे कहॉ है ?
- मालदीव की महिलाओ और आई जी पुलिस रमन श्रीवास्तव ब्रिगेडयर कोटवाला जिनका जिक्र किया गया,उन दोनो के बीच कथित सबध असदिग्ध रूप से सिद्ध नही हो पाए। हालाकि ऐसे पॉइट सामने आए जिनके आधार पर और जॉच की जानी चाहिए थी। ऐसी गध मिली कि इस सदिग्ध आई जी पी और करुणाकरण तथा कुछ अन्य राजनीतिज्ञो के बीच भी सपर्क थे।
- रमन की बगलौर और.चेन्नई मे रहस्यमय उपस्थिति तथा कुछ नामित सदिग्ध व्यक्तियो से उनकी मुलाकातो के मामले की और गहरी छानबीन की जानी चाहिए थी।
- क्या केरल पुलिस ने इस मामले को राजनीतिक दबाव के अदर उठाया ? अगर हॉ, तो फिर इस के पीछे कौन से राजनीतिज्ञ थे ?

आई बी की केद्रीय पूछ-ताछ टीम रमन श्रीवास्तव से पूछ-ताछ नही कर सकी। राज्य सरकार उन से पूछ-ताछ करने से झिझक रही थी। डर था कि इससे करुणाकरण नाराज हो जाएगे। कहा जाता है कि रमन श्रीवास्तव के पिता उत्तर प्रदेश के भूतपूर्व आई पी एस अधिकारी थे। उन्होने गृहमत्रालय और प्रधानमत्री कार्यालय के कुछ प्रमुख कार्यकारियों पर दबाव डाला। इनमे एक विशेष सचिव और एक प्रधानमत्री कार्यालय के प्रमुख अधिकारी थे। ये दोनो भी उत्तर प्रदेश के थे। उन मे से दो लोगो ने मुझसे कहा कि मैं रमन को इस मामले से छुटकारा दिला दूँ। मुझे यह भी बताया गया कि करुणाकरण ने प्रधानमत्री से बात कर के इस जॉच को खत्म करने का आग्रह किया है। उन्होने यह तर्क भी दिया कि इससे इसरो की छवि धूमिल होगी और वैज्ञानिकों का मनोबल गिरेगा।

उन्होंने मेरे इस तर्क को अस्वीकार कर दिया कि आई बी को काउंटर-इंटेलिजेंस के मिले सुरागो के आधार पर आगे जॉच करने का अधिकार था। इससे इसरो की कोई बदनामी नही होती थी। दरअसल मरियम वाला मामला खुलने से पहले उसका इसरो से कोई वास्ता नही था। रमन श्रीवास्तव के दोस्त यह समझ नही रहे थे कि पाकिस्तान की भारत की रॉकेट

टेक्नॉलॉजी में बहुत दिलचस्पी थी। वह खुद भी उधार ली हुई और चुराई हुई जानकारी के आधार पर अपने यहाँ रॉकेट टेक्नॉलॉजी का विकास करने मे लगा हुआ था। वे इस तर्क को भी हजम नहीं कर पाए कि शांतिपूर्ण अंतरिक्ष रॉकेट विज्ञान और सैनिक रॉकेटों में एक-सी टेकनॉलॉजी इस्तेमाल होती है। पाकिस्तान की भारतीय रॉकेट टेक्नॉलॉजी में बहुत अधिक दिलचस्पी थी, खासतौर पर क्रायोजनिक इंजन टेक्नॉलॉजी में। लेकिन वरिष्ठ प्रशासकों के सामने इस तरह के तर्क पेश करना व्यर्थ था।

इस सामग्री के आधार पर और वीडियो टेप की चुनिंदा सामग्री के आधार पर मैंने एक ' कार्यसूची ' तैयार की। इसमें उन सुरागों का विशेष उल्लेख था जिनकी जॉचपडताल की जानी बाकी थी और जिनका संबध पहले से ज्ञात घटनाओ से था।

उस दौरान पूछताछ के कई टुकडों मे प्रधानमंत्री नरसिंहराव के एक बेटे प्रभाकरराव का नाम सामने आया। उनका संबध मालदीव की इन महिलाओ के बगलौर वाले सपर्क से था। ' आतरिक कार्यसूची ' मे मैंने यह भी कहा कि प्रभाकरराव से कुछ तथ्यो के स्पष्टीकरण के लिए अनौपचारिक तौर पर पूछताछ की जानी चाहिए।

मैंने निदेशक के सामने यह तर्क भी रखा कि इसरो काड बहुत बडा आकार ले चुका है। आई.बी. श्रीलंका, रूस और मालदीव मे इस के संपर्क सूत्रों का पता लगाने मे सक्षम नहीं है। रॉ को यह केस सौंपने की स्थिति भी नहीं है। रॉ को काउंटर-इटेलिजेंस के मामलों की छानबीन करने की कुशलता नहीं है। बहरहाल मै कई मौकों पर रॉ के कार्यालय गया और वहॉ के अधिकारियों को जॉच की प्रगति के बारे में अवगत कराया। रॉ से जो जानकारी उपलब्ध हुई उससे अधिकाशतः संदिग्ध व्यक्तियो से पूछताछ के दौरान सामने आए महत्वपूर्ण तथ्यों की पुष्टि हुई। गौरतलब है कि रॉ विदेशी पुलिस को सीधे पत्र नहीं लिख सकती। न ही वह इंटरपोल को किसी मामले में शामिल कर सकती है। उसकी जॉच का स्वरूप गुप्त ही होता है।

कुछ दिन बाद अतरिक्ष विभाग के एक बंगलौर स्थित संयुक्त निदेशक मुझसे मिलने आए। वह बंगाली थे। उन्होंने मामले की प्रगति पर सतोष व्यक्त किया। उन्होंने यह भी बताया कि इसरो के प्रमुख ने एक आंतरिक जॉच का आदेश दिया है। वह चाहते हैं कि ' गायब दस्तावेजो ' के बारे में पता चले। ऐसे सब दस्तावेज जिन्हें कथित तौर पर शशिकुमारन और नांबिनारायण चोरी से बाहर ले गए। इस बातचीत का ब्योरा लिखित में लिया गया और उसकी जानकारी निदेशक आई..बी. को दी गई।

इसी बीच मुझे प्रधानमंत्री के निजी सचिव ने बुला भेजा। इसने मुझे पूरी तरह झकझोर कर रख दिया। मुझे प्रभावित करने के लिए उन्होंने दो तर्क दिए : एक यह कि इस मामले के इतने प्रचार से भारत के अंतरिक्ष कार्यक्रम को हानि पहुँच सकती थी। दूसरा यह कि प्रधानमंत्री के राजनीतिक विरोधी इसका इस्तेमाल केरल में काग्रेस को कमजोर करने के लिए कर सकते थे। शायद राजनीतिक दृष्टि से उनकी चिंता उचित थी। पर न तो मैं मीडिया का मुंह बंद करने की स्थिति में था और न ही राजनीतिज्ञों का गला घोंटने की स्थिति में।

फिर भी मैं इतना तो समझ ही गया कि मेरे हाथ मे तपा हुआ लोहा है। इसे किसी और हाथ को थमाना चाहिए। केंद्रीय जाँच ब्यूरो ही इसके लिए एकमात्र स्वाभाविक विकल्प था। सिर्फ वही एजेंसी इंटरपोल से संपर्क कर सकती थी। वह पूछ-ताछ करने वाली टीम के निकाले सुरागों पर आगे छानबीन के लिए एक विशेष टीम का गठन भी कर सकती थी। मैंने आई.

बी निदेशक से आग्रह किया कि व. सी बी आई के निदेशक विजय रामाराव से इस बारे मे चर्चा करे। लेकिन डी सी पाठक की किन्ही कारणो से सी बी आई निदेशक से बातचीत नही थी। मुझसे कहा गया कि उनसे बातचीत कर के उनकी सोच की थाह लूँ। मुझे सी बी आई निदेशक से निकट सपर्क बहुत अच्छा लगा। वह मुझसे बहुत अच्छी तरह मिले। लेकिन वह इस जटिल जासूसी काड की जिम्मेदारी लेने के हक मे नही थे।

मैने एक बार फिर पाठक से तर्क किया। उनको मै जबरन केद्रीय गृह सचिव (पद्मनाभैया) के कक्ष मे ले गया ताकि वह उनसे केस को सी बी आई के हवाले करने का अनुरोध करे। शुरू मे थोडा झिझकने के बाद वह यह काम करने को राजी हो गए। इससे मुझे बहुत राहत हुई।

लेकिन जैसा कि मैने पहले बताया किस्मत ने मुझे निदेशक आई बी की एक और कार्रवाई के कारण धर दबोचा।

त्रिवेद्रम यूनिट के प्रमुख ने सारी पूछ-ताछ प्रक्रिया का सार-सक्षेप तैयार किया था। उन्होने 32 पष्ठो के एक टेलेक्स सदेश मे इसे भेजा। इसके निष्कर्ष मे टिप्पणी थी कि कुछ बातो की पुष्टि होनी बाकी है और कुछ चीजो को ले कर विरोधाभास भी है।

मैंने इस रिपोर्ट का सक्षिप्त रूप तैयार किया और निदेशक से इस पर चर्चा की। वह चाहते थे कि मैं तुरत एक विशेष रिपोर्ट भेज दूँ। मेने कहा कि सरकार मे शीर्ष स्तर पर जानकारी देने से पहले रिपोर्ट का विश्लेषण कर लेना चाहिए। इसके अलावा अब यह मामला सी बी आई के पास था। इसलिए आई बी को लिखित मे बाध्य होने की जरूरत नही है।

पाठक वाजिब तर्क भी सुनने को तैयार न थे। उन्होने खुद ही एक लबी-चौडी रिपोर्ट तैयार कर डाली। मुझसे कहा गया कि उनके पिछवाडे वाले दफ्तर मे इतजार करूँ। उस अभागी रात के साढे दस बजे के करीब उन्होने वह रिपोर्ट पूरी की। अब वह उस मे आतरिक कार्यसूची की प्रति भी नत्थी करना चाहते थे।

मैने इस पर एतराज किया। वह हमारे विभाग के काम करने के लिए बनाई गई एक अनगढ कार्यसूची थी। यह सरकार या सी बी आई के लिए तैयार नही की गई थी। इसे देख कर निदेशक को सिर्फ हमारी कार्यपद्धति और दिशा का अनुमोदन करना था। लेकिन उन्होने एक बार फिर मेरी बात को अस्वीकार कर दिया। वह खतरनाक कार्यसूची जिसमे प्रधानमत्री के बेटे प्रभाकर राव का नाम भी शामिल था मुख्य रिर्पोर्ट के साथ भेज दी गई।

उन्होने एक और गलती की। 32 पेज का जो टेलेक्स त्रिवेद्रम से आया था उसकी फोटोकॉपी उन्होने उसी रात निदेशक सी बी आई को भेज दी। मैने कहा भी कि आई बी के इस तरह के कच्चे माल को इस समय बाहर भेजना समझदारी न होगी। इसके अलावा गृह सचिव अभी इस मामले को सी बी आई को सौंपने के लिए सिद्धातत सहमत हुए है। उस अभागी रात को तीसरी बार निदेशक ने मेरी बात नही मानी। मैंने हाथ से लिख कर एक नोट टेलेक्स की फोटोकॉपी के साथ लगाया और उस खतरनाक सामग्री को सी बी आई निदेशक के घर पर भिजवा दिया। यह एक बचकाना फैसला था और बहुत बडी गलती भी।

* * * *

इस रिपोर्ट का प्रधानमत्री कार्यालय पहुँचना था कि कहर बरपा हो गया। प्रधानमत्री फौरन भाग कर केरल गए। प्रत्यक्ष रूप से कुछ राजनीतिक काम से। लेकिन असलियत मे केरल प्रशासन से आग्रह करने के लिए कि इसरो जासूसी केस को धीमी रफ्तार से चलाया जाए।

इसी दौरान सरकारी विज्ञप्ति आ जाने के बाद मुझे आदेश हुआ कि सी.बी.आई. निदेशक और उन की टीम के साथ विशेष विमान से त्रिवेंद्रम जाऊँ। मुझे बताया गया कि विमान नागपुर में ईंधन भरने और कुछ सामान लेने के लिए रुकेगा। जब हम भोपाल के ऊपर थे तब निदेशक सी.बी.आई. को कॉकपिट में बुलाया गया। उन के लिए दिल्ली से कॉल आई थी। वापस आ कर उन्होंने ऐलान किया कि विमान अब बंगलौर मे रुकेगा क्योंकि उनको वहाँ एक जरूरी मीटिंग में जाना है।

यह एक सामान्य घोषणा थी। लेकिन सी.बी.आई. निदेशक के पडाव मे आए इस अचानक परिवर्तन से यह सदेश स्पष्ट था कि कुछ परिवर्तनों ने विजय रामाराव के मस्तिष्क को आच्छन्न कर लिया है। वह अपने अधिकारियों के साथ तुरंत विचार विमर्ष करने लगे जिसे मै उत्सुकता के साथ देखता रहा। कहीं कुछ गडबडी थी।

बंगलौर में विजय रामाराव और उनके इंस्पेक्टर जनरल कार मे शहर की तरफ गए।

सी.बी.आई.निदेशक करीब ढाई घंटे बाद लौटे। मुझे बताया गया कि वह मार्गरेट अल्वा के साथ एक शिष्टाचार वाली मुलाकात के लिए गए थे। वह केंद्र में कार्मिक मामलो की प्रभारी मंत्री थीं। सी.बी.आई. की निगरानी भी उन के ही तहत थी। इस शिष्टाचार वाली मुलाकात का फैसला आसमान में विमान के ऊंचे उडते समय अचानक किया गया। एक सी.बी.आई. अधिकारी से मुझे पता चला कि उनके निदेशक की इसरो प्रमुख कस्तूरी रंगन से भी मुलाकात हुई और उन्होंने प्रधानमंत्री से भी फोन पर बात की।

विजय रामाराव के बंगलौर में विमान मे आने के बाद से ही मेल मिलाप का सारा वातावरण खामोशी में बदल गया। उन्होंने मुझसे बात तक नहीं की। उनके जैसे मिलनसार आदमी का इस तरह का व्यवहार हैरान करने वाला था।

एक और हैरानी की बात हुई। त्रिवेद्रम मे पत्रकारो के एक दल ने हमें घेरा। मैं उनसे बच कर निकल गया। मैने उनसे कहा कि वे सी.बी.आई. अधिकारियों से बात करें।

अगले दिन मैं मैथ्यू जॉन के कार्यालय मे सी.बी.आई. टीम के साथ बैठा। हम दोनों ने उस टीम केस से संबंधित निम्नलिखित सामग्री दी :

- सभी पूछ-ताछ रिपोर्टों की प्रतियॉ।
- पूछ-ताछ के तीन वीडियो टेप । (बाकी टेप दिल्ली में सुरक्षित रखे थे।)
- मैथ्यू जॉन के भेजे टेलेक्स संदेशों की प्रतियाँ।
- मैथ्यू की आई.बी. को भेजी लिखित रिपोर्टों की प्रतियॉ।
- आई.बी. द्वारा की गई आरंभिक जॉच का सारांश।
- मैथ्यू और उन के सहायक श्रीकुमार की दी गई मौखिक जानकारी।

मैं मानता हूँ कि मैथ्यू ने बहुत अच्छा काम किया था। उसने बाद में होने वाली पूछ-ताछ और जॉच से भी एक दूरी बनाए रखी। एक अच्छे पेशेवर की तरह उसने जो कुछ ठोस इंटेलिजेंस के तौर पर पेश किया गया था उसे उसी शक्ल में मंजूर नहीं किया। बल्कि पूछताछ करने वालों के बयानों में छिपी असंगतियों को सबसे पहले उसने ही पकडा। किसी भी स्थिति में उसने स्थानीय पुलिस या राजनीतिज्ञों का साथ नहीं दिया।

मैं उसकी अल्पभाषिता का कायल हो गया। मैंने उस जटिल केस से आई.बी. को छुटकारा दिलाने की कोशिश की। आई.बी. निदेशक ने आग्रह किया कि हम लोग सी.बी.आई. टीम के साथ चिपके रहें। यह सही निर्णय न था। मेरी राय में एक समानांतर काउंटर-इंटेलिजेंस जाँच करने के बजाए आई.बी. को जरूरत पडने पर सी.बी.आई. की सहायता करनी चाहिए थी।

मैथ्यू जॉन के कार्यालय की इस महत्वपूर्ण मीटिग के बाद सी बी आई टीम अपने रास्ते पर चल पडी। उसने आई बी अधिकारियो को इससे दूर ही रखा मुझे भी। निदेशक आई बी के आदेशानुसार मैं एल पी एस सी के एक ट्रिप पर गया भी। लेकिन मुझे इसरो अधिकारियो के साथ महत्वपूर्ण वार्ता में शामिल नही किया गया। पुलिस अधिकारियो के साथ हुई बैठक मे भी मुझे आमन्त्रित नही किया गया। विजय रामाराव अलग से करुणाकरण तथा अन्य राजनीतिज्ञो से मिले। इन मुलाकातो से भी मुझे दूर ही रखा गया।

अवमानना से बचने के लिए मै इडियन एयरलाइस के विमान से दिल्ली लौट आया।

मेरी तो समझ मे यह आया कि सी बी आई ने भारत मे तथा विदेशो मे इस मामले की छानबीन ताबडतोड की थी। उसकी जॉच ने इसरो के वैज्ञानिको तथा मालदीव के नागरिको को दोषमुक्त करार दिया।

अपनी रिपोर्ट के 94 पृष्ठ के पैरा 113 मे सी बी आई ने निष्कर्षत कहा कि मरियम रशीदा का इसरो काड से कोई वास्ता न था। इसी तरह फौजिया हसन को भी मुक्त कर दिया गया। रिपोर्ट मे केरल पुलिस के इस्पेक्टर विजयन की छल-कपट व दुष्करण के लिए आलोचना की गई। रिपोर्ट ने कोलबो स्थित जुहेरिया के आई एस आई एजेट होने की सभावना को भी खारिज कर दिया। इसी तरह बगलौर के चद्रशेखर और पुलिस के आई जी रमन श्रीवास्तव को भी सारे आरोपो से मुक्त कर दिया गया। सी बी आई ने निष्कर्ष निकाला कि रशीदा नाबिनारायण और चद्रशेखर सहित सभी आरोपियो को परेशान किया गया और शारीरिक रूप से भी प्रताडित किया गया कि यह मानने के पर्याप्त कारण है कि पूछताछ करने वालो ने आरोपियो को उन के सुझाए तरीके से जवाब देने को बाध्य किया अतत प्राप्त साक्ष्यो के आधार पर जिनमे उपरोक्त मौखिक व लिखित साक्ष्य शामिल हैं जासूसी के आरोप सिद्ध नही होते और ये झूठे पाए गए है।

16-4-1996 को सरकार को यह रिपोर्ट भेजे जाने से पहले सी बी आई की भेदभावपूर्ण जॉच का मामला केरल उच्च न्यायालय के सामने आया था। नियामा वेदी बनाम रमन श्रीवास्तव (1995(।) केएलटी 206) केस मे आई बी को आदेश हुआ कि वह सबूत के तौर पर दस्तावेज पेश करे। आई बी अपने कागजात और वीडियो टेप पेश करने की अनिच्छुक थी। इसमे आई बी की कार्यशैली के लिए खतरा पैदा हो सकता था। आई बी अधिकारियो का सब के सामने आने का खतरा भी था। ये अनाम और बेचेहरा अधिकारी जनता की नजरो से दूर रहने मे ही बेहतरी समझते थे।

उधर गृहमत्रालय ने आई बी पर दबाव डाला कि वह केस मे पेश हो और अतिरिक्त सॉलीसिटर जनरल व सी बी आई के वकील को बरकरार रखे।

मैंने इसका विरोध किया। जब जॉच और अदालत मे केस की सुनवाई जारी थी तभी सी बी आई ने अपनी महारत के मुताबिक समाचार पत्रो व पत्रिकाओ के माध्यम से एक बड़ी मुहिम छेड दी थी कि इसरो का जासूसी काड अनर्गल है। यह केरल के कुछ अतिउत्साही पुलिस अधिकारियो व आई बी अधिकारियो का गढा हुआ है।

शासनपद्धति के सभी नियमो का उल्लघन करते हुए अतिरिक्त सॉलीसिटर जनरल ने कलकत्ता की सडे पत्रिका मे एक विस्तृत लेख लिख डाला। इसमे केरल पुलिस और आई बी अधिकारियो का मजाक बनाया गया था। वह इस तरह पेशे की भद्रता को कैसे लॉघ सकते थे ?

सी.बी.आई. ने इस तरह से जो प्रचार की मुहिम चलाई थी उससे मैं स्तंभित रह गया। मैंने आई.बी. निदेशक से कहा कि हमे एक और वकील कर के अपने विभाग के हितों की रक्षा करनी चाहिए। पाठक मुझसे सहमत नहीं हुए। वह इसरो मामले में एक साझी कार्रवाई दिखाने के दबाव में थे। वह राजनीतिक दबाव में पिस गए थे और उन्होने अपने मातहत साथियो की बलि चढाने का फैसला कर लिया था।

विशेष सचिव (गृह) ने तर्क दिया कि सरकार के दो विभाग किसी महत्वपूर्ण राष्ट्रीय मामले में मतभेद नहीं रख सकते। मैंने तर्क दिया कि आई.बी. और सी.बी.आई. के केस अलग-अलग थे। जहॉ तक आई.बी का सवाल था, यह स्पष्टत. काउंटर-इंटेलिजेस का केस था। सी.बी आई जल्दबाजी में जिन निष्कर्षो पर पहुँची थी, आई.बी की जॉच के नतीजे उससे भिन्न थे। बेहतर तो यह होगा आई.बी. इस मामले में प्रतिनिधित्व ही न करे क्योकि केस तो आधिकारिक तौर पर सी.बी.आई के हवाले कर दिया गया है। लेकिन सरकार ने जोर दिया कि सी.बी.आई. केरल उच्च न्यायालय में ' मान्य व एकमत वाले साक्ष्य ' प्रस्तुत करे।

प्रधानमंत्री कार्यालय और गृहमंत्रालय ने अनौपचारिक रूप से यह स्पष्ट कर दिया था कि इसरो कांड को बाकायदा दफन कर दिया जाए। आई.बी. निदेशक में चुनौतियो का सामना करने और अपने अधिकारियों को सरक्षण देने की क्षमता न थी। उन्होंने मुझे आदेश दिया कि केरल उच्च न्यायालय में साक्ष्य प्रस्तुत करूँ और सी.बी.आई के वकील को ही आई.बी का वकील स्वीकार करूँ। मैंने खुद जाने के बजाय एक वरिष्ठ अधिकारी (वी.के जोशी) को तीन वीडियो टेप और आवश्यक दस्तावेजों की प्रतियों के साथ एर्नाकुलम भेज दिया। मै सी.बी.आई का विरोधी रवैया देख चुका था और केस में अपनी व्यक्तिगत राय जाहिर कर के इस खीचतान को और बढाना नहीं चाहता था।

अदालत ने टेप देखने के बाद टिप्पणी की कि" आई.बी ने सरकार को जो रिपोर्टे भेजी हैं और जो हमारे सामने भी प्रस्तुत की गई हैं, उनका अध्ययन किया गया है, रिपोर्टो में मरियम रशीदा और फौजिया हसन द्वारा आई.जी रमन श्रीवास्तव के नाम का उल्लेख करना बताया गया है; आई.बी. की रिपोर्टो में, जिसकी कि अपनी जॉच मशीनरी है, यह स्पष्ट रूप से पता चला है कि इस मामले में केरल पुलिस के आई.जी रमन श्रीवास्तव भी लिप्त हैं, अपना 7-1-95 का हलफनामा दायर करते हुए सी.बी.आई. निदेशक ने लगता है केस के इस पहलू को नजरअदाज कर दिया है। हम उन्हें आदेश देते हैं कि इस सिलसिले मे फिर से जॉच करें।

उच्च न्यायालय ने बदी संदिग्धो को यातना देने के सी.बी.आई. के आरोप से केरल पुलिस और आई.बी. को दोषमुक्त कर दिया। न्यायालय ने व्यवस्था दी कि " इंटेलिजेस ब्यूरो ने जो तीन टेप अदालत में पेश किए थे, उनको हम ने अदालत के वी.सी.पी. पर देखा है। इन से स्पष्ट हो जाता है कि तीनों आरोपियों ने अपने जवाब बिना किसी यातना या भय के दिए हैं। असल में उच्च न्यायालय ने सी.बी.आई. के विरुद्ध कडी टिप्पणी भी की।

इस मौके पर मैंने आई.बी. निदेशक से अनुरोध किया कि सारी पूछ-ताछ की 70 वीडियो टेपों में की गई रिकार्डिंग हमें पेश करनी चाहिए। वह सी.बी.आई की जल्दबाजी में की गई जाँच के खिलाफ जाएगी और इससे उच्च न्यायालय की तसल्ली होगी। पाठक ऐसे ठोस सबूतों के साथ सरकार का सामना करने की हिम्मत नहीं जुटा पाए। मैंने तर्क दिया कि इतना महत्वपूर्ण साक्ष्य देने से चूकने पर संगठन को अपूरणीय क्षति पहुँचेगी। लेकिन इससे उन में रत्ती भर साहस का संचार नहीं हुआ। लगता था उनको केवल अपने भविष्य की चिंता थी।

राजनीतिज्ञों के इशारे पर नाच कर संकट को टालने का उनका यह तरीका एजेंसी के साथ भयानक विश्वासघात था। उनको पता होना चाहिए था कि छुरा चलाने वाले राजनीतिज्ञ और बूचडखाने के कसाई में एक-सी फितरत होती है। पाठक रणक्षेत्र मे प्राण न्योछवर करने वाले सेनानायक की वीरगति से अपरिचित थे।

आई.बी. निदेशक की सी.बी.आई निदेशक से बातचीत न थी। उन्होंने विशेष सचिव और गृह सचिव से मुलाकात करने से भी इनकार कर दिया। मुझे मजबूरन विरोधी संभाषण वाली लाइन को खुला रखना पडा। निजी व्यवहार में सी बी.आई. निदेशक शिष्ट बने रहे। लेकिन जब मैं अतिरिक्त सॉलीसिटर जनरल से उनके पुराना किला आवास पर मिलने गया तो उन्होंने काफी धौंस दिखाई। उत्तर प्रदेश के एक कुशल और साहसी अधिकारी दिलीप त्रिवेदी मेरे सहायक के तौर पर मेरे साथ थे। वकील ने जानना चाहा कि आई.बी ने उनकी फीस क्यों नहीं दी। मैंने उनको बताया कि वह अपनी मांग पेश करें, उनका मानदेय निश्चित ही उन्हें मिल जाएगा।

बाद की घटनाओं से मुझे बडा धक्का लगा। ऐसा लगा कि वकील पूरी तरह से सी बी आई. के पक्ष में थे। वह आई.बी. का पक्ष सुनने का तैयार न थे। मेरे सहयोगियो ने मुझे चेतावनी दी कि अतिरिक्त सॉलीसिटर जनरल अपनी प्रधानमंत्री और चंद्रास्वामी से निकटता का लाभ उठाते हुए मुझे सबक सिखा सकते हैं। मैं चिंता में पड गया।

मैने एक बार फिर निदेशक आई बी से अनुरोध किया कि हम सारे 70 वीडियो टेप अदालत में पेश करें। इनसे असंदिग्ध रूप से सिद्ध हो जाएगा कि आई बी अधिकारियों ने जिन व्यक्तियों से पूछ-ताछ की थी उनको कोई यातना नहीं दी गई। मैंने यह भी मॉग की कि नांबिनारायण, रमन श्रीवास्तव और काउंटर-इंटेलिजेंस के इस मामले के एक और संदिग्ध व्यक्ति सुधीर कुमार शर्मा से विधिवत पूछताछ की जाए।

आई.बी. प्रमुख ने यह तर्क देते हुए असहमति जताई कि आई.बी. की गुप्त वीडियो कार्रवाई को सार्वजनिक करना उचित न होगा। हमने तीन वीडियो टेप दिए थे जिन से उच्च न्यायालय आश्वस्त हुआ था। बाकी टेप देने में क्या बुराई थी ? इन टेपों को अदालत गोपनीय सामग्री मान कर अकेले में इन्हें देख सकती थी। देश में ऐसा कोई कानून न था जो आई बी को राष्ट्र हित में न्यायालय के सामने कोई साक्ष्य प्रस्तुत करने से रोकता हो। इसके लिए केवल सरकारी अनुमति की आवश्यकता थी। सरकार अनुमति देने से कैसे मना कर सकती थी जब कि वह पहले ही तीन टेप प्रस्तुत करने की अनुमति दे चुकी थी? विभागीय गोपनीयता की बात एक नितात स्पष्ट काउंटर-इंटेलिजेंस के मामले में निर्णायक साक्ष्य प्रस्तुत करने के रास्ते में कैसे आ सकती थी। लेकिन सच का सामना करने में पाठक की अनिच्छा ने एजेंसी और व्यक्तिगत तौर पर अधिकारियों को अपूरणीय क्षति पहुँचाई।

आई बी. और सी.बी.आई. के संबंध तेजी से बिगड रहे थे। मैंने एक कांग्रेसी मित्र के माध्यम से प्रधानमंत्री को यह परामर्श देने का फैसला किया कि वह राजनीतिक सोच-विचार को जासूसी कांड से पृथक रखें। देश भर में इसरो संस्थानों की सुरक्षा-व्यवस्था को और सुदृढ बनाने की महती आवश्यकता थी। क्योंकि हमें सूचना मिली थी कि पाकिस्तान गौरी मिसाइलों का परीक्षण करने वाला था जिनमें उत्तरी कोरिया से जानकारी आयात करने के साथ-साथ इधरउधर से भारी मात्रा में हासिल की गई भारतीय टेक्नॉलॉजी शामिल थी। प्रधानमंत्री कार्यालय के एक वरिष्ठ अधिकारी ने पाकिस्तान द्वारा भारतीय टेक्नॉलॉजी का प्रयोग करने

को सिरे से खारिज कर दिया। मैंने चाहा कि इसरो प्रमुख से एक विशेष मुलाकात करूँ। लेकिन यह संभव नहीं हुआ। सारे दरवाजे अचानक मुझ पर बंद कर दिए गए।

इसरो की घटना देश को झकझोर रही थी। तभी एक राजनीतिक मित्र ने, जो प्रधानमंत्री के करीब थे, मुझे सलाह दी कि मुझे सी.बी.आई. की धारणा का समर्थन करना चाहिए। मुझे कहना चाहिए कि आई.बी. अधिकारियों व केरल पुलिस ने जानबूझ कर मालदीव के नागरिकों तथा भारतीय वैज्ञानिकों के साथ दुर्व्यवहार किया। उन्होंने मुझसे वादा किया कि रिटायर होने पर मुझे एक बहुत अच्छा पद दे दिया जाएगा। संगठन के अंदर के दबाव और प्रधानमंत्री के मित्रों के दबाव से मैं पशोपेश में पड गया। इसरो वाला मामला कोई मामूली संचालन कार्रवाई न थी। उसमें एक ठोस काउंटर-इंटेलिजेंस मामले के सभी तत्व मौजूद थे जो साबित कर सकते थे कि इसरो जैसे संवेदनशील संगठन को भी अब आई.एस.आई. ने अपना लक्ष्य बना कर उनमें घुसपैठ बना ली थी। लेकिन राजनीतिक आका और प्रमुख प्रशासक यह बात मानने को तैयार न थे।

बहरहाल मैंने सेवानिवृत्ति पर मिलने वाले आकर्षक पद की पेशकश को ठुकरा दिया।

* * * *

रिटायर हो जाने के बाद मैं इसरो मामले को पुनर्जीवित करने के लिए लगभग कुछ नही कर सकता था क्योंकि सी.बी.आई. ने आई.बी की ख्याति और उसके अधिकारियो की ईमानदारी के ताबूत में बडी मजबूत कीले जड दी थीं। पद्धति की इस विफलता ने असंदिग्ध रूप से सिद्ध कर दिया था कि कुछ राजनीतिज्ञ राष्ट्रीय सुरक्षा तक को जोखिम मे डाल सकते थे। इस घटना ने साफ जाहिर कर दिया कि आई.बी और सी.बी.आई जैसे संगठनों का इस्तेमाल तुच्छ राजनीतिक हितों के लिए किया जा सकता है। इसरो कांड मे सी.बी.आई. को इस्तेमाल किया गया और आई.बी को रौंदा गया।

आई.बी.,सी.बी.आई. और राजनीतिक आकाओ ने इस मामले को बडे ही शर्मनाक ढंग से चलाया। बहरहाल मै इसरो कांड पर कुछ और विवरण देना चाहूँगा

- इस मामले को मीडिया में बहुत उछाला गया। सारे कांड का राजनीतिकरण किया गया क्योंकि एक संदिग्ध, आई.जी रमन श्रीवास्तव, कथित तौर पर कांग्रेस नेता करुणाकरण का करीबी था। कुछ मुद्दों पर मीडिया इसरो कांड की खबर लेता लगा न कि जॉच एजेंसियों की। सनसनी विक्रय की तरकीबों का एक हिस्सा है। लेकिन समय पा कर सनसनी पूर्वाग्रह और संवेदनहीनता पैदा कर देती है। इसरो वाले मामले में भी मीडिया की बहुत अधिक दिलचस्पी ने पूर्वाग्रह को जन्म दिया। हालांकि रॉ आई.बी और केरल पुलिस की पूछताछ में इससे कोई बाधा नहीं आई।
- घटनाक्रम के नाजुक मोड पर रॉ ने सी.बी.आई. की एकतरफा और पूर्वाग्रहयुक्त जॉच के विरुद्ध जाने से इनकार कर दिया।
- सी.बी.आई. ने केरल पुलिस और आई.बी. को अपना निशाना बनाया। हालांकि आई.बी. ने ही सरकार से आग्रह किया था कि केस सी.बी.आई. के हवाले किया जाए। सी.बी. आई. को स्पष्ट तौर पर समझ लेना चाहिए था कि यह सिद्ध करने में कि इसरो के कुछ वैज्ञानिकों ने मालदीव की दो महिलाओं से आपत्तिजनक संपर्क बना लिए हैं और आई.एस.आई. के हाथ अंतरिक्ष अनुसंधान संस्थान के कुछ गोपनीय तथ्य लगे हैं, आई. बी. का कोई निजी स्वार्थ नही था।

- आई.बी. को जैसे ही यह स्पष्ट हो गया कि केरल में राजनीतिक वातावरण दूषित हो गया है और इससे संदिग्ध काउंटर-इंटेलिजेंस वाले कांड की निष्पक्ष जाँच में बाधा आएगी, उसने उसे सी.बी.आई. के हवाले कर दिया।
- सी.बी.आई. को इस मामले में प्रधानमंत्री कार्यालय नहीं, आई.बी. लाई थी। जब ऐसा था तो आई.बी. अधिकारियों को प्रताडित करने का क्या तुक था ?
- आई.बी. की रिपोर्ट में प्रधानमंत्री के बेटे का नाम जिस दिन से आया तभी से सारा सरकारी तंत्र संयुक्त पूछ-ताछ टीम की बनाई तस्वीर का मखौल बनाने में लग गया। सी.बी.आई. का इस्तेमाल न सिर्फ केरल पुलिस और आई.बी. को बल्कि एक ठोस काउंटर-इंटेलिजेंस केस को भी ध्वस्त करने के लिए किया गया। केंद्रीय जॉच ब्यूरो ने इस केस की कुछ इस तरीके से जॉच की मानो उसे आई.बी. की हत्या करने और आई.एस.आई. के संदिग्ध एजेंटों को दोषमुक्त करने का काम सौंपा गया हो।
- सी.बी.आई. को उस समय एक करारी चपत लगी जब वकीलों के एक संगठन ' नियामा वेदी ' ने केरल उच्च न्यायालय में एक याचिका दायर की और न्यायालय ने दस्तावेजों का अध्ययन करने के बाद व्यवस्था दी कि सी.बी.आई. की कहानी अविश्वसनीय है। न्यायालय ने सी.बी.आई. के विरुद्ध कडी टिप्पणी की।
- बाद में सी.बी.आई. ने सर्वोच्च न्यायालय में एक विशेष याचिका दायर की, जिसमें कहा गया कि उच्च न्यायालय के आदेश समयपूर्व के हैं क्योंकि अभी सी.बी. आाई. की जॉच पूरी नहीं हुई है।
- इन्हीं घटनाओं के दौरान केरल में राजनीतिक परिवर्तन हो गए। मुझे बताया गया कि इसरो कांड से करुणाकरण की छवि धूमिल हुई थी और मतदान में कांग्रेस की शिकस्त में इसकांड की भारी भूमिका थी।
- ई.के. नयनार के नेतृत्व वाली वाम लोकतांत्रिक मोर्चे की सरकार ने इस मामले की दोबारा जाँच के आदेश दिए। उसने इससे पहले सी.बी.आई. से मामले की जॉच करने की जो प्रार्थना की थी वह वापस ले ली। सी.बी.आई. ने इसके विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील की तो न्यायालय ने 29-4-1998 को व्यवस्था दी कि राज्य सरकार को पहले सी.बी.आई. को जाँच का अनुमोदन देने के बाद उसे वापस ले कर नए सिरे से जाँच कराने का अधिकार नहीं है। दोनों मौकों पर सर्वोच्च न्यायालय ने यह व्यवस्था केस के गुण-दोषों के आधार पर नहीं दी थी। उसने केवल कानून के तकनीकी पक्ष पर विचार किया था हालांकि उसके लिए भी कानूनी पहलू पर गहराई से विचार किया जाना चाहिए था।

* * * *

मुझे सारी पूछ-ताछ रिपोर्टों का अध्ययन करने का मौका मिला (जिन के साथ वीडियो रिकार्डिंग भी थी।) इनके साथ ही मैंने आई.बी. और केरल पुलिस की रिपोर्टों का अध्ययन भी किया। सी.बी.आई. ने जो अंतिम रिपोर्ट दी थी उसका भी मैंने ध्यान से अध्ययन किया। एक प्रशिक्षित काउंटर-इंटेलिजेंस संचालक होने के नाते मैं इस ठोस निर्णय पर पहुँचा कि इसरो कांड को दो मुख्य कारणों से पटरी से उतारा गया था : एक तो यह कि आई.बी. की रिपोर्ट में प्रधानमंत्री के बेटे के नाम से आतंक की लहर व्याप्त हो गई थी। इसने नरसिंह राव के लिए राजनीतिक स्थिति और भी जटिल बना दी थी। वह पहले ही हर्शद मेहता व शेयर बाजार

कांड में फंसे थे। झारखंड मुक्ति मोर्चा और जैन हवाला कांड की वजह से भी उन की जान सांसत में थी। उन के शहरी विकास मंत्री तथा सतीश शर्मा जैसे ऊंचे रुतबे वाले पेट्रोलियम मंत्री के घोटाले भी कम परेशानी में डालने वाले न थे। अगर आई.बी निदेशक ने अपनी रिपोर्ट के साथ ' आंतरिक कार्यसूची ' संलग्न करने की गलती न की होती तो इस जटिल स्थिति की नौबत न आती।

इस कथित जासूसी कांड ने भारत की सारी अंतरिक्ष परियोजना को झकझोर डाला। मामले के व्यापक प्रचार और उसमें जनहस्तक्षेप ने स्थिति को और भी बिगाड दिया। बेहतर तो यह होता है कि इस तरह के मामलों से गोपनीयता के आवरण में निबटा जाए। किसी भी स्थिति में आई.बी. का इरादा इसरो वैज्ञानिकों को इस तरह प्रकाश मे लाने का न था। लेकिन केरल के परस्पर विराधी राजनीतिक धडों और पूर्वाग्रही मीडिया के कारण स्थिति काबू से बाहर हो गई।

मेरी आज भी यही धारणा है कि मेरे आई.बी. निदेशक से मामले को सी.बी.आई. के हवाले करने के आग्रह के पीछे ठोस कारण थे। मेरा असली उद्देश्य यह था कि आई.बी. और सी.बी. आई. संयुक्त रूप से इस मामले की छानबीन करें क्योंकि केरल पुलिस जबरदस्त स्थानीय दबाव में थी। आई.बी. को श्रीलंका, मालदीव व रूस में जॉच करने का कोई अधिकार न था। सी. बी.आई. इस मामले की इंटरपोल की मदद से वहाँ जॉच करने के लिए उपयुक्त एजेंसी थी।

सी.बी.आई. ने अच्छी शुरुआत की थी। लेकिन शीर्ष से अचानक दबाव आने पर वह आई. बी. और केरल पुलिस के खिलाफ हो गई।

आई.बी. निदेशक डी.सी. पाठक ने निंदनीय रूप से घुटने टेक दिए थे। उनमें सरकार के सामने डट कर अपने अधिकारियों का बचाव करने का नैतिक साहस न था। उनकी इस असफलता के फलस्वरूप सी.बी.आई. द्वारा आई.बी. अधिकारियों के खिलाफ आपराधिक मामला चलाने का खतरा पैदा हो गया। आई.बी. के कुछ बहुत कुशल अधिकारियों को पदोन्नति तथा सेवा के अन्य मामलों में हानि उठानी पडी।

जनवरी 1995 के आखिरी दिन मैं सेवानिवृत्त हुआ। उससे पहले मैंने सी.बी.आई. की रिपोर्ट का अध्ययन किया। मैंने उसकी कमियो के बारे में त्रिवेंद्रम के डिप्टी डाइरेक्टर श्रीकुमार (अब गुजरात के अतिरिक्त डी.जी.पी.), आई.बी. की केरल यूनिट के अन्य अधिकारियों तथा अपने स्टाफ के अधिकारियों से चर्चा की। इस चर्चा के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि सी बी.आई. ने अपनी जल्दबाजी में की गई जॉच में इन कमियों को छोड दिया है :

- मरियम रशीदा और फौजिया हसन के त्रिवेंद्रम में 17-9-94 से 17-1.-94 तक अधिक समय तक रुके रहने के असली मकसद की पूरी तरह जॉच नहीं की गई।
- मरियम रशीदा ने दावा किया था कि उसकी यात्रा का मकसद अपनी बेटी को बंगलौर में प्रवेश दिलाना था। सी.बी.आई ने इस की निर्णायक जॉच नहीं की।
- मरियम रशीदा का कहना था कि उसकी बंगलौर के व्यापारी चंद्रशेखरन से हवाई अड्डे पर इत्तिफाकन मुलाकात हो गई थी। सी.बी.आई. ने इस बात का उल्लेख नहीं किया कि मरियम से उसकी मुलाकात से पहले से ही फौजिया चंद्रशेखरन को जानती थी। इस कपटचाल की जाँच नहीं की गई। शशिकुमारन सहित इसरो वैज्ञानिकों की टीम के सभी वैज्ञानिकों, चंद्रशेखरन व एस.के. शर्मा सरीखे व्यापारियों,

स्कवाड्रन लीडर एस.के. भसीन वगैरह सभी ने फौजिया की बेटी को वीजा और स्कूल में प्रवेश दिलाने के लिए जरूरत से ज्यादा तत्परता दिखाई। सी बी.आई. ने इन दो मालदीवियन महिलाओं तथा इसरो से संबंधित प्रमुख वैज्ञानिकों के बीच इस तरह के निकट सबंधो के बारे में जॉच नहीं की।

- फौजिया और मरियम रशीदा,दोनों ने बताया कि जुहैरिया (कोलंबो स्थित अनुमानित पाक सचालक) के पास तीन पासपोर्ट थे। वह मरियम और मुहियुद्दीन (एक और संभावित पाक एजेंट) के साथ कई बार भारत आईं। सी.बी.आई. ने जुहैरिया के सिर्फ एक पासपोर्ट की जॉच की। उसने उसके बाकी दो पासपोर्टो के मामले को अनदेखा कर दिया।
- मरियम ने बताया कि फौजिया बहुत से अमेरिकी डॉलर अपने पास रखती थी। जब शशिकुमारन मरियम को बाहर डिनर के लिए ले गया उस समय उसके पास अमेरिकी डॉलरों की गड्डी थी। ये उसे कथित रूप से फौजिया से मिले थे। सी.बी. आई. ने इस पर भी कोई टिप्पणी नहीं की।
- पुलिस द्वारा शुरू में अनौपचारिक पूछताछ के बाद मरियम ने अपने होटल सम्राट के कमरे में अपनी टेलीफोन डायरी तथा दूसरे कागज जला डाले थे। सी बी आई. ने इस पहलू की भी जॉच नहीं की।
- रिपोर्टो में कूरियन कलाथी और नाबिनारायण के बीच संपर्क का जो जिक्र था, उस पर भी सी.बी.आई. ने आगे जॉच नही की। उसके निजी पासपोर्ट की भी जॉच की जानी चाहिए थी। इससे उसके निजी तौर पर विदेश यात्राए करने का पता चल जाता। नांबि के घर पर जो फोन लगा था उसके बडे लबे-चौडे बिल आते थे। सी. बी.आई को जॉच करनी चाहिए थी कि वह किन नंबरों पर फोन करता था। उसने नांबि के केरल और तमिलनाडु के व्यापारिक सपर्को की भी जॉच नहीं की। एक वैज्ञानिक करोड़ों रुपयो के व्यापारिक सौदे कैसे कर सकता था ?
- डी. शशिकुमारन ने पूछ-ताछ के दौरान चैन्नई की एक महिला लक्ष्मी का जिक्र किया था जिस के साथ उसके और रमन श्रीवास्तव के कथित निकट सबंध थे। सी.बी आई. ने अपनी रिपोर्ट में इस महिला का भी जिक्र नहीं किया।
- अंबेतूर, चेन्नई, में शशिकुमारन का डेढ एकड का एक प्लाट अपनी पत्नी के साथ संयुक्त नाम से है। वहॉ उनकी कारखाना लगाने की योजना है। सी.बी.आई. ने इसके वित्तीय पहलू पर गौर नहीं किया। इतना धन कहॉ से आया ?
- शशिकुमारन ने बताया था कि उनका इरादा एक ग्रुप के साथ मिल कर 14 करोड रुपए का मछली पकडने का जहाज खरीदने का है। एक वैज्ञानिक इतनी बडी पूंजी कैसे लगा रहा है, इस की जॉच करने की सी.बी.आई. ने जरूरत नहीं समझी।
- नाबि के बंबई की एक कंपनी हिंदुस्तान एक्सपोर्ट्स एंड इंपोर्ट्स से संबंध थे। ग्रोवर इसके प्रमुख थे। फ्रांस की एराइन स्पेस कारपोरेशन से इसरो के लिए जो सामान आयात किया जाता था, आरोप है कि उस में नांबि को कमीशन मिलता था। सी. बी.आई. ने इस की भी जाँच नहीं की।
- भारत में कुछ सुराग थे जिनको दबा दिया गया। इसरो वैज्ञानिकों और संदिग्ध मालदीव के गुप्तचरों के मिलनस्थलों को भी सी.बी.आई. ने अस्तित्वहीन घोषित कर दिया।

- आई.बी. को अपनी जाँच से मिले तथ्यों और सी.बी.आई. के बताए तथ्यों के विरोधाभास का विवरण तैयार करने का हौसला नहीं हुआ। इन तथ्यों को सी.बी.आई. का भांडा फोड़ने के लिए गृह सचिव और मंत्रिमंडलीय सचिव की जानकारी में नहीं लाया गया।
- उच्च न्यायालय ने काउंटर-इंटेलिजेंस के सबूतों पर मनन नहीं किया। उसने केवल कानून के तकनीकी पक्ष पर ही गौर किया।
- इस बात का पता लगाने की कोशिश भी नहीं की गई कि क्या आई.एस आई. अपने कामों के लिए मालदीव की इंटेलिजेंस एजेंसी का इस्तेमाल कर रही थी।
- भारतीय अधिकारियों को इस बात का पता था कि पाकिस्तान के भारत का इंटेलिजेंस घेराव करने में श्रीलंका की भूमि का इस्तेमाल भी किया जा रहा है। संदिग्ध लोगों से पूछ-ताछ के दौरान दो आरोप सामने आए उन की रॉ ने गहरी छानबीन क्यों नहीं की ?
- ऐसे ही करीब दो दर्जन और पॉइंट थे जिन्हें आई.बी. की विशेष टीम अपनी पूछ-ताछ के दौरान प्रकाश में लाई थी। अपनी जॉच प्रक्रिया जल्दी से जल्दी पूरी करने के चक्कर में सी.बी.आई. ने इन पर भी ध्यान नही दिया। मैंने इन तथ्यो की चर्चा इसलिए की है कि इससे सरकार और उसकी एजेसियो मे कुछ हलचल हो। इसके पीछे निम्न उद्देश्य हैं :
- सी.बी.आई. की संदेहपूर्ण जॉच के-कारण आई.बी. और केरल पुलिस के निर्दोष अधिकारी पीड़ित न हों।
- देश को इस बात की दोबारा जॉच करने की गुजाइश मिले कि क्या उसकी प्रमुख अंतरिक्ष परियोजना एजेंसी मे आई.एस.आई. और अमेरिकी एजेंसियों की घुसपैठ है?
- एक संयुक्त जॉच एजेंसी बनाई जाए जिस में आई.बी.,सी.बी.आई.,रॉ और इसरो के प्रतिनिधि हों। वह उपलब्ध साक्ष्य और दस्तावेजो का विस्तार से अध्ययन करे ताकि अंतिम निष्कर्ष पर पहुंचा जा सके।

ऐसे करीब 30 पॉइंट हैं जिन पर सी.बी.आई ने रहस्यमय व्यवहार किया। संदिग्ध लोगों ने जो भी कहा उन्होंने ऑख मूँद कर उसे मान लिया। ये लोग उन बातों को तो दोहराने वाले नहीं थे जो उन्होंने संयुक्त पूछताछ टीम के सामने कबूली थीं।

इस मामले पर मेरा इरादा विस्तृत बहस करने का नहीं है। पर मेरा विचार है कि सारे इसरो कांड की दोबारा जाँच किए जाने की महती आवश्यकता है।

मालदीव की सरकार ने अपने देश के मान्य स्थायी राष्ट्रपति के विरोधियों की हरकतों का पता लगाने के लिए अपने संचालकों को भारत के अंदर कार्रवाई करने की इजाजत दी। यह एक गैरकानूनी काम था। खासतौर से तब जब विदेशी एजेंट पकडे जाएँ। अमेरिका कभी भी भारत को अपने किसी राज्य में रहने वाले भारतीयों के बारे में जॉच करने की इजाजत नहीं देगा। इसी तरह भारत भी मालदीव सरकार को भारत के अंदर कोई कार्रवाई करने की इज़ाज़त नहीं दे सकता। मालदीव ने यह तो नहीं कहा था कि मरियम रशीदा से उनका कोई वास्ता नहीं। वह मालदीव की सुरक्षा व इंटेलिजेंस सेवा की कर्मचारी है, इसकी पुष्टि तो रॉ ने कर दी थी।

हो सकता है कि दिल्ली पर इस केस को ज्यादा हवा न देने और बद करने के लिए मालदीव से दबाव पडा हो। इस तरह का अनुरोध समझ मे आता है।

इस बात की भी प्रबल सभावना है कि भारत सरकार नही चाहती थी कि इसरो की छवि धूमिल हो। वह यह स्वीकार ही न करना चाहती हो कि अतिआधुनिक रॉकेट टेक्नॉलॉजी के लिए बैचेन उनके किसी शत्रु देश ने इस प्रतिष्ठित सस्थान मे सभवत घुसपैठ बना ली है। इसरो ने भारत का सिर गर्व से ऊँचा कर दिया था। लेकिन जिस तरह से सी बी आई ने जॉच की और जिस तरह इतने सगीन काउटर-इटेलिजेस के मामले को विधिवत दफनाया गया, उससे राष्ट्रीय सुरक्षा राजनीतिक तकाजो और कूटनीति के बीच गहरी दरारे बाकी रह जाती हैं।

सदेह के बीज और दोबारा जॉच करने की आवश्यकता इसी मे छिपी है।

इसरो काड से सबधित एक तृतीय घटना की चर्चा मै जरूर करना चाहूँगा। ओ राजगोपाल केरल से बी जे पी के एक दिग्गज नेता थे। वह भूतपूर्व पुलिस अधिकारी थे। जुलाई 1995 मे वह मुझसे मिलने आए। सघ परिवार के एक मित्र उन के साथ थे। वह चाहते थे कि मैं उनको जॉच रिपोर्ट और वीडियो टेप की प्रतिया दे दू। मै उन पर विश्वास नही करता था। उनको इससे अपना राजनीतिक मतलब हल करना था। मुझे उम्मीद न थी कि बी जे पी इसरो के मामले को ले कर एक पूरी जग लडेगी और मुश्किल पडने पर मेरा बचाव करने भी आएगी। इससे पहले मेरे सेवानिवृत्त होने के बाद एल के आडवाणी के साथ एक मीटिग मे भी मुझे ऐसा ही आभास हुआ था। वह आश्रयी सरकार को चोट पहुचाने के लिए किसी हथियार की तलाश मे थे। राष्ट्रीय सुरक्षा के किसी महत्वपूर्ण हित की रक्षा करने मे उनकी दिलचस्पी न थी। मै चाहता था कि नरसिह राव सरकार तथा सी बी आई द्वारा इस तरह एकाएक बद किए गए इसरो केस की दोबारा जॉच हो। 1998-99 मे बी जे पी के अवतरण ने इसमे कोई दिलचस्पी नही दिखाई। भारत के रॉकेट विकास कार्यक्रम के पाकिस्तान के किसी उल्लघनकारी कृत्य का पर्दाफाश करने मे भी उन की दिलचस्पी नही थी।

अप्रैल 1996 मे मध्यप्रदेश से काग्रेस के वरिष्ठ नेता अर्जुन सिह के एक दूत ने अपने एक राजनीतिक गुर्गे की मदद से मुझे खोज लिया। मुझसे अनुरोध किया गया कि उनसे मिलू। वह भी यही चाहते थे कि मै उनको इसरो काड की पूरी जानकारी दस्तावेजो के साक्ष्य के साथ दू। उनका खेल एकदम साफ था। वह अपने राजनीतिक विरोधी नरसिहराव के विरुद्ध इस सामग्री का इस्तेमाल करना चाहते थे। उनसे मेरी तीन मुलाकाते शिष्टाचार से आगे नही बढीं। मै राष्ट्रीय सुरक्षा के एक महत्वपूर्ण मामले में राजनीतिज्ञो के हाथो मे खेलने को तैयार न था। हालाकि राव और सरकार मे उन के गुर्गों ने मुझे गहरा जख्म दिया था। मै राव को और अपने राष्ट्र को घाव दे कर अपना घाव तो भर नही सकता था। अर्जुन सिह मेरे इस रवैए से बहुत निराश हुए।

इसरो काड की ' अदरूनी कहानी ' पर कॉलम लिखने के लिए मीडिया के एक वर्ग ने भी मुझसे कहा। मुझे लगा कि आई बी की काउटर-इटेलिजेस कार्रवाई और नरसिहराव सरकार की सारे मामले की लीपा-पोती को उजागर कर के सकट की स्थिति पैदा करने मे कोई तुक नही है। मीडिया ने पहले ही करुणाकरण के समर्थन मे और उनके विरोध मे जा कर काफी क्षति पहुचाई थी। मीडिया को इस तरह राष्ट्र के लिए खतरा पैदा करने का अधिकार नही है। हालाकि खोजी पत्रकारिता के जरीए व्यवस्था के कुछ मुखौटे उजागर कर के वह महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

जैसा कि मैंने पहले भी कहा, आई.बी., सी.बी.आई., रॉ और केरल पुलिस के अधिकरियों की एक संयुक्त टीम ही सब संबद्ध आलेख देख कर नए सिरे से इस मामले की जाँच कर सकती है। तभी इस दफ्न हुए मामले के साथ इस स्थिति में न्याय हो सकता है। इस तरह की समन्वित जाँच न होने पर ही रॉ और आई.बी. को पुरूलिया के हथियार गिराने के मामले और कारगिल जैसे राष्ट्रीय सुरक्षा से संबंधित महत्वपूर्ण मामलों में कमियाँ छोडने व असफल होने की छूट मिली। आज भी देश को पता नहीं चल पाया है कि पुरूलिया जैसी बडी गलती कैसे हुई। क्या यह रॉ का कोई अधकचरा कारनामा था जिसका असली मकसद बांग्लादेश के किन्हीं गिरोहों को हथियार पहुंचाना था ?

कारगिल की इंटेलिजेंस और सैन्य कार्रवाई को किस ने बिगाड कर विफल किया ? इस पर सरकार की नियुक्त की गई समिति की विस्तृत रिपोर्ट है। लेकिन आई बी. और रॉ के ' अपराधियों ' पर न्यायपालिका या संसद की किसी समिति द्वारा जॉच नहीं की गई। इसकी वजह यह है कि निर्वाचित सदन के प्रति जवाबदेही की ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है।बाद में दोनों को महत्वपूर्ण संवैधानिक पद मिल गए।

सी.बी.आई. ने आई.बी. के विरुद्ध जो प्रचार की मुहिम चलाई उसने उसे मामले का राज बाहर खोलने को प्रेरित किया। इसके लिए प्रायोजित लेख भी लिखे गए और केरल पुलिस व आई बी. के अधिकारियों का उत्पीडन हुआ। इन सारी वारदातों की वजह से मुझे लगा कि इसरो कांड का उल्लेख ' खुले रहस्य ' में किया जाना चाहिए जो मेरी पुलिस की अल्पकालीन सेवा और भारत की प्रमुख इंटेलिजेंस एजेंसी में मेरी मुख्य यात्रा का सच्चा वृत्तांत है।

इसरो कांड की चर्चा मेरी प्रतिशोध की भावना से प्रेरित नहीं, पर मैं धौस सहने के लिए पैदा नहीं हुआ था। मोर्चे में जम कर लोहा लेना मेरी खासियत है। इस घटना ने मेरी इस धारणा को और भी बल दिया है कि भारत को ऐसा संसदीय अधिनियम बनाना चाहिए जो इंटेलिजेंस व जॉच एजेंसियों का नियमन करे। उनको राजनीतिक नस्ल के स्वार्थपरक उपयोग से स्वतंत्र किया जाना चाहिए।

मेरा दृढ विश्वास है कि देश के मीडिया, बुद्धिजीवी और नीतिनिर्धारक इस जिहाद को शुरू करेंगे। क्योंकि अक्सर वे ही आंतरिक आपात्काल, सरकारी गोपनीयता कानून, पोटा, मीसा, डी.आई.आर. सरीखे क्रूर लोकतंत्रविरोधी कानूनों व नियमों के शिकार होते हैं। किसी इंदिरा गाँधी को किसी वाजपेयी या आडवाणी को बंदी बनाने में कोई कठिनाई नहीं होती। किसी जयललिता को अपने साथी राजनीतिज्ञ वाइको के विरुद्ध पोटा लगाने में कोई हिचक नहीं होती। लेकिन विडंबना यह है कि इस के शिकार ही जब शीर्ष पद पर आसीन होते हैं तो वे अचानक सब कुछ भूल जाते हैं। वे भूल जाते हैं कि निर्वाचित लोकतंत्र सब से खराब शासनतंत्र भी हो सकता हैं। इससे राष्ट्रीय जीवन का अपराधीकरण हो सकता है। इस स्थिति से तभी बचा जा सकता है जब संविधान को फिर से संशोधित कर के ताजा किया जाए और देश में हर स्तर पर संवैधानिक स्वाधीनता, स्वतंत्रता और जवाबदेही बहाल की जाए।

मैं एक साधारण इंटेलिजेंस संचालक रहा हूँ। मुझे वर्तमान राष्ट्रीय इतिहास के कुछ अंशों को देखने का अवसर मिला। तत्कालीन आकाओं ने मेरा भी इस्तेमाल संविधान को कमजोर करने तथा कानून-व्यवस्था को ध्वस्त करने के लिए काफी बडे पैमाने पर किया। हम लोग असल में जनसेवक नहीं हैं। हम जनप्रतिनिधियों के सेवक हैं।

* * * *

' खुले रहस्य ' एक माध्यम है उन लोगो तक सदेश पहुचाने का जो आज भी विश्वास रखते है कि भारत किसी भी व्यक्ति या वाम, दक्षिण मध्य किसी भी राजनीतिक सिद्धात को मानने वाली सरकार से अधिक महत्वपूर्ण है।

राजनीतिज्ञो और प्रशासको की मुखौटेबदलू कलाबाजियो से मुझे हैरानी नही हुई। लेकिन जिस आदमी को मैने शीर्ष तक पहुँचने मे मदद दी उसने जब एक महत्वपूर्ण काउटर-इटेलिजेंस मामले को इतने अनाडीपने से सचालित किया तो मुझे बहुत पीडा हुई। 30 जनवरी 1995 की रात को आई बी निदेशक ने मुझे फोन किया। उन्होने फोन पर मुझे ' राष्ट्रविरोधी ' बताया और कहा कि मैंने ' प्रधानमत्री के बेटे को इसरो जासूसी काड मे फसाने की जानबूझ कर साजिश की है। मैने उनको बताने की कोशिश की कि उन्होने ही मेरी बात न मान कर ' अदरूनी कार्यसूची ' की एक प्रति अपनी रिपोर्ट के साथ नत्थी कर दी थी। उसी मे कहा गया था कि प्रधानमत्री के बेटे से भी पूछताछ करने की जरूरत है। इस पर वह चकराया हुआ व्यक्ति कुछ बुदबुदाया जो समझ से परे था।

अगली सुबह मै सेवानिवृत्त हुआ। उस दिन एक सहयोगी ने मुझे बताया कि आई बी निदेशक ने 30 जनवरी की रात को एक और रिपोर्ट भेजी थी। उसमे उन्होने अपनी इसरो जासूसी काड की पहली सभी रिपोर्टों को गलत बताया था। अपनी नवीनतम रिपोर्ट मे उन्होने दावा किया था कि यह उनकी अपनी स्वतत्र जॉच का नतीजा है। उन्होने ऐसी कोई जॉच नही की थी।

पाठक ने सीधे-सीधे घुटने टेक दिए थे। उन्होने सारे सगठन के विश्वास को धोखा दिया। खासतौर पर अपने सहयोगियो मैथ्यू जॉन, श्रीकुमार, एस जयकुमार और बिशभर को। ये सभी आई बी की केरल यूनिट के अधिकारी थे। केद्रीय जॉच टीम के कई अधिकारियो को भी सी बी आई के आरोपपत्र के रूप मे घिनौने कागज थमाए गए। अपने जनरल की इसकायरता और सगठन की रक्षा करने की अक्षमता से हम सभी अत्यधिक निराश हुए। मै उस दिन को कोस रहा था जब उनके नाम की मत्रिमडलीय सचिव से सिफारिश की थी।

उस रात से ही मेरे मित्रो ने मुझे बताया कि आई बी ने मेरे फोन और हमारी गतिविधियो पर निगरानी बैठा दी है। मैने देखा कि मेरे घर के आस-पास कुछ परिचित चेहरे मडरा रहे थे। मेरे कुछ ' मित्रो ' ने मेरी पत्नी पर दबाव डाला कि वह मुझे चुप रहने को राजी करे। 2 फरवरी को तेजी से आती एक वैन ने मेरी कार को टक्कर मारने की कोशिश की। उसी रात मुझे धमकी भरे फोन भी आए कि अगर इसरो काड के बारे मे मैने मुह खोला तो गभीर परिणाम भुगतने पडेगे। उसी रात आई बी. के मेरे एक सच्चे दोस्त घर पर आए। उन्होने मुझे राय दी कि मैं कुछ दिनो के लिए यह घर छोड दूँ क्योकि सरकार इस आधार पर मेरे घर पर छापा मारने की तैयारी कर रही थी कि मैने बिना अनुमति के घर पर कुछ महत्वपूर्ण सरकारी दस्तावेज छिपा रखे है। उन्होने कहा कि आई बी कुछ दस्तावेज रख कर और फिर उनको बरामद कर के मुझे फसा सकती है।

अपने उस आई बी दोस्त की राय मान कर मैं और मेरी पत्नी दिल्ली मे एक दोस्त के घर पर जा छिपे। पाँच दिन बाद हम अपने सरकारी आवास पर लौटे। तब तक मैंने अपने बच्चों से जेद्दा में और अहमदाबाद मे राय कर ली थी। उसके बाद मैंने इस सारे मामले से तोबा करने का फैसला कर लिया। आखिर मैं अपने परिवार की सुरक्षा को सकट में नही डालना चाहता था। अगर मैं शक्तिशाली सरकारी तंत्र की साजिश का पर्दाफाश करने की

कोशिश करता तो मुझे पता था कि सरकार मुझे और मेरे परिवार के सदस्यों को कुछ भी हानि पहुँचा सकती है।

यह निर्णय हमें और भी जल्दी लेना पडा, क्योंकि मेरी पत्नी के चेहरे के दाहिनी ओर बेल्स पक्षाघात का दौरा पडा था। उन्हीं दिनों में पता चला कि उनका हारमोन का सतुलन भी बिगड गया है। इसका कारण उनका पहले हुआ संपूर्ण गर्भाशयछेदन आपरेशन था। इस असंतुलन के कारण उनको वक्ष कैंसर हो रहा था। हमने यह परेशान करने वाला समाचार अपने बच्चों को नहीं दिया और रोकथाम वाला इलाज जारी रखा।

हमें उनके इलाज और बच्चों की पढाई पूरी करने के लिए समय और स्थान की आवश्यकता थी न कि उस सरकार से भिडने की जिसने अपने तंत्र का इस्तेमाल करते हुए राष्ट्रीय हितों पर कुठाराघात किया था।

सुनंदा ने परिवार के निर्णय का समर्थन किया।

अंततः सितंबर 2001 को उसने कैंसर के कारण दम तोड दिया।

उपसहार

गुप्तचरी शासनतत्र का एक साधन है। यह राष्ट्र को अपने यहाँ शाति बनाए रखने और बाहरी दुनिया मे युद्ध और शाति बनाए रखने मे सहायता करती है। गुप्तचर बिरादरी ने अतीत मे योद्धाओ राजाओ और सम्राटो की सेवा की है। अब वे जनता के सेवक हैं या यो कहे कि वे कम से कम निर्वाचित लोकतत्र मे जनता के प्रतिनिधियो के सेवक है।

इस पेशे का अपना आकर्षण और करिश्मा है। यह आकर्षण दरअसल राष्ट्र व्यवस्था से मिला आकर्षण है। काले और बौने सितारो की तरह इटेलिजेस बिरादरी भी अपनी उपस्थिति को विज्ञापित नही कर सकती न ही अपनी चमक दिखा सकती है। यह तो जिन लोगो की सेवा करती है उनकी चमक-दमक दिखाती है। अगर सी आई ए जैसी एजेसी को धूर्त की उपाधि मिली है तो इसलिए कि यह अपन समय के शासको के धूर्त चरित्र को प्रतिबिबित करती है।

अनेक देशो मे राजा-रानियो का जमाना खत्म हो चुका है। तानाशाहो और नियत्रित लोकतत्र के क्रूर शासन का स्थान अब निर्वाचित लोकतत्र और सवैधानिक स्वाधीनता ने ले लिया है। गुप्तचर बिरादरी से अपेक्षा रहती है कि वह व्यवस्था और उस व्यवस्था को समर्थन देने वाले लोगो की स्वैच्छिक रूप से सेवा करे।

क्या वास्तविक लोकतत्रो ने इस लक्ष्य को हासिल किया है ? इसका स्पष्ट उत्तर है हॉ और ना । कुछ हद तक हॉ। अमेरिका यू के और फ्रास जैसे देशो मे जहा निक्सन बुश और ब्लेयर जैसे गलतियॉ करने वाले नेताओ को सवैधानिक नियत्रण और जवाबदेही पकड लेती है। इराक युद्ध के मामले ने बुश का पीछा करना शुरू कर दिया है जिनके सर्वोच्च पद पर चुने जाने की ही फिर से समीक्षा की जा रही है। इस बात के पर्याप्त सबूत मिल जाने पर कि उन की सरकार ने इटेलिजेस की रिपोर्टों मे घपला किया है ब्लेयर मुश्किल मे पड गए। फिर भी स्वतत्र लोकतत्रो मे व्यवस्था अब भी इटेलिजेस बिरादरी का दुरुपयोग करती है।

दिखावटी लोकतत्र वाले देशो मे और सभी तानाशाहो धार्मिक व सैद्धातिक तत्रवादियो सैनिक शासन की जजीरो मे जकडे देशो की जनता तो अपनी गुप्तचर व्यवस्था के उत्पीडन से बच नही सकती जो सत्ता का लंबा हाथ ही होता है।

भारत को एक स्वाधीन लोकतात्रिक देश माना जाता है। लेकिन सैद्धान्तिक से यहाँ भी इटेलिजेस और जाच बिरादरी राज्य शासन की शृखलाओ से आजाद नही है। वह निर्वाचित ससद या विधायिकाओं के प्रति जवाबदेह नही। सरकार अपने नागरिको के निजिजत्व का उल्लघन कर सकती है और एजेंसी को उन लोगों को यातना देने के काम में लगा सकती है जो व्यवस्था के विरोधी हैं।

राजनीति चू कर राष्ट्र के हर तबके तक पहुँच कर अपने को फैला चुकी है। यह साम्राज्य शासन की जगह निर्वाचित लोकतंत्र के आने के अपने दिन से ही असदिग्ध रूप से स्पष्ट हो गया था। लेकिन बहुत से बड़े और आधारभूत राजनीतिक फैसले, चाहे वे पंजाब के उपद्रव से संबद्ध थे या फिर कश्मीर की विफलता से, वे सब राजनीतिज्ञों ने अपने तुच्छ राजनीतिक स्वार्थ के अनुसार ही लिए थे।

बोडो, गोरखा, यू.एन.एल.एफ., उल्फा और टी.एन.एल.एफ. जैसे मामलों में जो गलत नीतियॉं अख्तियार की गई और विपथगमन हुआ, वह साबित करता है कि भारतीय राजनीतिक तबका छोटे राजनीतिक जोड-तोड और बडी सामाजिक, राजनीतिक, जातीय और आर्थिक दरारें पैदा करने के अंतर को नहीं समझता। सत्ता की सडी-गली डाल पर लटके रहने के लिए वह ऐसा करने से भी गुरेज नहीं करता। वे आज भी राज करने के लिए लोगो में फूट डालने से हिचकते नहीं। अपने मतलब का वोट बैंक बनाने के लिए वे आज भी जनता को जाति, बिरादरी और वर्ग के धडों में बांटने में व्यस्त हैं। अगर मजबूत संवैधानिक लोकतंत्र हो, जिसमें पर्याप्त स्वाधीनता,स्वतंत्रता व जवाबदेही हो तो उसमें ऐसा करने की गुजाइश नही हो सकती।

इसरो काउंटर-इंटेलिजेंस मामले ने यह स्पष्ट रूप से सिद्ध कर दिया है कि राजनीतिक आकाओं का राष्ट्रीय सुरक्षा से कोई सरोकार नहीं है। कुछ ही साल बाद पाकिस्तान द्वारा कारगिल पर हमला करने से यह बात एक बार और स्पष्ट हो गई। तत्कालीन सरकार ने जनता को इंटेलिजेंस व्यवस्था की विवेचना करने का अवसर देने से इनकार कर दिया। इतनी बड़ी राष्ट्रीय विफलता के लिए जिम्मेदार रॉ आई.बी., और सेना इंटेलिजेस को बिना पर्याप्त जवाबदेही के साफ बरी कर दिया गया। भारतीय प्रशासन को पचशील के छाते तले मजे से झपकी लेते पा कर जब चीन ने 1962 में उसका फायदा उठाया था, शासनतंत्र की यह असफलता उससे कम नही थी।

* * * *

इंटेलिजेंस मूलतः जन-संसाधनो पर आश्रित होती है। इंटेलिजेंस सकलन मुख्यत प्रशिक्षित जन ही करते हैं। इसमें उनके बनाए या उपयोग में लाए उपकरण व मशीनें सहयोग करती हैं। सबसे प्यारा और शुद्धतम हीरा किसी सौंदर्य साम्राज्ञी के ताज की शोभा तभी बनता है जब उसे किसी माहिर कारीगर ने तराशा और चमकाया हो। इसी तरह कच्ची इंटेलिजेंस के किसी टुकड़े को जब अनुभवी इटेलिजेंस संचालक मथ कर उसका नवनीत निकालते हैं तभी वह नीति निर्धारकों के उपयोग में आता है।

मैं भारतीय इंटेलिजेंस ब्यूरो (आई.बी.) का 29 साल तक अभिन्न अंग रहा। आम तौर पर इसमें पेशेवर लोग ही संलग्न हैं। इस में प्रशिक्षण, जन-संसाधन प्रबधन, संभारतंत्र के विकास व उपलब्धता की कमी रही है। फिर भी आधारभूत स्तर के आई.बी. संचालको ने निष्ठापूर्वक ब्यूरो, सरकार व जनता की सेवा कर के अपना हक अदा किया है। कम से कम 5 प्रतिशत जन-संसाधन अपने कर्तव्य के प्रति निष्ठावान हैं। इस स्तर के कुछ श्रेष्ठतम इंटेलिजेंस संचालकों के साथ काम करने का मुझे सुनहरा मौका मिला है। दूसरे सभी सरकारी विभागों की तरह बाकी के 5 प्रतिशत जन-संसाधनों का उपयोग विवादास्पद तरीके से किया जाता है।

भारत में एक इंटेलिजेंस सचालक को अधिकारी माना जाता है। वह उन अर्थों में एजेंट नहीं, जिन अर्थों में सी.आई.ए. में उसे एजेंट कहा जाता है। उसे केंद्र या राज्य पुलिस बलों मे अपने समकक्ष पुलिस अधिकारी के समतुल्य समझा जाता है। अक्सर उसे एक क्लर्क की तरह समझा जाता है। यह एक बडी भूल है। भारत सरकार को इस कमी पर ध्यान देना चाहिए। उसे चाहिए कि इंटेलिजेंस संचालकों को पुलिस से इतर कुछ विशिष्टता प्रदान करे। उन के लिए विशेष सेवा नियम बनाए जैसे कि सेना के लिए बनाए गए हैं। उनके संगठन और कार्यशैली के दर्शन में परिवर्तन की आवश्यकता है। हम उम्मीद करते हैं कि आई.बी का आधुनिक नेतृत्व ब्रिटिश साम्राज्य की बनाई धारणा और स्वाधीनता बाद के सरकारों के नवरत्नों द्वारा उसी के अनुसरण से आगे विचार करेंगे।

मैंने कभी भी ऐसा कोई काम नहीं किया जिससे इटेलिजेस ब्यूरो और दशको में उसने जो अधिकारियों की श्रेष्ठ कोर बनाई है, उसे किसी किस्म की परेशानी हो। मैंने आई.बी के कुछ अधिकारियों के नामो का हवाला जरूर दिया है। ऐसा अपने विवरण को निश्चितता देने और अधिक स्पष्ट बनाने के उद्देष्य से ही मैंने किया है। मैने किसी भी व्यक्ति-विशेष को कष्ट पहुँचाने की कोई चेष्टा जानबूझ कर नहीं की। न ही मैंने आई.बी के कार्यकलाप के महत्वपूर्ण पहलुओ को उजागर करने की कोशिश की है जो इंटेलिजेंस और सुरक्षा के लिहाज से देश की रक्षा मे पूरी कुशलता से संलग्न है। यह और बात है कि आई.बी जैसी एजेंसिया भी सत्तारूढ दल, उसके प्रधानमंत्री और गृहमंत्री की मातहती में रह कर उनके हित के लिए काम करने को विवश कर दी जाती हैं। इस सारे राजनीतिक दुरुपयोग के बावजूद आई.बी ने सुरक्षा और इंटेलिजेंस से संबद्ध अपने कर्तव्य का प्रशंसनीय ढग से पालन किया है। अगर इसे राजनीतिज्ञो के चंगुल से मुक्त करा दिया जाए तो यह और भी अच्छी सेवा कर सकेगी।

* * * *

कुछ और बातों के स्पष्टीकरण की भी आवश्यकता है। ये हैं राजनीति व सार्वजनिक जीवन का अपराधीकरण और उस में व्याप्त भ्रष्टाचार। कई बार इस बात को ले कर हो-हल्ला हुआ है कि इंदिरा गॉधी और राजीव गांधी भ्रष्ट थे। उनको ले कर घोटाले और काड इस तरह उछाले गए मानो देश के बाकी सब नेता उतने ही दूध के धुले थे जैसी उनकी दुग्धधवल धोतियॉ। मैं कोई जांचकर्ता नहीं। मैं किसी भी राजनीतिज्ञ के विरुद्ध व्यक्तिगत भ्रष्टाचार के सबूत पेश नहीं कर सकता। फिर भले ही वह इंदिरा, राजीव, राव, लालू यादव या कोई और आयाराम-गयाराम हों या फिर उन साथ साठ-गाठ करने वाले प्रशासक।

जहाँ तक मेरी निजी जानकारी हैं, इंदिरा गाँधी व्यक्तिगत रूप से भ्रष्ट नहीं थीं। राजीव गाँधी को भी मैंने निकट से देखा है। मेरी दृढ धारणा है कि वह भी व्यक्तिगत रूप से भ्रष्ट न थे। उनकी समस्या यह थी कि भाग्य ने उन को भारत जैसे जटिल देश का कर्णधार बनने के योग्य नहीं बनाया था। वह सस्ते टोटकों में यकीन रखते थे। वह अपने 'मित्रों', मंडली के सदस्यों ' और अपने ' इंटेलिजेंस प्रमुख ' की गलत सलाह पर यकीन कर लेते थे। किसी इंटेलिजेंस प्रमुख को अपने मुख्य उपभोक्ता के साथ भावात्मक और सैद्धांतिक निकटता नहीं बनानी चाहिए। ऐसी स्थिति इटेलिजेंस को गंभीर पथभ्रष्टता की ओर ले जा सकती है। राजीव गाँधी कई बार सही नीतिमार्ग से भटके। मैं एक वरिष्ठ पत्रकार से सहमत हूँ कि अगर संजय

का पिछली सीट पर बैठ कर गाडी चलाना आतक का शासन था तो राजीव का कॉकपिट मे बैठ कर विमान उडाना गलतियो का शासन था।

बाकी राजनीतिज्ञो के बारे मे मैं कोई टिप्पणी नही करना चाहता सिवा पी वी नरसिह राव के। यह देश का दुर्भाग्य था कि भारत की गद्दी पर एक ऐसा व्यक्ति बैठा जो शिक्षक से तोशाखाने (राजकोश) का प्रबधक बना दिया गया।

मै इस उम्मीद के साथ जिदा हूँ कि भारतवासी जल्दी ही सत्यमेव जयते राष्ट्रीय ईमानदारी और चरित्र का अर्थ फिर से समझ जाएँगे। जितनी जल्दी वे ऐसा करे उतना ही अच्छा होगा। वरना राष्ट्रीय तटबध को मोर्चा लगाने वाला भ्रष्टाचार एक दिन देश की नैया खेने वाली सविधान नाम की पतवार को भी नष्ट कर देगा। फिर तो देश लूट-खसोट मचाने वालो के रहमोकरम पर ही रह जाएगा। अपराधियो ने राष्ट्रीय जीवन म अपनी घुसपैठ बनानी शुरू कर दी है। वे बदूक की नोक पर खरीद-बिक्री करते है। वे आसानी से अधिक शक्तिशाली बदूको के सामने झुक भी जाते है । ये है देश के दुश्मन।

क्या हमे ऐसो का विश्वास करना चाहिए?

अगर खुले रहस्य इस महत्वपूर्ण मुद्दे पर राष्ट्रीय बहस शुरू करवाने मे सफल हो जाए कि कोई उपयुक्त अधिनियम बना कर इटेलिजेस व जॉच एजेसियो को निर्वाचित ससद के प्रति जवाबदेह बनाया जाना चाहिए तो मुझे बहुत प्रसन्नता होगी। स्वाधीनता के 57 साल बाद अब समय आ गया है कि इटेलिजेस व जॉच सगठनो को तुच्छ व दृष्टिहीन राजनीतिज्ञो के शिकजे से मुक्त कराया जाए।